भूमिका

2



कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृङ्गः॥

अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान के अवतारों की संख्या अनन्त है, आवश्यकतानुसार ...ता जगदीश्वर युग-युग में प्रकट होते रहते हैं। भगवान ने अपने अवतार के मुख्य कारण तीन ...है-साधु परित्राण, दुष्ट विनाशन, धर्म संस्थापन। प्रभु के सम्पूर्ण अवतार इन तीन कारणों से प्रभा-... किन्तु एक अवतार ऐसा भी है-जिसमें उक्त तीन कारण तो गौण रह जाते हैं, एक चौथा कारण ...जाता है, वह कारण है-"अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ"। न जाने कब से भगवान ...इच्छा थी कि ये मेरे प्रेमी पागल जिस राग-भक्ति के उन्माद में विस्मृत रहते हैं-उसका मैं स्वयं भी ...न करूँ? और तब उस उन्नत उज्वल रसामृत सिन्धु के सारतत्व को लेकर एक दिन प्रभु स्वयं ...राधाम पर अवतरित हुए।

भारत के कोटि-कोटि कृष्ण प्राण महाभागवतों ने वहिः साक्षात्कार एवं अन्तः साक्षात्कार के ...जिन कलि पावनावतार प्रेमानन्द रस मूर्ति भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य देव की भगवत्ता को सुनिश्चित ...स्वीकार किया है, उन्हीं करुणा वरुणालय प्रभु का दिव्य चरित्र इस "चैतन्य भागवत" में वर्णित ...चैतन्य भागवत' के रचयिता श्री वृन्दावनदासजी श्रीमन्महाप्रभु के परम कृपापात्र हैं, स्वयं प्रभु ने ही ...दावनदासजी की वाणी पर विराजमान होकर 'चैतन्य भागवत' वर्णन किया है--

"मनुष्ये रचिते नारे ऐछे ग्रन्थ धन्य। वृन्दावनदास मुखे वक्ता श्रीचैतन्य"॥ "चैतन्य चरितामृत"

इससे स्पष्ट है कि 'चैतन्य भागवत" साक्षात् भगवत् वाणी है, ऐसे परम पावन-पुनीत ग्रन्थ का ...पाठन स्वाध्याय-प्रवचन निश्चित ही कोटि-कोटि जन्मों के अघों को समूल नष्ट कर महाप्रभु श्रीकृष्ण ...देव के पाद-पद्मों में श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम का उत्पन्न करने वाला है। 'चैतन्य भागवत' में वर्णित ...की पुण्य कथाओं का जितना ही कीर्त्तन-श्रवण किया जायगा, उतना ही शीघ्र से शीघ्र श्रीमन्महाप्रभु ...रणों में दिव्य प्रेम-रस की प्राप्ति होगी।

"श्री चैतन्य भागवत" की रचना श्रीमन्महाप्रभु के समसामयिक ही समझी जाती है, किन्तु बड़े ...द और दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि श्रीमन्महाप्रभु के प्राकट्य समय ४७८ वर्ष के बाद भी किसी ...य विद्वान्, गृहस्थ या विरक्त ने इस अमूल्य ग्रन्थ रत्न को हिन्दी भाषा में प्रकाशित कराने की चेष्टा ...की। बंगभाषा एवं बंग-लिपि के आवरण में छिपे सहस्रों ग्रन्थ रत्न आज भी न जाने कहाँ कहाँ दबे ...हैं, हिन्दी आदि भाषाओं के ज्ञाता भक्तजन जिन ग्रन्थों की कथा-श्रवण के लिये प्यासे-से भटकते रहते ...रन्तु विशाल गौड़ीय (बंग-भाषी) सम्प्रदाय द्वारा इन ग्रन्थों के भाषान्तर करने का कुछ भी प्रयास ...होता, भले ही किसी को बुरा लगे, किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि सम्प्रदाय के कर्णधारों ने यदि थोड़ा ...भाषा के व्यामोह को छोड़ा होता तो श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित धर्म आज विश्व का सर्वमान्य धर्म ...ा और इस सर्व वन्दय धर्म के आश्रय में अनन्त जीवों का कल्याण हुआ होता। भारतवर्ष के बड़े-बड़े ...ान् एवं समस्त सम्प्रदायाचार्य गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति-साहित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं थकते ...ल वे सभी विद्वान् गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति-साहित्य के आगे नतमस्तक हैं दूसरी ओर गौड़ीय सम्प्रदाय

के ही अनेक महापुरुष ऐसे भी है जो इस अमूल्य ग्रन्थ राशि को नष्ट होते देख रहे हैं, दूसरो अपहरण होता देखकर भी स्वानन्द स्वाराज्य सिंहासन से तनिक भी विचलित नहीं होते। यह सौभाग्य की बात होगी, किन्तु सम्प्रदाय के प्रचार कार्य में यह उपेक्षा-वृत्ति निश्चित ही दुर्भाग्य की

वैसे इस बीसवीं शताब्दि में सम्प्रदायेतर महानुभावों की ओर से पर्याप्त जागृति हुई सम्प्रदायि महानुभावों ने ही सर्व प्रथम बंगला ग्रन्थों का हिन्दी करण प्रारम्भ किया, काशी से ग्रन्थ माला, बम्बई से वेङ्कटेश्वर प्रेस आदि से कुछ ग्रन्थ प्रकाशित किये गये उनके भी पहले ताड़ास वाला महाराज श्री वनमालीराय द्वारा भी अनेक ग्रन्थ हिन्दी में मुद्रित किये गये किन्तु यह परम्परा अ रह सकी, क्योंकि सम्प्रदाय के नैष्ठिक वैष्णवों का मनोबल इस प्रचार की ओर नहीं था। अवश्य दिशा में गौड़ीय मठ की शाखाओं ने बहुत कुछ कार्य किया है, कर भी रहे है. गौड़ीय मठ के विद्वान का महत्व समझते हैं। सबसे बड़ी अच्छी बात जो इस समय बंगला साहित्य के हिन्दी करण के लिये है—वह है बाबा श्रीकृष्णदासजी कुसुम सरोवर वालों का हिन्दी प्रकाशन। बाबा श्रीकृष्णदासजी ने अथक परिश्रम से अब तक एक सौ से ऊपर बँगला ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है, बा के हृदय में सम्प्रदाय कार्य के प्रति निष्ठा है, लगन है, और एक प्रबल उत्कण्ठा है कि सम्प्रदाय का साहित्य एक बार हिन्दी की गोद में आ विराजे, प्रस्तुत ग्रन्थ "श्रीचैतन्य भागवत" के हिन्दी प्रकाश सम्पूर्ण श्रेय बाबा श्रीकृष्णदासजी पर ही है, ग्रन्थ को आदि खड और अन्त्य खड बाबाजी के महान् से पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं, आदि-अन्त्य खण्डों के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् बाबा श्रीकृष्णदा को मध्य खण्ड के प्रकाशन की महती चिन्ता थी, इसी बीच करुणा वरुणालय प्रभु की महान् कृ प्रेरणा से मध्य खण्ड के प्रकाशन का प्रबन्ध भी होगया। श्रीमाध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्य विश्व सङ्कीर्त्तन प्रचारक, महामण्डलेश्वर सख्य रस-उपासक श्रील श्री १००८ श्री स्वामी श्री कृष्णानन्दद महाराज जो लेखक को श्रीगुरुदेव भगवान के रूप में इस भवाटवी में आश्रय दाता हुए है, महाराज परम कृपा पात्रा, माता श्री नारायणीदेवी—धर्मपत्नी स्वर्गीय लाला श्रीराधाकृष्णजी अग्रवाल, ग्राम तहसील माँट (मथुरा) के परम भागवत सुपुत्र श्री विश्वम्भरदयालजो भगवद् भजन की इच्छा से श्री कृष्णदासजी के पास कुछ दिन रहे, उन्हीं दिनों चैतन्य भागवत का चर्चा होने पर श्री विश्वम की मातु श्री नारायणीदेवी ने पूर्ण अर्थ सहायता प्रदान कर इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है। ग्रन्थ प्रकाशन जगत् के जीवों का ज्ञान का दान करना होता है, जैसे नेत्रहीन व्यक्ति का चक्षु प्राप्त करने महान् सुख शान्ति मिलती है, वैसे ही इस ग्रन्थ रूपी चक्षु के द्वारा जिनको भी यथार्थ ज्ञान होगा— काल तक अन्तरात्मा से आशीर्वाद देते रहेंगे।

माता श्री नारायणीदेवी की यह हार्दिक इच्छा है कि यह ग्रन्थ उन गौर भक्तों को वितरण कि जाय—जिनके हृदय में प्रेम प्रदाता श्री गौरचन्द्र के दिव्य चरित्रों को श्रवण करने की तीव्र लालसा आ हो रही हो। आशा है प्रबन्धक महानुभाव ऐसी ही व्यवस्था करेंगे।

अन्त में प्रभु के पादपद्मों में पुनः प्रार्थना है कि वे अपने भक्तों के हृदय में ऐसी ही निरन्त प्ररणा देते रहें ताकि ऐसे महान् निधि स्वरूप गन्थों का प्रकाशन होता रहे।

जेष्ठ गङ्गादशहरा
संवत् २०२०

गौर भक्त चरणानुचर—
रामदास शास्त्री मण्डलेश्वर
चारसम्प्रदायआश्रम (वृन्दावन)

* श्री चैतन्य भागवत *

मध्य खण्ड

प्रथम अध्याय

आजानुलम्बितभुजौ कनकावदातौ
संकीर्तनैकपितरौ कमलायताक्षौ
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युगधर्म्मपालौ
वन्दे जगत्प्रियकरौ करुणावतारौ ॥१॥
नमस्त्रिकालसत्याय जगन्नाथसुताय च ।
सभृत्याय सपुत्राय सकलत्राय ते नमः ॥२॥

जय जय जय विश्वम्भर द्विजराज । जय विश्वम्भर प्रिय वैष्णव समाज ॥३॥
जय गौरचन्द्र धर्म्मसेतु महाधीर । जय संकीर्तन मय सुन्दर शरीर ॥४॥
जय नित्यानन्देर बान्धव धन प्राण । जय गदाधर अद्वैतर प्रेमधाम ॥५॥
जय श्रीजगदानन्द प्रिय अतिशय । जय वक्रेश्वर काशीश्वरेर हृदय ॥६॥
जय जय श्रीवासादि प्रियवर्गनाथ । जीव प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टि पात ॥७॥
मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड । जे कथा शुनिले घूचे अंतर पाषण्ड ॥८॥

अनुवाद—जिनकी दोनों भुजाएँ जानु पर्यन्त लम्बी हैं, जिनके श्रीअङ्ग की कान्ति कंचन के समान कमनीय है, जिनके दोनों नयन कमलदल के समान विस्तीर्ण हैं, जो संकीर्तन के एक मात्र पिता (जन्मदाता) हैं जो सकल विश्व के भरण-पोषण-कर्ता हैं, जो युग धर्म के पालन करने वाले हैं, जो जगत के प्रियकारी हैं, जो द्विज श्रेष्ठ हैं तथा करुणा के अवतार हैं, मैं उन दोनों की (श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु और श्री नित्यानन्द प्रभु की) बन्दना करता हूँ ॥१॥ हे नाथ ! तुम्हीं भूत, भविष्य, वर्त्तमान—तीनों काल में एक मात्र सत्य हो । तुम जगन्नाथ मिश्र के सुपुत्र हो ! मैं तुमको तुम्हारे भृत्यों, पुत्रों (वात्सल्य-रस के पात्रों) एवं कलत्रों के सहित नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ हे विश्वम्भर ! हे द्विजराज ! आपकी जय हो, जय हो । हे विश्वम्भर ! हे वैष्णव समाज के प्रिय ! आपकी जय हो ॥३॥ हे गौरचन्द्र ! हे धर्म के सेतु ! हे महाधीर ! आपकी जय हो । हे संकीर्तन रूप ! हे सुन्दर शरीर वाले ! आपकी जय हो ॥४॥ हे नित्यानन्द प्रभु के बंधु ! उनके धन एवं प्राणरूप ! आपकी जय हो । हे श्रीगदाधर पण्डित एवं अद्वैत प्रभु के प्रेमधाम आपकी जय हो ॥५॥ हे श्री जगदानंद के अत्यन्त प्रिय ! आपकी जय हो । हे श्री वक्रेश्वर एवं काशीश्वर के हृदयरूप ! आपकी जय हो ॥६ ॥ हे श्री वासादि प्रियवर्ग के नाथ ! आपकी जय हो , जय हो । हे प्रभु ! जीव के प्रति शुभ दृष्टिपात कीजिए ॥७॥ मध्य खण्ड की कथा मानो अमृत की खाँड रूप है । जो कथा सुनने पर अन्तर का पाखण्ड दूर हो जाता है ॥८॥

मध्य खण्ड कथा भाइ ! शुन एकचित्ते । संकीर्तन आरम्भ हइल जेन मते ॥९॥
गया करि आइलेन श्रीगौर सुन्दर । परिपूर्ण ध्वनि हैल नदीया नगर ॥१०॥
धाइलेन सभे जन आप्तवर्ग आछे । केहो आगे केहो माझे केहो अति पाछे ॥११॥
यथा योग्य करे प्रभु सभारे सम्भाष । विश्वम्भर देखि हैल सभार उल्लास ॥१२॥
आगुवाड़ि सभे आनिलेन निज घरे । तीर्थ कथा सभारे कहेन विश्वम्भरे ॥१३॥
प्रभु बोले तोमा सभाकार आशीर्व्वादे । गयाभूमि देखि आइलाङ निर्विरोधे ॥१४॥
परम सुनम्र हइ प्रभु कथा कहे । सभे तुष्ट हैला देखि प्रभुर बिनये ॥१५॥
शिरे हाथ दिया केहो चिरजीवी करे । सर्व्व अंगे हाथ दिया केहो मन्त्र पड़े ॥१६॥
केहो वक्षे हाथ दिया करे आशीर्वाद । गोविन्द शीतलानन्द करुन प्रसाद ॥१७॥
हईला आनन्दमय शची भाग्यवती । पुत्र देखि हरिषे ना जाने आछे कति ॥१८॥
लक्ष्मीर जनक कुले आनन्द उठिल । पतिमुख देखिया लक्ष्मीर दुःख गेल ॥१९॥
सकल वैष्णवगण हरिष हइला । देखिते ओ सेईक्षणे केहो केहो गेला ॥२०॥
सभारे करिला प्रभु विनय सम्भाष । विदाय दिलेन सभे गेला निज बास ॥२१॥
विष्णुभक्त गुटि दुईचारि जन लैया । रहः कथा कहिवारे बसिलेन गिया ॥२२॥
प्रभु बोले वन्धु सवः शुन कहि कथा । कृष्णेर अपूर्व्व जे देखिल यथा यथा ॥२३॥
गयार भितर मात्र हईलाङ् प्रवेश । प्रथमेई शुनिलाङ् मंगल विशेष ॥२४॥
सहस्र सहस्र विप्र पढ़े वेदध्वनि । देख देख विष्णु पादोदक तीर्थ खानि ॥२५॥
पूर्वे कृष्ण जवे कैला गया आगमन । सेई स्थाने रहि प्रभु धुईला चरण ॥२६॥

हे भाई ! एकाग्रचित्त से मध्यखण्ड की कथा सुनो—जिस प्रकार कीर्तन का आरम्भ हुआ है ॥९॥ 'श्रीगौरांग सुन्दर गया होकर आए हैं' इस ध्वनि से नदिया नगर परिपूर्ण हो गयी ॥१०॥ प्रभु के जितने आप्तवर्ग थे सब दौड़े आये—कोई आगे कोई बीच में कोई पीछे ॥११॥ प्रभु ने यथा योग्य सबसे सम्भाषण किया एवं विश्वम्भर जी को देखकर सबका मन उल्लसित हुआ ॥१२॥ सब आगे बढ़कर उनको उनके घर ले गए और विश्वम्भर जी सबसे तीर्थकथा कहने लगे ॥१३॥ प्रभु बोले कि तुम सबों के आशीर्वाद से मैं गया भूमि देख कर सकुशल लौट आया हूँ ॥१४॥ प्रभु अत्यन्त सुनम्र होकर कथा कहते थे। सब लोग प्रभु का विनय देख कर प्रसन्न हुए ॥१५॥ कोई मस्तक पर हाथ रख कर "चिरंजीवी हो" कहने लगे, कोई समस्त अंगों पर हाथ फेर कर मंत्र पढ़ने लगे ॥१६॥ कोई वक्ष पर हाथ देकर आशीर्वाद देने लगे कि शीतलानन्द श्रीगोविंद तुम पर कृपा करें ॥१७॥ भाग्यवती सची तो आनन्दमयी होगई। पुत्र को देखकर हर्ष के मारे मैं कहाँ हूँ, यह भी भूल गयी ॥१८॥ लक्ष्मी देवी का पितृकुल भी आनन्द से भर उठा। पति का मुख देख कर लक्ष्मीजी का दुःख दूर हुआ ॥१९॥ समस्त वैष्णवगण हर्षित हुए। कोई कोई उनको देखने के लिये भी गये ॥२०॥ प्रभु ने सब से विनय पूर्वक वार्त्तालाप करके उनको बिदा किया। सब अपने घर गए ॥२१॥ प्रभु दो चार विष्णु भक्तों को लेकर गोपनीय बात कहने के लिये बैठे ॥२२॥ प्रभु ने कहा—हे समस्त वन्धुओ सुनो। श्रीकृष्ण की जो जो अपूर्व बातें मैंने जैसे-जैसे देखी है वह सब सुनाता हूँ ॥२३॥ गया के भीतर प्रवेश करते ही मैंने पहले ही मंगल शब्द सुना ॥२४॥ सहस्र सहस्र ब्राह्मण वेद ध्वनि करते थे। कोई कहते थे देखो देखो यह विष्णुपाद तीर्थ है ॥२५॥ पूर्व काल में श्रीकृष्ण चन्द्र ने जब गया में आगमन किया था तब उस स्थान पर रहकर उन्होंने चरण धोये थे। जिन के पादोदक के कारण गङ्गा

जाँर पादोदक लागि गंगार महत्व। शिरे धरि शिव जाने पादोदक तत्त्व ।।२७।।
से चरण उदक प्रभावे सेइ स्थान। जगते हईल पादोदक तीर्थ नाम ।।२८।।
पादपद्मतीर्थेर लईते प्रभु नाम । अझरे झरये दुई कमल नयान ।।२९।।
शेषे प्रभु हईलेन वड़ असम्वर। कृष्ण वलि कान्दिते लागिला वहुतर ।।३०।।
भरिल पुष्पेर वन महाप्रेम जले। महा श्वास छाड़ि प्रभु कृष्ण कृष्ण बोले ।।३१।।
पुलके पूर्णित हैल सर्व्व कलेवर। स्थिर नहे प्रभु कम्प भरे थर थर ।।३२।।
श्रीमान् पण्डित आदि जत भक्तगण । देखेन अपूर्व्व कृष्ण प्रेमेर क्रन्दन ।।३३।।
चतुर्द्दिगे नयने वहये प्रेमधार । गंगा जेन आसि करि लेन अवतार ।।३४।।
मने मने सभे भावेन चमत्कार । एमत ईहाने कभु नाहि देखि आर ।।३५।।
श्रीकृष्णेर अनुग्रह हईल ईहाने । कि विभव पथे वा हईल दरशने ।।३६।।
वाह्यदृष्टि प्रभुर हईल कथोक्षणे । शेषे प्रभु सम्भाषा करिला सभा सने ।।३७।।
प्रभु कहे वन्धुसव ! आजि घरे जाह। कालि यथा वोलों तथा आसिवारे चाह ।।३८।।
तोमा सभा सहित निर्जन एक स्थाने। मोर दुःख सकल करिव निवेदने ।।३९।।
कालि सभे शुक्लाम्बर ब्रह्मचारि घरे। तुमि आर सदाशिव चलिवे सत्वरे।।४०।।
समय करिया सभे करिला विदाय । यथाकार्य्ये रहिलेन विश्वम्भर राय ।।४१।।
निरवधि कृष्णावेश प्रभुर शरीरे । महाविरक्तेर प्राय व्यवहार करे ।।४२।।
वुझिते ना पारे आई पुत्रेर चरित। तथापिह पुत्र देखि महा आनन्दित ।।४३।।

का यह महत्व है कि शिवजी उसको मस्तक पर धारण करते हैं। कारण कि शिवजी उस पादोदक तत्व को जानते हैं ।।२७।। उस चरणोदक के प्रभाव से वह स्थान जगत में पादोदक तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।२८।। पादोदक तीर्थ का नाम लेते हुए प्रभु के दोनों कमलनेत्र आँसुओं की झड़ी बहाने लगे ।।२९।। अन्त में प्रभु अत्यन्त अधीर हो गये और "कृष्ण" कहकर बहुत रोने लगे ।।३०।। वह पुष्प वन उनके महा प्रेमाश्रु जल से भर गया। प्रभु दीर्घश्वास छोड़ते हुए कृष्ण कृष्ण कहने लगे ।।३१।।उनका समस्त कलेवर पुलकावली से पूर्ण हो गया, वे स्थिर नहीं रह सके थर थर काँपने लगे ।।३२। श्रीमान् पण्डित आदि जितने भक्त थे सबने उनके कृष्ण प्रेम का अपूर्व क्रन्दन देखा ।।३३।। नैनों से चारों ओर प्रेम की धारा बहने लगी मानो गङ्गाजी ने आकर अवतार लिया हो ।।३४।। सब मन ही मन सोचने लगे कि यह बड़े आश्चर्य की बात है, ऐसा हमने इनको कभी नहीं देखा ।।३५।। इन पर श्रीकृष्ण का अनुग्रह हुआ है अथवा तो इनको गया के मार्ग में क्या कुछ वैभव का दर्शन हुआ है ।।३६।। कुछ क्षणों के उपरान्त प्रभु की वाह्य दृष्टि हुई, अन्त में आपने सबके साथ सम्भाषण किया ।।३७।। प्रभु ने कहा—हे समस्त बन्धुओ ! आज सब अपने अपने घर जाओ, कल जहाँ आने के लिए कहूँ वहाँ आना ।।३८।। तुम सबके साथ कोई एक निर्जन स्थान में मैं अपना सारा दुख निवेदन करूँगा ।।३९।। कल सब शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घर सदाशिव केसाथ शीघ्र ही आना ।।४०।। इस प्रकार समय निश्चित करके प्रभु विश्वम्भर राय ने सबको विदा किया, और अपना कार्य करने लगे ।।४१।। प्रभु के शरीर में निरन्तर कृष्णावेश होने लगा, प्राय महाविरक्त की भाँति आप व्यवहार करने लगे ।।४२।। आई (शची माता) पुत्र का चरित्र नहीं समझ सकी तो भी पुत्र को देख कर अत्यन्त आनन्दित हुई ।।४३।। प्रभु कृष्ण-कृष्ण कहकर रोने लगे, आई ने देखा सारा आंगन अश्रु जल से पूर्ण हो गया ।।४४।। "कृष्ण कहाँ" "कृष्ण कहाँ" इस प्रकार ठाकुर प्रभु कहने लगे। कहते कहते उनका

कृष्ण कृष्ण वलि प्रभु करेन क्रन्दन । आई देखे पूर्ण हय सकल अङ्गन ॥४४॥
कोथा कृष्ण कोथा कृष्ण बोलये ठाकुर । वलिते वलिते प्रेम वाढ़ये प्रचुर ॥४५॥
किछु नाहि बुझे आई कौन वा कारण । कर जोड़े गेला आई गोविंद शरण ॥४६॥
आरम्भिला महाप्रभु आपन प्रकाश । अनन्त ब्रह्माण्डमय हईल उल्लास ॥४७॥
प्रेम वृष्टि करते प्रभुर शुभारम्भ । शुनि ध्वनि जाय जथा भागवत वृंद ॥४८॥
ये सब वैष्णव गैला प्रभु दरसने । समय करिला प्रभुर तास भार सने ॥४९॥
कालि शुक्लाम्बर घरे मिलिवा आसिया । मोर दुःख निवेदिव निभृते वसिया ॥५०॥
हरिषे पूर्णित हैला श्रीमान् पण्डित । देखिया अद्भुत प्रेम महाहरषित ॥५१॥
यथाकृत्य करि उषः काले साजि लैया । चलिला तुलिते पुष्प हरषित हैया ॥५२॥
एक झाड कुन्द आछे श्रीवास मन्दिरे । कुन्दरूपे किवा कल्पतरु अबतरे ॥५३॥
जतेक वैष्णब तोले तुलिते ना पारे । अक्षय अव्यय पुष्प सर्वक्षण धरे ॥५४॥
उषः काले उठिया जतेक भक्तगण । पुष्प तुलिवारे आसि हइला मिलन ॥५५॥
सभेइ तोलेन पुष्प कृष्ण कथा रसे । गदाधर गोपीनाथ रामाश्रि श्रीबास्ते ॥५६॥
हेनइ समये आसि श्रीमान् पंडित । हासिते हासिते तथा हईला विदित ॥५७।
सभेइ वोलेन आज वड देखि हास्य । श्रीमान् बोलेन आछे कारण अवश्य ॥५८॥
तथाहि कारणं बिना कार्य्यं न सम्भवेत् ॥५९॥
परम अद्भुत कथा महा असम्भव । निमाञि पण्डित हैला परम वैष्णव ॥६०॥

प्रेम अत्यन्त बढ़ चली ॥४५॥ मानो कुछ नहीं समझी कि उसका क्या कारण है ? वह हाथ जोड़ श्रीगोविंद की शरण में आई ॥४६॥ अब महाप्रभु ने अपने "प्रकाश" का शुभारम्भ किया, उससे अनन्त ब्रह्माण्ड में उल्लास छा गया ॥४७॥ प्रेम की वर्षा करने के लिये प्रभु का यह शुभारम्भ है । यह ध्वनि जहाँ सब भक्त वृन्द थे वहाँ भी पहुँची ॥४८॥ पहले जो सब वैष्णव लोग प्रभु के दर्शन करने गये थे और प्रभु ने जिनको समय दिया था कि कल सब शुक्लाम्बर जी के घर पर आकर मिलना, मैं एकान्त में बैठकर अपना दुःख निवेदन करूँगा । उन सबको बड़ा आनन्द हुआ ॥४९–५०॥ श्रीमान् पंडित जी हर्ष से परिपूर्ण हो गए, उनको प्रभु का अद्भुत प्रेम देखकर महान् आनन्द हुआ ॥५१॥ अपना प्रातः कर्म करके उषाकाल में फूल उतारने के लिए डलिया ले बड़े प्रसन्न होकर चले ॥५२॥ श्रीवास पण्डितजी के मण्दिर में एक कुंद चमेली का पौधा था, कुन्द रूप में वह मानो कल्पलता का ही अवतार था ॥५३॥ कारण कि जितने वैष्णव जन थे वे सब उसमें फूल उतारते थे किन्तु शेष नहीं कर पाते थे । उसमें वह सर्वदा पुष्पों का अक्षय अव्यय रूप में धारण करता था ॥५४॥ सब भक्तगण का प्रातःकाल उठकर पुष्प चयन करने के लिए आने पर मिलन होता ॥५५॥ श्रीगदाधर श्री गोपीनाथ, श्रीरामाञि पण्डित एवं श्रीवास आदि सब भक्तगण परस्पर आनन्दपूर्वक कृष्णचर्चा करते हुए, पुष्प चयन करने लगे ।५६। उसी समय श्रीमान् पण्डित तहाँ पर आये और बहुत हँसने के कारण उनका आना सबको विदित हुआ ॥५७। जब सब भक्त जन उनसे पूछने लगे कि आज तो आपको बहुत हँसते देख रहे हैं, पण्डित बोले कारण तो अवश्य है ॥५८॥ जैसा कि कहा गया है, कारण के बिना कार्य नहीं होता ॥५९॥ एक बड़ी अद्भुत, बड़ी असम्भव सी बात हुई है—निमाई पण्डित वैष्णव हो गए । जब मैंने यह सुना कि वह गया से सकुशल आ गए हैं तो मैं कल शाम को उनसे वार्तालाप करने के लिए गया ॥६०–६१॥ तो मैंने उनका समस्त वार्तालाप परम वैराग्य-

गया हैते आइलेन सकल कुशले । शुनि आमि सम्भाषिते गेलाङ विकाले ॥६१॥
परम विरक्त रूप सकल सम्भाष । तिलार्द्धेक औद्धत्येर नाहिक प्रकाश ॥६२॥
निभृते जे लागिलेन कहिते कृष्ण-कथा । जे जे स्थाने देखिलेन जे अपूर्व्व जथा ॥६३॥
पाद पद्म तीर्थेर लइते मात्र नाम । नयनेर जले सब पूर्ण हैल स्थान ॥६४॥
सर्व्व अङ्ग महा-कम्प पुलके पूर्णित । हा कृष्ण वलिया मात्र पड़िला भूमित ॥६५॥
सर्व्व अङ्गे धातु नाइ हइला मूर्छित । कथो क्षणे वाह्ज दृष्टि हैला चमकित ॥६६॥
शेषे जे वलिया कृष्ण कान्दिते लागिला । हेन बुझि गङ्गादेवी आसिया मिलिला ॥६७॥
जे भक्ति देखिल आम ताहान नयने । ताहाने मनुष्य बुद्धि नाहि आर मने ॥६८॥
सवे एइ कथा कहिलेन वाह्ज हैले । "शुक्लाम्बर-गृहे कालि मिलिवा सकाले ॥६९॥
तुमि आर सदाशिव पण्डित मुरारि । तोमा सभा स्थाने दुःख करिव गोहारि ॥७०॥
परम मङ्गल एइ कहिलाङ कथा । अवश्य कारण इथे आछये सर्व्वथा ॥७१॥
श्रीमानेर वचन शुनिञा भक्त गण । हरि वलि महाध्वनि करिला तखन ॥७२॥
प्रथमेइ वलिलेन श्रीवास उदार । गोत्र वढ़ाउक् कृष्ण ! आमा सभाकार ॥७३॥
आनन्दे करेन सभे कृष्ण सङ्कथन । उठिल मधुर कृष्ण-श्रवण कीर्तन ।७४॥
तथास्तु तथास्तु बोले भागवत गण । सभेइ भजुक कृष्ण चन्द्रेर चरण ।७५॥
हेन मते पुष्प तुलि सर्व्व-भक्त गण । पूजा करिवारे सभे करिला गमन ॥७६॥
श्रीमान् पण्डित चलिलेन गङ्गा तीरे । शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी ताहान मन्दिरे ।७७।
शुनिजा ए सब कथा प्रभु गदाधर । शुक्लाम्बर गृह प्रति चलिला सत्वर ॥७८॥

मय पाया । उद्दण्डता तो उनमें आधा तिल भर भी नहीं रही ॥ ६२ ॥ उन्होंने जहाँ जहाँ जो-जो अद्भुत बातें देखी थीं, वह सब श्री कृष्ण-कथा, वे एकान्त में कहने लगे ॥ ६३ ॥ कहते कहते पाद-पद्म तीर्थ का नाम मात्र लेते ही उनके नेत्रों के जल से वह स्थान सब भर गया ॥ ६४ ॥ और उनका सब शरीर महा कम्प और रोमाञ्च से पूर्ण हो गया और केवल हा कृष्ण "मात्र कहकर वे भूमि पर गिर पड़े ।६५॥ शरीर में कहीं चेतनता न रही—वे मूर्च्छित हो गये । कुछ देर में वाह्य दृष्टि हुई तो चमक उठे ॥ ६६ ॥ और फिर "कृष्ण कृष्ण" कहकर जो रोना आरम्भ किया, तो (उनकी अश्रु-धाराओं से) ऐसा लगता था कि गंगा देवी ही आकर मिल गई हो ॥ ६७ ॥ मैंने उनके नेत्रों में जो भक्ति देखी, उससे मेरे मन में अब उनके प्रति मनुष्य बुद्धि नहीं रही ।। ६८ ॥ पश्चात् वाह्य ज्ञान होने पर वे केवल इतना ही बोले कि 'कल शुक्लाम्बर के घर में तुम सब आकर मिलना" ॥ ६९ ॥ "तुम, सदा शिव पण्डित, और मुरारि गुप्त (आकर मिलना) तुम सबों के निकट मैं अपना दुःख सुनाऊँगा" ॥ ७० ॥ यह मैंने परम मङ्गल सम्वाद सुनाया है। इसके भीतर अवश्य ही कोई कारण है ॥ ७१ ॥ श्रीमान के वचन को सुनकर सब भक्त लोग 'हरि बोल' की महा ध्वनि करने लगे ॥ ७२ ॥ उदार श्रीदास जी सबसे पहले ही बोल उठे "श्रीकृष्ण हमारा गोत्र (स्व जाति) बढ़ावें" ॥ ७३ ॥ "हम लोगों के गोत्र की वृद्धि हो ।" सब भक्त लोग बड़े आनन्द में परस्पर में श्रीकृष्ण-चर्चा करने लगे । मधुर कृष्ण-कथा कीर्तन और श्रवण होने लगा ॥ ७४ ॥ भक्त गण—' ऐसा ही होवे' "ऐसा ही होवे" "सभी श्रीकृष्ण चन्द्र के चरणों का भजन करें" कहने लगे ॥ ७५ ॥ इस प्रकार सब भक्त लोग फूल चुन-चुन कर, देव-पूजा करने के लिये अपने अपने घर चले गये ॥ ७६ ॥ इधर श्रीमान पण्डित गंगा तट को, जहाँ शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी की कुटिया थी, चले ॥ ७७ ॥ यह सब बातें सुनकर गदा-

कि आख्यान कृष्णेर कहेन शुनि गिया। थाकिलेन शुक्लाम्बर गृहे लुकाइया ॥७९॥
सदाशिव मुरारि, श्रीमान शुक्लाम्बर। मिलिला सकल जत प्रेम अनुचर ॥८०॥
हेनइ समये विश्वम्भर द्विजराज। आसिया मिलिला जथा वैष्णव समाज ॥८१॥
परम आदरे सभे करेन सम्भाष। प्रभुर नाहिक बाह्ज दृष्टिर प्रकाश ॥८२॥
देखिलेन मात्र प्रभु भागवत गण। पढ़िते लागिला श्लोक भक्तिर लक्षण ॥८३॥
पाइलुँ ईश्वर मोर कोन दिगे गेला। एत वलि स्तम्भ कोले करिया पड़िला ॥८४॥
भाङ्गिल गृहेर स्तम्भ प्रभुर आवेशे। कोथा कृष्ण वलि पड़िलेन मुक्त केशे ॥८५॥
प्रभु पड़िलेन मात्र "हा कृष्ण" वलिया। भक्त सब पड़िलेन ढलिया ढलिया ॥८६॥
गृहेर भितरे मूर्च्छा गेला गदाधर। केवा कान् दिगे पड़े नाहि परापर ॥८७॥
सभेइ हइला प्रेम आनन्दे मूर्च्छित। हासेन जाह्नवी देवी देखिया विस्मित ॥८८॥
कथो क्षणे बाह्ज प्रकाशिया विश्वम्भर। कृष्ण वलि कान्दिते लागिला बहुतर ॥८९॥
कृष्णरे प्रभु रे मोर कोन् दिगे गेला। एतवलि प्रभु पुन भूमि ते पड़िला ॥९०॥
कृष्ण प्रेमे कान्दे प्रभु श्री शची नन्दन। चतुर्दिगे वेढ़ि कान्दे भागवत गण ॥९१॥
आछाड़ेर समुच्चय नाहिक श्रीअङ्गे। ना जाने ठाकुर किछु निज प्रेम रङ्गे ॥९२॥
उठिल परमानन्द कृष्णेर क्रन्दन। प्रेममय हैल शुक्लाम्बरेर भवन ॥९३॥
स्थिर हइया क्षणेके वसिला विश्वम्भर। तथापि आनन्द धारा बहे निरन्तर ॥९४॥
प्रभु बोले कोन जन गृहेर भितर। ब्रह्मचारी बोलेन "तोमार गदाधर" ॥९५॥

धर प्रभु भी शीघ्रता से शुक्लाम्बर के घर की ओर चल पड़े ॥ ७८ ॥ "श्रीकृष्ण की क्या चरित कहते हैं-जाकर सुनूँ तो" ऐसा विचार कर वे शुक्लाम्बर के घर में जाकर छिप बैठे ॥ ७९ ॥ पश्चात् सदाशिव, मुरारि गुप्त, श्रीमान्, आदि प्रेमी भक्त जन सब आकर शुक्लाम्बर जी से मिले ॥ ८० ॥ ऐसे समय में द्विजराज विश्वम्भर भी वैष्णव-समाज से आ मिले ॥ ८१ ॥ भक्त लोग सब बड़े आदर से उनसे बोलते हैं परन्तु प्रभु की इस समय वाह्य दृष्टि नहीं है ॥ ८२ ॥ भक्तों को देखते ही प्रभु भक्ति-लक्षण सूचक श्लोकों को पढ़ने लगे ॥ ८३ ॥ पश्चात् "जो कृष्ण मुझे मिले थे वे किधर चले गये" कहते हुए एक खम्भा से लिपट कर गिर पड़े ॥ ८४ ॥ प्रभु के आवेश में आकर पकड़ने से घर का खम्भा टूट गया और "कृष्ण कहाँ" कह कर प्रभु गिर पड़े और उनके केश विखर गये ॥ ८५॥ "हा कृष्ण" कहकर प्रभु के गिरते ही भक्त लोग भी सब ढलक पड़े। गदाधर जी तो घर के भीतर मूर्च्छित हो गये। कौन किधर पड़ा है किसी को पता नहीं ॥ ८६-८७ ॥ सभी प्रेमानन्द में मूर्च्छित हो गये। यह देखकर गंगा देवी हँसने लगीं और अचरज मानने लगीं ॥ ८८ ॥ कुछ देर बाद वाह्य ज्ञान होवे पर श्री विश्वम्भर देव "कृष्ण कहाँ" कहकर बहुत ही ज्यादा रोने लगे ॥ ८९ ॥ "हे कृष्ण ! हे मेरे प्रभो !" किधर चले गये "ऐसा कहते हुए प्रभु फिर पृथ्वी पर गिर पड़े" ॥ ९० ॥ श्री कृष्ण प्रेम में प्रभु श्रीशचीनन्दन रोते हैं और उनको चारों ओर से घेर कर भक्त लोग रोते हैं ॥ ९१ ॥ प्रभु का शरीर कितने ही बार पछाड़ खा खाकर भूमि पर गिरा परन्तु प्रभु अपने प्रेम के आनन्द में कुछ भी नहीं जानते ॥ ९२॥ श्री कृष्ण प्रेम का परमानन्द मय क्रन्दन मच गया और शुक्लाम्बर का घर प्रेममय हो गया ॥ ९३ ॥ कुछ समय पश्चात् श्री विश्वम्भर प्रभु स्थिर होकर बैठे परन्तु फिर भी उनके नेत्रों से आनन्द-धाराएँ बह रही थीं ॥ ९४ ॥ प्रभु बोले-"घर भीतर कौन है ?" ब्रह्मचारी जी ने कहा—"तुम्हारा गदाधर" ॥ ९५ ॥ श्री गदाधर सिर नीचा करके रो रहे हैं-यह देखकर

हेट माथा करिया कान्देन गदाधर। देखिया सन्तोषे प्रभु बोले विश्वम्भर ।।९६।।
प्रभु बोले गदाधर तोमरा सुकृति। शिशु हैते कृष्णेते कीरला दृढ़ मति ।।९७।।
आमार से हेन जन्म गेल वृथा-रसे। पाइलु अमूल्य निधि गेल दिन दोषे ।।९८।।
एत वलि भूमि ते पड़िला विश्वम्भर। धूलाय लोटाय सर्व्व सेव्य कलेवर ।।९९।।
पुनः पुन हय वाह्ज पुनः पुन पड़े। दैवे रक्षा पाय नाक मुख से आछाड़े ।।१००।।
मेलिते ना पारे दुइ चक्षु प्रेम जले। सवे मात्र 'कृष्ण' 'कृष्ण' श्री वदने बोले ।।१०१।।
धरिया सभार गला कान्दे विश्वम्भर। "कृष्ण कोथा बन्धु सव वोलह सत्वर"।१०२।।
प्रभुर देखिया आर्ति कान्दे भक्त-गण। कारो मुखे आर किछु ना स्फुरे वचन ।।१०३।।
प्रभु बोले "मोर दुःख करह खण्डन। आनि देह मोरे नन्द गोपेर नन्दन" ।।१०४।।
एत वलि श्वास छाड़ि पुनः पुन कान्दे। लोटाय भूमिते केश, ताहो नाहि बान्धे ।।१०५।।
एइ सुखे सर्व्व दिन गेल क्षण प्राय। कथञ्चित सभा प्रति हइला विदाय ।।१०६।।
गदाधर सदा शिव श्रीमान् पण्डित। शुक्लाम्बर आदि सभे हइला विस्मित ।।१०७।।
जे जे देखिलेन प्रेम सभेइ अवाक्य। अपूर्व्व देखिया कारो देहे नाहि वाह्ज ।।१०८।।
वैष्णव समाजे सभे आइला हरिषे। आनुपूर्व्वि कहि लेन अशेष विशेषे ।।१०९।।
शुनिञा सकल महा भागवत गण। हरि हरि वलि सभे करेन क्रन्दन ।।११०।।
देखिया अपूर्व्व प्रेम सभेइ विस्मित। केहो बोले ईश्वर वा हइला विदित ।।१११।।
केहो बोले निमाञ्ञ पण्डित भाल हैले। पाषण्डोर मुण्ड छिण्डिवारे पारि हेले ।।११२।।

विश्वम्भर प्रभु सन्तुष्ट होकर बोले कि ।। ९६ ।। गदाधर तुम बड़े सुकृतिवान् हो जो कि बचपन से ही तुमने श्रीकृष्ण में दृढ़ मति कर रखी है ।। ९७ ।। "मेरा जन्म तो ऐसे ही व्यर्थ के सुख भोग में चला गया। एक अमूल्य निधि मिली थी परन्तु दुर्भाग्य के कारण उसे खो बैठा ।। ९८ ।। इतना कहकर श्री विश्वम्भर चन्द्र पृथ्वी पर गिर पड़े, और सबकी सेवा की वस्तु उनका वह शरीर धूल में लोटने लगा ।। ९९ ।। बार २ चेतते है और बार २ गिर पड़ते हैं। उन पछाड़ों से नाक-मुख दैव कृपा से ही बच जाते हैं ।। १००।। प्रेमाश्रु जल से भरे रहने के कारण आप दोनों नेत्र को खोल नहीं सकते, केवल मुख से "कृष्ण २" निरन्तर उच्चारण करते रहते हैं ।। १०१ ।। प्रभु विश्वंभर सबका गला पकड़-पकड़ कर रोते हैं और कहते हैं—"बन्धुओ ! शीघ्र बताओ सब, कृष्ण कहाँ है ?" ।। १०२ ।। प्रभु की आर्ति देखकर भक्त लोग रोते हैं। किसी के मुख से कोई वाक्य नहीं निकलता ।। १०३ ।। प्रभु फिर बोले—"मेरा दुःख दूर करो। नन्द गोप के पुत्र को ला दो मुझे" ।। १०४ ।। इतना कहकर लम्बी-लम्बी साँस लेते हैं, बार २ रोते हैं और केश पृथ्वी पर लोट रहे हैं, पर उन्हें बांधते नहीं ।। १०५ ।। इस सुख में सारा दिन एक क्षण के समान निकल गया। तब प्रभु जैसे तैसे सबसे विदा हुये ।। १०६ ।। श्रीगदाधर, सदाशिव, श्रीमान पण्डित श्री शुक्लाम्बर आदि सब भक्त बृन्द बड़े ही विस्मित हुये । १०७ ।। प्रभु के इस प्रेम भक्ति को जिस जिसने देखा, वे सभी अवाक् हो गये। इस अपूर्व प्रेम को देखकर किसी को अपनी देह की सुध नहीं रही ।। १०८।। सब बड़े प्रसन्न होते हुये वैष्णव-समाज में आये और आकर आगे-पीछे की सब बातें विशेष प्रकार से कह सुनाई ।। १०९ ।। सुनकर महा भागवतगण सब "हरि हरि बोल" कहते हुये रोने लगे ।। ११० ।। अपूर्व प्रेम की बात सुनकर सभी विस्मित हैं। कोई कहते—"कहीं ईश्वर तो नहीं प्रकट हो गये" ।। १११ ।। कोई कहते "निमाइ पण्डित के स्वस्थ होने पर हम पाखण्डियों के सिर सहज में ही तोड़ सकेंगे" ।। ११२ ।।

केहो बोले इइवेक कृष्णेर रहस्य। सर्व्वथा सन्देह नाहि जानिह अवश्य ॥११३॥
केहो बोले ईश्वर पुरीर सङ्ग हैते। किवा देखिलेन कृष्ण प्रकाश गया ते ॥११४॥
एइ मत आनन्दे सकल भक्त गण। नाना जन नाना मते करेन कथन ॥११५॥
सभे मिलि करिते लागिला आशीर्व्वाद। हउक हउक सत्य कृष्णेर प्रसाद ॥११६॥
आनन्दे लागिला सभे करिते कीर्तन। केहो गाय केहो नाचे करये क्रन्दन ॥११७॥
हेन मते भक्त-गण आछेन हरिषे। ठाकुर आविष्ट हइ आछेन भाव-रसे ॥११८॥
कथञ्चित वाह्य प्रकाशिया विश्वम्भर। चलि लेन गङ्गा दास पण्डितेर घर ॥११९॥
गुरुर करिला प्रभु चरण वन्दन। सम्भ्रमे उठिया गुरु कैला आलिङ्गन ॥१२०॥
गुरु बोले "धन्य बाप तोमार जोवन। पितृ कुल मातृ कुल करिले मोचन ॥१२१॥
तोमार पढ़ुया सब तोमार अवधि। पुँथि केहो नाहि मिले ब्रह्मा बोले जदि ॥१२२॥
एखने आइला तुमि सभार प्रकाश। कालि हैते पढ़ाइवा आजि जाह वास ॥१२३॥
गुरु नमस्करिया बलिला विश्वम्भर। चतुर्द्दिके पढ़ुया वेष्टित शशधर ॥१२४॥
आइलेन श्री मुकुन्द सञ्जयेर घरे। आसिया वसिला चण्डी मण्डप भितरे ॥१२५॥
गोष्ठी सह मुकुन्द सज्जय पुण्यवन्त। जे हइल आनन्द ताहार नाहि अन्त ॥१२६॥
पुरुषोत्तम सज्जयेरे प्रभु कैला कोले। सिञ्चि लेन अङ्ग तान नयनेर जले ॥१२७॥
जय कार दिते लागि लेन नारीगण। परम आनन्द हैल मुकुन्द भवन ॥१२८॥
शुभ दृष्टि पात प्रभु करि सभा कारे। आइलेन महाप्रभु आपन मन्दिरे ॥१२९॥
वसिला आसिया विष्णु गृहेर दुयारे। प्रीत करि विदाय दिलेन सभा कारे ॥१३०॥

कोई कहते, "इसमें श्रीकृष्ण का कोई रहस्य गुप्त है—यह निश्चय जानलो। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ११३ ॥ कोई कहते—"ईश्वरपुरी के सङ्ग से यह प्रेम भक्ति इनको प्राप्त हुई है, अथवा तो इनको गया में श्रीकृष्ण के दर्शन हुये हैं" ॥ ११४ ॥ इस प्रकार आनन्द में सब भक्त लोग नाना प्रकार को बातें करने लगे ॥ ११५ ॥ और सब मिल करके आशीर्वाद करने लगे, "श्रीकृष्ण की कृपा सत्य हो" ॥ ११६ ॥ फिर आनन्द में सब कीर्तन करने लगे—"कोई गाते हैं, कोई नाचते हैं तो कोई रोते हैं ॥ ११७ ॥ इस प्रकार सब भक्त लोग बड़े हर्ष में हैं, उधर प्रभु विश्वम्भर भावरस में आविष्ट हैं ॥ ११८ ॥ जब उनको कुछ बाह्य ज्ञान हुआ तो वे गंगादास पण्डित के घर गये ॥ ११९ ॥ (जाकर) प्रभु ने गुरुदेव की चरण वन्दना की। श्रीगुरु ने भी झट से उठकर उनको आलिंगन किया ॥ १२० ॥ और बोले—"वत्स ! तुम्हारा जीवन धन्य है", तुमने अपने पितृकुल और मातृ-कुल का उद्धार कर दिया ॥ १२१॥ तुम्हारे विद्यार्थी सब तुम्हारी ही आशा में बैठे हैं। तुम्हारे अतिरिक्त यदि स्वयं ब्रह्मा भी आकर उनसे पढ़ने को कहें तो भी वे पुस्तक नहीं खोलगे ॥ १२२ ॥ अब तुम आ गये हो, सब को आनन्द हुआ है। अब कल से पढ़ाना। आज घर जाओ ॥ १२३ ॥ गुरुजी को नमस्कार करके श्री विश्वम्भर चले—छात्रमण्डिली से परिवेष्टित चन्द्रमा की भाँति ॥ १२४ ॥ प्रभु के गया से लौट आने से पुन्यवान मुकुन्द संजय को अपने परिवार समेत जो आनन्द हुआ उसकी सीमा नहीं है। प्रभु ने पहले पुरुषोत्तम संजय को हृदय से लगाया और अपने अश्रुजल से उनका सारा शरीर भिगा दिया ॥१२६ ॥१२७॥ सब महिलाये जय जयकार करने लगीं। मुकुन्द संजय के घर में परम आनन्द छा गया ॥ १२८ ॥ महाप्रभु ने सबके प्रति शुभ दृष्टिपात करते हुये अपने घर को चले आये ॥ १२९॥ और विष्णुमन्दिर के द्वार पर आकर बैठ गये फिर सबको प्रीतिपूर्वक बिदा किया ॥१३०॥

जेइ जन आइसे प्रभुरे सम्भाषिते। प्रभुर चरित्र के हो ना पारे वुझिते ॥१३१॥
पूर्व विद्या-औद्धत्य ना देखे कोन जन। परम विरक्त प्राय थाके सर्व्व क्षण ॥१३२॥
पुत्रे र चरित्र शची किछइ ना बुझे। पुत्रे र मङ्गल लागि गङ्गा विष्णु पूजे ॥१३३॥
"स्वामी निला कृष्ण ! मोर निला पुत्र गण। अवशिष्ट सकले आछये एक जन ॥१३४॥
अनाथिनी मोरे कृष्ण ! एइ देह वर। सुस्थ चित्ते गृहे मोर रहु विश्वम्भर" ॥१३५॥
लक्ष्मी रे आनिञा पुत्र समीपे वसाय। दृष्टि पात करियाओ प्रभु नाहि चाय ॥१३६॥
निरवधि श्लोक पढ़ि करये क्रन्दन। "कोथा कृष्ण" 'कोथा कृष्ण' बोले अनुक्षण ॥१३७॥
कखनो कखनो जेवा हुङ्कार करये। डरे पलायेन लक्ष्मी शची पाय भये ॥१३८॥
रात्रे निद्रा नाहि जान प्रभु कृष्ण रसे। विरहे ना पाय स्वास्थ्य, उठे पड़े वैसे ॥१३९॥
भिन्न जन देखिले करेन सम्वरन। ऊषः काले गङ्गा स्नाने करये गमन ॥१४०॥
आइलेन मात्र प्रभु करि गङ्गा स्नान। पढुयार वर्ग आसि हैला उपस्थान ॥ १४१॥
कृष्ण बिनु ठाकुरेर ना आइसे वदने। पढ़ुया सकल इहा किछुइ ना जाने ॥१४२॥
अनुरोधे प्रभु वसिलेन पढ़ाइते। पढ़ुया सभार स्थाने प्रकाश करिते ॥१४३॥
हरि वलि पुंथि मेलिलेन शिष्य गण। शुनिञा आनन्द हैला श्री शची नन्दन ॥१४४॥
बाह्य ना हि प्रभुर शुनिञा हरि ध्वनि। शुभ दृष्टि सभारे करिला द्विज मणि ॥१४५॥
आविष्ट हइया प्रभु करये व्याख्यान। सूत्र वृत्ति टीकाय सकले हरि नाम ॥१४६॥

जो कोई भी प्रभु से मिलने के लिये आता है वह प्रभु के चरित्र को समझ नहीं पाता है ॥ १३१ ॥ कोई भी उनमें पहले की सी उद्दण्डता नहीं देख पाता है, प्रभु अब तो सब समय परम विरक्त की तरह रहते हैं ॥ १३२ ॥ श्री शची माता पुत्र के चरित्र को कुछ भी समझ नहीं पाती हैं, वे पुत्र को मङ्गल के लिये गङ्गा और विष्णु भगवान् को पूजा करने लगीं। १३३ ॥ वे प्रार्थना किया करतीं कि "हे कृष्ण ! आपने मेरा स्वामी ले लिया—पुत्र भी ले लिये, अब तो केवल एक ही बच रहा है। हे कृष्ण ! मुझ अनाथिनी को तो यही वर दें कि मेरा विश्वम्भर स्वस्थ चित्त से घर में रह आवे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ वे कभी श्री विष्णु प्रिया जी को लाकर पुत्र के पास बैठातीं परन्तु प्रभु उनकी ओर दृष्टि उठा करके भी नहीं देखते, ॥ १३६॥ बस निरन्तर श्लोक बोलते हुए रोते रहते और क्षण २ में यही कहते कि "कृष्ण कहाँ हैं" "कहाँ हैं कृष्ण ॥ १३७ ॥ कभी २ आप जो हुँकार छोड़ते तो डर के मारे विष्णु प्रिया जी उठ भागतीं और माता भय-भीत हो उठतीं ॥ १३८ ॥ प्रभु कृष्ण रस में लोन रात्रि में सोते भी नहीं, विरह के मारे अस्थिर रहते उठते, गिर पड़ते, बैठ जाते हैं ॥ १३९ ॥ प्रभु बाहर वालों को देखने पर अपने भाव को दबा लेते हैं। उषा काल होते ही गङ्गा-स्नान को चले जाते हैं ॥ १४० ॥ गङ्गा स्नान करके आते ही विद्यार्थियों की टोली आ जाती है ॥ १४१ ॥ (परन्तु) प्रभु के मुख पर "कृष्ण" नाम छोड़ और कुछ आता ही नहीं—विद्यार्थी लोग यह कुछ भी समझ न पाते ॥ १४२ ॥ विद्यार्थियों के अनुरोध पर प्रभु पढ़ाने बैठे (पढ़ाने क्या बैठे) विद्यार्थियों के निकट अपना प्रकाश करने बैठे। १४३ ॥ "हरि बोल" कहकर शिष्यों ने पुस्तकें खोलीं। हरि ध्वनि सुनकर प्रभु को बड़ा आनन्द हुआ ॥ १४४ ॥ हरि ध्वनि सुनकर प्रभु का बाह्य ज्ञान जाता रहा और द्विज मणि प्रभु ने सबके ऊपर एक शुभ दृष्टि डाली ॥ १४५ ॥ और आवेश में आकर व्याख्या करने लगे, सूत्र, वृत्ति, टीका में सर्वत्र 'हरि' नाम ही सिद्ध करने लगे ॥ १४६ ॥ प्रभु बोले कि—"एक कृष्ण" नाम ही सब काल में सत्य है। समस्त शास्त्र एक कृष्ण को छोड़ और कुछ नहीं कहते हैं

प्रभु बोले सर्व्व काल सत्य कृष्ण नाम। सर्व्व शास्त्रे कृष्ण वइ ना बोलये आन ॥१४७॥
कर्त्ता हर्त्ता पालयिता कृष्ण से ईश्वर। अज भव आदि जत कृष्णेर किङ्कर ॥१४८॥
कृष्णेर चरण छाड़ि जे आर बाखाने। व्यर्थ जन्म जाय तार असत्य वचने ॥१४९॥
आगम वेदान्त आदि जत दरशन। सर्व्व शास्त्रे कहे कृष्ण-पदे भक्ति-धन ॥१५०॥
मुग्ध सब अध्यापक कृष्णेर मायाय। छाड़िया कृष्णेर भक्ति अन्य पथे जाय ॥१५१॥
करुणा सागर कृष्ण जगत जीवन। सेवक वत्सल नन्द गोपेर नन्दन ॥१५२॥
हेन कृष्ण नामे जार नाहि रति मति। पढ़ियाओ सर्व्व शास्त्र ताहार दुर्गति ॥१५३॥
दरिद्र अधम जदि लय कृष्ण नाम। सर्व्व दोष थाकिलेओ जाइ कृष्ण-धाम ॥१५४॥
एइ मत सकल शास्त्रेर अभिप्राय। इहाते सन्देह जार सेइ दुःख पाय ॥१५५॥
कृष्णेर भजन छाड़ि जे शास्त्र वाखाने। से अधम कभू शास्त्र-मर्म्म नाहि जाने ॥१५६॥
शास्त्रेर ना जाने मर्म्म अध्यापना करे। गर्द भेर प्राय मात्र शास्त्र वहि मरे ॥१५७॥
पढ़िया शुनिञा लोक गेल छार खारे। कृष्ण महा महोत्सव वञ्चित ताहारे ॥१५८॥
पूतना रे जे प्रभु करिला मुक्ति दान। हेन कृष्ण छाड़ि लोक करे अन्य ध्यान ॥१५९॥
अघासुर हेन पापी जे कैल मोचन। कोन सुखे छाड़े लोक ताहार कीर्त्तन ॥१६०॥
जे कृष्णेर नामे हय जगत पवित्र। ना वोले दुःखित जीव ताहार चरित्र ॥१६१॥
जे कृष्णेर महोत्सवे ब्रह्मादि विह्वल। ताहा छाड़ि नृत्य गीत करये मङ्गल ॥१६२॥
अजामिल उद्धारिल जे कृष्णेर नामे। धन-कुल-विद्या मदे ताहा नाहि जाने ॥१६३॥

॥ १४७ ॥ "वे कृष्ण ही ईश्वर हैं, सबके कर्ता, हर्ता एवं पालक हैं। ब्रह्मा, शिव आदि सब श्रीकृष्ण के किंकर हैं ॥ १४८ ॥ जो व्यक्ति श्रीकृष्ण चरण के अतिरिक्त और कुछ बखानता है, उस असत्य वचन से उसका जन्म व्यर्थ चला जाता है ॥ १४९ ॥ "आराम (तन्त्र), वेदान्त आदि सब दर्शन शास्त्र श्री कृष्ण-चरण में भक्ति धन को ही प्रतिपादन करते हैं ॥ १५० ॥ अतएव जो कृष्ण की भक्ति छोड़कर अन्य पथ में चल रहे हैं वे सब अध्यापक गण श्री कृष्ण की माया से मोहित हैं ॥ १५१ ॥ "नन्द-नन्दन श्री कृष्ण करुणा-सागर हैं जगत् के जीवन हैं,और भक्त वत्सल हैं ॥ १५२ ॥ ऐसे श्री कृष्ण के नाम में जिसकी रति-मति नहीं है, वह सब शास्त्र पढ़ करके भी दुर्गति को ही प्राप्त होता है ॥ १५३ ॥ परन्तु दरिद्र और अधम भी यदि 'कृष्ण' नाम लेवें तो उसमें सब दोष होने पर भी वह श्रीकृष्ण के धाम को जाता है ॥ १५४ ॥ यही सब शास्त्रों का अभिप्राय है ॥ इसमें जिसे सन्देह है वही दुःख पाता है ॥ १५५ ॥ "जो शास्त्र की व्याख्या श्रीकृष्ण-भजन के अतिरिक्त कुछ और करता है वह अधम कभी भी शास्त्र के मर्म को नहीं जानता है ॥ १५६ ॥ और विना मर्म जाने जो शास्त्र पढ़ाता है वह गदहा की तरह शास्त्र का बोझा ढोता हुआ मरता है ॥ १५७ ॥ "लोग पढ़-लिख करके भी नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। वे श्रीकृष्ण महा महोत्सव से वंचित हैं ॥ १५८ ॥ जिस प्रभु ने पूतना को भी मुक्ति दे दी ऐसे श्रीकृष्ण को छोड़कर लोग दूसरे का ध्यान करते हैं ॥ १५९ ॥ "जिन श्रीकृष्ण ने अघासुर जैसे पापी का भी उद्धार कर दिया, उनका कीर्तन फिर लोग, किस सुख के लिये छोड़ देते हैं ॥ १६० ॥ जिन श्रीकृष्ण के नाम से ही जगत् पवित्र हो जाता है, ये जीव दुःखी होते हुए भी उनका नाम नहीं लेते ॥ १६१ ॥ "जिन श्रीकृष्ण के महोत्सव में ब्रह्मा आदि देव-गण भी विह्वल हो जाते हैं, लोग उसे छोड़कर और नाच-गान में मङ्गल समझते हैं ॥ १६२ ॥ जिन श्री कृष्ण के नाम से अजामिल का उद्धार हो गया, लोग धन, कुल और विद्या के मद में उस नाम को ही नहीं

शुन भाइ सब सत्य आमार वचन। भजह अमूल्य कृष्ण पाद-पद्म-धन ॥१६४॥
जे चरण सेविते लक्ष्मीर अभिलाष। जे चरण सेविया शङ्कर शुद्ध दास ॥१६५॥
जे चरण हइते जाह्नवी परकाश। हेन पाद पद्मे भाइ सभे हओ दास ॥१६६॥
देखि कार शक्ति आछे एइ नवद्वीपे। खण्डुक आमार व्याख्या आमार समीपे ॥१६७॥
परं ब्रह्म विश्वम्भर शब्द मूर्त्ति मय। जे शब्दे जे वाखानेन सेइ सत्य हय ॥१६८॥
मोहित पढ़ुया सब शुने एक मने। प्रभुओ विह्वल हैया सत्य से वाखाने ॥१६९॥
सहजेइ शब्द मात्रे कृष्ण-सत्य कहे। ईश्वर जे वाखानिव किछु चित्र नहे ॥१७०॥
क्षणेके हइला बाह्ज दृष्टि विश्वम्भर। लज्जित हइया किछु कहये उत्तर। १७१॥
"आजि आमि कोन रूप सूत्र वाखानिल"। पढ़ुया सकल बोले "किछु ना वुझिल ॥१७२॥
जत किछु शब्दे वाखानह कृष्ण मात्र। वुझिते तोमार व्याख्या केवा आछे पात्र ॥१७३॥
हासि बोले विश्वम्भर शुन सब भाइ। पुँथि बान्ध आजि चल गङ्गा स्नाने जाइ ॥१७४॥
वान्धिला पुस्तक सभे प्रभुर वचने। गङ्गा-स्नाने चलिलेन विश्वम्भर सने ॥१७५॥
गङ्गा-जले केलि करे प्रभु विश्वम्भर। समुद्रेर माझे जेन पूर्ण शशधर ॥१७६॥
गङ्गा जले केलि करे विश्वम्भर राय। परम सुकृति सब देखे नदियाय ॥१७७॥
ब्रह्मादिर अभिलाष जे रूप देखिते। हेन प्रभु विप्र रूपे खेले जलेते ॥१७८॥
गङ्गा घाटे स्नान करे जत सब जन। सभेइ चाहेन गौर चन्द्रेर बदन ॥१७९॥

जानते ॥ १६३ ॥ "हे भाइयो ! सुनो सब मेरे सत्य वचन को—श्रीकृष्ण के अमूल्य चरण-कमल-धन को भजो ॥ १६४ ॥ जिन श्री चरणों की सेवा के लिये लक्ष्मी जी नित्य अभिलाषा करती हैं, और जिन श्री चरणों का सेवन करके शिव जी शुद्ध दास हुए ॥ १६५ ॥ "जिन श्री चरणों से गङ्गाजी प्रकट हुई हैं, हे भाइयो ! उन चरण कमलों के सब दास बनो ॥ १६६ ॥ देखूँ इस नवद्वीप में किसकी शक्ति है जो मेरी इस व्याख्या को मेरे सन्मुख खण्डन तो करे" ॥ १६७ ॥ श्री विश्वम्भर चन्द्र परंब्रह्म है, सब शब्दों के परमाश्रय हैं। वे जिस शब्द की जो भी व्याख्या करते हैं, वही सत्य होती है ॥ १६८ ॥ विद्यार्थी वृन्द मोहित हुए एक मन से सुन रहे हैं और प्रभु भी प्रेम में विह्वल होकर सत्य का बखान कर रहे हैं ॥१६९॥ सहज में ही प्रत्येक शब्द परम सत्य श्री कृष्ण को ही बताते हैं। अतएव प्रभु ने जो ऐसी व्याख्या की तो कोई आश्चर्य नहीं ॥ १७० ॥ कुछ देर में श्री विश्वम्भर को वाह्य ज्ञान हो आया और तब वे लज्जित होकर विद्यार्थियों से कुछ कहने लगे ॥ १७१ ॥ वे बोले–"आज मैंने सूत्रों की कैसी व्याख्या की ? विद्यार्थी सब बोले–"हम तो कुछ नहीं समझे ॥ १७२॥ आपने तो एक २ शब्द में कृष्ण ही कृष्ण का बखान किया। आपकी इस व्याख्या को समझने वाला यहाँ कौन पात्र है भला ?" ॥ १७३ ॥ तब विश्वम्भर प्रभु हँसकर बोले–"भाइयो ! सुनो सब। पोथी बाँध लो आज, और चलो गङ्गा–स्नान को चलें" ॥ १७४ ॥ प्रभु के बचन के अनुसार सब ने पुस्तकें बाँध लीं और श्री विश्वम्भर के साथ गङ्गा स्नान को चल पड़े ॥ १७५ ॥ प्रभु विश्वम्भर गङ्गा–जल में ऐसे क्रीड़ा कर रहे हैं जैसे समुद्र के बीच पूर्ण चन्द्रमा क्रीडा करता है ॥१७६॥ श्री विश्वम्भर राय गङ्गा–जल में विहार कर रहे हैं और नदिया के परम सुकृति शाली जन सब देख रहे हैं ॥ १७७ ॥ ब्रह्मा आदि भी जिस रूप के दर्शन की अभिलाषा करते हैं,ऐसे प्रभु विप्र रूप से जल में विहार कर रहे हैं ॥ १७८ ॥ गङ्गा के घाट पर जितने लोग स्नान कर रहे हैं, वे सब श्री गौरचन्द्र के मुख की ओर देख रहे हैं ॥ १७९ ॥ सब लोग परस्पर में कहते हैं "उन माता–पिता को धन्य है कि जिनके ऐसे

अन्योऽन्ये सर्व्व जने कहये वचन। "धन्य माता पिता जार एहेन नन्दन" ॥१८०।
गङ्गार बाढ़िल प्रभु-परशे उल्लास। आनन्दे करये देवी तरङ्ग प्रकाश ॥१८१॥
तरङ्गेर छले नृत्य करये जाह्नवी। अनन्त ब्रह्माण्ड जार पद जुग सेवी ॥१८२॥
चतुर्द्दिके प्रभु रे वेढ़िया जह्नु-सुता। तरङ्गेर छले जल देय अलक्षिता ॥१८३॥
वेदे मात्र ए सब लीलार मर्म्म जाने। किछु शेषे व्यक्त हवे सकल पुराणे ॥१८४॥
स्नान करि गृहे आइलेन विश्वम्भर। चलिला पढ़ुया वर्ग जथा जार घर ॥१८५॥
वस्त्र परिवर्त करि धुइला चरण। तुलसी रे जल दिया करिला सेचन ॥१८६॥
यथा विधि करि प्रभु गोविन्द पूजन। आसिया वसिला गृहे करिते भोजन ॥१८७॥
तुलसीर मञ्जरी सहित दिव्य अन्न। माये आनि सन्मुखे करिला उपसन्न ॥१८८॥
विश्ववसेनेरे प्रभु करि निवेदन। अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ करेन भोजन ॥१८९॥
सन्मुखे वसिला शची जगतेर माता। ग्रहेर भितरे देखे लक्ष्मी पतिव्रता ॥१९०॥
माये बोले "आजि बाप! कि पुँथि पढ़िला। काहार सहित किवा कन्दल करिला ॥१९१॥
प्रभु बोले "आजि पढ़िलाङ कृष्ण नाम। सत्य कृष्ण-चरण-कमल गुण-धाम ॥१९२॥
सत्य कृष्ण-नाम-गुण-श्रवण-कीर्तन। सत्य कृष्ण चन्द्रेर सेवक जे जे जन ॥१९३॥
से-इ शास्त्र सत्य कृष्ण-भक्ति कहे जाय। अन्यथा हइले शास्त्र पाषण्डत्वपाय ॥१९४॥
यस्मिन् शास्त्रे पुराणे वा हरि भक्तिर्न दृश्यते। श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ।१९५।
चण्डाल चण्डाल नहे-जदि कृष्ण बोले। विप्र नहे विप्र जदि असत्पथे चले ॥१९६॥

यह पुत्र है" ॥ १८० ॥ प्रभु के स्पर्श से गङ्गा देवी उल्लास को प्राप्त हुई और आनन्द में तरंगों को प्रकट करने लगीं ॥ १८१ ॥ अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके चरण युगल की सेवा करते हैं वह गङ्गा देवी तरङ्गों के बहाने से नृत्य कर रही हैं ॥ १८२ ॥ प्रभु को चारों ओर से घेर कर तरंगों के मिष से गङ्गा देवी अलक्षित रूप से प्रभु पर जल उछाल रही हैं ॥ १८३ ॥ एक वेद ही इस लीला का मर्म जानते हैं, कालान्तर में सब पुराणों में भी ये प्रकाशित होंगी ॥ १८४ ॥ प्रभु विश्वम्भर स्नान करके घर आये और विद्यार्थी गण अपने २ घर को गये ॥ १८५ ॥ घर आकर प्रभु ने वस्त्र बदल कर चरण धोये, फिर तुलसी जी पर जल चढ़ाया ॥ १८६ ॥ तब यथा विधि–श्री गोविन्द–पूजन करके दूसरे कमरे में भोजन के लिये जा बैठे ॥ १८७ ॥ माता जी ने तुलसी मंजरी पड़ा हुआ सुन्दर भात प्रभु के सन्मुख लाकर रक्खा ॥ १८८ ॥ विश्ववसेन् भगवान् को निवेदन करके अनन्त ब्रह्माण्डों के नाथ विश्वम्भर प्रभु भोजन करने लगे ॥ १८९ ॥ जगन्माता शची देवी सामने बैठीं और घर भीतर से पतिव्रता श्री विष्णु प्रिया जी देखने लगीं ॥ १९० ॥ माता जी बोलीं–"लाल ! आज तुमने क्या पढ़ा ? और किस किस के साथ कलह मचाया ?" ॥ १९१ ॥ प्रभु बोले–"आज मैंने कृष्ण नाम पढ़ा। गुण धाम श्रीकृष्ण-चरण-कमल ही सत्य है ॥ १९२ ॥ श्रीकृष्ण नाम सत्य है, श्रीकृष्ण–गुण सत्य है, श्रीकृष्ण-श्रवण-कीर्तन सत्य है, और सत्य हैं श्रीकृष्ण के सब सेवक वृन्द ॥१९३॥ "और शास्त्र वही सत्य है जो श्री कृष्ण भक्ति का वर्णन करे। अन्यथा होने पर वह शास्त्र पाषण्ड ही है ॥ १९४ ॥ जैसा कि जैमिनी महाभारत में अश्वमेध पर्व में लिखा है कि–' जिस शास्त्र एवं पुराण में हरि-भक्ति न दिखाई दे, उस शास्त्र को न सुने चाहे, ब्रह्मा ही उसे क्यों न कहें ॥ १९५ ॥ "चाण्डाल यदि कृष्ण नाम कहे तो वह चाण्डाल नहीं है। और विप्र भी यदि असत्पथ पर चले तो वह विप्र नहीं है ॥१९६॥ प्रभु ने जैसे कपिल देव के रूप में माता देवहूति को जो कहा था, वही यहाँ शची माता से भी कह रहे हैं

कपिलेर भावे प्रभु जननीर स्थाने । जे कहिल ताइ प्रभु कहये ए खाने ।।१९७।।
शुन शुन माता कृष्ण-भक्तिर प्रभाव । सर्व्व भावे कर माता कृष्णे अनुराग ।।१९८।।
कृष्णेर सेवक माता कभु नहे नाश । काल चक्र डरायेन देखि कृष्ण-दास ।।१९९।।
गर्भ वासे जत दुःख जन्मे वा मरणे । कृष्णेर सेवक माता किछु ना जाने ।।२००।।
जगतेर पिता कृष्ण, जे ना भजे बाप । पितृ-द्रोही पातकीर जन्मे जन्मे ताप ।।२०१।।
चित्त दिया शुन माता जीवेर जे गति । कृष्ण ना भजिले पाय जतेक दुर्गति ।।२०२।।
मरिया मरिया पुन पाय गर्भ वास । सर्व्व अङ्गे अमेध्य पङ्केर परकाश ।।२०३।।
कटु अम्ल लवण जननी जत खाय । अङ्गे गिया लागे ताते महा मोह पाय ।।२०४।।
माँस मय अङ्ग कृमि कुले वेढ़ि खाय । घुचाइते नाहि शक्ति मरये ज्वालाय ।।२०५।।
नड़िते ना पारे तप्त-पञ्जरेर माझे । तवे प्राण रहे भवितव्यतार काजे ।।२०६।।
कोन अति पातकीर जन्म नाहि हय । गर्भे गर्भे हय पुन उत्पत्ति प्रलय ।।२०७।।
शुन शुन माता जीव-तत्त्वेर संस्थान । सात मासे जीवेर गर्भेते हय ज्ञान ।।२०८।।
तखने से स्मङरिया करे अनुताप । स्तुति करे कृष्णेरे छाड़िया घनश्वास ।।२०९।।
रक्ष कृष्ण जगत्-जीवन प्राण नाथ । तोमा वह जीव दुःख निवेदिव कात ।।२१०।।
जे करये बन्दी प्रभु छाड़ाये से-इ से । सहज मृतेरे प्रभु, माया कर किसे ।।२११।।
मिथ्या धन पुत्र रसे वञ्चिलुँ जनम । ना भजिलुँ तोर दुइ अमूल्य चरण ।।२१२।।

।। १९७ ।। "माता जी ! चित्त लगाकर श्री कृष्ण–भक्ति का प्रभाव सुनो । मा ! सर्व भाव से श्री कृष्ण में अनुराग करो ।। १९८ ।। मा ! श्री कृष्ण के सेवक का कभी नाश नहीं है । श्रीकृष्ण दास को देखकर काल-चक्र भी डराता है ।। १९९ ।। "गर्भवास में, जन्म और मरण काल में, जीव को जितना भी दुःख होता है, मा ! श्री कृष्ण सेवक को वे कुछ नहीं होते हैं ।। २०० ।। श्री कृष्ण जगत् के पिता हैं । जो पिता को नहीं भजता है, उस पितृ द्रोही पातकी को जन्म जन्मान्तर तक दुःख भोगना पड़ता है ।। २०१ ।। "हे माता ! जीव के जो परम गति श्री कृष्ण हैं, उनका भजन न करने से जो जो दुर्गति होती है, वह सब चित्त देकर सुनो । २०२ ।। वह जीव मर-मर कर बारम्बार गर्भवास पाता है । उस समय उसके सारे शरीर में अपवित्र मल लिपटा रहता है ।। २०३ ।। "माता जो भी कडुवा, खट्टा, नमकीन वस्तु खाती है उसका रस जा जाकर उसके शरीर में लगता है जिससे वह बड़ा कष्ट पाता है ।। २०४ ।। उसके माँसमय शरीर को छोटे छोटे कीड़ों के दल घेर-घेर कर खाते हैं उन्हें हटाने की शक्ति उसमें नहीं होती, इससे दंशन की दाह में वह जला करता है ।। २०५ ।। "गर्भ पींजरे (गर्भाशय) के भीतर पड़ा हुआ वह हिल डुल भी नहीं सकता है । फिर भी जो उसके प्राण बचे रहते हैं, वह केवल प्रारब्ध भोग के लिए ।। २०६ ।। किसी-किसी पापी का तो जन्म भी नहीं हो पाता । उसके जन्म-मरण दोनों गर्भ में ही बार-बार होते रहते हैं ।।२०७।। "हे माता ! जीव-तत्त्व की (गर्भ में स्थिति को) चित्त देकर सुनो । गर्भ में जीव को सातवें महीने में ज्ञान होता है ।। २०८ ।। उस समय वह अपने पूर्व जन्म के कर्मों का स्मरण कर करके पश्चाताप करता है और लम्बी-लम्बी साँसे लेता हुआ श्रीकृष्ण की स्तुति करता है ।। २०९ ।। "हे कृष्ण ! हे जगज्जीवन ! हे प्राण नाथ ! रक्षा करो । यह जीव तुमको छोड़ और किसे अपना दुःख कहे ।। २१०।। हे प्रभो ! जो कैद करता है वही छुड़ाता भी है । प्रभो ! जो आप ही मरा हुआ है, उस पर माया क्यों चलाते हो ।। २११ ।। "मैंने धन-पुत्रादि के मिथ्या सुख भोग में जन्म गँवा दिया । तुम्हारे अमूल्य चरण युगल को भजा नहीं ।। २१२।।

जे पुत्र पोषण कैलूँ अशेष विधर्म्मे। कोथा वा से-सव गेल मोर एइ कर्मे ॥२१३॥
एखन ए दुःखे मोरे के करिवे पार। तुमि से एखन बन्धु करह उद्धार ॥२१४॥
एतेके जानिलुँ सत्य तोमार चरण। रक्ष प्रभु कृष्ण तोर लइलु शरण ॥२१५॥
तुमि हेन कल्पतरु ठाकुर छाड़िया। भूलिलाङ असत्पथे प्रमत्त हइया ॥२१६॥
उचित ताहार एइ शास्ति जोग्य हय। करिला 'त' एवे कृपा कर महाशय ॥२१७॥
एइ कृपा आर जेन तोमा ना पासारि। जे खाने से खाने केने ना जन्मि ना मरि ॥२१८॥
जे खाने तोमार नाञि जशेर प्रचार। जथा नाहि वैश्णव गणेर अवतार ॥२१९॥
जे खाने तोमार महा महोत्सव नाञि। इन्द्रलोक हइलेओ ताहा नाहि चाइ ॥२२०॥
न यत्र बैकुण्ठ कथा सुधापगा, न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेश मखा महोत्सवाः, सुरेश लोकोऽपि न वै ससेव्यताम् ॥२२१॥
गर्भवास दुःख प्रभु एहो मोर भाल। जदि तोर स्मृति मोर रहे सर्व्वकाल ॥२२२॥
तोर पाद पद्मेर स्मरण नाहि जथा। हेन कृपा कर प्रभु ना फेलिवा तथा ॥२२३॥
एइ मत दुःख प्रभु कोटि कोटि जन्म। पाइलुँ विस्तर प्रभु सब मोर कर्म्म ॥२२४।
से दुःख विपद प्रभु रहु बारे बार। जदि तोर स्मृति थाके सर्व्व-वेद-सार ॥२२५॥
हेन कर कृष्ण एवे दास्य-जोग दिया। चरणे राखह दासी नन्दन करिया ॥२२६॥
बारेक करह जदि ए दुःखेर पार। तोमा वइ तवे प्रभु ना गाइमुँ आर ॥२२७॥

जिन पुत्रादि को मैंने अनेकानेक अधर्म कर करके पाला पोषा था, मेरे उन कर्मों के फल स्वरूप, वे सब न जाने कहाँ चले गये ॥ २१३ ॥ "अब इस दुःख से मुझे कौन छुड़ाए ? इस समय तो तुम ही मेरे भाई-बन्धु हो, मेरा उद्धार करो ॥ २१४ ॥ अब मालूम हुआ कि सत्य तो एक तुम्हारे ही श्री चरण हैं हे प्रभो! हे कृष्ण ! रक्षा करो ! मैंने तुम्हारी की शरण ली है ॥ २१५ ॥ "तुम जैसे कल्पतरु प्रभु को छोड़ मैं प्रमत्त होकर असत् पथ में भूला रहा ॥ २१६ ॥ उसका यह दण्ड उचित ही है। पर दण्ड दे चुके। अब तो हे महाशय ! कृपा करो ॥ २१७ ॥ "कृपा यह करें कि मैं तुमको कभी न भूलूँ—चाहे कहीं जन्मूँ और कहीं मरूँ ॥ २१८ ॥ हे प्रभो ! जिस स्थान पर तुम्हारे यश का प्रचार न हो, और जहाँ वैष्णव जन न हों ॥ २१९ ॥ "जहाँ पर तुम्हारे महा महोत्सव होते न हों, वह स्थान चाहे इन्द्रलोक ही क्यों न हो, वह मुझे नहीं चाहिये" ॥ २२० ॥ जैसा कि श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कन्ध में उन्नीसवें अध्याय के चौवीसवें श्लोक में कहा है कि—"जहाँ पर वैकुण्ठ भगवान् की कथा-सुधा-सरिता बहती न हो, और जहाँ पर उस कथामृत के आश्रित भक्त साधुजन न हों, और जहाँ पर यज्ञेश्वर भगवान् के यज्ञ, महोत्सवादि न होते हों, वह स्थान इन्द्रलोक होने पर भी निवास के योग्य नहीं है ॥ २२१ ॥ "हे प्रभो! यदि तुम्हारी स्मृति निरन्तर बनी रहे तो यह गर्भ-वास का दुःख भी मेरे लिए अच्छा है ॥ २२२ ॥ हे प्रभो ! अब तो ऐसी कृपा करो कि जहाँ पर तुम्हारे चरण-कमलों का स्मरण न रहे, वहाँ मुझे मत फेंक देना ॥ २२३॥ "हे प्रभो ! इस प्रकार के अनेकानेक दुःख मैंने करोड़ों जन्मों में पाया—वे सब मेरे कर्मों के ही फल थे ॥ २२४ ॥ हे प्रभो ! वे सब दुःख और विपत्तियाँ भले ही बार-बार पड़ें, यदि तुम्हारी स्मृति बनी रहे तो यह स्मृति ही समस्त वेदों का सार है ॥ २२५ ॥ "हे कृष्ण ! अब तो ऐसा करो कि मुझे अपनी कोई दासी का पुत्र बना कर, दास भाव देकर अपने चरणों के समीप रख लो ॥ २२६ ॥ एक बोर यदि इस दुःख से मुझे छुड़ा दें तो फिर तुमको छोड़ मैं और किसी को नहीं गाऊँगा" ॥ २२७ ॥ इस प्रकार वह गर्भ में निरन्तर जलता तड़फता रहता है

एइ मत गर्भवासे पोड़े अनुक्षण। ताहो भाल वासे कृष्ण-स्मृतिर कारण ।।२२८।।
स्तवेर प्रभावे गर्भ दुःख नाहि पाय। काले पड़े भूमि ते आपन अनिच्छाय ।।२२९।।
शुनि शुनि माता जीव तत्त्वेर संस्थान। भूमि ते पड़िले मात्र हय अगेयान ।।२३०।।
मूर्च्छा गत हय क्षणे क्षणे वहे श्वासे। कहि ते ना पारे दुःख सागरेते भासे ।।२३१।।
कृष्णेर सेवक जीव कृष्णेर मायाय। कृष्ण ना भजिले एइ मत दुःख पाय ।।२३२।।
कथो दिने काल वशे हय बुद्धि-ज्ञान।।इथे जे भजये कृष्ण से-इ भाग्यवान् ।।२३३।।
अन्यथा ना भजे कृष्ण दुष्ट सङ्ग करे। पुन सेइ मत गर्भ वासे डूबि मरे ।।२३४।।
यद्य सद्भिः पथि पुनः शिश्नोदर कृतोद्यमैः। आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ।।२३५।।
अनायासेन मरणं बिना दैन्येन जीवनम्। अनाराधित गोविन्द चरणस्य कथं भवे त् ।।२३६।।
अनायासे मरण जीवन दुःख बिने। कृष्ण भजिले से हय कृष्णेर स्मरणे ।।२३७।
एतेके भजह कृष्ण साधु-सङ्ग करि। मने चिन्त कृष्ण माता मुखे बोल हरि ।।२३८।।
भक्ति हीन-कर्मे कोन फल नाहि पाय। सेइ कर्म भक्ति हीन—पर हिंसा जाय ।।२३९।।
कपिलेर भावे प्रभु मायेरे सिखाय। शुनि सेइ वाक्य शची आनन्दे मिलाय ।।२४०।।
कि भोजने, कि शयने, कि वा जागरणे। कृष्ण बिनु प्रभु आर किछु ना बाखाने ।।२४१।।
आप्त मुखे ए कथा शुनिञा भक्तगण। सर्व्व गणे वितर्क भावेन मने मन ।।२४२।।
किवा कृष्ण-प्रकाश हइला से शरीरे। किवा साधु सङ्ग, किवा पूर्वेर संस्कारे ।।२४३।।

परन्तु श्रीकृष्ण की स्मृति के कारण इस अवस्था को भी वह अच्छा समझता है ।। २२८ ।। और प्रभु की स्तुति के प्रभाव से गर्भ का दुःख अनुभव नहीं करता है। समय होने पर, वह भूमि पर, इच्छा न होते हुए भी, गिर पड़ता है ।। २२९ ।। हे माता! ध्यान देकर जीव तत्त्व की स्थिति की बात सुनो। भूमि पर गिरते ही वह अचेत हो जाता है ।। २३० ।। मूर्च्छा भंग होने पर वह लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगता हैं। वह दुःख सागर में अपने को पड़ा हुआ पाता है पर अपना दुःख कह नहीं सकता ।। २३१ ।। हे माता! श्री कृष्ण का सेवक जीव श्रीकृष्ण की माया में पड़ श्रीकृष्ण का भजन नहीं करता इसी से ऐसा दुःख पाता है ।। २३२ ।। कुछ दिन वाद समय आने पर उसे ज्ञान-बुद्धि हो आती है। तब जो कृष्ण का भजन करने लगे वही भाग्यशाली है ।। २३३ ।। और जो श्रीकृष्ण को न भज कर दुष्ट संग करे तो फिर उसी प्रकार गर्भवास में डूबकर मरता है ।। २३४ ।। जैसा कि श्रीमद्भागवत् में कहा है कि—"जीव सन्मार्ग को पाकर के भी यदि शिश्नोदरप्रिय असत् जनों का संग करता है तो वह पूर्ववत् पुनः नरक में जा पड़ता है" (भा० ३–३१–३२) ।। २३५ ।। "श्री गोविन्द-चरण-आराधना न करने वाले का अनायास मरण और सुखी जीवन कैसे हो सकता है" ।। २३६ ।। अनायास-मरण और दुःख रहित जीवन तो श्रीकृष्ण-भजन-स्मरण से ही होता है ।। २३७ ।। अतएव हे माता! साधु-संग करते हुए श्रीकृष्ण का भजन करो, मन में श्रीकृष्ण का चिन्तन करो और मुख से हरि बोलो ।। २३८ ।। "मा! भक्ति हीन कर्म से कोई फल नहीं मिलता। भक्तिहीन कर्म वही है जिसमें औरों की हिंसा हो" ।। २३९ ।। इस प्रकार प्रभु कपिल देव के भाव में माता को शिक्षा दे रहे हैं। माता भी उन वाक्यों को सुनकर आनन्द मग्न हो रही है ।। २४० ।। अब तो प्रभु क्या भोजन के समय, क्या शयन के समय, क्या जागृत—अवस्था में, सब समय श्रीकृष्ण को छोड़ और कुछ नहीं कहते ।। २४१ ।। यह बात आत्मीय जनों के मुख से भक्त लोगों ने भी सुनी और सुनकर वे सब मन में सोच विचार करने लगे कि ।। २४२ ।। क्या निमाई के शरीर में श्री कृष्ण का प्रकाश हुआ है ? अथवा क्या यह

एइ मत सभे मने करेन विचार । सुख मय चित्त वृत्ति हइल सभार ।।२४४।।
खण्डित भक्तेर दुःख पाषण्डिर नाश । महा प्रभु विश्वम्भर हइला प्रकाश ।।२४५।।
वैष्णव आवेशे महा प्रभु विश्वम्भर । कृष्ण मय जगत देखये निरन्तर ।।२४६।।
अहर्निश श्रवणे सुनये कृष्ण-नाम । वदने बोलये कृष्ण चन्द्र अविराम ।।२४७।।
जे प्रभु आछिला भोला महा विद्या रसे । एवे कृष्ण विनु आर किछु नाहि वासे ।।२४८।।
पढ़ुयार वर्ग सब अति ऊषः काले । पढ़िवार निमित्त आसिया सभे मिले ।।२४९।।
पढ़ाइते वैसे गिया त्रि जगत्-राय । कृष्ण बिनु किछु आर ना आइसे जिह्वाय ।।२५०।।
"सिद्ध वर्ण समाम्नाय" बोले शिष्य गण । प्रभु बोले "सर्व-वर्णे सिद्ध नारायण ।।२५१।।
शिष्य बोले "वर्ण सिद्ध हइल के मने" । प्रभु बोले कृष्ण-दृष्टि-पातेर कारणे ।।२५२।।
शिष्य बोले पण्डित उचित व्याख्या कर । प्रभु बोले सर्व क्षण श्रीकृष्ण स्मङर ।।२५३।।
कृष्णेर भजन कहि सम्यक-आम्नाय । आदि मध्य अन्ते कृष्ण-भजन बुझाय ।।२५४।।
शुनिञा प्रभुर व्याख्या हासे शिष्य गण । केहो बोले हेन बुझि वायुर कारण ।।२५५।।
शिष्य वर्ग बोले "एवे केमन बाखान । प्रभु बोले "जेन हय शास्त्रेर प्रमाण" ।।२५६।।
प्रभु बोले "जदि नाहि बुझह एखने । विकाले सकल बुझाइव भाल-मने ।।२५७।।
आमिओ विरले गिया वसि पुँथि चाइ । विकाले सकले जेन हइ एक ठाञि" ।।२५८।।
शुनिञा प्रभुर वाक्य सर्व्व शिष्य-गण । कौतुके पुस्तक वान्धि करिला गमन ।।२५९।।

साधु संग का फल है ? अथवा तो पूर्व संस्कार जागे हैं ?" ।। २४३ ।। इस प्रकार मन में सब विचार करने लगे । परन्तु सबकी चित्त वृत्तियाँ सुखमयी बन गईं ।। २४४ ।। "महा प्रभु श्री विश्वम्भर का प्रकाश हो गया है । अतएव भक्तों का दुःख दूर हो गया और पाखण्डियों का भी नाश हो गया ही समझो ।। २४५ ।। महाप्रभु विश्वम्भर वैष्णव-आवेश में जगत् को निरन्तर कृष्णमय देखने लगे ।। २४६ ।। वे श्रीकृष्ण नाम ही रात-दिन सुनते हैं, और मुख से निरन्तर कृष्ण २ कहते हैं ।। २४७ ।। जो प्रभु पहले विद्या के रस में निपट भूले हुए थे, वे ही अब श्रीकृष्ण विना अन्य कुछ नहीं जानते ।। २४८ ।। विद्यार्थी वृन्द सब मिलकर पढ़ने के लिये बड़े प्रातः काल प्रभु के पास आते, तथा त्रिलोकीनाथ प्रभु उनको पढ़ाने के लिये जाकर (आसन पर) बैठते भी, परन्तु उनकी जिह्वा पर श्रीकृष्ण नाम विना और कुछ आता ही नहीं ।। २४९ ।। २५० ।। शिष्यगण कहते "सिद्ध वर्ण समाम्नाय" तो प्रभु उसका अर्थ करते—"सब वर्णों में नारायण ही सिद्ध है" ।। २५१ ।। शिष्य तब पूछते कि "वर्ण कैसे सिद्ध हुए ?" तो प्रभु उत्तर देते "श्रीकृष्ण की दृष्टि पात के कारण" ।। २५२ ।। शिष्य तब कहते—"पण्डित जो ! उचित व्याख्या करें ।" तो प्रभु कहते—"सब समय श्रीकृष्ण का स्मरण करो" ।। २५३ ।। सम्यक् पाठ तो श्रीकृष्ण-भजन को ही कहते हैं । (अथवा समस्त वेद (आम्नाय—वेद) श्रीकृष्ण भजन को ही कहते हैं) सब आदि, मध्य और अन्त में श्रीकृष्ण को ही बताते हैं ।। २५४ ।। प्रभु की व्याख्या को सुनकर शिष्य गण हँस पड़ते । कोई कहता "मालूम होता है । कि वायु के कारण इनकी यह दशा है" ।। २५५ ।। शिष्य वृन्द फिर पूछते—"ऐसी व्याख्या आप कैसे करते हैं ?" तो प्रभु उत्तर देते—"शास्त्र प्रमाण से यह सिद्ध है" ।। २५६ ।। प्रभु फिर बोले—"यदि तुम अभी इसे नहीं समझ पाते तो सायं काल को मैं तुम्हें अच्छी तरह समझा दूँगा ।। २५७ ।। मैं भी अभी एकान्त में बैठ पुस्तक विचारता हूँ, सायंकाल को सब एकत्रित होवें" ।। २५८ ।। प्रभु के वचन सुन कर सब शिष्य-वृन्द, ने कुछ कौतुक के साथ पुस्तकें बाँध लीं और चल दिये ।। २५९ ।। सब ने जाकर श्रीगङ्गा दास

सर्व्व शिष्य गङ्गा दास पण्डितेर स्थाने । कहिलेन सब-जत ठाकुर वाखाने ।।२६०।।
एवे जत वाखानेन निमाञि पण्डित । शब्द सने वाखानेन कृष्ण समीहित ।।२६१।।
गया हैते जावत आसिया छेन घरे । तदवधि कृष्ण वइ व्याख्या नाहि स्फुरे ।।२६२।।
सर्व्वदा बोलेन कृष्ण पुलकित अङ्ग । क्षणे हासे हुङ्कार करये बहु रङ्ग ।।२६३।।
प्रति शब्दे धातु सूत्र एकत्र करिया । प्रति दिन कृष्ण व्याख्या केरन वसिया ।।२६४।।
एवे भाल वुझिवारे ना पारि चरित । कि करिव आमि-सब बोलह पण्डित ।।२६५।।
उपाध्याय शिरो मणि विप्र गङ्गा दास । शुनिञा सभार वाक्य उपजिल हास ।।२६६।।
ओझा बोले घरे जाह आसिह सकाले । अजि आमि शिखाइव ताहारे विकाले ।।२६७।।
भाल मत करि जेन पढ़ायेन पुँथि । आसिह विकाले सब ताहार संहति ।।२६८।।
परम हरिषे सभे वासाय चलिला । विश्वम्भर सङ्गे सभे विकाले आइला ।।२६९।।
गुरुर चरण-धूलि प्रभु लय शिरे । "विद्या लाभ हओ" गुरु आशीर्व्वाद करे ।।२७०।।
गुरु बोले बाप विश्वम्भर शुन वाक्य । ब्राह्मणेर अध्ययन नहे अल्प भाग्य ।।२७१।।
मातामह जार चक्रवर्त्ती नीलाम्बर । बाप जार-जगन्नाथ-मिश्र पुरन्दर ।।२७२।।
उभय कुलेते मूर्ख नाहिक तोमार । तुमिह परम जोग्य व्याख्याते टीकार ।।२७३।।
अध्ययन छाड़िले से जदि भक्ति हय । बाप माता मह कि तोमार भक्त नय ।।२७४।।
इहा जानि भाल मते कर अध्ययन । अध्ययन हइले से वैष्णव ब्राह्मण ।।२७५।।
भद्राभद्र मूर्ख विप्र जानिव के मने । इहा जानि कृष्ण बोल कर अध्ययने ।।२७६।।

पण्डित (प्रभु के गुरु) से जो कुछ व्याख्या प्रभु ने की थी, सब कह सुनाई ।। २६० ।। (और ये यह भी कहा कि) "अब तो जो कुछ भी निमाइ पण्डित व्याख्या करते हैं, उसमें प्रत्येक शब्द का अभिप्राय श्री कृष्ण ही सिद्ध करते हैं ।। २६१ ।। जब से वे गया से लौट कर आये हैं, तब से श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई व्याख्या ही उनके मुख से नहीं निकलती है ।। २६२ ।। वे पुलकित-शरीर होकर सर्वदा कृष्ण कृष्ण कहते रहते हैं । कभी हँसते हैं, कभी हुँकार करके अनेक प्रकार के भाव दिखाते हैं ।। २६३ ।। वे प्रति दिन बैठकर धातु–सूत्र लगा कर प्रत्येक शब्द की व्याख्या 'कृष्ण' में ही करते हैं ।। २६४ ।। इस समय उनका चरित्र कुछ अच्छी तरह से समझ में नहीं आया ! पण्डित जी महाराज ! हम क्या करें, आप बताइये" ।। २६५ ।। उपाध्याय शिरोमणि विप्र गङ्गादास को शिष्यों की बात सुनकर हँसी आ गई ।। २६६ ।। और वे (उपाध्याय जी) बोले "आज तो तुम सब अपने घर जाओ, कल सबेरे आना । आज सायंकाल मैं उसको समझा दूँगा ।। २६७ ।। कि वह अच्छी पुस्तक पढ़ावें । तुम भी सब उसके साथ शाम को आना" ।। २६८ ।। विद्यार्थी वृन्द सब बड़े प्रसन्न होकर घर चले गये, और फिर सायंकाल को श्री विश्वम्भर चन्द्र के साथ आये ।। २६९ ।। प्रभु ने आकर श्रीगुरु की चरण-रज मस्तक पर धारण की । श्रीगुरु ने भी "विद्या लाभ हो" कहकर आशीर्वाद दिया ।। २७० ।। गुरु जी बोले–"वत्स विश्वम्भर मेरी बात सुनो । ब्राह्मण के लिये अध्ययन कर्म कोई अल्प भाग्य की बात नहीं है ।। २७१ ।। तुम्हारे नाना श्री नीलाम्बर चक्रवर्त्ती और तुम्हारे पिता श्री जगन्नाथ मिश्र ।। २७२ ।। तुम्हारे इन दोनों कुलों में कोई भी मूर्ख नहीं है । तुम भी टीका की व्याख्या में परम योग्य हो ।। २७३ ।। यदि अध्ययन छोड़ने पर ही भक्ति होती हो तो तुम्हारे पिता और तुम्हारे नाना क्या भक्त नहीं थे ? ।। २७४ ।। यह समझ कर अच्छी तरह से अध्ययन करो । अध्ययन करने पर ही ब्राह्मण वैष्णव बनता है ।।२७५ ।। मूर्ख विप्र भद्र-अभद्र, को कैसे जानेगा ? यह जान तुम कृष्ण कहो

भाल मते गिया शास्त्र वसिया पढ़ाओ। व्यति रिक्त अर्थ कर मोर माथा खाओ ॥२७७॥
प्रभु बोले तोर दुइ चरण प्रसादे। नव द्वीपे केहो मोरे ना पारे विवादे ॥२७८॥
आमि जे वाखानि सूत्र करिया खण्डन। नवद्वीपे इहा स्थापिवेक कोन जन ॥२७९॥
नगरे वसिया एइ पढ़ाइव गिया। देखि कार शक्ति आछे दूषक् आसिया ॥२८०॥
हरिष हइला गुरु शुनिआ वचन। चलिला गुरुर करि चरण वन्दन ॥२८१॥
गङ्गा दास पण्डित चरणे नमस्कार। वेद-पति सरस्वती-पति शिष्य जार ॥२८२॥
आर किवा गङ्गा दास पण्डितेर साध्य। जार शिष्य चतुर्द्दश-भुवन आराध्य ॥२८३॥
चलिला पढ़ुया सङ्गे प्रभु विश्वम्भर। तारके वेष्टित जेन पूर्ण शशधर ॥२८४॥
वसिला आसिया नगरियार दुयारे। जाहार चरण लक्ष्मी हृदय उपरे ॥२८५॥
जोग पट्ट छान्दे वस्त्र करिया बन्धन। सूत्रेर करये प्रभु खण्डन स्थापन ॥२८६॥
प्रभु वोले सन्धि कार्ज ज्ञान नाहि जार। कलि जुगे 'भट्टचार्य' पदवी ताहार ॥ ८७॥
शब्द-ज्ञान नाहि जार से तर्क बाखाने। आमारे 'त' प्रवोधिते नारे कोनो जने ॥२८८॥
जे आमि खण्डन करि जे करि स्थापन। देखि ताहा अन्यथा करुक् कोनो जन। २८९॥
एइ मत बोले विश्वम्भर विश्वनाथ। प्रत्युत्तर करि वेक हेन शक्ति कात्त ॥२९०॥
गङ्गा देखि वारे जत अध्यापक जाय। शुनिजा सभार अहङ्कार चूर्ण पाय ॥२९१॥
कार शक्ति आछे विश्वम्भरेर समीपे। सिद्धान्त दिवेक हेन आछे नवद्वीपे ॥२९२॥

और अध्ययन करो ॥ २७६ ॥ अब तुम जाकर अच्छी तरह से शास्त्र पढ़ाने बैठो। यदि तुमने विपरीत अर्थ किया तो तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध है" ॥ २७७ ॥ तब प्रभु बोले—"आपके श्री युगल चरण की कृपा से नवद्वीप में कोई मुझे शास्त्रार्थ में नहीं जीत सकता है ॥ २७८ ॥ "मैं जिस सूत्र की व्याख्या खण्डन रूप में करूँ, उसकी स्थापना नवद्वीप में कौन कर सकता है ? ॥ २७९ ॥ मैं अभी जाकर नगर में पढ़ने बैठता हूँ, देखूँ किसमें शक्ति है कि जो मेरी व्याख्या में दोष निकाले" ॥ २८० ॥ ऐसे बचन सुनकर श्री गुरु बड़े प्रसन्न हुए। प्रभु भी गुरुदेव की चरण-वन्दना करके चल पड़े ॥ २८१ ॥ (श्री ग्रन्थकार कहते हैं कि) उन श्रीगङ्गा दास पण्डित के श्री चरण में मेरा नमस्कार है कि वेदपति और सरस्वती पति (प्रभु) जिनके शिष्य हैं ॥२८२ ॥ श्री गङ्गादास पण्डित के लिये इससे बढ़कर साध्य लाभ और क्या हो सकता है कि उनके शिष्य हैं चौदहवों भुवन के आराध्य देव ॥ २८३ ॥ प्रभु विश्वम्भर विद्यार्थियों के साथ चले मानों तो ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा जा रहा हो ॥ २८४ ॥ जिनके श्री चरण लक्ष्मी जी के हृदय के ऊपर शोभा पाते हैं, वे प्रभु एक साधारण नागरिक के द्वार पर आ बैठे ॥ २८५ ॥ और योग पट की रीति से वस्त्र बाँधकर सूत्र का खण्डन मण्डन करने लगे ॥ २८६ ॥ प्रभु बोले—"जिनको सन्धि-क्रिया का भी ज्ञान नहीं है, कलियुग में उनकी पदवी है "भट्टाचार्य" ॥ २८७ ॥ और जिनको शब्द-बोध भी नहीं है, वे न्याय शास्त्र की व्याख्या करते हैं, परन्तु मुझे प्रवोध देने में कोई समर्थ नहीं है ॥ २८८ ॥ मैं जिसका खण्डन और जिस का मण्डन करता हूँ, देखूँ, कोई भी आकर उसका अन्यथा तो कर दिखावे ॥ २८९ ॥ इस प्रकार विश्वनाथ श्री विश्वम्भर देव कहते हैं परन्तु ऐसी सामर्थ किसमें कि प्रत्युत्तर दे सके ॥ २९० ॥ (उस समय) गङ्गा-दर्शन के लिये जितने अध्यापक जा रहे थे, प्रभु के वचन सुन सुन कर उन सब का अहङ्कार चूर्ण हो गया ॥ २९१ ॥ भला नवद्वीप में ऐसी किसमें शक्ति है जो प्रभु विश्वम्भर के सन्मुख अपना कोई सिद्धान्त प्रतिपादन कर सके ॥ २९२ ॥ इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर आवेश में भरे हुए व्याख्या कर रहे हैं। चार घड़ी

एइ मत आवेशे वाखाने विश्वम्भर। चारि दण्ड रात्रि तभु नाहि अवसर ॥२९३॥
दैवे आर एक नगरियार दुयारे। एक महा भाग्यवान् आछे विप्रवरे ॥२९४॥
'रत्न गर्भ आचार्य' विख्यात तार नाम। प्रभुर बापेर सङ्गी जन्म एक ग्राम ॥२९५॥
तीन पुत्र ताँर कृष्ण-पद मकरन्द। कृष्णानन्द, जीव, यदुनाथ कविचन्द्र ॥२९६॥
भागवत परम आदरे विप्रवर। भागवत श्लोक पढ़े करिया आदर ॥२९७॥
विन्यस्त हस्त मितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालक कपोल मुखाब्ज हासम ॥२९८॥
भक्ति-जोग श्लोक पढ़े परम सन्तोषे। प्रभुर कर्णे ते आसि करिल प्रवेशे ॥२९९॥
भक्तिर प्रभाव मात्र शुनिल थाकिया। सेइ क्षणे पड़िलेन मूर्च्छित हइया ॥३००॥
सकल पढ़ुया वर्ग विस्मित हइला। क्षणेक अन्तरे प्रभु बाह्य प्रकाशिला ॥३०१॥
बाह्य पाइ 'बोल' 'बोल' बोले विश्वम्भर। गड़ा गड़ि जाय प्रभु धरणी उपर ॥३०२॥
प्रभु बोले 'बोल' 'बोल' पढ़े विप्रवर। उठिल समुद्र कृष्ण-सुख मनोहर ॥३०३॥
लोचनेर जले हैल पृथिवी सिञ्चित। अश्रु कम्प पुलक-सकल सुविदित ॥३०४॥
देखे विप्रवर ताँर परम आनन्द। पढ़े भक्ति-श्लोक भक्ति सने करि सङ्ग ॥३०५॥
देखिया ताँहार भक्ति जोगेर पठन। तुष्ट हैया प्रभु ताने दिला आलिङ्गन ॥३०६॥
पाइया वैकुण्ठ नायकेर आलिङ्गने। प्रेमे पूर्ण रत्न गर्भ हैला सेइ क्षणे ॥३०७॥

रात बीत गई पर बन्द ही नहीं होते ॥ २९३ ॥ दैव योग से एक दूसरे नागरिक के घर पर एक महाभाग्यवान् विप्रवर रहते थे ॥ २९४ ॥ वे रत्न गर्भ आचार्य के नाम से विख्यात थे। वे प्रभु के पिताजी के संगी थे और एक ही गाँव में दोनों जन्मे थे ॥ २९५ ॥ उनके तीन पुत्र थे जो श्रीकृष्ण के चरण कमल मकरन्द सेवी थे। उनके नाम हैं–कृष्णानन्द, जीव और यदु नाथ 'कवि चन्द्र' ॥ २९६ ॥ विप्रवर (रत्न गर्भाचार्य) श्रीमद्भागवत् का परम आदर करते थे। (संयोग वश) वे उस समय भागवत का एक श्लोक पढ़ रहे थे ॥ २९७ ॥ "श्लोकार्थ" (याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियाँ श्री कृष्ण का दर्शन कर रही हैं कि) श्याम उनका अंग है, स्वर्ण वर्ण पीताम्बर पहने हुए हैं, गले में बनमाला है, शीश पर मोर मुकुट है, गेरु, मनसिल आदि धातुओं से श्रीमुख रंजित हो रहा है, पत्र-पुष्प-दल से रचित मनोहर नटवर वेष है, एक हस्त संगी सखा के कन्धे पर अर्पित है और दूसरे हस्त से कमल घुमा रहे हैं, कानों में कमल के फूल झूम रहे हैं, कपोलों को अलकें चूम रही हैं और मुख कमल से हँसी की किरणें छिटक रहीं हैं। २९८ ॥ (भाग–१०–२३–२२) यह श्लोक भक्ति योग का वे विप्र बड़े आनन्द से पढ़ रहे थे कि वह प्रभु के कानों में आ पड़ा ॥ २९९ ॥ भक्ति के प्रभाव को सुनते ही प्रभु तुरन्त ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ ३०० ॥ विद्यार्थी वृन्द सब बड़े ही विस्मित हुए। क्षण भर पीछे ही प्रभु को बाह्य ज्ञान हो आया ॥ ३०१ ॥ चेत होते ही प्रभु विश्वम्भर "बोलो-बोलो" कहते हुए पृथ्वी पर लोट पोट होने लगे ॥ ३०२ ॥ प्रभु के 'बोल–बोल' कहने पर विप्रवर श्लोक पढ़ने लगे। तब तो मनोहर कृष्ण–सुख का सागर उमड़ पड़ा ॥ ३०३ ॥ प्रभु के अश्रु जल से पृथ्वी गीली हो गई–अश्रु कम्प, पुलक प्रभु के अंग में सब स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष हो रहे थे ॥ ३०४ ॥ विप्र श्रेष्ठ (रत्न गर्भाचार्य) प्रभु को परम आनन्द में देख कर, भक्ति–सम्बन्धी श्लोकों को भक्ति पूर्वक पढ़ने लगे ॥ ३०५ ॥ उनके भक्ति युक्त पाठ को देखकर प्रभु ने संतुष्ट होकर उनको अपना दिव्य आलिंगन प्रदान किया ॥ ३०६ ॥ श्री वैकुण्ठनाथ के आलिंगन को पाकर रत्नगर्भाचार्य जी की देह तत्क्षण प्रेम से पूर्ण हो गयी ॥ ३०७ ॥ और वे प्रभु के श्री चरणों को पकड़ कर रोने लगे, विप्र श्री चैतन्य चन्द के प्रेम-पाश में

प्रभुर चरण धरि रत्न गर्भ कान्दे । बन्दी हैला विप्र चैतन्येर प्रेम फान्दे ।।३०८।।
पुनः पुन पढ़े श्लोक प्रेम युक्त हैया । 'बोल' 'बोल' बोले प्रभु हुङ्कार करिया ।।३०९।।
देखिया सभार हैल अपरूप ज्ञान । नगरिया सब देखि करे परणाम ।।३१०।।
"ना पढ़िह आर" वलिलेन गदाधर । सभे मिलि धरि लेन प्रभु विश्वम्भर ।।३११।।
क्षणे के हइला बाह्य दृष्टि गौर राय । 'कि बोल' 'कि बोल' प्रभु जिज्ञासे सदाय ।।३१२।।
प्रभु बोले कि चाञ्चल्य करिलाङ आमि । पढुया सकल बोले कृत कृत्य तुमि ।।३१३।।
कि वलिते पारि आमा सभार शकति । आप्त गणे निवारिल ना करिह स्तुति ।।३१४।।
बाह्य पाइ विश्वम्भर आपना सम्बरे । सर्व्व गणे चलि लेन गङ्गा देखि वारे ।।३१५।।
गङ्गा नमस्करि गङ्गा-जल लैला शिरे । गोष्टीर सहित वसिलेन गङ्गा तीरे ।।३१६।।
जमुनार तीरे जेन बेढ़ि गोप गण । नाना रस करिलेन नन्देर नन्दन ।।३१७।।
सेइ मत शचीर नन्दन गङ्गा तीरे । भकत सहित कृष्ण प्रसङ्गे विहरे ।।३१८।।
कथो क्षणे सभारे विदाय दिया घरे । विश्वम्भर चलिलेन आपन मन्दिरे ।।३१९।।
भोजन करिया सर्व्व भुवनेर नाथ । जोग निद्रा प्रति करिलेन दृष्टि पात ।।३२०।।
पोहाइल निशा-सर्व्व पढ़ुयार गण । आसिया मेलिला पुँथि करिते चिन्तन ।।३२१।।
ठाकुर आइला झाट करि गङ्गा-स्नान । वसिया करेन प्रभु पुस्तक व्याख्यान ।।३२२।।
प्रभुर ना स्फुरे कृष्ण-व्यतिरिक्त आन । शब्द मात्र कृष्ण-भक्ति करये व्याख्यान ।।३२३।।
पढ़ुया सकल बोले "धातु संज्ञा कार" । प्रभु बोले श्रीकृष्णेर शक्ति नाम जार ।।३२४।।

बंध कर कैदी हो गये ।। ३०८ ।। वे प्रेम युक्त होकर बारम्बार श्लोक पढ़ने लगे और प्रभु हुङ्कार कर कर के "बोलो बोलो" कहने लगे ।। ३०९ ।। यह दृश्य देख सब नागरिकों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वे प्रभु को प्रणाम करने लगे ।। ३१० ।। अन्त में श्री गदाधर जी बोले—"बस ! अब और मत पढ़ो, फिर सब ने मिल कर प्रभु विश्वम्भर को पकड़ लिया ।। ३११ ।। क्षण भर बाद श्रीगौरा राय सचेत हुए, फिर भी 'क्या कहते हो' 'क्या कहते हो' बस यही पूछते रहे ।। ३१२ ।। अन्त में प्रभु कहने लगे—"आज मैंने क्या कुछ चंचलता की ?" विद्यार्थी सब बोले—'आप कृतार्थ हैं" ।। ३१३ ।। "हम क्या कह सकते है—हममें शक्ति ही कहाँ ?" यह सुनकर प्रभु ने अपने स्वजनों को निवारण किया कि "ऐसी स्तुति मत करो" ।। ३१४ ।। बाहर की सुध आने पर प्रभु ने अपने भाव को दबाया और सबके साथ गङ्गा-दर्शन के लिये चल पड़े ।। ३१५ ।। जाकर श्री गङ्गा जी को नमस्कार किया, गंगा—जल को सिर पर चढ़ाया और गोष्ठी समेत गंगा-तट पर बैठ गये ।। ३१६ ।। जैसे गोपों से घिरे हुए नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ने श्री यमुना के तट पर नाना प्रकार का आनन्द लूटा था, वैसे ही भक्त गण सहित शची नन्दन श्री विश्वम्भर श्री गङ्गा के तट पर श्री कृष्ण—चर्चा का आनन्द ले रहे हैं ।। ३१७ ।। ३१८ ।। कुछ देर बाद सबको अपने-अपमे घर के लिये विदा देकर श्री विश्वम्भर देव भी अपने घर को चले आये ।। ३१९ ।। और भोजन करके सब लोकों के स्वामी श्रीविश्वम्भर देव ने योग निद्रा के प्रति अवलोकन किया (अर्थात् शयन किया) ।। ३२० ।। रात्रि व्यतीत हुई और विद्यार्थी वृन्द आ जुटे, और पढ़ने के लिये पोथी खोल—खोल कर बैठ गये ।। ३२१ ।। प्रभु भी गङ्गा—स्नान करके झट आ गये और बैठकर पोथी पढ़ाने लगे ।। ३२२ ।। प्रभु के मुख से तो 'कृष्ण' के अतिरिक्त और कुछ निकलता ही नहीं, अतएव वे प्रत्येक शब्द का अर्थ कृष्ण भक्ति करने लगे ।। ३२३ ।। विद्यार्थियों ने पूछा—"धातु किसका नाम है ?" तो प्रभु ने उत्तर दिया "श्रीकृष्ण की शक्ति का" ।। ३२४ ।।

धातु-सूत्र वाखानि शुनह भाइ गण । देखि कार शक्ति आछे करुक् खण्डन ॥३२५॥
जत देख राजा दिव्य दिव्य कलेवर । कनक भूषित गन्ध चन्दने सुन्दर ॥३२६॥
जम लक्ष्मी जाहार वचने लोक कहे । धातु विने शुन तार जे अवस्था हये ॥३२७॥
कोथा जाय सर्वाङ्गेर सौन्दर्य चलिया । केह भस्मा कार कारे एड़ेन पूतिया ॥३२८॥
सर्व्व देहे धातु रूपे वैसे कृष्ण शक्ति । ताहा सने करे स्नेह ताहाने से भक्ति ॥३२९॥
भ्रम वशे अध्यापक ना बुझये इहा । हय नय भाइ सब बुझ मन दिया ॥३३०॥
एवे जारे नमस्करि करि मान्य ज्ञान । धातु गेले तारे पर शिले करि स्नान ॥३३१॥
जे वापेर कोले पुत्र थाके महा सुखे । धातु गेले सेइ पुत्र अग्नि देइ मुखे ॥३३२॥
धातु संज्ञा कृष्ण-शक्ति वल्लभ सभार । देखि इहा दूषक् आछये शक्ति कार ॥३३३॥
एइ मत पवित्र पूज्य जे कृष्णेर शक्ति । हेन कृष्णे भाइ सव कर दृढ़ भक्ति । ३३४॥
वोल कृष्ण भज कृष्ण शुन कृष्ण नाम । अहर्निश कृष्णेर चरण कर ध्यान ॥३३५॥
जाहार चरणे दूर्वा जल दिले मात्र । कभू जम तान अधिकारे नहे पात्र ॥३३६॥
अघ बक पूतनारे जे कैल मोचन । भज भज सेइ नन्द नन्दन चरण ॥३३७॥
पुत्र बुध्ये अजामिल जाहार स्मरणे । चलिला वैकुण्ठ भज से कृष्ण चरणे ॥३३८॥
जाहार चरण रसे शिव दिगम्बर । जे चरण सेविवारे लक्ष्मीर आदर ॥३३९॥
जे चरण महिमा अनन्त गुण गाय । दन्ते तृण करि भज हेन कृष्ण पाय ॥३४०॥

"सुनो भाइयो ! अब मैं धातु-सूत्र की व्याख्या करता हूँ–देखूँ किसमें शक्ति है जो इसका खण्डन करे ॥ ३२५ ॥ जितने भी राजा आदि को तुम देखते हो कि जिनके बड़े सुन्दर दिव्य कलेवर हैं, जो स्वर्ण–अलङ्कारों से भषित तथा चन्दन-सुगन्ध से चर्चित हैं ॥ ३२६ ॥ "और जिनके लिये लोग कहते हैं कि यम-राज (अर्थात् मृत्यु) और लक्ष्मी जिनकी आज्ञा पर चलते हैं, उनकी भी धातु के विना जो दशा होती है उसे सुनो ॥३२७ ॥ बिना धातु के उनके सब अंगों का सौन्दर्य न जाने कहाँ चला जाता है। किसी को जलाकर भस्म कर देते हैं तो किसी को गाड़ कर छोड़ देते हैं ॥ ३२८ ॥ "अतएव सबकी देह में धातु रूप में श्रीकृष्ण की शक्ति ही विराजित है । उसी के साथ सब स्नेह करते हैं, और उसी को आदर-भक्ति करते हैं ॥ ३२९ ॥ अध्यापक गण भ्रम के कारण इसे नहीं समझ पाते हैं । भाइयो ! जरा मन से तो सोचो यह बात है कि नहीं ॥ ३३० ॥ "इस समय हम जिनको नमस्कार करते और माननीय समझते हैं, धातु के चले जाने पर, उन्हीं को छू लेने पर हम स्नान करते हैं ॥ ३३१ ॥ जिस बाप की गोद में बेटा बड़े सुख से रहता है, धातु के चले जाने पर, वही बेटा उसी बाप के मुख में आग दे देता है ॥ ३३२ ॥ "इसी से 'धातु' नाम श्रीकृष्ण की शक्ति का है–वही सबको प्यारा है । देखूँ किसमें शक्ति है जो इस तथ्य में दोष निकाले ॥ ३३३ ॥ इस प्रकार से जिस श्रीकृष्ण की शक्ति पूज्य और पवित्र है, उस श्रीकृष्ण की, भाइयो ! तुम सब दृढ़ भक्ति करो ॥ ३३४ ॥ "भाइयो ! कृष्ण कहो, कृष्ण भजो, कृष्ण नाम सुनो । दिन रात कृष्ण–चरण का ध्यान करो ॥ ३३५ ॥ जिन श्रीकृष्ण के चरणों पर दूब और जल मात्र चढ़ाने से ही, उस पर यमराज का अधिकार नहीं रह जाता है ॥ ३३६ ॥ 'जिन्होंने अघासुर, बकासुर और पूतना राक्षसी का उद्धार किया, उन नन्दनन्दन के चरणों का भजन करो ॥३३७ ॥ अजामिल, पुत्र-बुद्धि से, जिनका स्मरण करके वैकुण्ठ को चला गया, उन श्रीकृष्ण के चरणों को भजो ॥ ३३८ ॥ "जिनके चरणों का रस पान कर शिव जी दिगम्बर है । जिन चरणों की सेवा में लक्ष्मी जी का बड़ा ही आदर है ॥ ३३९ ॥ जिन चरणों

जावत् आछये जीव देहे आछे शक्ति । तावत कृष्णेर पाद पद्म कर भक्ति ।।३४१।।
कृष्ण माता कृष्ण पिता कृष्ण प्राण धन । चरणे धरिया बोलों कृष्णे देह मन ।।३४२।।
दास्य भावे कहे प्रभु आपन महिमा । हइल प्रहर दुइ तभो नहे सीमा ।।३४३।।
मोहित पढ़ुया सब शुने एक मने । द्विरुक्ति करिते कारो ना आइसे बदने ।।३४४।।
से सब कृष्णेर दास जानिह निश्चय । कृष्ण जारे पढ़ायेन से कि अन्य हय ।।३४५।।
कथो क्षणे बाह्ज प्रकाशिला विश्वम्भर । चाहिया सभार मुख लज्जित अन्तर ।।३४६।।
प्रभु बोले "धातु-सूत्र वारवानिल केन । पढ़ुया सकल बोले सत्य अर्थ जेन ।।३४७।।
जे शब्दे जे अर्थ तुमि करिले वाखान । कार बापे ताहा करि वारे पारे आन ।।३४८।।
जतेक वाखान तुमि-सब सत्य हय । सबे जे उद्देशे पढ़ि तार अर्थ नय ।।३४९।।
प्रभु बोले कह देखि आमारे सकल । वायु वा आमारे करिया छये विह्वल ।।३५०।।
सूत्र रूपे कोन् वृत्ति करिये व्याख्यान । शिष्य वर्ग बोले सवे एक हरि नाम ।।३५१।।
सूत्र, वृत्ति, टीकाय वाखान कृष्ण मात्र । वुझिते तोमार व्याख्या के आछये पात्र ।।३५२।।
भक्तिर श्रवणे जे तोमार आसि हये । ताहाते तो मारे कभू नर-ज्ञान नहे ।।३५३।।
प्रभु बोल कोन् रूपे देखह आमारे । पढ़ुया सकल बोले जत चमत्कारे ।।३५४।।
जे कम्प जे अश्रु जेवा पुलक तोमार । आमरा 'त' कोथाओ कभू नाहिं देखि आर ।।३५५।।
कालि जवे पुँथि तुमि चिन्ताह नगरे । तखन पढ़िल श्लोक एक विप्र वरे ।।३५६।।

की महिमा श्री अनन्त देव गाते ही रहते हैं, उन श्रीकृष्ण के चरणों का भजन दाँतों में तिनका देकर करो ।। ३४० ।। "जब तक इस देह में यह जीवात्मा है, और यह शक्ति है, तब तक श्री कृष्ण के पादपद्मों की भक्ति कर लो ।। ३४१ ।। श्री कृष्ण ही माता हैं, श्रीकृष्ण ही पिता हैं, श्रीकृष्ण ही प्राण धन हैं,हे भाइयो ! मैं तुम्हारे पाँव पकड़ कर कहता हूँ कि श्रीकृष्ण में मन लगाओ ।। ३४२ ।। इस प्रकार दास भाव में भर कर प्रभु अपनी महिमा आप ही वर्णन कर रहे हैं । दोपहर हो आया, तब भी वर्णन का अन्त नहीं ।।३४३।। मोहिए हुए विद्यार्थी सब एक मन से सुन रहे हैं, किसी से मुख से एक शब्द नहीं निकल पाता है ।। ३४४।। यह निश्चय समझ लो कि वे सब विद्यार्थी कृष्ण के ही दास थे । भला जिनको श्रीकृष्ण पढ़ावें वे क्या दूसरे कोई हो सकते हैं ।।३४५ ।। कुछ समय बाद प्रभु विश्वम्भर को बाहर की सुध हो आई और सबके मुख की ओर देखकर मन ही मन लज्जित हुए ।। ३४६ ।। प्रभु बोले-"धातु-सूत्र की व्याख्या कैसी हुई ?" विद्यार्थी सब बोले-"अर्थ तो सत्य ही हैं ।। ३४७ ।। आपने जिस शब्द का जो अर्थ बखाना, उसको उलट देने की सामर्थ्य किसके बाप में है भला ? ।। ३४८ ।। "जो कुछ आपने बखाना, वह तो सब सत्य ही है पर बात तो बस इतनी ही है कि हम जिस उद्देश्य से पढ़ते हैं, उसके अनुसार यह अर्थ नहीं है" ।। ३४९ ।। तब प्रभु बोले-"तुम सब मुझे देखकर बताओ तो कि मुझे वायु ने तो कहीं विकल नहीं कर दिया ? ।। ३५० ।। "अच्छा ! मैंने सूत्र की व्याख्या में कौन सी वृत्ति कही ?" शिष्यों ने उत्तर दिया-"केवल एक हरि नाम ।। ३५१ । आप तो सूत्र, वृत्ति, टीका सब में केवल कृष्ण को ही बखानते हैं । आपकी व्याख्या समझने वाला पात्र यहाँ कौन है भला ।। ३५२ ।। "भक्ति के पद सुन लेने पर जो आपकी दशा हो आती है, उससे तो आप मनुष्य से कदापि नहीं लगते हैं" ।। ३५३ ।। प्रभु ने पूछा-"तुम लोग मुझे किस रूप में देखते हो ?" तो विद्यार्थियों ने उत्तर दिया -"विलक्षण चमत्कार रूप में ।। ३५४ ।। "आपके शरीर में जो कम्प, अश्रु और पुलकावलि प्रकट होते हैं, वे तो हमने और कहीं कभी भी नहीं देखे ।। ३५५ ।। कल जब आप नगर

भागवत श्लोक शुनि हइला मूर्च्छित । सर्व्व अङ्गे नाहि प्राण आमरा विस्मित ।।३५७।।
चैतन्य पाइया तुमि जे कैला क्रन्दन । गङ्गार आसिया जेन हइल मिलन ।।३५८।।
शेषे जेवा कम्प आसि हइल तोमार । शत जन समर्थ नाहय धरिवार । ३५९।।
आपाद मस्तके हैल पुलक उन्नति । लाला, घर्म्म, धूलाय व्यापित गौर ज्योति ।।३६०।।
अपूर्व्व से सब लीला देखे जत जन । सभेइ बोलेन ए पुरुष नारायण ।।३६१।।
केहो बोले व्यास शुक, नारद प्रह्लाद । ताहा सभा कार जोग्य ए मत प्रसाद ।।३६२।।
सभे मिलि धरि लेन करिया शकति । क्षणेके तोमार आसि बाह्य हैल मति ।।३६३।।
ए सब वृतान्त तुमि किछुइ ना जान । आर कथा कहि ताहा चित्त दिया शुन ।।३६४।।
दिन दश धरि कर जतेक व्याख्यान । सर्व्व शब्दे कृष्ण भक्ति कर कृष्ण नाम ।।३६५।।
दश दिन धरि आजि पाठ बाद हय । कहिते तोमारे सभे बड़ वासि भय ।।३६६।।
शब्देर अशेष अर्थ तोमार गोचर । हासि "जे वाखान ताहा के दिवे उत्तर" ।।३६७।।
प्रभु बोले दश दिन पाठ बाद जाय । तवे कि आमारे कहिवारे ना जुयाय ।।३६८।।
पढ़ुया सकल बोले वाखान उचित । सत्य कृष्ण सकल शास्त्रेर समीहित ।।३६९।।
अध्ययन एइ से सकल शास्त्र सार । तवे जे ना लइ दोष आमा सभाकार ।।३७०।।
मूले जे वाखान तुमि ज्ञातव्य सेइ से । ताहाते ना लय चित्त निज कर्म दोषे ।।३७१।।

में एक ठौर पर बैठकर पुस्तक पढ़ा रहे थे तो उस समय एक विप्र श्रेष्ठ ने एक श्लोक पढ़ा था ।। ३५६ ।। "भागवत के उस श्लोक को सुनते ही आप मूर्च्छित हो गये–शरीर में कहीं प्राण न रहा हम तो सब विस्मित हो गये ।। ३५७ ।। फिर सचेत होकर आप ने जो क्रन्दन किया था उसे देखने से तो यही लगता था कि गंगाजी आकर (आपके नेत्रों से) मिल गई हैं ।। ३५८ ।। "अन्त में आपको जो कँप कपी हुई उसमें सौ २ मनुष्य भी आपको पकड़ कर स्थिर नहीं रख सके थे ।।३५९ ।। चरण से लेकर मस्तक पर्यन्त समस्य शरीर पुलकावलि से छा गया था, और आपकी गौर कान्ति लार, स्वेद और धूल से ढक गई थी ।। ३६० ।। "आपके उस अपूर्व भाव को जिन जिन ने उस समय देखा, सभी ने यही कहा कि "यह पुरुष तो नारायण है" ।। ३६१ । किसी ने यह भी कहा कि जो कृपा इन पर हुई है वह तो व्यास देव, शुकदेव, नारदजी और प्रह्लाद जी के ही योग्य है ।। ३६२ ।। "सब लोगों ने मिलकर बड़ा जोर लगाकर आपको पकड़ रक्खा था । कुछ समय बाद आपको बाहर का ज्ञान हुआ था ।। ३६३ ।। यह सब वृत्तान्त आप कुछ नहीं जानते हैं। और एक बात कहते हैं, ध्यान देकर सुनिये ।। ३६४ ।। "दस दिन से आप जितनी व्याख्या करते हैं, उनमें प्रत्येक शब्द में आप कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-नाम का ही बखान कर रहे हैं ।। ३६५ ।' दस दिन में आज तक का पाठ सब व्यर्थ हो गया । आप से तो कुछ कहने में भी हमको बड़ा डर लगता है ।। ३६६ ।। "आपको तो एक-एक शब्द के अनेक अर्थ आते हैं । जो कुछ भी आप हँसते हुए सहज में कह जाते हैं, उसका उत्तर भला कौन दे सकता है ।। ३६७ ।। यह सुनकर प्रभु बोले–"जब दस दिन से तुम्हारा पाठ व्यर्थ जा रहा है तो क्या तुमको हमसे कहना उचित नहीं था ?" ।। ३६८ ।। विद्यार्थी बोले–"व्याख्या तो आपकी उचित ही है । सचमुच ही समस्त शास्त्रों का यथार्थ अभिप्राय तो श्रीकृष्ण में ही है ।। ३६९ ।। और सब शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने का सार भी यही है, फिर भी जो हम इस सार को ग्रहण नहीं कर सकते यह हमारा ही दोष है । ३७० ।। "जिस मूल का बखान आप करते हैं जानने योग्य तो वही एक वस्तु है, परन्तु अपने कर्म-दोष (दुर्भाग्य) के कारण हमारा चित्त उसमें नहीं लगता है" ।। ३७१ ।। विद्यार्थियों

पढ़ यार वाक्ये तुष्ट हइला ठाकुर। कहिते लागिला कृपा करिया प्रचुर ।।३७२।।
प्रभु बोले "भाइ सब कहिला सुसत्य। आमार ए सब कथा अन्यत्र अकथ्य ।।३७३।।
कृष्ण वर्ण एक शिशु मुरली बाजाय। सबे देखों ताइ भाइ! बोलों सर्व्वथाय ।।३७४।
तोमा सभाकार-जार स्थाने चित्त लय। तार ठाञि पढ़ आमि दिलाङ निर्भय ।।३७५।।
कृष्ण विनु आर वाक्य ना स्फुरे आमार। सत्य आमि कहिलाङ चित्त आपनार ।।३७६।।
जत शुनि श्रवणे सकल कृष्ण नाम। सकल भुवन देखों गोविन्देर धाम ।।३७७।।
तोमा सभा स्थाने मोर एइ परिहार। आजि हैते आर पाठ नाहिक आमार ।।३७८।।
एइ बोल महा प्रभु सभारे कहिया। दिलेन पुँथिते डोर अश्रु युक्त हैया ।।३७९।।
शिष्य गण बोलेन करिया नमस्कार। आमराओ करिलाङ सङ्कल्प तोमार ।।३८०।।
तोमार स्थानेते पढ़िलाङ आमि सब। आर स्थाने करिव कि ग्रन्थ अनुभव ।।३८१।।
गुरुर विच्छेद दुःखे सर्व्व शिष्य गण। कहिते लागिला सभे करिया क्रन्दन ।।३८२।।
"तोमार मुखेते जत शुनिल व्याख्यान। जन्म जन्म हृदये रहुक सेइ ध्यान ।।३८३।।
आर स्थाने गिया कि आमरा पढ़िवाङ। सेइ भाल जत तोमा हैते जानिलाङ" ।।३८४।।
एत वलि प्रभुरे करिया हाथ जोड़। पुस्तके दिलेन सव शिष्य गण डोर ।।३८५।
हरि वलि शिष्य गण करिलेन ध्वनि। सभा कोले करिया कान्देन द्विज मणि ।।३८६।।
शिष्य गण क्रन्दन करेन अधो मुखे। डूबिलेन शिष्य गण परानन्द सुखे ।।३८७।।
रुद्ध-कण्ठ हइलेन सर्व्व शिष्य गण। आशीर्वाद करे प्रभु श्री शची नन्दन ।।३८८।।

के वचन सुनकर प्रभु प्रसन्न हुए और बड़ी भारी कृपा करते हुए कहने लगे ।। ३७२ ।। "भाइयो! जो कुछ तुम कहते हो वह सब अति ही सत्य है–पर मेरी ये बातें अन्यत्र कहीं कहने योग्य नहीं है ।। ३७३ ।। (क्या करूँ) मैं तो केवल कृष्ण वर्ण के एक शिशु को मुरली बजाते हुए जहाँ तहाँ सदा देख पाता हूँ इसी से भाइयो! उसी की ही बातें सदा कहा करता हूँ ।। ३७४ ।। "अब तुम सबका जहाँ मन लगे, वहाँ जाकर पढ़ो। (कोई शंका-भय की बात नहीं) मैं तुमको अभय दान करता हूँ ।। ३७५ ।। क्या करूँ, मेरे तो अब श्रीकृष्ण को छोड़ अन्य वचन की स्फूर्ति ही नहीं होती, मैंने अपने चित्त की सच्ची दशा कह दी ।। ३७६ ।। "मैं तो अब जो कुछ भी कानों से सुनता हूँ वह केवल 'कृष्ण' नाम ही सुनता हूँ और समस्त संसार को गोविन्द के धाम के रूप में ही देख पाता हूँ ।। ३७७ ।। तुम सबों के निकट अब तो मेरा यही निवेदन है कि आज से मैं तुम्हें और पाठ नहीं पढ़ा सकूँगा ।। ३७८ ।। यह बात महा प्रभु ने सबसे कहकर, नेत्रों से अश्रु बहाते हुए, अपनी पुस्तक बाँध लीं ।। ३७९ ।। तब तो शिष्य गण भी नमस्कार करके बोले–"हमने भी आपकी तरह संकल्प कर लिया ।। ३८० ।। "आपके निकट हम सब कुछ पढ़ चुके अब और दूसरी जगह क्या कुछ पुस्तक पढ़ें ।। ३८१ ।। इस प्रकार सब शिष्य गण श्रीगुरु देव के बिछुड़ने के दुःख में रोते हुए बहुत कुछ कहने लगे ।। ३८२ । "आपके मुख से जो कुछ भी व्याख्या सुनी है, उसका जन्म जन्मान्तर तक हमारे हृदय में ध्यान बना रहे ।। ३८३ ।। अब हम किसी दूसरे स्थान में जाकर क्या पढ़ें। जो कुछ आप से सीख लिया वही उत्तम है ।। ३८४ ।। इतना कहकर और प्रभु को हाथ जोड़ कर, सब शिष्यों ने अपनी अपनी पुस्तकें बाँध लीं ।। ३८५ ।। और "हरि-हरि" कहते हुए ध्वनि की, प्रभु सबसे लिपट कर रोने लगे ।। ३८६ । शिष्य गण भी मुख नीचे करके रोने लगे और परमानन्द सुख में डूब गये ।। ३८७ ।। रोते २ शिष्यों के कण्ठ रुक गये। प्रभु श्री शची सबको आशीर्वाद देने लगे ।। ३८८ ।। 'जो यदि मैंने एक दिन

"दिवसेको आमि जदि हइ कृष्णदास । तबे सिद्ध हउ तोमा सभार अभिलाष ॥३८९॥
तोमरा सकल लह कृष्णेर शरण । कृष्ण नामे पूर्ण हउं सभार बदन ॥३९०॥
निरवधि श्रवणे शुनह कृष्ण नाम । कृष्ण हउ तोमा सभाकार धन प्राण ॥३९१॥
जे पढ़िल से-इ भाल आर कार्ज नाञ्चि । सभे मिलि कृष्ण वलिवाङ एक ठाञि ॥३९२॥
कृष्णेर कृपाय शास्त्र स्फुरुक् सभार । तुमि सब जन्म जन्म वान्धव आमार" ॥३९३॥
प्रभुर अमृत बाक्य शुनि शिष्य गण । परम आनन्द मन हइलेन तत्क्षण ॥३९४॥
से सब शिष्येर पाये मोर नमस्कार । चैतन्येर शिष्यत्वे हइल भाग्य जार ॥३९५॥
से सब कृष्णेर दास जानिह निश्चय । कृष्ण जारे पढ़ायेन से कि अन्य हय ॥३९६॥
से विद्या विलास देखि लेन जे जे जन । ताहारे देखिले हय बन्ध विमोचन ॥३९७॥
हइल पापिष्ठ जन्म नहिल तखने । हइलाङ वञ्चित से सुख-दरशने ॥३९८॥
तथापिह एइ कृपा कर महाशय । से विद्या-विलास मोर रहुक हृदय ॥३९९॥
पढ़ाइलेन नवद्वीपे वैकुण्ठेर राय । अद्यापिह चिह्न आछे सर्व्व नदीयाय ॥४००॥
चैतन्य लीलार कभो अवधि ना हये । 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' एइ वेदे कहे ॥४०१॥
एइ हैते परिपूर्ण विद्यार विलास । सङ्कीर्त्तन आरम्भेर हइल प्रकाश ॥४०२॥
चतुर्द्दिके अश्रु कण्ठे कान्दे शिष्यगण । सदय हइया प्रभु बोलेन बचन ॥४०३॥
पढ़िलाङ शुनिलाङ एत काल धरि । कृष्णेर कीर्त्तन कर परिपूर्ण करि ॥४०४॥
शिष्य गण बोलेन "के मन से ही कीर्त्तन" । आपने शिखाय प्रभु श्री शचीनन्दन ॥४०५॥
हरये नमः कृष्ण जादवाय नमः । गोपाल गोविन्द राम श्री मधु सूदन ॥४०६॥

के लिये भी श्रीकृष्ण—भक्ति की हो तो तुम सबकी अभिलाषाएँ पूर्ण हों ॥ ३८९ ॥ तुम सब श्रीकृष्ण के शरणागत बनो । तुम्हारे मुख श्रीकृष्ण नाम से पूरित रहें ॥ ३९० ॥ "कानों से तुम निरन्तर कृष्ण-नाम सुनो और श्रीकृष्ण ही तुम सबों के धन प्राण हों ॥ ३९१ ॥ जो पढ़ लिया सो पढ़ लिया, अब अधिक का प्रयोजन नहीं । बस अब तो हम सब मिलकर एक स्थान पर श्रीकृष्ण कीर्तन करें ॥ ३९२ ॥ "श्रीकृष्ण—कृपा से तुमको सब शास्त्रों की स्फूर्त्ति हो । तुम तो सब मेरे जन्म-जन्म के बन्धु हो ॥ ३९३ ॥ प्रभु के अमृतमय वचनों को सुनकर, शिष्यों के हृदय तत्काल ही परमानन्द से पूर्ण हो गये ॥ ३९४ ॥ उन सब शिष्यों के चरणों में मेरा नमस्कार है कि जिनको श्रीचैतन्य चन्द्र के शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ॥ ३९५ ॥ यह निश्चय जानो कि वे सब श्रीकृष्ण के दास हैं । श्रीकृष्ण जिनको स्वयं पढ़ावें, भला वे कोई अन्य हो सकते हैं ॥ ३९६ ॥ जिन लोगों ने प्रभु का वह विद्या—विलास देखा, उनके दर्शन से ही संसार के बन्धन खुल जाते हैं ॥ ३९७ ॥ इस पापी का जन्म तब न हुआ ! हाय मैं इस सुख के दर्शन से वंचित ही रहा ॥ ३९८ ॥ तथापि हे महाशय ! यह कृपा करो कि वह विद्या—विलास मेरे हृदय में रहे ॥ ३९९ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ ने नवद्वीप में छात्रों को पढ़ाया था उसके चिन्ह आज भी सब नदिया में वर्तमान हैं ॥४०० । श्रीचैतन्यचन्द्र की लीला का कभी अन्त नहीं है । वेद उसका केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही कहते हैं ॥ ४०१ ॥ प्रभु का विद्या—विलास यहाँ सम्पूर्ण हुआ । अब आगे नाम-संकीर्तन का प्रकाश आरम्भ हुआ ॥ ४०२ ॥ चारों ओर शिष्यों को गदगद होकर रोते देख प्रभु सदय होकर बोले—"भाइयो ! इतने समय तक तो पढ़ाई-लिखाई की । अब जी भर कर श्री कृष्ण—का कीर्तन करें ॥ ४०३ ॥ ४०४ ॥ शिष्य गण बोले—"संकीर्तन कैसा" ? तब प्रभु श्री शचीनन्दन स्वयं उनको सिखाने लगे ॥४०५॥ गाना ॥केदार राग॥

दिशा दिसाइया प्रभु हाथे तालि दिया । आपने कीर्त्तन करे शिष्यगण लैया ।।४०७।।
आपने कीर्त्तन नाथ करये कीर्त्तन । चौ दिगे वेढ़िया गाय सब शिष्य गण ।।४०८।।
आविष्ट हइया प्रभु निज नाम रसे । गड़ा गड़ि जाय प्रभु धूलाय आवेशे ।।४०९।।
बोल बोल वलि प्रभु चतुर्द्दिके पड़े । पृथिवी विदीर्ण हय आछाड़े आछाड़े ।।४१०।।
गण्ड गोल शुनि सब नदिया नगर । धाइया आइला सब ठाकुरेर घर ।।४११।।
निकटे वसये जत वैष्णवेर घर । कीर्त्तन शुनिआ सभे आइला सत्वर ।।४१२।।
प्रभुर आवेश देखि सर्व्व भक्त गण । परम अपूर्व्व सभे भावे मने मन ।।४१३।।
परम सन्तोष सभे हइला अन्तरे । एवे से कीर्त्तन हैल नदिया नगरे ।।४१४।।
ए मत दुर्लभ भक्ति आछये जगते । नयन सफल हय ए भक्ति देखिये ।।४१५।।
जत उद्धतेर सीमा एइ विश्वम्भर । प्रेम देखिलाङ नारदादिर दुष्कर ।।४१६।।
हेन उद्धतेर जदि हेन भक्ति हय । ना वुझि कृष्णेर इच्छा एवा किवा हय ।।४१७।।
क्षणेके हइला बाह्‌ज विश्वम्भर राय । सवे प्रभु 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलये सदाय ।।४१८।।
बाह्‌ज हइलेओ बाह्‌ज कथा नाहि कहे । सर्व्व वैष्णवेर गला धरिया कान्दये ।।४१९।।
सभे मिलि ठाकुरेरे स्थिर कराइया । चलिला वैष्णव गण महानन्द हैया ।।४२०।।
कोन कोन पढ़ुया सकल प्रभु सङ्गे । उदासीन पथ लइलेन प्रेम रङ्गे ।।४२१।।
आरम्भिला महा प्रभु आपन प्रकाश । सकल भक्तेर दुःख हइल विनाश ।।४२२।।
श्री कृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ।।४२३।।

"हरि हरये नमः कृष्ण याद वाय नमः" । गोपाल गोबिन्द राम श्री मधुसूदन ॥ ४०६ ॥ (गाने लगे) इस प्रकार मार्ग बताकर प्रभु हाथों से ताली बजाते हुए शिष्यों को साथ लेकर कीर्तन करने लगे ॥ ४०७ ॥ कीर्तन नाथ आज आप ही कीर्तन कर रहे हैं और शिष्य लोग चारों ओर घेरे हुए गा रहे हैं ॥ ४०८ ॥ कीर्तन करते करते प्रभु अपने नाम के रस में मतवाले होकर धूल में लोट पोट होने लगे ॥ ४०९ ॥ "बोलो बोलो" कहते हुए प्रभु इधर से उधर चारों ओर गिरते-पड़ते हैं—उनके पछाड़-पछाड़ पर पृथ्वी फटी सी जाती है ॥ ४१० ॥ कोलाहल सुनकर सब नदिया वासी दौड़े दौड़े प्रभु के घर आये । ४११ ॥ जितने पड़ौसी वैष्णव लोग थे, कीर्तन सुनकर सब झट पट आ गये ॥ ४१२ ॥ प्रभु के आवेश भाव को देखकर सब भक्तों के मन में बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥ ४१३ ॥ सबके मन में बड़ा संतोष भी हुआ कि "हाँ अब हुआ नदिया में कीर्तन ॥ ४१४ ॥ "अहा ! ऐसी दुर्लभ भक्ति भी संसार में है ! इस भक्ति के दर्शन से आज नेत्र सफल हो गये !" ॥ ४१५ ॥ "इस विश्वम्भर में, जहाँ पहले बेहद उद्दण्डता थी, वहीं आज नारदादिकों को भी दुर्लभ प्रेम दिखाई देता है ॥ ४१६ ॥ "यदि ऐसे उद्दण्ड में भी ऐसी भक्ति हो सकती है तो न जाने कृष्णेच्छा से आगे क्या होगा" ? ॥ ४१७ ॥ थोड़ी देर में प्रभु सचेत हुए फिर भी केवल "कृष्ण–कृष्ण" ही निरन्तर बोलते रहे ॥ ४१८ ॥ प्रभु, बाहर की दशा में आने पर भी, बाहर की बातें नहीं करते, बस वैष्णवों के कण्ठ पकड़ पकड़ कर रोते हैं ॥ ४१९ ॥ सब वैष्णवों ने मिल कर प्रभु को शान्त स्थिर किया और फिर सब बड़े आनन्द में अपने-अपने घर चले गये ॥ ४२० ॥ कोई-कोई विद्यार्थी ने तो प्रभु के संग प्रेम रंग में रंग कर वैराग्य का मार्ग पकड़ा ॥ ४२१ ॥ अब महाप्रभु ने अपना (स्वरूप) प्रकाश आरम्भ किया, जिससे कि सब भक्तों का दुःख–नाश हो गया ॥ ४२२ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जानकर यह वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनके ही गुणगान को निवेदन करता है ॥ ४२३ ॥

॥ इति ॥

दूसरा अध्याय

जय जय जगत मङ्गल गौर चन्द्र। दान देह हृदये तोमार पद द्वन्द ॥१॥
भक्त गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय। शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥२॥
ठाकुरेर प्रेम देखि सर्व्व भक्त गण। परम विस्मित हैल सभाकार मन ॥३॥
परम सन्तोषे सभे अद्वैतेर स्थाने। सभे कहिलेन जत हैल दरशने ॥४॥
भक्ति योग प्रभावे अद्वैत महा बल। अवतरि याछे प्रभु जानेन सकल ॥५॥
तथापि अद्वैत तत्त्व वूझन ना जाय। सेइ क्षणे प्रकाशिया तखने लुकाय ॥६॥
शुनिञा अद्वैत बड़ हर्ष हैला। परम आविष्ट हइ कहि ते लागिला ॥७॥
मोर आज कार कथा शुन भाइ सब। निशिते देखिलुँ आज कछु अनुभव ॥८॥
गीतार पाठेर अर्थ भाल ना बुझिया। थाकिलाङ दुःख भाव उपास करिया ॥९॥
कथो रात्रे आमारे वोलये एक जन। उठह आचार्ज झाट करह भोजन ॥१०॥
एइ पाठ एइ अर्थ कहिल तोमारे। उठिया भोजन कर पूजह आमारे ॥११॥
आर केने दुःख भाव पाइले सकल। जे लागि सङ्कल्प कैल से हइल सफल ॥१२॥
जत उपवास कैले जत आराधन। जतेक करिले कृष्ण वलिया क्रन्दन ॥१३॥
जा आनिते भुज तुलि प्रतिज्ञा करिला। से प्रभु तोमारे एवे विदित हइला ॥१४॥
सर्व्व देशे हइवेक कृष्णेर कीर्त्तन। घरे घरे नगरे नगरे अनु क्षण ॥१५॥

हे जगन्मंगल गौरचन्द्र ! आपकी जय हो जय हो। अपने श्रीयुगल चरण को हमारे हृदय को प्रदान कीजिए ॥ १ ॥ हे गौरांग देव ! भक्त-मण्डली सहित आपकी जय हो, जय हो श्रीचैतन्य देव की कथा सुनने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ २ ॥ श्री गौर प्रभु के श्रीकृष्ण-प्रेम के दर्शन कर सब भक्तों के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३ ॥ उन्होंने जो कुछ इधर आँखों से देखा, उससे परम संतुष्ट होकर, वह सब कुछ श्री अद्वैत प्रभु को जा सुनाया ॥ ४ ॥ भक्ति योग के प्रभाव से महा वलीयान् श्रीअद्वैत यह सब जानते हैं कि प्रभु ने अवतार लिया है, ॥ ५ ॥ तथापि श्रीअद्वैत प्रभु का तत्त्व कुछ समझ में नहीं आता है—कारण कि वे क्षण में प्रकट होकर तत्काल ही छिप जाते हैं ॥ ६ ॥ भक्तों की बात सुनकर श्रीअद्वैत बड़े प्रसन्न हुए और बड़े आवेश में आकर कहने लगे ॥ ७ ॥ "हे भाइयो ! तुम सब मेरी आज की एक बात सुनो। आज रात में मुझे कुछ अनुभव हुआ है ॥ ८ ॥ (कल) गीता के किसी एक पाठ का अर्थ अच्छी तरह समझ न पाने से मैं बड़ा दुःखित हुआ और उपवास करके पड़ा रहा ॥ ९ ॥ कुछ रात होने पर किसी ने मुझे यह कहा कि "आचार्य ! उठो और झट भोजन करो" ॥ १० ॥ "वह पाठ यह है और उसका अर्थ यह है—यह मैंने तुम्हें बता दिया। अब उठकर भोजन करो और मेरी पूजा करो ॥ ११ ॥ "सब कुछ तो पा लिया, फिर अब क्यों दुःख मानते हो ? जिस कार्य के लिये तुमने संकल्प किया था, वह तो सफल हो गया ॥ १२ ॥ "तुमने जितने उपवास किये, जितनी आराधना की और "कृष्ण-कृष्ण" कह कह कर जितना क्रन्दन किया, ॥ १३ ॥ जिनको ले आने के लिये भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की, वे ही तुम्हारे प्रभु इस समय प्रकट हो गये हैं ॥ १४ ॥ "अब सब देश में, नगर-नगर में, घर-घर में निरन्तर श्रीकृष्ण-कीर्तन होगा ॥१५॥ अब तुम्हारी

ब्रह्मार दुर्लभ मूर्त्ति जगते जतेक। तोमार प्रसादे मात्र सभे देखि वेक ॥१६॥
एइ श्री वासेर घरे जतेक वैष्णव। ब्रह्मादिर दुर्लभ देखिव अनुभव ॥१७॥
भोजन करह तुमि आमार विदाय। आर वार आसिवाङ भोजन बेलाय ॥१८॥
चक्षु मेलि चाहि देखि-एइ विश्वम्भर। देखिते देखिते मात्र हइला अन्तर ॥१९॥
कृष्णेर रहस्य किछु ना पारि वुझिते। कोन रूपे प्रकाश वा करेन काहाते ॥२०॥
इहार अग्रज पूर्व्व विश्व रूप नाम। आमासङ्गे आसि गीता करिता व्याख्यान ॥२१॥
एइ शिशु परम मधुर रूप वान। भाइ के डाकिते आइसेन मोर स्थान ॥२२॥
चित्त वृत्ति हरे शिशु सुन्दर देखिया। आशीर्व्वाद करों भक्ति हउक वलिया ॥२३॥
आमिजात्ये आछे बड़ मानुषेर पुत्र। नीलाम्बर चक्रवर्त्ती ताहार दौहित्र ॥२४॥
आपनेओ सर्व्व गुणे उत्तम पण्डित। ताहार कृष्ण ते भक्ति हइते उचित ॥२५॥
बड़ सुखी हइलाङ ए कथा शुनिञा। आशीर्वाद कर सभे तथास्तु वलिया ॥२६॥
श्री कृष्णेर अनुग्रह हउक सभारे। कृष्ण नामे मत्त हओ सकल संसारे ॥२७॥
जदि सत्य वस्तु हय तवे एइ खाने। सभे आसिवेन एइ बामनार स्थाने" ॥२८॥
आनन्दे अद्वैत करे परम हुङ्कार। सकल वैष्णव करे जय जय कार ॥२९॥
'हरि' 'हरि' वलि डाके वदन सभार। उठिल कीर्त्तन रूप कृष्ण अवतार ॥३०॥
केहो वोले "निमाञि पण्डित भाल हैले। तवे सङ्कीर्त्तन करि महा कुतूहले" ॥३१॥
आचार्येर प्रणति करिया भक्त गण। आनन्दे चलिला करि कृष्णेर कीर्त्तन ॥३२॥

कृपा से जगत् के सभी प्राणी ब्रह्मा आदि के भी दुर्लभ मूर्त्ति के दर्शन करेंगे ॥ १६ ॥ "इसी श्रीवास के घर में सब वैष्णव जन ब्रह्मा आदि के भी दुर्लभ अनुभव को प्राप्त करेंगे ॥ १७ ॥ अब तुम भोजन करो, मैं भी जाता हूँ। फिर किसी भोजन के समय आऊँगा ॥ १८ ॥ इतने ही में मेरी आँखें खुल गयीं तो क्या देखता हूँ कि यही विश्वम्भर (गौर) मेरे देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो गया ॥ १९ ॥ भाइयो ! श्रीकृष्ण का रहस्य कुछ समझ में नहीं आता। न जाने वे किस रूप में, किसके भीतर अपना प्रकाश करते हैं। ॥ २० ॥ विश्वरूप नामक इसके बड़े भाई पहले मेरे पास आकर गीता की व्याख्या किया करते थे ॥ २१ ॥ (उस समय) परम मधुर रूपवान् यह बालक (विश्वम्भर) अपने भाई को बुलाने मेरे पास आया करता था ॥ २२ ॥ उस सुन्दर बालक को देखकर चित्त मोहित हो जाता था और "इसे भक्ति मिले"—कह कर मैं आशीर्वाद किया करता था ॥ २३ ॥ वैसे भी वह ऊँचे कुल में बड़े आदमी का पुत्र है। श्री नीलाम्बर चक्रवर्त्ती का धेवता है ॥ २४ ॥ वह आप भी सब गुणों से पूर्ण उत्तम पण्डित है। उसकी श्रीकृष्ण में भक्ति होनी उचित ही है ॥ २५ ॥ मैं उसकी यह बात सुनकर बड़ा सुखी हुआ। तुम सब लोग भी उसे "तथास्तु" कह कर आशीर्वाद दो ॥ २६ ॥ सब पर श्रीकृष्ण की कृपा होवे और यह सब संसार श्रीकृष्ण नाम में मत्त हो जाय ॥ २७ ॥ यदि बात सच्ची है अर्थात् यदि श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है तो उनको स्वयं ही इस ब्राह्मण के घर आना होगा ॥ २८ ॥ (कहते-कहते) आनन्द के मारे अद्वैत प्रभु जोर-जोर से हुँकार करने लगे और सब वैष्णव लोग जय जयकार करने लगे ॥ २९ ॥ सबके मुख "हरि बोल" "हरि बोल" पुकारने लगे। इस प्रकार वहाँ हरि नाम संकीर्तन के रूप में श्रीकृष्ण का अवतार हो गया ॥ ३० ॥ कोई बोले—"निमाइ पण्डित के अच्छे होने पर हम बड़े आनन्द से संकीर्तन किया करेंगे" ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण कीर्तन कर लेने पर भक्तों ने श्री अद्वैताचार्य को प्रणाम किया और आनन्द में मग्न, घर चले गये ॥ ३२ ॥ प्रभु के साथ जिस

प्रभु सङ्गे जहार जहार देखा हय। परम आदरे सभे रहि सम्भाषय ॥३३॥
प्रातः काले जबे प्रभु चले गङ्गा स्नाने। वैष्णव सभार सने हय दरशने ॥३४॥
श्री वासादि देखिले ठाकुर नमस्करे। प्रीत हैया भक्त गण आशीर्व्वाद करे ॥३५॥
"तोमार हउक भक्ति कृष्णेर चरणे। मुखे कृष्ण बोल कृष्ण शुनह श्रवणे ॥३६॥
कृष्ण भजिले से बाप सब सत्य हय। ना भजिले कृष्ण रूप विद्याकिछू नय ॥३७॥
कृष्ण से जगत् पिता कृष्ण से जीवन। दृढ़ कर भज बाप कृष्णेर चरण ॥३८॥
आशीर्व्वाद शुनिञा प्रभुर बड़ सुख। सभारे चाहेन प्रभु तुलिया श्री मुख ॥३९॥
"तोमरा से कर सत्य करि आशीर्व्वाद। तोमरा वा केने अन्य करिवा प्रसाद ॥४०॥
तोमरा से पार कृष्ण भजन दिवारे। दासेरे सेविले से कृष्ण अनुग्रह करे ॥४१॥
तोमरा जे आमारे शिखाओ विष्णु धर्म्म। तेञि बुझि आमार उत्तम आछे कर्म्म ॥४२॥
तोमा सभा सेविले से कृष्ण-भक्ति पाइ। एत बलि कारो पाये धरे सेइ ठाँइ ॥४३॥
निङ्गाड़ये वस्त्र कारो करिया जतने। धुति वस्त्र तुलि कारो देन त आपने ॥४४॥
कुश गङ्गा-मृत्तिका काहारो देन करे। साजि वहि कोन दिन चले कारो घरे ॥४५॥
सकल वैष्णव गण हाय हाय करे। कि कर ? किकर ? तभो करे विश्वम्भरे ॥४६॥
एइ मत प्रति दिन प्रभु विश्वम्भर। आपन दासेर हय आपने किङ्कर ॥४७॥
कोन कर्म्म सेव केर कृष्ण नाहि करे। सेव केर लागि निज धर्म्म परि हरे ॥४८॥
सकल सुहृत कृष्ण सर्व वेदे कहे। एतेके कृष्णेर केहो द्वेष जोग्य नहे ॥४९॥

जिसका भी मिलन होता है, वही खड़ा होकर बड़े आदर के साथ प्रभु से वार्त्तालाप करता है ॥ ३३ ॥ प्रातः काल जब प्रभु गङ्गा-स्नान को जाते हैं, तो सब वैष्णवों के दर्शन होते हैं ॥ ३४ ॥ प्रभु श्रीवास आदि (वैष्णवों) को देख कर नमस्कार करते है, और भक्त लोग प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं यथा ॥३५॥ श्रीकृष्ण के चरणों में तुम्हारी भक्ति होवे, मुख से कृष्ण–कृष्ण बोलो और कानों से कृष्ण-कृष्ण सुनो ॥ ३६ ॥ "देखो भाई ! श्रीकृष्ण का भजन करने पर ही रूप, विद्या आदि सत्य सफल होते हैं, कृष्ण को न भजने पर ये सब कुछ भी नहीं हैं ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्ण ही जगत्पिता हैं। श्रीकृष्ण ही सबके जीवन हैं। अतएव भाई ! दृढ़ता पूर्वक श्रीकृष्ण-चरण को भजो ॥ ३८ ॥ आशीर्वाद सुनकर प्रभु को बड़ा सुख हुआ और प्रभु श्रीमुख उठा कर उनकी ओर देखते हुए बोले ॥३९॥ आप लोग ही सच्चा आशीर्वाद देते हैं। आप लोग भला कोई अन्य प्रकार की कृपा क्यों करेंगे ? ॥ ४० ॥ "आप लोग ही कृष्ण–भजन देने में समर्थ हो (कारण कि) दासों का सेवन करने पर भी श्रीकृष्ण कृपा करते हैं ॥ ४१ ॥ आप लोग जो मुझे वैष्णव धर्म सिखाते हैं, उससे मैं समझता हूँ कि मेरे भाग्य अच्छे हैं ॥ ४२ ॥ "आप सबों के सेवन से मुझे भी कृष्ण–भक्ति मिले" इतना कहकर वहीं पर किसी के चरण पकड़ लेते हैं ॥ ४३ ॥ कभी बड़े यत्न के साथ किसी के गीले वस्त्र निचोड़ देते हैं। किसी की धोती आदि वस्त्र उठाकर अपने आप हाथ में पकड़ा देते हैं ॥ ४४ ॥ किसी के हाथ में कुश और गङ्गा की मृत्तिका लाकर देते हैं और किसी दिन, किसी की पूजा की डाली उठा उसके घर को चलते हैं ॥ ४५ ॥ प्रभु की इन बातों को देखकर वैष्णव वृन्द हाय ! हाय ! क्या करते हो ? क्या करते हो ? इस प्रकार कहते हैं किन्तु श्रीविश्वम्भर चन्द्र तब भी करते ही हैं ॥ ४६ ॥ इस प्रकार से प्रति दिन प्रभु विश्वम्भर अपने दासों के दास बनते हैं ॥ ४७ ॥ भला श्रीकृष्ण ने अपने सेवकों के कौन से काम नहीं किये ? सेवक के लिये वे अपने धर्म तक को छोड़ देते हैं ॥ ४८ ॥ सब

ताहो परि हरे कृष्ण भक्तेर कारणे । तार साक्षी दुर्योधन वंशेर मरणे ।।५०।।
कृष्णेर करये सेवा भक्तेर स्वभाव । भक्त लागि कृष्णेर सकल अनुभाव ।।५१।।
कृष्णेरे बेचिते पारे भक्त भक्ति-रसे । तार साक्षी सत्यभामा द्वारका निवासे ।।५२।।
सेइ प्रभु गौराङ्ग सुन्दर विश्वम्भर । गूढ़ रूपे आछे नवद्वीपेर भितर ।।५३।।
चिनिते ना पारे केहो प्रभु आपनार । जा सभार लागिया हैला अवतार ।।५४।।
कृष्ण भजिवार जार आछे अभिलाष । से भजुक कृष्णेर मङ्गल निज दास ।।५५।।
सभारे शिखाय गौर चन्द्र भगवाने । वैष्णवेर सेवा प्रभु करिया आपने ।।५६।।
साजि वहे धुति वहे लज्जा नाहि करे । सम्भ्रमे वैष्णव गण हस्ते आसि धेर ।।५७।।
देखि विश्वम्भरेर विनय भक्त गणे । अकैतवे आशीर्वाद करे काय मने ।।५८।।
भज कृष्ण, स्मर कृष्ण, शुन कृष्ण नाम । कृष्ण हउ सभार जीवन धन प्राण ।।५९।।
बोलह बोलह कृष्ण हओ कृष्ण दास । तोमार हृदये हउ कृष्णेर प्रकाश ।।६०।।
कृष्ण वइ आर नाहिं स्फुरुक तोमार । तोमा हैते दुःख जाओ आमा सभाकार । ६१।।
जे जे अज्ञ जन कीर्त्तनेर हासे । तोमा हैते ताहारा डुबुक कृष्ण रसे ।।६२।।
जेन तुमि शास्त्रे सब जिनिले संसार । तेन कृष्ण भजि कर पाषण्डि संहार ।।६३।।
तोमार प्रसादे जेन आमरा सकल । सुखे कृष्ण गाइ नाचि हइया विह्वल ।।६४।।
हस्त दिया प्रभुर अङ्गेते भक्त गण । आशीर्वाद करे दुःख करि निवेदन ।।६५।।

वेदों ने श्रीकृष्ण को सबका सुहृद् कहा है अतएव श्रीकृष्ण के लिये कोई भी द्वेष के योग्य नहीं है ।। ४९ ।। परन्तु भक्तों के लिये श्रीकृष्ण अपने इस सर्व-सुहृद् स्वभाव को भी परित्याग कर देते हैं वंश सहित दुर्योधन का मरण ही इसका प्रमाण है ।। ५० ।। भक्त का स्वभाव तो होता है श्रीकृष्ण की सेवा करना । और श्री कृष्ण की समस्त चेष्टाएं होती है भक्त के लिये ।। ५१ ।। भक्त श्रीकृष्ण को भक्ति रस में बेच तक सकता है । उसका प्रमाण द्वारिका के महल में श्री सत्यभामा जी हैं ।। ५२ ।। वही प्रभु श्रीकृष्ण ही तो गौरांग सुन्दर विश्वम्भर के गुप्त रूप में नवद्वीप में विराजमान हैं ।। ५३ ।। जिन सबके लिये आपका अवतार हुआ है, वे कोई भी अपने प्रभु को पहचान नहीं पा रहे हैं ।। ५४ ।। श्रीकृष्ण-भजन की जिसकी इच्छा हो, वह प्रभु के मङ्गलकारी निज दासों का भजन करे ।। ५५ ।। यही भगवान् गौर चन्द्र वैष्णव जनों की अपने आप सेवा करके सब को सिखला रहे हैं ।। ५६ ।। प्रभु पूजा की डलिया उठाकर चलते हैं, धोती ले चलते हैं, लज्जा नहीं करते हैं । यह देख वैष्णव जन हड़ बड़ा कर झट आकर उनका हाथ पकड़ लेते हैं ।। ५७ ।। भक्त वृन्द विश्वम्भर चन्द्र के विनय को देखकर उनको वाणी और हृदय से निष्कपट आशीर्वाद देते हैं, यथा ।। ५८ ।। "श्रीकृष्ण को भजो, श्रीकृष्ण का सुमरन करो, श्रीकृष्ण नाम सुनो, श्रीकृष्ण हम सबके जीवन धन प्राण हों ।। ५९ ।। बोलो, कृष्ण बोलो, कृष्ण के दास होओ । तुम्हारे हृदय में श्रीकृष्ण का प्रकाश हो ।। ६० ।। "श्रीकृष्ण के अतिरिक्त तुमको और कुछ भी स्फुरण न हो । तुम्हारे द्वारा हम सब के दुःख दूर हों ।। ६१ ।। जो मूढ लोग आज कीर्तन की हँसो उड़ाते हैं, तुम्हारे द्वारा वे सब श्रीकृष्ण के भक्ति रस में डूबें ।। ६२ ।। "जैसे तुमने शास्त्रार्थ में सब संसार को जीत लिया है । वैसे ही अब श्रीकृष्ण का भजन करके पाखण्डियों का संहार करो ।। ६३ । तुम्हारी कृपा से हम सब भी मतवाले होकर श्रीकृष्ण के नाम, रूप, लीला आदि को सुख से गा-गा कर नाच सकें ।। ६४ ।। भक्त लोग प्रभु के श्रीअंग पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते हैं और अपना दुःख सुनाते हैं यथाः—।। ६५ ।। "वत्स ! इस नवद्वीप में जितने भी अध्या-

एइ नवद्वीपे बाप ! जत अध्यापक । कृष्ण-भक्ति वाखानिते सभे हय वाके ॥६६॥
कि संन्यासी कि तपस्वी किवा ज्ञानी जत । वड़ बड़ एइ नवद्वीपे आछे कत ॥६७॥
केहो ना वाखाने बाप कृष्णेर कीर्त्तन । ना करे व्याख्या आरो निन्दे सर्व क्षण ॥६८॥
जतेक पापिष्ठ श्रोता सेइ बोल धरे । तृण ज्ञान केहो आमा सभारे ना करे ॥६९॥
सन्तापे पोडये बाप ! सब्र देह भार । कोथाओ ना शुनि कृष्ण कीर्त्तन प्रचार ॥७०॥
एखने प्रसन्न कृष्ण हइला सभारे । ए पथे प्रविष्ट करि दिलेन तोमारे ॥७१॥
तोमा हैते हइवेक पाषण्डीर क्षय । मनेते आमरा इहा बुझिल निश्चय ॥७२॥
चिरजीवी हओ तुमि वलि कृष्ण नाम । तोमा हैते व्यक्त हउ कृष्ण गुण ग्राम" ॥७३॥
भक्त आशीर्वाद प्रभु शिरे करि लये । भक्त आशीर्वाद से कृष्णेते भक्ति हये ॥७४॥
शुनिञा भक्तेर दुःख प्रभु विश्वम्भर । प्रकाश हइते चित्त हइल सत्वर ॥७५॥
प्रभु बोले "तुमि" सब कृष्णेर दयित । तोमरा जे बोल सेइ हइव निश्चित ॥७६॥
धन्य मोर जीवन तोमरा बोल भाल । तोमरा राखिले ग्रासि वारे नारे काल ॥७७॥
कोन द्वार हय पाप पाषण्डीर गण । सुखे गिया कर कृष्ण चन्द्रेर कीर्त्तन ॥७८॥
भक्त दुःख प्रभु कभू सहिते ना पारे । भक्त लागि कृष्णेर सर्वत्र अवतारे ॥७९॥
एत बुझि तोमरा आनाइवा कृष्ण चन्द्र । नवद्वीपे कराइवा वैष्णव आनन्द । ८०॥
तोमा सभा हैते हैव जगत उद्धार । कराइवा तोमरा कृष्णेर अवतार ॥८१॥
सेवक करिया मोरे सभेइ जानिवा । एइ वर-मोरे कभू ना परिहरिवा ॥८२॥

पक हैं, वे श्रीकृष्ण की भक्ति बखानने के समय सब गूँगे हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ इस नवद्वीप में कितने ही बड़े बड़े सन्यासी, तपस्वी और ज्ञानी जन हैं ॥ ६७ ॥ परन्तु वत्स ! कोई भी श्रीकृष्ण-कीर्तन का वर्णन नहीं करते–गुण तो बखानते ही नहीं, उल्टा उसकी निन्दा ही सदा किया करते हैं ॥ ६८ ॥ "पापी श्रोता भी सारे उनके स्वर में स्वर मिलाते हैं और हम सबों को तो कोई तिनके के बराबर भी नहीं समझता है ॥ ६९ ॥ इस सन्ताप से वत्स ! हम सबके शरीर जले रहे हैं । हाय ! कहीं भी श्रीकृष्ण–कीर्तन की चर्चा नहीं सुन पाते हैं ॥ ७० ॥ "परन्तु अब श्रीकृष्ण हम सब पर प्रसन्न हुए हैं कि जो तुमको इस पथ में प्रवेश कराया है ॥ ७१ ॥ हम अपने मन में यह निश्चय समझ गये हैं कि तुम्हारे द्वारा पाखण्डियों का अवश्य ही नाश होगा ॥ ७२ ॥ "तुम कृष्ण नाम कहते हुए चिरञ्जीवी होओ । तुम्हारे द्वारा श्रीकृष्ण के गुण गण का प्रकाश होवे" ॥ ७३ ॥ भक्तों के आशीर्वाद को प्रभु सिर पर चढ़ाते हैं । भक्तों के आशीर्वाद से ही श्री कृष्ण में भक्ति होती है ॥ ७४ ॥ प्रभु विश्वम्भर ने भक्तों के दुःखों को सुन कर अपने को शीघ्र ही प्रकट कर देने की इच्छा की ॥ ७५ ॥ प्रभु बोले–"आप लोग सब श्रीकृष्ण के प्यारे हैं । आप लोग जो कुछ कहते हैं, वही निश्चय होगा ॥ ७६ ॥ "मेरे जीवन को धन्य है कि जो आप लोग मेरे लिये ऐसी मंगल कामना करते हैं । आप लोग यदि रक्षा करें तो काल भी नहीं खा सकता हैं ॥ ७७ ॥ फिर तुच्छ पापी पाखण्डियों के दल की क्या गिनती ? आप लोग जाकर आनन्द से श्रीकृष्ण चन्द्र का कीर्तन करें ॥ ७८ ॥ "प्रभु कभी भी भक्तों का दुःख सह नहीं सकते । भक्तों के लिये ही प्रभु के सर्वत्र अवतार होते हैं ॥ ७९ ॥ इससे प्रतीत होता है कि आप लोग भी श्रीकृष्ण चन्द्र को ले आयँगे और नवद्वीप में वैष्णवों में आनन्द करायँगे ॥८०॥ "आप सबों के द्वारा जगत् का उद्धार हो, आप लोग ही श्रीकृष्ण का अवतार करायँगे ॥ ८१ ॥ मुझको आप लोग सभी अपना सेवक जानें, और मुझे कभी न भूलें–बस यही वरदान मुझे दें" ॥ ८२ ॥ (ऐसा

सभार चरण धुलि लय विश्वम्भर। आशीर्वाद सभेइ करेन बहुतर ॥८३॥
गङ्गा स्नान करिया चलिला सभे घरे। प्रभुओ चलिला किछु हासिया अन्तरे ॥८४॥
आपन भक्तेर दुःख शुनिञा ठाकुर। पाषण्डीर प्रति क्रोध वाढ़िल प्रचुर ॥८५॥
"संहारिव सब वलि" करये हुङ्कार। "मुञि सेइ मुञि सेइ" बोले बारे बार ॥८६॥
क्षणे हासे, क्षणे कान्दे, क्षणे मूर्च्छा पाय। लक्ष्मीरे देखिया क्षणे मारिवारे जाय ॥८७॥
एइ मत हैला प्रभु वैष्णव-आवेशे। शचीना बुझये वोन व्याधि वा विशेषे ॥८८॥
स्नेह विनु शची किछु नाहि जाने आर। सभारे कहेन विश्वम्भर व्यवहार ॥८९॥
"विधाताये स्वामी निल, निल पुत्र गण। अवशिष्ट सकले आछये एक जन ॥९०॥
ताहारो किरूप मति बुझने ना जाय। क्षणे हासे क्षणे कान्दे क्षणे मूर्च्छा पाय ॥९१॥
आपने आपने कहे मने मने कथा। क्षणे बोले "छिण्डों छिण्डों पाषण्डीर माथा" ॥९२॥
क्षणे गिया गाछेर उपर डाले चढ़े। ना मेले लोचन क्षणे पृथिवीते पड़े ॥९३॥
दन्त कड़मड़ि करे माल साट मारे। गड़ा गड़ि आय, किछु बचन ना स्फुरे" ॥९४॥
नाहि शुने देखे लोक कृष्णेर विकारे। वायु-ज्ञान करि लोक बोले वान्धिवारे ॥९५॥
शची मुखे शुनि आय जे जे देखि वारे। वायु ज्ञान करि सभे बोले वान्धिवारे ॥९६॥
पाषण्डी देखिया प्रभु खेदाड़िया जाय। वायु ज्ञान करि लोक हासिया पलाय ॥९७॥
अस्ते व्यस्ते मा, ये गिया आनये धरिया। लोक वोले "पूर्व-वायु जन्मिल आसिया" ॥९८॥

कहकर) श्री विश्वम्भर चन्द्र सब की चरण-रज लेते हैं, और वे भी सब अनेक आशीर्वाद देते हैं ॥ ८३ ॥ गङ्गा–स्नान करके भक्त लोग सब अपने-अपने घर को चले और प्रभु भी मन में कुछ हँसते हुए घर आये ॥ ८४ ॥ अपने भक्तों के दुःख को सुनकर प्रभु को पाखण्डियों के ऊपर बड़ा भारी क्रोध हो आया ॥ ८५ ॥ "मैं सबका संहार कर डालूँगा" कहते हुए वे हुँकार करने लगे और बार-बार "मैं वही हूँ, मैं वही हूँ" कहने लगे ॥ ८६ ॥ वे क्षण में हँसते हैं, क्षण में रोते हैं और क्षण में मूर्च्छित हो जाते हैं। और कभी श्री लक्ष्मी जी (श्रीविष्णु प्रिया) को देखकर उन्हें मारने दौड़ते हैं ॥ ८७ ॥ इस प्रकार प्रभु को वैष्णव-आवेश होने लगा परन्तु माता शची इसे कोई व्याधि विशेष ही समझती ॥ ८८ ॥ माता शची तो अपने स्नेह बिना और कुछ भी नहीं जानती। वे विश्वम्भर के व्यवहार सबसे कहती, यथा ॥ ८९ ॥ "देखो! विधाता ने मेरे स्वामी को लिया, कई पुत्रों को लिया, अब एक ही शेष रह गया है ॥ ९० ॥ "उसकी भी न जाने कैसी मति हो गई है कुछ समझ में नहीं आती ? वह क्षण में हँसता, क्षण में रोता और क्षण में मूर्च्छित हो जाता है ॥ ९१ ॥ वह अपने आप मन ही मन न जाने क्या-क्या बातें करता रहता है, और कभी "पाखण्डियों का शिर छेद डालूँगा, छेद डालूँगा"—कह उठता है ॥ ९२ ॥ कभी वह बृक्ष की ऊँची डाल पर जा बैठता है और कभी आँखें बन्द हो जाती है और पृथ्वी पर गिर पड़ता है ॥ ९३ ॥ कभी दाँत किट-किटा कर पीसता है, कभी ताल ठोंकता है, पृथ्वी पर लोट-पोट हो जाता है और बोल बन्द हो जाती है" ॥ ९४ ॥ साधारण लोगों को कृष्ण-प्रेम का विकार देखने–सुनने को नहीं मिलता है, अतएव वे लोग वायु समझकर बाँध रखने के लिये कहते हैं ॥ ९५ ॥ माता शची से सुन-सुन कर जो जो लोग प्रभु को देखने के लिये जाते हैं वे सब वायु का विकार समझ कर बाँध रखने के लिये कहते हैं ॥ ९६ ॥ पाखण्डियों को देख लेने पर प्रभु उनको खदेड़ने लगते हैं। वे भी वायु का रोग समझ कर हँसते हुए भाग जाते हैं ॥ ९७ ॥ मा शची हड़-बड़ा कर पीछे दौड़ती हैं और पकड़ कर ले आती हैं। देखने वाले कहते हैं—"इसकी पुरानी

लोके बोले "तुमित अवोध ठाकुराणि। आर वा इँहार वार्त्ता जिज्ञासह केनि ॥६६॥
पूर्वकार वायु आसि जन्मिल शरीरे। दुइ-पाये वन्धन करिया राख घरे ॥१००॥
खाइवारे देह डाव नारिकेल जल। यावत् उन्माद-वायु नाहि करे वल" ॥१०१॥
केहो वोले "इथे अल्प औषधे किकरे। शिवाघृत-प्रयोगे से ए वायु निस्तरे ॥१०२॥
पाक तैल शिरे दिया कराइवा स्नान। यावत प्रवल नाहि हइया छे ज्ञान" ॥१०३॥
परम उदार शची जगतेर माता। यार मुखे येइ शुने, कहे सेइ कथा ॥१०४॥
चिन्ताय व्याकुल शची किछु नाहि जाने। गोविन्द-शरणे गेला काय-वाक्य-मने ॥१०५॥
श्रीवासादि वैष्णव-सभार स्थाने स्थाने। लोक द्वारे शची करिलेन निवेदने ॥१०६॥
एक दिन गेला तथा श्रीवास पण्डित। उठि प्रभु नमस्कार कैला सावहित ॥१०७॥
भक्त देखि प्रभुर वाढिल भक्ति-भाव। लोम हर्ष, अश्रुपात, कम्प, अनुराग ॥१०८॥
तुलसीरे आछिला करिते प्रदक्षिणे। भक्त देखि प्रभु मूर्च्छा पाइला तखने ॥१०६॥
वाह्य पाइ कथो क्षणे लागिला कान्दिते। महाकम्पे प्रभु स्थिर नापारे हइते ॥११०॥
अद्भुत देखिया श्रीनिवास मने गणे। "महा भक्ति योग, वायु वोले कोन् जने ॥१११॥
वाह्य पाइ प्रभु बोले पण्डितेर स्थाने। "कि वुझ पण्डित! तुमि मोहर विधाने ॥११२॥
केहो वोले महावायु वान्धिवार तरे। पण्डित! तोमार चित्ते किलये आमारे" ॥११३॥
हासि वोले श्रीवास पण्डित "भाल वाइ। तोमार जेमत वाइ ताहा आमि चाइ ॥११४॥

वायु उखड़ आयी है!" ॥ ६८ ॥ फिर वे लोग माता से कहते हैं-"मा ठकुरानी! तुम तो बड़ी अबोध हो! अब और अधिक इसकी बात क्यों पूछती फिरती हो? ॥ ६६ ॥ पुरानी वायु शरीर में फिर उभर आयी है। इसलिये इसके तो दोनों पाँव बाँधकर घर में अटका रक्खो ॥ १०० ॥ 'पीने के लिये दो-हरे नारियल का पानी जिससे कि वायु प्रबल होकर उमाद न होने पावे" ॥ १०१ ॥ कोई कहते "अरे! इस रोग में छोटी-मोटी दवाइयों से काम नहीं चलेगा "शिवा घृत" (स्याल का तेल) के प्रयोग से ही यह वायु दूर हो सकती है ॥ १०२ ॥ ("और सुनो) सिर में पाक तेल की मालिश करके स्नान कराया करो जब तक वायु का जोर रहे और बुद्धि ठीक न हो जाय" ॥ १०३ ॥ जगन्माता शची देवी परम उदार हैं-वे जिसके मुख से जो कुछ सुनती हैं, वही कहने भी लगती हैं ॥ १०४ ॥ चिन्ता से व्याकुल होकर उन्हें कुछ सूझता नहीं था। वे मन-कर्म-वचन से श्री गोविन्द की शरण में गईं ॥ १०५ ॥ उन्होंने श्री वासादि सब वैष्णवों के निकट आदमी भेज-भेज कर यह सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १०६ ॥ एक दिन श्रीवास पण्डित वहाँ आये, तो प्रभु ने उठकर सावधानी से नमस्कार किया ॥ १०७ ॥ (परन्तु) भक्त के दर्शन से प्रभु में भक्ति-भाव उमड़ आया-प्रेम के कारण शरीर में रोमाञ्च, अश्रु और कम्प प्रकट हो आये ॥ १०८ ॥ प्रभु तुलसी जी की परिक्रमा दे रहे थे, परन्तु भक्त तो देखकर तत्काल ही मूर्च्छित हो पड़े ॥ १०६ ॥ थोड़ी देर में सचेत होने पर प्रभु रोने लगे, शरीर अत्यन्त ही काँपने लगा जिससे वे स्थिर न रह सके ॥ ११० ॥ यह अद्भुत दृश्य देखकर श्री निवास जी मन में सोचते हैं कि "यह तो महान् भक्ति योग है, कौन इसे वायु का रोग कहता है" ॥ १११ ॥ प्रभु ने भी सचेत होकर श्रीवास पंडित से पूछा। कि "पंडित जी! तुम मेरी दशा को क्या समझते हो ॥ ११२ ॥ "कोई तो इसे महा वायु रोग बतला कर मुझे बाँध रखने के लिये कहते हैं, (परन्तु) पण्डित जी! तुम्हारे चित्त में मेरे बारे में क्या जँचता है" ॥ ११३ ॥ श्रीवास पण्डित हँस कर बोले-"बड़ी अच्छी वायु है। तुम्हारी जैसी वायु तो मैं चाहता हूँ" ॥ ११४ ॥ "तुम्हारे शरीर में

महा भक्ति जोग देखि तोमार शरीरे। श्री कृष्णेर अनुग्रह हइल तोमारे" ॥११५॥
एतेक शुनिल जवे श्रीवासेर मुखे। श्रीवासेरे आलिङ्गन कैला बड़ सुखे ॥११६॥
"सभे वाले वायु, सवे आशंसिले तुमि। आजि बड़ कृत कृत्य हइलाङ आमि ॥११७॥
अदि तुमि वायु-हेन वलिता आमारे। प्रवेशितों आजि आमि गङ्गार भितरे" ॥११८॥
श्रीवास वोलेन "जे तोमार भक्ति योग। ब्रह्मा, शिव-शुकादि वाञ्छये एइ भोग ॥११९॥
सभे मिलि एक ठाञि करिव कोर्त्तन। ये-ते केने ना वोले पाषण्डि-पापि-गण" ॥१२०॥
शची प्रति श्रीनिवास वलिला वचन। "चित्तेर जतेक दुःख करह खण्डन ॥१२१॥
'वायु नहे-कृष्ण भक्ति' वलिल तोमारे। इहा कभू अन्य जन बूझिवारे नारे ॥१२२॥
भिन्न जन स्थाने इहा किछु ना कहिवा। अनेक कृष्णेर जदि रहस्य देखिवा" ॥१२३॥
एतेक कहिया श्रीनिवास गेला घर। वायु ज्ञान दूर हैल 'शचीर अन्तर ॥१२४॥
तथापिह अन्तर दुःखिता शची हय। 'वाहिराय पुत्र पाछे' एइ मने भय ॥१२५॥
एइ मते आछे प्रभु विश्वम्भर-राय। केताने जानिते पारे जदि ना जानाय ॥१२६॥
एक दिन प्रभु-गदाधर करि सङ्गे। अद्वैते देखिते प्रभु चलिलेन रङ्गे ॥१२७॥
अद्वैत देखिल गिया प्रभु-दुइ-जन। वसिया करये जल-तुलसी-सेवन ॥१२८॥
दुइ भुज आस्फालिया वोले हरि हरि। क्षणे हासे क्षणे कान्दे अर्च्चन पासरि ॥१२९॥
महामत्त सिंह जेन करये हुङ्कार। क्रोध देखि-जेन महारुद्र-अवतार ॥१३०॥
अद्वैत देखिया मात्र प्रभु विश्वम्भर। पड़िला मूर्च्छित हइ पृथिवी उपर ॥१३१॥

तो मुझे महान् भक्ति योग दिखाई देता है। (अतएव) तुम्हारे ऊपर श्रीकृष्ण का अनुग्रह हुआ है ॥११५॥ श्रीवास के मुख से इतना सुनने पर प्रभु ने बड़ा प्रसन्न होकर उनको आलिंगन किया ॥ ११६ ॥ (और बोले कि) "सब लोग तो इसे वायु का रोग बतलाते हैं, एक तुमने ही इसकी प्रशंसा की। (अतएव) आज मैं बड़ा कृत कृत्य हो गया ॥ ११७ ॥ जो यदि तुम भी इसे वायु बताते तो मैं आज अवश्य ही गङ्गा जी में प्रवेश कर जाता ॥ ११८ ॥ श्रीवास जी बोले कि "तुम्हारी जो यह भक्ति योग है इसको तो ब्रह्मा, शिव, शुकदेव आदि भी भोगना चाहते हैं ॥ ११९ ॥ पाखण्डी पापी लोग चाहे जो कुछ भी क्यों न कहें, हम तो सब मिलकर अब एक स्थान पर कीर्तन किया करेंगे" ॥ १२० ॥ फिर श्रीनिवास जी शची माता से बोले कि "अब आप अपने चित्त के सब दुःख को दूर कर दो ॥ १२१ ॥ मैं आप से कहता हूँ कि यह वायु नहीं है—यह कृष्ण भक्ति है। इस बात को और लोग कभी समझ ही नहीं सकते हैं ॥ १२२ ॥ "जो यदि आप श्रीकृष्ण के अनेक रहस्यों को देखना चाहें, तो बाहर वालों से कुछ भी न कहें" ॥ १२३ ॥ इतना कहकर श्रीनिवास जी अपने घर को चले गये और शची माता के हृदय से भी वायु रोग होने का भ्रम-ज्ञान दूर हो गया ॥ १२४ ॥ तथापि शची माता का अन्तस् दुःखित मन में है कारण कि उनके मन में 'पुत्र पीछे कहीं घर न छोड़ जाय"—इस बात का भय है ॥ १२५ ॥ इस प्रकार प्रभु विश्वम्भरराय लीला कर रहे हैं। यदि वे ही न जनावें तो कौन उनको जान सकता है ॥ १२६ ॥ एक दिन प्रभु गदाधर को साथ लेकर अद्वैत प्रभु से मिलने के लिये बड़े उमंग से चले ॥ १२७ ॥ वहाँ जाकर दोनों ने देखा कि अद्वैत प्रभु तुलसी जी की पूजा कर रहे हैं ॥ १२८ ॥ वे दोनों भुजाएँ उठाकर "हरि बोल" "हरि बोल" कर रहे हैं, और पूजा भूल कर कभी हँसते हैं और कभी रोते हैं ॥ १२९ ॥ वे महामत्त सिंह की भाँति हुँकार करते हैं। उनके क्रोध को देखने पर वे महारुद्र अवतार जैसे लगते हैं ॥ १३० ॥ अद्वैत प्रभु को देखते ही प्रभु

भक्ति योग प्रभावे अद्वैत महावल। एइ मोर प्राणनाथ जानिला सकल ॥१३२॥
कति जावे चोरा आजि भावे मने मने। "एत दिन चूरि करि वुल" एइ खाने ॥१३३॥
अद्वैतेर ठाञि तोर ना लागे चोराइ। चोरेर उपरे चुरि करिव एथाइ" ॥१३४॥
चूरिर समय एवे वुझिया आपने। सर्व-पूजा-सज्जलइ नाम्विला तखने ॥१३५॥
पाद्य, अर्घ्य, आचमनी लइ सेइ ठाञि। चैतन्य चरण पूजे आचार्ज गोसाञि ॥१३६॥
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, चरण-उपरे। पुनः पुन एइ श्लोक पढ़ि नमस्करे ॥१३७॥
नमोव्रह्मण्य देवाय गो-व्राह्मण हितायच। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥१३८॥
पुनः पुन श्लोक पढ़ि पड़ये चरणे। चिनिञा आपन प्रभु करये क्रन्दने ॥१३९॥
पाखालिल दुइ पद नमनेर जले। जोड़ हस्त करिदाण्डाइला पदतले ॥१४०॥
हासि वोले गदाधर जिह्वा कामड़ाये। 'वाल केरे गोसाञि एमतना जुयाये" ॥१४१॥
हासये अद्वैत गदाधरेर वचने। "गदाधर! बालक जानिवा कथोदिने" ॥१४२॥
चित्ते वड़ विस्मित हइला गदाधर। "हेन वूझि अवतीर्ण हइला ईश्वर" ॥१४३॥
कथोक्षणे विश्वम्भर प्रकाशिला बाह्ज। देखेन आवेशमय अद्वैत आचार्ज ॥१४४॥
आपमारे लुकायेन प्रभु विश्वम्भर। अद्वैतेरे स्तुति करे जुड़ि दुइकर ॥१४५॥
नमस्कार करि ताँर पद धूलि लये। आपनार देह प्रभु ताँरे निवेदये ॥१४६॥
"अनुग्रह तुमि मोरे कर महाशय। तोमार आमि से हेन जानिह निश्चय ॥१४७॥

विश्वम्भर मूच्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ १३१ ॥ भक्ति योग के प्रभाव से महावलीयान् श्री अद्वैत जी भी सब बातें जान गये कि ये ही मेरे प्राण नाथ हैं ॥ १३२ ॥ वे मन ही मन सोचते हैं कि "इतने दिन तो यह चोर यहाँ चोरी करता फिरा परन्तु आज यह कहाँ जायगा ॥ १३३ ॥ अद्वैत के निकट इसकी चोरी नहीं चलेगी। मैं यहीं पर चोर के भी चोरी करूँगा ॥ १३४ ॥ तब चोरी का समय समझ कर अद्वैत प्रभु आप ही पूजा की सब सामग्री लेकर नीचे उतर आये ॥ १३५ ॥ अद्वैताचार्य गुसाईं ने श्रीचैतन्य चन्द्र के श्री चरणों की पूजा, पाद्य, अर्घ्य, आचमन आदि के द्वारा वहीं पर की ॥ १३६ ॥ श्री चरणों के ऊपर गन्ध, और पुष्प चढ़ाकर एवं धूप-दीप देकर वे इस श्लोक को बारम्बार पढ़ते हुए नमस्कार करने लगे ॥ १३७ ॥ हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! आप ब्राह्मणों के प्रति भक्तिमान् हैं, आपको नमस्कार हैं। आप गौ–ब्राह्मण और जगत् के लिये अवतार लेते हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ १३८ ॥ इस श्लोक को बारम्बार पढ़ते हुए श्रीअद्वैत प्रभु के श्री चरणों पर पड़ते हैं और अपने प्रभु को पहचान कर रोते हैं ॥ १३९ ॥ उन्होंने अपने दोनों नेत्रों के जल से प्रभु के श्री चरणों को धो डाला और फिर वे हाथ जोड़कर श्री चरणों के समीप खड़े हुए ॥ १४० ॥ तब श्रीगदाधर जी जीभ काटते हुए हँस कर बोले–"बालक के प्रति हे गुसाईं जो ! ऐसा व्यवहार उचित नहीं है" ॥ १४१ ॥ गदाधर जी के वचन पर श्रीअद्वैत जी हँसे और बोले–"गदाधर ! कुछ दिनों में इस बालक को जान जाओगे" ॥ १४२ ॥ यह सुनकर गदाधर जी मन में बड़ा अचम्भा करने लगे–कि कहीं यह ईश्वर ही तो अवतीर्ण नहीं हो गया ॥ १४३ ॥ कुछ देर में श्री विश्वम्भर देव ने वाह्य दशा प्रकट की (अर्थात् वे सचेत हुए) तो अद्वैताचार्य को आवेश मय दशा में देखा ॥१४४॥ तब प्रभु अपने को छिपाने के लिये हाथ जोड़कर श्रीअद्वैत जी की स्तुति करने लगे ॥१४५॥ प्रभु ने उनको नमस्कार करके उनके चरणों की धूल ली और अपनी देह उनको समर्पण करते हुए बोले ॥ १४६ ॥ "हे महाशय ! आप मेरे ऊपर कृपा करें। यह निश्चय जानिये कि मैं आपका ही हूँ ॥ १४७ ॥

धन्य हइलाङ आमि देखिया तोमारे। तुमि कृपा करिलेसे कृष्ण नाम स्फुरे ॥१४८॥
तुमिसे करिते पार भव बन्ध-नाश। तोमार हृदये कृष्ण सर्वथा प्रकाश" ॥१४९॥
भक्त वाढाइते निज ठाकुर से जाने। जेन करे भक्त तेन करेन आपने ॥१५०॥
मने वोले 'अद्वैत। किकर' भारि भूरि। चोरेर उपरे आगे करियाछों चुरि ॥१५१॥
हासिया अद्वैत किछु करिला उत्तर। 'सभा' हैते तुमि मोर वड विश्वम्भर! ॥१५२॥
कृष्ण-कथा-कौतुके थाकह एइ ठाँइ। निरन्तर तोमा' जेन देखिवारे पाइ ॥१५३॥
सर्व-वैष्णवेर इच्छा तोमारे देखिते। तोमार सहित कृष्ण-कीर्त्तन करिते" ॥१५४॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि परम-हरिषे। स्वीकार करिया चलिलेन निज-वासे ॥१५५॥
जानिला अद्वैत-हैल प्रभुर प्रकाश। परीक्षिते चलिलेन शान्तिपुर-वास ॥१५६॥
"सत्य जदि प्रभु हये, मुञि हङ दास। तवे मोरे वान्धिया आनिव निज-पाश" ॥१५७॥
अद्वैतेर चित्त वुझिवार शक्ति कार। जार' शक्ति-कारणे चैतन्य-अवतार ॥१५८॥
ए-सब कथाय जार नाहिक प्रतीत। अद्वैतेर सेवा तार निष्फल निश्चित ॥१५९॥
महा प्रभु विश्वम्भर प्रति-दिने दिने। कीर्त्तन करेन सर्व-वैष्णवेर सने ॥१६०॥
सभे वड़ आनन्दित देखि विश्वम्भर। लखिते ना पारे केहो आपन ईश्वर ॥१६१॥
सर्व-विलक्षण तार-परम-आवेश। देखिते सभार चित्ते सन्देह विशेष ॥१६२॥
जखन प्रभुर हय आनन्द-आवेश। कि कहिव ताहा, सबे जाने प्रभु 'शेष' ॥१६३॥

मैं आपके दर्शन करके धन्य हो गया। आपके कृपा करने पर ही श्रीकृष्ण नाम का स्फुरण होता है (मन और मुख में आता है) ॥ १४८ ॥ "आप ही संसार-बन्धन का नाश कर सकते हैं। आपके हृदय में सर्वथा श्रीकृष्ण प्रकाशमान् रहते हैं" ॥ १४९ ॥ भगवान् अपने भक्तों को वढ़ाना खब जानते हैं। जैसे भक्त उनकी स्तुति करते हैं, वैसे ही वे आप उनकी स्तुति करते हैं ॥ १५० ॥ श्रीअद्वैताचार्य मन ही में बोले "क्या करते हो छल-चतुराई! मैं तो पहले २ ही चोर की चोरी कर चुका हूँ" ॥ १५१ ॥ फिर हँस करके श्री अद्वैत ने कुछ उत्तर दिया कि "हे विश्वम्भर! तुम मेरे लिए सबसे बड़े हो ॥ १५२ ॥ "तुम श्रीकृष्ण-कथा-कौतुक करते हुए यहीं रहो जिससे मैं तुमको निरन्तर देख सकूँ ॥ १५३ ॥ सब वैष्णवों की इच्छा तुम्हें देखने और तुम्हारे साथ कृष्ण-कीर्तन करने की है" ॥ १५४ ॥ श्रीअद्वैत जी के वचन को सुनकर प्रभु ने वड़ी प्रसन्नता से उसे स्वीकार कर लिया और अपने घर को लौट आये ॥ १५५ ॥ श्रीअद्वैत जी जान तो गये कि प्रभु का प्रकाश (अवतार) हो गया, तथापि परीक्षा करने के लिये वे अपने निवास स्थान शान्तिपुर को चल दिये ॥ १५६ ॥ (उनके मन में यह है कि) "यदि सचमुच में ये प्रभु हो हैं, और यदि मैं उनका सच्चा दास हूँ तो प्रभु मुझे बाँध कर अपने पास ले आयँगे" ॥ १५७ ॥ जिनकी शक्ति के प्रभाव से श्रीचैतन्य देव का अवतार हुआ, उन अद्वैताचार्य जी के चित्त को समझने की शक्ति भला किसमें है ॥ १५८ ॥ इन सब बातों पर जिसका विश्वास नहीं है, उसकी अद्वैत प्रभु की सेवा निश्चय ही निष्फल है ॥ १५९ ॥ अब महाप्रभु विश्वम्भर वैष्णवों के साथ प्रति दिन कीर्तन करते हैं ॥ १६० ॥ श्री विश्वम्भर को देख-देख कर सभी बड़े प्रसन्न होते हैं, पर कोई अपने नाथ को पहचान नहीं पाता है ॥ १६१ ॥ हाँ, प्रभु का परम भावावेश सबसे विलक्षण होता है, उसे देख २ कर सब के चित्त में विशेष सन्देह तो हो आता है ॥ १६२ ॥ जिस समय प्रभु को आनन्द में आवेश हो आता है, उसे मैं क्या कह सकता हूँ, उसे तो केवल शेष भगवान् ही जानते हैं ॥ १६३ ॥ प्रभु के कम्प होते समय सौ सौ जने भी उनको पकड़ कर स्थिर नहीं

शतेक-जनेओ कम्प धरिवारे नारे। लोचने वहये शतशत नदी धारे ॥१६४॥
कनक-पनस येन पुलकित-अङ्ग। क्षणे क्षणे अट्ट अट्ट हासे वहु रङ्ग ॥१६५॥
क्षणे हय आनन्द मूर्च्छित प्रहरेक। वाह्य हेले ना बोलये कृष्ण-व्यतिरेक ॥१६६॥
हुङ्कार शुनिते दुइ श्रवण विदरे। 'तारे अनुग्रहे ताँर भक्त सब तरे' ॥१६७॥
सर्व-अङ्ग स्तम्भा कृति क्षणे क्षणे हय। क्षणे हय सेइ अङ्ग नवनीत मय ॥१६८॥
अपूर्व देखिया सब-भागवत गणे। नर-ज्ञान आर केहो ना करये मने ॥१६९॥
केहो बोले "ए पुरुष अंश-अवतार"। केहो बोले "ए शरीरे कृष्णेर विहार" ॥१७०॥
केहो बोले "शुक किवा प्रह्लाद नारद। केहो बोले "हेन वुझि खण्डिल आपद ॥१७१॥
जत सब भागवत गणेर गृहिणी। ताँहारा बोलये "कृष्ण जन्मिला आपनि" ॥१७२॥
केहो बोले "एइ वूझि प्रभु अवतार। एइ मत मने सभे करेन विचार ॥१७३॥
वाह्य हैले ठाकुर सभार गला धरि। जे क्रन्दन करि, ताहा कहिते ना पारि ॥१७४॥
"कोथा गेले पाइवसे मुरली वदन"। वलिते छाड़ये श्वास, करये क्रन्दन ॥१७५॥
स्थिर हइ प्रभु सब आप्तगण-स्थाने। प्रभु बोले "मोर दुःख करों निवेदने ॥१७६॥
प्रभु बोले "मोहर दुःखेर अन्त नाञ्चि। पाइयाओ हाराइलुँ जीवन-कानाञ्चि ॥१७७॥
सुभार सन्तोष हैल रहस्य शुनिते। श्रद्धा करि सभे वसिलेन चारि भिते ॥१७८॥
कानाञ्चिर-नाट शाला नामे ग्राम। गया हैते आसित देखिलुँ सेइ स्थान ॥१७९॥

रख सकते। नेत्रों से मानों तो सैकड़ो नदियाँ बहने लगती हैं ॥ १६४ ॥ रोमाञ्च और पुलक के कारण श्री अंग सोने का कटहल जैसा प्रतीत होता है, और क्षण-क्षण में अनेक प्रकार से अट्टहास करते हैं ॥१६५॥ कभी एक-एक प्रहर तक के लिये आनन्द में मूर्च्छित हो जाते हैं और सचेत होने पर भी कृष्ण २ के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहते हैं। ॥ १६६ ॥ उनके हुँकार को सुनने से दोनों कान फटने लग जाते हैं, परन्तु उनकी कृपा से उनके भक्त सब पार हो जाते हैं ॥ १६७ ॥ क्षण १ में आपका सारा शरीर अकड़ कर स्तम्भ जैसा हो जाता है और क्षण भर में वही अंग नवनीत जैसे सुकोमल हो जाता है ॥ १६८ ॥ ऐसी अपूर्व दशा को देख कर सब भक्त वृन्द उनको अब मनुष्य नहीं समझते हैं ॥ १६९ ॥ कोई कहता "यह पुरुष तो अंशावतार है।" कोई कहता "इनके इस शरीर में श्रीकृष्ण विहार करते हैं" ॥ १७० ॥ कोई कहता "यह शुकदेव अथवा प्रह्लाद अथवा नारद जी हैं।" कोई कहता "ऐसा मालूम होता है कि अब हमारी सब आपदाएँ कट जायँगी" ॥ १७१ ॥ भक्त जनों कि जो गृहिणी हैं, वे कहतीं "श्रीकृष्ण ने आप ही जन्म लिया है" ॥ १७२ ॥ कोई कहतीं—"मेरी समझ में ऐसी आती है कि यह प्रभु के अवतार हैं। इस प्रकार सभी अपने २ मन में विचार करती हैं ॥ १७३ ॥ इधर प्रभु जब वाह्य दशा में आते हैं, तो सबका गला पकड़ २ कर जो विलाप करते हैं, वह मैं कुछ कह नहीं सकता ॥ १७४ ॥ "कहाँ जाने से वे मुरली धारी मिलेंगे" कह २ कर प्रभु लम्बी २ साँस छोड़ते हैं और रोते हैं ॥ १७५ ॥ फिर जब स्थिर होते हैं तो सब आत्मीय जनों से कहते हैं कि "बन्धुओ! मैं तुम लोगों से अपना दुःख निवेदन करता हूँ ॥ १७६ ॥ 'मेरे दुःख का अन्त नहीं है। हाय! मैंने अपने जीवन कन्हैया को पाकर के भी गवाँ दिया" ॥ १७७ ॥ यह सुन कर सबको आनन्द हुआ और रहस्य-बात सुनने के लिये वे सब श्रद्धा पूर्वक प्रभु के चारों ओर बैठ गये ॥ १७८ ॥ प्रभु कहने लगे कि—"गया धाम से लौटते समय कन्हाई नाट्यशाला नामक एक ग्राम में मैंने देखा कि ॥ १७९ ॥ "तमाल जैसा श्याम वर्ण का एक सुन्दर बालक है। नवीन गुञ्जाओं से खचित उसकी

तमाल-श्यामल एक वालक सुन्दर। नव गुंजा-सहित कुन्तल मनोहर ॥१८०॥
विचित्र-मयूर पुच्छ शोभे तदुपरि। झलमल मणिगण-लखिते ना पारि ॥१८१॥
हाथेते मोहन वंशी परम सुन्दर। चरणे नूपुर शोभे अति-मनोहर ॥१८२।
नील स्तम्भ जे न भुजे रत्न-अलंकार। श्रीवत्स कौस्तुभवक्षे शोभे मणिहार ॥१८३॥
किकहिव से पीत-धटीर परि धान। मकर-कुण्डल शोभे कमल-नयान ॥१८४॥
आमार समीपे आइला हासिते हासिते। आमा' आलिङ्गिया पलाइला कोन भिते'' ॥१८५॥
किरूपे कहेन कथा श्री गौर सुन्दरे। ताँर कृपा विने ताहा के वुझिते पारे। १८६॥
कहिते कहिते मूर्च्छा गेला विश्वम्भर। पड़िला 'हा कृष्ण' वलि पृथिवी-उपर ॥१८७॥
आथे व्यथे धरे सभे 'कृष्ण कृष्ण' वलि। स्थिर करि झाड़िलेन श्री अङ्गे र धूलि ॥१८८॥
स्थिर हइयाओ प्रभु स्थिर नाहि हये। 'कोथा कृष्ण। कोथा कृष्ण।' वलिया कान्दये ॥१८९॥
क्षणे के हइला स्थिर श्री गौर सुन्दर। स्वभावे हइला अति नम्र कलेवर ॥१९०॥
परम-सन्तोष-चित्त हइल सभार। शुनिञा प्रभुर भक्ति कथार प्रचार ॥१९१॥
सभे वोले ''आमरा सभार वड़ पुण्य। तुमि-हेन सङ्गे सभे हइलाङ धन्य ॥१९२॥
तुमि सङ्गे जार, तार वैकुण्ठे कि करे। तिलेके तोमार सङ्गे भक्ति फल धरे ॥१९३॥
अनुपाल्य तोमार आमरा सर्व जन। सभार नायक हइ करह कीर्त्तन ॥१९४॥
पाषण्डीर वाक्ये दग्ध शरीर सकल। ए तोमार प्रेम जले करह शीतल'' ॥१९५।
सन्तोषे सभार प्रति करिया आश्वास। चलि लेन मत्त-सिंह-प्राय निज-वास ॥१९६॥

मनोहर केशावली हैं ॥ १७० ॥ उसके ऊपर विचित्र मोर-पंख शोभा दे रहा है, जिनमें मणि गण झलमला रहे हैं, जिससे दृष्टि ठहर नहीं पाती है ॥ १८१ ॥ "हाथ में परम सुन्दर मोहनी वंशी है, चरणों पर अत्यन्त मनोहर नूपर शोभायमान हैं, ॥ १८२ ॥ नील स्तम्भ सदृश भुजाओं पर रत्नों के अलंकार और वक्षस्थल पर श्रीवत्स, कौस्तुभमणि और मणि हारावली शोभा दे रहे हैं ॥ १८३ ॥ और कमर पर वह कसी हुई पीताम्बर, वह मैं क्या कहूँ। कानों में मकराकृत कुण्डल हैं, कमल सदृश उसके नेत्र हैं ॥ १८४ ॥ (ऐसा वह सुन्दर बालक है) वह हँसते २ मेरे समीप आया और मुझे आलिंगन करके न जाने किधर भाग गया" ॥ १८५ ॥ गौर सुन्दर ये बातें किस प्रकार से कह रहे थे, इसे उनकी कृपा बिना कौन समझ सकता है ॥ १८६ ॥ (उपरोक्त बातें) कहते कहते श्रीविश्वम्भर प्रभु मूर्च्छित हो गये और 'हा कृष्ण' कहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ १८७ ॥ कृष्ण २ कहते हुए सब लोगों ने झट-पट प्रभु को पकड़ लिया और स्थिर करके उनके श्री अंग की धूल झाड दी ॥ १८८ ॥ स्थिर होकर के भी प्रभु स्थिर नहीं हो पाते हैं और "कहाँ हैं कृष्ण ?" "कहाँ हैं कृष्ण" कह २ कर रोते हैं ॥ १८९ ॥ कुछ देर में श्रीगौर सुन्दर स्थिर हुए और अत्यन्त नम्र उनका स्वभाव हो गया ॥ १९० ॥ प्रभु की भक्ति-कथा को विस्तार से सुनकर सब भक्तों के चित्त को बड़ा आनन्द हुआ ॥ १९१ ॥ और वे सब बोले कि "हम सबों के बड़े पुण्य है। तुम्हारे जैसों के संग से हम सब धन्य हो गये ॥ १९२ ॥ "तुम जिसके साथ हो, फिर वह वैकुण्ठ मे भी क्या करे। तुम्हारे एक तिल भर संग से ही भक्ति फल प्राप्त हो जाता है ॥ १९३ ॥ हम सब लोग तुम्हारे अनुप्रात हैं, तुम हम सबके नायक (स्वामी) बनकर कीर्तन करो ॥ १९४ ॥ "पाखण्डियों के वचन रूपी ज्वालाओं से हम सबके शरीर जल रहे हैं। इसे तुम प्रेम जल द्वारा शीतल करो" ॥ १९५ ॥ (यह सुनकर) प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक सबको आश्वासन दिया और मत्त सिंह की भाँति अपने घर को चल दिये ॥ १९६ ॥ घर

गृहे आइलेओ नाहि व्यवहार प्रस्ताव। निरन्तर आनन्द-आवेश-आविर्भाव ॥१९७॥
कतवा आनन्द धारा बहे श्री नयने। चरणेर गङ्गा किवा आइला वदने ॥१९८॥
कोथा कृष्ण। कोथा कृष्ण। एइ मात्र वोले। आर केहो कथा नाहि पाय जिज्ञासिले ॥१९९॥
जे वैष्णव ठाकुर देखे न विद्यमाने। ताहारेइ जिज्ञासेन "कृष्ण कोन् खाने" ॥२००॥
वलिया क्रन्दन प्रभु करे अतिशय। जे जाने जे-मत सेइ-मत प्रवोधय ॥२०१॥
एक दिन ताम्वूल लइया गदाधर। सन्तोषे हइला आसि प्रभुर गोचर ॥२०२॥
गदाधरे देखि प्रभु करेन जिज्ञासा। "कोथा कृष्ण आछेन श्यामल पीतवासा" ॥२०३॥
से आर्ति देखिते सर्व-हृदय विदरे। कि वोल वलिव हेन वचन ना स्फुरे ॥२०४॥
सम्भ्रमे वोलेन गदाधर महाशय। निरवधि आछे कृष्ण तोमार हृदय ॥२०५॥
हृदये आछेन कृष्ण वचन शुनिञा। आपन हृदय प्रभु चिरे नख दिया ॥२०६॥
आथे व्यथे गदाधर दुइ हाथे धरि। नाना मते प्रवोधि राखिला स्थिर करि ॥२०७॥
"एइ आसिवेन कृष्ण स्थिर हञो खानि"। गदाधर वोले, आइ देखिल आपनि ॥२०८॥
वड़ तुष्ट हैला आइ गदाधर-प्रति। "एमत शिशुर वुद्धि नाहि देखि कति ॥२०९॥
मुञि भये नाहि पारों सम्मुख हइते। शिशु हइ केन प्रवोधित भालमते" ॥२१०॥
आइ वोले "वाप! तुमि सर्वदा थाकिवा। छाड़िया उहार सङ्ग कोथाओ ना जावा" ॥२११॥
अद्भुत प्रभुर प्रेम जोग देखि आइ। पुत्र-हेन ज्ञान आर मने किछु नाइ ॥२१२।

आने पर भी आप घर-गृहस्थी की बातें नहीं करते हैं। आप के शरीर में प्रेमानन्द के कारण निरन्तर आवेश बना रहता है। १९७॥ आप के श्री नेत्रों से न जानें कितनी आनन्द-धाराएं बहती रहती हैं जिन्हें देख ऐसा प्रतीत होता है कि श्री चरणों से निकली हुई गङ्गा तो कहीं श्रीमुख पर न आ गई हों ॥१९८॥ "कृष्ण कहाँ? कहाँ कृष्ण?" बस केवल इतना ही बोलते हैं। इसके सिवाय और कोई बात पूछने पर भी नहीं मिलती है ॥ १९९ ॥ जिस किसी वैष्णव भक्त को सामने देख पाते हैं, उसी से पूछते हैं कि "कृष्ण कहाँ हैं?"। २०० ॥ ऐसा पूछ कर प्रभु अतिशय क्रन्दन करते हैं। भक्त लोग जो जैसा जानता है वह वैसा ही समझाता बुझाता है ॥ २०१ ॥ एक दिन श्रीगदाधर जी ताम्बूल लेकर प्रसन्नता पूर्वक प्रभु के सन्मुख आये ॥ २०२ ॥ गदाधर को देखकर प्रभु पूछते हैं "पीताम्बर धारी साँवला कृष्ण कहाँ है?" ॥ २०३ ॥ प्रभु की उस आर्ति को देखकर सब का हृदय फटने लगता है। क्या कह कर प्रभु को उत्तर दें वह बात किसी को फुरती नहीं है ॥ २०४ ॥ गदाधर महाशय हड-बडा कर बोल उठे कि "श्रीकृष्ण तो निरन्तर आपके हृदय में ही रहते हैं" ॥ २०५ ॥ "श्रीकृष्ण हृदय में है" यह वचन सुनकर प्रभु नखों से अपना हृदय चीरने लगे ॥ २०६ ॥ गदाधर ने झपट कर जैसे तैसे प्रभु के दोनों हाथ पकड़ लिये और नाना प्रकार से समझाते हुए उनको स्थिर करके रक्खा ॥ २०७ ॥ गदाधर जी बोले—"श्रीकृष्ण अभी आये ही जाते हैं—नेक स्थिर तो होओ"—(ऐसा कहते हुए) शची माता ने स्वयं देख लिया ॥ २०८ ॥ वे गदाधर पर बड़ी प्रसन्न हुईं (वे मन में सोचती हैं कि) "अहो। बालक में ऐसी बुद्धि तो मैंने कहीं नहीं देखी ॥ २०९ ॥ "मैं तो डर के मारे इसके (पुत्र के) सामने नहीं जा सकती हूँ और इसने बालक होकर के भी कैसे सुन्दर ढङ्ग से इसे समझाया" ॥२१० ॥ फिर वे गदाधर से बोलीं कि "वत्स! तुम तो सदा यहीं रहा करो। इसका साथ छोड़ कर कहीं मत जाओ ॥ २११ ॥ प्रभु के अद्भुत प्रेम-योग को देखकर शची माता उनको अपना पुत्र समझना भूल जाती हैं ॥ २१२ ॥ वे मन में सोचती हैं कि "यह पुरुष मनुष्य नहीं

मने भावे आइ "ए पुरुष नर नहे। मनुष्येर नयने कि एत धारा वहे। २१३॥
नाहि जानि आसियाछे कोन् महाशय"। भय पाइ प्रभुर सम्मुख नाहि हय ॥२१४॥
सर्व-भक्त गण सन्ध्या समय हइले। आसिया प्रभुर गृहे अल्पे अल्पे मिले ॥२१५॥
भक्ति जोग सम्मत जे-सब श्लोक हय। पढ़िते लागिला श्री मुकुन्द-महाशय ॥२१६॥
पुण्य वन्त मुकुन्देर हेन दिव्य ध्वनि। शुनि लेइ आविष्ट हयेन द्विजमणि ॥२१७॥
हरि बोल बलि प्रभु लागिला गर्जिते। चतुर्दिगे पड़े, केहो ना पारे धरिते ॥२१८॥
श्वास, हास, कम्प, स्वेद, पुलक, गर्जन। एक बारे सर्व-भाव दिल दरसन ॥२१९॥
अपूर्व देखिया सुख गाय भक्त गण। ईश्वरेर प्रेमावेश नहे सम्वरम ॥२२०॥
सर्व निशा जाय जेन मुहूर्तेक प्राय। प्रभातेवा कथञ्चित् प्रभु बाह्य पाय ॥२२१॥
एइ मत निज गृहे श्रीशची नन्दन। निरवधि निशिदिशि करेन कीर्त्तन ॥२२२॥
आरम्भिला महा प्रभु कीर्त्तन प्रकाश। सकल भक्तेर दुःख हय देख नाश ॥२२३॥
'हरि बोल बलि डाके श्रीशची नन्दन। घन घन पाषण्डीर हय जागरण ॥२२४॥
निद्रा सुख भङ्गे वहिर्मुख क्रुद्ध हय। जार जेन मत इच्छा वालीया मरय ॥२२५॥
केहो बोले "ए-गुलार हइलकि वाइ"। केहो बोले "रात्रे निद्रा जाइत ना पाइ" ॥२२६॥
केहो बोले "गोसाञि रुषिव घन डाके। ए-गुलार सर्व नाश हैव एइ पाके" ॥२२७॥
केहो बोले "ज्ञान-योग एड़िया विचार। परम-उद्धत-हेन सभार व्यभार ॥२२८॥
केहो बोले "किसेर कीर्त्तन केबा जाने। एत पाक करे एइ श्रीवास-वामने ॥२२९॥

है! मनुष्य के नेत्रों से क्या इतनी धाराएँ बह सकती हैं ॥ २१३ ॥ "न जाने यह कौन महापुरुष आया है।" (अतएव) भय पाकर शची मा प्रभु के सामने नहीं जाती हैं ॥ २१४ ॥ (एक दिन) सन्ध्या होते ही भक्त वृन्द थोड़े २ करके सब प्रभु के घर में आ मिले ॥ २१५ ॥ उस समय श्री मुकुन्द महाशय भक्ति-योग-सम्मत श्लोकों को पढ़ने लगे ॥२१६ ॥ पुण्यवान् मुकुन्द का ऐसा दिव्य कण्ठ स्वर है कि उसे सुनते ही द्विजमणि (गौर प्रभु) में भावावेश हो आया ॥ २१७ ॥ और वे 'हरि बोल' कह कर गरजने लगे और चारों ओर गिर पड़ने लगे। कोई भी उनको पकड़ कर रख नहीं पाता ॥ २१८ ॥ श्वास, हास, कम्प, स्वेद, पुलक, गर्जन आदि सब भाव एक साथ ही प्रभु में प्रकट हो गये ॥ २१९ ॥ यह अपूर्व दृश्य देखकर भक्त लोग आनन्द से गाने लगे। (इधर) प्रभु का प्रेमावेश शान्त नहीं होता है ॥ २२० ॥ रात सारी एक मुहूर्त्त की तरह बीत गयी, प्रभात काल में जैसे तैसे प्रभु वाह्य दशा में आये ॥ २२१ ॥ इस प्रकार श्रीशची नन्दन अपने घर पर दिन रात निरन्तर कीर्त्तन करते हैं ॥ २२२ ॥ श्री मन्महाप्रभु ने कीर्तन का प्रकाश आरम्भ कर दिया, जिसे देख २ सब भक्तों के दुःख नाश होने लगे ॥ २२३ ॥ इधर श्री शची नन्दन बार २ 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहकर पुकारते और उधर पाखण्डियों की निद्रा बार बार भंग हो जाती और जागरण होने लगता ॥ २२४ । निद्रा-सुख-भंग के होने से वहिर्मुख लोगों को क्रोध होता और जिसके मन में जो आता वही वह बकने लगता ॥ २२५ ॥ कोई कहता "क्या इन लोगों की वायु बिगड़ गई है? कोई कहता—"क्या करें, इनके मारे रात में सो नहीं पाते" ॥ २२६ ॥ कोई कहता—"इनके बार २ पुकारने से भगवान् नाराज हो जायँगे। इस कर्म से इन लोगों का सर्वनाश हो जायगा"। २२७॥ कोई कहता—"ज्ञान-योग का विचार छोड़ कर, इन लोगों ने बिल्कुल उद्दण्ड चाल पकड़ी है" ॥ २२८ ॥ कोई कहता—"कौन जाने यह किस लिये कीर्तन करते हैं? यह श्रीबास बामन ही यह सब उपद्रव मचा रहा है" ॥ २२९ ॥

मागिया खाइते लागि मिलि चारि भाइ। 'हरि' वलि डाक छाड़े जेन महावाइ ॥२३०॥
मने मने वलिले कि पुण्य नाहि हय। रात्रि करि डाकिले कि पुण्य जनमय" ॥२३१॥
केहो वोले "आरे भाई। पड़िल प्रमाद। श्रीवासेर वादे हैल देशेर उत्साद ॥२३२॥
आजि मुञ्िि देयाने शुनिलुँ सव कथा। राजार आज्ञाय दुइ नाउ आइसे एथा ॥२३३॥
शुनिलेक नदियाय कीर्तन विशेष। धरिया निवारे हैल राजार आदेश ॥२३४॥
जे-तेदिगे पलाइव श्रीवास-पण्डित। आमा 'सभा' लैया सर्वनाश उपस्थित ॥२३५॥
तखने वलिलुँ मुञ्िि हइया मुखर। श्रीवासेर घर फेलि गङ्गार भितर ॥२३६॥
तखने ना कैल इहा परिहास-ज्ञाने। सर्वनाश हय एवे देख विद्यमाने" ॥२३७॥
केहो वोले "आमरा सभेर-कोन् दाय। श्रीवासे वान्धिया दिव जेवा आसि चाय ॥२३८॥
एइ मत कथा हैल नदिया नगरे। 'राज नौका आइसे वैष्णव धरि वारे' ॥२३९॥
वैष्णव समाजे सव ए कथा शुनिला। गोविन्द स्मङरि सव 'भय निवारिला ॥२४०॥
जे करिव कृष्ण चन्द्र-से-इसत्य हय। से प्रभु थाकिते कोन् अध मेरे भय ॥२४१॥
श्रीवास पण्डित वड़ परम उदार। जेइ कथा शुने ताइ प्रतीत ताँहार ॥२४२॥
जवनेर राज्य देखि मने हैल भय। जानि लेन गौरचन्द्र भक्तेर हृदय। २४३॥
प्रभु अवतीर्ण नाहि जाने भक्त गण। जानाइते आरम्भिला श्रीशची नन्दन ॥२४४॥
निर्भये वेड़ाय महा प्रभु विश्वम्भर। त्रिभुवने अद्वितीय मदन सुन्दर ॥२४५॥

"माँगने खाने के लिये" चार जने मिल कर "हरि बोल" कह २ कर ऐसे चिल्लाते हैं मानों तो महा बायु का प्रकोप हो गया हो ॥ २३० ॥ "अरे मन-मन में कहने से क्या पुण्य नहीं होता ? क्या रात भर चिल्लाने से ही पुण्य होता है ? ॥ २२१ ॥ कोई कहता—"अरे भाई ! सर्व नाश हो चला ! इस श्रीवास के कलह से देश का नाश हो गया ॥ २३२ ॥ "आज मैंने दिवान जी के यहाँ सब बातें सुनी हैं। राजा की आज्ञा से यहाँ पर दो नौका (फौज की) आने वाली हैं ॥ २३३ ॥ "राजा ने सुना है कि नदिया में विशेष कीर्तन होता है, इसलिये उनको पकड़ ले जाने के लिए राजा की आज्ञा हुई है" ॥ २३४ ॥ श्रीबास पंडित तो इधर-उधर कहीं भाग जायगा। हम सबों का ही सर्वनाश होगा ॥ २३५ ॥ "मैंने तो तभी मुख जोर बनकर कह दिया था कि श्रीवास के घर को उखाड़ कर गङ्गा में फेंक दें ॥ २३६ ॥ (परन्तु) उस समय तो मेरी बात को हँसी समझ कर तुम लोगों ने कुछ नहीं किया, अब इस समय देख लो सर्वनाश होने वाला है" ॥ २३७ ॥ कोई कहते हैं कि हम लोगों की क्या क्षति है। जो कोई आप के अन्वेषण करेंगे तो श्रीबास को बाँध कर दे देंगे ॥ २३८ ॥ इस प्रकार नदिया नगर में यह बात फैल बई कि "वैष्णवों को पकड़ ले जाने के लिए राजा की नौका आ रही है" ॥ २३९ ॥ वैष्णव समाज ने भी यह बात सुनी परन्तु "गोविन्द २" कह कर श्री भगवान् को स्मरण करते हुए उन्होंने भय को दूर कर दिया ॥ २४० ॥ वे बोले कि—"सच तो वही होगा कि जो श्रीकृष्ण चन्द्र करेंगे ! उन प्रभु के रहते हुए हमें किस अधम का भय है ?" ॥ २४१ ॥ श्रीवास पण्डित परम उदार हैं। वे जो बात सुनते हैं उसी पर विश्वास कर लेते हैं ॥ २४२ ॥ यवनों का राज्य देखकर उनके मन में भय हो गया। भक्त के हृदय की इस बात को श्रीगौर चन्द्र जान गये ॥२४३॥ भक्त लोग नहीं जानते हैं कि प्रभु ने अवतार लिया है, सो अब श्री शचीनन्दन नाना आरम्भ करते हैं ॥ २४४ ॥ कामदेव से भी अति सुन्दर, त्रिभुवन में अद्वितीय रूपवान् महाप्रभु विश्वम्भर (नदिया नगर में) निर्भय विचरते फिरते हैं ॥ २४५ ॥ (उनकी रूप-माधुरी कैसी है कि) सुगन्धित चन्दन से सर्वांग चर्चित

सर्वाङ्गे लेपियाछेन सुगन्धि चन्दन। अरुण अधर शोभे कमल-नयन ॥२४६॥
चाँचर-चिकुर शोभे पूर्णचन्द्र-मुख। स्कन्धे उपवीत शोभे मनोहर रूप ॥२४७॥
दिव्य वस्त्र परिधान, अधरे ताम्बूल। कौतुके कौतुके गेला भागीरथी कूल ॥२४८॥
सुकृति जे हय तारा देखिते हरिष। जतेक पाषण्डी सब हय विमर्ष ॥२४९॥
एत भय शुनिञाओ भय नाहि पाय। राजार कुमार जेन नगरे वेड़ाय ॥२५०॥
आर जन वोले "भाइ। बुझिलाङ थाक। जत देख ए सकल पलावार पाक ॥२५१॥
निर्भये चा' हेन चारि दिगे विश्वम्भर। गङ्गार सुन्दर स्रोत पुलिन सुन्दर ॥२५२॥
गावी एक यूथ देखे पुलिनेते चरे। हम्वा-रवकरि आइसे जल खाइ वारे ॥२५३॥
ऊर्द्ध-पुच्छ करि केहो चतुर्दिगे धाय। केहो जुझे, केहो शोये, केहो जल खाय ॥२५४॥
देखिया गर्ज्जये प्रभु करये हुङ्कार। "मुञि सेइ मुञि सेइ" बोले वारेवार ॥२५५॥
एइ मते धायया गेला श्रीवासेर घरे। "कि करिस् वासिया।" वोले अहङ्कारे ॥२५६।
नृसिंह पूजये श्रीनिवास जेइ घरे। पुनः पुन लाथि मारे ताहार दुयारे ॥२५७॥
"काहारे पूजिस्‌वेटा। करिस् कार् ध्यान। जाहारे पूजिस् तारे देख विद्यमान" ॥२५८॥
ज्वलन्त-अनल जेन श्रीवास पण्डित। हइल समाधि-भङ्ग चा हे चारिभित ।२५९॥
देखे वीरा सने वसि आछे विश्वम्भर। चतुर्भुज-शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धर ॥२६०॥
गर्ज्जिते आछये जेन मत्त-सिंह-सार। वाम-कक्षे तालि दिया करये हुङ्कार ॥२६१॥

है, अरुण अधर और कमल सदृश नेत्र शोभा दे रहे हैं ॥ २४६ ॥ शीश पर घुँघराले केशों की शोभा बनी है, श्री मुख पूर्णचन्द्र के समान है। कन्धे पर यज्ञोपवीत शोभित है, मनोहारी आपका रूप है ॥ २४७ ॥ दिव्य वस्त्र पहने हुए, अधरों में पान दिये हुए, कौतुक ही कौतुक में आप श्री भागीरथी के तट पर पधारे ॥ २४८ ॥ जो पुण्यात्मा हैं वे तो प्रभु को देखकर हर्षित होते है और पाखण्डी लोग मुरझा जाते हैं ॥२४९॥ (कोई कहता है कि) इतने भय की बात होने पर इसे भय नहीं होता—यह राज कुमार की तरह में घूमता फिरता है ॥ २५० ॥ दूसरा कहता है "अरे भाई ! मैं सब बात समझ गया और बातें रहने दो—यह जो कुछ भी तुम देखते हो यह सब भागने के लिये एक चाल है" ॥ २५१ ॥ प्रभु विश्वम्भर निर्भय होकर चारों ओर देख रहे हैं, (सामने ही) गङ्गा जी की सुन्दर धारा और सुन्दर पुलिन है ॥ २५२ ॥ प्रभु ने देखा कि पुलिन पर गौओं का एक झुण्ड चर रहा है, वे "हम्बा-हम्बा" करतीं हुई पानी पीने के लिये आ रही है ॥ २५३ ॥ कोई पूँछ उठा कर चारों ओर दौड़ती हैं, कोई लड़ती हैं, कोई लेटती हैं और कोई जल पीती हैं ॥ २५४ ॥ यह देखकर प्रभु गरजते हुए हुँकार करते हैं और बारम्बार 'मैं वही हूँ' 'मैं वही हूँ' करते हैं ॥ २५५ ॥ ऐसा कहते हुए ही वे दौड़ कर श्रीवास के घर पहुँचे और बड़े गर्व के साथ बोले—"अरे बासिया! तू क्या कर रहा है ?" ॥ २५६ ॥ जिस घर में श्रीनिवास नृसिंह जी की पूजा कर रहे थे, उसके द्वार पर प्रभु बारम्बार लात मारने लगे ॥ २५७ ॥ (और कहने लगे) "अरे बेटा ! तू किसकी पूजा कर रहा है ? किसका ध्यान कर रहा है ? अरे ! तू जिसको पूज रहा है उसको सामने देख ले" ॥ २५८ ॥ ज्वलन्त अग्नि सदृश तेज वाले श्रीवास जी की समाधि (ध्यान) भंग हो गई और वे चारों ओर देखने लगे। २५९ ॥ तो उन्होंने देखा कि विश्वम्भर चतुर्भुज रूप में शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये हुए वीरासन से बैठे हुए हैं ॥ २६० ॥ और मत्त सिंह की भाँति गर्जना कर रहे हैं और बाँई बगल को बजाते हुए हुङ्कार कर रहे हैं ॥ २६१ ॥ यह देखकर श्रीवास का शरीर काँप उठा। वे हक्के-बक्के रह गये और मुख से कुछ भी

देखिया हइल कम्प श्रीवास शरीरे । स्तब्ध हैला श्रीनिवास किछुइना स्फुरे ॥२६२॥
डाकिया बोलये प्रभु "आरे श्रीनिवास । एत दिन ना जानिस् आमार प्रकाश ॥२६३॥
तोर उच्च सङ्कीर्त्तने, नाढार हुङ्कारे । छाड़िया वैकुण्ठ आइलुँ सर्व परिवारे ॥२६४॥
निश्चिन्ते आछह तुमि आमारे आनिया । शान्ति पुरे गेल नाढ़ा आमारे एड़िया ॥२६५॥
साधु उद्धारिमु दुष्ट विनाशिमु सव । तोर किछ चिन्ता नाइ,पढ़ 'मोर स्तव' ॥२६६॥
प्रभुरे देखिया प्रेमे कान्दे श्रीनिवास । घुचिल अन्तर-भय पाइया आश्वास ॥२६७॥
हरिषे पूर्णित हैल सर्व-कलेवर । दाण्डाइया स्तुति करे जुड़ि दुइ कर ॥२६८॥
सहजे पण्डित वड़-महा-भागवत । आज्ञा पाइ स्तुति करे जेन अभिमत ॥२६९॥
भागवते आछे ब्रह्म-मोहायनोदने । सेइ श्लोक पढ़ि स्तुति करये प्रथमे ॥२७०॥
नौमीडयतेऽभ्रवपुषे तड़िदम्बराय, गुञ्जा वतंस परिपिच्छ लसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवल-वेत्र-विषाण-वेणु, लक्ष्मश्रिये मृदु पदे पशु पाङ्गजाय । २७१॥
"विश्वम्भर-चरणे आमार नमस्कार । नव-घन जिनि वर्ण, पीतवास जाँर ॥२७२॥
शचीर-नन्दन पाये मोर नमस्कार । नवगुञ्जा शिखिपुच्छ भूषण जाहार ॥२७३॥
गङ्गा दास-शिष्य पाये मोर नमस्कार । वनमाला, करे दधि ओदन जाँहार ॥२७४॥
जगन्नाथ पुत्र-पदे मोर नमस्कार । कोटि चन्द्र जिनि रूप वदन जाँहार ॥२७५॥

न बोल सके ॥ २६२ ॥ प्रभु पुकार कर बोले—"अरे श्रीनिवास !" तूने इतने दिन तक मेरे अवतार को नहीं जाना ॥ २६३ ॥ तेरे उच्च संकीर्तन और नाढा (अद्वैत) के हुँकार से मैं वैकुण्ठ को छोड़ कर सब परिवार सहित यहाँ आया हूँ ॥ २६४ ॥ तू तो मुझे लाकर निश्चिन्त हो गया है और नाढा मुझे छोड़ कर शान्तिपुर चला गया है" ॥ २६५ ॥ "मैं साधुओं का उद्धार करूँगा और सब दुष्टों का विनाश करूँगा । तू कुछ चिन्ता मत कर, मेरी स्तुति पढ़" ॥ २६६ ॥ प्रभु को देखकर श्रीनिवास प्रेम में रोने लगे । प्रभु का आश्वासन पाकर उसके हृदय का भय दूर हो गया ॥ २६७ ॥ श्रीवास पण्डित एक तो वैसे ही महा भागवत हैं, उस पर प्रभु की आज्ञा हुई है । अब तो उनकी मन की हो गई—वे स्तुति करने लगे ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ श्रीमद्भागवत में जो ब्रह्मा-मोह—नाश का प्रसंग है, उसी में से ब्रह्मा कृत स्तुति का प्रथम श्लोक पढ़ कर वे स्तुति करते हैं ॥ २७० ॥ "प्रभो ! आपका नव जल धर के समान श्यामल शरीर है, आप विद्युत जैसे झल मलाते हुए पीताम्बर को पहने हुए हैं, कर्णों में गुञ्जाओं के भूषण और शीश पर मोर पंख धारण करने से आपके मुख पर अनोखी छटा छिटक रही है, आपके वक्षः स्थल पर लटकती हुई बनमाला है, वाँई हथेली पर दही भात का कौर है, बगल में, बेत और सींगा है, और कमर की फेंट पर वंशी है । इन असाधारण चिन्हों से आपकी विशेष शोभा हो रही हैं, पुत्र आप सुकुमार चरण वाले हैं, और पशु पालक नन्दराय के पुत्र हैं । आप ही स्तुति करने योग्य हैं ! मैं आपकी नमस्कार करता हूँ" ॥ २७१ ॥ (भाग० १०–१४–१) "श्री विश्वम्भर के चरणों में मेरा नमस्कार है, जिनका वर्ण नवीन मेघ को भी जीतने वाला है और जो पीताम्बर पहने हुए हैं ॥ २७२ ॥ श्री शचीनन्दन के चरणों में मेरा नमस्कार है जिनका कि नवीन गुञ्जा और मोर पंख ही भूषण है ॥ २७३ ॥ श्री गङ्गादास पण्डित के शिष्य के चरणों में मेरा नमस्कार है, कि जो बनमाला पहने हुए हैं और जिनके हाथ में दही—भात का कौर है ॥ २७४ ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र के पुत्र के चरणों में मेरा नमस्कार है, कि जिनके मुख की रूप माधुरी कोटि चन्द्रमाओं को जीतने वाली है ॥ २७५ ॥ जिनके भूषण के चिन्ह सींगा, बेत और वंशी हैं, वही तुम नवद्वीप में अवतीर्ण

शिङ्गा, वेत्र, वेणु चिह्न भूषण आँहार । सेइ तुमि नवद्वीपे कैले अवतार ॥२७६॥
चारि-वेदे जाँरे घोषे' 'नन्देर कुमार' । सेइ तुमि, तोमार चरणे नमस्कार'' ॥२७७॥
ब्रह्मस्तवे स्तुति करे प्रभुर चरणे । स्वच्छन्दे बोलये–जत आइसे वदने ॥२७८॥
''तुमि विष्णु, तुमि कृष्ण, तुमि यज्ञेश्वर । तोमार चरणोदक-गङ्गा तीर्थवर ॥२७९॥
जानकी वल्लभ तुमि, तुमि नरसिंह । अज-भव-आदि तोर चरणेर भृङ्ग ॥२८०॥
तुमिसे वेदान्त वेद्य, तुमि नारायण । तुमिसे छलिला वलि-हइया वामन । २८१॥
तुमि हय ग्रीव, तुमि जगत-जीवन । तुमि नीलाचल चन्द्र-सभार कारण ॥२८२॥
तोमार मायाय कार् नाहि हय भङ्ग । कमला ना जाने–जार सने एक सङ्ग ॥२८३॥
सङ्गी सखा भाइ–सर्व-मते सेवेजे । हेन प्रभु मोह माने'–अन्य जनाके ॥२८४।
मिथ्या-गृहवासे मोरे पाड़ियाछ भोले । तोमा' ना जानिञा मोर जन्मगेल हेले ॥२८५॥
नाना माया करि तुमि आमारे वञ्चिला । धाजि-धूति आदि करि आमार वहिला ॥२८६॥
ताथे मोर भय नाहि, शुन प्राणनाथ । तुमि-हेन प्रभु मोरे हइला साक्षात ॥२८७॥
आजि मोर सकल-दुःखेर हैल नाश । आजि मोर दिवस हइल परकाश ॥२८८।
आजि मोर जन्म-कर्म सकल सफल । आजि मोर उदय-सकल सुमङ्गल ॥२८९॥
आजि मोर पितृ कुल हइल उद्धार । आजि से वसति धन्य हइल आमार ॥२९०॥
आजि मोर नयान-भाग्येर नाहि सीमा । ताहा देखि–जाँर श्रीचरण सेवे रमा'' ॥२९१॥
वलिते आविष्ट हैला पण्डित-श्रीवास । ऊर्द्ध-बाहु करि कान्दे, छाड़े घन श्वास ॥२९२॥

हुए हो ॥ २७६ ॥ चारों वेद जिनको 'नन्द कुमार' कहकर घोषणा करते हैं, वह तुम ही हो। तुम्हारे चरणों में नमस्कार है'' ॥ २७७ ॥ (इस प्रकार) श्रीवास पण्डित ब्रह्म–स्तव के द्वारा प्रभु के चरणों में स्तुति निवेदन करते हैं–और जो कुछ मुख में आता है वही निधडक बोलते जाते हैं ॥ २७८ ॥ यथा:–हे प्रभो ! तुम विष्णु हो, तुम श्रीकृष्ण हो, तुम यज्ञेश्वर हो । तीर्थ श्रेष्ठ गङ्गा तुम्हारा ही चरणोदक है ॥ २७९ ॥ तुम जानकी–बल्लभ राम हो, तुम नृसिंह हो, ब्रह्मा,शिव, आदि तुम्हारे ही श्रीचरणों के मधुकर हैं ॥ २८० ॥ तुम ही वेदान्त-वेद्य हो, तुम ही नारायण हो, तुमने ही वामन बन कर वलि को छला था ॥ २८१ ॥ तुम हयग्रीव हो, तुम ही जगज्जीवन हो, तुम ही सबके कारण नीला चल निवासी श्रीजगन्नाथ हो ॥ २८२ ॥ तुम्हारी माया से कौन नहीं हारा ? सदा साथ रहने वाली लक्ष्मी जी भी तुम्हें नहीं जानती है ॥२८३॥ जो साथी, सखा, भाई आदि के रूप में सब प्रकार से तुम्हारी सेवा करते हैं, वे प्रभु (बलराम) भी तुम्हारी माया से मोह में पड़ जाते हैं, तो फिर औरों की तो बात ही क्या ? ॥ २८४ ॥ प्रभो ! तुमने मुझे भी इस मिथ्या गृहस्थ में भुला रक्खा है । तुम्हें न जानकर मेरा जन्म ऐसे ही व्यर्थ चला गया ॥२८५॥ हे नाथ ! तुमने कितने २ छल करके मुझे छला ! तुम मेरी पूजा की डाली और धोती तक उठा कर चले ॥ २८६ ॥ उससे मुझे, सुनो प्राण नाथ, भय नहीं है, (प्रसन्नता ही है, कारण कि) तुम जैसे प्रभु मुझे साक्षात् मिल गये ॥ २८७ ॥ आज मेरे समस्त दुःखों का नाश हो गया । आज मेरा शुभ दिवस उदय हुआ ॥ २८८ ॥ आज मेरा जन्म, मेरे कर्म सब सफल हो गये । आज मेरे समस्त सुमंगल उदय हो आये ॥ २८९ ॥ आज मेरे पितृ कुल का उद्धार हो गया । आज मेरा निवास-स्थान धन्य हो गया ॥ २९० ॥ आज मेरे नेत्रों के सौभाग्य की सीमा नहीं है (कारण कि आज मैं) उनको देख रहा हूँ कि जिनके श्री चरणों की लक्ष्मी जी सेवा करती हैं'' ॥ २९१ ॥ (इस प्रकार) स्तुति करते २ श्रीवास पण्डित आवेश में

गड़ा गड़ि जाय भाग्यवन्त श्रीनिवास । देखिया अपूर्व गौरचन्द्रेर प्रकाश । २९३।।
कि अद्भुत सुख हैल श्रीवास-शरीरे । डूविलेन विप्रवर आनन्द-सागरे ।।२९४।।
हासिया शुनेन प्रभु श्रीवासेर स्तुति । सदय हइया वोले श्रीवासेर प्रति ।।२९५।।
"स्त्री-पुत्र-आदि जत तोमार बाड़ीर । देखुक आभार रूप, करह बाहिर ।।२९६।।
सस्त्रीक हइया पूज' चरण आमार । वर माग जेन इच्छा थाकये तोमार ।।२९७।।
प्रभुर पाइवा आज्ञा श्रीवास पण्डित । सर्व-परिकर सह आइला त्वरित ।।२९८।।
विष्णु पूजा-निमित्त जतेक पुष्प छिल । सकल प्रभुर पाये साक्षातेइ दिल ।।२९९।।
गन्ध-माल्य-धूप-दीपे पूजे श्रीचरण । सस्त्रीक हइया विप्र करये क्रन्दन ।।३००।।
भाइ, पत्नि, दास, दासी, सकल लइया । श्रीवास करये काकु चरणे पड़िया ।।३०१।।
श्रीनिवास प्रिय कारी प्रभु विश्वम्भर । चरण दिलेन सर्व-शिरेर उपर ।।३०२।।
अलक्षिते कुले प्रभु माथाय सभार । हासि वोले "मोरे चित्त हउ सभाकार ।।३०३।।
हुङ्कार गर्जन करि प्रभु विश्वम्भर । श्रीनिवास सम्वोधिया वोलेन उत्तर ।।३०४।।
"अये श्रीनिवास ! किछु मने भय पाओ । शुनि तोमा" धरिते आइसे राज-नाओ ।।३०५।।
अनन्त-व्रह्माण्ड—माझे जत जीव वैसे । सभार प्रेरक आमि आपनार रसे ।।३०६।।
मुञि जदि वोलाङ सेइ राजार शरीरे । तवे से वलिव सेह धरिवार तरे ।।३०७।।
जदि वा एमत नहे, स्वतंत्र हइया । धरि वारे वोले, तवे मुञि चाहों इहा ।।३०८।।
मुञि गिया सर्व-आगे नौकाय चढ़िमु । एइ मत गिया राजगोचर हइमु ।।३०९।।

भर गये और भुजा उठा कर रोने और लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगे ।।२९२।। श्री गौरचन्द्र के अपूर्व प्रकाश को देखकर भाग्यवान् श्रीनिवास धरती पर लोट पोट हो गये ।। २९३।। श्रीवास के तन-मन में कैसा अद्भुत सुख हुआ कि विप्रवर आनन्द-सागर में डूब गये ।। २९४ ।। प्रभु ने श्रीवास की स्तुति हँसते हँसते सुनी और फिर सदय होकर (श्रीवास से) बोले ।। २९५ ।। "श्रीवास ! तुम्हारे घर में जितने स्त्री-पुरुष आदि हैं, उन सबको बाहर बुलाओ, वे सब मेरा रूप देखें" ।। २९६।। "तुम स्त्री सहित मेरे चरणों की पूजा करो, और जो तुम्हारी इच्छा हो, वही वर माँग लो" ।। २९७ ।। प्रभु की आज्ञा पाकर श्रीवास पण्डित अपने परिवार सहित शीघ्र ही आ गया ।। २९८ ।। उन्होंने, विष्णु-पूजन के लिये जितने फूल थे, वे सब प्रभु के चरणों में साक्षात् चढ़ा दिये ।। २९९ ।। उन्होंने सुगन्धि, माला, धूप, दीप के द्वारा श्री चरणों की पूजा की । स्त्री सहित विप्रवर रोने लगे ।। ३०० ।। फिर भाई, पत्नी, दास, दासी, सब को लेकर वे प्रभु के श्री चरणों में पड़ गये और दीन वचनों द्वारा प्रार्थना करने लगे ।। ३०१ ।। श्रीनिवास के प्रिय कर्त्ता श्री विश्वम्भर प्रभु ने सबके सिर पर अपना चरण रख दिया ।। ३०२ ।। प्रभु ने अलक्षित रूप से सबके सिर पर हाथ फेरा और हँसकर बोले—"मुझ में सबका चित्त होवे" ।। ३०३ ।। फिर हुँकार और गर्जन करते हुए श्रीवास को सम्बोधन करके बोले ।। ३०४ ।। "ऐ श्रीनिवास ! क्या तुम मन में कुछ डर रहे हो ? मैं सुनता हूँ कि तुम लोगों को पकड़ने के लिये एक राज-नौका आ रही है ।। ३०५ ।। (तो सुनो) अनन्त ब्रह्माण्डों में जितने जीव बसते हैं, मैं उन सबका स्वेच्छानुसार प्रेरक हूँ ।। ३०६ ।। (अतएव) जब मैं उस राजा के शरीर के भीतर से बुलवाऊँगा, तब ही वह पकड़ने के लिये बोलेगा ।। ३०७ ।। "यदि ऐसी बात नहीं हुई और वह स्वतंत्र रूप से पकड़ लाने के लिये आज्ञा करे भी, तो मैं यह करना चाहता हूँ कि ।। ३०८ ।। मैं जाकर सबसे पहले नौका पर चढ़ूँगा और इस प्रकार जाकर राजा के सन्मुख पहुँचूँगा

मोरे देखि राजा कि रहिब नृपासने । विह्वल करियाना पाड़िमु सेइ खाने ।।३१०।।
अदि बा एमत नहे, जिज्ञासिव मोरे । सेहो मोर अभीष्ट शुनह कहों तोरे ।।३११।।
शुन शुन अये राजा ! सत्य मिथ्या जान । जतेक मोल्ला काजी सव तोर आन ।।३१२।।
हस्ती,घोड़ा,पशु, पक्षी जत तोर आछे । सकल आनह राजा ! आपनार काछे ।।३१३।।
एवे हेन आज्ञा कर' सकल-काजीरे । आपनार शास्त्र वलि कान्दाउ सभारे ।।३१४।।
ना पारिल तारा जदि एतेक करिते । तवे से आपना' व्यक्त करिव राजाते ।।३१५।।
'सङ्कीर्तन माना कर' ए गुलार बोले । जत तार शक्ति एइ देखिलि सकले ।।३१६।।
मोर शक्ति देख एवे नयन भरिया । एत वलि मत्त-हस्ती आनिव धरिया ।।३१७।।
हस्ती,घोड़ा,मृग,पाखी एकत्र करिया । सेइ खाने कान्दाइमु श्रीकृष्ण वलिया ।।३१८।।
राजार जतेक गण–राजार सहिते । सभा' कान्दाइमु कृष्ण वलि भालमते । ३१९।।
इहाते वाअप्रत्यय तुमि वास' मने । साक्षातेइ करों देख आपन-नयने ।।३२०।।
सम्मुखे देखये एक वालिका आपनि । श्रीवासेर भ्रातृ-सुता–नाम 'नारायणी' ।।३२१।।
अद्यापिह वैष्णव-मण्डले जाँर ध्वनि । 'चैतन्येर अवशेष-पात्र नारायणी ।।३२२।।
सर्व-भूत-अन्तर्यामी–प्रभु गौर चाँद । आज्ञा कैला "नारायणि । कृष्ण वलि काँद" ।।३२३ ।
चारि-वत्सरेर सेइ उन्मत्त–चरित । 'हा कृष्ण' वलिया कान्दे, नाहिक सम्वित ।।३२४।।
अङ्ग वाहि पड़े धारा पृथिवीर तले । परिपूर्ण हैल स्थल नयनेर जले ।।३२५।।

।। ३०९ ।। मुझे देखकर राजा क्या अपने राज-आसन पर बैठा रह सकेगा ? क्या मैं उसे विह्वल बना कर वहीं न गिरा सकूंगा ? ।। ३१० ।। यदि ऐसा न हुआ और राजा ने मुझसे कुछ–पूछा तो वह तो मैं चाहता ही हूँ । मैं उसे जो कहूँगा वह तुझसे कहता हूँ सुन ।। ३११ ।! (मैं कहूँगा) "अरे राजन् ! सुन-सुन और सत्य-मिथ्या को पहचान । जितने तेरे काजी और मुल्ला है उन सबको बुला ले ।। ३१२ ।। और जितने तेरे हाथी–घोड़ा, पशु–पक्षी हैं, उन सबको अपने पास मँगवा ले ।। ३१३ ।। अब इन सब काजी–मुल्लाओं को आज्ञा कर कि ये अपना शास्त्र (कुरान) पढ़कर इन सब पशु-पक्षियों को रुलावें ।। ३१४ ।। यदि वे काजी-मुल्ला ऐसा नहीं कर सके तो फिर मैं अपने को राजा के आगे प्रकट करूँगा ।। ३१५ ।। (मैं कहूँगा कि) अरे राजा ! तू इन लोगों के कहने से संकीर्तन बन्द करता है–इनकी जितनी भी शक्ति है वह तो तूने सब देख ही ली ।। ३१६ ।। अब तू आंख खोल करके मेरी भी शक्ति देख । इतना कहकर मैं एक मत वाले हाथी को पकड़ लाऊँगा ।। ३१७ । और हाथी-घोड़ा, पशु-पक्षी सबको वहाँ इकट्ठा करूँगा और वहीं पर उन सबको "कृष्ण कृष्ण" कहकर रुलाऊँगा ।। ३१८ ।। और राजा के सहित राजा के जितने लोग हैं, उन सबको "कृष्ण २" कह कर खूब रुलाऊँगा ।। ३१९ ।। यदि तुम्हारे मन में इस बात पर विश्वास नहीं होता है तो मैं तुम्हारे सामने ही करके दिखलाता हूँ, तुम अपनी आँखों से देख लो ।। ३२० ।। श्रीवास की भतीजी नारायणी नाम की एक वालिका को प्रभु ने अपने सामने देखा ।। ३२१ ।। जिसके लिये आज भी वैष्णव मण्डली में यह ध्वनि गाई जाती है "श्री चैतन्यदेव के अवशेष प्रसाद की-पात्री नारायणी" ।३२२।। उसके लिये सर्वभूत अन्तर्यामी प्रभु गौरचन्द्र ने आज्ञा की कि–"नारायणी ! कृष्ण २ कह कर रो तो" ।। ३२३ ।। चार वर्ष की वह बालिका प्रेमोन्मत्त हो गई, "हा कृष्ण" "हा कृष्ण" कह कर रोने लगी और कुछ ज्ञान उसे न रहा ।। ३२४ ।। आँसुओं की धारा उसके शरीर को भिगोती हुई पृथ्वी पर बहने लगी और वह स्थान उस जल से भर गया ।। ३२५ ।। तब प्रभु विश्वम्भर हँस २-कर कहने लगे "अरे श्रीवास !

हासिया हासिया बोले प्रभु विश्वम्भर । "एखन तोमार सव घुचिल किडर ।।३२६ ।
महा-वक्ता श्रीनिवास—सर्व-तत्त्व जाने । आस्फालिया दुइ भुज वोले प्रभु-स्थाने ।।३२७।।
"काल रूपी तोमार विग्रह भगवाने । जखने सकल सृष्टि संहारिया आने' ।।३२८।।
तखने ना करि भय तोर नाम-बले । एखने किसेर भय, तुमि मोर घरे" ।।३२९।।
वलिया आविष्ट हैला पण्डित—श्रीवास । गोष्ठीर सहित देखे प्रभुर प्रकाश ।।३३०।।
चारि-वेदे जारे देखिवारे अभिलाष । ताहा देखे श्रीवासेर जत दासी दास ।।३३१।।
कि वलिव श्रीवासेर उदार चरित्र । जाहार चरण-धूले संसार पवित्र ।३३२।।
कृष्ण-अवतार जेन वसुदेव घरे । जतेक विहार सव-नन्देर मन्दिरे ।।३३३।।
जगन्नाथ घरे हैल एइ अवतार । श्रीवास पण्डित गृहे सकल विहार ।।३३४।।
सर्व वैष्णवेर प्रिय—पण्डित-श्रीवास । ताँर वाड़ी गेले मात्र सभार उल्लास ।।३३५।।
अनुभवे जारे स्तव करे वेद मुखे । श्रीवासेर दास दासी ताँरे देखे सुखे ।।३३६।।
एतेके वैष्णव सेवा परम-उपाय । अवश्य मिलये कृष्ण वैष्णव कृपाय ।।३३७।।
श्रीवासेरे आज्ञा कैला प्रभु विश्वम्भर । "ना कहिओ ए सव कथा काहारो गोचर" ।।३३८।।
वाह्य पाइ विश्वम्भर लज्जित-अन्तर । आश्वासिया श्रीवासेरे गेलानिज-घर ।।३३९।।
सुखमय हैल तवे श्रीवास पण्डित । पत्नी, वधू, भाइ, दास, दासीर सहित ।।३४ ।।
श्रीवास करिला स्तुति—देखिया प्रकाश । इहा जेइ शुने सेइ हय कृष्णदास ।।३४१।।
अन्तर्जामि-रूपे बलराम भगवान । आज्ञा कैला चैतन्येर गाइते आख्यान ।।३४२।।

अब तो तुम्हारा सब भय दर हो गया न ।। ३२६ ।। श्रीबास जी बड़े भारी वक्ता हैं और सर्व तत्त्व के ज्ञाता हैं। वे दोनों भुजा उठाकर प्रभु से बोले—।। ३२७ ।। "आपकी काल रूपी भगवन्मूर्त्ति जब समस्त सृष्टि का संहार कर डालती है तब भी मैं आपके बल से भयभीत नहीं होता हूँ, फिर इस समय जब कि आप मेरे घर में हैं, मुझे किसका भय ?" ।। ३२८ ।। ३२९ ।। कहते २ श्रीवास को आवेश हो आया । वे (आनन्द में भरे) परिवार सहित प्रभु के प्रकाश का दर्शन करने लगे ।। ३३० ।। चारों वेद जिनके दर्शन की अभिलाषा करते हैं, उनको श्रीवास के सब दास-दासी देख रहे हैं ।। ३३१ ।। श्रीवास के उदार चरित्र को मैं क्या बखानूँ कि जिनकी चरण—रज से संसार पवित्र है ।। ३३२ ।। जैसे श्रीकृष्ण का अवतार तो वसुदेव जी के घर हुआ परन्तु लीलाएँ सब नन्द बाबा के घर हुईं, ।। ३३३ ।। वैसे ही यह गौर अवतार भी हुआ तो श्रीजगन्नाथ जी के घर परन्तु सारी लीलाएँ श्रीवास पण्डित के घर में ही हुईं ।। ३३४ ।। श्रीवास पण्डित सब वैष्णवों के बड़े प्रिय हैं। उनके घर जाने में ही सबको बड़ा आनन्द होता है ।।३३५।। वेद अपने अनुभव ज्ञान के बल से जिनकी केवल मुख से ही स्तुति करते हैं, श्रीवास के दास—दासी उन्हीं को सुख पूर्वक आँखों से देख रहे हैं ।। ३३६ ।। इसीलिये वैष्णव सेवा ही श्रीकृष्ण प्राप्ति का परम उपाय है। वैष्णवों की कृपा से श्रीकृष्ण अवश्य मिलते हैं ।। ३३७ ।। प्रभु विश्वम्भर ने श्रीवास जी को आज्ञा की कि "तुम यह सब प्रसंग किसी को सुनाना नहीं ।। ३३८ ।। पश्चात् वाह्य दशा में आने पर प्रभु विश्वम्भर मन में बड़े लज्जित हुए और श्रीवास को ढाँढस—भरोसा देकर अपने घर चले गये ।। ३३९ ।। तब तो श्रीवास पण्डित पत्नी, बधू, भाई, दास—दासी सबके सहित बड़े आनन्द को प्राप्त हुए ।। ३४० ।। श्रीवास ने प्रभु के प्रकाश को देखकर जो स्तुति की है उसे जो कोई भी सुनेगा, वह श्रीकृष्ण का दास बन जायगा ।। ३४१ ।। भगवान् बलराम ने अन्तर्यामी रूप से मुझको श्रीचैतन्य चरित गाने के लिए आज्ञा की. (इसी-

वैष्णवेर पाये मोर एइ मनस्काम। जन्म जन्म मोर प्रभु हउ वलराम ॥३४३॥
'नरसिंह' 'यदुसिंह' येन नाम-भेद। एइ मत जान' 'नित्यानन्द' वलदेव' ॥३४४॥
चैतन्य चन्द्रे र प्रिय-विग्रह वलाइ। एवे 'अवधूत चन्द्र' करि जारे गाइ ॥३४५॥
मध्य खण्ड-कथा भाइ। शुन एक चिते। वत्सरेक कीर्तन करिला जेन मते ॥३४६॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान। वृन्दावनदास तछु पद युगे गान ॥३४७॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

अवतीर्णो स्वकारुण्यो परिछिन्नो सदीश्वरौ। श्रीकृष्ण चैतन्य-नित्यानन्दौ द्वौभ्रातरौ भजे ॥१॥
जय जय सर्व प्राणनाथ विश्वम्भर। जय नित्यानन्द-गदा धरेर ईश्वर ॥२॥
जय जय अद्वैतादि-भक्तेर अधीन। भक्ति दान देह' प्रभु! उद्धारह दीन ॥३॥
एइ रूपे नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। भक्ति सुखे भासे लइ सर्व-अनुचर ॥४॥
प्राण हेन सकल सेवक आपनार। 'कृष्ण' वलि कान्दे गला धरिया सभार ॥५॥
देखिया प्रभुर प्रेम सर्व-दास गण। चतुर्दिगे प्रभु वेढ़ि करये क्रन्दन ॥६॥
थाकुक दासेर काज, से प्रेम देखिते। शुष्क काष्ठ-पाषाणादि मिलाय भूमिते ॥७॥
छाड़ि धन, पुत्र, गृह सर्व-भक्त गण। अहर्निशि प्रभु-सङ्गे करेन कीर्त्तन ॥८॥
हइलेन गौरचन्द्र कृष्ण भक्तिमय। जखन जेरूप शुने, सेइ मत हय ॥९॥

लिये मैं यह कुछ गा रहा हूँ) ॥ ३४२ ॥ श्री वैष्णवों के चरणों में मेरी यही प्रार्थना है कि जन्म-जन्म में मेरे प्रभु श्रीबलराम जी हों ॥ ३४३ ॥ जैसे "नरसिंह" "यदुसिंह" में केवल नाम मात्र का ही भेद है वैसे ही "नित्यानन्द" और "बलराम" में भी जानो ॥ ३४४ ॥ श्रीबलराम जी, जिनको अब अवधूत-चन्द्र (नित्या नन्द) के नाम से गाते हैं, श्रीचैतन्य चन्द्र के प्रिय विग्रह हैं। ३४५ ॥ भाइयो ! मध्य खण्ड की कथा एकाग्र चित्त से सुनो—जिस प्रकार प्रभु ने एक वर्ष तक कीर्त्तन किया है—(वह इसमें वर्णित होगी) ॥ ३४६ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दाबन दास उनके श्रीयुगल चरणों में उनका ही गुण-गान कुछ निवेदन करता है ॥ ३४७ ॥

जो केवल अपनी करुणा से प्रेरित होकर ही अवतीर्ण हुए हैं, जो परिच्छिन्नवत् प्रतीत होते हुए भी सत् अर्थात् नित्य स्वरूप हैं तथा ईश्वर अर्थात् सर्व नियन्ता हैं, उन दोनों भाई श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द को मैं भजता हूँ, ॥ १ ॥ सब के प्राण नाथ विश्वम्भर की जय हो जय हो। नित्यानन्द और गदाधर के ईश्वर की जय हो जय हो ॥ २ ॥ अद्वैता चार्य आदि भक्तों के अधीन प्रभु की जय हो, जय हो। हे प्रभो ! भक्ति प्रदान करो और दीनों का उद्धार करो ॥ ३ ॥ इस प्रकार श्री विश्वम्भर प्रभु नवद्वीप में अपने सब अनुचर जनों के सहित भक्ति-सुख की सरिता में आनन्द से बहे जा रहे हैं ॥ ४ ॥ आपको अपने सब सेवक प्राण समान प्रिय हैं, आप उनके कण्ठ पकड़-पकड़ कर 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए रोते हैं ॥ ५ ॥ वे सेवक गण भी प्रभु के प्रेम को देखकर उनको चारों ओर से घेर कर रोते हैं ॥ ६ ॥ सेवकों की बात तो दूर रहे, उस प्रेम को देखकर सूखे काठ और पत्थर भी पिघल कर धूल में मिल जाते हैं ॥ ७ ॥ सब भक्त जन अपने धन, पुत्र, गृह आदि छोड़ कर प्रभु के साथ दिन रात कीर्त्तन करते हैं ॥ ८ ॥ अब तो गौरचन्द्र कृष्ण-भक्ति मय हो गये हैं। जब जैसी कथा सुनते हैं, उसी भाव में तन्मय हो जाते हैं

दास्य भावे प्रभु जवे करेन क्रन्दन। हइल प्रहर दुइ गङ्गा–आगमन ।।१०।।
जवे हासे, तवे प्रभु प्रहरेक हासे। मूर्च्छित हइले–प्रहरेक नाहि श्वासे ।।११।।
क्षणे हय स्वानु भाव,–दम्भ करि वैसे। "मुञि सेइ मुञि सेइ" इहा वलि हासे ।।१२।।
"कोथा गेल नाढ़ा बूढ़ा–जे आनिल मोरे। विलाइमुँ भक्ति रस प्रति-घरे घरे" ।।१३।।
सेइ क्षणे "कृष्ण आरे बाप" वलि कान्दे। आपनार केश आपनार पाये वान्धे ।।१४।।
अक्रूर-जानेर श्लोक पढ़िया पढ़िया। क्षणे पड़े पृथिवीते दण्डवत हैया ।।१५।।
हइ लेन महाप्रभु जे हेन अक्रूर। सेइ मत कथा कहे वाह्य गेल दूर ।।१६।।
"मथुराय चल नन्द ! राम–कृष्ण लैया। धनुर्मख राज महोत्सव देखि गिया ।।१७।।
एइ मत नाना भावे नाना-कथा कहे। देखिया वैष्णव-सब आनन्दे भासये ।।१८।।
एक दिन वराह भावेर श्लोक शुनि। गर्जिया मुरारि-घरे चलिला आपनि ।।१९।।
अन्तरे मुरारि गुप्त-प्रति वड़ प्रेम। हनुमान-प्रति प्रभु रघुनाथ जेन ।।२०।।
मुरारिर घरे गेला श्रीशची नन्दन। सम्भ्रमे करिला गुप्त चरण-वन्दन ।।२१।।
"शूकर शूकर" वलि प्रभु चलि जाय। स्तम्भित मुरारि गुप्त चतुर्दिगे चाय ।।२२।।
विष्णु गृहे प्रविष्ट हइला विश्वम्भर। सम्मुखे देखिला जल भाजन सुन्दर ।।२३।।
वराह-आकार प्रभु हैला सेइ क्षणे। स्वानुभावे गाडू प्रभु तुलिला दशने ।।२४।।
गर्जे जज्ञ वराह–प्रकाशे' खुर चारि। प्रभु वोले "मोर स्तुति वोलह मुरारि ।।२५।।

।। ९ ।। जब प्रभु दास–भाव में रोते हैं तो दो-दो पहर तक उनके नेत्रों से ऐसी अश्रुधाराएँ बहतीं हैं मानो तो गङ्गा जी ही स्वयं आ गई हों। ।। १० ।। प्रभु जब हँसते हैं तो एक २ पहर तक हँसते ही रहते हैं और मूर्च्छित होते हैं तब भी पहर-पहर तक श्वास का पता नहीं चलता है ।। ११ ।। और क्षण भर में उनका अपना ईश्वर भाव प्रकट हो जाता है, और तब वे बड़े स्वाभिमान के साथ बैठ जाते हैं और "मैं वही हूँ, मैं वही हूँ" कहते हैं और हँसते हैं ।। १२ ।। कभी कहते हैं–"अरे वह वूढ़ा नाडा (अद्वैत) कहाँ गया जो मुझे यहाँ (भूतल पर) ले आया है। अब मैं घर घर में भक्ति रस लुटाऊँगा" ।। १३ ।। और फिर उसी समय–"कृष्ण ! मेरे बाप" कहकर रोते हैं और अपने केश को अपने पैरों से बाँधते हैं ।। १४ ।। कभी व्रज-आगमन के समय अक्रूर जी के श्लोकों को पढ़ते हुए पृथ्वी पर दण्डवत् कर गिर पड़ते हैं ।।१५।। महाप्रभु अक्रूर के भाव में तन्मय होकर मानो तो अक्रूर ही बन गये। वे अपने को भूल गये और अक्रूर की भाँति बचन बोलने लगे ।। १६ ।। वे कहने लगे–"नन्दजी ! राम–कृष्ण को लेकर मथुरा को चलो। चल कर राजा का धनुष–यज्ञ महोत्सव देखो" ।। १७ ।। इस प्रकार प्रभु नाना प्रकार के भावावेश में नाना प्रकार की बातें कहते हैं और 'ष्णव जन यह चरित्र देख २ कर आनन्द धारा में बहे जाते हैं ।। १८ ।। एक दिन बराह अवतार का एक श्लोक सुनते ही प्रभु गरजते हुए मुरारि गुप्त के घर को चले ।। १९ ।। प्रभु के हृदय में मुरारि के प्रति बड़ा प्रेम है ठीक जैसा हनुमान जी के प्रति प्रभु रघुनाथ जी का है ।।२०।। जब श्री शचीनन्दन मुरारि गुप्त के घर पहुँचे तो मुरारि गुप्त ने बड़े आदर सम्मान पूर्वक प्रभु की चरण-वन्दना की ।। २१ ।। प्रभु "शूकर शूकर" कहते हुए चलते जाते हैं जिसे सुनकर मुरारि गुप्त चकित खड़ा-खड़ा चारों ओर देखता है ।। २२ ।। विश्वम्भर देव विष्णु–मन्दिर में प्रवेश कर गये और सामने ही उन्होंने जल से भरा हुआ एक सुन्दर पात्र देखा ।। २३ ।। देखते ही तत्क्षण प्रभु का वराह आकार हो गया और ईश्वर भाव के आदेश में प्रभु ने गड़ुवे को अपने दाँतों पर उठा लिया ।। २४ ।। चार खुरों को प्रकट करते

स्तब्ध हैला मुरारि अपूर्व-दरशने। किवलिव मुरारि, ना आइसे वदने ॥२६॥
प्रभु बोले "बोल बोल किछु भय नाञि। एत दिन नाहि जान' मुञि एइ ठाञि" ॥२७॥
कम्पित मुरारि कहे करिया विनति। "तुमि से जानह प्रभु ! तोमार जे स्तुति ॥२८॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड जार फणा एक घरे। सहस्र बदन हइ जारे स्तुति करे ॥२९॥
तभु नाहि पाय अन्त, सेइ प्रभु कहे। तोमर स्तवेते आर के समर्थ हये ॥३०॥
जे वेदेर मत करे सकल संसार। सेइ वेद सर्व-तत्त्व ना जाने तोमार ॥३१॥
जत देखि शुनि प्रभु ! अनन्त भुवन। तोर लोम कूपे गिया मिलाय जखन ॥३२॥
एक [सदा नन्द तुमि जकर जखने। शेल देखि वेदे ताहा जानिव केमने ॥३३॥
अत एव तुमिसे तोमारे जान' मात्र। तुमि जानाइले जाने तोमार कृपा पात्र ॥३४॥
तोमार स्तुति जे मोर कोन अधिकार। एत वलि कान्दे गुप्त करे नमस्कार ॥३५॥
गुप्त-वाक्ये तुष्ट हइ वराह ईश्वर। वेद प्रति क्रोध करि वोलये उत्तर ॥३६॥
"हस्त पाद मुख मोर नाहिक लोचन। वेद मोरे एइ मत करे विडम्बन ॥३७॥
काशी ते पढ़ाय बेटा परकाशानन्द। सेइ बेटा करे मोर अङ्ग खण्ड-खण्ड ॥३८॥
वाखानये वेद मोर विग्रह ना माने। सर्वाङ्ग हइल कुष्ठ, तभू नाहि जाने ॥३९॥
सर्व जज्ञ मय मोर जे: अङ्ग पवित्र। अज-भव-आदि गाय जाहार चरित्र ॥४०॥
पुण्य पवित्रता पाय जे अङ्ग-परशे। ताहा 'मिथ्या' वोले वेटा के मन साहसे" ॥४१॥

हुए यज्ञ-बराह गरजने लगे और बोले "मुरारि। मेरी स्तुति करो" ॥ २५ ॥ इस अपूर्व दर्शन से मुरारि गुप्त स्तब्ध हो गया -क्या बोले ? क्या स्तुति करे ? मुख में कुछ भी तो नहीं आता है ॥ २६ ॥ तब प्रभु बोले-"बोल-बोल ! कोई भय नहीं है ! तुम्हें इतने दिन तक मालूम नहीं था कि मैं इसी ठौर पर हूँ ॥२७॥ तब काँपते हुए मुरारि ने विनय-पूर्वक कहा-"हे प्रभो ! तुम्हारी स्तुति तो तुम ही जानते हो" ॥ २८ ॥ अपने एक फन पर अनन्त ब्रह्माण्डों को धारण करने वाले शेष जी अपने सहस्र मुखों से आप की स्तुति करते हैं ॥ २९ ॥ "तब भी आपकी महिमा का अन्त नहीं पाते हैं--ऐसा स्वयं शेष प्रभु कहते हैं, तो फिर आप को स्तुति करने में और कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ३० ॥ "जिस वेद के मत पर सब संसार चलता है. वे वेद भी आपके सर्व-तत्त्व को नहीं जानते हैं ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! जितने अनन्त भुवन देखने-सुनने में आते हैं वे सब महा प्रलय काल में जब आपके ही रोम-कूप में लीन हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ तब एक सदा नन्द स्वरूप आप ही रह जाते हैं। उस समय आप जब जो कुछ करते हैं, उसको, कहिये तो सही, वेद कैसे जान सकते हैं ? ॥ ३३ ॥ अतएव आप ही केवल अपने को जानते हो और आपके जनाने पर ही आपका कोई कृपा पात्र जान सकता है ॥ ३४ ॥ ऐसे जो आप हैं, आपकी स्तुति करने का भला मेरा क्या अधिकार है ? "इतना कहकर मुरारि गुप्त रोने लगे और प्रभु को प्रणाम करने लगे ॥ ३५ ॥ वराह भगवान् मुरारि गुप्त के वचनों से प्रसन्न हुए-फिर वेदों के प्रति क्रोध करते हुए बोले ॥ ३६ ॥ "मेरे हाथ, पाँव, मुख, आँख नहीं है" कह कर वेद मेरी विडम्बना करते हैं ॥ ३७ ॥ "काशी में बेटा प्रकाशानन्द वेद पढ़ाता है। पढ़ाता क्या है वह मेरे शरीर के टुकड़े २ करता है ॥ ३८ ॥ "वह वेद की व्याख्या करता हुआ मेरे शरीर को नहीं मानता है, इसी से उसके सर्वांग में कोढ हो गया है, फिर भी उसकी आँखें नहीं खुलती हैं ॥ ३९ ॥ "मेरा जो पवित्र अंग सर्व यज्ञ मय है, जिसके चरित्र को ब्रह्मा शिव आदि गाते हैं" ॥ ४० ॥ "जिस मेरे अंग के स्पर्श से पुण्य और पवित्रता की प्राप्ती होती है अथवा तो पवित्र भी पवित्र बन जाता है, उसे वह बेटा

"शुनरे मुरारि गुप्त" कहये शूकर। "वेद-गुह्य कहि एइ तोमार गोचर ॥४२॥
आमि जज्ञ वराह–सकल-वेद-सार। आमिसे करिलुँ पूर्वे पृथिवी-उद्धार ॥४३॥
सङ्कीर्त्तन-आरम्भे मोहर अवतार। भक्त-जन राखि दुष्ट करिमु संहार ॥४४॥
सेव केर द्रोह मुञि सहिते ना पारों। पुत्र जदि हय मोर, तथापि संहारों ॥४५॥
पुत्र काटों आपनार सेवक लागिया। मिथ्या नाहि वोलों गुप्त शुन मन दिया ॥४६॥
जे काले करिलुँ, मुञि पृथिवी-उद्धार। रहिल क्षितिर गर्भ–परशे आमार ॥४७॥
हइल 'नरक' नामे पुत्र महावल। आपने पुत्रेरे धर्म कहिलुँ सकल ॥४८॥
महाराजा हइलेन आमार नन्दन। देव द्विज गुरु भक्त करेन पालन ॥४९॥
दैव दोषे ताहार हइल दुष्ट-सङ्ग। वाणेर संसर्गे हैल भक्त-द्रोह-रङ्ग ॥५०॥
सेव केर हिंसा मुञि ना पारि सहिते। काटिलुँ आपन पुत्र-सेवक राखिते ॥५१॥
जन्मे जन्मे तुमि सेवियाछह आमारे। एतेके सकल तत्त्व कहिल तोमारे" ॥५२॥
शुनिञा मुरारि गुप्त प्रभुर वचन। विह्वल हइया गुप्त करेन क्रन्दन ॥५३॥
मुरारि–सहित गौरचन्द्र जय जय। जय जज्ञ वराह-सेवक-रक्षामय ॥५४॥
एइ मत सर्व–सेव केर घरे घरे। कृपाय जानायेन ठाकुर आपनारे ॥५५॥
चिनिञा सकल भृत्य–प्रभु आपनार। परानन्द मय चित्त हइल सभार ॥५६॥
पाषण्डीरे आर केहो भय नाहि करे। हाटे घाटे सभे 'कृष्ण' गाय उच्चस्वरे ॥५७॥
प्रभु-सङ्गे मिलिया सकल भक्त गण। महानन्दे अहर्निश करये कीर्त्तन ॥५८॥

"मिथ्या" कहने का साहस कैसे करता है ॥ ४१ ॥ फिर वराह भगवान् बोले–"अरे मुरारि सुन ! वेद में भी जो गुप्त है, उसे मैं तुमसे प्रत्यक्ष करता हूँ ॥ ४२ ॥ "मैं यज्ञ वराह-सब वेदों का सार हूँ। मैंने ही पूर्व-काल में पृथ्वी का उद्धार किया था ॥ ४३ ॥ "यह मेरा अवतार संकीर्त्तन–प्रचार के लिये हुआ है। मैं भक्त जनों की रक्षा करके दुष्टों का संहार करूँगा ॥ ४४ ॥ "मेरे सेवक से द्रोह–यह मैं सह नहीं सकता हूँ वह मेरा पुत्र ही क्यों न हो, उसे भी मैं मार डालता हूँ ॥ ४५ ॥ "अपने सेवक के लिये मैं अपने पुत्र को भी काट डालता हूँ। मुरारि गुप्त ! यह मैं मिथ्या नहीं कह रहा हूँ–ध्यान देकर सुनो ॥४६ ॥ "जिस समय मैंने पृथ्वी का उद्धार किया था उस समय मेरे स्पर्श से पृथ्वी देवी के गर्भ रह गया था ॥ ४७ ॥ "उससे 'नरक' नाम का एक बड़ा बलवान पुत्र हुआ। उस अपने पुत्र को मैंने धर्म का सब तत्त्व समझा दिया ॥ ४८ ॥ "पीछे जाकर मेरा पुत्र महा राजा हुआ–और वह देव, द्विज, गुरु और भक्तों का पालन करने लगा ॥ ४९ ॥ "परन्तु दुर्भाग्य वश वह दुष्ट–संग में पड़ गया बाणासुर के दुष्ट संग से उस पर भक्त द्रोह का रङ्ग चढ़ गया ॥ ५० ॥ "परन्तु मैं तो अपने सेवकों के प्रति हिंसा सह नहीं सकता–इसी से अपने सेवकों की रक्षा के लिये मैंने अपने पुत्र नरकासुर को मार डाला ॥ ५१ ॥ "तुमने जन्म-जन्म में मेरी सेवा की है–इसी कारण मैंने ये सब तत्त्व तुमसे कह सुनाया" ॥ ५२ ॥ इस प्रकार प्रभु के वचनों को सुनकर मुरारि गुप्त आनन्द में विह्वल हो कर रोने लगा ॥ ५३ ॥ मुरारि गुप्त के सहित गौरचन्द्र की जय हो जय हो ! सेवकों की रक्षा करना हो जिनका धर्म है उन यज्ञ वराह भगवान् की जय हो ॥ ५४ ॥ इस प्रकार प्रभु गौरचन्द्र सब सेवकों के घर-घर में जा जाकर कृपा करके अपने स्वरूप को प्रकट करने लगे ॥ ५५ ॥ सेवक जनों के हृदय भी अपने प्रभु को पहचान कर परमानन्द से पूर्ण हो गये ॥ ५६ ॥ अब तो कोई भक्त पाखण्डियों का भय नहीं करते और हाट-बाट-घाट में सब ऊँचे स्वर से 'कृष्ण कृष्ण' गाते हैं ॥ ५७ ॥

मिलिला सकल भक्त वइ नित्यानन्द । भाइ ना देखिया बड़ दुखी गौरचन्द्र ॥५९॥
निरन्तर नित्यानन्द स्मरे विश्वम्भर । जानि लेन नित्यानन्द अन्तर ईश्वर ॥६०॥
प्रसङ्गे शुनह नित्यानन्देर आख्यान । सूत्र रूपे जन्म-कर्म किछु कहि तान ॥६१॥
राढ-माझे एक चाका नामे आछे ग्राम । जहिं जन्मि लेन नित्यानन्द भगवान ॥६२॥
मौड़ेश्वर-नामे देव आछे कथो दूरे । जाँरे पूजियाछे नित्यानन्द हल घरे ॥६३॥
सेइ ग्रामे वैसे विप्र हाड़ाइ-पण्डित । महा-विरक्त र प्राय दयालु-चरित ॥६४॥
ताँर पत्नी-पद्मावती नाम पतिव्रता । परम-वैष्णवी शक्ति-सेइ जगन्माता ॥६५॥
परम-उदार दुइ ब्राह्मण ब्राह्मणी । ताँर घरे नित्यानन्द जन्मिला आपनि ॥६६॥
सकल-पुत्र र ज्येष्ठ-नित्यानन्द-राय । सर्व सुलक्षण देखि नयन जुड़ाय ॥६७॥
तान वाल्य लीला आदि खण्डे से विस्तर । एथाय कहिले हय ग्रन्थ बहुतर ॥६८॥
एइ मत कथो-दिन नित्यानन्द राय । हाड़ाइ पण्डित घरे आछेन लीलाय ॥६९॥
गृह छाड़ि वारे प्रभु करि लेन मने । ना छाड़े जननी-तात-दुःखेर कारणे ॥७०॥
तिल-मात्र नित्यानन्द ना देखिले माता । जुग प्राय हेन वासे' ततोधिक पिता ॥७१॥
तिल मात्र नित्यानन्द-पुत्र रे छाड़िया । कोथाओ हाड़ाइ ओझा नाजाय चलिया ॥७२॥
किवा कृषि कर्मे किवा जजमान घरे । किवा हाटे किवा घाटे जत कर्म करे ॥७३॥
पाछे जदि नित्यानन्द चन्द्र चलि जाय । तिलार्द्धे शतेक वार उलटिया चाय ॥७४॥

और सब भक्त लोग प्रभु के साथ मिलकर बड़े आनन्द से रात दिन कीर्तन करते हैं ॥ ५८ ॥ एक श्रीनित्यानन्द को छोड़ सब भक्त प्रभु से आ मिले हैं-परन्तु भाई (निताई) को न देखकर प्रभु बड़े दुखी रहते हैं ॥ ५९ ॥ विश्वम्भर देव निरन्तर नित्यानन्द का स्मरण करते हैं। विश्वम्भर के मन के इस दुःख को अन्तर्यामी नित्यानन्द भी जान गये ॥ ६० ॥ अब प्रसंग वश श्रीनित्यानन्द प्रभु की कथा भी सुनो। मैं सूत्र रूप से उनके जन्म-कर्म को कुछ कहता हूँ ॥ ६१ ॥ राठ देश में 'एक चाका' नामक एक ग्राम है-जहाँ श्रीनित्यानन्द भगवान् का जन्म हुआ था ॥ ६२ ॥ वहाँ से थोड़ी दूर पर "मौडेश्वर" नाम के महादेव हैं जिनकी पूजा हलधर नित्यानन्द जी ने की थी ॥ ६३ ॥ उस ग्राम में हाडाइ पण्डित नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। वे बड़े विरक्त जैसे और दयालु स्वभाव के थे ॥ ६४ ॥ उनकी पत्नी पद्मावती जी बड़ी पतिव्रता हैं, परम वैष्णवी शक्ति हैं, जगन्माता ही हैं ॥ ६५ ॥ ब्राह्मण-ब्राह्मणी दोनों बड़े उदार हैं, उनके घर में स्वयं श्री नित्यानन्द जी प्रकट हुए हैं ॥ ६६ ॥ उनके सब पुत्रों में श्री नित्यानन्दराय बड़े हैं-सर्व-सुलक्षण युत हैं-आपके दर्शन करके सब के नयन शीतल हो जाते हैं ॥ ६७ ॥ उनकी बाललीला आदि खण्ड में विस्तार पूर्वक कह आये हैं, यहाँ पर फिर कहने से ग्रन्थ बहुत बड़ा हो जायगा ॥ ६८ ॥ इस प्रकार कुछ दिन नित्यानन्द राय हाडाइ पण्डित के घर में लीला करते रहे ॥ ६९ ॥ फिर प्रभु (नित्यानन्द) ने घर छोड़ने का विचार किया परन्तु माता पिता दुखी होंगे सोच कर वे तुरन्त घर नहीं छोड़ सके ॥ ७० ॥ एक तिल भर समय नित्यानन्द जी को न देखने पर माता जी को एक युग के समान लगता है और पिता जी को तो उससे भी अधिक प्रतीत होता है ॥ ७१ ॥ पिता हाडाइ ओझा तो तिल मात्र भी नित्यानन्द को छोड़ कर कहीं नहीं जाते हैं ॥ ७२ ॥ चाहे खेत में जाना हो या यजमान के घर, हाट-बाजार में जाना हो या घाट में न्हाने को, जो भी कार्य क्यों न हो ॥ ७३ ॥ नित्यानन्द चन्द्र यदि उनके पीछे-पीछे नहीं आते हैं तो वे आधे क्षण में सौ २ बार मुड २ कर पीछे देखते हैं ॥ ७४ ॥ और पकड़ २ कर बारम्बार आलिंगन

धरिया धरिया पुन आलिङ्गन करे। लुनीर पुतलि जेन मिलाय शरीरे ॥७५॥
एइ मत पुत्र-सङ्ग बुले सर्व्व ठाँइ। प्राण हैला नित्यानन्द, शरीर हाड़ाइ ॥७६॥
अन्तर्जामी नित्यानन्द इहा सब जाने। पितृ सुख-धर्म पालि आछे पिता सने ॥७७॥
दैवे एक दिन एक संन्यासी सुन्दर। आइ लेन नित्यानन्द जन केर घर ॥७८॥
नित्यानन्द पिता ताने भिक्षा कराइया। राखि लेन परम-आनन्द युक्त हैया ॥७९॥
सर्व्व रात्रि नित्यानन्द पिता ताँर सङ्गे। आछि लेन कृष्ण कथा-कथन-आनन्दे ॥८०॥
गन्तु काम संन्यासी हइला ऊषःकाले। नित्यानन्द पिता प्रति न्यासिवर बोले ॥८१॥
न्यासिबोले"एक भिक्षा आछये आमार। नित्यानन्दपिता बोले" जे इच्छा तोमार ॥८२॥
न्यासी बोले "करिवाङ तीर्थ-पर्जटन। संहति आमार भाल नाहिक ब्राह्मण ॥८३॥
एइ जे सकल-ज्येष्ठ-नन्दन तोमार। कथो दिन लागि देह' संहति आमार ॥८४॥
प्राण-अतिरिक्त आमि देखिव उहाने। सर्व-तीर्थ देखिवेन विविध-विधाने" ॥८५॥
शुनिञा न्यासीर वाक्य शुद्ध विप्रवर। मने मने चिन्ते वड़ हइया कातर ॥८६॥
"प्राण भिक्षा करि लेन आमार संन्यासी। ना दिलेओ 'सर्व नाश हय' हेन वासि ॥८७॥
भिक्षु केरे पूर्वे महापुरुष सकल। प्राण दान दिया छेन करिया मङ्गल ॥८८॥
रामचन्द्र पुत्र-दशरथेर जीवन। पूर्वे विश्वामित्र ताने करिला जाचन ॥८९॥
जद्यपिह राम-विने राजा नाहि जीये। तथापि दिलेन-एइ पुराणेते कहे ॥९०॥
सेइ त वृत्तान्त आजि हइल आमारे। ए धर्म संङ्कटे कृष्ण। रक्षा कर' मोरे" ॥९१॥

करते हैं—मानो तो नित्यानन्द चन्द्र मक्खन की पुतली हों जिसे वे अपने शरीर में मिला हो लेते हों ॥७५॥ इस प्रकार वे पुत्र को लेकर ही सर्वत्र आते जाते हैं। अधिक क्या कहें बस हाडाइ पण्डित के शरीर के लिये नित्यानन्द जी प्राण बन गये ॥ ७६ ॥ अन्तर्यामी नित्यानन्द जी यह सब जानते हैं—और पिता को सुख पहुँचाना जो पुत्र का धर्म है उसे पालन करते हुए पिता के साथ-साथ रहते हैं ॥ ७७ ॥ दैवेच्छा से एक दिन एक सुन्दर सन्यासी नित्यानन्द जी के पिता के घर आ गये ॥ ७८ ॥ नित्यानन्द जी के पिता ने उनको भोजन करा कर अपने यहाँ बड़े आनन्द से ठहराया ॥ ७९ ॥ और सारी रात श्रीकृष्ण कथा कहते सुनते हुए उनके ही पास वे बड़े आनन्द से रहे ॥ ८० ॥ प्रातः काल संन्यासी जी जाने के लिये तैयार हुये तो नित्यानन्द जी के पिता से बोले ॥ ८१ ॥ "मेरी एक भिक्षा की प्रार्थना है। नित्यानन्द के पिता बोले—"कहिये—क्या इच्छा है ?" ॥ ८२ ॥ संन्यासी जी बोले—"मेरे मन में तीर्थ भ्रमण का विचार है परन्तु साथ में कोई अच्छा सा ब्राह्मण नहीं है ॥ ८३ ॥ "यह जो आपका सबसे बड़ा पुत्र है, उसे कुछ दिन के लिये मेरे साथ दे देवें ॥ ८४ ॥ "मैं अपने प्राणों से भी अधिक इनकी सँभाल करूँगा, और नाना प्रकार के सब तीर्थों के दर्शन भी इनको हो जायँगे" ॥ ८५ ॥ संन्यासी के वचनों को सुनकर शुद्ध हृदय वाले विप्रवर (हाडाइ) बड़े दुखी होकर मन ही मन सोचने लगे ॥ ८६ ॥ "हाय ! संन्यासी जी ने पुत्र की नहीं मेरे प्राण की ही भिक्षा माँगी हैं अब यदि नहीं देता हूँ तो कहीं हमारा सर्वनाश न हो जाय ॥ ८७ ॥ "पूर्व काल में सब महापुरुषों ने भिक्षुकों को आनन्द पूर्वक प्राण दान कर दिये हैं ॥ ८८ ॥ "पूर्व समय में विश्वामित्र जी ने दशरथ जी के जीवन स्वरूप उनके पुत्र श्रीरामचन्द्र जी को माँगा था ॥ ८९ ॥ "यद्यपि श्रीराम के विना राजा दशरथ जी नहीं सकते थे, तथापि उन्होंने पुत्र को दे दिया—ऐसा ही तो पुराण कहते हैं ॥ ९० ॥ "वैसा ही प्रसंग आज मेरे सामने भी आ पड़ा है। हे कृष्ण ! इस धर्म संकट में मेरी

दैवे सेइ वस्तु, केने नहिव से मति। अन्यथा लक्ष्मण केने गृहेते उत्पति ॥९२॥
चिन्तिया ब्राह्मण गेला ब्राह्मणीर स्थाने। आनु पूर्व कहि लेन सब विवरणे ॥९३॥
शुनिञा वलिला पतिव्रता जगन्माता। जे तोमार इच्छा प्रभु। सेइ मोर कथा" ॥९४॥
आइला संन्यासि-स्थाने नित्यानन्द पिता। न्यासीरे दिलेन पुत्र नोङाइया माथा ॥९५॥
नित्यानन्द लइ चलि लेन न्यासिवर। हेन मते नित्यानन्द छाड़ि लेन घर ॥९६॥
नित्यानन्द गेले मात्र हाड़ाइ-पण्डित। भूमिते पड़िला विप्र हइया मूर्च्छित ॥९७॥
से विलाप क्रन्दन कहिव कोन् जने। विदरे पाषाण काष्ठ ताहार श्रवणे ॥९८॥
भक्ति रसे जड़ प्राय हइला विह्वल। लोके वोले "हाड़ो ओझा हइला पागल" ॥९९॥
तिन मास ना करिला अन्नेर ग्रहण। चैतन्य प्रभावे सवे रहिल जोवन ॥१००॥
प्रभु केने छाड़े, जार हेन अनुराग। विष्णु-वैष्णवेर एइ अचिन्त्य प्रभाव ॥१०१॥
स्वामि होना देवहूति-जननी छाड़िया। चलिला कपिल-प्रभु निरपेक्ष हइया ॥१०२॥
व्यास-हेन वैष्णव जनक छाड़ि शुक। चलिला—उलटि नाहि चाहि लेन मुख ॥१०३॥
शची-हेन जननी छाड़िया एकाकिनी। चलिलेन निरपेक्ष हइ न्यासि मणि ॥१०४॥
परमार्थे एइ त्याग त्याग कभू नहे। ए सकल कथा बूझे कोन् महाशये ॥१०५॥
ए सकल लीला जीव-उद्धार—कारणे। महाकाष्ठ द्रवे जेन इहार श्रवणे ॥१०६॥
जेन पिता-हाराइया श्रीरघुनन्दने। निर्भरे शुनिले ताहा कान्दये जवने ॥१०७॥

रक्षा करो !" ॥ ९१ ॥ दैव योग से हाडाइ पंडित वही राजा दशरथ ही तो हैं, फिर क्यों न इनकी भी वैसी ही बुद्धि होगी। यदि ये राजा दशरथ न होते तो इनके घर लक्ष्मण जी (नित्यानन्द) क्यों जन्म लेते ? ॥ ९२ ॥ मन-ही-मन में ऐसा सोच विचार करते हुए हाडाइ पण्डित अपनी ब्राह्मणी (पद्मावती) के पास गये और यथा क्रम सब बातें कह सुनायीं ॥ ९३ ॥ सुन करके पतिव्रता जगन्माता बोलीं "प्रभो! आपको जो इच्छा है वही मेरी भी समझें ॥ ९४ ॥ तब नित्यानन्द जी के पिता संन्यासी जी के समीप आये और मस्तक नमा कर अपना पुत्र प्रदान कर डाला ॥ ९५ ॥ तब संन्यासी प्रवर नित्यानन्द जो को लेकर चले गये। इस प्रकार श्री नित्यानन्द जी ने गृह-त्याग किया ॥ ९६ ॥ नित्यानन्द जी के चले जाते ही हाडाइ पण्डित मूर्च्छा खाकर भूमि पर गिर पड़े ॥ ९७ ॥ पुत्र-शोक में उनका वह विलाप-वह क्रन्दन कौन कह सकता है। उसको सुनकर काष्ठ और पाषाण भो विदीर्ण हो जायँ ॥ ९८ ॥ वे भक्ति रस में विह्वल होकर जडवत् हो गये और लोग कहने लगे कि "हाडाइ ओझा तो पागल हो गया है" ॥ ९९ ॥ तीन महीने तक उन्होंने अन्न ग्रहण नहीं किया केवल चैतन्य चन्द्र के प्रभाव से ही वे जीवित रहे ॥ १०० ॥ भला जिसका ऐसा अनुराग हो, उसको प्रभु (नित्यानन्द) छोड़ते क्यों हैं ? विष्णु और वैष्णवों का ऐसा ही कुछ अचिन्त्य प्रभाव है ॥ १०१ ॥ देखो, पति हीन देवहूति माता की ओर से निरपेक्ष हो करके भगवान् कपिल उनको छोड़ कर चले गये ॥ १०२ ॥ और श्रीव्यास जी जैसे वैष्णव पिता को छोड़कर श्रीशुकदेवजी चले गये—एक बार मुड करके भी नहीं देखा ॥ १०३ ॥ और शची जैसी माता को अकेली छोड़ कर, निरपेक्ष होकर संन्यासी मणि गौरचन्द्र चले गये ॥ १०४ ॥ ये सब त्याग परमार्थ-दृष्टि में त्याग नहीं है—इस बात को कोई विरला महाशय ही समझता है ॥ १०५ ॥ ये सब लीलाएँ जोव—उद्धार के निमित्त होती हैं—इनके सुनने से कठोर काठ भी पिघल जाता है ॥ १०६ ॥ श्रीराम जी के बन चले जाने पर उनके पिता दशरथ ने प्राण त्याग कर दिया—इसे सुनने पर यवन भी रोते हैं ॥ १०७ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द राय

हेन मते गृह छाड़ि नित्यानन्द राय। स्वानु भावा नन्दे तीर्थ करि वारे जाय ॥१०८॥
गया काशी प्रयाग मथुरा द्वारावती। नर नारायणाश्रमे गेला महामति ॥१०९॥
वौद्धाश्रम दिया गेला व्यासेर आलय। रङ्ग नाथ, सेतुवन्ध, गेलेन मलय ॥११०॥
तवे अनन्तेर पुर गेला महाशय। भ्रमेन निर्जन-वने परम-निर्भय ॥१११॥
गोमती, गण्डकी, गेला सरयू, कावेरी। अयोध्या, दण्ड कवन वुलेन विहरि ॥११२॥
त्रिमल्ल, वेङ्कट नाथ, सप्त गोदावरी। महेश्वर-स्थान गेला कन्यका नगरी ॥११३॥
रेवा माहिष्मति मनु तीर्थ हरिद्वार। जहिं पूर्वे अवतार हइल गङ्गार ॥११४॥
एइ मत जत तीर्थ नित्यानन्द राय। सव देखि पुन आइलेन मथुराय ॥११५॥
चिनितेना पारे केहो अनन्तेर धाम। हुङ्कार करये देखि पूर्व जन्म-स्थान ॥११६॥
निरवधि वाल्य भाव, आन नाहि स्फुरे। धूला खला खेले वृन्दावनेर भितरे ॥११७॥
आहारेर चेष्टा नाहि करये कोथाय। वाल्य भावे वृन्दावने गड़ा गड़ि जाय ॥११८॥
केहो नाहि वुझे तान चरित्र उदार। कृष्ण रस विने आर ना करे आहार ॥११९॥
कदाचित् कोनो दिने करे दुग्ध पान। सेहो जदि अजाचित केहो करे दान ॥१२०॥
एइ मत वृन्दावने वैसे नित्यानन्द। नव द्वीपे प्रकाश हइला गौरचन्द्र ॥१२१॥
निरन्तर सङ्कीर्तन-परम आनन्द। दुःख पाय प्रभु ना देखिया नित्यानन्द ॥१२२॥
नित्यानन्द जानि लेन प्रभुर प्रकाश। जे अवधि लागि करे वृन्दावने वास ॥१२३॥
जानिञा आइला झाट नवद्वीप पुरे। आसिया रहिला नन्दन-आचार्येर घरे ॥१२४॥

गृह को त्याग कर स्वानु भव के आनन्द में भरपूर, तीर्थ यात्रा को निकल जाते हैं ॥ १०८ ॥ महामति नित्यानन्द जो गया, काशी, प्रयाग, मथुरा, द्वारिका तथा नर-नारायण के बद्रिकाश्रम को गये ॥ १०९ ॥ फिर बौद्धाश्रम होते हुए व्यास जी के आश्रम रंगनाथ सेतुबन्ध तथा मलय पर्वत को गये ॥ ११० ॥ फिर महाशय नित्यानन्द जी अनन्त पुर को गये और निर्जन वन में निर्भय विचरने लगे ॥ १११ ॥ फिर गोमती, गण्डकी, सरयू, कावेरी, अयोध्या में जा जाकर आनन्द पूर्वक भ्रमण किया ॥ ११२ ॥ फिर त्रिमल्ल, वेंकट नाथ, सप्त गोदावरी, महेश्वर स्थान और कन्या कुमारी को गये ॥ ११३ ॥ और फिर नर्मदा, माहिस्मति (वर्तमान महेश्वर पुर) मनु तीर्थ और हरिद्वार गये जहाँ पूर्वकाल में गङ्गाजी हिमाचल से नीचे उतरीं थीं ॥ ११४ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द राय ने जितने भी तीर्थ हैं, उन सबके दर्शन किये, और फिर वे दूसरी बार मथुरा में आये ॥ ११५ ॥ अनन्त तत्त्व के आश्रय स्वरूप अथवा अनन्त देव के तेज को कौन पहचान सकता है। आप अपने पूर्व जन्म स्थान को देखकर हुँकार करने लगे ॥ ११६ ॥ यहाँ आपको निरन्तर बाल भाव का ही आवेश रहता है—और कोई भाव नहीं आता है। इस बाल भाव में वे वृन्दावन में धूल में खेलते रहते हैं ॥ ११७ ॥ कहीं कोई भी आहार की चेष्टा नहीं है—बस बाल भाव में वृन्दावन की रज में लोट-पोट होते रहते हैं ॥ ११८ ॥ उनके उदार चरित्र को कोई नहीं समझ पाता हैं—वे एक कृष्ण रस के बिना और कुछ भोजन नहीं करते हैं ॥ ११९ ॥ कभी किसी दिन दूध पी लेते हैं परन्तु वह भी यदि कोई बिन माँगे दे जाय तो ॥ १२० ॥ इस प्रकार नित्यानन्द जी वृन्दावन में निवास कर रहे हैं कि इतने में उधर नवद्वीप में गौरचन्द्र का प्रकाश हुआ ॥ १२१ ॥ प्रभु गौरचन्द्र निरन्तर संकीर्तन के परम आनन्द में मग्न रहते हैं—फिर भी नित्यानन्द जी को न देखकर बड़ा दुख पाते हैं ॥ १२२ ॥ नित्यानन्द जी प्रभु के प्रकाश को जान गये। इसी प्रकाश की प्रतीक्षा में हरि नोबे वृन्दावन वास कर रहे थे ॥ १२३ ॥ प्रकाश

नन्दन-आचार्य महा भागवतोत्तम। देखि महा तेजो राशि जेन सूर्य-सम ॥१२५॥
महा-अवधूत-वेश–प्रकाण्ड शरीर। निरवधि-गति स्खले देखि महा-धीर ॥१२६॥
अहर्निश वदने वोलये कृष्ण नाम। त्रिभुवने अद्वितीय चैतन्येर धाम ॥१२७॥
निजा नन्दे क्षणे क्षणे करये हुङ्कार। महा-मत्त जेन वलराम–अवतार ॥१२८॥
कोटि चन्द्र जिनिञा वदन मनोहर। जगत-जीवन हास सुरङ्ग अधर ॥१२९॥
मुक्ता जिनिञा श्री दशनेर ज्योति। आयत अरुण दुइ लोचन-सुभाति ॥१३०॥
आजानु लम्बित भुज, सुपीवर वक्ष। चलिते कमल वत पदयुग दक्ष ॥१३१॥
परम-कृपाये करे सभारे सम्भाष। शुनिले श्रीमुख वाक्य कर्म-वन्ध-नाश ॥१३२॥
आइला नदिया पुरे नित्यानन्द-राय। सकल-भुवने जय जय ध्वनि गाय ॥१३३॥
से महिमा वोले हेन के आछे प्रचण्ड। जे प्रभु भाङ्गिला गौर सुन्दरेर दण्ड ॥१३४॥
वणिक् अधम मूर्ख ये करिला पार। व्रह्माण्ड पवित्र हय नाम लैले जाँर ॥१३५॥
पाइया नन्दना चार्य हरषित हैया। राखि लेन निज गृहे भिक्षा कराइया ॥१३६॥
नवद्वीपे नित्यानन्द चन्द्र-आगमन। इहा जेइ शुने तारे मिले प्रेम धन ॥१३७॥
नित्यानन्द आगमन जानि विश्वम्भर। अन्तरे-हरिष प्रभु हइला विस्तर ॥१३८॥
पूर्वं व्यपदेशे सर्व-वैष्णवेर स्थाने। व्यञ्जिया आछेन, केहो मर्म नाहि जाने ॥१३९॥
आरे भाइ दिन दुइ तिनेर भितरे। कौन महापुरुष एक आसिवे एथारे ॥१४०॥

हो गया, जान कर आप तुरन्त ही नवद्वीप पुरी में आ पहुँचे और नन्दनाचार्य के घर में आकर ठहरे ॥ १२४॥ महा भागवतोत्तम नन्दना चार्य ने नित्यानन्द प्रभु को महा तेज पुंज सूर्य के समान देखा ॥ १२५ ॥ वेश महा अवधूत का है। विशाल शरीर है, निरन्तर स्खलित गति है, महान् धीर हैं–ऐसा देखा ॥ १२६ ॥ दिन-रात मुख से कृष्ण नाम कहते रहते हैं, त्रिभुवन में श्री चैतन्य चन्द्र के अद्वितीय धाम (आश्रय, तेज) हैं ॥ १२७ ॥ अपने निजानन्द में मत्त होकर क्षण २ में हुँकार करते हैं–ऐसे महा मतवाले हैं जैसे स्वयं बलराम ही हों ॥ १२८ ॥ कोटि चन्द्र जयी मनोहर मुख है, सुरंग अधर हैं, उन पर जगत्-संजीवनी हास्य है ॥ १२९ ॥ मुक्ता–आभा-विजयिनी श्री दशनावली की ज्योति है, विस्तीर्ण, अरुण एवं सुन्दर दो लोचक हैं ॥ १३० ॥ भुजाएँ जानु पर्यन्त लम्बी हैं, विशाल वक्ष स्थल है, चलने में चतुर कमल के समान चरण युगल हैं ॥ १३१ ॥ वे परम कृपा पूर्वक सबके साथ वार्त्तालाप करते हैं। उनके श्री मुख के वचन श्रवण करने से कर्म-वन्धन–नष्ट हो जाते है ॥ १३२ ॥ जब नदिया नगर में नित्यानन्द राय आये तो समस्त लोकों में "जय जय" ध्वनि होने लगी ॥ १३३ ॥ जिस प्रभु (नित्यानन्द) ने स्वयं श्री गौर सुन्दर का दण्ड तोड़ डाला, उनकी महिमा वर्णन कर सके–ऐसा कौन सामर्थ्यवान है ॥ १३४ ॥ जिन्होंने शंख बणिक, अधम और मूर्ख सबों का उद्धार किया और जिनका नाम लेने से ब्रह्माण्ड पवित्र होता है ॥ १३५ ॥ ऐसे नित्यानन्द प्रभु को पाकर नन्दना चार्य बड़े ही प्रसन्न हुए और भोजन करा कर उनको आप ने अपने घर ठहरा लिया ॥ १३६ ॥ नवद्वीप में श्री नित्यानन्द चन्द्र के आगमन को जो सुनेगा उसे अवश्य ही प्रेम धन प्राप्त होगा ॥ १३७ ॥ नित्यानन्द जी का आगमन जान कर विश्वम्भर प्रभु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हो रहे हैं ॥ १३८ ॥ आपने पहले ही सब वैष्णवों के समीप नित्यानन्द जी के आने की बात किसी छल से प्रकट कर दी थी परन्तु कोई भी उनके अभिप्राय को नहीं समझ सका ॥ १३९ ॥ प्रभु ने पहले ही कह दिया था कि 'अरे भाइयो ! दो तीन के भीतर ही कोई एक महापुरुष यहाँ आयँगे ॥ १४० ॥ दैव योग से उसी दिन

दैवे सेइ दिन विष्णु पूजि गौरचन्द्र। सत्वरे मिलिला जथा वैष्णवेर वृन्द ।।१४१।।
सभा कार स्थाने प्रभु कहये आपने। "आजि आमि अवरूप देखिलुँ स्वपने ।।१४२।।
ताल-ध्वज एक रथ—संसारेर सार। आसिया रहिल रथ—आमार दुमार ।।१४३।।
तार माझे देखि एक प्रकाण्ड-शरीर। महा एक स्तम्भ कान्धे,गति नहे स्थिर ।।१४४।।
बेत्र-वान्धा एक काणा-कुम्भ वाम हाथे। नील वस्त्र-परिधान, नील वस्त्र माथे ।।१४५।।
वाम-श्रुति मूले एक कुण्डल विचित्र। हलधर हेन तान वुझिये चरित्र ।।१४६।।
एइ वाड़ी निमाञि पण्डितेर हये हये। दश-वार विश—वार एइ कथा कहे ।।१४७।।
महा-अवधूत—वेश परम प्रचण्ड। आर कभु नाहि देखि एमन उद्दण्ड ।।१४८।।
देखिया सम्भ्रम वड़ पाइलाङ आमि। जिज्ञासिल आमि 'कौन महाजन तुमि" ।।१४९।।
हासिया आमारे वोले "एइ भाइ हये। तोमार आमार कालि हैव परिचये" ।।१५०।।
हरिष वाढिल शुनि ताहार वचन। आपनारे वासों मुञि जेन सेइ सम ।।१५१।।
कहिते प्रभुर सव वाह्ज गेल दूर। हल धर-भावे प्रभु गर्जये प्रचुर ।।१५२।।
"मद आन' मद आन" वलि प्रभु डाके। हुङ्कार शुनिते जेन। दुइ कर्ण फाटे ।।१५३।।
श्रीवास पण्डित वोले शुनह गोसाञि। जे मदिरा चह तुमि, से तोमार ठाञि ।।१५४।।
तुमि जारे विलाओ, से-इसे तारे पाय"। कम्पित वैष्णव गण दूरे रहि चाय ।।१५५।।
मने मने चिन्ते सव वैष्णवेर गण। "अवश्य इहार किछु आछये कारण' ।।१५६।।
आर्जा तर्जा पढ़े प्रभु अरुण-नयन। हासिया दोलाय अङ्ग जेन सङ्कर्षण ।।१५७।।

विष्णु-पूजन करके गौरचन्द्र शीघ्र ही वैष्णवों से आ मिले ।। १४१ ।। और सबके सामने प्रभु कहने लगे, "आज मैंने एक विलक्षण स्वप्न देखा कि ।। १४२ ।। एक रथ है, रथ क्या है संसार का सार है, उस पर ताल की धुजा है—वह मेरे घर के द्वार पर आकर ठहरा ।। १४३ ।। उस रथ में एक विशाल काय पुरुष है—जिसके कन्धे पर एक बड़ा मोटा सोटा है और जिसकी चाल स्थिर नहीं है ।। १४४ ।। उसके बायें हाथ में बेंत से बंधा हुआ एक फूटा कलश है। वह नीले वस्त्र पहने हुए है और सिर पर भी उसने नीला वस्त्र बाँध रक्खा है ।। १४५ ।। उसके बायें कान में एक विचित्र कुण्डल है—रंग ढङ्ग से वह हलधर जैसा प्रतीत होता था ।। १४६ ।। "यह घर निमाई पंडित का है न" बस इसी एक बात को वह बार २ बीसों बार कहता था ।। १४७ ।। महा अवधूत का सा उनका वेश है बड़े शक्ति शाली तेजस्वी है। ऐसा उद्दण्ड पुरुष तो मैंने कभी नहीं देखा है ।। १४८ ।। यह देखकर मुझको बड़ा सम्भ्रम हुआ और मैंने पूछा कि 'आप कौन महापुरुष हो" ।। १४९ ।। वह हँसकर बोले—"यह आप का भाई है—मेरा और आपका परिचय कल होगा" ।। १५० ।। उनके वचन को सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ और मैं भी अपने को वैसा ही (उनका भाई जैसा ही) समझने लगा ।। १५१ ।। ऐसा कहते २ प्रभु की वाह्य दशा लोप हो गयी और वे हलधर भाव के आवेश में जोर २ से गरजने लगे ।। १५२ ।। "मद लाओ, मद लाओ" कह २ के प्रभु पुकारने लगे—उस हुँकार को सुनकर दोनों कान फटे जाते थे ।। १५३ ।। तब श्रीवास पण्डित बोले—"हे गुसांई ! जिस मदिरा को आप चाहते हैं, वह तो आप ही के पास है" ।। १५४ ।। "आप उस मद को जिसे देते हैं वही उसे पाता है," ऐसा कहते हुए वैष्णव गण काँपते हुए दूर खड़े २ देखते हैं ।। १५५ ।। सब वैष्णव लोग मन-ही-मन में सोचते हैं कि इसमें अवश्य ही कुछ कारण है ।।१५६।। प्रभु लाल २ नेत्र करके "आर्या" और "तर्जा" (छन्द विशेष) पढ़ते हैं और बलराम की भाँति हँसते हुए अपने अंग को हिलाते हैं ।। १५७ ।। कुछ समय पश्चात् प्रभु

क्षरोके हइला प्रभु स्वभाव-चरित्र । स्वप्न-अर्थ सभारे वाखाने राम मित्र ॥१५८॥
"हेन वूझि, मोर चित्त लय एइ कथा । कोन महा पुरुषेक आसियाछे एथा ॥१५९॥
पूर्वे मुञि वलियाछों तोमा' सभार स्थाने । कोन महाजन-सङ्गे हैव दरशने ॥१६०॥
चल हरिदास ! चल श्रीवास पण्डित । चाह गिया देखि के आइला कोनभित ॥१६१॥
दुइ महा भागवत प्रभुर आदेशे । सर्व-नवद्वीप चाहि वुलये हरिषे ॥१६२॥
चाहिते चाहिते कथा कहे दुइ-जन । "ए वुझि आइला किवा प्रभु सङ्कर्षण" ॥१६३॥
आनन्दे विह्वल दुहे चाहिया वेड़ाय । तिलार्द्ध को उद्देश कोथाओ नाहि पाय ॥१६४॥
सकल नदिया तोन प्रहर चाहिया । आइला प्रभुर स्थाने काहों ना देखिया ॥१६५॥
निवेदिल आसि दोंहे प्रभुर चरणे । "उपाधिक कोथाह नहिल दरशने ॥१६६॥
कि वैष्णव, कि सन्न्यासी कि गृहस्थ स्थल । पाषण्डीर घर आदि-देखिल सकल ॥१६७॥
चाहिलाङ सर्व नवद्वीप जार नाम । सवे ना चाहिल प्रभु ! गिया आर याम" ॥१६८॥
दोंहार वचन शुनि हासे गौर चन्द्र । छलेवुझायेन 'वड़ गूढ़ नित्यानन्द ॥१६९॥
एइ अवतारे केहो गौरचन्द्र गाय । नित्यानन्द नाम शुनि उठिया पलाय ॥१७०॥
पूजये गोविन्द जेन, नामाने' शङ्कर । एइ पाके अनेक जाइव जम-घर ॥१७१॥
वड़ गूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे । चैतन्य देखाय जारे से देखिते पारे ॥१७२॥
ना वूझि जे निन्दे,' तान चरित्र अगाध । पाइयाओ विष्णु भक्ति हय तार वाध ॥१७३॥
सर्वथा श्रीवास आदि ताँर तत्त्व जाने । ना हइल देखा कोन कौतुक-कारणे । १७४॥

अपनी स्वाभाविक दशा में आ गये और तब बलराम मित्र (अर्थात् गौर चन्द्र) सबके आगे स्वप्न का अर्थ समझाने लगे ॥ १५८ ॥ वे बोले—"मेरे चित्त में तो यह बात ऐसे जँचती है कि यहाँ कोई एक महापुरुष आया है ॥ १५९ ॥ पहले भी मैं तुम लोगों से कह चुका हूँ कि किसी महापुरुष के दर्शन होंगे ॥ १६० ॥ "हरिदास जी ! जाओ ! श्रीवास पंडित ! तुम भी जाओ, जाकर पता लगाओ कौन कहाँ आया है ॥१६१॥ प्रभु के आदेश से दोनों महा भागवत बड़े प्रसन्न होकर सारे नवद्वीप में ढूंढते हुए घूमने लगे ॥ १६२ ॥ ढूंढते २ वे दोनों आपस में कहते हैं "ऐसा मालूम होता है कि संकर्षण प्रभु ही आये हैं ॥ १६३ ॥ वे दोनों आनन्द में मतवाले होकर खोजते फिरते हैं परन्तु रंचक मात्र भी कहीं पता नहीं लगता है ॥ १६४ ॥ तीन पहर तक सारी नदिया छान डालने पर भी जब वे कहीं न मिले तो दोनों लौट कर प्रभु के पास आये ॥ १६५ ॥ आकर दोनों ने प्रभु के चरणों में निवेदन किया कि हमें आपके बताये हुए लक्षणों वाले कोई भी महापुरुष के दर्शन नहीं हुए ॥ १६६ ॥ क्या वैष्णव, क्या गृहस्थी, क्या संन्यासी, क्या पाखण्डी—सबके घर हमने देख डाले ॥ १६७ ॥ सारी नवद्वीप हमने छान डाली—केवल बाहर के गाँवों में हम नहीं गये ॥ १६८ ॥ दोनों के वचनों को सुनकर गौरचन्द्र हँसने लगे—मानों तो हँसने के छल से यह समझ रहे हों कि "नित्यानन्द तत्त्व बडा गूढ है ॥ १६९ ॥ इस अवतार में कोई २ गौरचन्द्र को तो गाते हैं परन्तु नित्यानन्द जी का नाम सुनते ही उठ भागते हैं ॥ १७० ॥ जैसे कोई गोविन्द की पूजा तो करे परन्तु शंकर को न माने । इसके फल-स्वरूप बहुतों को यम के घर जाना पड़ेगा ॥ १७१ ॥ इस अवतार में नित्यानन्द बड़े गूढ हैं, चैतन्य चन्द्र जिसको कृपा कर दिखावें, वही देख सकता है ॥ १७२ ॥ विना समझे बूझे उनके अगाध चरित्र की जो निन्दा करते हैं, वे विष्णु भक्ति पाकर के भी अटक पड़ते हैं ॥ १७३ ॥ केवल श्रीवास आदि मुख्य भक्त जन उनके तत्त्व को भली प्रकार जानते हैं—परन्तु उनको भी जो वे नहीं मिले—वह केवल कोई

क्षणेके ठाकुर वोले ईषत् हासिया । "आइस आमार सङ्गे सभे देखि गिया ।।१७५।।
उल्लासे प्रभुर सङ्गे सर्व-भक्त गण । 'जय कृष्ण' वलि सभे करिला गमन ।।१७६।।
सभा' लइ प्रभु नन्दन-आचार्येर घरे । जानिञा उठिला गिया श्रीगौर सुन्दरे ।।१७७।।
वसि आछे एक महापुरुष रतन । सभे देखिलेन-जेन कोटि-सूर्य-सम ।।१७८।।
अलक्षित-आवेश-वुझन नाहि जाय । ध्यान सुख परिपूर्ण, हासये सदाय ।।१७९।।
महा भक्ति जोग प्रभु वुझिया ताँहार । गण-सह विश्वम्भर कैला नमस्कार ।।१८०।।
सम्भ्रमे रहिला सर्व-गण दाण्डाइया । केहो किछुना वोलये रहिल चाहिया ।।१८१।।
सम्मुखे रहिला महाप्रभु विश्वम्भर । चिनिलेन नित्यानन्द-प्राणेर ईश्वर ।।१८२।।
विश्वम्भर मूर्त्ति जेन मदन समान । दिव्य गन्ध-माल्य दिव्य वास परिधान ।।१८३।।
किहय कनक-ज्योति से देहेर आगे । से वदन देखिते चाँदेर साध लागे ।।१८४।।
से दन्त देखिते कोथा मुकुतार दाम । से केश वन्धान देखि ना रहे गेयान ।।१८५।।
देखिते आयत दुइ अरुण नयान । आरकि 'कमल आछे' हेन हय ज्ञान ।।१८६।।
से आजानु दुइ भुज, हृदय सुपीन । ताहे शोभे शुभ्र यज्ञ सूत्र अति क्षीण ।।१८७।।
ललाटे विचित्र ऊर्द्ध-तिलक सुन्दर । आभरण विने सर्व-अङ्ग मनोहर ।।१८८।।
किवा हय कोटि मणि से नख चाहिते । से हास देखिते किवा करिव अमृते ।।१८९।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ।।१९०।।

कौतुक विशेष के कारण ही समझना चाहिये ।। १७४ ।। क्षण भर में प्रभु नेक मुसकराकर बोले-"चलो मेरे साथ ! चल कर देखें वह कहाँ है ।। १७५ ।। तब तो सब भक्त लोग उल्लास में भर कर "जय कृष्ण" कहते हुए प्रभु जी के साथ चल पड़े ।। १७६ ।। गौर सुन्दर सब जानते हैं-अत एव सब भक्तों को साथ लेकर सोधे नन्दना चार्य के घर जा पहुँचे ।। १७७ ।। वहाँ जाते ही सवने देखा कि एक महा पुरुष रत्न बैठे हुए हैं-कोटि सूर्य के समान उनका तेज है ।। १७८ ।। वे कोई अदृश्य सूक्ष्म आवेश में बैठे हैं जो किसी की समझ में नहीं आता है, ध्यान सुख में परिपूर्ण आप सदा हँस रहे हैं ।। १७९ ।। विश्वम्भर प्रभु ने उनको परम भक्ति के योग्य समझ कर परि कर भक्तों के सहित नमस्कार क्रिया ।। १८० ।। सम्भ्रम में आकर सब भक्त लोग खड़े रह गये-कोई कुछ नहीं कहता है-केवल उनकी ओर ही सब देखते रहते हैं ।। १८१ ।। महा प्रभु विश्वम्भर सामने खड़े हैं-तब तो नित्यानन्द जी अपने प्राणों के नाथ को पहचान जाते हैं ।। १८२ ।। श्री विश्वम्भर प्रभु की मूर्त्ति कामदेव के समान है-आप दिव्य गन्ध, माल्य तथा दिव्य वस्त्र धारण किये हुए हैं ।। १८३ ।। उनकी उज्जवल गौर देह के आगे कंचन की ज्योति भला क्या है । उनके उस मुख के दर्शन की लालसा चन्द्रमा को भी होती है ।। १८४ ।। उन दशनावली के आगे मुक्ता की पंक्ति भी कुछ नहीं है और उनके उस केश-वन्धन को देखकर तो सुध-बुध ही नहीं रहती है ।। १८५ ।। उनके दोनों विस्तीर्ण अरुण नयन युगल को देखकर यही प्रश्न उठता है कि क्या इनको छोड़ कर और भी कोई कमल है ? ।। १८६ ।। घुटने तक लम्बी दो भुजाएँ हैं विशाल हृदय है, उसके ऊपर शुभ्र अति सूक्ष्म यज्ञ-सूत्र शोभित है ।। १८७ ।। ललाट पर सुन्दर विचित्र उर्द्ध-पुण्ड तिलक है, और बिना आभूषण के ही सर्वांग मनोहर हैं ।। १८८ ।। उनकी नखावली के दर्शन करने पर कोटि २ मणि भी तुच्छ प्रतीत होती हैं और उनका वह हास्य देखकर फिर अमृत लेकर क्या करना ।। १८९ ।। श्री कृष्ण चैतन्य एवं श्री नित्यानन्द चन्द्र को जान कर ग्रन्थकार वृन्दावन दास महाशय उनके युगल चरणों में उनकी कुछ महिमा का गान करते हैं ।।१९०।।

इति—श्री चैतन्य भागवते मध्य खण्डे नित्यानन्द मिलनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

अथ चतुर्थ अध्याय

नित्यानन्द सन्मुखे रहिला विश्वम्भर। चिनिलेन नित्यानन्द आपन-ईश्वर ॥१॥
हरिषे स्तम्भित हैला नित्यानन्द-राय। एक दृष्टि हञा विश्वम्भर रूप चाय ॥२॥
रसनाये लेहे जेन, दरशने पान। भुजे जेन आलिङ्गन, नासिकाये घ्राण ॥३॥
एइ मत नित्यानन्द हइला स्तम्भित। ना वोले ना करे किछु, सभेइ विस्मित ॥४॥
बुझि लेन सर्व प्राण नाथ गौर राय। नित्यानन्द जानाइते सृजिला उपाय ॥५॥
इङ्गिते श्रीवास प्रति बोलेन ठाकुरे। एक भागवतेर वचन पढ़िवारे ॥६॥
प्रभुर इङ्गित बुझि श्रीवास-पण्डित। कृष्ण-ध्यान एक श्लोक पढ़िला त्वरित ॥७॥
"बर्हा पीडं नटवर वपुः कर्णयोः कर्णिकारं। विभ्रद्वासः कनक कपिशं वैजयन्तींच मालाम् ॥
रन्ध्रान् वेणोर धरसुधमा पूरयन् गोप वृन्दै, वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीत कीर्त्तिः" ॥८॥
शुनि मात्र नित्यानन्द श्लोक-उच्चारण। पड़िला मूर्च्छित हैया—नाहिक चेतन। ९॥
आनन्दे मूर्च्छित हैला नित्यानन्द-राय। "पढ़ पढ़" श्रीवासेरे गौराङ्ग शिखाय ॥१०॥
श्लोक शुनि कथो क्षणे हइला चेतन। तवे प्रभु लागिलेन करिते क्रन्दन ॥११॥
पुनः पुन श्लोक शुनि वाढ़ये उन्माद। व्रह्माण्ड भेदये हेन शुनि सिंहनाद ॥१२॥

श्री विश्वम्भर प्रभु श्री नित्यानन्द के सन्मुख खड़े हैं—बस नित्यानन्द जी ने अपने नाथ को पहचान लिया ॥ १ ॥ तब तो नित्यानन्द राय हर्ष के कारण स्तम्भित हो गये और श्री विश्वम्भर के रूप को इकटक देखने लगे ॥ २ ॥ वे जिह्वा से मानो तो प्रभु की रूप माधुरी का पान करने लगे, भुजाओं से मानो तो प्रभु को आलिंगन करने लगे और नासिका से श्री अंग का सुगन्ध लेने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द जी के सब अंग स्तम्भित हो गये हैं-वे न कुछ बोलते हैं और न कुछ करते ही हैं—यह देख सब विस्मित हो रहे हैं ॥ ४ ॥ सबके प्राण नाथ श्री गौरराय श्री नित्यानन्द के भाव को समझ गये और उनका स्वरूप लोगों को जनाने के लिये आप ने एक उपाय किया ॥ ५ ॥ श्री ठाकुर गौरचन्द्र ने श्रीवास पण्डित को श्रीमद्भागवत का एक श्लोक पढ़ने के लिये संकेत किया ॥ ६ ॥ प्रभु का संकेत समझ कर श्रीवास पंडित ने शीघ्रता से श्रीकृष्ण-ध्यान—सम्बन्धी एक श्लोक पाठ किया ॥ ७ ॥ यथा (भाग० १०. २१. ५) "शीश पर मोर पंखों का मुकुट, कानों में कर्णिकार (कनेर फूल) का कुंडल, श्री अंग पर कनक वर्ण पीताम्बर तथा वक्षःस्थल पर वैजयन्ती माला धारण किये हुए, अधर सुधा से वेणु के छिद्रों को पूर्ण करते हुए, अपना गुण गान करते हुए गोप सखाओं के सहित, नटवर वपुधारी श्रीकृष्ण ने अपने श्रीचरण की विहार स्थली श्री वृन्दावन में प्रवेश किया ॥ ८ ॥ श्लोक का उच्चारण मात्र सुनते ही नित्यानन्द जी मूर्च्छित होकर गिर पड़े और चेतना-शून्य से हो गये ॥ ९ ॥ नित्यानन्द जी को आनन्द से मूर्च्छित देखकर श्री गौरांग प्रभु श्रीवास से कहते हैं "पढ़ो-फिर पढ़ो" ॥ १० ॥ (श्रीवास जो फिर उसी श्लोक को बारम्बार पढ़ते हैं) तब श्लोक को सुन करके कुछ समय पश्चात् प्रभु चेतन होते हैं और फिर रोने लगते हैं ॥ ११ ॥ श्लोक को बारम्बार सुन २ कर उनका प्रेमोन्माद बढ़ने लगता है और वे ब्रह्माण्ड—भेदन-कारी सिंह-नाद करने लगते हैं ॥ १२ ॥ औरों को दिखायी भी नहीं देता—इतने वेग से वे शून्य में उछल कर भूमि पर पछाड़ खाकर

अलक्षिते अन्तरिक्षे पड़ये आछाड़ । सभे मने वासे' किवा चूर्ण हैल हाड़ ॥१३॥
अन्येर कि दाय वैष्णवेर लागे भय । "रक्ष कृष्ण ! रक्ष कृष्ण !" सभेइ स्मरय ॥१४॥
गड़ा गड़ि जाय प्रभु पृथिवीर तले । कलेवर पूर्ण हैल नयनेर जले ॥१५॥
विश्वम्भर मुख चाहि छाड़े घनश्वास । अन्तरे आनन्द—क्षणे क्षणे महा हास ॥१६॥
क्षणे नृत्य, क्षणे गड़ि, क्षणे वाहु-ताल । क्षणे जोड़े जोड़े लाफ देइ देखि भाल ॥१७॥
देखिया अद्भुत कृष्ण-उन्माद-आनन्द । सकल-वैष्णव-सङ्गे कान्दे गौरचन्द्र ॥१८॥
पुनः पुन वाढ़े सुख अति अनि वार । धरेन सभेइ—केहो नारे धरि वार ॥१९॥
धरिते नारिला जदि वैष्णव-सकले । विश्वम्भर लइ लेन आपनार कोले ॥२०॥
विश्वम्भर कोले मात्र गेला नित्यानन्द । समर्पिया प्राण ताने हइला निस्पन्द ॥२१॥
जार प्राण ताने नित्यानन्द समर्पिया । आछेन प्रभुर कोले अचेष्ट हइया ॥२२॥
भासे नित्यानन्द चैतन्येर प्रेम जले । शक्ति हत लक्ष्मण जे हेन राम—कोले ॥२३॥
प्रेम-भक्ति वाणे मूर्च्छा गेला नित्यानन्द । नित्यानन्द कोले करि कान्दे गौरचन्द्र ॥२४॥
कि आनन्द—विरह हइल सर्व-गणे । पूर्वे जेन शुनिआछि श्रीराम—लक्ष्मणे ॥२५॥
गौरचन्द्रे नित्यानन्दे स्नेहेर जे सीमा । श्रीराम-लक्ष्मण वइ नाहिक उपमा ॥२६॥
वाह्य पाइ लेन नित्यानन्द कथो क्षणे । हरि ध्वनि जय ध्वनि करे सर्व-गणे ॥२७॥

गिर पड़ते हैं—जिसे देख सब लोग यही समझते हैं कि हाय ! इनकी हड्डी—पसली चूर चूर तो नहीं हो गयीं ॥ १३ । उस समय औरों को तो क्या, वैष्णवों को भी भय हो आता है और वे सब "हे कृष्ण ! रक्षा करो ! हे कृष्ण ! रक्षा करो" कह कह कर भगवान् का स्मरण करने लगते हैं ॥ १४ ॥ उधर नित्यानन्द प्रभु भूमि पर लोट पोट हो रहे हैं—नेत्रों के अश्रु-जल से आपका सब शरीर भीग गया है ॥ १५ ॥ वे विश्वम्भर प्रभु की ओर देख २ कर लम्बी २ श्वास छोड़ते हैं, हृदय आनन्द से भरपूर है, क्षण २ में खिल खिला कर हँस उठते हैं ॥ १६ ॥ क्षण में नृत्य करते हैं तो क्षण में भूमि पर लोट पोट होते हैं, क्षण में भुजा फटकारते हुए ताल ठोंकते हैं और तो क्षण में दोनों चरण मिलाकर कूदते हैं—सब ही कियाएँ सुन्दर दिखायी देती हैं ॥ १७ ॥ श्री नित्यानन्द जी को श्रीकृष्ण प्रेम में आनन्दोन्माद के दर्शन कर सब वैष्णवों के सहित श्री गौरचन्द्र रोने लगते हैं ॥ १८ ॥ श्री नित्यानन्द जी का प्रेमानन्द सुख पुनः पुनः बढ़ता ही जाता है—किसी प्रकार रोके नहीं रुकता है । सब लोग उनको पकड़ते हैं पर पकड़ कर कोई रख नहीं सकता है ॥ १९ ॥ जब सब वैष्णव जन मिल करके भी उनको रख न सके तो श्री विश्वम्भर प्रभु ने उनको अपनी गोद में लिया ॥ २० ॥ श्री विश्वम्भर की गोद में जाते ही श्री नित्यानन्द अपना प्राण उन्हें समर्पण करके निश्चेष्ट शान्त हो गये ॥ २१ ॥ जिनका प्राण 'उनको समर्पण करके नित्यानन्द जी प्रभु की गोद में निश्चेष्ट होकर पड़े रहे ॥ २२ ॥ नित्यानन्द जी श्री चैतन्य चन्द्र के प्रेम-जल में गोता खा रहे हैं । वे ऐसे लगते हैं मानो तो शक्ति-हत लक्ष्मण जी श्रीराम की गोद में सो रहे हों ॥ २३॥ प्रेम भक्ति के बाण से श्रीनित्यानन्द मूर्च्छित हो गये हैं और उनको गोद में लेकर गौरचन्द्र रो रहे हैं ॥ २४ ॥ उस समय सब लोगों में कैसा आनन्द मय विरह छा गया कि जैसा कि सुनते हैं पूर्व काल में श्रीराम—लक्ष्मण के प्रसंग में अनुभव हुआ था ॥ २५ ॥ गौरचन्द्र और नित्यानन्द चन्द्र में जो स्नेह की पराकाष्ठा है उसकी उपमा श्रीराम और श्री लक्ष्मण के स्नेह के अतिरिक्त और कहीं नहीं है ॥ २६ ॥ कुछ क्षण बाद नित्यानन्द जी सचेत हुए । तब सब भक्त वृन्द हरि ध्वनि, जय ध्वनि करने लगे ॥ २७ ॥ विश्वम्भर प्रभु नित्यानन्द जी को गोद में लिये

नित्यानन्द कोले करि आछे विश्वम्भर। विपरीत देखि मने हासे गदाधर॥२८॥
"जे अनन्त निरवधि धरे विश्वम्भर। आजि ताँर गर्व चूर्ण–कोलेर भितर"॥२९॥
नित्यानन्द-प्रभावेर ज्ञाता गदाधर। नित्यानन्द ज्ञाता गदाधरेर अन्तर॥३०॥
नित्यानन्द देखिया सकल भक्त गण। नित्यानन्द मय हैल सभाकार मन॥३१॥
नित्यानन्द गौरचन्द्र दोहे दोंहा देखि। केहो किछु ना बोले झरये मात्र आँखि॥३२॥
दोंहे दोंहा देखि वड़ विवश हइला। दोहार नयन जले पृथिवी भासिला॥३३॥
विश्वम्भर वोले "शुभ-दिवस आमार। देखिलाङ भक्ति योग–चारि-वेद-सार॥३४॥
ए कम्प ए पुल काश्रु गर्ज्जन हुङ्कार। एह कि ईश्वर शक्ति वइ हय आर॥३५॥
सकृत् ए भक्ति योग नयने देखिले। ताहारे ओ कृष्ण ना छाड़ेन कोनो काले॥३६॥
वुझिलाङ ईश्वरेर तुमि पूर्ण-शक्ति। तोमा भजिले से जीव पाय कृष्ण भक्ति॥३७॥
तुमि कर' चतुर्दश भुवन पवित्र। अचिन्त्य अगम्य गूढ़ तोमार चरित्र॥३८॥
तोमा' लखि वेक हेन आछे कोन जन। मूर्त्तिमन्त तुमि कृष्ण प्रेम भक्ति-धन॥३९॥
तिलार्द्ध तोमार सङ्ग जे जनार हये। कोटि पाप थाकिलेओ तार मन्द नहे॥४०॥
वुझिलाङ–कृष्ण मोर करिव उद्धारे। तोमा' हेन सङ्ग आनि दिलेन आमारे॥४१॥
महाभाग्ये देखिलाङ तोमार चरण। तोमार भजिले से पाइ कृष्ण प्रेम-धन"॥४२॥
आविष्ट हइया प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। नित्यानन्दे स्तुति करे-नाहि अवसर॥४३॥

हुए हैं–इस उलटी रीति को देखकर गदाधर जी मन ही मन हँसते हैं॥ २८॥ (कारण कि) जो अनन्त देव (शेष नाग) निरन्तर विश्वम्भर प्रभु को धारण करते हैं, आज वे ही उलटे विश्वम्भर देव के अंक में आ गये हैं–अतएव आज उनका गर्व चूर्ण हो गया है॥ २९॥ गदाधर जी नित्यानन्द जी के प्रभाव को जानने वाले हैं और नित्यानन्द जी गदाधर जी के हृदय को जानने वाले हैं॥ ३०॥ नित्यानन्द जी के दर्शन कर करके समस्त भक्तों के मन नित्यानन्द मय हो रहे हैं॥ ३१॥ श्री नित्यानन्द और गौरचन्द्र परस्पर एक दूसरे को देख रहे हैं–मुख से कोई कुछ नहीं कहते हैं, केवल नयन बहाते हैं॥ ३२॥ वे एक दूसरे को देखते २ अत्यन्त विवश हो गये दोनों के नयन-जल से पृथ्वी गीली हो गयी॥ ३३॥ कुछ समय बाद श्री विश्वम्भर बोले "आज मेरे लिये बड़ा शुभ दिन है जो आज मैंने चारों वेद का सार जो भक्ति योग है उसके प्रत्यक्ष दर्शन पाये॥ ३४॥ यह कम्प, यह पुलक, अश्रु, गर्जन, हुँकार (जो इनमें प्रत्यक्ष हुए)–यह क्या ईश्वर-शक्ति के अतिरिक्त किसी और में हो सकता है?॥ ३५॥ एक बार भी इस भक्ति योग के दर्शन कर लेने पर श्रीकृष्ण चन्द्र उसको किसी काल में भी नहीं छोड़ते हैं॥ ३६॥ मैं समझ गया कि तुम ईश्वर की पूर्ण शक्ति हो, जो जीव तुम्हारा भजन करता है वह कृष्ण भक्ति पाता है॥ ३७॥ तुम चौदहों लोक को पवित्र करते हो। तुम्हारे चरित्र अचिन्त्य, अगम्य एवं गूढ हैं॥ ३८॥ ऐसा कौन है जो तुमको जान-पहचान सके। तुम तो मूर्त्तिमान कृष्ण प्रेम भक्ति धन हो॥ ३९॥ तिलार्ध-काल के लिये भी तुम्हारा संग जिस मनुष्य को हो जाय, उसमें कोटि पाप रहने पर भी उसका अमंगल नहीं होता है॥ ४०॥ मैं जान गया कि श्रीकृष्ण मेरा उद्धार करेंगे तभी तो तुम्हारे जैसे महापुरुष की संगति मुझे आन मिलायी॥ ४१॥ बड़े भाग्य से आज तुम्हारे श्री चरण के दर्शन मिले। जो तुमको भजता है वह कृष्ण–प्रेम धन पाता है॥ ४२॥ इस प्रकार आवेश में भर करके गौरांग सुन्दर प्रभु नित्यानन्द जी की स्तुति बिना रुके करते ही चले गये॥ ४३॥ यद्यपि नित्यानन्द चन्द्र और चैतन्य चन्द्र में बहुत कुछ वार्त्तालाप हुआ, परन्तु वह सब संकेत रूप

नित्यानन्द-चैतन्येर अनेक आलाप। सब कथा ठारे ठौरे नाहिक प्रकाश ॥४४॥
प्रभु वोले 'जिज्ञासा करिते वासि भय। कोन दिग हैते शुभ करिला विजय ॥४५॥
शिशु मति नित्यानन्द-परम विह्वल। वालकेर प्राय जेन वचन चञ्चल ॥४६॥
एइ प्रभु अवतीर्ण जानि लेन मर्म्म। कर जोड़े करि वोले हइ वड़ नम्र ॥४७॥
प्रभु स्तुति करे, शुनि लज्जित हइया। व्यप देशे सर्व्व-कथा कहेन भाङ्गिया ॥४८॥
नित्यानन्द वोले "तीर्थ करिल अनेक। देखिल कृष्णेर स्थान जतेक जतेक ॥४९॥
स्थान मात्र देखि, कृष्ण देखिते ना पाइ। जिज्ञासा करिल तवे भाल-लोक-ठाञि ॥५०॥
सिंहासन-सव केने देखि आच्छादित। कह भाइ सवा कृष्ण गेला कोन् भित ॥५१॥
तारा वोले-कृष्ण गियाछेन गौड़ देशे। गया करि गियाछेन कथोक दिवसे ॥५२॥
नदियाय शुनि वड़ हरि सङ्कीर्त्तन। केहो वोले तथाप जन्मिला नारायण ॥५३॥
पतितेर त्राण वड़ शुनि नदियाय। शुनिञा आइलुँ मुञि पातकी एथाय" ॥५४॥
प्रभु वोले "आमरा सकल भाग्यवान्। तुमि-हेन भक्तेर हइल उपस्थान ॥५५॥
आजि कृत कृत्य हेन मानिल आमरा। देखिल जे तोमार आनन्द-वारि-धारा" ॥५६॥
हासिया मुरारि वोले "तोमरा तोमरा। उहति ना वुझि किछु आमरा-सभारा" ॥५७॥
श्रीवास वोलेन "उहा आमराकि वुझि। माधव-शङ्कर जेन दोंहे दोंहा पूजि" ॥५८॥
गदाधर वोले "भाल वलिला पण्डित। सेइ वुझि जेन राम-लक्ष्मण-चरित" ॥५९॥
केहो वोले "दुइ जन जेन दुइ काम। केहो वोले "दुइ जन कृष्ण-बलराम ॥६०॥

में ही हुआ है प्रकट रूप में नहीं ॥ ४४ ॥ फिर प्रभु विश्वम्भर बोले-"यह पूछने में भी मुझे भय होता है कि किधर से आपका शुभागमन हुआ ?" ॥ ४५ ॥ श्री नित्यानन्द जी परम विह्वल हो रहे हैं-बालक की जैसी उनकी सरल मति है और बालक के जैसे ही उनके चंचल वचन हैं ॥ ४६ ॥ "ये ही हैं प्रभु जिन्होंने अवतार लिया है"-इस रहस्य को आप समझ गये और तब हाथ जोड़ कर बड़े नम्र होकर बोले ॥ ४७ ॥ प्रभु के मुख से अपनी स्तुति सुनकर आप बड़े लज्जित हुए और अन्य चर्चा के मिष से सब बातें खोल २ कर कहने लगे ॥ ४८ ॥ नित्यानन्द जी बोले-"मैंने अनेक तीर्थ किये। मैंने जितने भी श्रीकृष्ण के धाम देखे वहाँ केवल धाम ही धाम दिखायी दिया, श्रीकृष्ण कहीं भी नहीं दिखायी दिये, कि तब सज्जन लोगों से मैंने पूछ ताँछ की ॥ ४९ ॥ ५० ॥ "क्यों सब सिंहासन ढके दिखायी देते हैं। कहो भाइयो। श्रीकृष्ण कहाँ चले गये ? ॥ ५१ ॥ वे बोले-"श्रीकृष्ण तो गौड देश को गये हैं-और कुछ दिन पहले गया की यात्रा करके घर लौटे हैं ॥ ५२ ॥ "नदिया में, सुनते हैं, आज कल बड़ा हरि-संकीर्तन होता है। कोई कहते हैं कि कहीं नारायण प्रकट हुये हैं ॥ ५३ ॥ नदिया में पतितों की बड़ी रक्षा होती है, अथवा तो पतितों के बड़े त्राण कर्त्ता हैं, सुनकर मैं पातकी भी नदिया में आया हूँ ॥ ५४ ॥ तब गौर प्रभु बोले-"हम सब बड़े ही भाग्यवान् हैं जो आप जैसे भक्त यहाँ आ उपस्थित हुए हैं" ॥ ५५ ॥ आज हम सब अपने को कृत कृत्य मानते हैं कि जो हमने आपके प्रेमानन्द की अश्रु-धाराओं के दर्शन किये ॥ ५६ ॥ तब तो श्रीमुरारि गुप्त हँसकर बोल उठे "आप और आप-दोनों ही जानें यह सब बातें। हम सब तो कुछ भी नहीं समझ पाते हैं" ॥ ५७ ॥ इस पर श्रीवास जी बोले-"भला हम लोग क्या समझेंगे। यहाँ तो मानो माधव और महादेव दोनों ही दोनों की पूजा कर रहे हैं" ॥ ५८ ॥ फिर गदाधर जी बोले "उत्तम कहा श्रीवास जी ! मुझे तो इनका चरित्र राम लक्ष्मण जैसा लगता है" ॥ ५९ ॥ कोई बोला-"यह दोनों जने मानो तो दो कामदेव

केहो वोले "आमि किछु विशेष ना जानि। कृष्ण कोले जेन 'शेष' आइला आपनि" ॥६१॥
केहो वोले "दुइ सखा जेन कृष्णार्जुन। सेइ मत देखिलाङ स्नेह परिपूर्ण" ॥६२॥
केहो वोले "दुइ जने वड़ परिचय। किछुना वुझिये-सव ठारे कथा कय" ॥६३॥
एइ मत हरिषे सकल-भक्तगण। नित्यानन्द-दरशने कहेन कथन ॥६४॥
नित्यानन्द गौरचन्द्र दोंहार मिलन। इहार श्रवणे हय वन्ध-विमोचन ॥६५॥
सङ्गी, सखा, भाइ, छत्र, शयन, वाहन। नित्यानन्द वइ अन्य नहे कोन जन ॥६६॥
नाना-रूपे सेवे प्रभु आपन-इच्छाय। जारे देन अधिकार, से-इ जन पाय ॥६७॥
आदि देव महा योगी ईश्वर वैष्णव। महिमा अनन्त इहा नाहि जाने सब ॥६८॥
ना जानिञा निन्दे ताँर चरित्र अगाध। पाइयाओ विष्णु भक्ति ताँर हयवाध ॥६९॥
चैतन्येर प्रिय-देह नित्यानन्द राम। हउ मोर प्राणनाथ-एइ मनस्काम ॥७०॥
ताहान प्रसादे हैल चतन्येते रति। ताहान आज्ञाये लिखि चतन्येर स्तुति ॥७१॥
'रघुनाथ' यदुनाथ' जेन नाम भेद। सेइमत भेद 'नित्यानन्द' 'वलदेव' ॥७२॥
संसारेर पार हइ भक्तिर सागरे। जे डूविव से भजुक निताइ चाँदेरे ॥७३॥
जे वा गाय एइ कथा हइया तत्पर। गोष्ठी सह वरदाता तारे विश्वम्भर ॥७४॥
जगते दुर्लभ वड़ विश्वम्भर नाम। सेइ प्रभु चैतन्य सभार धन प्राण ॥७५॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। बृन्दाबन दास तछु पद युगे गान ॥७६॥

हैं"। कोई बोला—"यह दोनों जने कृष्ण-बलराम हैं" ॥ ६० ॥ कोई बोला—"मैं और तो कुछ नहीं जानता हूँ—बस मुझे तो लगता है कि श्रीकृष्ण की गोद में स्वयं शेष जी आ गये हैं" ॥ ६१ ॥ कोई बोला—"ये दो सखा तो कृष्ण-अर्जुन जैसे हैं। वैसा ही भरपूर स्नेह भी दिखायी देता है ॥ ६२ ॥ कोई बोला—"इन दोनों में वड़ी जान-पहचान है—तभी तो सब बातें संकेत ही संकेत में कर लेते हैं, और हम कुछ भी नहीं समझ पाते हैं ॥ ६३ ॥ इस प्रकार सब भक्त लोग श्री नित्यानन्द के दर्शन सों हर्षित होकर परस्पर में वचन कहते हैं ॥ ६४ ॥ नित्यानन्द और गौरचन्द्र की मिलन-कथा श्रवण करने से सब बन्धन खुल जाते हैं ॥ ६५ ॥ प्रभु के संगीन सखा, भ्राता, छत्र, शय्या, बाहन इत्यादि सब नित्यानन्द जी ही हैं—उनके बिना और दूसरा कोई नहीं है ॥ ६६ ॥ नित्यानन्द जी अपनी इच्छा से नाना स्वरूप धारण करके प्रभु की सेवा करते हैं, आप जिसको सेवा का अधिकार देते हैं वही सेवा पा सकता है ॥ ६७ ॥ आप आदि देव हैं, महा योगी हैं, ईश्वर हैं एवं बैष्णव हैं। आपकी महिमा अनन्त है—इसे सब नहीं जानते हैं ॥ ६८ ॥ जो आपके अत्यन्त गहन चरित्र को समझे विना निन्दा करते हैं, वे विष्णु भक्ति लाभ करके भी बाधा को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६९ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र की प्रिय देह हैं श्री नित्यानन्द राय। वे मेरे प्राण नाथ होवें-यही मेरी मनोकामना है ॥ ७० ॥ उनकी कृपा से ही मेरी श्रीचैतन्य चन्द्र में प्रीति हुई है और उनकी आज्ञा से ही मैं श्री चैतन्य-चरित्र लिख रहा हूँ ॥ ७१ ॥ जैसे रघुनाथ और यदुनाथ में नाम का ही भेद है ऐसे ही नित्यानन्द और बलदेव में है ॥ ७२ ॥ जो कोई संसार से पार होकर भक्ति-समुद्र में डूबना चाहता हो वह नित्यानन्द चन्द्र का भजन करे ॥ ७३ ॥ जो कोई प्रेमासक्ति पूर्वक इस चरित्र को गायँगे, उनको परिवार सहित विश्वम्भर देव वरदान देंगे ॥ ७४ ॥ "विश्वम्भर" नाम जगत् में बड़ा दुर्लभ है। वही प्रभु चैतन्य चन्द्र सबके प्राण धन हैं ॥ ७५ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व समझने वाला यह वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनके ही कुछ गुणों का गान करता है ॥ ७६ ॥

इति—श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे नित्यानन्द चैतन्य दर्शनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पंचम अध्याय

'हरि बोल' हरि बोल' गौराङ्ग सुन्दर। वाहु तुलि वुले जेन मत्त करिवर ॥१॥

जय नवद्वीप नव प्रदीप प्रभाव पाषण्ड गजैक सिंहः।
स्वनाम संख्या जप सूत्रधारीचैतन्य चन्द्रो भगवन्मुरारिः ॥२॥

हेन मते नित्यानन्द-सङ्गे-कुतुहले। कृष्ण कथा रसे सभे हइला विह्वले ॥३॥
सभे महा भागवत परम-उदार। कृष्ण-रसे मत्त सभे करेन हुङ्कार ॥४॥
हासे प्रभु नित्यानन्द चारि दिगे देखि। वहये आनन्द धारा सभाकार आँखि ॥५॥
देखिया आनन्द महाप्रभु विश्वम्भर। नित्यानन्द-प्रति किछु वलिला उत्तर ॥६॥
"शुन शुन नित्यानन्द श्रीपाद गोसाञि। व्यास पूजा तोमार हइव कौन ठाञि ॥७॥
कालि हैव पौर्णमासी—व्यासेर पूजन। आपने वुझिया वोल, जारे लय मन" ॥८॥
नित्यानन्द जानि लेन प्रभुर इङ्गित। हाथे धरि आनि लेन श्रीवास पण्डित ॥९॥
हासि वोले नित्यानन्द "शुन विश्वम्भर। व्यास पूजा एइ मोर वामनेर घर" ॥१०॥
श्रीवासेर प्रति वोले प्रभु विश्वम्भर। "वड़ भार लागिल जे तोमार उपर" ॥११॥
पण्डित वोलेन 'प्रभु! किछु नहे भार। तोमार प्रसादे सव घरेइ आमार ॥१२॥
मुङ्ग, वस्त्र, जज्ञ सूत्र, घृत, गुया, पान। विधि जोग्य जत सज्ञ-सव विद्यमान ॥१३॥
पद्धति-पुस्तक मात्र मागिया आनिव। कालि महा भाग्ये व्यास पूजन देखिव ॥१४॥

श्री गौरांग सुन्दर अपनी दोनों भुजाओं को उठाकर, 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहते हुए मत्त हस्ती की भाँति विचरण करते फिरते हैं ॥ १ ॥ हे नवद्वीप के नवीन प्रदीप स्वरूप! हे पाषण्ड गज के लिये सिंह समान प्रभाव शालि! हे स्वनाम-संख्या-जप-पूर्ण करने के लिये सूत्र धारण करने वाले, हे भगवन्मुरारी श्रीचैतन्य चन्द्र। आप की जय हो ॥ २ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द प्रभु के साथ, श्रीकृष्ण-कथा के आस्वादन में नवीन २ कौतूहल को प्राप्त होते हुए सब भक्त जन विह्वल हो गये ॥ ३ ॥ सब लोग परम भागवत हैं,परम उदार हैं, और कृष्ण-रस में मत्त होकर सब ही हुँकार कर रहे हैं ॥ ४ ॥ नित्यानन्द प्रभु चारों ओर देखते हुए हँसते हैं और सब लोगों के नेत्रों से आनन्द की धाराएँ बह रही हैं ॥ ५ ॥ इस अपूर्व आनन्द को देखकर महा प्रभु विश्वम्भर नित्यानन्द जी प्रति कुछ बोले ॥ ६ ॥ "हे श्रीपाद गुसांई नित्यानन्द जो! सुनिये तो सही सुनिये। आपकी व्यास पूजा किस जगह होगी?" ॥ ७ ॥ "कल आषाढी पूर्ण मासी है—व्यास पूजा की तिथि है। जहाँ आप की इच्छा हो सो आप सोच समझ कर बता दें ॥ ८ ॥ नित्यानन्द जी प्रभु गौरचन्द्र के संकेत को समझ गये और श्रीवास पण्डित का हाथ पकड़ कर प्रभु के सामने ले आये ॥ ९ ॥ और हँसकर बोले कि 'हे विश्वम्भर! मेरी व्यास पूजा इस ब्राह्मण के घर होगी ॥१०॥ तब विश्वम्भर देव श्रीवास प्रति बोले कि यह तो तुम्हारे ऊपर बड़ा भार आ पड़ा ॥ ११ ॥ श्रीवास पंडित बोले "कुछ भार नहीं है प्रभो! आपकी कृपा से मेरे घर में सब कुछ है" ॥ १२ ॥ "वस्त्र, मूँग, यज्ञोपवीत, घृत, सुपारी, पान इत्यादि आवश्यक सामग्री सब विद्यमान है ही ॥ १३ ॥ "केवल मात्र पूजा-पद्धति की पुस्तक ही नहीं है—सो माँग कर ले आऊंगा। यह तो बड़े भाग्य मेरे जो मैं कल व्यास पूजा के दर्शन

प्रीत हैला महाप्रभु श्रीवासेर वोले । हरि हरि ध्वनि कैला वैष्णव-सकले ॥१५॥
विश्वम्भर वोले "शुन श्रीपाद गोसाञि । शुभकर' सभे पण्डितेर घर जाइ" ॥१६॥
आनन्दित नित्यानन्द प्रभुर वचने । सेइ क्षणे आज्ञा लइ करिला गमने ॥१७॥
सर्व-गणे चलिला ठाकुर विश्वम्भर । राम-कृष्ण वेढ़ि जेन गोकुल किङ्कर ॥१८॥
प्रविष्ट हइला मात्र श्रीवास—मन्दिरे । बड़ कृष्णानन्द हैल सभार शरीरे ॥१९॥
कपाट पढ़िल तवे प्रभुर आज्ञाय । आप्त गण बिने आर जाइते ना पाय ॥२०॥
कीर्त्तन करिते आज्ञा करिला ठाकुर । उठिल कीर्त्तन ध्वनि, वाह्य गेल दूर ॥२१॥
व्यास पूजा-अधिवास उल्लास कीर्त्तन । दुइ प्रभु नाचे, वेढ़ि गाय भक्त गण ॥२२॥
चिर दिवसेर प्रेमे चैतन्य निताइ । दोहे दोंहा ध्यान करि नाचे एक ठाञि ॥२३॥
हुङ्कार करये केहो, केहो वा गर्ज्जन । केहो मूर्च्छा जाय, केहो करये क्रन्दन ॥२४॥
कम्प, स्वेद, 'पुलकाश्रु, आनन्द-मूर्च्छित' । ईश्वरेर विकार—कहिते जानि कत ॥२५॥
स्वानुभावा नन्दे नाचे प्रभु दुइ जन । क्षणे कोला कुलि करि करये क्रन्दन ॥२६॥
दोंहार चरण दोंहे धरि वारे चाहे । परम चतुर दोंहे—केहो नाहि पाये ॥२७॥
परम-आनन्दे दोंहे गड़ा गड़ि जाय । आपना ना जाने दोंहे आपन-लीलाय ॥२८॥
वाह्य दूर हइल, वसन नाहि रहे । धरये वैष्णव गण, धरण ना जाये ॥२९॥
जे धरये त्रिभुवन, के धरिव तारे । महा मत्त दुइ प्रभु कीर्त्तने विहरे ॥३०॥

करूँगा" ॥ १४ ॥ श्रीवास जी के वचन से श्री महाप्रभु जी बड़े प्रसन्न हुए और सब वैष्णवों ने "हरि बोल हरि" ध्वनि की ॥ १५ ॥ फिर विश्वम्भर प्रभु बोले "सुनिये श्रीपाद गुसांई । अब सब पंडित श्रीवास के घर को चलें" ॥ १६ ॥ प्रभु के वचन से आनन्दित हो कर नित्यानन्द जी उनसे आज्ञा ले तत्काल चल पड़े ॥ १७ ॥ प्रभु विश्वम्भर भी सब परिवार सहित चले । ऐसा प्रतीत होता था मानों तो गोकुल के जन राम-कृष्ण को घेर कर चले जा रहे हों ॥ १८ ॥ श्रीवास पण्डित के घर में प्रवेश करते ही सबके शरीर में श्री कृष्ण प्रेम का आनन्द छा गया" ॥ १९ ॥ तब प्रभु की आज्ञा से किवाड़ बन्द कर दिये गये जिससे कि अपने निज जन के अतिरिक्त और कोई अब भीतर नहीं जा सकता था ॥ २० ॥ तब महाप्रभु गौर ने कीर्त्तन करने की आज्ञा दी और कीर्त्तन की ध्वनि होने लगी और वाह्य ज्ञान सबका जाता रहा ॥ २१ ॥ व्यास पूजा के अधिवास के उल्लास में कीर्त्तन करते हुए दोनों प्रभु नाच रहे हैं और भक्त गण उनको घेर कर गा रहे हैं ॥ २२ ॥ श्री चैतन्य और श्री निताइ का प्रेम चिरकाल का बहुत पुराना है—उस प्रेम में एक दूसरे का ध्यान करते हुए वे एकत्र नाच रहे हैं ॥ २३ ॥ उनमें कोई हुँकार करते हैं तो कोई गर्जन करते हैं । कोई मूर्च्छित होते हैं तो कोई क्रन्दन करते हैं ॥ २४ ॥ कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रु, आनन्द—मूर्च्छा आदि ईश्वर के अंगों में जो जो प्रेम के विकार प्रकट हुए उनमें से मैं भला कितनों को कह सकता हूँ ॥२५॥ दोनों प्रभु अपने २ भाव के आनन्द में नाच रहे हैं । वे कभी परस्पर को आलिंगन करके क्रन्दन करते हैं ॥ २६ ॥ और कभी दोनों दोनों के चरणों को पकड़ना चाहते हैं परन्तु दोनों ही परम चतुर हैं अतएव कोई किसी के चरण को पकड़ नहीं सकता है ॥ २७ ॥ परम आनन्द में मत्त होकर दोनों भूमि पर लुढकते फिरते हैं, अपनी लीला के आदेश में दोनों ही अपने को भूले हुए हैं ॥ २८ ॥ उनका वाह्य-ज्ञान जाता रहा, वस्त्र शरीर पर नहीं रहे । वैष्णव गण दोनों को पकड़ना चाहते हैं, पर वे पकड़ में नहीं आते हैं ॥ २९ ॥ जो त्रिभुवन को धारण करते हैं उनको भला कौन धारण कर सकता है ? महा-मत्त होकर दोनों प्रभु

'वोल वोल' वलि डाके श्रीगौर सुन्दर। सिञ्चित आनन्द जले सर्व्व-कलेवर ।।३१।।
चिर-दिने नित्यानन्द पाइ अभिलाषे। वाह्य नाहि, आनन्द-सागर-माझे भासे ।।३२।।
विश्वम्भर नृत्य करे अति-मनोहर। निज शिर लागे गिया चरण-उपर ।।३३।।
टल मल भूमि नित्यानन्द-पद ताले। भूमि कम्प-हेन माने' वैष्णव-सकले ।।३४।।
एइ मत आनन्दे नाचे न दुइ नाथ। से उल्लास कहि वारे शक्ति आछे कान ।।३५।।
नित्यानन्द प्रकाशिते प्रभु विश्वम्भर। वलराम-भावे उठे खट्वार उपर ।।३६।।
महामत्त हैला प्रभु वलराम भावे। "मद आन" "मद आन" वलि घन डाके ।।३७।।
नित्यानन्द प्रति वोले श्रीगौर सुन्दर। "झाट देह' मोरे हल मुषल सत्वर" ।।३८।।
पाइया प्रभुर आज्ञा प्रभु-नित्यानन्द। करे दिला, कर पाति लैला गौरचन्द्र ।।३९।।
कर देखे केहो आर किछुइ ना देखे। केहो वा देखिल हल मुषल प्रत्यक्षे ।।४०।।
जारे कृपा करे सेइ ठाकुरे, से जाने। देखि लेह शक्ति नाहि कहिते कथने ।।४१।।
एवड़ निगूढ़ कथा केहो मात्र जाने। नित्यानन्द व्यक्त सेइ-सव-जन स्थाने ।।४२।।
नित्यानन्द-स्थाने हल मुषल लइया। "वारुणी वारुणी" प्रभु डाके मत्त हैया ।।४३।।
कारो वुद्धि नाहि स्फुरे, ना वुझे उपाय। अन्योऽन्ये सभार वदन सभे चाय ।।४४।।
जुगति करिया सभे मनेते भाविया। घट भरि गङ्गा जल सभे दिल लैया ।।४५।।
सर्व्व-जन देइ जल, प्रभु करे पान। सत्य जेन कादम्वरी पीये-हेन भाण ।।४६।।

कीर्त्तन में विहार कर रहे हैं ।। ३० ।। "बोलो, हरि बोलो," कह कहकर श्रीगौर सुन्दर उच्च ध्वनि करते हैं। प्रेमानन्द के जल से समस्त शरीर उनका भीग गया है ।। ३१ ।। और नित्यानन्द जी भी चिरकाल की मनोवांछित वस्तु को प्राप्त करके वाह्य-ज्ञान शून्य हो गये हैं और आनन्द के सागर में बहे जा रहे हैं ।।३२।। प्रभु विश्वम्भर अति मनोहर नृत्य करते हैं—उनका मस्तक चरणों से जा लगता है ।।३३।। और नित्यानन्द जी के चरणों के ताल से पृथ्वी डग मगाती है तो सब वैष्णव जन समझते हैं कि भू-कम्प हो रहा है ।।३४।। इस प्रकार आनन्द में दोनों प्रभु नाच रहे हैं, उस उल्लास को वणन करने की सामर्थ्य किसमें है ? ।।३५।। तब नित्यानन्द जी का स्वरूप क्या है, इसको प्रकट करने के लिए प्रभु विश्वम्भर बलराम जी के भावावेश में श्री विष्णु सिंहासन पर चढ़ बैठे ।। ३६ ।। बलराम जी के भाव में प्रभु महामत्त हो गये और "मद लाओ," 'मद लाओ" कह कह कर बारम्बार पुकारने लगे ।। ३७ ।। फिर नित्यानन्द जी के प्रति श्रीगौर सुन्दर बोले—"शीघ्र ही मुझे हल मूषल दो ।। ३८ ।। महाप्रभु की आज्ञा पाकर प्रभु नित्यानन्द हल-मूषल प्रभु के हाथों में अर्पण करते हैं और वे हाथ पसार कर ले लेते हैं ।। ३९ ।। कोई तो हाथ ही हाथ देखते हैं, और कुछ भी नहीं देख पाते हैं, परन्तु किसी २ ने हल मूषल प्रत्यक्ष देख पाया ।। ४० ।। जिस पर वे प्रभु कृपा करते हैं, वही उनको जान पाता—देख पाता है। और देखने पर भी उसे वर्णन करने की शक्ति तो किसी में भी नहीं होती है ।। ४१ ।। यह पूर्वोक्त चरित अति गूढ है—इसे कोई विरले ही जानते हैं—और उन्हीं सब भाग्यवानों के निकट ही नित्यानन्द व्यक्त हैं अर्थात् वे ही उनके तत्त्व को जानते हैं ।। ४२ ।। श्री नित्यानन्द जी से हल मूषल लेकर प्रभु मतवाले होकर "वारुणी" "वारुणी" कह-कह कर पुकारते हैं ।।४३।। उस समय किसी की बुद्धि काम नहीं देती है, कोई उपाय नहीं सूझता है, सब ही एक दूसरे का मुख ताकते हैं ।। ४४ ।। फिर कुछ सोच विचार कर सबने एक घडा में गङ्गा जल भर कर प्रभु को ला दिया ।। ४५ ।। सब लोग तो जल दे रहे हैं और प्रभु पी रहे हैं परन्तु आपको ऐसा लग रहा है कि मैं सचमुच ही

चतुर्द्दिगे राम स्तुति पढ़े भक्त गण। "नाढ़ा नाढ़ा 'नाढ़ा" प्रभु वोले । अनुक्षण ।।४७।।
सघने दुलाय शिर "नाढ़ा नाढ़ा" बोले। नाढ़ार सन्दर्भ केहो ना वुझे सकले ।।४८।।
सभे वलिलेन "प्रभु! 'नाढ़ा' वोल का'रे"। प्रभु वोले आइलु मुञि जाहार हुङ्कारे ।।४९।।
'अद्वैत-आचार्य' वलि कथा कह जार। सेइ नाढ़ा लागि मोर एइ अवतार ।।५०।।
मोहरे आनिला नाढ़ा वैकुण्ठ थाकिया। निश्चिन्ते रहिल गिया हरिदास लैया ।।५१।।
सङ्कीर्त्तन-आरम्भे मोहर अवतार। घरे घरे करिमु कीर्त्तन-परचार ।।५२।।
विद्या, धन, कुल, ज्ञान, तपस्यार मदे। मोर भक्त स्थाने जार आछे अपराधे ।।५३।।
से अधम-सभारे ना दिमु प्रेम जोग। नगरिया प्रति दिमु व्रह्मादिर भोग" ।।५४।।
शुनिञा आनन्दे भासे सव भक्त-गण। क्षणेके सुस्थिर हैला श्रीशची नन्दन ।।५५।।
"कि चाञ्चल्य करिलाङ प्रभु जिज्ञासये। सव भक्त-वोले "किछु उपाधिक नहे" ।।५६।।
सभारे करेन प्रभु प्रेम-आलिङ्गन। "अपराध मोर ना लइवा सर्व्व-क्षण ।।५७।।
हासे सर्व्व-भक्त गण प्रभुर कथाय। नित्यानन्द-महाप्रभु गड़ा गड़ि जाय ।।५८।।
सम्वरण नहे नित्यानन्देर आवेश। प्रेम रसे विह्वल हइला प्रभु 'शेष' ।।५९।।
क्षणे हासे, क्षणे कान्दे क्षणे दिगम्वर। वाल्य भावे पूर्ण हैल सर्व्व-कलेवर ।।६०।।
कोथा वा थाकिल दण्ड कोथा कमण्डुल। कोथा वा वसन 'गेल, नाहि आदि मूल ।।६१।।
चञ्चल हइला नित्यानन्द महा धीर। आपने धरिया प्रभु करिलेन स्थिर ।।६२।।
चैतन्येर वचन-अङ्कुश सवे माने'। नित्यानन्द मत्त-हस्ती आर नाहि जाने ।।६३।।

बारुणी पी रहा हूँ ।। ४६ ।। चारों ओर भक्त गण, बलराम-स्तुति पढ़ रहे हैं और प्रभु निरन्तर "नाढ़ा ३" कह रहे हैं ।। ४७ ।। आप जोर-जोर से शिर हिलाते हुए "नाडा २" कहते हैं परन्तु 'नाडा' के गूढ अर्थ को कोई भी नहीं समझ पाता है ।। ४८ ।। तब सब बोले-"प्रभो ! आप 'नाडा २' किसे कह रहे हैं ?" प्रभु बोले "जिसकी हुँकार से मैं आया हूँ उसे ही" ।। ४९ ।। "तुम लोग जिसे अद्वैताचार्य कह कर पुकारते हो, उसी नाडा के लिए मेरा यह अवतार है ।। ५० ।। "वही नाडा मुझे वैकुण्ठ से ले आया है और अब वह हरिदास को लेकर वहाँ निश्चिन्त जा बैठा है ।। ५१ ।। "संकीर्तन आरम्भ करने के लिए मेरा यह अवतार है-मैं घर-घर में कीर्तन का प्रचार करूँगा ।। ५२ ।। "विद्या, धन, कुल, ज्ञान, तपस्या, आदि के अभिमान के कारण जिन लोगों का मेरे भक्तों के निकट अपराध है ।। ५३ ।। "उन सब अधम लोगों को मैं अपना भक्ति योग नहीं दूँगा। उनको छोड़ जन-साधारण को भी ब्रह्मादिकों का दुर्लभ भोग प्रदान करूँगा" ।। ५४ ।। प्रभु के बचनों को सुनकर सब भक्त लोग आनन्द में बहने लगे। कुछ समय पश्चात् श्री शचीनन्दन स्थिर होकर पूर्व दशा में आ गये ।। ५५ ।। और पूछने लगे कि "मैंने क्या चंचलता कर डाली है"। भक्त लोग वोले-"स्वरूप से बाहर की ऐसी कुछ बात नहीं की !" ।। ५६ ।। तब प्रभु सबको प्रेम पूर्वक आलिंगन करते हैं और कहते हैं-"आप लोग कभी मेरा अपराध न लेवें" ।। ५७ ।। प्रभु की बात पर सब भक्त गण हँसते हैं और नित्यानन्द प्रभु तो भूमि पर लोट-पोट हो जाते हैं ।। ५८ ।। नित्यानन्द जी का भावावेश शान्त ही नहीं होता है। आज प्रेम रस में शेष प्रभु विह्वल हो गये हैं ।। ५९ ।। क्षण में वे हँसते हैं, क्षण में रोते हैं, और क्षण में दिगम्बर हो जाते हैं—इस प्रकार के बाल भाव से उनका श्री अंग भरपूर हो रहा है ।। ६० ।। कहीं दण्ड पड़ा हुआ है तो कहीं कमण्डल और कहीं वस्त्र पड़े हुए हैं ।। ६१ ।। इस प्रकार परम धीर नित्यानन्द जी अत्यन्त चंचल हो गये-तब प्रभु ने स्वयं उनको पकड़ करके स्थिर किया ।। ६२ ।।

"स्थिर हओ, कालि पूजिवारे चाह व्यास। स्थिर कराइया प्रभु गेला निज-वास ॥६४॥
भक्त गण चलि लेन आपनार घरे। नित्यानन्द रहिलेन श्रीवास मन्दिरे ॥६५॥
कथो रात्र्ये नित्यानन्द हुङ्कार करिया। निज दण्ड कमण्डलु फेलिला भाङ्गिया ॥६६॥
के वुझये ईश्वरेर चरित्र अखण्ड। केने भाङ्गिलेन निज कमण्डलु दण्ड ॥६७॥
प्रभाते उठिया देखे रामाइ-पण्डित। भाङ्गा दण्ड कमण्डलु देखिया विस्मित ॥६८॥
पण्डितेर स्थाने कहि लेन ततक्षणे। श्रीवास वोलेन "जाओ ठाकुरेर स्थाने"। ६९॥
रामाइर मुखे शुनि आइला ठाकुर। वाह्य नाहि नित्यानन्द हासेन प्रचुर ॥७०॥
दण्ड लइ लेन प्रभु श्रीहस्ते तुलिया। चलि लेन गङ्गा स्नाने नित्यानन्द लैया ॥७१॥
श्रीवासादि सभेइ चलिला गङ्गा स्नाने। दण्ड थुइलेन प्रभु गङ्गाये आपने ॥७२॥
चञ्चल से नित्यानन्द, ना माने' वचन। तवे एक वार प्रभु करये गर्ज्जन ॥७३॥
कुम्भीर देखिया तारे धरि वारे जाय। गदाधर श्रीनिवास करे 'हाय हाय' ॥७४॥
साँतरे गङ्गार माझे निर्भय-शरीर। चैतन्येर वाक्ये मात्र किछु हय स्थिर ॥७५॥
नित्यानन्द प्रति डाकि वोले विश्वम्भर। व्यास पूजा आसि झाट करह सत्वर ॥७६॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य उठिला तखने। स्नान करि गृहे आइलेन प्रभु-सने ॥७७॥
आसिया मिलिला सव-भागवत गण। निरवधि 'कृष्ण कृष्ण' करिते कीर्त्तन ॥७८॥
श्रीवास पण्डित-व्यास पूजार आचार्य। चैतन्येर आज्ञाय करेन सर्व्व-कार्य ॥७९॥

नित्यानन्द जी मतवाले हाथी की तरह केवल एक चैतन्य प्रभु के वचन रूपी अंकुश को ही मानते हैं–और किसी को कुछ समझते ही नहीं हैं ॥ ६३ ॥ प्रभु कहते हैं–"शान्त होओ श्रीपाद ! कल को तो आप व्यास पूजा करना चाहते हैं"। इस प्रकार उनको स्थिर करा कर आप प्रभु अपने गृह को गये ॥ ६४ ॥ भक्त गण भी सब अपने २ घर को गये नित्यानन्द जी श्रीवास के घर में रह गये ॥ ६५ ॥ कुछ रात होने पर नित्यानन्द जी ने हुँकार करते हुए अपने दण्ड-कमण्डलु को तोड़-फोड़ डाला ॥ ६६ ॥ सर्व समर्थ ईश्वर के चरित्र अखण्ड हैं–कौन समझ सकता है कि क्यों उन्होंने अपना दण्ड-कमण्डलु तोड़-फोड़ डाला ॥ ६७ ॥ प्रातःकाल उठकर रामाइ पंडित ने देखा कि दण्ड कमण्डल टूटे-फूटे पड़े हैं। यह देखकर उनको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ६८ ॥ उन्होंने तुरन्त ही जाकर श्रीवास पंडित को यह बात सुनायी तो वे बोले कि "तुम प्रभु के पास जाओ ॥ ६९ ॥ श्रीरामाइ के मुख से समाचार पाकर प्रभु आये तो देखते हैं कि नित्यानन्द जी को वाह्य-ज्ञान कुछ नहीं है और वे खब हँस रहे हैं ॥ ७० ॥ प्रभु ने दण्ड को उठाकर अपने श्री हस्त में ले लिया और नित्यानन्द जी को लेकर गङ्गा-स्नान को चल पड़े ॥ ७१ ॥ श्रीबास आदि सब भक्त साथ चले। गङ्गा में पहुँचकर प्रभु ने स्वयं, दण्ड को गङ्गा जी में बिसर्जन कर दिया ॥ ७२ ॥ नित्यानन्द जी चंचल बने हुए हैं–किसी की बातों को नहीं मानते हैं–तब प्रभु ने एक बार गरज कर कुछ डाँट दिया ॥ ७३ ॥ नित्यानन्द जी मगर को देखकर उसे पकड़ने जाते हैं। गदाधर जी और श्रीवास "हाय २" करके चिल्ला उठते हैं ॥ ७४ ॥ आप निर्भय होकर गङ्गा के मध्य में तैर रहे हैं, केवल श्रीचैतन्य प्रभु के वाक्य से ही कुछ शान्त हो जाते हैं ॥ ७५ ॥ तब प्रभु विश्वम्भर पुकार कर नित्यानन्द जी से कहते हैं "श्रीपाद ! चलो न शीघ्र चलकर व्यास पूजा करो" ॥ ७६ ॥ प्रभु के वचन सुनकर वे निकल आये और स्नान करके प्रभु के साथ घर आये ॥ ७७ ॥ "कृष्ण" "कृष्ण" कीर्त्तन निरन्तर करते हुए सब भक्त लोग भी वहाँ आ मिले ॥ ७८ ॥ व्यास पूजा के आचार्य श्रीवास पण्डित हैं और वे श्रीचैतन्य चन्द्र की आज्ञा से सब कार्य करते हैं

मधुर मधुर सभे करेन कीर्त्तन। श्रीवास मन्दिर हैल वैकुण्ठ भवन ॥८०॥
सर्व शास्त्र ज्ञाता सेइ ठाकुर-पण्डित। करिला सकल कार्य जे विधि बोधित ॥८१॥
दिव्य-गन्ध सहित सुन्दर वनमाला। नित्यानन्द हाथे दिया वलिते लागिला। ८२॥
"शुन,शुन नित्यानन्द! एइ माला धर। वचन पढ़िया व्यास देवे नमस्कर ॥८३॥
शास्त्र विधि आछे माला आपने से दिवा। व्यास तुष्ट हैले, सर्व-अभीष्ट पाइवा" ॥८४॥
जत शुने नित्यानन्द करे 'हय हय'। किसेर वचन पाठ–प्रवोधनालय ॥८५॥
किवा वोले धीरे धीरे, बुझन ना जाय। माला हाथे करि पुन चारि दिगे चा'य ॥८६॥
प्रभुरे डाकिया वोले श्रीवास उदार। "ना पूजेन व्यास एइ श्रीपाद तोमार" ॥८७॥
श्रीवासेर वाक्य शुनि प्रभु विश्वम्भर। धाइया सन्मुखे प्रभु आइला सत्वर ॥८८॥
प्रभु वोले "नित्यानन्द! शुनह वचन। माला दिया झाट कर' व्यासेर पूजन" ॥८९॥
देखि लेन नित्यानन्द–प्रभु विश्वम्भर। माला तुलि दिला तार मस्तक-उपर ॥९०॥
चाँचर-चिकुरे माला शोभे अति भाल। छय-भुज विश्वम्भर हइला तत्काल ॥९१॥
शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीहल, मुषल। देखिया विस्मित हैला निताइ विह्वल। ९२॥
षड्भुज देखि मूर्च्छा पाइला निताइ। पड़िला पृथिवी तले–धातु मात्र नाइ ॥९३॥
भय पाइलेन सव वैष्णवेर गण। "रक्ष कृष्ण! रक्ष कृष्ण!" करेन स्मरण ॥९४॥
हुङ्कार करेन जगन्नाथेर नन्दन। कक्षे तालि देइ घन-विशाल–गर्ज्जन ॥९५॥
मूर्च्छा गेला नित्यानन्द षड्भुज देखिया। आपने चैतन्य तोले गा'ये हाथ दिया ॥९६॥

॥ ७९ ॥ सब मधुर २ कीर्तन करते हैं–अहो श्रीवास का घर वैकुण्ठ धाम बन गया है ॥ ८० ॥ सर्व शास्त्र के ज्ञाता श्रीवास पंडित ने वेद-विधि के अनुसार व्यास पूजा सम्बन्धी सब कार्य यथावत् सम्पन्न किया ॥ ८१ ॥ फिर दिव्य गन्ध युक्त एक सुन्दर बन माला नित्यानन्द जी के हाथ में देकर बोले ॥८२॥ "सुनो-नित्यानन्द जी! सुनो! यह माला लो, और मंत्र पढ़ करके व्यास देव को नमस्कार करो ॥ ८३ ॥ "शास्त्र की ऐसी विधि है कि माला स्वयं पहरावे। व्यास जी के प्रसन्न होने पर सब अभीष्ट वस्तु प्राप्त होंगी ॥८४॥ नित्यानन्द जी जो भी सुनते हैं, केवल "हाँ हाँ" कर देते हैं–कौन मंत्र पाठ करें, ये तो समझाने पर मानते ही नहीं हैं ॥ ८५ ॥ धीरे धीरे न जाने क्या कुछ कहते जाते हैं, समझ में नहीं आता–फिर माला हाथ में लेकर चारों ओर देखते हैं। ८६ ॥ तब तो उदार श्रीवास जी प्रभु को पुकार कर कहते हैं कि "हे प्रभो! आपके ये श्रीपाद व्यास–पूजा नहीं करते हैं" ॥ ८७ ॥ श्रीवास जी के वचन को सुनकर प्रभु विश्वम्भर दौड़ कर नित्यानन्द प्रभु के सन्मुख आये ॥ ८८ ॥ और बोले–"नित्यानन्द जी! मेरी बात सुनो! माला अर्पण करके झटपट व्यास जी की पूजा कर डालो" ॥ ८९ ॥ श्रीनित्यानन्द जी ने प्रभु विश्वम्भर को देखा और माला उठाकर उनके मस्तक पर चढ़ा दी ॥ ९० ॥ प्रभु के घुँघराली अलकावली पर माला अत्यन्त शोभा देने लगी–उसी क्षण प्रभु विश्वम्भर षड भुज धारी बन गये ॥ ९१ ॥ प्रभु की छः भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म, हल और मूषल को देखकर श्री निताई चांद विस्मित और विह्वल हो गये हैं ॥ ९२ ॥ षड्भुज के दर्शन करके निताई प्रभु मूच्छित हो गये और पृथ्वी पर गिर पड़े तथा संज्ञा-शून्य हो गये ॥९३॥ यह देखकर सब वैष्णव लोग भयभीत हो गये और "हे कृष्ण। रक्षा करो!" "हे कृष्ण! रक्षा करो" कह कर भगवान् को स्मरण करने लगे ॥ ९४ ॥ तब तो जगन्नाथ–नन्दन प्रभु गौर सुन्दर हुँकार करते हैं और बगल बजाते हुए बारम्बार जोर २ से गरजते हैं ॥ ९५ ॥ नित्यानन्द जी षड्भुज दर्शन करके मूच्छित

"उठ उठ नित्यानन्द ! स्थिर कर' चित । सङ्कीर्तन शुन-जे तोमार समीहित ॥९७॥
जे कीर्त्तन-निमित्त करिला अवतार । से तोमार सिद्ध हैल, किवा चाह आर ॥९८॥
तोमार से प्रेम भक्ति, तुमि प्रेममय । विने तुमि दिले, कारो भक्ति नाहि हय ॥९९॥
आपना' सम्वरि उठ, निज-जन चा'ह । जाहारे तोमार इच्छा, ताहारे विलाह ॥१००॥
तिलार्द्धेक तोमारे जाहार द्वेष रहे । भजि लेह से आमार प्रिय कभु नहे" ॥१०१॥
पाइया चैतन्य प्रभु-प्रभुर वचने । हइला आनन्द मय षड्भुज दर्शने ॥१०२॥
जे अनन्त-हृदये वैसेन गौरचन्द्र । सेइ प्रभ अविस्मय जान' नित्यानन्द ॥१०३॥
छय-भुज-दृष्टि ताने कौन अद्भुत । अवतार-अनुरूप ए सब कौतुक ॥१०४॥
रघुनाथ-प्रभु जेन पिण्डदान कैला । प्रत्यक्ष हइया आसि दशरथ लैला ॥१०५॥
से जदि अद्भुत, तवे एहो अद्भुत । निश्चय सकल एइ कृष्णेर कौतुक ॥१०६॥
नित्यानन्द स्वरूपेर स्वभाव सर्व्वथा । तिलार्द्धेको दास्य भाव ना हय अन्यथा ॥१०७॥
लक्ष्मणेर स्वभाव जे हेन अनुक्षण । सीता वल्लभेर दास्ये मन प्राण धन ॥१०८॥
एइ मत नित्यानन्द स्वरूपेर मन । चैतन्य चन्द्रेर दास्य प्रति अनुक्षण ॥१०९॥
यद्यपिह अनन्त ईश्वर निराश्रय । सृष्टि स्थिति प्रलयेर हेतु जगन्मय ॥११०॥
सर्व-सृष्टि-तिरोभाव जे समये हये । तखनो अनन्त-रूप सत्य वेदे कहे ॥१११॥
तथापिह श्रीअनन्त देवेर स्वभाव । निरवधि प्रेम दास्य भावे अनुराग ॥११२॥

पड़े हैं और श्रीचैतन्य देव स्वयं अपने हाथों से उन्हें पकड़ कर उठाते हैं ॥ ९६॥ और कहते हैं-"नित्यानन्द जी ! उठो २, चित्त को स्थिर करो और अपने मनोवाञ्छित संकीर्तन को श्रवण करो ।९७। "जिस कीर्त्तन के निमित्त तुम ने अवतार ग्रहण किया है, वह तो सिद्ध हो गया । अब तुम और क्या चाहते हो ? ॥९८॥ "तुम प्रेम मय हो और प्रेम भक्ति तुम्हारी ही वस्तु है । तुम्हारे दिये विना किसी में वह भक्ति नहीं हो सकती है ॥ ९९ ॥ "अब आप अपने को सँभाल कर उठें और अपने जनों की ओर देखें और जिसे चाहें उसे प्रेम भक्ति देवें ॥ १०० ॥ "जिसका आपके प्रति तिलार्द्ध भी द्वेष भाव रहेगा वह मेरा भजन करने पर भी कभी मेरा प्रिय नहीं होगा" ॥ १०१ ॥ प्रभु के वचनों से निताइ प्रभु चेतनता लाभ करते हैं और षड्भुज के दर्शन से परमानन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १०२ ॥ जिन अनन्त देव के हृदय में श्रीगौर चन्द्र निवास करते हैं, उन्हें ही प्रभु नित्योनन्द जानो-विस्मय मत करो ॥ १०३ ॥ उनके लिये छः भुजाओं का दर्शन कौन सी अद्भुत बात है ? ये सब तो कौतुक हैं जो अवतार के अनुरूप ही हैं ॥ १०४ ॥ जैसे श्रीरामचन्द्र ने पिण्ड दान किया था तो दशरथ जी ने प्रत्यक्ष होकर ग्रहण किया था ॥ १०५॥ उस चरित्र को यदि अद्भुत कहा जाय तो यह भी अद्भुत है। निश्चय ही ये सब श्रीकृष्ण के कौतुक हैं ॥ १०६ ॥ नित्यानन्द जी के स्वरूप का यह एक नित्य स्वभाव है कि तिलार्द्ध काल के लिये भी दास-भाव का त्याग नहीं होता है ॥ १०७ ॥ जैसे लक्ष्मण जी का यह स्वभाव है कि श्री सीतानाथ के दास्य में वे निरन्तर अपने मन, प्राण, धन-सर्वस्व को लगाये रखते हैं ॥ १०८ ॥ वैसे ही नित्यानन्द स्वरूप का भी मन निरन्तर श्रीचैतन्य चन्द्र के दास्य में अर्पित रहता है ॥ १०९ ॥ यद्यपि श्री अनन्त देव ईश्वर हैं, निराश्रय हैं अर्थात् सबके आश्रय होने के कारण उनका कोई आश्रय नहीं है, सृष्टि-स्थिति-प्रलय के हेतु है तथा जगन्मय हैं ॥ ११० ॥ जिस समय सारी सृष्टि का लय हो जाता है, उस समय भी अनन्त रूप स्थिर रहता है-ऐसा वेद कहते हैं ॥१११॥ ऐसी महिमा होने पर भी श्री अनन्त देव का यही स्वभाव है कि वे निरन्तर प्रेममय दास भाव में ही अनु-

जुगे जुगे–प्रति-अवतारे-अवतारे। स्वभाव ताहार दास्य, वुझह विचारे ॥११३॥
श्रीलक्ष्मण-अवतारे अनुज हइया। निरवधि सेवेन अनन्त–दास हैया ॥११४॥
अन्न पानी निद्रा छाड़ि श्रीराम चरण। सेवियाओ आकांक्षा ना पूरे अनुक्षण ॥११५॥
ज्येष्ठ हइयाओ वलराम-अवतारे। दास्य जोग कभु ना छाड़िलेन अन्तरे ॥११६॥
स्वामी करियाओ से वोलेन कृष्ण प्रति। भक्ति वइ कखनोना हय अन्य-मति ॥११७॥
वत्स हरण प्रसङ्गे वलदेव वाक्यम्, केयं वाकुत आयाता दैवी नार्युत वासुरी।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्यामेऽपिविमोहिनी ॥११८॥
सेइ प्रभु आपने अनन्त महाशय। नित्यानन्द-महाप्रभु जानिह निश्चय ॥११९॥
इहाते जे नित्यानन्द वलराम प्रति। भेद दृष्टि हेन करे–से-इ मूढ़ मति ॥१२०॥
सेवा विग्रहेर प्रति अनादर जार। विष्णु स्थाने अपराध सर्व्वथा ताहार ॥१२१॥
तथाहि श्रीरामचन्द्र वाक्यम्, अजप्त्वा लक्ष्मणं मंत्रं रामचन्द्रं जपेत् तुयः।
तस्य कार्यं न सिध्येत कल्प कोटि शतै रपि ॥१२२॥
ब्रह्मा-महेश्वर–वन्द्य जद्यपि कमला। तभु ताँर स्वभाव–चरण सेवा-खेला ॥१२३॥
सर्व-शक्ति-समन्वित 'शेष' भगवान्। तथापि स्वभाव-धर्म–सेवा से ताहान ॥१२४॥
अतएव तान जेन स्वभाव कहिते। सन्तोष पायेन प्रभु सकल हइते ॥१२५॥
ईश्वर-स्वभाव से–केवल भक्ति वश। विशेषे प्रभुर सुख शुनि तेइ जश ॥१२६॥
स्वभाव कहिते विष्णु वैष्णवेर प्रीत। अतएव वेदे कहे स्वभाव-चरित ॥१२७॥

राग वान हैं ॥ ११२ ॥ विचार करके देख लो कि प्रत्येक युग में प्रत्येक अवतार में उनका स्वभाव दास का ही रहा है ॥ ११३ ॥ श्री लक्ष्मण के अवतार में छोटे भाई बन कर अनन्त देव दास भाव में निरन्तर श्री राम जी की सेवा करते हैं ॥ ११४ ॥ अन्न, जल और निद्रा को त्याग करके श्रीराम के चरण कमलों की सेवा करके भी, आपकी सेवा की लालसा पूरी नहीं हुई ॥ ११५ ॥ और बलराम अवतार में बड़े भाई होने पर भी आपने कभी भी भीतर हृदय में दास भाव को नहीं छोड़ा ॥ ११६ ॥ (बड़े होने पर भी कभी २) आप श्रीकृष्ण से स्वामी कहकर के भी बोलते हैं और कहते हैं कि "भक्ति को छोड़ कभी भी मेरी अन्य मति न हो" ॥ ११७ ॥ ब्रह्मा के बालक और वछड़ों को चुराने पर जब श्रीकृष्ण ही समस्त बालक और बछड़े बन गये तो उस प्रसंग में बलराम जी बोले–"यह माया कौन है ? कहाँ से आयी है ? यह देवताओं की माया हैं या मनुष्यों की या असुरों की ? नहीं २–यह तो मेरे प्रभु की ही माया है कारण कि औरों की माया मुझे विमोहित नहीं कर सकती है ॥ ११८ ॥ वही प्रभु अनन्त महाशय स्वयं ही नित्यानन्द महाप्रभु हैं–इसे निश्चय जानो ॥ ११९ ॥ इस कारण जो नित्यानन्द और बलराम में भेद-दृष्टि करता है–वही मूढ़ मति है ॥ १२० ॥ सेवा की ही मूर्त्ति जो श्रीनित्यानन्द हैं उनके प्रति जिसका अनादर है, उसका सदा भगवान् विष्णु के निकट अपराध जानो ॥ १२१ ॥ उदाहरण स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी का यह वाक्य है कि "लक्ष्मण के मन्त्र को जपे विना जो श्रीराम का मंत्र जपता है। उसका कार्य शत कोटि कल्पों में भी सिद्ध नहीं होता है ॥ १२२ ॥ जिस प्रकार लक्ष्मी जी ब्रह्मा, महेश आदि की बन्दनीया होने पर भी उनका स्वभाव प्रभु के चरण कमलों की सेवा करना ही है ॥ १२३ ॥ उसी प्रकार 'शेष' भगवान् यद्यपि सर्व-शक्ति करके संयुक्त हैं। तथापि उनके स्वभाव का धर्म प्रभु की सेवा ही है ॥ १२४॥ अतएव उनका जैसा स्वभाव है उसका वर्णन करने से वे सबसे अधिक प्रसन्न होते हैं ॥ १२५ ॥ ईश्वर का स्वभाव है कि वे केवल भक्ति के वश में रहते हैं और उनको अपने भक्तों का यश सुनने में विशेष सुख मिलता है ॥ १२६ ॥ परस्पर के

विष्णु वैष्णवेर तत्त्व जे कहे पुराणे। सेइ मत लिखि आमि पुराण-प्रमाणे ॥१२८॥
नित्यानन्द स्वरूपेर एइ वाक्य मन। "चैतन्य ईश्वर, मुञितार एक जन" ॥१२९॥
अहर्निश श्रीमुखे नाहिक अन्य कथा। "मुञि तार, सेहो मोर ईश्वर सर्व्वथा ॥१३०॥
चैतन्येर सङ्गे जे मोहोर स्तुति करे। सेइ से मोहोर भृत्य, पाइवेक मोरे" ॥१३१॥
आपने कहिया आछेन षड्भज दर्शने। तान प्रीते कहि तान ए सब कथने ॥१३२॥
परमार्थे नित्यानन्द ताहान हृदये। दोहे दोंहा देखिते आछेन सुनिश्चये ॥१३३॥
तथापिह अवतार-अनुरूप खेला। करेन ईश्वर सेवा, वुझतान लीला ॥१३४॥
सहजे स्वीकार प्रभु करये आपने। ताहा गाय वर्णे, वेदे भारते पुराणे ॥१३५॥
जे कर्म करये प्रभ, से-इ हय वेद। ताहि गाय सर्व-वेद छाड़ि सर्व-भेद ॥१३६॥
भक्ति जोग विने इहा वुझन ना जाय। जाने जन-कथो गौरचन्द्रेर कृपाय ॥१३७॥
नित्य शुद्ध ज्ञान वन्त वैष्णव-सकल। तवे जे कलह देख सव कुतूहल ॥१३८॥
इहा ना वुझिया कोनो कोनो वुद्धि-नाश। एक वन्दे, आरनिन्दे, जाइवेक नाश ॥१३९॥
तथाहि नारद पुराणे, "अभ्यर्चयित्वा प्रतिमा सुविष्णं दुष्यन् जने सर्वगतं तमेव।
अभ्यर्च्य पादौ द्विज नस्य मूर्द्धि्न द्रुह्यन्नि वाज्ञो नरकं प्रयाति ॥१४०॥
वैष्णव हिंसार कथा, सेथाकुक दूरे। सह्ज-जीवेरे जे अधम पीड़ा करे ॥१४१॥

स्वभाव का वर्णन करने से विष्णु और वैष्णव जन–दोनों प्रसन्न होते हैं–अतएव वेद इन्हीं दोनों के स्वभाव-चरित्र का वर्णन करते हैं ॥ १२७ ॥ विष्णु और वैष्णवों का तत्त्व जैसा कि पुराणों में कहा है, उसी प्रमाण के अनुसार मैं वैसा ही लिखता हूँ ॥ १२८ ॥ श्री नित्यानन्द स्वरूप की वाणी और मन में बस यही है कि–"श्रीचैतन्य देव ईश्वर हैं, और मैं उनका एक जन हूँ" ॥ १२९ ॥ दिन रात उनके श्रीमुख में–"मैं उनका हूँ और वे सर्वथा मेरे ईश्वर हैं–"इसे छोड़ और कोई दूसरी बात नहीं है ॥ १३० ॥ "जो जन श्री चैतन्य चन्द्र के साथ मेरी स्तुति करता है। वही मेरा सेवक है, वही मुझको प्राप्त होगा" ॥ १३१ ॥ ये सब बातें स्वयं आपने ही षड्भुज दर्शन के समय कही हैं–उन्हीं की प्रसन्नता के लिये मैं उन्हीं की ये सब बात कह रहा हूँ ॥ १३२ ॥ परमार्थ में अर्थात् तत्त्व दृष्टि से जो नित्यानन्द जी सदा प्रभु के हृदय में हैं ही और सुनिश्चय करके वहाँ दोनों दोनों को देख भी रहे हैं ॥ १३३ ॥ तथापि अवतार के अनुरूप खेल खेलते हुये वे ईश्वर की सेवा करते हैं–ऐसे इस लीला को समझो ॥ १३४ ॥ प्रभ नित्यानन्द जी आप ही सेवा के इस स्वभाव को स्वीकार करते हैं और उसी को वेद, महाभारत, पुराण गा गाकर वर्णन करते हैं ॥ १३५ ॥ प्रभु जो कर्म करते हैं, वही वेद हो जाता है, फिर उसे ही सब वेद सब भेद भाव छोड़ कर गाते हैं ॥१३६॥ भक्ति योग विना यह बात समझ में नहीं आती है, कुछ थोड़े लोग ही गौर चन्द्र की कृपा से इसे जानते हैं ॥१३७॥ सब वैष्णव जन नित्य, शुद्ध और ज्ञानवान् हैं फिर भी जो उनमें परस्पर में कलह देखने में आता है, वह सब एक कौतुक मात्र है ॥ १३८ ॥ इस बात को समझे विना कोई २ नष्ट-बुद्धि वाले एक की बन्दना करते और दूसरे की निन्दा करते हैं– वे नाश को प्राप्त होगे ॥ १३९ ॥ जैसे कि नारद पुराण में कहा है कि "जो प्रतिमा में विष्णु की विधि पूर्वक पूजा करता हुआ उनके जनों के प्रति द्वेष करता है वह सर्वान्तिर्यामी भगवान् के प्रति ही द्वेष करता है। वह मूर्ख ब्राह्मण के चरणों की पूजा करके उसके मस्तक पर चोट करने वाले की भाँति नरक को जाता है ॥ १४० ॥ वैष्णव जनों की हिंसा की बात तो दूर रहे, जो अधम साधारण जनों को भी पीड़ा पहुँचाते हैं, ॥ १४१ ॥ और श्री विष्णु की पूजा करके भी जो साधारण

विष्णु पूजियाओ जे प्रजार द्रोह करे। पूजाओ निष्फल हय, आरो दुःखे मरे।।१४२।।
सर्व भूते आछेन श्रीविष्णु ना जानिया। विष्णु पूजा करे अति प्राकृत हइया।।१४३।।
एक हस्ते जेन विप्र-चरण पाखाले। आर हस्ते ढिला मारे माथाय कपाले।।१४४।।
ए सव लोकेर कि कुशल कोन-क्षणे। हइयाछे हइ वेक ? वुझ भावि मने।।१४५।।
जत पाप हय प्रजा गणेर हिंसने। तार शतगुण हय वैष्णव-निन्दने।।१४६।।
श्रद्धा करि मूर्त्ति पूजे, भक्त ना आदरे। मूर्ख नीच-पतितेर दया नाहि करे।।१४७।।
भक्ताधम शास्त्रे कहे ए सव जनारे। प्रभु-अवतार' जेइ जन भेद करे।।१४८।।
एक अवतार भजे, ना भजये आर। कृष्ण—रघुनाथ करे भेद व्यवहार।।१४९।।
वलराम-शिव प्रति प्रीत नाहि करे। भक्ता धर्म शास्त्रे कहे ए सव जनारे।।१५०।।
"अर्चाया मेव हरये पूजां यः श्रद्धये हते। नतद्भक्तेषु चान्येषु सभक्तः प्राकृतः स्मृतः" ।।१५१।।
प्रसङ्गे कहिल भक्ताधमेर लक्षणे। पूर्ण हैला नित्यानन्द षड्भुज-दर्शने।।१५२।।
एइ नित्यानन्देर षड्भुज दरशन। इहा जे शुनये—तार वन्ध विमोचन।।१५३।।
वाह्य पाइ नित्यानन्द करेन क्रन्दने। महा नदी वहे दुइ कमल—नयने।।१५४।।
सभा' प्रति महाप्रभु वलिला वचन। "पूर्ण हैल व्यास पूजा, करह कीर्त्तन" ।।१५५।।
पाइया प्रभुर आज्ञा सभे आनन्दित। चौदिगे उठिल कृष्ण ध्वनि आचम्बित।।१५६।।
नित्यानन्द-गौरचन्द्र नाचे एक ठाञि। महामत्त दुइ भाइ, कारो वाह्य नाञि।।१५७।।
सकल वैष्णव हैला आनन्दे विह्वल। व्यास पूजा-महोत्सव महा-कुतूहल।।१५८।।

प्राणी से द्रोह करते हैं, उनकी पूजा निष्फल जाती है और वे दुःख पाकर मरते हैं।। १४२ ।। जो जन सर्वभूत में स्थित भगवान् विष्णु को न जाकर प्राकृत की भाँति उनकी पूजा करता है।। १४३ ।। वह ऐसा ही है कि जैसे कोई एक हाथ से ब्राह्मण के चरणों को धोवे और दूसरे हाथ से उसके माथे पर, या शिर पर पत्थर मारे।। १४४ ।। सोच कर समझो तो सही कि इन सब लोगों का क्या कभी कुशल हुआ है या होगा! ।। १४५ ।। जितना पाप साधारण जीव की हिंसा से होता है, उससे सौ गुना पाप वैष्णव-निन्दा से होता है ।। १४६ ।। मूर्त्ति की तो श्रद्धा से पूजा करे परन्तु भक्त का आदर न करे, तथा मूर्ख, नीच और पतित जनों पर दया न करे। १४७ ।। तथा प्रभु के अवतारों में भेद भाव रक्खे, ऐसे सब जनों को शास्त्र में "अधम-भक्त" कहा है ।। १४८ ।। एक अवतार को भजे, पर दूसरे को न भजे, श्रीकृष्ण और श्रीराम में भेद का व्यवहार करे तथा बलराम और शिवजी के प्रति भक्ति भाव न रक्खे। ऐसे सब लोगों को शास्त्र में "अधम भक्त" कहा है ।। १४९ ।।१५०।। श्रीमद्भागवत में कहा है कि "जो केवल अर्चा विग्रह में ही श्रद्धा पूर्वक श्री हरि की पूजा करते हैं परन्तु न उनके भक्तों का और न और जीवों का आदर करते हैं, वे "प्राकृत भक्त" कहे जाते हैं" ।। १५१ ।। यह प्रसंगवश अधम भक्त के लक्षण कहे गये। यहीं पर श्री नित्यानन्द जी के षड्भुज दर्शन का प्रसंग पूर्ण हुआ।। १५२ ।। नित्यानन्द जी के षड्भुज दर्शन के इस प्रसंग को जो सुनेगा, वह बन्धन-मुक्त हो जायगा ।। १५३ ।। जब नित्यानन्द जी बाहरी दशा में आये तो वे रोने लगे—उनके दोनों कमल नयनों से महा नदी बह चली ।। १५४ ।। तब महा प्रभु ने सब लोगों से कहा कि "व्यास-पूजा तो पूरी हो गयी—अब कीर्तन करो" ।। १५५ ।। प्रभु की आज्ञा पाकर सब को बड़ा आनन्द हुआ और अचानक चारों ओर कृष्ण-नाम-धुन होने लगी ।। १५६ ।। श्रीनित्यानन्द और श्रीगौर चन्द्र एक ठौर पर नृत्य करते हैं। दोनों भाई महामत्त हो रहे हैं—किसी को बाहर की सुध नहीं है ।। १५७ ।। वैष्णव वृन्द सब आनन्द में

केहो नाचे केहो गाय केहो गड़ि जाय। सभेइ चरण धरे, जे जाहार पाय ।।१५६।।
चैतन्य प्रभुर माता-जगतेर श्राइ। निभृते वसिया रङ्ग देखेन तथाइ ।।१६०।।
विम्वम्भर नित्यानन्द देखि दुइ जने। "दुइ जन मोर पुत्र" हेन वासे' मने ।।१६१।।
व्यास पूजा महोत्सव परम उदार। अनन्त-प्रभु से पारे इहा वर्णिवार ।।१६२।।
सूत्र आमि किछु कहि चैतन्य चरित। जे-ते-मते कृष्ण गाइ लेइ हय हित ।।१६३।।
दिन अवशेष हैल व्यास पूजा-रङ्गे। नाचेन वैष्णव गण विश्वम्भर-सङ्गे ।।१६४।।
परानन्दे मत्त महा भागवत गण। "हा कृष्ण" वलिया सभे करेन क्रन्दन ।।१६५।।
एइ मते निज भक्ति योग प्रकाशिया। स्थिर हैला विश्वम्भर सर्व-गण लैया ।।१६६।।
ठाकुर-पण्डित प्रति वोले विश्वम्भर। "व्यासेर नैवेद्य सव आनह सत्त्वर" ।।१६७।।
ततक्षणे आनि लेन सर्व-उपहार। आप नेइ प्रभु हस्ते दिलेन सभार ।।१६८।।
प्रभुर हस्तेर द्रव्य पाइ ततक्षण। श्रानन्दे भोजन करे भागवत गण ।।१६६।।
जतेक आछिल सेइ वाड़ीर भितरे। सभारे डाकिया प्रभु दिला निज-करे ।।१७०।।
ब्रह्मादि पाइया जाहा भाग्य हेन माने। ताहा पाय वैष्णवेर दास दासी गणे ।।१७१।।
ए सव कौतुक जत श्रीवासेर घरे। एतेके श्रीवास-भाग्य के: वलिते पारे ।।१७२।।
एइ मत नाना दिन नाना से कौतुके। नवद्वीपे हय नाहि जाने सर्व लोके ।।१७३।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ।।१७४।।

विह्वल हो रहे हैं। व्यास पूजा महोत्सव में महान कौतुहल हो रहा है ।। १५८ ।। कोई नाच रहे हैं, कोई गा रहे हैं और कोई धरती पर लोट रहे हैं। सब ही चरण पकड़ रहे हैं–जिसका जिसे मिल जाय ।।१५६।। श्रीचैतन्य प्रभु की माता जगन्माता शची देवी वहीं पर एकान्त में बैठी हुई यह सब कौतुहल देख रही हैं ।। १६० ।। श्री विश्वम्भर और नित्यानन्द को देखकर "ये दोनों जने मेरे ही पुत्र हैं"–ऐसा उनके मन में लग रहा है ।। १६१ ।। व्यास-पूजा-महोत्सव तो परम उदार है। इसका वर्णन एक अनन्त देव ही कर सकते हैं–और कोई नहीं ।। १६२ ।। मैं तो श्रीचैतन्य चरित के कुछ सूत्र ही कह रहा हूँ–कारण कि जिस किसी प्रकार से श्रीकृष्ण का गुण गान करने से ही हित होता है ।। १६३ ।। व्यास पूजा के आनन्द में दिन बीत गया। वैष्णव गण श्रीविश्वम्भर के साथ नाच रहे हैं ।। १६४ ।। सब महा भागवत जन परमानन्द में मतवाले हो रहे हैं और "हा कृष्ण" कह २ कर रुदन कर रहे हैं ।। १६५ ।। इस प्रकार अपने भक्ति योग को प्रकाशित करके श्री विश्वम्भर अपने सब भक्तों के सहित स्थिर हो गये ।। १६६ ।। फिर श्रीवास पंडित से बोले कि "व्यास पूजा के सब नैवेध को शीघ्र ही ले आओ" ।। १६७ ।। वे तत्काल सब सामग्री ले आये उसे प्रभु ने स्वयं अपने हाथ से सबको बाँट दिया ।। १६८ ।। प्रभु के श्रीहस्त का प्रसाद पाकर तुरन्त ही सब भक्त जन आनन्द से उसे पाने लगे ।। १६६ ।। उस घर के भीतर जितने भी मनुष्य थे सबको बुलाकर प्रभु ने अपने हाथ से उनको भी प्रसाद दिया ।। १७०।। जिसको पाकर ब्रह्मा आदि भी अपना परम सौभाग्य समझते हैं, उसी को वैष्णवों के दास-दासी-जन तक पा रहे हैं ।। १७१ ।। यह सब कौतुक चरित श्रीवास जी के घर में हुआ। अतएव श्रीवास के भाग्य को कौन कह सकता है ।। १७२ ।। इस प्रकार से नवद्वीप में दिन दिन में नाना प्रकार के कौतुक होते हैं–जिन्हें सब नहीं जानते हैं ।। १७३ ।। श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द को ही जानने वाला, वृन्दावनदास उनके युगल चरणों में कुछ उनका ही गुण गान करता है ।। १७४ ।।

इति—श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे श्रीव्यास पूजा वर्णनं नाम पञ्चमोऽध्याय ।।

अथ छठा अध्याय

जयति जयति देवः कृष्ण चैतन्य चन्द्रो । जयति जयति कीर्ति स्तस्य नित्या पवित्रा ॥
जयति जयति भृत्य स्तस्य विश्वेश मूर्त्ते । जयति जयति नृत्य स्तस्य सर्व प्रियाणाम् ॥१॥
जय जय जगत जीवन गौरचन्द्र । दान देह' हृदये तोमार पद द्वन्द ॥२॥
जय जय जगत मङ्गल विश्वम्भर । जय जय जत गौर चन्द्रेर किङ्कर ॥३॥
जय श्री परमानन्द पुरीर जीवन । जय दामोदर स्वरूपेर प्राण धन ॥४॥
जय रूप-सनातन-प्रिय महाशय । जय जगदीश-गोपी नाथेर हृदय ।५॥
जय जय द्वारपाल-गोविन्देर नाथ । जीव प्रति कर' प्रभु ! शुभ दृष्टिपात ॥६॥
हेन मते नित्यानन्द-सङ्गे गौरचन्द्र । भक्त गण लैया करे सङ्कीर्तन-रङ्ग ॥७॥
एखने शुनह अद्वैतेर आगमन । मध्य खण्डे जेन मते हैल दरशन ॥८॥
एक दिन महाप्रभु ईश्वर-आवेशे । रामाइरे आज्ञा करि लेन पूर्ण रसे ॥९॥
"चलह रामाञि ! तुमि अद्वैतेर वास । तार स्थाने कह गिया आमार प्रकाश ॥१०॥
जार लागि करिला विस्तर आराधन । जार लागि करियाछ विस्तर क्रन्दन । ११॥
जार लागि करिला विस्तर उपवास । से प्रभु तोमार आसि हइला प्रकाश ॥१२।
भक्ति जोग विलाइते ताँर आगमन । आपनि आसिया झाट कर' विवर्त्तन । १३॥
निर्जने कहिओ नित्यानन्द–आगमन । जे किछु देखिले ताँरे कहिओ कथन ॥१४॥

श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्र देव की जय हो, जय हो । उनकी नित्य पवित्र कीर्त्ति की जय हो जय हो। उस विश्वेश्वर मूर्त्ति के सेवकों की जय हो जय हो, तथा उनके समस्त प्रिय जनों के नृत्य की जय हो, जय हो ॥ १ ॥ जगज्जीवन गौरचन्द्र की जय हो, जय हो, आप अपने श्रीचरण युगल को मेरे हृदय के लिये प्रदान करें ॥ २ ॥ जगन्मंगल विश्वम्भर की जय हो जय हो, श्रीगौर चन्द्र के समस्त किंकरों की जय हो जय हो ॥ ३ ॥ श्री परमानन्द पुरी के जीवन स्वरूप प्रभु की जय हो । दामोदर स्वरूप के प्राण धन प्रभु की जय हो ॥ ४ ॥ महाशय रूप सनातन के प्रिय गौर प्रभु की जय हो । जगदीश–गोपीनाथ के हृदय स्वरूप गौर प्रभु की जय हो ॥ ५ ॥ द्वारपाल गोविन्द के नाथ की जय हो, जय हो । हे प्रभो ! जीव के प्रति शुभ दृष्टि कीजिए ! ॥ ६ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द जी के सहित श्रीगौर चन्द्र, भक्तों को लेकर संकीर्तन का आनन्दोत्सव करते हैं ॥ ७ ॥ अब इस मध्य खण्ड में जिस प्रकार श्रीअद्वैत प्रभु ने आगमन करके दर्शन दिया–उस प्रसंग को सुनो ॥ ८ ॥ एक दिन श्री महाप्रभु ने ईश्वर आवेश में पूर्णानन्द में मग्न होकर रामाइ पंडित को आज्ञा की ॥ ९ ॥ "रामाइ ! तुम अद्वैत के घर जाओ और उनको मेरे "प्रकाश" का सम्वाद सुनाओ ॥ १० ॥ उनसे यह कहना कि "जिनको प्रकट करने के लिये तुमने इतनी आराधना की, जिनके लिये तुम इतने रोये हो, तुमने इतने व्रतोपवास किये हैं, वे तुम्हारे प्रभु आकर प्रकट हो गये हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ "वे अपना भक्ति योग लुटाने के लिये आये हैं । आप शीघ्र ही यहाँ आकर आनन्द में नृत्य करें ॥ १३ ॥ "और उनसे एकान्त में श्रीनित्यानन्द जी का आगमन भी वह सुनाना और भी जो कुछ तुमने देखा है सो सब कहना ॥ १४ ॥ "उनको मेरी पूजा की सामग्री तथा उपहार को लेकर स्त्री सहित

आमार पूजार सज्ज उपहार लैया। झाट आसि बारे बोल' सस्त्रीक हइया" ॥१५॥
श्रीवास-अनुज–राम आज्ञा शिरे करि। सेइ क्षणे चलिला स्मङरि 'हरि हरि' ॥१६॥
आनन्दे विह्वल–पथ ना जाने रामाञि। चैतन्येर आज्ञा लैया गेला सेइ ठाञि ॥१७॥
आचार्येरे नमस्करि रामाञि-पण्डित। कहितेना पारे कथा, आनन्दे पूर्णित। १८॥
सर्वज्ञ अद्वैत भक्ति जोगेर प्रभावे। आइल प्रभुर आज्ञा' जानि आछे आगे ॥१९॥
रामाञि देखिया हासि बोलये वचन। "वुझि आज्ञा हैल आमा निवार कारण ॥२०॥
कर जोड़ करि वोले रामाञि पण्डित। "सकल जानिआ छह, चलह त्वरित ॥२१॥
आनन्दे विह्वल हैला आचार्य-गोसाञि। हेन नाहि जाने,देह आछे कोन् ठाञि ॥२२॥
के वुझये अद्वैतेर चरित्र गहन। जानिआओ नाना-मत कहये कथन ॥२३॥
"कोथार गोसाञि आइला मानुष-भितरे। कोन् शास्त्रे वोले नदियाय अवतारे ॥२४॥
मोर भक्ति अध्यात्म वैराग्य ज्ञान मोर। सकल जानये श्रीनिवास–भाइ तोर" ॥२५॥
अद्वैतेर चरित्र रामाञि भाल जाने। उत्तरना करे किछु, हासे मने मने ॥२६॥
एइ मत अद्वैतेर चरित्र अगाध। सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्जे वाध ॥२७॥
पुन वोले "कह कह रामाञि पण्डित। कि कारणे तोमार गमन आचम्वित" ॥२८॥
वुझिलेन–आचार्य हइला शान्त चित। तखने कान्दिया कहे रामाञि पण्डित ॥२९॥
जार लागि करियाछ विस्तर क्रन्दन। जार लागि करिला विस्तर आराधन ॥३०॥

तुरन्त ही यहाँ आने के लिये कहना" ॥ १५ ॥ श्रीवास जी के भाई रामाइ पण्डित प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके उसी समय, "हरि हरि" स्मरण करते हुए चल पड़े ॥ १६ ॥ रामाइ आनन्द में विह्वल होकर चले जा रहे हैं। मार्ग का भी ध्यान नहीं है। फिर भी श्रीचैतन्य प्रभु की आज्ञा को लीये हुए वहाँ पहुँच ही तो गये ॥ १७ ॥ रामाइ पंडित ने अद्वैताचार्य जी को नमस्कार किया परन्तु आनन्द में भरे हुए मुख से कुछ कह नहीं पाते हैं ॥ १८ ॥ अद्वैत प्रभु भक्ति योग के प्रभाव से सर्वज्ञ हैं–अतएव वे पहले ही समझ गये कि मेरे लिए प्रभु की आज्ञा आयी है ॥ १९ ॥ वे रामाइ को देख हँसकर बोले–"मालूम होता मुझको लाने के लिये आज्ञा हुई है" ॥ २० ॥ रामाइ पंडित हाथ जोड़कर बोले–"आप तो सब जान ही गये हैं–अतएव चलिये शीघ्र ही" ॥ २१ ॥ तब तो आचार्य-गुसांई आनन्द में विह्वल हो गये मेरा शरीर कहाँ है–इसका भी ज्ञान उन्हें न रहा ॥ २२ ॥ श्री अद्वैत के गहन चरित्र को कौन समझ सकता है। जानते हुए भी अनजान की सी नाना बातें वे कहने लगे ॥२३॥ वे बोले–"मनुष्यों के भीतर गुसांई अर्थात् ईश्वर कहाँ से आ गये ? नदिया में अवतार होना किस शास्त्र में लिखा है ? ॥ २४ ॥ "मेरी भक्ति, मेरा अध्यात्म, वैराग्य और ज्ञान इनको तेरा भाई श्रीनिवास भली प्रकार सब जानता है" ॥ २५ ॥ श्रीअद्वैत के चरित्र को रामाइ पण्डित भी भली भाँति जानते हैं, परन्तु फिर भी कुछ उत्तर नहीं देते हैं–केवल मन-ही-मन में हँसते हैं ॥ २६ ॥ श्री अद्वैताचार्य के ऐसे २ जो चरित्र हैं वे बड़े ही अगाध हैं। सत्कर्मी ही उन्हें कुछ समझ सकते हैं अतएव उनके लिये तो मंगल कारी हैं–परन्तु कुकर्मी जीव उन्हें न समझ कर उनमें दोष दृष्टि करते हैं अतएव उनके लिये बाधा कारी हैं ॥ २७ ॥ श्री अद्वैत जी फिर दुबारा बोले–कि "रामाइ पण्डित ! कहो तो सही, किस कारण से अचानक तुम्हारा यहाँ आना हुआ है ?" ॥ २८ ॥ रामाइ पंडित समझ गये कि अब आचार्य देव का चित्त शान्त हुआ है अतएव वे अब रोकर बोले ॥ २९ ॥ "हे आचार्य जी ! जिन प्रभु को प्रकट करने के लिये आपने इतने आँसू-बहाए हैं, इतनी आराधना की है, और इतने

जार लागि करिला विस्तर उपवास। से प्रभु तोमार लागि हइला प्रकाश।।३१।।
भक्ति जोग विलाइते ताँर आगमन। तोमारे से आज्ञा करिवारे विवर्त्तन।।३२।।
षडुङ्ग-पूजार विधि जोग सज्ज लैया। प्रभुर आज्ञाय चल सस्त्रीक हइया।।३३।।
नित्यानन्द स्वरूपेर हैल आगमन। प्रभुर द्वितीय देह, तोमार जीवन।।३४।।
तुमिसे जानह ताँरे मुञि कि कहिमु। भाग्य थाके मोर तवे एकत्र देखिमु।।३५।।
रामाञिर मुखे जवे एतेक शुनिला। तखनि तुलिया बाहु कान्दिते लागिला।।३६।।
कान्दिया हइला मूर्च्छा आनन्द-सहित। देखिया सकल-गण हइला विस्मित।।३७।।
क्षणेके पाइया वाह्य, करये हुङ्कार। "आनिलुँ आनिलुँ" वोले "प्रभु आपनार"।।३८।।
"मोर लागि प्रभु आइला वैकुण्ठ छाड़िया"। एत वलि कान्दे पुन भूमिते पड़िया।।३९।।
अद्वैत गृहिणी पतिव्रता जगन्माता। प्रभुर प्रकाश शुनि कान्दे आनन्दिता।।४०।।
अद्वैतेर तनय–'अच्युता नन्द' नाम। परम वालक सेहो कान्दे अविराम।।४१।।
कान्देन अद्वैत पत्नी-पुत्रेर सहिते। अनुचर-सव वेढ़ि कान्दे चारि-भिते।।४२।।
केवा कोन् दिगे कान्दे, नाहि परापर। कृष्ण प्रेम मय हैल अद्वैतेर घर।।४३।।
स्थिर हय अद्वैत–हइते नारे स्थिर। भावावेशे निरवधि दोलाये शरीर।।४४।।
रामाञिरे वोले "प्रभु कि वलिला मोरे"। रामाञि वोलेन "झाट चलिवार तरे"।।४५।।
अद्वैत वोलये "शुन रामाञि पण्डित। मोर प्रभु हेन तवे आमार प्रतीत।।४६।।
आपन ऐश्वर्य जदि मोहोरे देखाय। श्रीचरण तुलि देइ आमार माथाय।।४७।।

व्रत-उपवास किये हैं- वे ही प्रभु आपके लिये प्रकट हो गये हैं।। ३०।। ३१।। अपनी भक्ति योग लुटाने के लिये ही उनका आगमन हुआ है और आप के लिये उनके आगे नृत्य करने की आज्ञा हुई है।। ३२।। विधि के अनुसार षडाङ्ग पूजा की सब सामग्री लेकर स्त्री सहित चलिये-यही प्रभु की आज्ञा है।। ३३।। श्री मन्महाप्रभु के द्वितीय देह स्वरूप, तथा आप के जीवनस्वरूप, श्रीनित्यानन्द स्वरूप का भी वहाँ आगमन हुआ है।। ३४।। मैं क्या कहूँ आप तो उनको जानते ही हैं मेरे भाग्य में होगा तो आप सब के एकत्र दर्शन करूँगा।। ३५।। जब रामाइ के मुख से इतनी बातें सुनी तो आचार्य देव भुजाओं को उठा कर रोने लगे।। ३६।। रोते रोते आनन्द में डूब कर बेसुध हो गये–यह देख कर सब लोग विस्मित हो गये।। ३७।। थोड़ी देर में सचेत हो कर वे हुँकार करने लगे और 'अपने प्रभु को ले आया हूँ–ले आया हूँ" कहने लगे।। ३८।। "ओ हो! मेरे लिये प्रभु अपने वैकुण्ठ धाम को छोड़ कर आ गये"–ऐसा कह कर वे पृथ्वी पर लोटते हैं और रोते हैं।। ३९।। जगन्माता पतिव्रता अद्वैत-पत्नी सीतादेवी भी प्रभु के प्रकाश का समाचार सुन कर आनन्द में भर कर रोने लगी।। ४०।। अच्युतानन्द नामक अद्वैत जी का पुत्र–जो निपट बालक है-वह भी बराबर रोता ही रहा।। ४१।। अद्वैताचार्य तो अपनी पत्नी और पुत्र के सहित रो रहे हैं और उनको घेर कर चारों ओर सेवक लोग सब रो रहे हैं।। ४२।। कोई कहीं-कोई कहीं पड़ा रो रहा है–किसी को अपने-पराये की सुध नहीं है-इस प्रकार अद्वैताचार्य का घर प्रेममय हो रहा है।। ४३।। अद्वैताचार्य स्थिर होना चाहते हैं परन्तु हो नहीं पाते हैं-भावावेश में वे अपने शरीर को लगातार हिला रहे हैं।। ४४।। रामाइ पंडित से पूछते हैं–"प्रभु ने मेरे लिये क्या कहा था"। वे उत्तर देते हैं–"शीघ्र चले आने के लिये"।। ४५।। अद्वैत जी बोले–"सुनो रामाइ पंडित! 'वे मेरे प्रभु हैं"–इस बात का विश्वास तभी होगा कि जब वे अपना ऐश्वर्य मुझको दिखायेंगे और अपने श्री चरण को उठाकर मेरे मस्तक पर रख देंगे, तब मैं

तवे से जानिमु मोर हय प्राण नाथ। सत्य सत्य सत्य एइ कहिलुँ तोमा'त" ॥४८॥
रामाइ वोलेन "प्रभु ! मुञि कि वलिमु। जदि मोर भाग्य थाके नयने देखिमु ॥४९॥
जे तोमार इच्छा प्रभु ! से-इ से ताँहार। तोमार निमित्त प्रभु ! एइ अवतार" ॥५०॥
हइला अद्वैत तुष्ट रामेर वचने। शुभ-जात्रा-उद्योग करिला ततक्षणे ॥५१॥
पत्नीरे वलिला "झाट हओ सावधान। लइया पूजार सज्ज चल आगुयान" ॥५२॥
पतिव्रता सेइ चैतन्येर तत्त्व जाने। गन्ध, माल्य, धूप, वस्त्र अशेष-विधाने ॥५३॥
क्षीर, दधि, सुनवनी, कर्पूर, ताम्वूल। लइया चलिला जत सव अनुकूल ॥५४॥
सपत्नीके चलिला अद्वैत-महाप्रभु। रामेरे निषेधे' "इहा ना कहिवा कभू ॥५५॥
'ना आइला आचार्य' तुमि वलिवा वचन। देखि प्रभु मोरे तवे कि वोले तखन ॥५६॥
गुप्त थाकों मुञि नन्दन आचार्येर घरे। 'ना आइला' वलि तुमि करिवा गोचरे" ॥५७॥
सभार हृदये वैसे प्रभु विश्वम्भर। अद्वैत-सङ्कल्प चित्ते हइल गोचर ॥५८॥
आचार्येर आगमन॰ जानिञा आपने। ठाकुर-पण्डित-गृहे चलिला तखने ॥५९॥
प्राय जत चैतन्येर निज-भक्त गण। प्रभुर इच्छाय सव मिलिला तखन ॥६०॥
आवेशित चित्त प्रभु' सभेइ वुझिया। सशङ्क आछेन सभे नीर' व हइया ॥६१॥
हुङ्कार करये प्रभु त्रिदशेर राय। उठिया वसिला प्रभु विष्णुर खट्टाय ॥६२॥
"नाढ़ा आइसे' नाढ़ा आइसे" वोले बारे बारे। "नाढ़ा चाहे मोर ठाकुराल देखि वारे" ॥६३॥
नित्यानन्द जाने सव प्रभुर इङ्गित। वुझिया मस्तके छत्र धरिला त्वरित ॥६४॥

जानूँगा कि वे मेरे प्राणनाथ हैं यह मैं तुमसे सत्य ३ कहता हूँ"॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ रामाइ पंडित बोले—"प्रभो ! इस विषय में मैं क्या कहूँ ? हाँ, मेरे भाग्य में होगा तो यह मैं अपनी आँखों से देख पाऊँगा ॥ ४९। जो आपकी इच्छा है प्रभो ! वही उनकी भी है। यह अवतार ही प्रभो ! आप के निमित्त हुआ है ॥ ५० ॥ रामाइ पंडित के वचनों से श्रीअद्वैतजी संतुष्ट हुये और तुरन्त ही शुभ यात्रा के लिये उद्योग करने लगे ॥ ५१ ॥ वे पत्नी से बोले—"शीघ्र ही तैयार हो जाओ और पूजा की सामग्री लेकर आगे २ चलो ॥ ५२ ॥ वे पतिव्रता देवी श्रीचैतन्यप्रभु के तत्त्व को जानती हैं। वे, सुगन्ध, माला, धूप, वस्त्र, दूध, दही सुन्दर नवनीत, कपूर, पान इत्यादि पूजा-विधि के लिये आवश्यक समस्त सामग्रियों को लेकर चलीं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ श्री अद्वैत महाप्रभू पत्नी को लेकर चले तो सही परन्तु "मेरे आने को बात प्रभु से कभी कहना ही नहीं"—ऐसा कह कर रामाइ को मना भो करते हैं ॥ ५५ ॥ "तुम तो यूँ कहना कि 'आचार्य नहीं आये'। देखें तब क्या कहते हैं प्रभु ! ॥ ५६ ॥ "मैं तो नन्दन आचार्य के घर में छिप कर रहूँगा और तुम "वे नहीं आये" कह करके प्रचार कर देना" ॥ ५७ ॥ (परन्तु) विश्वम्भर प्रभु तो सब के हृदय में विराजमान हैं अतएव अद्वैताचार्य का सङ्कल्प उनके चित्त में प्रत्यक्ष हो गया और (नवद्वीप में) उनका आगमन जान करके वे तुरन्त ही स्वयं श्रीवास पण्डित के घर को चल दिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ श्रीचैतन्य प्रभु के जो निजभक्त जन हैं, वे भी प्राय: सब ही प्रभु की इच्छा से वहाँ (श्रीवास के घर में) आ मिले ॥ ६० ॥ परन्तु प्रभु आवेश भाव में हैं समझ कर उन सबको बड़ी शंका होरही है और वे सब चुपचाप हैं ॥ ६१ ॥ इतने ही में देवताओं के नाथ विश्वम्भर प्रभु हुँकार करते हुए विष्णु सिंहासन पर चढ़ बैठे ॥६२॥ और बार बार कहने लगे कि—"नाड़ा आ रहा है" "नाड़ा आ रहा है" "नाड़ा मेरी ठकुराई देखना चाहता है ॥ ६३ ॥ श्री नित्यानन्द जी प्रभु के संकेत को सब जानने वाले हैं। वे समझ गये (कि प्रभु इस समय

गदाधर वुझि देइ कर्पूर ताम्वूल। सर्व-जने करे सेवा-जेन अनुकूल ॥६५॥
केहो पढ़े स्तुति केहो कोन सेवा करे। हेनइ समये आसि रामाञ्नि गोचरे ॥६६॥
नाहि कहि तेइ प्रभु वोले रामाञ्निरे। "मोरे परीक्षिते' नाढ़ा पाठाइल तोरे" ॥६७॥
"नाढ़ा आइसे" वलि प्रभु मस्तक ढुलाय। "जानिञाओ नाढ़ा मोरे चालये सदाय ॥६८॥
एथाइ रहिल नन्दना चार्येर घरे। मोरे परीक्षिते' नाढ़ा पाठाइल तोरे ॥६९॥
आन' गिया शीघ्र तुमि एथाइ ताहाने। प्रसन्न श्रीमुखे आमि वलिल आपने ॥७०॥
आनन्दे चलिला पुन रामाञ्नि-पण्डित। सकल अद्वैत-स्थाने करिला विदित ॥७१॥
शुनिञा आनन्दे भासे अद्वैत आचार्य। आइला प्रभुर स्थाने, सिद्ध हैल कार्य ॥७२॥
दूरे थाकि दण्डवत् करिते करिते। सस्त्रीके आइसे स्तव पढ़िते पढ़िते ॥७३॥
आइला निर्भय पद, हइला सन्मुखे। निखिल ब्रह्माण्डे अपरूप वेश देखे ॥७४॥
श्रीराग, जिनिञा कन्दर्प-कोटि लावण्य सुन्दर। ज्योतिर्मय कनक-सुन्दर कलेवर ॥७५॥
प्रसन्न-वदन कोटि चन्द्रेर ठाकुर। अद्वैतेर प्रति जेन सदय प्रचुर ॥७६॥
दुइ-वाहु-कोटि कनकेर स्तम्भ जिनि। तहिँ दिव्य अलङ्कार-रत्नेर खेंचनि ॥७७॥
श्रीवत्स कौस्तुभ-महा मणि शोभे वक्षे। मकर-कुण्डल वैजयन्ती माला देखे ॥७८॥
कोटि-महा-सूर्य जिनि तेजे नाहि अन्त। पाद पद्मे रमा, छत्र धरये अनन्त ॥७९॥
किवा-नख किवा मणि ना पारे चिनिते। त्रिभङ्गे वाजाय वांशी हासिते हासिते ॥८०॥

आने ऐश्वर्य भाव में हैं) और उन्होंने तुरन्त ही छत्र लेकर प्रभु के मस्तक पर धारण कराया ॥ ६४॥ श्री गदाधर भी भाव समझ करके पान-कपूर देने लगे और सब भक्त लोग यथायोग्य सेवा में तत्पर हो गये ॥ ६५ ॥ कोई स्तुति-पाठ कर रहे है, कोई किसी सेवा-कार्य में लगे हुये हैं -ऐसे ही समय में रामाइ पंडित सामने दिखाई पड़े ॥ ६६ ॥ उसके कुछ न कहने पर प्रभु स्वयं रामाइ से कहने लगे—"मेरी परीक्षा के लिये नाड़ा ने तुमको भेजा है, क्यों ?" ॥ ६७ ॥ (मैं जानता हूँ कि वह) "नाडा आ रहा है-" ऐसा कहते हुए प्रभु शिर को हिलाते हैं और कहते हैं "सब कुछ जान करके भी यह नाडा मुझे हमेशा छेड़ता रहता है ॥ ६८ ॥ "आप तो यहाँ नन्दनाचार्य के घर में रह गया और तुझे मेरी परीक्षा लेने के लिये भेज दिया" ॥ ६९ ॥ "तुम जाकर शीघ्र ही उनको यहाँ ले आओ—यह मैं प्रसन्न मुख से कह रहा हूँ" ॥ ७० ॥ अब तो रामाइ पंडित फिर बड़े आनन्द से चले और जाकर उन्होंने अद्वैत प्रभु को सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ७१ ॥ अद्वैताचार्य तो सुन करके आनन्द मग्न हो गये और प्रभु के निकट चले—उनके मन का सङ्कल्प पूरा जो हो गया ॥ ७२ ॥ वे दूर से ही दण्डवत करते और स्तुति पढ़ते हुये स्त्री के सहित आये ॥ ७३ ॥ और निर्भय पद जो श्री गौरचन्द्र प्रभु हैं उनके समीप आ पहुँचे और सन्मुख हुए तो अखिल ब्रह्माण्ड भर से बिलक्षण एक रूप और वेश का दर्शन किया ॥ ७४ ॥ प्रभु का कोटि-कन्दर्प-विजयी सुन्दर लावण्य है, ज्योतिर्मय सुन्दर कंचन कलेवर है ॥ ७५ ॥ प्रसन्न श्रीमुख कोटि चन्द्रमाओं का स्वामी है। उस प्रसन्नता से मानो तो यही प्रतीत होता है कि आप श्रीअद्वैत के प्रति अत्यन्त दयावान हैं ॥ ७६ ॥ कोटि कंचन-स्तम्भ-जयी आप के भुज युगल हैं जिन पर रत्न-जटित दिव्य अलङ्कार सुशोभित हैं ॥ ७७ ॥ वक्षस्थल पर श्रीवत्स और कौस्तुभ-महामणि और वनमाला शोभा दे रही है कानो पर मकराकृति कुण्डल हैं। ७८ ॥ कोटि महासूर्य पराजय कारी आप के तेज का अन्त नहीं है, लक्ष्मीदेवी चरण कमलों की सेवा कर रही हैं, अनन्त देव छत्र धारण किये हुए हैं ॥ ७९ ॥ नख हैं या मणि—पहचाने नहीं जाते हैं त्रिभंग खड़े हँसते हुए वंशी बजा रहे हैं

किवा प्रभु, किवा गण, किवा अलङ्कार। ज्योतिर्मय वइ किछु नाहि देखे आर ॥८१॥
देखे पड़िआछे चारि पञ्च शत मुख। महा भये स्तुति करे नारदादि शुक ।८२॥
मकर वाहन-रथ एक वराङ्गना। दण्ड परणामे आछे जेन गङ्गा समा ॥८३॥
तवे देखे स्तुति करे सहस्र वदन। चारि दिगे देखे ज्योतिर्मय देव गण ॥८४॥
उलटिया चाहे निज चरणेर तले। सहस्र सहस्र देव पड़ि "कृष्ण' वोले ॥८५॥
जे पूजार समये जे देव ध्यान करे। ताहा देखे चारि दिगे चरणेर तले ॥८६॥
देखिया सम्भ्रमे दण्ड परणाम छाडि। उठिला अद्वैत–अद्भुत देखि वड़ि ॥८७॥
देखे सप्त फणाधर महा नाग गण। ऊर्द्ध वाहु स्तुति करे तुलि सब फण ॥८८॥
अन्तरिक्षे परिपूर्ण देखे दिव्य रथ। गज हंस अश्वे निरोधिल वायु पथ ॥८९॥
कोटि कोटि नाग वधू सजल नयने। कृष्ण वलि स्तुति करे देखे विद्यमाने ॥९०॥
क्षिति अन्तरिक्षे स्थान नाहि अवकाशे। देखे वड़ि आछे महा-ऋषि गण पाशे ॥९१॥
महा-ठाकुराल देखि पाइला सम्भ्रम। पति पत्नी किछु वलि वारे नहे क्षम ॥९२॥
परम-सदय-मति प्रभु विश्वम्भर। चाहिया अद्वैत प्रति करिला उत्तर ॥९३॥
"तोमार सङ्कल्प लागि अवतीर्ण आमि। विस्तर आमार आराधना कैले तुमि ॥९४॥
सूतिया आछिलुँ क्षीर सागर-भितरे। निद्रा भङ्ग मोर तोर प्रेमेर हुङ्कारे ॥९५॥
देखिया जीवेर दुःख ना पारि सहिते। आमारे आनिले सर्व-जीव उद्धारिते। ९६॥

॥ ८० ॥ क्या तो प्रभु, क्या सेवकगण और क्या अलङ्कार, सबका अद्वैताचार्य ज्योतिर्मय छोड़ और कुछ नहीं देख पाते हैं ॥ ८१ ॥ और यह भी देखते हैं कि चतुर्मुख, पञ्चमुख, शतमुख वाले देवता (श्रीचरणों पर) पड़े हुए हैं और शुक, नारदादि बहुत डर २ के स्तुति कर रहे हैं ॥ ८२ ॥ गंगा देवी जैसी कोई एक सुन्दर रमणी मकर वाहन रथ पर से उतर करके दण्डवत प्रणाम कर रही है ॥ ८३ ॥ फिर देखते हैं कि सहस्त्र-वदन शेष जी स्तुति कर रहे हैं तथा चारों ओर ज्योतिर्मय देवताएँ दिखाई देते हैं ॥ ८४ ॥ उधर से दृष्टि फिरी तो देखते हैं कि अपने पाँवों के ही नीचे हजारों देवता पड़े हुए 'कृष्ण' 'कृष्ण' कह रहे हैं ॥ ८५ ॥ पूजा के समय जिन देवताओं का वे ध्यान किया करते थे आज वे चारों ओर अपने पाँवों के ही नीचे पड़े हुए दिखाई दे रहे हैं ॥ ८६ ॥ ऐसा अद्भुत रहस्य देख कर श्री अद्वैत दण्डवत् प्रणाम को छोड़, हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए ॥ ८७ ॥ तो देखते हैं कि सात २ फण वाले महानाग का समूह अपनी फणारूपी सब बाहुओं को ऊपर उठा कर स्तुति कर रहे हैं ॥ ८८ ॥ आकाश दिव्यरथों से भर गया है, और गज, हंस, अश्वादिकों ने वायु का मार्ग ही रोक लिया है ॥ ८९ ॥ और भी देखते हैं कि कोटि २ नाग-पत्नियाँ अश्रुपूर्ण नेत्रों से "कृष्ण" "कृष्ण" कह कर स्तुति करती हुई विद्यमान हैं ॥ ९० ॥ पृथ्वी और आकाश में खाली स्थान नहीं रहा—महर्षियों के झुण्ड के झुण्ड भी आस पास पड़े हुये हैं ॥ ९१ ॥ प्रभु की इस महान् ठकुराई के दर्शन करके पति-पत्नी दोनों बड़े भारी सम्भ्रम को प्राप्त हुए और कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हुए ॥ ९२ ॥ तब परम दयालु मति वाले प्रभु विश्वम्भर श्री अद्वैत की ओर देख करके बोले ॥ ९३ ॥ "तुम्हारे सङ्कल्प को पूर्ण करने के लिए ही मैं अवतीर्ण हुआ हूँ। तुमने मेरी बड़ी भारी आराधना की है ॥ ९४ ॥ "मैं क्षीर-सागर के भीतर सो रहा था परन्तु तेरे प्रेम की हुँकारों से मेरी निद्रा भंग हो गयी ॥ ९५ ॥ "जीवों के दुःख को देखकर जब उसे तुम नहीं सह सके, तो सब जीवों का उद्धार करने के लिए तुम मुझे ले आये ॥ ९६ ॥ "चारों ओर तुमने जो ये सब मेरे गण देखे इन सबका जन्म तुम्हारे कारण हो

जतेक देखिले चतुर्दिगे मोर गण । सभार हइल जन्म तोमार कारण ॥९७॥
जे वैष्णव देखिते ब्रह्मादि भावे मने । तोमा' हैते ताहा देखिबेक सर्व-जने ॥९८॥
राम किरि राग–एतेक प्रभुर वाक्य अद्वैत शुनिञा ।
उर्द्ध वाहु करि कान्दे सस्त्रीक हइया ॥९९॥
"आजि से सफल मोर दिन परकाश । आजिसे सफल कैलु जत अभिलाष ॥१००॥
आजि मोर जन्म कर्म सकल सफल । साक्षाते देखिलु तोर चरण जुगल ॥१०१॥
घोषे' मात्र चारि-वेद, जारे नाहि देखे । हेन तुमि मोर लागि हैला परतेखे ॥१०२॥
मोर किछु शक्ति नाहि तोमार करुणा । तोमा' वइ जीव उद्धारिव कोन् जना" ॥१०३॥
वलिते वलिते प्रेमे भासेन आचार्य । प्रभु वोले "आमार पूजार कर कार्य ॥१०४॥
पाइया प्रभुर आज्ञा परम-हरिषे । चैतन्य चरण पूजे अशेष विशेषे ॥१०५॥
प्रथमे चरण धुइ सुवासित जले । शेषे गन्धे परिपूर्ण पाद पद्मे ढाले ॥१०६॥
चन्दने डुबाइ दिव्य तुलसी मञ्जरी । अर्घ्येर सहित दिला चरण-उपरि ॥१०७॥
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, पञ्च-उपचारे । पूजा करे, प्रेम जले वहे महा धारे ॥१०८॥
पञ्च शिखा ज्वालि पुन करेन वन्दना । शेषे जय जय ध्वनि करये घोषणा ॥१०९॥
करिया चरण-पूजा षोडशोपचारे । आर वार दिला माल्य वस्त्र अलङ्कारे ॥११०॥
शास्त्र दृष्ट्ये पूजा करे पटल–विधाने । एइ श्लोक पढ़ि करे दण्ड परणामे ॥१११॥
तथाहि–नमो ब्रह्मण्य देवाय गो ब्राह्मण हिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥११२॥

हुआ है ॥ ९७ ॥ "जिन वैष्णवों के दर्शन करने के लिये ब्रह्मादिक मनमें कामना ही किया करते हैं, उनको, तुम्हारे कारण, अब सब लोग देख पायेंगे ॥ ९८ ॥ रामकली राग॥ प्रभु के इन वचनों को सुनकर श्रीअद्वैत भुजा उठा कर स्त्री सहित रोने लगे ॥ ९९ ॥ और कहने लगे कि–"आज ही मेरे लिये दिन का प्रकाश सफल हुआ–कारण कि आज मेरी समस्त अभिलाषाएँ सफल हुई ॥ १०० ॥ "आज मेरे जन्म-कर्म सब सफल हुये जो कि आज मैंने तुम्हारे युगल चरणों के साक्षात् दर्शन किये ॥ १०१ ॥ "जिनकी घोषणा मात्र ही वेद करते हैं परन्तु जिनको देख नहीं पाते हैं, ऐसे आप मेरे लिये प्रत्यक्ष गोचर हुए हैं ॥ १०२ ॥ "आप जो प्रकट हुये हैं, यह कोई मेरी शक्ति से नहीं–यह तो केवल आप को करुणा है । आपके बिना कौन जीवों का उद्धार कर सकता है ?" ॥ १०३ ॥ इस प्रकार कहते २ आचार्य देव प्रेम में बह चले तब प्रभु बोले "मेरी पूजा का कार्य करो" ॥ १०४ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर आचार्यदेव महान् हर्ष के साथ श्रीचैतन्यचन्द्र के श्री चरणों की पूजा अशेष-विशेष प्रकार से करने लगे ॥ १०५ ॥ पहले सुगन्धित जल से श्रीचरणकमलों को धो कर उनपर गन्ध-द्रव्य लेपन किया ॥ १०६ ॥ फिर दिव्य तुलसी की मंजरी को चन्दन में डुबो कर अर्घ्य के साथ चरण कमलों पर चढ़ाया ॥ १०७ ॥ आप, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि पञ्चोपचार से श्री चरणों की पूजा कर रहे हैं और आप के नेत्रों से प्रेम जल की महाधाराएँ बह रही हैं ॥ १०८ ॥ फिर पाँच बत्ती जला कर आप प्रभु की आरती उतारते हैं और फिर प्रणाम करते हैं । अन्त में आप जय-जयकार की ध्वनि करते हैं ॥ १०९ ॥ अब फिर षोडशोपचार से श्रीचरणों की पूजा करके दुबारा माला, वस्त्र, अलङ्कार अर्पण करते हैं ॥ ११० ॥ शास्त्रोक्त तंत्र विधि के अनुसार पूजा करके इस श्लोक को पढ़ते हुए दण्डवत् प्रणाम करते हैं ॥ १११ ॥ गो-ब्राह्मण हितकारी के लिये नमस्कार है । जगत्-हितकारी श्रीकृष्ण के

एइ श्लोक पढ़ि आगे नमस्कार करि। शेषे स्तुति करे नाना शास्त्र-अनुसारि ॥११३॥
"जय जय सर्व प्राण नाथ विश्वम्भर। जय जय गौरचन्द्र करुणा सागर ॥११४॥
जय जय भकत-वचन-सत्यकारी। जय जय महाप्रभु महा—अवतारी ॥११५॥
जय जय सिन्धु सुता-रूप-मनोरम। जय जय श्रीवत्स—कौस्तुभ-विभूषण ॥११६॥
जय जय हरे-कृष्ण-मंत्रे र प्रकाश। जय जय निज-भक्ति-ग्रहण विलास ॥११७॥
जय जय महाप्रभु अनन्त शयन। जय जय जय सर्व जीवेर शरण ॥११८॥
तुमि विष्णु तुमि कृष्ण तुमि नारायण। तुमि मत्स्य तुमि कूर्म तुमि सनातन ॥११९॥
तुमिसे वराह प्रभु, तुमि से वामन। तुमि कर' जुगे जुगे वेदेर पालन ॥१२०॥
तुमि रक्षः कुल हन्ता जानकी जीवन। तुमि गुह वर दाता अहल्या मोचन ॥१२१॥
तुमि से प्रहलाद लागि कैले अवतार। हिरण्य वधिया नरसिंह-नाम जार ॥१२२॥
सर्व देव चूड़ामणि तुमि द्विजराज। तुमि से भोजन कर' नीलाचल माझ ॥१२३॥
तोमारे से चारि-वेदे बुले अन्वेषिया। तुमि एथा आसि रहियाछ लुकाइया ॥१२४॥
लुकाइते बड़ प्रभु तुमि महा धीर। भक्त जन धरि तोमा' करये वाहिर ॥१२५॥
सङ्कीर्तन-आरम्भे तोमार अवतार। अनन्त-ब्रह्माण्डे तोमा' वइ नाहि आर ॥१२६॥
एइ तोर दुइ रवानि चरण कमल। इहारि से रसे गौरी-शङ्कर विह्वल ॥१२७॥
एइ से चरण रमा सेवे' एक मने। इहारि से जश गाय सहस्र वदने ॥१२८॥

लिये नमस्कार है, श्रीब्राह्मणों के पालक श्रीगोविन्द के लिये नमस्कार है ॥ ११२ ॥ पहले यह श्लोक पढ़ करके नमस्कार किया पश्चात् नाना शास्त्रानुसार स्तुति करने लगे ॥ ११३ ॥ "हे सर्व प्राणनाथ विश्वम्भर देव! आपकी जयहो-जयहो। हे करुणासागर गौरचन्द्र। आपकी जय हो जय हो ॥ ११४ ॥ "हे भक्तों के वचन सत्य करने वाले! आपकी जय हो, जय हो! हे महा अवतारी महाप्रभु! आपकी जय हो, जय हो ॥ ११५ ॥ "हे लक्ष्मी के मनको रमाने वाले रूपधारी! आपकी जय हो, जय हो! हे श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि से विभूषित! आपकी जय हो, जय हो ॥ ११६ ॥ "हे हरे कृष्ण मंत्र के प्रकाशक! आपकी जय हो, जय हो! अपनी भक्ति आप ही ग्रहण करना—यह भी आपका विलास है! ऐसे आपकी जय हो, जय हो ॥ ११७ ॥ "हे शेष शायी महाप्रभो! आपकी जय हो, जय हो हे सर्व जीवों के आश्रय आपकी जय हो जय हो ॥११८। "तुम विष्णु हो, तुम कृष्ण हो, तुम नारायण हो, तुम मत्स्य हो, तुम कूर्म भगवान हो, तुम ही सनातन हो, तुम वही वराह प्रभु हो, वही वामन भगवान हो, तुम ही युग २ में वेद का पालन करते हो ॥११९॥ ॥१२०॥ "तुम ही राक्षस कुल के नाश करने वाले जानकी जीवन श्रीराम हो! तुम ही निषादराज गुह के वरदाता और अहल्या के उद्धार कर्त्ता हो ॥१२१॥ "तुमने ही प्रह्लाद के लिये अवतार लियाथा—और हिरण्यकश्यप का वध किया था। तब तुम्हारा ही नाम नृसिह पड़ा था ॥१२२॥ 'हे द्विजराज तुम ही सब देवताओं के चूड़ामणि स्वरूप हो! तुमही नीलाचल (जगन्नाथपुरी) में ही भोजन करते हो ॥१२३॥ तुम्हें ही चारों वेद ढूंढते फिरते हैं सो तुम यहाँ आकर छिपे बंठे हो ॥१२४॥ "छिपने में तुम प्रभू बड़े ही धीर-वीर हो परन्तु भक्तजन भी तुमको ढूँढ कर निकाल ही तो लेते हैं ॥१२५॥ तुह्मारा अवतार संकीर्तन आरम्भ करने के लिये ही हुआ है—अनन्त ब्रह्माण्डों में तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥१२६॥ "ये जो तुम्हारे युगल चरण कमल हैं इनके रसास्वादन में ही श्री गौरीशङ्कर विह्वल रहते हैं ॥ १२७ ॥ "ये ही वे श्री चरण हैं कि जिनकी लक्ष्मीजी एकाग्रचित्त से सेवा करती हैं, और इन्हीं के यश को सहस्र वदन शेष जी गाया करते हैं ॥१२८॥

इइसे चरण ब्रह्मा पूजये सदाय। श्रुति स्मृति पुराणे इहारि तत्त्व गाय ॥१२९॥
सत्य लोक आक्रमिल एइ से चरणे। वलि शिर धन्य हैल इहार अर्पणे ॥१३०॥
एइ से चरण हैते गङ्गा-अवतार। शङ्कर धरिला शिरे महावेग जार" ॥१३१॥
कोटि वृहस्पति जिनि अद्वैतेर वुद्धि। भाल मते जाने सेइ चैतन्येर शुद्धि ॥१३२॥
वर्णिते वदन भासे नयनेर जले। पड़िला दीघल हइ चरणेर तले ॥१३३॥
सर्व भूत अन्तर्जामी श्रीगौराङ्ग राय। चरण तुलिया दिला अद्वैत-माथाय ॥१३४॥
चरण अर्पण शिरे करिला जखन। 'जय जय' महा ध्वनि हइल तखन ॥१३५॥
अपूर्व देखिया सभे हइला विह्वल। 'हरि हरि' वलि सभे करे कोलाहल ॥१३६॥
गड़ागड़ि जाय केहो माल साट् मारे। कारो गला धरि केहो कान्दे उच्चै स्वरे ॥१३७॥
सस्त्रीके अद्वैत हैला पूर्ण-मनोरथ। पाइया चरण शिरे पूर्व-अभिमत ॥१३८॥
अद्वैतेरे आज्ञा कैला प्रभु विश्वम्भर। "आरे नाढ़ा! आमार कीर्त्तने नृत्य कर। १३९॥
पाइया प्रभुर आज्ञा आचार्ज गोसाञि। नाना भक्ति जोगे नृत्य करे सेइ ठाञि ॥१४०॥
उठिल कीर्तन ध्वनि अति-मनोहर। नाचेन अद्वैत गौर चन्द्रेर गोचर ॥१४१॥
क्षणे वा विशाल नाचे, क्षणे वा मधुर। क्षणे वा दशने तृण करये प्रचुर ॥१४२॥
क्षणे क्षणे उठे, क्षणे पड़ि गड़ि जाय। क्षणे घनश्वास वहे, क्षणे मूर्च्छा पाय ॥१४३॥
जे कीर्तन जखन शुनये-से-इ हये। एक भावे स्थिर नहे आनन्दे भासये ॥१४४॥

"इन्हीं श्रीचरणों की सदा ब्रह्माजी पूजा किया करते हैं—इनके ही तत्त्व को श्रुति-स्मृति पुराण सब वर्णन करते हैं ॥ १२९ ॥ "इन्ही श्रीचरणों ने सत्यलोक आक्रमण किया था और इनके अर्पण करने से ही राजा बलि का शिर धन्य हुआ था ॥ १३० ॥ "इन्हीं श्रीचरणों से गङ्गाजी का अवतार हुआ है जिनके महान् वेग को महादेव जी ने अपने शीश पर धारण किया था ॥ १३१ ॥ श्रीअद्वैताचार्य की बुद्धि करोड़ों वृहस्पतियों की बुद्धि को भी जीतने वाली है—वे श्री चैतन्यदेव के तत्त्व को भली भाँति जानते हैं ॥ १३२ ॥ स्तुति करते हुए उनका मुख मंडल नेत्रों के अश्रुजल से भीग गया और वे श्री चरणों के तले लम्बे होकर पड़ गये ॥ १३३ ॥ सर्व प्राणियों के अन्तर्यामी श्री गौरांगराय ने अपना चरण उठाकर अद्वैत के शीश पर रख दिया ॥ १३४ ॥ शीश पर चरण अर्पण करते ही "जय जय" महाध्वनि होने लगी ॥ १३५ ॥ इस अपूर्व चरित्र को देख कर सब विह्वल हो गये—और "हरि हरि" कहते हुए कोलाहल करने लगे ॥ १३६ ॥ कोई भूमि पर लोट पोट हो गये तो कोई ताल ठोंकते हुए उछलने लगे और कोई किसी का गला पकड़ कर जोर २ से रोने लगे ॥ १३७ ॥ पूर्व के अपने सङ्कल्प के अनुसार श्री चरणों को अपने मस्तक पर लाभ करके श्री अद्वैताचार्य स्त्री सहित पूर्ण मनोरथ को हो गये ॥ १३८ ॥ तब प्रभु विश्वम्भर श्री अद्वैत को आज्ञा करते हुए बोले—"आ नाड़ा! मेरे कीर्त्तन में नृत्य कर" ॥ १३९ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर आचार्य गुसांई वहीं पर नाना प्रकार के भक्ति भावों को प्रकट करते हुए नृत्य करने लगे। १४० ॥ तब तो कीर्त्तन की अति मनोहर ध्वनि होने लगी और अद्वैताचार्य प्रभु के सन्मुख नाचने लगे ॥ १४१ ॥ वे क्षण में तो जोरदार नृत्य करते हैं, क्षण में मधुर नृत्य करते हैं, और क्षण में दाँतों में बहुत से तिनकों को उठा लेते हैं ॥ १४२ ॥ वे क्षण २ में उठते हैं, क्षण २ में गिर कर लोट पोट हो जाते हैं, क्षण में लम्बी २ साँस लेते हैं और क्षण में मूर्च्छित हो जाते हैं ॥ १४३ ॥ जिस समय जो कीर्त्तन सुनते हैं उस समय वैसा ही हो जाते हैं, एक भाव में स्थिर ही नहीं रह सकते हैं बस आनन्द में बहे ही जाते हैं ॥ १४४ ॥ अन्त में केवल दास

अवशेषे आसि सबे रहे दास्य भाव। वुझन ना जाय सेइ अचिन्त्य-प्रभाव ।।१४५।।
धाइया धाइया जाय ठाकुरेर पाशे। नित्यानन्द देखिया भ्रकुटि करि हासे ।।१४६।।
हासि बोले "भाल हैल आइला निताइ। एत दिन तोमार नागालि नाहि पाइ ।।१४७।।
जाइवा कोथाय आजि राखिमु वान्धिया। क्षणे वोले "प्रभु" क्षणे वोले "माता लिया" ।।१४८।।
अद्वैत-चरित्रे हासे नित्यानन्द-राय। एक मूर्त्ति, दुइ भाग, कृष्णेर लीलाय ।।१४९।।
पूर्वे वलियाछि नित्यानन्द नाना रूपे। चैतन्येर सेवा करे अशेष-कौतुके ।।१५०।।
कोनो रूपे कहे कोनो रूपे करे ध्यान। कोनो रूपे छत्र शय्या, कोनो रूपे गान ।।१५१।।
नित्यानन्द-अद्वैत अभेद प्रेम जान'। एइ अवतारे जाने से-इ भाग्यवान् ।।१५२।।
जे किछु कलह-लीला देखह दोंहार। से सव अचिन्त्य रङ्ग—ईश्वर व्यभार ।।१५३।।
ए-दुइर प्रीति जेन अनन्त-शङ्कर। दुइ कृष्ण चैतन्येर प्रिय-कलेवर ।।१५४।।
जे ना वूझि दोंहार कलह-पक्ष धरे। एक वन्दे,' आर निन्दे,' सेइ जन मरे ।।१५५।।
अद्वैतेर नृत्य देखि वैष्णव-सकल। आनन्द सागरे मग्न हइला केवल ।।१५६।।
हइल प्रभुर आज्ञा-रहिवार तरे। ततक्षणे रहिलेन आज्ञा धरि शिरे ।।१५७।।
आपन गलार माला अद्वैतेरे दिया। "वर माग' वर माग" वोलेन हासिया। १५८।।
शुनिञा अद्वैत किछु ना करे उत्तर। "माग' माग" पुनः पुन वोले विश्वम्भर ।।१५९।।
अद्वैत वोलये "आर कि मागिमु वर। जेवर चाहिलुँ ताहा पाइलुँ सकल ।।१६०।।

भाव रह जाता है (वास्तव में) भाव का प्रभाव अचिन्त्य है, समझ में नहीं आ सकता है ।। १४५ ।। वे दौड़ २ कर महाप्रभु के पास जाते हैं और नित्यानन्द जी को देख भौंह टेडी करके हँसते हैं ।। १४६ ।। और कहते हैं–कि अच्छा हुआ निताई जो तुम आ गये–इतने दिन तक तुम्हारा पता ही नहीं था ।। १४७ ।। "अब जाओगे कहाँ ? आज तो बाँध कर रक्खूँगा"। क्षण में तो (निताई से) 'प्रभु' कह कर बोलते है और क्षण में उनको "मतवाला" कहते हैं ।। १४८ ।। अद्वैत के इन चरित्रों पर नित्यानन्दराय हँसते हैं। (गौर) कृष्ण की लीला में ये दोनों (निताई और अद्वैत) एक ही मूर्ति के तो दो भाग हैं ।। १४९ ।। हम पहले ही कह आये हैं कि श्रीनित्यानन्द नाना रूप में, अशेष कौतुक के साथ, श्री चैतन्यचन्द की सेवा करते हैं ।। १५० ।। किसी रूप में बोलते हैं, किसी रूप में ध्यान करते हैं, किसी रूप में छत्र और सेज हैं, तो किसी रूप में गुणगान करते हैं ।। १५१ ।। नित्यानन्द और अद्वैत में भेद रहित प्रेम जानों। ऐसा जो इनको इस अवतार में जानता है वही भाग्वान है ।। १५२ ।। इन दोनों में जो कुछ कलह-लीला देखने में आती है, वह सब ईश्वर के व्यवहार के कौतुक विनोद हैं जो अचिन्त्य हैं–प्राकृत मन–बुद्धि के अगम्य हैं ।। १५३ ।। इन दोनों की प्रीति ऐसी है जैसी शेष जी और शङ्कर जी की परस्पर में है। दोनों ही श्रीकृष्ण-चैतन्य के प्रिय कलेवर हैं ।। १५४ ।। जो इस तत्त्व को न समझ कर इन दोनों के कलह में किसी एक का भी पक्ष लेता हैं और एक की वन्दना और दूसरे की निन्दा करना है, वह (महदपराध के कारण) मरता है ।। १५५ ।। श्री अद्वैत के नृत्य को देखकर सब बैष्णव लोग सर्वथा आनन्द सागर में डूब गये ।। १५६ ।। तब श्रीअद्वैत के लिये वहीं ठहरने की आज्ञा प्रभु की हुई–तत्काल उस आज्ञा को शिरोधार्य करके वे ठहर गये ।। १५७ ।। प्रभु ने भी अपने गले की माला उनको देकर हँसते २ "वर माँगो–वर माँगो" कहा ।। १५८ ।। अद्वैताचार्य सुनकर के भी कुछ उत्तर नहीं देते हैं और प्रभु विश्वम्भर बार २ "माँगो" ही कहते हैं ।। १५९ ।। अन्त में अद्वैताचार्य बोले–"मैं अब क्या वर माँगू ? मैंने तो जो वर चाहा था, वह सम्पूर्ण पा ही लिया ।। १६० ।।

तोमारे साक्षात् करि आपने नाचिलु ँ। चितेर अभीष्ट जत सकलि पाइलु ँ ॥१६१॥
कि चाहिमु प्रभु ! किवा शेष आछे आर। साक्षाते देखिलु ँ प्रभु ! तोर अवतार ॥१६२॥
कि चाहिमु किवा नाहि जानह आपने। किवा नाहि देख तुमि दिव्य-दरशने" ॥१६३॥
माथा दुलाइया वोले प्रभु विश्वम्भर। तोमार निमित्त आमि हइलु ँ गोचर ॥१६४॥
घरे घरे करिमु कीर्त्तन परचार। मोर जशे नाचे जेन सकल संसार ॥१६५॥
व्रह्मा-भव-नारदादि जारे तप करे। हेन भक्ति विलाइमु वलिलु तोमारे" ॥१६६॥
अद्वैत वोलेन "जदि भक्ति विलाइवा। स्त्री शूद्र-आदि जत मूर्खेरे से दिवा ॥१६७॥
विद्या-धन-कुल-आदि तपस्यार मदे। तोर भक्त तोर भक्ति जे जे जन वाधे ॥१६८॥
से पापिष्ठ-सव देखि मरुक पूड़िया। चाण्डाल नाचुक तोर नाम गुण गाय्या" ॥१६९॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि करिला हुङ्कार। प्रभु वोले "सत्य जे तोमार अङ्गीकार" ॥१७०॥
ए सब वाक्येर साक्षी—सकल संसार। मूर्ख नीच प्रति कृपा हइल ताहार ॥१७१॥
चाण्डालादि नाचये प्रभुर गुण ग्रामे। भट्ट, मिश्र, चक्रवर्त्ती सवे निन्दा जाने ॥१७२॥
ग्रन्थ पढ़ि मुण्ड मूड़ि' कारो वुद्धि-नाश। नित्यानन्द निन्दे' वृथा जाइवारे नाश ॥१७३॥
अद्वैतेर वोले प्रेम पाइल जगते। ए सकल कथा कहि मध्य खण्ड हैते ॥१७४॥
चैतन्य-अद्वैते जत हैल प्रेम-कथा। सकल जानेन सरस्वती जगन्माता ॥१७५॥
सेइ भगवती सर्व-जनेर जिह्वाय। अनन्त हइया चैतन्येर जश गाय ॥१७६॥
सर्व-वैष्णवेर पा'ये मोर नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥१७७॥

"जब आपका साक्षात्कार करके आपके सामने नाच लिया तो मन के सब ही मनोरथ पा चुका ॥ १६१ ॥ "जब प्रभो ! साक्षात् आप के अवतार के दर्शन कर लिये तो अब क्या माँगू—ओर रह भी क्या गया माँगने को ॥ १६२ ॥ "क्या इस वात को आप नहीं जानते हैं—आप अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा क्या नहीं देखते" ॥ १६३ ॥ तब प्रभु विश्वम्भर शिर हिलाते हुए बोले-तुम्हारे निमित्त ही मैं प्रकट हुआ हूँ" ॥ १६४ ॥ "मैं घर २ में कीर्त्तन का प्रचार करूँगा जिससे कि मेरे यश को गाकर सारा संसार नाच उठे ॥ १६५ ॥ "ब्रह्मा शिव, नारदादि जिस भक्ति के लिये तप करते हैं, ऐसी भक्ति मैं सब को लुटाऊँगा—यह मै तुमसे कहे देता हूँ" ॥ १६६ ॥ अद्वैताचार्य जी बोले—"यदि भक्ति आप लुटावें तो स्त्री, शूद्र, मूर्ख और नीच जाति को वह देवें ॥ १६७ ॥ "जो लोग विद्या, धन, कुल एवं तपस्या के अभिमान में आकर आपके भक्त और आपकी भक्ति को वाधा पहुँचावें ॥ १६८ ॥ "वे सब पापी लोग देख २ कर डाह से जल मरें और चण्डाल आपके नाम और गुण को गा गा कर नाचें" ॥ १६९ ॥ श्री अद्वैत प्रभु के वचन को सुनकर प्रभु ने हुँकार दिया और बोले—"तुम्हें जो स्वीकार है वही होगा ॥ १७० ॥ (ग्रंथकार वचन) इन सब वाक्यों का साक्षी सारा संसार है। मूर्ख और नीच जनों पर ही प्रभु की विशेष कृपा हुई है ॥ १७१ ॥ प्रभु के गुण को गा कर चाण्डाल आदि तो नाचते हैं और भट्ट, मिश्र चक्रवर्त्ती—ये केवल निन्दा करना ही जानते हैं ॥१७२॥ ग्रंथ पढ़कर और शीश मुड़ाकर किसी २ की तो वुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो गई है कि वे अपने सर्वनाश के लिये श्री नित्यानन्द प्रभु की निन्दा करते हैं ॥ १७३ ॥ श्री अद्वैताचार्य के प्रार्थना करने पर जगत् को प्रेम प्राप्त हुआ—यह सब कथा इस मध्यखण्ड में कहते हैं ॥ १७४ ॥ श्री चैतन्यदेव और अद्वैत प्रभु में जितनी कुछ प्रेम-वार्ता हुई, वह सब जगन्माता सरस्वती जानती हैं ॥ १७५ ॥ वही भगवती सब जनों की जिह्वा पर अनन्त होकर श्री चैतन्य चन्द्र का यश गान करती हैं ॥ १७६ ॥ समस्त वैष्णवों के चरणों में मेरा नमस्कार

सस्त्रीके आनन्द हैला आचार्ज गोसाञि। अभिमत पाइया रहिला सेइ ठाञि ॥१७८॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥१७९॥

अथ सातवाँ अध्याय

नाचेरे चैतन्य गुण निधि। असाधने चिन्ता मणि हाथे दिल विधि ध्रु० ॥१॥
जय जय श्रीगौर सुन्दर सर्व-प्राण। जय नित्यानन्द–अद्वैतेर प्रेम धाम ॥२॥
जय श्रीजगदानन्द–श्री गर्भ-जीवन। जय पुण्डरीक विद्या निधि–प्रेम धन ॥३॥
जय जगदीश-गोपी नाथेर ईश्वर। जय हउ जत गौरचन्द्र–अनुचर ॥४॥
हेन मते नवद्वीपे श्रीगौराङ्ग राय। नित्यानन्द सङ्गे रङ्ग करेन सदाय ॥५॥
अद्वैत लइया सर्व-वैष्णव–मण्डल। महा-नृत्य-गीत करे कृष्ण कोलाहल ॥६॥
नित्यानन्द रहि लेन श्रीवासेर घरे। निरन्तर वाल्य भाव, आन नाहि स्फुरे ॥७॥
आपनि तुलिया हाथे भात नाहि खाय। पुत्र-प्राय करि अन्न मालिनी जो गाय ॥८॥
इवे शुन श्रीविद्या निधिर आगमन। 'पुण्डरीक' नाम–श्रीकृष्णेर प्रियतम ॥९॥
प्राच्य-भूमि चाटि ग्राम धन्य करि वारे। तथा ताने अवतीर्ण करिला ईश्वरे ॥१०॥
नवद्वीपे करि लेन ईश्वर प्रकाश। विद्या निधि ना देखिया छाड़े प्रभु श्वास ॥११॥

है–उनके चरणों में मेरा कोई अपराध न होवे ।। १७७ ।। इस प्रकार आचार्य गुसांई स्त्री सहित बड़े आनन्द को प्राप्त हुए और मनो वांछित फल पा करके वहीं ठहर गये ।। १७८ ।। श्री कृष्ण चैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द चन्द्र को वृन्दावन दास अपना सर्वस्व जानकर उनके चरण युगल में उन्हीं का गुण गा गा करके निवेदन करता हूँ ।। १७९ ।।

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे श्री अद्वैत मिलनं नाम षष्ठोऽध्याय ।।

गुणनिधि श्रीचैतन्यचन्द्र नाच रहे हैं। अहो! विधाता ने हमारे हाथ में विना कुछ साधन किये ही, यह चिन्तामणि पकड़ा दी ।। १ ।। सर्व-प्राण-स्वरूप श्रीगौर सुन्दर की जय हो, जय हो। नित्यानन्द और अद्वैत के प्रेम धाम (प्रभु) की जय हो ।। २ ।। श्रीजगदानन्द और श्रीगर्भ भक्त के जीवन स्वरूप (प्रभु) की जय हो, जय हो। पुण्डरीक विद्या विधि के प्रेमधन (गौर) की जय हो ।। ३ ।। श्री जगदीश और गोपीनाथ भक्त के ईश्वर की जय हो। गौरचन्द्र के जितने भी अनुचर भक्त हैं, उन सब की जय हो ।। ४ ।। इस प्रकार नवद्वीप में श्रीगौरांगराय श्री नित्यानन्द के साथ नित्य लीला-कौतुक करते हैं ।। ५ ।। और सब वैष्णवमण्डली श्री अद्वैत प्रभु को लेकर नृत्य-गीत द्वारा कृष्ण नाम का महा कोलाहल करते हैं ।। ६ ।। श्रीनित्यानन्द जी श्रीवास पण्डित के घर में ठहरे हुये हैं। आप निरन्तर बाल भाव में रहते हैं, दूसरे भाव की उनमें स्फूर्ति ही नहीं होती है ।। ७ ।। वे अपने हाथ से तो भात भी उठा कर मुँह में नहीं देते हैं। श्रीमालिनी देवी (श्रीवास की पत्नी) उनको पुत्र समान मानती हैं और अपने हाथों उनको भात खिलाती हैं ।। ८ ।। अब श्री पुण्डरीक विद्यानिधि का आगमन वृत्तान्त सुनो। 'पुण्डरीक' नाम श्रीकृष्ण को बड़ा ही प्यारा है ।। ९ ।। पूर्व देश के चटगाँव भूमि को धन्य करने के लिये प्रभु ने वहाँ उनको जन्म दिया ।। १० ।। जब नवद्वीप में प्रभु ने अपना ऐश्वर्य रूप का प्रकाश किया, तो वहाँ विद्या निधि को न देख कर (एक दिन) लम्बी २ साँसें छोड़ने लगे ।। ११।। एक दिन प्रभु गौरराय नृत्य करके बैठे तो "पुण्डरीक"

नृत्य करि उठिया-वसिला गौर राय। 'पुण्डरीक' नाम वलि कान्दे उच्च-रा'य ॥१२॥
"पुण्डरीक आरे मोर बापरे वन्धुरे। कवे तोमा' देखिव आरे रेवापरे ॥१३॥
हेन चैतन्येर प्रिय पात्र विद्या निधि। हेन सव भक्त प्रकाशिला गौर-निधि ॥१४॥
प्रभु से क्रन्दन करे तान नाम लैया। भक्त सव केहो किछु नाहि वुझे इहा ॥१५॥
सभे वोले "पुण्डरीक' वोलेन कृष्णेरे"। विद्या निधि-नाम शुनि सभेइ विचारे' ॥१६॥
'कोन प्रिय भक्त' इहा सभे वुझि लेन। वाह्य हैले प्रभु स्थाने सभे वलि लेन ॥१७॥
"कौन भक्त लागि प्रभु! करह क्रन्दन। सत्य आमा' सभा' प्रति करह कथन ॥१८॥
आमा' सभाकार भाग्य हउ ताने जानि। तार जन्म-कर्म कोबा कह प्रभु! शुनि ॥१९॥
प्रभु वोले "तोमरा सकल भाग्यवान्। शुनिते हइल इच्छा ताहार आख्यान। २०॥
परम-अद्भुत ताँर सकल-चरित्र। ताँर नाम श्रवणेओ संसार पवित्र ॥२१॥
विषमीर प्राय ताँर परिच्छेद सव। चिनिते ना पारे केहो तिहों जे वैष्णव ॥२२॥
चाटि ग्रामे जन्म, विप्र परम-पण्डित। परम-साचार सर्व-लोके अपेक्षित ॥२३॥
कृष्ण भक्ति-सिन्धु-माझे भासे निरन्तर। अश्रु, कम्प, पुलक वेष्टित कलेवर ॥२४॥
गङ्गा स्नान ना करेन पाद स्पर्श-भये। गङ्गा दरशन करे निशिर समये ॥२५॥
गङ्गाय जे सव लोक करे अनाचार। कुल्लोल, दन्त धावन, केश संस्कार ॥२६॥
ए सकल देखिया पायेन मने व्यथा। एतेके देखेन गङ्गा निशाय सर्व्वथा ॥२७॥
विचित्र विश्वास आर एक शुन तान। देवार्च्चन पूर्व्वे करे गङ्गा जल पान ॥२८॥

२ पुकारते हुये रोने लगे ॥ १२ ॥ "हे मेरे वाप! हे मेरे वन्धु! अरे मेरे पुण्डरीक! अरे! हे! वाप! कब तुमको देख पाऊँगा ॥ १३ ॥ ऐसे प्रिय पात्र हैं। श्री पुण्डरीक विद्या निधि श्रीचैतन्य देव को ऐसे ही सब भक्तों ने ही तो श्रीगौर निधि को प्रकट कराया है ॥ १४ ॥ उनका नाम ले लेकर प्रभु जो रो रहे हैं—यह सब भक्त लोग कुछ भी नहीं समझ पाते हैं ॥ १५ ॥ वे सब बोले 'पुण्डरीक' तो श्रीकृष्ण को कहते हैं। परन्तु फिर विद्या निधि, नाम सुनकर वे सब सोच-विचार में पड़ जाते हैं ॥ १६ ॥ इतना तो सब समझ गये कि ये कोई प्रिय भक्त हैं। फिर जब प्रभु को वाह्य ज्ञान हो आया तो सब प्रभु से पूछने लगे! ॥ १७ ॥ "हे प्रभो! आप किस भक्त के लिये रुदन करते हैं। हमारे प्रति आप सत्य २ बतावें ॥ १८ ॥ "उनको जानने का सौभाग्य हमको भी मिल जाय। उनके जन्म-कर्म कहाँ हुये हैं—कहिये न प्रभो! हम भी तो सुनें ॥ १९ ॥ तब प्रभु बोले कि "तुम सब बड़े भाग्यवान हो जो उनकी कथा सुनने की तुम्हारी इच्छा हुई है ॥ २० ॥ "उनके चरित्र सब परम अद्भुत हैं, उनके तो नाम को सुन करके भी संसार पवित्र हो जाय ॥ २१ ॥ "(परन्तु) उनकी वेश-भूषा रहन-सहन आदि सब विषयी जनों के जैसे हैं। कोई नहीं पहचान सकता कि ये वैष्णव हैं ॥ २२ ॥ "चटगाँव में उनका जन्म है, विप्र कुल है परम पण्डित हैं, बड़े सुन्दर आचारवाले हैं, लोक समाज में प्रतिष्ठित हैं ॥ २३ ॥ "श्री कृष्ण भक्ति सिन्धु में वे निरन्तर तैरते रहते हैं। उनकी देह अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक भावों से व्याप्त रहती है ॥ २४ ॥ वे पाँव से गंगाजी के छू जाने के भय से गंगा में स्नान भी नहीं करते हैं और गङ्गा के दर्शन भी रात्रि के समय करते हैं ॥ २५ ॥ गङ्गा जी में कुल्ला, दाँतौन, केश-संस्कार आदि जो जो अनाचार लोग करते हैं उसे देखकर उनके चित्त को बड़ा दुख होता है—इसी कारण वे सर्वदा रात्रि में गङ्गा जी का दर्शन किया करते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ उनके और एक विचित्र विश्वास की बात सुनो—वे देव-पूजन से पहले गङ्गाजल पान करते हैं ॥ २८ ॥ गंगा जल पीकर

तवे से करेन पूजा-आदि नित्य कर्म्म । इहा सर्व-पण्डितेरे बुझायेन धर्म्म ॥२९॥
चाटि ग्रामे आछेन, एथाहो वाड़ी आछे । आसिवेन सम्प्रति, देखिवा किछु पाछे ॥३०॥
ताँरे झाट केहो चिनिवारे ना पारि वा । देखिले विषयी' मात्र ज्ञान से करिवा ॥३१॥
ताँरे ना देखिया आमि स्वास्थ्य नाहि पाइ । सभे ताँरे आकर्षिया आनह एथाइ" ॥३२॥
कहि ताँर कथा प्रभु आविष्ट हइला । "पुण्डरीक बाप !" वलि कान्दिते लागिला ॥३३॥
महा-उच्च स्वरे प्रभु रोदन करेन । ताँहार भक्तेर तत्त्व तिंहोसे जानेन ॥३४॥
भक्त तत्त्व चैतन्य गोसाञि मात्र जाने । से-इ भक्त जाने, जारे कहेन आपने ॥३५॥
ईश्वरेर आकर्षण हैल ताँर प्रति । नवद्वीपे आसिते ताँहार हैल मति ॥३६॥
अनेक सेवक सङ्गे अनेक सँभार । अनेक ब्राह्मण सङ्गे शिष्य भक्त आर ॥३७॥
आसिया रहिला नवद्वीपे गूढ़ रूपे । परम-भोगीर प्राय सर्व लोक देखे ॥३८॥
वैष्णव समाजे इहा केहो नाहि शुने । सवे मात्र मुकुन्द जानिला सेइ क्षणे ॥३९॥
श्रीमुकुन्द-वेज-ओझा ताँर तत्त्व जाने । एक सङ्गे मुकुन्देरो जन्म चाटि ग्रामे ॥४०॥
विद्या निधि–आगमन जानिञा गोसाञि । जे हइल आनन्द-ताहार अन्त नाञि ॥४१॥
कोनो वैष्णवेरे प्रभु ना क न' भाङ्गिया । पुण्डरीक आछेन विषयि–प्राय हैया ॥४२॥
जत किछु ताँर प्रेम भक्तिर महत्त्व । मुकुन्द जानेन, आर वासुदेव दत्त ॥४३॥
मुकुन्देर वड़ प्रिय पण्डित गदाधर । एकान्त मुकुन्द ताँर सङ्गे अनुचर ॥४४॥
जथा कार जे वार्ता–कहेन आसि सव । "आजि एथा आइला एक अद्भुत वैष्णव ॥४५॥

के ही वे पूजा आदि नित्य कर्म करते हैं–इसके द्वारा वे पण्डितों को धर्म की शिक्षा देते हैं ॥ २९ ॥ उनका घर चटगाँव में है और यहाँ भी है–कुछ दिन में वे यहाँ आने वाले हैं, तब तुम सब उनके दर्शन कर पाओगे ॥ ३० ॥ शीघ्र ही उनको कोई पहचान नहीं सकता है–जो भी उनको देखेगा, केवल विषयी ही समझेगा ॥ ३१ ॥ उनको देखे बिना मुझे शान्ति नहीं है–अतएव तुम सब उनको आकर्षित करके यहाँ ले आओ ॥ ३२ ॥ उनकी वार्ता करते २ प्रभु आवेश में आ गये और "पुण्डरीक बाबा !" पुण्डरीक बाबा कह कर रोने लगे ॥ ३३ ॥ बड़े ही ऊँचे स्वर से प्रभु रोते हैं । वास्तव में अपने भक्त का तत्त्व वे ही जानते है ॥३४॥ श्री चैतन्य गुसाई ही भक्त-तत्त्व को जानते हैं, अथवा वे भक्त जन जानते हैं कि जिनसे प्रभु स्वयं कह दें ॥ ३५ ॥ (अब क्या हुआ कि) ईश्वर जो गौरचन्द्र है उन्होंने पुण्डरोक विद्या निधि को आकर्षण किया बस फिर तो नवद्वीप आने के लिये उनकी भी इच्छा हो उठी ॥ ३६ ॥ वे बहुत से सेवक साज सामान ब्राह्मण, शिष्य और भक्तों को लेकर नवद्वीप आये और गुप्तरूप से वहाँ निवास करने लगे । सब लोग उनको इक विषय भोगी के समान ही देखते थे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वैष्णव समाज में किसी ने यह बार्ता नहीं सुनी–केवल मात्र एक मुकुन्द को ही तत्काल सब समाचार मिल गया ॥ ३९ ॥ श्रीमुकुन्द वैद्य उपाध्याय उनके तत्त्व को भी जानते हैं क्योंकि मुकुन्द का जन्म उनके साथ ही चटगाँव में हुआ था ॥ ४० ॥ श्रीविद्या निधि के आगमन को जानकर प्रभु को जो आनन्द हुआ उसकी सीमा नहीं है ॥ ४१ ॥ परन्तु प्रभु किसी वैष्णव भक्त के आगे यह भेद प्रकाशित नहीं करते हैं । उधर पुण्डरीक भी एक विषयी पुरुष के समान निवास कर रहे हैं ॥ ४२ ॥ उनकी प्रेम भक्ति का जो कुछ भी महत्त्व है, वह मुकुन्द और वासुदेव दत्त ही जानते हैं ॥ ४३ ॥ इधर पण्डित गदाधर श्री मुकुन्द के बड़े ही प्रिय हैं और मुकुन्द उनके एक अनन्य अनुचर हैं ॥ ४४ ॥ जहाँ जो कुछ बात होती है, मुकुन्द आकर सब उनको सुनाते हैं । (अतएव यह बात भी

गदाधर पण्डित ! शुनह सावधाने । वैष्णव देखिते जे वांछह तुमि मने ॥४६॥
अद्भुत वैष्णव आजि देखाव तोमारे । 'सेवक' करिया जेन स्मङर आमारे" ॥४७॥
शुनि गदाधर बड़ हरिष हइला । सेइ क्षणे 'कृष्ण' वलि देखिते चलिला ॥४८॥
वसिया आछेन विद्या निधि महाशय । सम्मुखे हइल गदाधरेर विजय ॥४९॥
गदाधर पण्डित करिला नमस्कार । वसाइला आसने तारे करि पुरस्कार ॥५०॥
जिज्ञासिला विद्या निधि मुकुन्देर स्थाने । "किवा नाम इँहार थाकेन कोन् ग्रामे ॥५१॥
विष्णु भक्ति तेजोमय देखि कलेवर । आकृति प्रकृति–दुइ परम सुन्दर" ॥५२॥
मुकुन्द वोलेन "श्रीगदाधर' नाम । शिशु हैते संसारे विरक्त भाग्यवान् ॥५३॥
'माधव-मिश्रेर पुत्र' कहि व्यवहारे । सकल वैष्णव प्रीत वासेन इँहारे ।५४॥
भक्ति पथेरत, सङ्ग भक्तेर सहिते । शुनिआ तोमार नाम आइला देखिते" ॥५५॥
शुनि विद्या निधि बड़ सन्तोष हइला । परम गौरवे सम्भाषिबारे लागिला ॥५६॥
बसिया आछेन पुण्डरीक महाशय । राजपुत्र हेन करियाछेन विजय ॥५७॥
दिव्य खट्टा हिङ्गल-पित्तले शोभा करे । दिव्य चन्द्रातप तिन ताहार उपरे ॥५८॥
तहिं दिव्य शय्या शोभे अति-सूक्ष्म–वासे । पट्ट-नेत-वालिश शोभये चारि-पाशे ॥५९॥
वड़-झारि छोट-झारि गुटि पाँच सात । दिव्य पित्तलेर वाटा, पाका पान ता'त ॥६०॥
दिव्य आल वाटि दुइ शोभे दुइ पाशे । पान खाय, गदाधर देखि देखि हासे ॥६१॥
दिव्य मयूरेर पारवा लइ दुइ जने । वातास करिते आछे देहे सर्व क्षणे ॥६२॥

सुनाई कि) "आज एक अद्भुत वैष्णव यहाँ आये हैं ॥ ४५ ॥ " पंडित गदाधर जी ! सावधान होकर सुनो जो तुम्हारे मन में वैष्णव-दर्शन करने की इच्छा हो ॥ ४६ ॥ "तो मैं आज तुमको एक अद्भुत वैष्णव के दर्शन कराऊँगा । मुझे तो तुम अपने एक सेवक के रूप में स्मरण कर लिया करो ॥ ४७ ॥ यह सुनकर गदाधर जी बड़े प्रसन्न हुए और "कृष्ण २" कहते हुए उसी क्षण उनके दर्शन करने के लिये चल पड़े ॥ ४८ ॥ श्री विद्यानिधि महाशय अपने स्थान में बैठे हुए है कि सामने से गदाधर जी का आना हुआ ॥४९॥ आकर उन्होंने नमस्कार किया तो उन्होंने सत्कार पूर्वक उनको आसन पर बैठाया ॥ ५० ॥ फिर विद्या निधि जी ने मुकुन्द से पूछा कि "इनका नाम क्या है ? कौन से गांव में रहते हैं ॥ ५१ । "इनकी देह विष्णु भक्ति के तेज से तेजोमय दिखाई देती है–इनकी आकृती और प्रकृति –दोनों ही परम सुन्दर हैं ॥ ५२ ॥ मुकुन्द जी बोले "इनका नाम श्री गदाधर है–ये बचपन से ही संसार से विरक्त हैं, भाग्यशाली हैं ॥ ५३ ॥ "व्यवहार में ये माधव मिश्र जी के पुत्र कहे जाते हैं । सब वैष्णव इनसे प्रीति करते हैं ॥ ५४ ॥ "ये भक्ति मार्ग में आसक्त हैं और भक्तों का ही संग करते हैं । आपका नाम सुनकर आपके दर्शन को आये हैं ॥५५॥ यह सुन करके विद्या निधि जी को बड़ा सन्तोष हुआ और बड़े आदर के साथ वे गदाधर जी से वार्तालाप करने लगे ।। ५६ ॥ पुण्डरीक महाशय ऐसे बिराजमान हैं मानों तो कहीं के राजकुमार पधारे हों ॥ ५७ ॥ दिव्य पलङ्ग है जो हिंगुल–पीतल से शोभायमान है, उसके ऊपर दिव्य तीन चँदौआ तने हुए हैं ॥ ५८ ॥ पलङ्ग के ऊपर अति झीने वस्त्रों की दिव्य शय्या बिछी हुई है–चारों ओर रेशमी नेत वस्त्र के तकिया शोभा दे रहे हैं ॥ ५९ ॥ पाँच-सात बड़ी छोटी झारियाँ रक्खी हुई हैं पीतल का सुन्दर पानदान रक्खा हुआ है–उसमें पके हुये पान हैं ॥ ६० ॥ पलङ्ग के दोनों ओर दो सुन्दर पीकदानो शोभा दे रही हैं आप पान चबा रहे हैं और गदाधर जी देख २ कर हँस रहे हैं ॥ ६१ ॥ दो जने मोर पंख के सुन्दर पंखों से सब समय उन

चन्दनेर उर्द्ध-पुण्ड तिलक कपाले। गन्धेर सहित तथि फागु विन्दु मिले ॥६३॥
कि कहिव से वा केश भारेर संस्कार। दिव्य गन्ध आमलकी वइ नाहि आर ॥६४॥
भक्तिर प्रभावे देह मदन-समान। जेना चिने तार हय राज पुत्र ज्ञान ॥६५॥
सन्मुखे विचित्र एक दोला साय वान। विषयीर प्राय जेन व्यभार-संस्थान ॥६६॥
देखिया विषयि-रूप देव गदाधर। सन्देह विस्मय किछु जन्मिल अन्तर ॥६७॥
आजन्म-विरक्त गदाधर—महाशय। विद्या निधि प्रति किछु जन्मिल संशय ॥६८॥
"भाल त वैष्णव—सव विषयीर वेश। दिव्य भोग दिव्य वास दिव्य गन्धकेश ॥६९॥
शुनिञा त भाल भक्ति आछिल इहाने। आछिल जे भक्ति सेह गेल दरशने" ॥७०॥
वुझि गदाधर-चित्त श्रीमुकुन्दा नन्द। विद्या निधि प्रकाशिते करिला आरम्भ ॥७१॥
कृष्णेर प्रसादे गदाधर-अगोचर। किछु नाहि, अवेद्य कृष्ण से माया धर ॥७२॥
मुकुन्द सुस्वर बड़—कृष्णेर गायन। पढ़ि लेन श्लोक—भक्ति महिमा वर्णन ॥७३॥
राक्षसी पूतना—शिशु खाइते निर्दया। ईश्वर वधिते गेला काल कूट लैया ॥७४॥
ताहारेओ मातृ-पद दिलेन ईश्वरे। ना भजे अवोध जीव हेन दयालु रे ॥७५॥
पूतना लोक वालघ्नी राक्षसी रुधिराशना। जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गतिं ॥७६॥
शुनि लेन मात्र भक्ति जोगेर स्तवन। विद्या निधि लागि लेन करिते क्रन्दन ॥७७॥
नयने अपूर्व वहे श्रीआनन्द धार। जेन गङ्गा देवीर हइल अवतार ॥७८॥

पर हवा कर रहे हैं ॥ ६२ ॥ मस्तक पर चन्दन का उर्द्ध-पुण्ड तिलक है और तिलक में सुगन्धि युक्त अरुण कुंकुम विन्दु शोभा दे रही हैं ॥ ६३ ॥ उनके सँवारे हुए केशों की शोभा तो भला क्या कहूँ ! केश क्या हैं, दिव्य सुगन्धित आँवले के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ ६४ ॥ भक्ति के प्रभाव से कामदेव के समान सुन्दर देह है जो आपको पहचानता नहीं है वह तो कोई राजकुमार ही समझ बैठता है ॥ ६५ ॥ सामने ही एक छत्रीदार डोला (पालकी) रक्खा हुआ है, (कहाँ तक कहें) आप के व्यवहार के साज सामान सब विषयी पुरुषों के समान हैं ॥ ६६ ॥ ऐसे विषयी रूप को देखकर गदाधर देव के मन में कुछ सन्देह और विस्मय उदय हो आया ॥ ६७ ॥ गदाधर महाशय जन्म से ही विरक्त हैं अतएव विद्या निधि के प्रति कुछ संशय हो ही तो आता है ॥ ६८ ॥ (वे मन में सोचते हैं कि) "अच्छे वैष्णव हैं ये—वेश भूषा तो सब विषयी जैसा है—सुन्दर भोग, सुन्दर वस्त्र सुन्दर सुगन्धित वेश इनका नाम सुन कर तो बड़ी भक्ति इन पर हो आई थी परन्तु दर्शन करके तो वह भक्ति सब चली गई ॥ ६९ ॥ ७० ॥ गदाधर के मनोभाव को समझ कर श्री मुकुन्दानन्द ने श्री विद्यानिधि के स्वरूप को प्रकट करने का एक उपाय किया ॥ ७१ ॥ यद्यपि श्री कृष्ण की कृपा से गदाधर के लिये कुछ अगोचर नहीं है (अतएव विद्या निधि जी के स्वरूप को भी वे जानते हैं) तथापि यह माया धारी श्रीकृष्ण की एक माया हैं जो बुद्धि के गम्य नहीं है ॥ ७२ ॥ मुकुन्द का बड़ा सुरीला कण्ठ है वे श्रीकृष्ण चरित्र के बड़े सुन्दर गायक हैं । उन्होंने भक्ति महिमा-सूचक एक श्लोक पढ़ा ॥ ७३ ॥ (उस का अर्थ यह है कि) बच्चों को खाने वाली बड़ी निर्दयी राक्षसी पूतना कालकूट विष लेकर भगवान् श्रीकृष्ण को मारने को गई । ७४ ॥ परन्तु उसको भी भगवान् ने माता की पदवी दे दी ! अहो ! अबोध जीव ऐसे दयालु प्रभु को भी नहीं भजते हैं ॥ ७५ । ७६ ॥ ७७ ॥ भक्ति योग की इस स्तुति को सुनते ही श्री विद्या निधि जी रोने लगे । नेत्रों से आनन्द की अपूर्व धाराएँ बह चलीं—मानों तो गङ्गा देवी का ही अवतार हो गया हो । ७८ । अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुँकार आदि सब एक ही समय

अश्रु-कम्प-स्वेद-मूर्च्छा-पुलक-हुङ्कार। एक काले हइल सभार अवतार ॥७६॥
'बोल बोल' वलि महा लागिला गर्जिते। स्थिर हैते ना पारिला, पड़िला भूमिते ॥८०॥
लाथि-आछाड़ेर घाये जतेक सम्भार। भाङ्गिल सकल, रक्षा नाहि कारो आर ॥८१॥
कोथा गेल दिव्य वाटा, दिव्य गुया पान। कोथा गेल झारि, जाथे करे जल-पान ॥८२॥
कोथाय पड़िल गिया शय्या पदा घाते। प्रेमा देशे दिव्य वस्त्र चिरे दुइ-हाथे ॥८३॥
कोथा गेल से वा दिव्य केशेर संस्कार। धूलाय लोटाये करे क्रन्दन अपार ॥८४॥
"कृष्णरे ठाकुररे कृष्णरे! मोर प्राण। मोरे से करिला काष्ठ-पाषाण-समान" ॥८५॥
अनुताप करिया कान्दये उच्च स्वरे। "मुञि से वञ्चित हैलुँ हेन अवतारे" ॥८६॥
महा-गड़ा गड़ि दिया जे पड़े आछाड़। सभे मने करे किवा चूर्ण हैल हाड़ ॥८७॥
हेन से हइल कम्प-भावेर विकारे। दश-जन धरिलेओ धरिते ना पारे ॥८८॥
वस्त्र, शय्या, झारि, वाटा जतेक सम्भार। पदा घाते सब गेल, किछु नाहि आर ॥८६॥
सेवक सकल जे करिल सम्वरण। सकले रहिल सेइ व्यवहार-धन ॥६०॥
एइ मते कथो क्षण प्रेम प्रकाशिया। आनन्दे मूच्छित हइ थाकिला पड़िया ॥६१॥
तिल मात्र धातु नाहि सकल-शरीरे। डूविलेन विद्या निधि आनन्द सागरे ॥६२॥
देखि गदाधर महा हइला विस्मित। तखने से मने वड़ हइला चिन्तित ॥६३॥
हेन जनेरे से आमि अवज्ञा करिलुँ। कोन् वा अशुभ क्षणे देखिते आइलुँ ॥६४॥
मुकुन्देरे परम-सन्तोषे करि कोले। सिञ्चि लेन अङ्ग ताँर प्रेमानन्द जले ॥६५॥

में प्रकट हो गए ॥ ७६ ॥ "बोलो," 'बोलो" कह कर वे बड़ी गर्जना करने लगे, और स्थिर न रह सके, पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ८० ॥ उनकी पछाड़ और दुलत्तियों के मारे सारा साज-बाज नष्ट हो गया—कुछ नहीं बच सका ॥ ८१ ॥ 'कहाँ तो गया वह दिव्य पान का डब्बा और कहाँ गई वे दिव्य पान सुपारी और कहाँ गई वह झारी जिससे जल पीते थे ॥ ८२ ॥ पाँवों की ठोकरों से वह सुन्दर बिछौना भी कहीं जा पड़ी प्रेमावेश में वे दोनों हाथों से अपने उन सुन्दर वस्त्रों को चीरने लगे ॥ ८३ ॥ उन दिव्य केशों का संस्कार भी न जाने कहाँ चला गया, अब वे धूल में लोट रहे हैं और अपार क्रन्दन कर रहे हैं !! ८४ ॥ "हे कृष्ण! "हे ठाकुर" "हे कृष्ण" 'हे मेरे प्राण' 'अरे! मुझे तूने काष्ठ-पाषाण के समान बना दिया है' ॥ ८५ ॥ इस प्रकार अनुताप करते हुए ऊँचे स्वर से रोते हैं और कहते हैं—"हाय ! ऐसे अवतार में मैं ही एक वंचित रह गया" ॥ ८६ ॥ भूमि पर लोट-पोट होते हुए जब वे पछाड़ खाकर गिरते हैं, तो सब लोग यही सोचते हैं कि हाय ! इनकी हड्डी-पसली तो कहीं चूर चूर नहीं हो गई ॥ ८७ ॥ और भाव के विकार से शरीर तो ऐसा काँपने लगा कि उसे दश आदमी, पकड़ने पर भी, रोक कर नहीं रख सकते हैं ॥ ८८ ॥ चरणों की चोटों से वस्त्र, बिछौना झारी, डब्बा, आदि साज सामान सब नष्ट-भ्रष्ट हो गये—कुछ नहीं बच रहा ॥८६॥ जो कुछ व्यवहार की वस्तुओं को सेवकों ने सम्हाल लिया, बस वे ही बच रहीं ॥ ६० ॥ इस प्रकार कुछ समय तक प्रेम प्रकाशित करके वे फिर आनन्द से मूर्च्छा भाव को प्राप्त होकर स्थिर पड़ गये ॥ ६१ ॥ समस्त शरीर में तिल भर चेतनता कहीं नहीं रही—विद्या निधि जी तो एक दम आनन्द सागर में डूब गये यह देखकर गदाधर को महान् विस्मय हुआ और तब तो वे मन में बड़ी भारी चिन्ता में पड़ गये ॥ ६३ ॥ "हाय २ ! मैंने ऐसे महापुरुष को अवज्ञा कर डाली ! न जाने मैं किस अशुभ घड़ी में इनके दर्शन को चला" ॥ ६४ ॥ फिर परम संतुष्ट हो करके उन्होंने मुकुन्द को गोद में ले लिया और उसके अंगों को अपने प्रेमाश्रु

"मुकुन्द ! आमार तुमि कैले वन्धु कार्ज। देखाइला भक्ति, विद्या निधि-भट्टाचार्ज ।।६६।।
ए मत वैष्णव किवा आछे त्रिभुवने। त्रैलोक्य पवित्र हय ए भक्त दर्शने ।।६७।।
आजि आमि एड़ाइलुँ परम-सङ्कटे। सेहो जे कारणे तुमि आछिला निकटे ।।६८।।
विषयीर परिच्छेद देखिया उहान। 'विषयि-वैष्णव' मोर चित्ते हैल ज्ञान ।।६६।।
वुझिया आमार चित्त तुमि महाशय। प्रकाशिला पुण्डरीक भक्तिर उदय ।।१००।।
जत खानि आमि करियाछि अपराध। तत खानि कराइवा चित्तेर प्रसाद ।।१०१।।
ए पथे प्रविष्ट जत सव भक्त गण। उपदेष्टा अवश्य करेन एक जन ।।१०२।।
ए पथेते आमि उपदेष्टा नाहि करि। इहान स्थानेइ मंत्र उपदेश धरि ।।१०३।।
इहाने अवज्ञा जेन करियाछि मने। शिष्य हैले सव दोष क्षमिवे आपने" ।।१०४।।
एत भावि गदाधर मुकुन्देर स्थाने। दीक्षा करिवार कथा कहि लेन ताने ।।१०५।।
शुनिञा मुकुन्द वड़ सन्तोष हइला। 'भाल भाल' वलि वड़ श्लाघिते लागिला ।।१०६।।
प्रहर दुइते विद्यानिधि महा धीर। वाह्य पाय्या वसिलेन हइया सुस्थिर ।।१०७।।
गदाधर पण्डितेर नयनेर जल। अन्त नाहि-धारा अङ्ग तितिल सकल ।।१०८।।
देखिया सन्तोष विद्या निधि-महाशये। कोले करि थुइलेन आपन-हृदये ।।१०६।।
परम-सम्भ्रमे रहि लेन गदाधर। मुकुन्द कहेन ताँर मनेर उत्तर ।।११०।।
"व्यवहार ठाकुराल देखिया तोमार। पूर्वे किछु चित्त दूषियाछिल उँहार। ११११।

जल से सींच डाला ।। ६५ ।। वे बोले—"मुकुन्द ! सचमुच में तुमने मेरे साथ बन्धु का जैसा कार्य किया जो विद्या निधि भट्टाचार्य की भक्ति के दर्शन कराये ।। ६६ ।। "ऐसा वैष्णव त्रिभुवन में कोई और भी है क्या ? ऐसे भक्त के दर्शन से त्रिलोक पवित्र हो जाते हैं ।। ६७ ।। "आज मैं एक घोर संकट से बच गया—वह केवल इसी कारण कि तुम समीप थे ।। ६८ ।। "एक विषयी पुरुष की तरह इनकी वेश-भूषा सब देख करके तो मैंने अपने चित्त में इनको एक विषयी—वैष्णव ही ठान लिया था ।। ६६ ।। "परन्तु तुम्हारा अन्त: करण बड़ा महान् है—तुम मेरी भावना को समझ गये और पुण्डरीक जी की गुप्त भक्ति को तुमने प्रकट करके दर्शा दिया ।। १०० ।। "अब तुम ऐसा करो कि जितनी मात्रा में मैंने अपराध किया है उतनी ही मात्रा में मेरे चित्त को प्रसन्नता प्राप्त होवे ।। १०१ ।। "इस पथ में प्रवेश करने वाले सब भक्त गण किसी न किसी एक जन को अपना (मंत्र) उपदेष्टा (गुरु) अवश्य बनाते हैं ।। १०२ ।। "किन्तु मैंने अभी तक किसी को (मंत्र) उपदेष्टा नहीं बनाया है—अतएव इनके पास से ही मैं मंत्र-उपदेश ग्रहण करूँगा ।। १०३ ।। "मैंने जो अपने मन में इनकी अवज्ञा की है—सो इनका शिष्य बन जाने पर ये मेरे सब दोषों को आप ही क्षमा कर देंगे" ।। १०४ ।। इतना विचार करके गदाधर जी ने मुकुन्द के निकट उनसे दीक्षा दिलवा देने के लिये अनुरोध किया ।। १०५ ।। यह सुनकर मुकुन्द जो बड़े संतुष्ट हुए और "ठीक है, उत्तम है" कह कर उनकी प्रशंसा करने लगे ।। १०६ ।। दो एक पहर के पीछे महा धीर गम्भीर जो विद्या निधि जी हैं, उनको वाह्य ज्ञान हुआ और वे सुस्थिर होकर बैठे ।। १०७ ।। इधर गदाधर पण्डित के नेत्रों से (पश्चात्ताप के) अश्रु-जल की धाराएँ निरन्तर बह रही हैं—सारा शरीर भीग चला है ।। १०८ ।। यह देखकर विद्या निधि महाशय बड़े संतुष्ट हुए और उनको गोद में लेकर अपने हृदय से लगा लिया ।। १०६ ।। गदाधर पण्डित बड़े भारी सम्भ्रम में पड़े हुए हैं—(कुछ बोल नहीं सकते), तब मुकुन्द उनके मन की बात कहते हैं कि ।।११०।। "आपका अमीराना ठाट-बाट देखकर इनके मन ने पहले उसमें कुछ दोष देखा था ।। १११ ।। "अब उसका

इवे तॉर प्रायश्चित चिन्तिला आपने। मंत्र दीक्षा करिवेन तोमारइ स्थाने ॥११२॥
विष्णु भक्ति विरक्ति शैशवे वृद्ध रीत। माधव मिश्रे'र कुल नन्दन-उचित ॥११३॥
शिशु हैते ईश्वरेर सङ्गे अनुचर। गुरु शिष्य जोग्य-पुण्डरीक-गदाधर ॥११४॥
आपने वुझिया चित्ते एक शुभ-दिने। निज इष्ट मंत्र दीक्षा कराह इहाने" ॥११५॥
शुनिञा हासेन पुण्डरीक विद्या निधि। "आमारे त' महारत्न मिलाइला विधि ॥११६॥
कराइव-इहाते सन्देह किछु नाइ। बहु-जन्म-भाग्ये से एमत शिष्य पाइ ॥११७॥
एइ जे आइसे शुक्ल पक्षेर द्वादशी। सर्व-शुभ-लग्न इथि मिलिवेक आसि ॥११८॥
इहाते सङ्कल्प सिद्धि हइव तोमार। शुनि गदाधर हर्षे हैला नमस्कार ॥११९॥
से दिन मुकुन्द-सङ्गे हइया विदाय। आइ लेन गदाधर-जथा गौर राय ॥१२०॥
विद्या निधि-आगमन शुनि विश्वम्भर। अनन्त-हरिष प्रभु हइला अन्तर ॥१२१॥
विद्या निधि-महाशय अलक्षित वेशे। रात्रि करि आइलेन महाप्रभु-पाशे ॥१२२॥
सर्व-सङ्ग छाड़ि एकेश्वर मात्र हञा। प्रभु देखि मात्र पड़िलेन मूर्च्छा पाञा ॥१२३॥
दण्डवत् प्रभुरे ना पारिला करिते। आनन्दे मूर्छित हैया पड़िला भूमिते ॥१२४॥
क्षणेके चैतन्य पाइ करिया हुङ्कार। कान्दे पुन आपनाके करिया धिक्कार ॥१२५॥
"कृष्णरे! पराण मोर, कृष्ण! मोर वाप। मुञि-अपराधी के कतेक देह' ताप ॥१२६॥
सर्व जगतेरे वाप! उद्धार करिला। सवे मात्र मोरे तुमि एकेला वञ्चिला ॥१२७॥
'विद्या निधि' हेन कोन वैष्णव ना चिने। सभेइ कान्देन मात्र ताँहार क्रन्दने ॥१२८॥

प्रायश्चित इन्होंने आप ही यह सोचा है कि आपके ही निकट मंत्र दीक्षा ले लेवें ॥ ११२ ॥ "भगवान् विष्णु की भक्ति और वैराग्य में ये बचपन से ही बड़े-बूढ़ों की तरह आचरण करते आये हैं। ये माधव मिश्र जी के योग्य सुपुत्र हैं ॥ ११३ ॥ "ये बचपन से ही प्रभु के अनुचर बन कर उनके साथ रहते हैं। आप और गदाधर दोनों योग्य गुरु और योग्य शिष्य हैं ॥ ११४ ॥ "अब आप सोच विचार करके किसी एक शुभ दिन में इनको अपने इष्ट-मंत्र की दीक्षा प्रदान करें ॥ ११५ ॥ यह सुनकर पुण्डरीक विद्या निधि हँसे और बोले कि "विधाता ने एक महारत्न से मुझे मिला दिया ॥ ११६ ॥ "मैं अवश्य दीक्षा दूँगा-इसमें कुछ सन्देह नहीं। ऐसा शिष्य तो अनेक जन्मों के भाग्य से कहीं जाकर मिलता है ॥ ११७ ॥ "यह जो शुक्ल-पक्ष की द्वादशी आ रही है-इसमें सब शुभ लग्न आकर मिलेंगे ॥ ११८ ॥ "उसी दिन तुम्हारा संकल्प सिद्ध होगा। यह सुन कर गदाधर जी ने बड़े हर्ष के साथ उनको नमस्कार किया ॥ ११९ ॥ उस दिन गदाधर मुकुन्द के साथ वहाँ से विदा होकर, जहाँ श्री गौरचन्द्र हैं वहाँ आये ॥ १२० ॥ इधर विद्या निधि जी के आगमन को सुनकर विश्वम्भर प्रभु हृदय में असीम हर्ष को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १२१ ॥ एक दिन विद्या निधि महाशय भेष बदल करके रात्रि में गुप्त रूप से प्रभु के पास आये ॥ १२२ ॥ सब सङ्ग को छोड़ कर अकेले हो कर वे पहुँचे और प्रभु के दर्शन करते ही मूर्च्छा खाकर गिर पड़े ॥ १२३ ॥ वे प्रभु को दण्डवत् भी नहीं कर सके, दर्शन करते ही आनन्द से मूर्च्छित हो कर भूमि पर गिर पड़े ॥ १२४ ॥ कुछ देर में चेतन हुये तो हुँकार करने लगे और फिर अपने को धिक्कार देते हुए रोने लगे ॥ १२५ ॥ "हे कृष्ण! हे मेरे प्राण! हे कृष्ण! हे मेरे बाप! मुझ अपराधी को तुम और कितना दुःख देकर जलाओगे ॥ १२६ ॥ "हे पिता! सर्व जगत का तो तुमने उद्धार किया केवल एक मुझे ही वंचित कर दिया" ॥ १२७ ॥ ये विद्या निधि जी हैं" करके इनको कोई भी वैष्णव नहीं पहचानते हैं-परन्तु उनके करुण क्रन्दन से सब ही रोने लगते हैं। १२८ ॥

निज प्रियतम जानि श्रीभक्त वत्सल । संभ्रमे उठिया कोले कैला विश्वम्भर ॥१२६॥
"पुण्डरीक बाप !" बलि कान्देन ईश्वर । "बाप देखिलाङ आजि नयन गोचर" ॥१३०॥
तखने से जानि लेन सर्व भक्त गण । 'विद्या निधि-गोसाञिर हैला आगमन' ॥१३१॥
तखन जे हैल सर्व-वैष्णव-क्रन्दन । परम-अद्भुत–ताहा ना जाय वर्णन । १३२॥
विद्या निधि वक्षे करि श्रीगौर सुन्दर । प्रेम जले सिञ्चिलन ताँर कलेवर ॥१३३॥
'प्रिय तम प्रभुर' जानिञा भक्त गणे । प्रीति भय आप्तता सभार हैल मने ॥१३४॥
वक्षे हैते विद्या निधि ना छाड़े ईश्वरे । लीन हैला जेन प्रभु ताँहार शरीरे ॥१३५॥
प्रहरेक गौरचन्द्र आछेन निश्चले । तबे प्रभु वाह्य पाइ डाकि हरि' बोले ॥१३६॥
"आजि कृष्ण वांछा सिद्धि कैलेन आमार । आजि पाइलाङ सर्व-मनोरथ-पार" ॥१३७॥
सकल-वैष्णव-सङ्गे करिला मिलन । पुण्डरीक लइ सभे करिला कीर्त्तन ॥१३८॥
"इँहार पदवी पुण्डरीक प्रेम निधि' । प्रेम भक्ति बिलाइते गढ़ि लेन विधि" ॥१३९॥
एइ मत ताँर गुण वर्णिया वर्णिया । उच्च स्वरे 'हरि' बोले श्रीभुज तुलिया ॥१४०॥
प्रभु बोले "आजि शुभ प्रभात आमार । आजि महा मङ्गल वासिये आपनार ॥१४१॥
निद्रा हैते आजि उठिलाङ शुभ क्षणे । देखिलाङ प्रेम निधि साक्षाते नयने ॥१४२॥
श्रीप्रेम निधिर आसि हैल वाह्य ज्ञान । एखने से प्रभु चिनि करिला प्रणाम ।.१४३ ।
अद्वैत देवेर आगे करि नमस्कार । जथा योग्य प्रेम भक्ति कैलेन सभार ॥१४४॥
परानन्द हइलेन सर्व-भक्त गण । हेन प्रेम निधि-पुण्डरीक-दरशन ॥१४५॥

श्री भक्तवत्सल प्रभु विश्वम्भर अपने प्रियतम को आया जान, हड़बड़ा कर उठे और उनको अपनी गोद में ले लिया ॥ १२६ ॥ "पुण्डरीक ! बाबा !" कह कर प्रभु रोते हैं और कहते हैं "आज बाबा के दर्शन पाये" ॥ १३० ॥ तब उस समय सब भक्त लोग भी यह जान गये कि विद्या निधि गुसांई का आगमन हुआ है ॥ १३१ ॥ तब जो क्रन्दन सब वैष्णवों में हुआ वह बड़ा ही अद्भुत था–उसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ १३२ ॥ श्री गौरसुन्दर ने विद्या निधि जी को वक्षस्थल से लगा कर अपने प्रेमाश्रु–जल से उनके शरीर को सींच डाला ॥ १३३ ॥ उनको प्रभु का प्रियतम जानकर उनके प्रति, भक्तों के हृदय में, प्रीति, भय तथा गौरव के भाव उदय हो आये ॥ १३४ ॥ उधर विद्या निधि भी अपने वक्षस्थल से प्रभु को पृथक नहीं करना चाहते हैं–(ऐसा प्रतीत होता था कि) प्रभु उनके शरीर में घुल मिल से गये हैं ॥ १३५ ॥ श्री गौरचन्द्र एक पहर तक निश्चल पड़े रहे, फिर सचेत होकर "हरि बोल" कहने लगे ॥ १३६ ॥ (और बोले) "आज श्री कृष्ण ने मेरी मनोवांछा पूर्ण करदी । आज मैं अपने सब मनोरथों का पार पा गया ॥ १३७ ॥ फिर प्रभु ने सब वैष्णवों के साथ उनका मिलन कराया और तब सबने पुण्डरीक जी को लेकर कीर्त्तन किया ॥ १३८ ॥ (कीर्त्तन में) "इनकी पदवी "पुण्डरीक प्रेमनिधि है । इन्हें विधाता ने प्रेम भक्ति लुटाने के लिये ही गढा है" ॥ १३९ ॥ इस प्रकार उनके गुणों को वर्णन करते हुये अपनी श्रीभुजाओं को उठा कर ऊँचे स्वर से 'हरि बोल" कहते जाते हैं ॥ १४० ॥ प्रभु बोले कि "आज मेरा बड़ा शुभ प्रभात है । आज मैं अपना परम मंगल मानता हूँ" ॥ १४१ ॥ "आज मैं बड़ी शुभ घडी में नींद से उठा हूँ कि जो मैंने प्रेमनिधि के साक्षात् नेत्रों से दर्शन किये" ॥ १४२ ॥ (इतने में) प्रेमनिधि जी को भी वाह्य ज्ञान हो आया और अब उन्होंने प्रभु को पहचान कर प्रणाम किया ॥ १४३ ॥ फिर उन्होंने श्रीअद्वैत जी को नमस्कार करके सब के प्रति यथा योग्य प्रेम भाव दर्शाया ॥ १४४ ॥ समस्त भक्त गण परानन्द को प्राप्त हुये । ऐसा है

क्षणेके जे हैल प्रेम भक्ति-आविर्भाव । ताहा वर्णिवार पात्र—व्यास महा भाग ॥१४६॥
गदाधर आज्ञा मागिलेन प्रभु-स्थाने । पुण्डरीक-मुखे मंत्र-ग्रहण-कारणे ॥१४७॥
"ना जानिञा उहान अगम्य व्यवहार । चित्ते अवज्ञान हइयाछिल आमार ॥१४८॥
एतेके उहान आमि हइवाङ शिष्य । शिष्य-अपराध गुरु क्षमिवे अवश्य" ॥१४९॥
गदाधर वाक्ये प्रभु सन्तोष हइला । "शीघ्रकर' शीघ्रकर" वलिते लागिला ॥१५०॥
तवे गदाधर देव प्रेम निधि-स्थाने । मंत्र दीक्षा करिलेन सन्तोषे आपने ॥१५१॥
कि कहिव आर पुण्डरीकेर महिमा । गदाधर शिष्य ताँर—भक्तिर एइ सीमा ॥१५२॥
कहिलाङ किछु विद्यानिधिर आख्यान । एइ मोर काम्य-जेन देखा पाइ तान ॥१५३॥
जोग्य गुरु-शिष्य-पुण्डरीक-गदाधर । दुइ-कृष्ण चैतन्येर प्रिय-कलेवर ॥१५४॥
पुण्डरीक गदाधर-दुइर मिलन । जे पढ़े जे शुने तारे मिले प्रेम धन ॥१५५॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥१५६॥

अथ आठवाँ अध्याय

जय जय श्रीगौर सुन्दर सर्व प्राण । जय नित्यानन्द-अद्वैतेर प्रेम-धाम ॥१॥
जय श्रीजगदानन्द-श्रीगर्भ-जीवन । जय पुण्डरीक विद्या निधि-प्रेम धन ॥२॥
जय जगदीश-गोपीनाथेर ईश्वर । जय हउ जत गौरचन्द्रेर-अनुचर ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे श्रीगौराङ्ग राय । नित्यानन्द-सङ्गे रङ्ग करये सदाय ॥४॥

पुण्डरीक प्रेम निधि जी का दर्शन ॥ १४५ ॥ (उस समय वहाँ) जो प्रेम भक्ति का आदिर्भाव एक क्षण काल में हुआ था उसका वर्णन तो महाभाग श्री व्यास जी ही कर सकते हैं, (मैं नहीं) ॥ १४६ ॥ तब गदाधर जी ने श्री पुण्डरीक जी के मुख से मंत्र ग्रहण करने के लिये प्रभु से आज्ञा माँगी ॥ १४७ ॥ वे बोले कि "उनके अगम्य व्यवहार को न समझ कर मेरे चित्त में उनके प्रति अवज्ञा भाव हो आया था ॥ १४८ ॥ "इस कारण मैं उनका शिष्य होना चाहता हूँ (कारण कि) शिष्य के अपराध को गुरु अवश्य क्षमा कर देंगे ॥ १४९ ॥ गदाधर जी के वाक्य से प्रभु को सन्तोष हुआ और वे "शीघ्र करो" "शीघ्र करो" कहने लगे ॥ १५० ॥ तब गदाधर देव ने अपने सन्तोष के लिये प्रेम निधि जी से मंत्र दीक्षा ले ली ॥ १५१ ॥ श्रीपुण्डरीक जी की महिमा मैं और क्या कहूँ । उनकी भक्ति की सीमा बस इतने ही में समझ लो कि गदाधर पंडित जैसे अनेक शिष्य हैं ॥ १५२ ॥ यह मैंने कुछ श्री विद्यानिधि जी का आख्यान कहा । इसमें मेरी केवल यही एक कामना है कि उनके दर्शन मुझे मिल जाँय ॥ १५३ ॥ श्री पुण्डरीक और गदाधर दोनों योग्य गुरु-शिष्य हैं और दोनों श्री कृष्ण चैतन्य के प्रिय कलेवर है ॥ १५४ ॥ श्री पुण्डरीक—गदाधर—मिलन प्रसङ्ग को जो पढ़ेंगे-सुनेंगे, वे प्रेम-धन पायेंगे ॥ १५५ ॥ श्री कृष्णचैतन्य और नित्यानन्द को (सर्वस्व) जानकर यह वृन्दावन दास उनके कुछ यश को गाकर उनके ही युगल चरणों में निवेदन करता है ॥ १५६ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे पुण्डरीक गदाधर मिलनं नाम सप्तमोऽध्याय ॥

सर्व जीवों के प्राण श्री गौरसुन्दर की जय हो, जय हो । श्री नित्यानन्द और अद्वैत के प्रेम-धाम की जय हो ॥ १ ॥ श्री जगदानन्द और श्री गर्भ के जीवन स्वरूप की जय हो । श्री पुण्डरीक विद्या निधि के प्रेम-धन-स्वरूप की जय हो ॥ २ ॥ श्री जगदीश और गोपीनाथ के ईश्वर की जय हो । श्री गौरचन्द्र के समस्त अनुचरों की जय हो ॥ ३ ॥ इस प्रकार श्री गौरांगराय श्री नित्यानन्द के साथ नवद्वीप में सदा ही

अद्वैत लइया सर्व वैष्णव-मण्डल । महा-नृत्य गीत करे कृष्ण कोलाहल ॥५॥
नित्यानन्द रहिलेन श्रीवासेर घरे । निरन्तर वाल्य भाव, आर नाहि स्फुरे ॥६॥
आपनि तुलिया हाथे भात नाहि खाय । पुत्र-प्राय करिं अन्न मालिनी जो गाय ॥७॥
नित्यानन्द-अनुभाव जाने पतिव्रता । नित्यानन्द सेवा करे-जेन पुत्र माता ॥८॥
एक दिन प्रभु श्रीनिवासेर सहित । वसिया कहेन कथा—कृष्णेर चरित ॥९॥
पण्डितेरे परीक्षये प्रभु विश्वम्भर । "एइ अवधूत केने राख निरन्तर ॥१०॥
कोन् जाति कोन् कुल किछुइ ना जानि । परम-उदार तुमि—वलिलाङ आमि ॥११॥
आपनार जाति-कुल जदि रक्षा चाओ । तवे झाट् एइ अवधूतेरे घुचाओ" ॥१२॥
ईषत् हासिया वोले श्रीवास-पण्डित । "आमारे परीक्ष' प्रभु ! ए नहे उचित ॥१३॥
दिनेको जे तोमा' भजे, सेइ मोर प्राण । नित्यानन्द तोर देह—आमाते प्रमाण ॥१४॥
मदिरा जवनी जदि नित्यानन्द धरे । जाति प्राण धन जदि मोर नाश करे ॥१५॥
तथापि आमार चित्ते नहिव अन्यथा । सत्य सत्य तोमारे कहिलुँ एइ कथा" ॥१६॥
एतेक शुनिया जवे श्रीवासेर मुखे । हुङ्कार करिया प्रभु उठे तार वुके ॥१७॥
प्रभु वोले "किवलिला पण्डित श्रीवास । नित्यानन्द प्रति तोर एतेक विश्वास ॥१८॥
मोर गोप्य नित्यानन्द जानिले से तुमि । तोमारे सन्तुष्ट हय्या वर दिये आमि ॥१९॥
जदि लक्ष्मी भिक्षा करे नगरे नगरे । तथापि दारिद्र तोर नहि वेक घरे ॥२०॥
विड़ाल-कुक्कुर-आदि तोमार वाड़ीर । सभार आमाते भक्ति हइ वेक स्थिर ॥२१॥

क्रीड़ा करते हैं ॥ ४ ॥ और सब वैष्णव मण्डल अद्वैताचार्य को लेकर श्री कृष्ण का कीर्त्तन और नृत्य करते करते हुए महा कोलाहल करते हैं ॥ ५ ॥ श्री नित्यानन्द जी श्रीवास के घर में ठहरे हुए हैं और निरन्तर बाल भाव में रहते हैं—और कोई दूसरा भाव उनमें उठता ही नहीं ॥ ६ ॥ वे अपने हाथ से उठा कर भात भी नहीं खाते हैं । श्री मालिनी देवी (श्री वास-पत्नी) उनको पुत्र के समान समझ कर उन्हें आप भात खिलाया करती हैं ॥ ७ ॥ पतिव्रता मालिनी देवी नित्यानन्द जी के प्रभाव को जानती हैं और उनकी इस प्रकार सेवा करती हैं जैसे माता पुत्र की करती है ॥ ८ ॥ एक दिन प्रभु गौरचन्द्र श्रीवास के साथ बैठ कर कृष्ण चरित्र की कथा कह रहे हैं ॥ ९ ॥ उस समय पंडित श्रीवास की परीक्षा के लिए प्रभु विश्वम्भर बोले— 'तुम इस अवधूत को निरन्तर अपने यहाँ क्यों रख रहे हो ॥ १० ॥ "इस की जाति कुल का कुछ भी तो पता नहीं । तुम बड़े उदार हो, (परन्तु) मैं यह कहे देता हूँ कि ॥ ११ ॥ "यदि तुम अपनी जाति और कुल की रक्षा चाहते हो तो इस अवधूत को झटपट दूर कर दो ॥ १२ ॥ श्री वास पण्डित कुछ हँसते हुए बोले—"तुम मेरी परीक्षा जो करते हो प्रभो ! यह उचित नहीं है ॥ १३ ॥ "जो एक दिन के लिए भी तुमको भजता है, वही मेरे लिए प्राण समान प्रिय है और फिर ये नित्यानन्द जी तो तुम्हारी देह है-यह मेरा सत्य विश्वास है ॥ १४ ॥ "यदि श्री नित्यानन्द जी मदिरा और यवन-स्त्री को भी ग्रहण कर लें, यदि वे मेरी जाति, प्राण, धन, सब को नष्ट कर दें, तथापि मेरे चित्त में उनके प्रति विपरीत भाव कदापि नहीं होगा—यह मैं तुमसे सत्य २ कहता हूँ ॥ १५ ॥ १६ ॥ श्री वास के मुख से इतना सुनते ही प्रभु हुँकार करते हुए उनके वक्षस्थल पर चढ़ गये ॥ १७ ॥ और बोले—"क्या कहा श्रीवास पण्डित ? नित्यानन्द के प्रति तेरा इतना विश्वास ? ॥ १८ ॥ "मेरे गुप्त नित्यानन्द को तुम जान गये ! मैं संतुष्ट हो कर तुमको वर देता हूँ कि ॥ १९ ॥ "स्वयं लक्ष्मी को नगर के घर २ में भिक्षा माँगना पड़े तो पड़े परन्तु तेरे घर में कभी दरिद्रता

नित्यानन्द समर्पिल आमि तोमा' स्थाने । सर्व मते सम्वरण करिवा आपने ॥२२॥
श्रीवासेरे वर दिया प्रभु गेला घर । नित्यानन्द भ्रमे' सर्व-नदिया नगर ॥२३॥
क्षणे के गङ्गार माझे एड़ेन साँतार । महा स्रोते लइ जाय-सन्तोष अपार ॥२४॥
बालक-सभार सङ्गे क्षणे क्रीड़ा करे । क्षणे जाय गङ्गादास-मुरारिर घरे ॥२५॥
प्रभुर वाड़ीते क्षणे जायेन धाइया । वड़ स्नेह करे आइ ताहाने देखिया ॥२६॥
वाल्य भावे नित्यानन्द आइर चरण । धरिवारे आय-आइ करे पलायन ॥२७॥
एक दिन आइ किछु देखिल स्वपने । निभृते कहिला पुत्र-विश्वम्भर-स्थाने ॥२८।
"निशि अवशेषे मुञि देखिलु स्वपन । तुमि आर नित्यानन्द-एइ दुइ जन ॥२९॥
वत्सर-पाँचेर दुइ छाओयाल हैया । मारा मारि करि दोंहे वेड़ाओ धाइया ॥३०।
दुइ जने साम्भाइला गोसाञिर घरे । राम कृष्ण लइ दोंहे हइला वाहिरे ॥३१॥
ताँर हाथे कृष्ण, तुमि लइ वलराम । चारि जने मारा मारि मोर विद्यमान ॥३२॥
राम कृष्ण ठाकुर वोलये क्रुद्ध हैया । के तोरा ढाङ्गाति दुइ वाहिराओ गिया ॥३३॥
ए वाड़ो ए घर सव आमा दोंहा कार । ए सन्देश दधि दुग्ध जत उपहार ॥३४।
नित्यानन्द वोलये से काल गेल वय्या । जे-काले खाइला दधि नवनी लुटिया ॥३५॥
घुचिला गोयाला-हैल विप्र-अधिकार । आपना चिनिञा छाड़' सव-उपहार ॥३६॥
प्रीति जदि ना छाड़िवा, खाइवा मारण । लुटिया खाइले वा राखिवे कोन जन ॥३७॥
राम कृष्ण वोले 'आजि मोर दोष नाञि । वान्धिया एडिमु दुइ ढङ्ग एइ ठाञि ॥३८।

नहीं आयगी ॥ २० ॥ "और तुम्हारे घर के कुत्ता-बिल्ली आदि सब की मुझ में निश्चल भक्ति होगी ॥२१॥ "मैं नित्यानन्द को तुम्हारे निकट समर्पण करता हूँ । तुम स्वयं सब प्रकार से उनकी सँभाल रखना" ॥२२॥ इस प्रकार श्रीवास को वर देकर प्रभु घर चले गये । (अब श्रीनित्यानन्द का चरित्र सुनो) नित्यानन्द जी नदिया नगर भर में सर्वत्र घूमते फिरते हैं ॥ २३ ॥ कभी तो गङ्गा में मझधार में पहुँचने पर तैरना बन्द कर देते हैं और प्रबल धारा में बड़े आनन्द से बहे चले जाते हैं ॥ २४ ॥ कभी सब बालकों के साथ खेलने लगते हैं तो कभी गङ्गादास और मुरारि गुप्त के घर चले जाते हैं ॥ २५ ॥ कभी दौड़ते हुए प्रभु के घर जा पहुँचते हैं तो उनको देख कर शची माँ बड़ा स्नेह करती है ॥ २६ ॥ बाल भाव में नित्यानन्द जी शचीमा के चरण पकड़ने जाते हैं तो वे भागती हैं ॥ २७ ॥ एक दिन शची मा ने स्वप्न में कुछ देखा उसे वह एकान्त में पुत्र विश्वम्भर से कहने लगी । ॥ २८ ॥ "विश्वम्भर ! आज मैंने शेष-रात्रि में एक स्वप्न देखा कि तुम और नित्यानन्द-दोनों जने ॥ २९ ॥ "पाँच २ वर्ष के बालक होकर आपस में लड़ते-झगडते हुए दौड़ते फिर रहे हो ॥ ३० ॥ "फिर तुम दोनों श्री ठाकुर जी के मन्दिर में घुस गये और राम कृष्ण को लेकर बाहर निकले ॥ ३१ ॥ "नित्यानन्द के हाथ में कृष्ण और तुम्हारे हाथ में बलराम थे । और फिर मेरे सामने ही तुम चारों में लड़ाई-झगड़ा होने लगा ॥ ३२ ॥ "ठाकुर श्री राम-कृष्ण क्रोध में भर कर बोले-"तुम दो ढोंगी कौन हो-निकल जाओ बाहर यह घर बार यह सन्देश-दूध-दही आदि सब उपहार हम दोनों के हैं" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तब नित्यानन्द ने कहा कि "वे दिन बीत गये जब कि तुमने दूह-दही-मक्खन लूट २ कर खाया था ॥ ३५ ॥ अब ग्वालाओं का राज्य गया, अब तो ब्राह्मणों का अधिकार है । इसलिए अपने को पहचानो और छोड़ो हमारी इन सब भेंट पूजा को ॥ ३६ ॥ यदि खुशी २ से नहीं छोड़ दोगे तो मार खाओगे । हम तुम्हें लूट खायँगे-देखेंगे कौन बचाता है" । ३७ ॥ इस पर राम कृष्ण बोले "अच्छा अब

'दोहाइ कृष्णेर जदि करों आजि आन। नित्यानन्द प्रति तर्ज गर्ज करे राम ।।३९।।
नित्यानन्द बोले तोर कृष्णेर कि डर। गौरचन्द्र विश्वम्भर-आमार ईश्वर ।।४०।।
एइ मत कलह करह चारि जन। काढ़ा काढ़ि करि सब करह भोजन ।।४१।।
काहारो हाथेर केहो काढ़ि लइ जाय। काहारो मुखेर केहो मुख दिया खाय ।।४२।।
'जननि'! बलिया नित्यानन्द डाके मोरे। 'अन्न देह' माता ! मोरे क्षुधा बड़ करे' ।।४३।।
एतेक बलिते मुञि चैतन्य पाइलुँ। किछु ना बुझिलुँ मुञि तोमारे कहिलुँ" ।।४४।।
हासे प्रभु विश्वम्भर शुनिञा स्वपन। जननीर प्रति बोले मधुर वचन ।।४५।।
वड़इ सुस्वप्न तुमि देखियाछ माता। आर कारो ठाञि पाछे कह एइ कथा ।।४६।।
तोमार घरेर मूर्त्ति परतेख वड़। मोर चित्त तोमार स्वप्नेते हैल दढ़ ।।४७।।
मुञि देखों बारे बार नैवेद्येर साजे। आधा आधि ना थाके, ना कहि कारे लाजे ।।४८।।
तोमोर वधुरे मोर सन्देह आछिल। आजि से आमार मने सन्देह घुचिल" ।।४९।।
हासे लक्ष्मी जगन्माता—स्वामीर वचने। अन्तरे थाकिया सब स्वप्न-कथा शुने ।।५०।।
विश्वम्भर वोले 'माता ! शुनह वचन। नित्यानन्दे आनि झाट् कराह भोजन" ।।५१।।
पुत्रेर वचने शची हरिष हइला। भिक्षार सामग्री जत करिते लागिला ।।५२।।
नित्यानन्द-स्थाने गेला प्रभु विश्वम्भर। निमन्त्रण गिया ताने करिला सत्वर ।।५३।।
"आमार वाड़ीते आजि गोसाञिर भिक्षा। चञ्चलता ना करिवा-कराइल शिक्षा" ।।५४।।
कर्ण धरि नित्यानन्द 'विष्णु विष्णु' वोले। "चञ्चलता करे देख पागल-सकले ।।५५।।

हमारा दोष नहीं है। तुम दोनों ढोंगियों को अब हम यही बाँध कर ही छोड़ेंगे" ।। ३८ ।। "मुझे कृष्ण की दुहाई है, जो ऐसा न करूं तो"—इस प्रकार नित्यानन्द के ऊपर गरजते हुए बलराम ने कहा ।। ३९ ।। तो नित्यानन्द भी वोला—'तेरे कृष्ण का मुझे क्या डर ? मेरे ईश्वर तो गौरचन्द्र विश्वम्भर हैं ।। ४० ।। "इस प्रकार चारों जने लड़ते–झगड़ते हैं, और एक दूसरे से छीन २ कर भोजन करते हैं ।। ४१ ।। "कोई किसी के हाथ में छीन झपट कर ले जा रहा है तो कोई किसी के मुख से मुख मिला कर खा रहा है ।। ४२ ।। फिर नित्यानन्द ने पुकार कर मुझे कहा—"माँ ! मुझे खाने को दो ! बड़ी भूख लग रही है ।। ४३ ।। ' उसके इतने कहने पर मैं जाग पड़ी। मेरी तो समझ में यह स्वप्न कुछ नहीं आया, इसलिये यह तुमको सुनाया" ।। ४४ ।। स्वप्न को सुनकर विश्वम्भर प्रभु हँसे और माता से मधुर वचन बोले ।। ४५ ।। माता जी ! तुमने बड़ा ही शुभ स्वप्न देखा है कहीं पीछे से यह किसी को सुना न देना ।। ४६ ।। "तुह्मारे मन्दिर की मूर्ति बड़ी प्रत्यक्ष है–यह बात तुह्मारे स्वप्न को सुन कर मेरे चित्त में दृढ़ हो गई है ।। ४७ ।। "मैंने कई बार यह देखा है कि भोग की सामग्री में से आधा नहीं रहता है। लज्जा के मारे मैंने यह बात किसी से कहा नहीं" ।।४८।। 'तुम्हारी बहू के ऊपर मेरे मन में कुछ सन्देह था–वह आज दूर हो गया" ।। ४९ ।। जगन्माता लक्ष्मी जी भीतर से स्वप्न की वार्ता सुन रही थी–वह स्वामी के वचनों को सुन कर हँसती है ।। ५० ।। श्री विश्वम्भर देव फिर बोले–"माँ ! मेरी बात सुनो ! निन्यानन्द को बुला कर शीघ्र ही भोजन कराओ" ।। ५१ ।। पुत्र के वचन को सुन कर शची माता को बड़ा आनन्द हुआ और वह भोजन की सब सामग्री बनाने लगीं ।। ५२ । इधर विश्वम्भर प्रभु शीघ्र ही नित्यानन्द जी के समीप गये और उनको निमंत्रण दिया ।। ५३ ।। वे बोले–"आज गुसांई की भिक्षा हमारे घर है–परन्तु आप वहाँ कोई चंचलता न करें"–इतनी सीख भी सुना दी ।। ५४ ।। श्री नित्यानन्द जी कान पकड़ कर बोले–"विष्णु २ ! चंचलता तो पागल लोग किया

ए वुझिये मोरे तुमि वासह चञ्चल। आप नार मत तुमि देखह सकल ॥५६॥
एत वलि दुइ जने हासिते हासिते। कृष्ण कथा कहि कहि आइला वाड़ीते ॥५७॥
आसिया वसिला एक ठाञि दुइजन। गदाधर-आदि आर परमाप्त गण ॥५८॥
ईशान दिलेन जल-धुइते चरण। नित्यानन्द-सङ्गे गेला करिते भोजन ॥५९॥
वसिलेन दुइ प्रभु करिते भोजन। कौशल्यार घरे जेन श्रीराम-लक्ष्मण ॥६०॥
(एइ मत दुइ प्रभु करये भोजन। सेइ भाव सेइ प्रेम सेइ दुइ जन) ॥६१॥
आइ परिवेषण करे परम-सन्तोषे। त्रिभाग हइल भिक्षा-दुइ जन हासे ॥६२॥
आर वार आसि आइ दुइजन देखे। वत्सर-पाँचेर शिशु जेन परतेखे ॥६३॥
कृष्ण-शुक्ल—वर्ण देखे दुइ मनोहर। दुइ जन चतुर्भुज—दुइ दिगम्बर ॥६४॥
शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीहल, मूषल। श्रीवत्स, कौस्तुभ देखे मकर कुण्डल ॥६५॥
आप नार वधू देखे पुत्रेर हृदये। सकृत् देखिया आर देखितेना पाये ॥६६॥
पड़िला मूर्च्छिता हैया पृथिवीर तले। तितिल वसन सब नयनेर जले ॥६७॥
अन्न मय सब घर हइल तखने। अपूर्व देखिया शची वाह्य नाहि जाने ॥६८॥
आथे व्यथे महाप्रभु आचमन करि। गाये हाथ दिया जननीरे तोले धरि ॥६९॥
"उठ उठ माता ! तुमि स्थिर कर' चित। केने वा पड़िला पृथिवीते आचम्वित" ॥७०॥
वाह्य पाइ आइ आथे व्यथे केश वान्धे। ना वोलये आइ किछु, गृह मध्ये कान्दे ॥७१॥
महा दीर्घ श्वास छाड़े, कम्प सर्व-गाय। प्रेमे परिपूर्ण हैला, किछु नाहि भाय ॥७२॥

करते हैं ॥ ५५ ॥ मालूम होता है कि तुम मुझे पागल समझते हो—अपना जैसा औरौं को भी जानते हो ॥ ५६ ॥ इतना कह कर दोनों जने हँसते २ श्री कृष्ण-चर्चा करते हुए घर आये ॥ ५७ ॥ आकर दोनों जने, गदाधर आदि विशेष आत्मीय जनों के साथ, एक जगह बैठ गये ॥ ५८ ॥ सेवक ईशान ने चरण धोने के लिये जल दिया—सो चरण धोकर प्रभु नित्यानन्द के साथ भोजन करने गये ॥ ५९ ॥ दोनों प्रभु जाकर भोजन को बैठे, मानो तो कौशल्या जी के घर राम-लक्ष्मण बैठे हों ॥ ६० ॥ (इस प्रकार दोनों प्रभु भोजन करते हैं। वास्तव में ये हैं भी तो वे ही दो—वही इनका भाव है और वही प्रेम) ॥ ६१ ॥ माता बड़े आनंद के साथ परोस रही थीं कि भोजन के तीन भाग हो गये—यह देख कर दोनों जने हँसने लगे ॥ ६२ ॥ दुवारा जब शची मा आईं तो क्या देखती हैं कि वे दोनों प्रत्यक्ष पाँच २ वर्ष के बालक बने हुए हैं ॥ ६३ ॥ एक कृष्ण वर्ण, दूसरा शुक्ल वर्ण है—दोनों मनोहर हैं। दोनों चतुर्भुज हैं, दोनों दिगम्बर हैं ॥ ६४ ॥ हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, श्री हल-मूषल हैं, वक्षःस्थल पर श्री वत्स और कौस्तुभमणि है तथा कानों में मकराकृत कुण्डल हैं ॥ ६५ ॥ माता पुत्र के हृदय पर अपनी पुत्र वधू को भी देखती है, पर देखती है एक ही वार फिर कुछ नहीं देख पाती है ॥ ६६ ॥ तब तो माता मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं—नेत्रों के अश्रु-जल से उनके वस्त्र सब भीग जाते हैं ॥ ६७ ॥ उस अपूर्व दृश्य के दर्शन से शची को वाहर की कुछ सुध न रही, उस समय (विखर कर) घर भर में सब भात ही भात हो गया ॥ ६८ ॥ महाप्रभु ने झटपट आचमन करके माता को पकड़ कर उठाया और बोले ॥ ६९ ॥ "उठो मा ! उठो ! चित्त स्थिर करो। तुम अचानक पृथ्वी पर कैसे गिर पड़ीं ॥ ७० ॥ तब माता सचेत हुई। हड़वड़ा कर जल्दी २ उन्होंने अपने केशों को बाँधा—पर बोली कुछ नहीं घर में बैठी रोने लगीं ॥ ७१ ॥ लम्बी २ साँस छोड़ रही हैं, सारा शरीर काँप रहा है, प्रेम में भर भराय रही है उन्हें कुछ सुहाता नहीं है ॥ ७२ ॥ ईशान ने उन दोनों के भोजन

ईशान करिल सब-गृह-उपस्कार। ना जत छिल अवशेष-सकल ताँहार ।।७३।।
सेविलेन सर्व काल आइरे ईशान। चतुर्दश-लोक-मध्ये महा भाग्यवान् ।।७४।।
एइ मत अनेक कौतुक प्रति दिने। मर्म भृत्य वइ इहा केहो नाहि जाने ।।७५।।
मध्य खण्ड—कथा वड़ अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले खण्डे अन्तर-पाषण्ड ।।७६।।
एइ मत गौरचन्द्र नवद्वीप-माझे। कीर्त्तन करेन सव-भकत समाजे ।।७७।।
जत जत स्थाने सव पार्षद जन्मिला। अल्पे अल्पे सभे नवद्वीपेरे आइला ।।७८।।
सभे जानि लेन—ईश्वरेर अवतार। आनन्द-स्वरूप चित्त हइल सभार ।।७९।।
प्रभुर प्रकाश देखि वैष्णव-सकल। अभय-परमानन्दे हइला विह्वल ।।८०।।
प्रभुओ सभारे देखे प्राणेर समान। सभेइ प्रभुर पारिषदेर प्रधान ।।८१।।
वेदे जारे निरवधि करे अन्वेषण। से प्रभु सभारे करे प्रेम-आलिङ्गन ।।८२।।
निरन्तर सभार मन्दिरे प्रभु जाय। चतुर्भुज-षड्भुजादि विग्रह देखाय ।।८३।।
क्षणे जाय गङ्गादास—मुरारिर घरे। आचार्य रत्नेर क्षणे चलेन मन्दिरे ।।८४।।
निरवधि नित्यानन्द थाकेन संहति। प्रभु-नित्यानन्देर विच्छेद नाहि कति।८५।।
नित्यानन्द स्वरूपेर वाल्य निरन्तर। सर्व-भावे आवेशित प्रभु विश्वम्भर ।।८६।।
मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, नरसिंह। भाग्य-अनुरूप देखे चरणेर भृङ्ग ।।८७।।
कोन् दिन गोपी भावे करेन रोदन। कारे वलि रात्रि-दिन—नाहिक स्मरण ।।८८।।
कोन् दिन उद्धव-अक्रूर-भाव हय। कोन दिन राम-भावे मदिरा आचय ।।८९।।
कोन दिन चतुर्मुख-भावे विश्वम्भर। व्रह्म-स्तव पढ़ि पड़े पृथिवी—उपर ।।९०।।

शेष को हटाया तथा घर सब साफ किया ।। ७३ ।। चौदह लोकों में महा भाग्यवान् ईशान ने सब समय शची माता की सेवा की है ।। ७४ ।। इस प्रकार प्रति दिन प्रभु के अनेक कौतुक होते हैं, जिनको मर्मी सेवक विना कोई नहीं जानता है ।। ७५ ।। इस मध्यखन्ड की कथा बड़ा मधुर अमृत का खण्ड है जिसके सुनने से अन्तर का पाखण्ड सब खण्डित हो जाता है ।। ७६ ।। इस प्रकार श्री गौर चन्द्र नवद्वीप में सब भक्त समाज में कीर्त्तन किया करते हैं ।। ७७ । प्रभु के जो जो पार्षद जिस २ स्थान में प्रकट हुए थे, वे धीरे २ सब नवद्वीप में आ गये ।। ७८ ।। सब यह जान गये कि ईश्वर का अवतार हुआ है अतएव सब के चित्त आनन्द स्वरूप बने हुये हैं ।। ७९ ।। प्रभु के स्वरूप-प्रकाश के दर्शन करके सब वैष्णव लोग निर्भय हो गये हैं और परमानन्द में विह्वल बने हुये हैं ।। ८० ।। प्रभु भी सब को अपने प्राणों के समान देखते हैं—सभी प्रभु के पार्षदों में प्रधान २ हैं ।। ८१ ।। वेद जिनको निरन्तर अन्वेषण कर ही रहे हैं, वे ही प्रभु सब को प्रेमालिंगन करते हैं ।। ८२ ।। प्रभु निरन्तर सब भक्तों के घर जाते हैं और उनको चतुर्भुज-षड्भुज आदि नाना रूप दिखलाते हैं ।। ८३ ।। कभी श्री गङ्गादास और मुरारि के घर जाते हैं—तो कभी आचार्य रत्न के घर जाते हैं ।। ८४ । नित्यानन्द जी सदैव प्रभु के साथ ही रहते हैं । प्रभु और नित्यानन्द का वियोग कहीं नहीं है ।। ८५ ।। नित्यानन्द स्वरूप का तो निरन्तर बाल भाव रहता है और प्रभु विश्वम्भर में सर्व भावों का आवेश रहता है ।। ८६ ।। प्रभु के चरण कमलों के भंग (भक्त लोग) अपने २ भाग्य के अनुसार मत्स्य, कूर्म, बाराह, बामन, नृसिंह आदि रूप के दर्शन करते हैं ।। ८७ ।। किसी दिन प्रभु गोपी भाव में रुदन करते हैं—कभी तो उनको दिन रात तक की सुध नहीं रहती है ।। ८८ ।। किसी दिन उद्धव और अक्रूर का भाव आ जाता है और किसी दिन बलराम जी के भावों में वे मदिरा माँगने लग जाते हैं ।। ८९ ।। किसी दिन

कोन दिन प्रह्लाद-भावे ते स्तुति करे। एइ मत प्रभु भक्ति सागरे विहरे ।।९१।।
देखिया आनन्दे भासे शची जगन्माता । 'वाहि राय पुत्र पाछे' एइ मनः कथा ।।९२।।
आइ वोले "वाप ! गिया कर' गङ्गा स्नान। प्रभु वोले 'वोल माता ! जय कृष्ण राम" ।।९३।।
जत किछु करे शची पुत्रे रे उत्तर। 'कृष्ण' वइ किछु नाहिं वोले विश्वम्भर ।।९४।।
अचिन्त्य आवेश सेइ–वुझन ना जाय। जखन जे हये–से-इ अपूर्व देखाय ।।९५।।
एक दिन आसि एक शिवेर गायन। डमरु वाजाय–गाय शिवेर कथन ।।९६।।
आइल करिते भिक्षा प्रभुर मन्दिरे। गाइया शिवेर गीत वेढ़ि नृत्य करे ।।९७।।
शङ्करेर गुण शुनि प्रभु विश्वम्भर। हइला शङ्कर मूर्त्ति दिव्य-जटा धर ।।९८।।
एक-लाफे उठे तार कान्धेर उपर। हुङ्कार करिया वोले "मुञि से शङ्कर" ।।९९।।
केहो देखे जटा, शिङ्गा डमरु वाजाय। 'वोल वोल' महाप्रभु वोलये सदाय ।।१००।।
से महापुरुष जत शिव गीत गाइल। परिपूर्ण फल तार एकत्र पाइल ।।१०१।।
सेइ से गाइल शिव निर-अपराधे। गौरचन्द्र आरोहण कैल जार कान्धे ।।१०२।।
वाह्य पाइ नाम्विलेन प्रभु विश्वम्भर। आपने दिलेन भिक्षा झुलिर भितर ।।१०३।।
कृतार्थ हइया सेइ पुरुष चलिल। हरि ध्वनि सर्व-गणे मङ्गल उठिल ।।१०४।।
जय पाइ उठे कृष्ण भक्तिर प्रकाश। ईश्वर-सहित सर्व-दासेर विलास ।।१०५।।

चतुर्भुज ब्रह्मा जी के भाव में आकर विश्वम्भर प्रभु व्रह्मस्तव का पाठ करके भूमि पर पड़ कर साष्टांग प्रणाम करते हैं ।। ९० ।। तो किसी दिन प्रहलाद के भाव में भगवान् की स्तुति करते हैं । इस प्रकार प्रभु निरन्तर भक्ति-सागर में बिहार करते हैं ।। ९१ ।। ये चरित्र देख २ कर जगन्माता शची आनन्द में फूली फिरती हैं–परन्तु मन में तो यह बात रहती ही है कि "पीछे कहीं पुत्र घर से बाहर न निकल जाय" । ९२ ।। (एक दिन) शची मा बोली–"बेटा ! जा कर गङ्गा स्नान करो" तो प्रभु कहते हैं–"माता ! जय कृष्ण राम बोलो" । ९३ ।। शची मा जो कुछ भी पुत्र से कहती हैं, उसके उत्तर में विश्वम्भर "कृष्ण" के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहते हैं ।। ९४ ।। प्रभु का यह आवेश भाव अचिन्त्य है, समझ में कुछ नहीं आता है । जिस समय जो भाव उदय हो आता है, वही अपूर्व होता है ।। ९५ ।। एक दिन एक शिव-गायक कहीं से वहाँ आ गया । वह डमरू बजाता हुआ शिव जी का चरित्र गाता फिरता था ।। ९६ ।। वह प्रभु के घर भी भिक्षा माँगने आया और शिव जी का गीत गाता हुआ घूम २ कर नाचने लगा ।। ९७ ।। शङ्कर भगवान् के गुणों को सुन कर प्रभु विश्वम्भर जटाधारी दिव्य शङ्कर मूर्ति बन गये ।। ९८ ।। और एक ही छलाँग में उसके कन्धे पर चढ़ बैठे और हुँकार करते हुए बोले–"मैं ही वह शङ्कर हूँ" ।। ९९ ।। उस समय किसी को जटा और किसी को सिंगी के दर्शन हुए, किसी ने डमरु बजाते हुए देखा । महाप्रभु तो निरन्तर "बोलो २" कहते ही जाते हैं ।। १०० ।। उस महा पुरुष ने (आज तक) जितने भी शिव-गीत गाये थे आज उन का परिपूर्ण फल इकट्ठा ही पा लिया ।। १०१ ।। उसने ही अपराध शून्य होकर शिव जी के गीत गाये होंगे, तब ही तो गौरचन्द्र उसके कन्ध पर चढ़ बैठे ।। १०२ ।। सचेत होने पर प्रभु विश्वम्भर उसके कन्धे पर से उतर पड़े और स्वयं ही उसकी झोली में उन्होंने भिक्षा डाल दी ।।१०३ ।। वह पुरुष कृतार्थ होकर चला गया और सब भक्त जन मङ्गल हरि ध्वनि करने लगे ।। १०४ ।। जब प्रभु के साथ प्रभु के भक्तों का क्रीड़ा–कौतुक होता है तो श्रीकृष्ण भक्ति भी प्रकाशित होकर सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो उठती है ।। १०५ ।। एक दिन प्रभु बोले, "भाइयो ! एक सार बात सुनो–(वह यह कि) हम सबों की रात्रि क्यों

प्रभु बोले "भाइ सब ! शुन मंत्र सार। रात्रि केने मिथ्या जाय आमा' सभाकार ।।१०६।।
आजि हैते निर्वन्धित करह सकल। निशाय करिव सभे कीर्त्तन मङ्गल ।।१०७।।
सङ्कीर्तन करिया सकल-गण-सने। भक्ति स्वरूपिणी गङ्गा करिव मज्जने ।।१०८।।
जगत् उद्धार हउ शुनि कृष्ण नाम। परार्थे से तोमरा सभार धन प्राण। १०९।।
सर्व-वैष्णवेर हैल शुनिञा उल्लास। आरम्भिला महाप्रभु कीर्त्तन विलास ।।११०।।
श्रीवास मन्दिरे प्रति-निशाय कीर्त्तन। कोन दिन हय चन्द्रशेखर भवन ।।१११।।
नित्यानन्द, गदाधर, अद्वैत, श्रीवास। विद्या निधि, मुरारि, हिरण्य, हरिदास ।।११२।।
गङ्गादास, वनमाली, विजय, नन्दन। जगदानन्द, बुद्धि मन्त खान, नारायन ।।११३।।
काशीश्वर, वासुदेव, राम, गरुड़ाइ। गोविन्द, गोविन्दानन्द सकल तथाइ ।।११४।।
गोपीनाथ, जगदीश, श्रीमान्, श्रीधर। सदा शिव,वक्रेश्वर,श्रीगर्भ, शुक्लाम्बर ।।११५।।
ब्रह्मानन्द, पुरुषोत्तम-सञ्जयादि जत। अनन्त चैतन्य-भृत्य–नाम जानि कत ।।११६।।
सभेइ प्रभुर नृत्ये थाकेन संहति। पारिषद वइ आर केहो नाहि तथि ।।११७।।
प्रभुर हुङ्कार, आर निशा-हरि-ध्वनि। ब्रह्माण्ड भेदये जेन हेन मत शुनि ।।११८।
शुनिञा पाषण्डि सब मरये वलिगया। "निशाय ए गुला खाय मदिरा आनिया ।।११९।।
ए-गुला सकल मधुमती सिद्धि जाने। रात्रि करि मंत्र पढ़ि पञ्च कन्या आने' ।।१२०।।
चारि-प्रहर निशि–निद्रा जाइते ना पाइ। 'वोल वोल' हुँ हुँकार शुनिये सदाइ" ।।१२१।।
वलिगया मरये जत पाषण्डीर गण। आनन्दे कीर्त्तन करे श्रीशची नन्दन ।।१२२।।

व्यर्थ ही जावे ।। १०६ ।। "आज से सब यह नेम कर लो कि रात्रि काल में सब मङ्गलमय कीर्त्तन किया करेंगे ।। १०७ ।। मैं भी सब भक्त जनों के साथ संकीर्त्तन करके भक्तस्वरूपिणी गङ्गा में मज्जन किया करूंगा ।। १०८ ।। "तुम लोग परमार्थ के लिये हो, और तुम सबों का प्राण धन श्रीकृष्ण नाम है अतएव श्रीकृष्ण नाम सबको सुनाओ–सुन २ कर जगत् का उद्धार होवे ।। १०९ ।। यह मङ्गल प्रस्ताव सुन कर सब वैष्णवों को बड़ा उल्लास हुआ। इस प्रकार श्री महाप्रभु ने रात्रि में नित्य-संकीर्त्तन–विलास आरम्भ किया ।। ११० ।। अब तो प्रति रात्रि श्रीवास के घर कीर्त्तन होने लगा। किसी २ दिन आचार्य चन्द्रशेखर के घर भी होता था ।। १११ ।। श्री नित्यानन्द, श्रीगदाधर, श्रीअद्वैत, श्रीवास, विद्या निधि, मुरारि, हिरण्य, हरिदास, गङ्गादास, वनमाली, विजय, नन्दनाचार्य, जगदानन्द, बुद्धिमन्त खान, नारायन, काशीश्वर, वासुदेव, राम, गरुडाइ, गोविन्द, गोविदानन्द, गोपीनाथ, जगदीश, श्रीमान, श्रीधर, सदाशिव, वक्रेश्वर, श्रीगर्भ, शुक्लाम्बर, ब्रह्मानन्द, पुरुषोत्तम, संजय, आदि सब वहाँ कीर्त्तन में होते थे। श्री चैतन्यचन्द्र के अनन्त भृत्य हैं–मैं तो थोड़ों के ही नाम जानता हूँ ।। ११२। ११६ ।। सभी प्रभु के नृत्य में साथ रहते थे। वहाँ पार्षदों के अतिरिक्त और कोई नहीं रहता था ।। ११७ ।। एक तो प्रभु की हुँकार ध्वनि, दूसरी रात्रि के समय सम्मिलित हरि-ध्वनि–ये दोनों मिल करके ऐसा घन घोर शब्द होता था मानो तो वह ब्रह्माण्ड भेदन कर रहा हो। ११८ ।। इसे सुन २ कर पाखण्डी लोग बक् झक् करके मरने लगे। (कोई कहता) अरे ! ये सब लोग रात में मदिरा लाकर पीते हैं ।। ११९ ।। कोई कहता–"इन्हें मधुमती देवी की सिद्धि है–उस के प्रभाव से रात्रि में मंत्र पढ़कर पंच कन्याओं को ले आते हैं" ।। १२० ।। कोई कहता–"हम चार पहर रात सोने ही नहीं पाते हैं, बस "बोलो २" और हुहुँकार ही रोज रात भर सुना करते हैं" ।। १२१ ।। इस प्रकार के पाखण्डी लोग बक्झक करके मरते थे. परन्तु श्री शचीनन्दन अपने आनन्द में कीर्त्तन किया

शुनिले कोर्त्तन मात्र प्रभुर शरीरे। बाह्य नाहि थाके, पड़े पृथिवी-उपरे ॥१२३॥
हेन से आछाड़ प्रभु पड़ेन निर्भर। पृथ्वी हय खण्ड खण्ड सभे पाय डर ॥१२४॥
से कोमल-शरीरे आछाड़ बड़ देखि। 'गोविन्द' स्मरये आइ वुजि दुइ आँखि ॥१२५॥
प्रभु से आछाड़ खाय वैष्णव-आवेशे। तथापिह आइ दुःख पाय स्नेह वशे ॥१२६॥
आछाड़ेर आइ ना जानेन प्रतिकार। एइ बोल वोले काकु करिया अपार ॥१२७॥
"कृपा कर' कृष्ण! मोरे देह' एइ वर। से समय आछाड़ खायेन विश्वम्भर ॥१२८॥
मुञि जेन ताहा नाहि जानों से समय। हेन कृपाकर' मोरे कृष्ण महाशय ॥१२९॥
यद्यपिह परानन्दे ताँर नाहि दुःख। तथापिह ना जानिले मोर बड़ सुख" ॥१३०॥
आइर चित्तेर इच्छा जानि गौरचन्द्र। सेइ मत ताँहारे दिलेन परानन्द ॥१३१॥
जत क्षण प्रभु करे हरि सङ्कीर्त्तन। आइर ना थाके वाह्य मात्र ततक्षण ॥१३२॥
प्रभुर आनन्द नृत्ये नाहि अवसर। रात्रि दिने वेढि सव गाय अनुचर ॥१३३॥
कोन दिन प्रभुर मन्दिरे भक्त गण। सभेइ गायेन, नाचे श्रीशचीनन्दन ॥१३४॥
कखन ईश्वर भावे प्रभु-प्रकाश। कखन रोदन करे वोले "मुञिदास" ॥१३५॥
चित्त दिया शुन भाइ! प्रभुर विकार। अनन्त-ब्रह्माण्डे सम नाहिक जाहार ॥१३६॥
जे मते करेन नृत्य प्रभु गौरचन्द्र। से मते से महानन्दे गाय भक्त वृन्द ॥१३७॥
श्रीहरि वासरे हरि-कीर्त्तन विधान। नृत्य आरम्भिला प्रभु जगतेर प्राण ॥१३८॥

करते थे ॥ १२२ ॥ कीर्त्तन सुनने मात्र से ही, प्रभु की सुध-बुध जाती रहती है और वे अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं ॥ १२३ ॥ प्रभु बेखटके इतने जोर से पछाड़ खाते हैं कि सभी डर जाते हैं कि कहीं पृथ्वी के टुकड़े २ न हो जायँ ॥ १२४ ॥ उस कोमल शरीर पर इतनी पछाड़े पड़ती देख कर माता शची दोनों आँखें बन्द कर लेती हैं और "गोविन्द २" कहने लगती हैं ॥ १२५ ॥ प्रभु तो भक्ति भाव के आवेश में आनन्द की पछाड़े खाते हैं तथापि स्नेह वश शची मा बड़ा दुःख पाती हैं ॥ १२६ ॥ माता उन पछाड़ों को रोकने का उपाय नहीं जानती हैं अतएव प्रभु से अपार अनुनय-विनय करती हुई यही कहती हैं कि ॥ १२७॥ "हे कृष्ण! मेरे ऊपर कृपा करो और यही वर दो कि 'जिस समय मेरा विश्वम्भर पछाड़ खाय, उस समय मुझे उसके गिरने का पता ही न चले'–बस इतनी कृपा करो हे महान् हृदय वाले कृष्ण प्रभो! यद्यपि उसे तो, परमानन्द में डूबे रहने के कारण, कोई दुःख नहीं होता, परन्तु फिर भी मैं उसके गिरने को न जान पाऊँ तो बड़ा सुख मानूं ॥ १२८ । १३० ॥ माता के चित्त की ऐसी इच्छा को जानकर प्रभु गौरचन्द्र ने उनको उसी प्रकार का परमानन्द दिया अब तो जितने समय तक प्रभु हरि संकीर्त्तन करते हैं उतने समय तक माता को बाहर की कुछ सुध-बुध नहीं रहती है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ प्रभु को आनन्दमय कीर्त्तन नृत्य से कभी अवकाश ही नहीं है। बस रात दिन भक्त लोग उनको घेर कर गाते–नाचते रहते हैं ॥ १३३ ॥ किसी दिन प्रभु के घर ही भक्त लोग सब गाते हैं और श्री शचीनन्दन नाचते हैं ॥ १३४ ॥ कभी ईश्वर भाव में प्रभु का प्रकाश होता है तो कभी रोते हैं और 'मैं दास हूँ" कहते हैं ॥ १३५ ॥ भाइयो! प्रभु के श्रीअंग में जो प्रेम-भाव के सात्त्विक विकार प्रकट होते हैं, जिसकी समता अनन्त ब्रह्माण्डों में नहीं है–उसको ध्यान पूर्वक सुनो ॥ १३६ ॥ जैसे २ प्रभु गौरचन्द्र नृत्य करते हैं भक्त वृन्द वैसे २ ही महान् आनन्द पूर्वक गाते हैं ॥ १३७ ॥ श्री एकादशी के दिन हरि-संकीर्त्तन का विधान है। जगज्जीवन प्रभु ने भी इस दिन से संकीर्त्तन नृत्य आरम्भ किया ॥ १३८ ॥ पुण्यशाली श्रीवास पंडित के आंगन में उसका शुभ–आरम्भ हुआ और

पुण्यवन्त-श्रीवास-अङ्गने शुभारम्भ । उठिल कीर्त्तन ध्वनि 'गोपाल गोविन्द' ।।१३९।।
ऊष: काल हैते नृत्य करे विश्वम्भर। जूथ जूथ हैल जत गायन सुन्दर ।।१४०।।
श्रीवास पण्डित लैया एक सम्प्रदाय। मुकुन्द लइया आर जन कथो गाय ।।१४१।।
लइया गोविन्द दत्त आर कथो जन। गौरचन्द्र-नृत्ये सभे करेन कीर्त्तन ।।१४२।।
धरिया वुलेन नित्यानन्द महाबली। अलक्षिते अद्वैत लयेन पद धूलि ।।१४३।।
गदाधर-आदि जत सजल-नयने। आनन्दे विह्वल हैला प्रभुर कीर्त्तने ।।१४४।।
शुनह चल्लिश-पद प्रभुर कीर्त्तन। जे विकारे नाचे प्रभु जगत्-जीवन ।।१४५।।
भाटियारी राग—चौदिगे गोविन्द ध्वनि, शचीरनन्दन नाचे रङ्गे।
आनन्दे विह्वल हइला सब पारिषद सङ्गे ।।१४६।।
जय जय हरि राम राम राम राम। प्रभु वेढ़ि भक्त गण गाय हरि नाम ।। ध्रु० ।।१४७।।
जखन कान्दये प्रभु—प्रहरेक कान्दे। लोटाय भूमिते केश, ताहा नाहि वान्धे ।।१४८।।
से क्रन्दन देखि हेन कोन् काष्ठ आछे। ना पड़े विह्वल हैया से प्रभुर पाछे ।।१४९।।
जखने हासये प्रभु महा-अट्टहास। सेइ हय प्रहरेक आनन्द-विलास ।।१५०।।
दास्य भावे प्रभु निज महिमा ना जाने। 'जिनिलुँ जिनिलुँ' वोले उठे घने घने ।।१५१।।
क्षणे क्षणे आपने गायइ उच्च ध्वनि। व्रह्माण्ड भेदये येन हेन मत शुनि ।।१५२।।
क्षणे क्षणे हय अङ्ग व्रह्माण्डेर भर। धरिते समर्थ केहो नहे अनुचर ।।१५३।।

"गोपाल गोविन्द" कीर्त्तन की ध्वनि गूँज उठी ।। १३९ ।। (एकादशी को) उषा काल से ही प्रभु विश्वम्भर नृत्य आरम्भ कर दिया और सुन्दर कीर्त्तनियों की पृथक् २ मण्डलियां बन गयीं ।। १४० ।। एक मण्डली श्रीवास पण्डित की बनी, कुछ भक्त लोगों मुकुन्ददत्त को लेकर गाने लगे ।। १४१ ।। कुछ लोग गोविन्ददत्त को लेकर कीर्त्तन करने लगे परन्तु श्री गौरचन्द्र के नृत्य के समय तो सब भक्त लोग मिल कर कीर्त्तन करते हैं ।। १४२ ।। महाबली नित्यानन्द जी प्रभु के पीछे २ उनको पकड़ते—सम्हालते हुए फिरते हैं और अद्वैताचार्य जी तो प्रभु की आँखें बचा कर चुप २ के उनकी पद रज ले लेते हैं ।। १४३ ।। गदाधर आदि भक्त जन प्रभु के कीर्त्तन नृत्य में नेत्रों से प्रेमाश्रुजल बहाते हुए आनन्द में विह्वल हो रहे हैं ।।१४४।। अब चालीस पदों में प्रभु का कीर्त्तन सुनो। जिन अद्भुत प्रेम विकारों से युक्त हो करके जगत्-जीवन प्रभु ने नृत्य किया है उनका इन पदों में कुछ वर्णन है ।। १४५ ।। चारों ओर "गोविन्द" ध्वनि हो रही है, और शचीनन्दन गौर भक्ति रङ्ग में भरे हुए नृत्य कर रहे हैं ।। १४६ ।। प्रभु को घेर कर भक्त गण "जय जय हरि राम, राम राम राम" आदि हरि नाम कीर्त्तन कर रहे हैं ।। १४७ ।। जिस समय प्रभु रोना आरम्भ करते हैं तो पहर भर तक रोते ही रहते हैं—भूमि पर केश बिखर जाते हैं, पर उन्हें बाँधते नहीं है ।। १४८ ।। उनके उस रोने को देख कर ऐसा कोन काष्ठ-हृदय वाला होगा जो विह्वल होकर प्रभु के पीछे न गिर पड़े ।। १४९ ।। और जब प्रभु हँसते हैं तो बड़े जोर से ठहाके मार कर हँसते हैं—यह आनन्द विलास भी पहर २ तक चलता है। कभी दास भाव में भर कर अपनी महिमा को भूल जाते हैं और बार २ "जीत लिया," "जीत लिया" कह उठते हैं ।। १५० ।। १५१ ।। कभी अपने आप बड़े ऊँचे सुर से गाने लगते हैं—वह ध्वनि ऐसी सुनायी देती है कि मानो तो व्रह्माण्ड को फोड़ती भई चली जा रही हो। और कभी २ आपका श्रीअंग ब्रह्माण्ड जैसा भारी हो जाता है—जिसे पकड़ रखने की सामर्थ्य किसी अनुचर में नहीं होती है ।। १५२ ।। ।। १५३ ।। कभी क्षण भर में श्रीअंग रूई से भी अति हलका हो जाता है और तब बड़े आनन्द से कन्धे पर

क्षणे हय तुला हैते अत्यन्त पातल। हरिषे करिया कान्धे वुलये सकल ॥१५४॥
प्रभुरे करिया कान्धे भागवत गण। पूर्णानन्द हइ करे अङ्गन भ्रमण ॥१५५॥
जखने वा हय प्रभु आनन्दे मूर्च्छित। कर्ण मूले सभे 'हरि' बोले अति भीत ॥१५६॥
क्षणे क्षणे सर्व-अङ्ग हय महा कम्प। महा-शीते वाजे जेन बालकेर दन्त ॥१५७॥
क्षणे क्षणे महा स्वेद हय कलेवरे। मूर्त्तिमती गङ्गा जेन आइला शरीरे ॥१५८॥
कखनो वा हय अङ्ग ज्वलन्त अनल। दिते मात्र मलयज शुखाय सकल ॥१५९॥
क्षणे क्षणे अदभुत वहे महा श्वास। सम्मुख छाड़िया सभे हय एक पाश ॥१६०॥
क्षणे जाय सभार चरण धरि वारे। पलाय वैष्णव गण चारि दिगे डरे ॥१६१॥
क्षणे नित्यानन्द-अङ्गे पृष्ठ दिया वैसे। चरण तुलिया सभाकारे चा'हि हासे ॥१६२॥
वुझिया इङ्गित सव भागवत गण। लुटये चरण धूलि-अपूर्व रतन ॥१६३॥
आचार्य गोसाञि बोले, "आरे आरे चोरा। भाङ्गिल सकल तोर भारि भूरि मोरा" ॥१६४॥
महानन्दे विश्वम्भर गड़ा गड़ि जाय। चारि दिगे भक्त गण कृष्ण गुण गाय ॥१६५॥
जखन उद्दण्ड नाचे प्रभु विश्वम्भर। पृथिवी कम्पित हय, सभे पाय डर ॥१६६॥
कखनो वा मधुर नाचये विश्वम्भर। जेन देखि नन्देर नन्दन नटवर ॥१६७॥
कखनो वा करे कोटि-सिंहेर हुङ्कार। कर्ण-रक्षा-हेतु—सवे अनुग्रह ताँर ॥१६८॥
पृथिवीर आलग हइया क्षणे जाय। केहो देखे, केहो देखि वारे नाहि पाय ॥१६९॥
भावा वेशे पाकल-लोचने जारे चा'य। महा त्रास पाय्या सेइ हासिया पलाय ॥१७०॥

उठा कर भक्त लोग सब घूमते हैं ॥ भक्त लोग प्रभु को कन्धे पर उठा कर आनन्द में पूर्ण होकर आंगन में नाचते फिरते हैं ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ जब प्रभु आनन्द में मूर्च्छित हो जाते हैं तो अति भयभीत होकर सब आप के कर्णमूल में 'हरि हरि' कहते हैं ॥ १५६ ॥ कभी क्षण २ में आपके सर्वाङ्ग में महाकम्प होता है उस समय आप के अंग २ ऐसे थर थर हिलते हैं जैसे अत्यन्त शीत बालक के दाँत बजते हैं ॥ १५७ ॥ क्षण २ में आप के शरीर से बड़ा भारी पसीना बहने लगता है—मानों तो शरीर में मूर्तिमयी गङ्गा ही आ गई हों ॥ और कभी शरीर धकधकाती हुई अग्नि के समान हो जाता है—उस पर चन्दन का लेप करते ही करते में सूख जाता है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ क्षण २ में अद्भुत लम्बे २ श्वास निकलने लगते हैं—उस समय सामने से हट कर सब कोई बगल में हो जाते हैं ॥ फिर कभी सब भक्तों के चरणों को पकड़ने के लिये बढ़ते हैं तो भक्त लोग डर के मारे इधर उधर चारों तरफ भाग जाते हैं ॥ १६० ॥ १६१ ॥ कभी श्रीनित्यानन्द के अङ्ग से पीठ लगा कर बैठते हैं और अपने चरणों को उठा कर सबकी ओर देखते हुए हँसते हैं ॥ तब तो प्रभु का इशारा समझ करके सब भक्त लोग श्री चरणरज रूपी अपूर्व रत्न को लूटने लगते हैं ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ तब श्री अद्वैताचार्य गुसांई कहते हैं कि—"अरे ओ चोर ! तेरी सारी चालाकी का भण्डा मैंने फोड़ दिया" ॥ श्री विश्वम्भर प्रभु तो महा आनन्द में भूमि पर लोट पोट हो हो कर पड़ते हैं और चारों ओर भक्त लोग कृष्ण-गुण-गान करते हैं ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ जब प्रभु विश्वम्भर उद्दण्ड नृत्य करते हैं तो पृथ्वी काँप उठती है और भक्त सब डर जाते हैं ॥ और कभी २ विश्वम्भर ऐसा मधुर नृत्य करते हैं कि देखने पर नटवर नन्दनन्दन जैसे ही लगते हैं ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ कभी करोड़ों सिंह की जैसी हुँकार करते हैं—उससे कान फट नहीं जाते हैं, इसे केवल उनकी कृपा ही समझो ॥ कभी पृथ्वी से ऊधर में उठ जाते हैं—उस समय कोई तो उन्हें देख पाता है, और कोई नहीं देख पाता है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ भावावेश से घूर्णा-

कृष्ण वेशे चञ्चल हइया विश्वम्भर। नाचये विह्वल हइ, नाहि परापर ।।१७१।।
भावा वेशे एक वार धरे जार पाय। आर वार पुन तार उठये माथाय ।।१७२।।
क्षणे जार गला धरि करये क्रन्दन। क्षणेके ताहार कान्धे करे आरोहण ।।१७३।।
क्षणे हय वाल्य भावे परम-चञ्चल। मुखे वाद्य वा य जेन छाओयाल-सकल ।।१७४।।
चरण नाचये क्षणे खल खल हासे। जानु गति चले क्षणे वालक-आवेशे ।।१७५।।
क्षणे क्षणे हय भाव—त्रिभङ्ग-सुन्दर। प्रहरेक सेइ मत आछे निरन्तर ।।१७६।।
क्षणे ध्यान करे कर मुरलीर छन्द। साक्षात् देखिये जेन वृन्दावन चन्द्र ।।१७७।।
वाह्य पाइ दास्य भावे करये क्रन्दन। दन्ते तृण करि चाहे चरण-सेवन ।।१७८।।
चक्रा कृति हइ क्षणे प्रहरेक फिरे। आपन चरण गिया लागे निज-शिरे ।।१७९।।
जखन जे भाव हय, से-इ अद्भुत। निज नामानन्दे नाचे जगन्नाथ सुत ।।१८०।।
घन घन हिक्का हय, सर्व अङ्ग नड़े। ना पारे हइते स्थिर पृथिवी ते पड़े ।।१८१।।
गौर वर्ण देह-क्षणे नाना वर्ण देखि। क्षणे क्षणे दुइ गुण हय दुइ आँखि ।।१८२।।
अलौकिक हैया प्रभु वैष्णव-आवेशे। जे वलिते जोग्य नहे ताहा प्रभु भाषे ।।१८३।।
पूर्वे जे वैष्णव देखि प्रभु करि बोले। 'ए वेटा आमार दास' धरे तार चूले ।।१८४।।
पूर्वे जे वैष्णव देखि धरये चरणे। तार वक्षे उठि करे चरण-अर्पणे ।।१८५।।
प्रभुर आनन्द देखि भागवत गण। अन्योऽन्ये गला धरि करये क्रन्दन ।।१८६।।

यमान लोचनों से जिसकी ओर देख देते हैं, वही महा भयभीत होकर हँसता हुआ भाग जाता है ।। श्रीकृष्ण आवेश में चंचल विह्वल होकर विश्वम्भर प्रभु नृत्य करते हैं अपने पराये का कुछ भी मान नहीं रहता है ।। १७० ।। १७१ ।। भावावेश में एक बार जिस का पाँव पकड़ते है, दूसरी वार उसके सिर पर चढ़ बैठते हैं ।। अभी जिस के गले से लिपट कर रोते हैं, क्षण में उसी के कन्धे पर चढ़ बैठते हैं ।। १७२ ।। १७३ ।। क्षण में बाल भाव से परम चंचल हो उठते हैं और बालकों की तरह मुख से बाजा बजाने लगते हैं ।। क्षण में चरणों को नचाते हैं और क्षण में बाल भाव में घुटने पर चलने लगते हैं ।। १७४ ।। १७५ ।। क्षण २ में त्रिभंग सुन्दर का भाव आ जाता है तब तो पहर २ भर तक उसी भाव में रह जाते हैं ।। क्षण में हाथों से मुरली पकड़ने की मुद्रा बताते हुए ध्यान करते हैं— उस समय आप साक्षात् श्री वृन्दाबन चन्द्र जैसे दिखाई देते हैं ।। १७६ ।। १७७ ।। वाह्य ज्ञान हो आने पर दास भाव में रोते हैं और दाँतों में तिनका लेकर प्रभु की चरण सेवा चाहते हैं । क्षण में चक्र की भाँति पहर भर तक घूमते ही रहते हैं उस समय उनके चरण उनके सिर से जा लगते हैं ।। १७८ ।। १७९ ।। जिस समय जो भाव हो आता है वही अद्भुत होता है । इस प्रकार श्री जगन्नाथ सुत अपने नाम के आनन्द में नाच रहे हैं ।। कभी बार २ हिचकियाँ आने लगती हैं, सारे अङ्ग हिलने लगते हैं, स्थिर नहीं हो पाते और पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ।।१८०।।१८१।। क्षण में गोरे रंग की आपकी देह अनेक रङ्गों की दिखाई देती है । क्षण २ में दोनों आँखें दुगनी बड़ी हो जाती हैं । प्रभु वैष्णव आवेश में अलौकिक बन करके न कहने योग्य बातें भी कहने लग जाते हैं ।। १८२ ।। १८३ ।। जिस वैष्णव को देख कर "प्रभु" कहकर पहले बोलते थे, आज उसी को "यह बेटा मेरा दास है" कहकर उसके बालों को पकड़ लेते हैं । और पहले जिस वैष्णव को देख कर उसके चरणों को पकड़ते थे, आज उसकी छाती पर चढ़ कर वहाँ चरण अर्पण कर देते हैं ।। १८४ ।। १८५ ।। प्रभु के आनन्द को देखकर भक्त लोग एक दूसरे का गला पकड़ कर रो रहे हैं । सब के अङ्गों में श्री चन्दन और मालाएँ शोभा दे रही हैं और वे सब कृष्ण

सभार अङ्गेते शोभे श्रीचन्दन-माला। आनन्दे गायइ कृष्ण रसे हइ भोला ॥१८७॥
मृदङ्ग मन्दिरा बाजे शङ्ख करताल। सङ्कीर्त्तन-सङ्गे सब हइल मिशाल ॥१८८॥
ब्रह्माण्डे उठिल ध्वनि पूरिया आकाश। चौदिगेर अमङ्गल जाय सब नाश ॥१८९॥
ए कोन् अद्भुत! जार सेवकेर नृत्य। सर्व विघ्न नाश हये जगत् पवित्र ॥१९०॥
से प्रभु आपने नाचे आपनार नामे। इहार कि फल—किवा वलिव पुराणे ॥१९१॥
चतुर्दिगे श्रीहरि-मङ्गल-सङ्कीर्तन। माझे नाचे जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन ॥१९२॥
ज़ार नामानन्दे शिव वसन ना जाने। जार रसे नाचे शिव, से नाचे आपने ॥१९३॥
ज़ार नामे वाल्मीक हइल तपोधन। जार नामे अजामिल पाइल मोचन ॥१९४॥
ज़ार नाम-श्रवणे संसार-वन्ध घुचे। हेन प्रभु अवतीर कलि जुगे नाचे ॥१९५॥
जार नाम लइ शुक नारद वेडाय। सहस्र वदन प्रभु जार गुण गाय ॥१९६॥
सर्व-महा प्रायश्चित जे प्रभुर नाम। से प्रभु नाचये, देखे जत भाग्यवान ॥१९७॥
हइल पापिष्ठ, जन्म तखने ना हैल। हेन महा महोत्सव देखिते ना पाइल ॥१९८॥
कलि जुगे आशंसिल श्रीभागवते। एइ अभिप्राय तार जानि व्यास सुते ॥१९९॥
निजानन्दे नाचे महाप्रभु विश्वम्भर। चरणेर तालि शुनि अति मनोहर ॥२००॥
भावावेशे माला नाहि रहये गलाय। छिण्डिया पड़ये गिया भकतेर गाय ॥२०१॥
कति गेल गरुड़ेर आरोहण-सुख। कति गेल शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-रूप ॥२०२॥
कोथाय रहिल सुख अनन्त-शयन। दास्य भावे लूटि धूलि करये रोदन ॥२०३॥

रस में विभोर होकर बड़े आनन्द में गा रहे हैं ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ मृदंग, मजीरा, शङ्ख और करताल बज रहे हैं। इनकी ध्वनि संकीर्त्तन के साथ मिल रही है। ऐसी वह सम्मिलित ध्वनि ब्रह्माण्ड में उठी कि उससे आकाश परिपूर्ण हो कर चारों ओर अमंगल सब नाश होने लगा ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ यह कौन सी अद्भुत बात है। जिनके सेवकों के नृत्य से ही सब विघ्न नष्ट होकर जगत् पवित्र हो जाता है। वे ही प्रभु अपने नाम से आप ही नाच रहे हैं—इसका क्या फल है मैं इस पुराण (ग्रंथ) में भला क्या लिखूँ ॥ १९० ॥ ॥ १९१ ॥ चारों ओर मङ्गलमय श्रीहरि संकीर्त्तन हो रहा है और मध्य में श्री जगन्नाथ मिश्र नन्दन नृत्य कर रहे हैं। जिनके नाम के आनन्द में शिवजी को अपने वस्त्रों का ज्ञान नहीं रहता है जिनके रस में मत-वाले हो शिव जी नाचने हैं वे ही प्रभु (आज) स्वयं नाच रहे हैं ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ जिनके नाम से बाल्मीकि तपस्वी हुए और अजामिल मुक्त हुए, जिनके नाम-श्रवण से संसार बन्धन नष्ट हो जाते हैं, ऐसे प्रभु स्वयं अवतीर्ण होकर कलियुग में नृत्य कर रहे हैं ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ जिनके नामों को लेते हुए शुक नारद विचरण किया करते हैं, सहस्र वदन शेष जी जिनका गुण—गान करते हैं, जिन प्रभु का नाम सर्व श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है वे ही प्रभु तो स्वयं नृत्य कर रहे हैं और भाग्यवान् जन देख रहे हैं ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ हाय ! इस पापिष्ठ का जन्म तब न हुआ, जो ऐसे महा महोत्सव के दर्शन न कर पाया। उसके इस अभिप्राय को जान करके ही श्री शुकदेव जी ने श्री मद्भागवत में कलियुग की प्रशंसा की है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ महा-प्रभु विश्वम्भर अपने निजानन्द में नाच रहे हैं। आप के चरणों का ताल सुनने में बड़ा ही मनोहर है, भावावेश में माला आपके गले में नहीं रहती हैं—वह टूट कर भक्तों के ऊपर जा पड़ती हैं ॥ २०० ॥ २०१॥ गरुड़ की सवारी का वह सुख आज कहाँ चला गया ! शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी रूप भी न जाने कहाँ चला गया !! शेष-शय्या का सुख भी न जाने कहाँ रह गया !!! आज तो प्रभु दास भाव में भक्तों के चरणों की

कोथाय रहिल वैकुण्ठेरे सुख भार। दास्य सुखे सब सुख पासरिल आर ॥२०४॥
कति गेल रमार वदन-दृष्टि-सुख। विरहि हइया कान्दे तुलि वाहु मुख ॥२०५॥
शङ्कर-नारद आदि जार दास्य पाय्या। सर्वैश्वर्य तिरस्करि भ्रमे' दास हैया ॥२०६॥
सेइ प्रभु आपनेइ दन्ते तृण धरि। दास्य जोग मागे, सब सुख परि हरि ॥२०७॥
हेन दास्य जोग छाड़ि जेवा आर चाहे। अमृत छाड़िया जेन विष लागि धाये ॥२०८॥
सेवा केने भागवत पढ़े वा पढ़ाय। भक्तिर प्रभाव नाहि जाहार जिह्वाय ॥२०९॥
शास्त्रेर ना जाने मर्म अध्यापना करे। गर्दभेर प्राय जेन शास्त्र वहि' मरे ॥२१०॥
एइ मत शास्त्र वहे, अर्थ नाहि जाने। अधम-सभाय अर्थ अधम वाखाने ॥२११॥
वेदे भागवते कहे 'दास्य बड़ धन'। दास्य लागि रमा-अज-भवेर जतन ॥२१२॥
चैतन्येर वाक्ये जार नाहिक प्रमाण। चैतन्य नाहिक तार, किवलिष आन ॥२१३॥
दास्य भावे नाचे प्रभु श्रीगौर सुन्दर। चौदिगे कीर्त्तन ध्वनि अति मनोहर ॥२१४॥
शुनिते शुनिते क्षणे हय मूरछित। तृण करे अद्वैत तखने उप नीत ॥२१५॥
आपाद-मस्तक तृणे निछिया लइया। निज शिरे थुइ नाचे भ्रुकुटी करिया ॥२१६॥
अद्वैतेर भक्ति देखि सभार तरास। नित्यानन्द गदाधर-दुइ जने हास ॥२१७॥
नाचे प्रभु गौरचन्द्र जगत जीवन। आवेशेर अन्त नाहि, हय घने घन ॥२१८॥
जाहा नाहि देखि शुनि श्रीभागवते। हेन सब विकार प्रकाशे' शची सुते ॥२१९॥

धूल को लूटते हुए रोदन कर रहे हैं !!!! ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ बैकुण्ठ के वे सब सुख भी न जाने कहाँ रह गये। आज प्रभु दास्य सुख में और सब सुखों को भूल गए हैं। और कहाँ गया लक्ष्मी जी के मुख कमल के देखने का वह सुख ! आज तो प्रभु बिरही बन कर भुजा और मुख को उठाए हुए रो रहे हैं ॥२०४॥२०५॥ जिनकी दासता को पाकर शंकर, नारद, आदि सब ऐश्वर्य को ठुकरा करके दास होकर विचरण करते हैं, वे ही प्रभु सब सुख को त्याग करके दाँतों में तिनका ले कर आप ही अपनी दास्य भक्ति के लिये प्रार्थना कर रहे हैं ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ ऐसी दास्य भक्ति योग को छोडकर जो और कुछ माँगते हैं, वे अमृत को छोड़ कर मानो तो विष के लिये दौड़ते हैं। जिस पुरुष की जिह्वा पर भक्ति की महिमा नहीं उसका भागवत पढ़ना और पढ़ाना किस काम का ? ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ बिना शास्त्र का मर्म जाने जो उसे पढ़ाता है, वह गधा की भाँति शास्त्र का बोझा ढोने वाला है। इस प्रकार बिना अर्थ जाने जो शास्त्र का बोझा ढोता है, वह अधम लोगों की सभा में अर्थ भी अधम (तुच्छ) ही करता फिरता है ॥ २१० ॥ २११ ॥ वेद और भागवत कहते हैं कि "प्रभु की दासता परम धन है"। इस दासता के लिए लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिवजी भी प्रयत्नशील रहते हैं। श्री चैतन्यचन्द्र के वचनों में जिसको विश्वास नहीं है, वह चैतन्यशून्य ही है—और कुछ क्या कहूँ ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ श्री गौर सुन्दर प्रभु दास्य भाव में नृत्य कर रहे हैं और चारों ओर अति मनोहर कीर्त्तन ध्वनि हो रही है। कीर्त्तन सुनते २ प्रभु कभी मूर्च्छित हो जाते हैं तो उस समय अद्वैताचार्य जी हाथ में तृण लेते हैं ॥ २१४ ॥ २१५ ॥ और उस तृण को श्री प्रभु के मस्तक से चरण पर्यन्त घुमा कर उनकी बलिहारी जाते हैं और फिर उस तृण को अपने शिर पर रख कर नृत्य करते हैं। श्री अद्वैत प्रभु की भक्ति को देख कर और सब को तो भय होता है परन्तु नित्यानन्द और गदाधर जी—ये दो जने हँसते हैं ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ जगत्-जीवन प्रभु गौरचन्द्र नाच रहे हैं—आवेश का अन्त नहीं है-बार २ हो रहा है। श्री मद्भागवत में भी जो प्रेमभक्ति के विकार देखने-सुनने में नहीं आते श्री शचीनन्दन में ऐसे सब विकार

क्षणे क्षणे सर्व-अङ्ग हय स्तम्भाकृति । तिलार्द्धे को नोङाइते नाहिक शकति ।।२२०।।
सेइ अङ्ग क्षणे क्षणे हेन मत हय । अस्थि मात्र नाहि जेन नवनीत मय ।।२२१।।
कखनो देखिये अङ्ग-गुण दुइ तिन । कखनो स्वभाव हैते अतिशय क्षीण ।।२२२।।
कखनो वा मत्त जेन ढुलि ढुलि जाय । हासिया दोलाय अङ्ग, आनन्द सदाय ।।२२३।।
सकल-वैष्णव प्रभु देखि एके एके । भावा वेशे पूर्व-नाम धरि धरि डाके ।।२२४।।
'हल धर, शिव, शुक, नारद, प्रह्लाद । रमा, अज, उद्धव' वलिया करे नाद ।।२२५।।
एइ मत सभा' देखि नाना मत वोले । जेवा जेइ वस्तु ताहा प्रकाशये छले ।।२२६।।
अपरूप कृष्णा वेश, अपरूप नृत्य । आनन्दे नयन भरि देखे सव भृत्य ।।२२७।।
पूर्वे जेइ साम्भाइल वाड़ोर भितरे । से-इ मात्र देखे, अन्ये प्रवेशिते नारे ।।२२८।।
प्रभुर आज्ञाय दृढ़ लागि याछे द्वार । प्रवेशिते नारे लोक सव नदियार ।।२२९।।
धाइया आइसे लोक कीर्त्तन शुनिया । प्रवेशिते नारे लोक द्वारे रहे गिया ।।२३०।।
सहस्र सहस्र लोक कलख करे । "क्रीर्त्तन देखिव-झाट घुचाह दुयारे" ।।२३१।।
जतेक वैष्णव सब कीर्त्तनेर रसे । ना जाने आपन देह, अन्य वोल किसे ।।२३२।।
जतेक पाषण्डि सब ना पाइया द्वार । वाहिरे थाकिया मन्द वोलये अपार ।।२३३।।
केहो बोले "ए गुला सकल नाकि खाय । चिनिले पाइवे लाज-द्वार ना घुचाय" ।।२३४।।

प्रकाशित हो रहे हैं ।। २१८ ।। २१९ ।। कभी तो क्षण २ में प्रभु के समस्त अंग अकड़ कर स्तम्भ की भाँति अचल हो जाते हैं–उनमें तिलभर भी शक्ति नहीं रहती है । फिर वे ही अंग क्षण २ में ऐसे हो जाते हैं मानों तो अस्थि कहीं है ही नहीं, केवल मक्खन ही मक्खन है ।। २२० ।। २२१ ।। कभी तो आप के अङ्ग दुगने-तिगुने लम्बे दिखायी देते हैं कभी स्वभाविकता से कहीं अधिक दुबले-पतले हो जाते हैं । कभी मतवाले की तरह झूमते झामते हुए चलते हैं कभी हँस २ कर अपने अंगों को झुलाते हैं और आनन्द में तो सदा ही चूर रहते हैं ।। २२२ ।। २२३ ।। कभी समस्त वैष्णवों की ओर देखते हैं और भावावेश में भरे हुए उनमें से एक एक को उसका पूर्व काल का नाम ले लेकर बुलाते हैं । किसी को बलराम किसी को शिव, तो किसी को शुक, नारद, प्रह्लाद, लक्ष्मी, ब्रह्मा, उद्धव, आदि पूर्व नामों से पुकारते हैं ।। २२४ ।। २२५ ।। इस प्रकार सब भक्तों को देख २ कर नाना प्रकार की बातें करते हैं । और बातों २ में ही वे जिस भक्त का जो स्वरूप है, उसे गुप-चुप प्रकट भी करते जाते हैं । प्रभु का यह कृष्णावेश निराला है यह नृत्य निराला है-सब भक्त वृन्द नयन भर २ कर आनन्द में दर्शन कर रहे हैं ।। २२६ । २२७ ।। यह दर्शन केवल वे ही कर रहे हैं, कि जिन्हें पहले से ही घर के भीतर प्रवेश करा लिया गया है । पीछे से ओर कोई वहाँ प्रवेश नहीं कर पाते हैं ।। प्रभु की आज्ञा से द्वार मजबूती से बन्द कर दिया गया है । इसी से नदिया के आम लोग कोई वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते हैं ।। २२८ ।। २२९ ।। आते तो हैं नदिया के लोग–कीर्त्तन सुन २ कर दौड़े हुए परन्तु घुस नहीं पाते हैं–द्वार पर ही खड़े रह जाते हैं ।। बाहर खड़े वे हजारों लोग कोलाहल मचाते हैं और कहते हैं कि "जल्दी खोलो किवाड़–हम कीर्त्तन देखेंगे" ।। २३० ।। २३१ ।। इधर घर के भीतर जितने भी वैष्णव लोग हैं, वे सब कीर्त्तन के रस में अपनी देह तक से बेसुध हैं, फिर और बातों की सुध कौन करें ! तब तो किवाड़ न खुलने पर पाखण्डी लोग बाहर खड़े २ बेशुमार खरी खोटी बकने लगते हैं ।। २३२-।। २३३ । कोई कहता है 'ये लोग सब छिप कर कुछ खाते हैं–'कोई देख लेगा तो लज्जित होना पड़ेगा'–इस विचार से ये द्वार नहीं खोलते हैं" दूसरा कहता है ठीक-ठीक यही बात है कुछ खाते पीते न होते तो

केहो बोले "सत्य सत्य एइ से उत्तार । नहिलेके मते डाके ए अष्ट प्रहर" ।।२३५।।
केहो बोले "अरे भाइ ! मदिरा आनिया । सभे रात्रि करि खाय लोक लुकाइया" ।।२३६।।
केहो बोले "भाल छिल निमाञि पण्डित । तार केने नारायण कैल हेन चित ।।२३७।।
केहो बोले "हेन बुझि पूर्वेर संस्कार" । केहो बोले "सङ्ग दोष हइल ताहार ।।२३८।।
नियामक बाप नाहि, ताते आछे वाइ । एत दिने सङ्ग दोषे ठेकिल निमाइ" ।।२३९।।
केहो बोले "पासरिल सत्र अध्ययन । मासेक ना चाहिले हय 'अवैया करण" ।।२४०।।
केहो बोले "अरे भाइ ! सब हेतु पाइल । द्वार दिया कीर्त्तनेर सन्दर्भ जानिल ।।२४१।।
रात्रिकरिमंत्रपढ़ि पञ्च-कन्या आने । नानाविधि द्रव्य आइसे ता' सभारसने ।। २४२ ।।
भक्ष्य,भोज्य,गन्ध,माल्य,विविध वसन । खाइया ता'सभा'सङ्गे विविधरमन ।। २४३ ।।
भिन्न लोक देखिले-ना हय तार सङ्ग । एतेके दुयारदिया करे नाना-रङ्ग" ।। २४४ ।।
केहो वोले" कालिहउ,जाइष देयाने । काँकालि बान्धिया सव निव जनेजने ।।२४५।।
जेनाछिल राज्यदेशे आमिञा कीर्त्तन । दुर्भिक्ष हइल-सव गेल चिरन्तन ।।२४६।।
देवे हरि लेक वृष्टि-जानिल निश्चय । धान्य मरि गेल कड़ि उत्पन्न ना हय ।।२४७।।
थालि याति श्रीवासेर कालि करों कार्य्यं । कालि वा कि करौं देख अद्वैत आचार्य ।।२४८।।
कोथा हैते आसि नित्यानन्द-अवधूत । श्रीवासेर घरे थाकि करे एत रूप" ।।२४९।।
एइ मते नाना रूपे देखाये न भय । आनन्दे वैष्णव सव किछु ना शुनय ।।२५०।।

आठों पहर ऐसे कैसे चिल्ला सकते ? ।। २३४ ।। २३५ ।। कोई कहता है-"अरे भाई ! ये लोग मदिरा लाते हैं, और रात में लोगों से छिपा कर यहाँ सब पीते हैं ।। २३६ ।। कोई कहता-"निमाई पण्डित तो भला-मानस था । नारायण ने उसका ऐसा चित्त कैसे कर दिया" ।। २३७ ।। तब कोई तो कहता-"यह तो पूर्व का संस्कार मालूम होता है" । और कोई कहता-"नहीं, यह संग-दोष है ।। २३८ ।। एक तो शासन करने वाला बाप नहीं है, उसके ऊपर वायु का रोग, और फिर सङ्ग-दोष ! बेचारा निमाई इतने दिन इनके संग-दोष से लुट गया !" ।। २३९ ।। कोई कहता "यह तो अध्ययन भी सब भूल गया । अरे ! महीना दिन अभ्यास छूट जाय तो व्याकरण भूल कर "अवैयाकरण" बन जाता है ।। २४० ।। कोई कहता-"अरे भाई ! मैं जान गया सब कारण । दरवाजा बन्द करके कीर्त्तन करने का गूढ़ रहस्य मैं जान गया" ।। २४१ ।। "(सुनो) ये लोग रात में मंत्र पढ़ कर पाँच कन्याओं को ले आते हैं । उनके साथ ही अनेक प्रकार की सामग्री भी लाते हैं भक्ष्य-भोज्यादि वस्तुओं को उन्हें खिला कर आप खाते हैं और गन्ध, माला, वस्त्र उनको धारण करा कर, उनके साथ अनेक प्रकार से रमण करते हैं ।। २४२ ।। २४३ ।। "बाहर के लोग देख लेगें, तो उनका सङ्ग नहीं बनेगा-इस विचार से दरवाजा बन्द करके बड़े २ मौज लूटते हैं" ।। २४४ ।। कोई कहता "कल तो होने दो, दिवान के पास जाकर सब कह दूँगा और एक २ की कमर कसवा कर वहाँ ले जाऊँगा" ।। २४५ ।। "जो कीर्त्तन इस राज्य में, देश भर में, कहीं नहीं था, उसको ला करके अकाल पैदा कर दिया । पुरानी बातें सब चौपट हो गई ।। २४६ ।। ',इसी कारण हम यह निश्चय जान गये, कि दैव ने वर्षा हर ली है जिससे धान की फसल सब नष्ट हो गई है -एक कौड़ी तक की भी उपज नहीं हो रही है ।। २४७ ।। "चोरों की धरोहर को सम्हालने वाले श्रीवास को कल मैं ठीक कर दूँगा-और उस अद्वैताचाय को भी देखना, कल क्या दशा करता हूँ ।। २४८ ।। "और न जाने कहाँ से एक नित्यानन्द अवधूत आकर श्रीवास के घर में रहता है । वही ये सब करतूत करा रहा है ।। २४९ ।। ऐसे ऐसे वे नाना प्रकार के भय

केहो बोले "ब्राह्मणेर नहे नृत्य धर्म । पढ़ियाओ ए-गुला करये हेन कर्म ॥२५१॥
केहो बोले "ए-गुला देखिते ना जुयाय । ए- गुलार सम्भाषे सकल कीर्त्ति जाय ॥२५२॥
ओ नृत्य कीर्त्तन जदि भाल लोक देखे । सेहो एइ मत हय,-देख परतेखे । २५३॥
परम-सुबुद्धि छिल निमाञि पण्डित । ए-गुलार सङ्गे तार हेन हैल चित" ॥२५४॥
केहो बोले 'आत्मा विना साक्षात् करिया । डाकिले कि कार्य हय, ना जानिल इहा ॥२५५॥
आपन शरीर-माझे आछे निरञ्जन । घरे हाराइया धन, चाय गिया वन" ॥२५६॥
केहो बोले "कौन कार्य परेरे चर्चिया । चल सभे घरे जाइ, कि कार्य देखिया ॥२५७॥
केहो बोले "ना देखिल निज कर्म दोषे । से सब सुकृति' ता' सभारे वलि किसे" ॥२५८॥
सकल पाषण्डी—तारा एक चाप हैया । 'एह सेइ गन' हेन बुझि जाय धाय्या ॥२५९ ॥
"ओ कीर्त्तन ना देखिले कि हइव मन्द । शत जन वेढ़ि जेन करे महा द्वन्द ॥२६०॥
कोन् जप कोन् तप कोन् तत्त्व ज्ञान । जाहा ना देखिले करि निज कर्म ध्यान ॥२६१॥
चालू कला मुद्ग दधि एकत्र करिया । जाति नाश करि खाय एकत्र हइया ॥२६२॥
परि हासे आसि सभे देखिवार तरे । 'देखित पागल गुला कोन् कर्म करे' ॥२६३॥
एतेक वलिया सभे चलि लेन घरे । एक जाय, आर आसि वाजये दुयारे ॥२६४॥
पाषण्डी पाषण्डी जेइ दुइ देखा हय । गला गलि करि सब हासिया पड़य ॥२६५॥
पुन धरि लइ जाय-जेवा नाहि देखे । केहो वा निवर्त हय कारो अनुरोधे ॥२६६॥

दिखाते हैं, परन्तु वैष्णव लोग आनन्द में भरे हुए कुछ भी नहीं सुनते हैं ॥ २५० ॥ फिर कोई कहता–' यह नृत्य ब्राह्मणों का धर्म नहीं है । ये लोग पढ़-लिख करके भी ऐसा कर्म करते हैं ॥ २५१ ॥ कोई कहता–"अरे ! इनको तो देखना भी उचित नहीं और इसके साथ बात-चीत करने से तो सारी कीर्ति ही नष्ट हो जाती है ॥ २५२ ॥ इस नृत्य-कीर्त्तन को यदि कोई भला मानस देख ले, तो वह भी ऐसा ही हो जाता हैं । प्रत्यक्ष देख लो न "निमाई पण्डित बड़ा सुबुद्धिमान था-पर इनकी सङ्गति से उसका चित्त भी ऐसा हो गया ॥२५३-॥ २५४ ॥ कोई कहता–"अरे ! ये इस बात को नही जानते हैं कि आत्मा का साक्षात्कार किये बिना चिल्लाने से कुछ कार्य नहीं बनता है । ॥ २५५ ॥ अपने शरीर के भीतर ही निरञ्जन पुरुष है । परन्तु ये लोग धन को घर में भूल कर बन में ढूँढते फिरते हैं ॥ २५६ ॥ कोई कहता "पराई चर्चा से हमें क्या काम ? चलो सब अपने २ घर जायँ । यह सब देखने से हमें क्या मतलब ॥ २५७॥ कोई कहता–"हम अपने दुर्भाग्य के कारण नृत्य-कीर्त्तन नहीं देख पा रहे है । वे तो सब सुकृतिशाली हैं फिर हमें उनको क्यों दोष देना चाहिए ॥ २५८ ॥ तब तो सब पाखण्डी लोग एक स्वर से कह उठते हैं–"यह भी उसी दल का है" । ऐसा कह उसे छोड़ कर दूर भाग जाते हैं ॥ २५९ ॥ "सैकड़ों आदमियों ने घेरा बना कर एक धमा चौकड़ी सी मचा रक्खी है, भला ऐसे कीर्त्तन को न देखने में क्या बुराई है ॥ २६० ॥ यह भी कोई जप है, तप है, तत्त्व ज्ञान है, कि जिसे न देख पाने पर हम अपने कर्मों का दोष समझें ॥ २६१ ॥ "ये सब लोग चाँवल, केला, मूँग, दही इत्यादि वस्तुओं को इकट्ठी करके एक साथ मिलकर खाते हैं और जाँति-पाँति का सत्यानाश करते हैं ॥ २६२ ॥ ऐसी २ हँसी उड़ाते हुए पाखण्डी लोग सब देखने को आते है कि "देखें तो ये पागल लोग करते क्या हैं" ॥ २६३ ॥ और देख भाल कर सब घर लौट जाते हैं । एक जाता हैं तो दूसरा दरवाजे पर आ भिड़ता है ॥ २६४ ॥ जब मार्ग में दो पाखण्डियों की भेंट होती है, तो परस्पर गले लग कर हँस २ के लोट पोट हो जाते हैं ॥ २६५ ॥ फिर जिसने नहीं देखा है, उसको पकड़ कर ले आते हैं और कोई २ तो

केहो वोले "भाइ ! एइ देखिल शुनिल। निमाइ पण्डित लैया पागल हइल ।।२६७।।
दुर्दुरि उठिया आछे श्रीवासेर वाड़ी। दुर्गोत्सवे जेन साड़ि देइ हुड़ा हुड़ि ।।२६८।।
'हइ हइ हाय हाय' एइ मात्र शुनि। इहा सभा' हैते हैल अपयश-वाणी ।।२६९।।
महा महा भट्टाचार्य सहस्र जथाय। हेन ढाङ्गाइत-गुला वैसे नदियाय ।।२७०।।
श्रीवास वामन एइ नदिया हइते। घर भाङ्गि कालि लैया फेलाइव सोते ।।२७१।।
ओ वामन घुचाइले ग्रामेर कुशल। अन्यथा जवने ग्राम करिवे कवल" ।।२७२।।
एइ मत पाषण्डी करये कोलाहल। तथापिह महा भाग्यवन्त से सकल ।।२७३।।
प्रभु-सङ्गे एकत्र जन्मिल एक-ग्रामे। देखिलेक शुनिलेक ए सव विधाने ।।२७४।।
चैतन्येर गण-सव मत्त कृष्ण रसे। वहिर्मुख वाक्य किछु कर्णे ना प्रवेशे ।।२७५।।
"जय कृष्ण मुरारि मुकुन्द बन माली"। अहर्निश गाय सभे हइ कुतूहली ।।२७६।।
अहर्निश भक्त सङ्गे नाचे विश्वम्भर। श्रान्ति नाहि कारो-सब सत्त्व कलेवर ।।२७७।।
'वत्सरेक' नाम मात्र, कत जुग गेल। चैतन्य-आनन्दे केहो किछु ना जानिल ।।२७८।।
जेन महा-रास-क्रीड़ा, कत जुग गेल। 'तिलार्द्धक' हेन सव गोपिका मानिल ।।२७९।।
एइ मत अचिन्त्य कृष्णेर परकाश। इहा जाने भाग्यवन्त चैतन्येर दास ।।२८०।।
एइ मत नाचे महा प्रभु विश्वम्भर। निशि अवशेष मात्र से एक-प्रहर ।।२८१।।
शाल ग्राम-शिला-सव निज-कोले करि। उठिला चैतन्य चन्द्र खट्टार उपरि ।।२८२।।

किसी के कहने-सुनने पर लौट भी पड़ता है ।। २६६ ।। कोई कहता—"भाई ! हमने तो यही देखा और सुना कि निमाइ पण्डित को लेकर ये लोग पागल हो गये हैं ।। २६७ ।। "(यह कीर्त्तन की ध्वनि है या) श्रीवास के घर में मेंढकों की टर्र २ का शोर मचा हुआ है। अथवा तो दुर्गा जी के उत्सव में "साड़ी" (गीत गाने वाले गायक विशेष) लोगों की होड़ मची हुई है ।। २६८ ।।"जब देखो तब बस "हा हा"—"हू हू" ही सुनाई देता है। इन लोगों ने तो वाणी को कलंकित्त कर डाला ! ।। २६९ ।। (बड़े आश्चर्य की बात है कि) नदिया में जहाँ सहस्र २ महा २ भट्टाचार्य हैं वहाँ ऐसे २ ढोंगी लोग भी रहते हैं ।। २७० ।। "कल इस नदिया से श्री वास वामन के घर को तोड़ फोड़ कर गङ्गा में बहा देना है ।। २७१ ।। उस वामन को भगा देने में ही गाँव का कुशल है नहीं तो इस गाँव को यवन राजा खा जायगा ।। २७२ ।। यद्यपि इस प्रकार से पाखंडी लोग कोलाहल मचाते हैं, तथापि वे सब महा भाग्यशाली ही हैं ।। २७३ ।। (कारण कि) उन्होंने प्रभु के साथ एक ही गाँव में जन्म लिया और प्रभु के इन सब चरित्रों को देखा और सुना ।। २७४ ।। इधर श्रीचैतन्य देव के गण सब कृष्ण रस में मतवाले हो रहे हैं। वहिर्मुख जनों के वाक्य कुछ भी उनके कर्णों में प्रवेश नहीं कर पाते हैं ।। २७५ ।। भक्त लोग "जय कृष्ण मुरारि मुकुन्द बनमाली" आनन्द से दिन रात गाते रहते हैं ।। २७६ ।। और विश्वम्भर देव भी रात दिन भक्तों के साथ नाचते रहते हैं। किसी को भी थकावट मालूम नहीं होती—सब की देह सत्त्वमय है ।। २७७ ।। कहने के लिए ही कीर्त्तन एक वर्ष तक हुआ परन्तु इस कीर्तन में कितने युग बीत गये, यह श्री चैतन्य देव के साथ आनन्द में विभोर कोई कुछ भी न जान सका ।। २७८ ।। जैसे महारास विलास में कितने ही युग बीत गए परन्तु गोपियों ने उसे आधा क्षण ही समझा ।। २७९ ।। ऐसे ही श्री कृष्ण का प्रकाश अचिन्त्य होता है—श्री चैतन्यचन्द्र के भाग्यवान् दास ही इसे जानते हैं ।। २८० ।। इस प्रकार महाप्रभु श्री विश्वम्भर नृत्य कर रहे हैं, अब केवल एक पहर रात शेष रह गई है ।। २८१ ।। इतने में श्री चैतन्यचन्द्र सब शालिग्राम शिलाओं को अपनी गोद में लेकर विष्णु—

मड़ मड़ करे खट्टा विश्वम्भर भरे। आथे व्यथे नित्यानन्द खट्टा स्पर्श करे ॥२८३॥
अनन्तेर अधिष्ठान हइल खट्टाय। ना भाङ्गिल खट्टा, दोले श्रीगौराङ्ग-राय ॥२८४॥
चैतन्य-आज्ञाय स्थिर हइल कीर्त्तन। कहे आपनार तत्त्व-करिया गर्जन ॥२८५॥
"अलि जुगे कृष्ण आमि, आमि नारायण। आमि सेइ भगवान् देवकी नन्दन ॥२८६॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड-कोटि-माझे आमि नाथ। जत गाओ सेइ आमि, तोरा मोर दास ॥१८७॥
तोमा' सभा' लागिया आमार अवतार। तोरा जेइ देह' सेइ आमार आहार ॥२८८॥
आमारे से दिया आछ सर्व-उपहार"। श्रीवास बोलेन "प्रभु! सकल तोमार" ॥२८९॥
प्रभु बोले "मुञि इहा खाइलुँ सकल। अद्वैत बोलये "प्रभु! वड़इ मङ्गल ॥२९०॥
करे-करे प्रभुरे जो गाय सर्व-दासे। आनन्दे भोजन करे प्रभु निजा वेशे ॥२९१॥
दधि खाय दुग्ध खाय नवनीत खाय। "आर कि आछये आन" वोलये सदाय ॥२९२॥
विविध सन्देश खाय शर्करा म्रक्षित। मुद्ग नारिकेल जल शस्येर सहित ॥२९३॥
कदलक, चिपीटक, भर्जित तण्डुल। "आर वार आन" वोले खाइया वहुल। २९४॥
व्यवहारे जन-शत-दुइर आहार। निमिषे खाइया वोले कि आछये आर" ॥२९५॥
प्रभु वोले "आन' आन' एथा किछु नाञि"। भक्त सब त्रास पाइ स्मङरे गोसाञि ॥२९६॥
कर जोड़ करि सभे कय भय-वाणी। "तोमार महिमा प्रभु! आमरा कि जानि ॥२९७॥
अनन्त ब्रह्माण्ड आछे जाहार उदरे। तारे कि करिव एइ क्षुद्र-उपहारे ॥२९८॥
प्रभु वोले "क्षुद्र नहे भक्त-उपहार। झाट आन' झाट आन' कि आछये आर" ॥२९९॥

सिंहासन पर जा बैठे ॥ २८२ ॥ श्री विश्वम्भर के बोझ से सिंहासन चर्र-मर्र करने लगा तो झट से दौड़ कर श्री नित्यानन्द ने सिंहासन को छू दिया ॥ २८३ ॥ (छूते ही) सिंहासन में अनन्त देव का अधिष्ठान हो गया और वह टूटने से बच गया उस पर श्री गौरांगदेव झूलने लगे ॥ २८४ ॥ फिर श्री चैतन्यचन्द्र की आज्ञा से कीर्त्तन बन्द हुआ और तब वे गरजते हुए अपना तत्त्व कहने लगे यथा:—"कलियुग में कृष्ण मैं ही हूँ, मैं ही नारायण हूँ। मैं वही भगवान् देवकीनन्दन हूँ। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का मैं नाथ हूँ। तुम लोग जिस २ का यश गाते हो, वह सब मैं ही हूँ। तुम सब मेरे दास हो" ॥ २८५ ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ "तुम सब के लिए ही मेरा अवतार हुआ है। तुम लोग जो कुछ मुझे देते हो वही मेरा आहार है ॥ अतएव तुम लोगों ने भी अपना सर्वस्व मुझे भेंट कर दिया है।" इस पर श्री वास जो बोले ये सब तो है ही आपका प्रभो!" ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ प्रभु बोले–"देखो ये तो मैं सब खा चुका!" अद्वैताचार्य बोले–"बड़ा ही अच्छा हुआ प्रभो!" सब सेवक लोग ला ला कर प्रभु के हस्त कमल में अर्पण करते हैं और प्रभु निजादेश में आनन्द पूर्वक भोजन करते हैं ॥ २९० ॥ २९१ ॥ आप दूध-दही-मक्खन सब खा-पी गए और "और लाओ और क्या है" कहते हुए बार २ पुकारने लगे ॥ २९२ ॥ शक्कर मिले हुए सन्देश आदि अनेक प्रकार की मिठाइयाँ, मूँग, नारियल, जल गिरी सहित, केला, चीऊड़ा, खील आदि बहुत कुछ खा करके प्रभु बोले और लाओ, क्या है" ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ व्यवहार में दो सौ आदमियों का भोजन पलक मारते २ सफाचट करके प्रभु बोले "और क्या है" "लाओ २! यहाँ तो कुछ भी नहीं है"। यह देख सुन कर भक्त लोग सब भयभीत होकर भगवान् को स्मरण करने लगे ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ फिर सब हाथ जोड़ कर डरते हुए बोले "प्रभो! तुम्हारी महिमा हम लोग क्या जाने अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके उदर में हों, उनके लिए हमारी इस तुच्छ भेंट से भला क्या हो सकता है ॥ २९७ ॥ २९८ ॥ प्रभु बोले–"भक्त की भेंट तुच्छ नहीं है। लाओ २ झटपट

"कर्पूर ताम्बूल आछे शुनह गोसाञ्ञि। प्रभु बोले "ताइ देह' किछु चिन्ता नाञ्ञि ॥३००॥
आनन्द हइल, भय गेल सभाकार। जो गाय ताम्बूल-सवे जार अधिकार ॥३०१॥
हरिषे ताम्बूल जो गायेन सर्व-दासे। हस्त पाति लय प्रभु सभा प्रति हासे ॥३०२॥
अन्तर-गम्भीर हइ क्षणे क्षणे हासे। सकल भक्तेर चित्ते लागये तरासे ॥३०३॥
दुइ चक्षु पाकाइया करये हुङ्कार। 'नाढ़ा नाढ़ा नाढ़ा" प्रभु वोले वारे वार ॥३०४॥
महा शास्ति कर्त्ता हेन भक्त-सब देखे। हेन शक्ति नाहि कारो हइव सम्मुख ॥३०५॥
नित्यानन्द महा प्रभु शिरे धरे छाति। जोड़ करे अद्वैत सम्मुखे करे स्तुति ॥३०६॥
महा-भये जोड़ हाथे सर्व भक्त गण। हेट-माथा करि चिन्ते' चैतन्य-चरण ॥३०७॥
ए ऐश्वर्य शुनिते जाहार हय सुख। अवश्य देखिव सेइ चैतन्य-श्रीमुख ॥३०८॥
जे खाने जे आछे, से आछये सेइ खाने। तदूर्द्ध हइते केहो नारे आज्ञा विने ॥३०९॥
"वर माग" वोले अद्वैतेर मुख चा'इ। "तोर लागि अवतार मोर एइ ठाँइ" ॥३१०॥
एइ मत सव भक्त देखिया देखिया। "माग' माग" वोले प्रभु हासिया हासिया ॥३११॥
एइ मत प्रभु निज ऐश्वर्य प्रकाशे। देखि भक्त गण सुख-सिन्धु-माझे भासे ॥३१२॥
अचिन्त्य चैतन्य-रङ्ग-वुझन ना जाय। क्षणेके ऐश्वर्य करि पुन मूर्च्छा पाय ॥३१३॥
वाह्य प्रकाशिया प्रभु करये क्रन्दन। दास्य-भाव प्रकाश करये अनुक्षण ॥३१४॥
गला धरि कान्दे सर्व-वैष्णव देखिया। सभारे सम्भाषे' 'भाइ' 'वान्धव' वलिया ॥३१५॥

क्या कुछ है भक्त लोग बोले—"प्रभो! अब तो केवल कर्पूर-सुवासित-ताम्बूल मात्र रह गए हैं प्रभु बोले "लाओ! वे ही दो—कुछ चिन्ता मत करो ॥ २९९ ॥ ३०० ॥ तब तो सब को बड़ा आनन्द हुआ, और भय दूर हो गया और जिन २ का अधिकार था, वे सब प्रभु को पान देने लगे ॥ ३०१ ॥ सब दास जन बड़े उमङ्ग के साथ प्रभु को पान दे रहे हैं और प्रभु सबके प्रति हँसते हुए हाथ बढ़ा कर ले रहे हैं ॥ ३०२ ॥ प्रभु का हृदय गम्भीर है, परन्तु वाहर क्षण २ में हँस रहे हैं—यह देख कर सब भक्तों के चित्त में भय का संचार हो आता है ॥ ३०३ ॥ इतने में प्रभु, दोनों आँख लाल लाल करके, हुँकार करते हुए बार बार "नाड़ा ३" पुकारने लगे ॥ ३०४ ॥ उस समय भक्तवृन्द प्रभु को महा दण्डदाता के रूप में देखते हैं—किसी की शक्ति नहीं कि सन्मुख होवे ॥ ३०५ ॥ श्री नित्यानन्द जी महाप्रभु के शिर के ऊपर क्षत्र धारण करते हैं और श्री अद्वैत प्रभु के सामने हाथ जोड़ कर स्तुति करते हैं ॥ ३०६ ॥ और सब भक्तवृन्द महाभय के मारे हाथ जोड़ कर शिर नीचा करके, श्री चैतन्यचन्द्र के चरणों का चिन्तन करते हैं ॥ ३०७ ॥ इस ऐश्वर्य लीला के सुनने से जिसको सुख होता है। वह अवश्य ही श्री चैतन्यचन्द्र के श्री मुख का दर्शन पायगा ॥ ३०८ ॥ जो भक्त जहाँ पर है, वह वहीं पर अचल है। प्रभु की आज्ञा बिना कोई ऊपर उठ नहीं सकता ॥ ३०९ ॥ तब प्रभु अद्वैताचार्य के मुख की ओर ताकते हुए बोले—"वर माँग! तेरे लिए ही मेरा यहाँ अवतार हुआ है" ॥ ३१० ॥ इसी प्रकार सब भक्तों की ओर देख २ कर हँसते हुए उनसे कहते हैं "वर माँग—वर मांग" ॥ ३११ ॥ इस प्रकार प्रभु अपने ऐश्वर्य को प्रकाशित कर रहे हैं जिसे देख कर भक्त लोग सुख के सागर में बड़े चले जा रहे हैं ॥ ३१२ ॥ श्री चैतन्यचन्द्र की लीला अचिन्त्य है, समझ में नहीं आती है। क्षण में ऐश्वर्य को प्रकट करके वे फिर मूर्च्छित हो जाते हैं ॥ ३१३ ॥ फिर वाह्य ज्ञान लाभ करके प्रभु रोने लगते हैं और क्षण २ में दास भाव को प्रकट करते हैं ॥ ३१४ ॥ वैष्णवों को आपस में गले पकड़ कर रोते हुए देखते प्रभु "भाइ बन्धु" कह कर उन सबसे बोलते हैं ॥ ३१५ ॥ प्रभु ऐसी २ माया फैलाते हैं कि

लखिते ना पारे-प्रभु हेन माया करे। भृत्य विनु ताँर तत्त्व के वुझिते पारे।।३१६।।
प्रभुर चरित्र देखि हासे भक्त गण। सभेइ वोलेन "अवतीर्ण नारायण।।३१७।।
कथो क्षण थाकि प्रभु खट्टार उपर। आनन्दे मूर्छित हैला श्रीगौर सुन्दर।।३१८।।
धातु मात्र नाहि, पड़िलेन पृथिवी ते। देखि सव पारिषद कान्दे चारि भिते।।३१९।।
सर्व भक्त गण जुक्ति करिते लागिला। "आमा' सभा' छाड़िया वा ठाकुर चलिला।।३२०।।
जदि प्रभु ए मत निष्ठुर भाव करे। आमराह एइ क्षणे छाड़िव शरीरे।।३२१।।
एतेक चिन्तिते सर्वज्ञेर चूड़ामणि। वाह्य प्रकाशिया करे महा-हरि ध्वनि।।३२२।।
सर्व-गणे उठिल आनन्द कोलाहल। ना जानि के कोन दिगे हय वा विह्वल।।३२३।।
ए मत आनन्द हय नवद्वीप पुरे। प्रेम रसे वैकुण्ठेर नाथ से विहरे।।३२४।।
ए सकल पुण्य कथा जे करे श्रवण। भक्त सङ्गे गौरचन्द्रे रहे तार मन।।३२५।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान।।३२६।।

अथ नवाँ अध्याय

जय जगन्नाथ-शची-नन्दन चैतन्य। जय गौर सुन्दरेर सङ्कीर्त्तन धन्य।।१।।
जय नित्यानन्द-गदाधरेर जीवन। जय जय अद्वैत श्रीवास-प्राण-धन।।२।।
जय श्रीजगदानन्द-हरि दास-प्राण। जय वक्रेश्वर पुण्डरीक-प्रेम धाम।।३।।
जय वासुदेव-श्रीगर्भेर प्राण नाथ। जीव प्रति कर' प्रभु! शुभ दृष्टि पात।।४।।

कोई समझ नहीं पाता है। वास्तव में उनके सेवक बिना उनके तत्त्व को कौन समझ सकता है।। ३१६।। प्रभु के चरित्र को देख कर भक्त गण सब हँसते हैं और कहते हैं कि "नारायण अवतीर्ण हुए हैं"।। ३१७।। कुछ देर तक प्रभु गौर सुन्दर विष्णु—सिंहासन पर बैठे और फिर आनन्द मूर्च्छा को प्राप्त हो गए।। ३१८।। और संज्ञा-शून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देख कर सब पार्षद चारों ओर रोने लगे।। ३१९।। और शङ्का में भरे हुए आपस में कहने लगे—"हम सब को छोड़ कर ठाकुर चल दिये क्या यदि हम सबके प्रति प्रभु ऐसा ही निष्ठुर भाव दिखायेंगे, तो हम सब भी इसी क्षण शरीर छोड़ देंगे"।। ३२०।। ३२१। इनके ऐसा विचार करते ही सर्वज्ञ शिरोमणि प्रभु ने वाह्य चेतना प्रकट करके बड़े जोर से हरि ध्वनि की तब तो सब भक्त लोगों में आनन्द—कोलाहल मच गया और वे विह्वल होकर कोई कहीं, कोई कहीं पड़ गए।। ३२२।। ३२३।। इस प्रकार नवद्वीप में आनन्द हो रहा है। वैकुण्ठनाथ वहाँ प्रेमास्वादन करते हुए विहार कर रहे हैं।। ३२४।। इन सब पुण्य कथाओं को जो श्रवण करते हैं, उनके मन में भक्तों के सहित गौरचन्द्र निवास करते हैं।। ३२५।। श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्दचन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनका गुण गान करता है।। ३२६।।

इति—श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे श्री चैतन्य ऐश्वर्य प्रकाशादि वर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः।।

श्री जगन्नाथ मिश्र और श्रीशची के नन्दन श्री चैतन्यचन्द्र की जय हो। श्रीगौर सुन्दर के धन्य सङ्कीर्त्तन की जय हो।। १।। श्री नित्यानन्द और श्री गदाधर के जीवन स्वरूप प्रभु की जय हो। श्री अद्वैत तथा श्रीवास के प्राणधन स्वरूप प्रभु की जय हो।। २।। श्री जगदानन्द और श्री हरिदास के प्राण स्वरूप गौर को जय हो। श्री वक्रेश्वर और श्री पुण्डरीक के प्रेमधाम स्वरूप प्रभु की जय हो।। ३।। श्री वासुदेव

भक्त गोष्ठी-सहित गौराङ्ग जय जय। शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥५॥
मध्य खण्ड-कथा भाइ! शुन एक चिते। महाप्रभु गौरचन्द्र विहरे जे मते ॥६॥
एबे शुन चैतन्येर महा-परकाश। जहिं सर्व-वैष्णवेर सिद्धि अभिलाष ॥७॥
'सात प्रहरिया-भाव' लोके ख्याति जार। जहिं प्रभु हइलेन सर्व-अवतार ॥८॥
अद्भुत भोजन जहिं अद्भुत प्रकाश। जने जने विष्णु भक्ति दानेर विलास ॥९।
राज राजेश्वर अभिषेक सेइ दिने। करि लेन प्रभुरे सकल-भक्त गणे ॥१०॥
एक दिन महाप्रभु श्रीगौर सुन्दर। आइ लेन श्रीनिवास पण्डितेर घर ॥११॥
सङ्गे नित्यानन्द चन्द्र परम-विह्वल। अल्पे अल्पे भक्त गण मिलिला सकल ॥१२॥
आवेशित-चित्त महाप्रभु गौरराय। परम-ऐश्वर्य करि चतुर्दिगे चा'य ॥१३॥
प्रभुर इङ्गित बूझिलेन भक्त गण। उच्च स्वरे चतुर्दिगे करेन कीर्त्तन ॥१४॥
अन्य अन्य दिन प्रभु नाचे दास्य भावे। क्षणेके ऐश्वर्य प्रकाशिया पुन भाङ्गे ॥१५॥
सकल-भक्तेर भाग्ये ए-दिन नाचिते। उठिया वसिला प्रभु विष्णुर खट्टाते। १६॥
आर-सब-दिने प्रभु भाव प्रकाशिया। वैसेन विष्णुर खाटे जेन ना जानिया ॥१७॥
सात प्रहरिया-भावे—छाड़ि सर्व-माया। वसिला प्रहर सात प्रभु व्यक्त हैया ॥१८॥
जोड़ हस्ते सम्मुखे सकल भक्त गण। रहिलेन परम-आनन्द-जुक्त-मन ॥१९॥
कि अद्भुत आनन्देर हइल प्रकाश। सभेइ वासेन जेन वैकुण्ठ विलास ॥२०॥

और श्री गर्भ के प्राणनाथ की जय हो। हे प्रभो! जीवों के प्रति शुभ दृष्टि कीजिए ॥ ४ ॥ भक्त मण्डली सहित श्री गौरांगदेव की जय हो, जय हो। श्री चैतन्यचन्द्र की कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥ ५ ॥ भाइयो! जिस प्रकार महा प्रभु गौरचन्द्र ने विहार किया है—वह मध्यखण्ड को कथा एक चित्त होकर सुनो ॥ ६ ॥ अब पहले श्री चैतन्यचन्द्र के महा-प्रकाश की कथा सुनो-जिसमें सब वैष्णवों को अभिलाषाएँ पूर्ण हुई हैं। जो संसार में "सात-पहरिया-भाव के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसमें प्रभु ने सव अवतारों का प्रकाश किया है ॥ ७ ॥ ८। जिस लीला में अद्भुत भोजन राशि है, अद्भुत स्वरूप—प्रकाश है, और जन जन प्रति विष्णुभक्ति दान का विलास है ॥ ९ । उसी दिन सब भक्तों ने मिलकर प्रभु का राज राजेश्वर अभिषेक किया है ॥ १० ॥ (वह प्रसङ्ग इस प्रकार है) एक दिन महाप्रभु श्री गौरसुन्दर श्रीवास पण्डित के घर आए ॥ ११ ॥ साथ में अपने भाव में परम विह्वल श्री नित्यानन्द हैं। और सब भक्त लोग भी दो २ चार २ करके धीरे २ वहाँ आ मिले ॥ १२ ॥ महाप्रभु श्री गौराराय का चित्त स्वरूप के आवेश से भर आया और वे परम ऐश्वर्य का प्रकाश करते हुए चारों ओर देखने लगे ॥ १३ ॥ भक्त लोग प्रभु के संकेत को समझ गए, और चारों ओर उच्चस्वर से कीर्त्तन करने लगे ॥ १४ ॥ और २ दिन तो प्रभु दास भाव में नाचा करते थे, और बीच २ में क्षण भर के लिए ही ऐश्वर्य प्रकट कर फिर समेट लेते थे ॥ १५ ॥ परन्तु समस्त भक्तों के भाग्य से आज के दिन तो प्रभु नाचते २ भगवान् विष्णु के सिंहासन पर चढ़कर विराज गए ॥ १६ ॥ और सब दिन तो प्रभु ऐश्वर्य भाव को प्रकाशित कर विष्णु सिंहासन पर ऐसे जा बैठते थे कि मानो तो कुछ जानते ही नहीं हैं ॥ १७ ॥ परन्तु आज सब माया (पर्दा) को हटा कर प्रभु सात पहर तक अपने ईश्वर, भाव को व्यक्त करके बैठे रहे ॥ १८ ॥ सब भक्त लोग हाथ जोड़ कर परमानन्द चित्त से उनके सामने खड़े हैं ॥ १९ ॥ उस समय कैसा अद्भुत आनन्द का प्रकाश हुआ कि सभी लोग यह समझने लगे कि साक्षात् वैकुण्ठ का ही विलास हो रहा है ॥ २० ॥ प्रभु भी ठीक वैकुण्ठनाथ की भाँति बैठ गए—आधा तिल भर भी

प्रभुओ वसिला जेन वैकुण्ठेर नाथ। तिलार्द्धेक माया मात्र नाहिक कोथात ॥२१॥
आज्ञा हैल "वोल मोर अभिषेक गीत। शुनि गाय भक्त गण हइ हरषित ॥२२॥
अभिषेक शुनि प्रभु मस्तक ढुलाय। सभारे करेन कृपा दृष्टि अमायाय ॥२३॥
प्रभुर इङ्गित वूझिलेन भक्त गण। अभिषेक करिते सभार हैल मन ॥२४॥
सर्व-भक्त गणे वहि' आने' गङ्गा जल। आगे छाँकिलेन दिव्य-वसने सकल ॥२५॥
शेषे श्रीकर्पूर-चतुः सम आदि दिया। सज्ज करिलेन सभे प्रेम जुक्त हैया ॥२६॥
महा जय जय ध्वनि शुनि चारि भिते। अभिषेक मंत्र सभे लागिला पढ़िते ॥२७॥
सर्वाद्ये श्रीनित्यानन्द 'जय जय' वलि। प्रभुर श्रीशिरे जल दिया कुतूहली ॥२८॥
अद्वैत-श्रीवास-आदि जतेक प्रधान। पढ़िया पुरुष सूक्त करायेन स्नान ॥२९॥
गौराङ्गेर भक्त सब महा-मंत्र वित। मंत्र पढ़ि जल ढाले हइ हरषित ॥३०॥
मुकुन्दादि गाय अभिषेक-सुमङ्गल। केहो कान्दे केहो नाचे-आनन्दे विह्वल ॥३१॥
पतिव्रता गण करे जय जय कार। आनन्द स्वरूप चित्त हइल सभार ॥३२॥
वसिया आछेन वैकुण्ठेर अधीश्वर। भृत्य गणे जल ढाले शिरेर उपर ॥३३॥
नाम मात्र-अष्टोत्तर-शत घट जल। सहस्र घटेओ अन्त ना पाइ सकल ॥३४॥
देवता सकले धरि नरेर आकृति। गुप्ते अभिषेक करे जे हय सुकृति ॥३५॥
जार पाद पद्मे जल विन्दु दिले मात्र। सेहो ध्याने–साक्षाते के दिते आछे पात्र ॥३६॥
तथापिह तारे नाहि जम दण्ड भय। हेन प्रभु साक्षाते सभार जल लय ॥३७॥

कहीं माया का आवरण नहीं रक्खा ॥ २१ ॥ और तब यह आज्ञा हुई कि "मेरे अभिषेक के गीत गाओ"। यह सुन कर भक्तगण हर्षित होकर गाने लगे ॥ २२ ॥ अभिषेक गान को सुनकर प्रभु आनन्द में झूमते हुए शिर हिलाते हैं और सब के प्रति सहज स्नेहपूर्ण कृपा दृष्टि करते हैं ॥ २३ ॥ प्रभु ने अभिषेक करने के लिए संकेत किया जिसे समझ कर सब के मन में अभिषेक करने की अभिलाषा हुई ॥ २४ ॥ तब तो सब भक्त गण गङ्गाजल ढो ढो कर लाते हैं। पहले उस जल को दिव्य वस्त्र से छानते हैं, फिर उसमें कस्तूरी दो भाग चन्दन चार भाग, कुंकुम तीन भाग और कपूर एक भाग–इस चतुःसम को मिला कर प्रेमपूर्वक सुगन्धित जल तैयार करते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ चारों ओर से महा जय जयकार ध्वनि होने लगी और सब भक्त लोग अभिषेक मंत्र पढ़ने लगे ॥ २७ ॥ सर्व प्रथम महा विनोदी श्री नित्यानन्द ने "जय २" कह कर प्रभु के मस्तक पर जल छोड़ा ॥ २८ ॥ पश्चात् श्री अद्वैत और श्री वास आदि प्रधान भक्तों ने पुरुष सूक्त पाठ करके स्नान कराया ॥ २९ ॥ श्री गौरांग के भक्त सब महामंत्रज्ञ हैं–वे सब हरजित होकर मंत्र पढ़ २ कर जल ढालने लगे ॥ ३० ॥ मुकुन्द आदि भक्त अभिषेक के मङ्गल गीत गा रहे हैं-कोई आनन्द में विह्वल होकर रो रहे हैं तो कोई नाच रहे हैं ॥ ३१ ॥ पतिव्रताएं जय जयकार कर रहीं हैं। सब ही के चित्त आनन्द स्वरूप हो गए हैं ॥ ३२ ॥ वैकुण्ठ के अधीश्वर प्रभु बैठे हुए हैं और सेवक लोग शिर पर जल ढाल रहे हैं ॥ ३३ ॥ एक सौ आठ घड़ा तो केवल कहने के लिए ही हैं, वहाँ तो हजार २ घड़ों से भी पूरा नहीं पड़ रहा हैं ॥ ३४ ॥ कोई २ विशेष पुण्यशाली देवता भी मनुष्य का रूप बना कर गुप्त रूप से प्रभु का अभिषेक करते हैं ॥ ३५ ॥ जिनके चरण कमलों में–साक्षात् जल चढ़ाने का अधिकार भला कितनों का है—ध्यान में भी एक ही बूंद जल देने से यमराज के दण्ड का भय नहीं रहता है, ऐसे प्रभु आज साक्षात् सब का जल ग्रहण कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ श्रीवास के दास-दासी गण जल लाते हैं और प्रभु स्नान करते हैं ! अहो ! भक्त

श्रीवासेर दास-दासी गणे आने जल। प्रभु स्नान करे, भक्त से वार एइ फल ॥३८॥
जल आने' एक भाग्यवती–'दुःखी' नाम। आपने ठाकुर देखि वोले "आन' आन' ॥३९॥
आपने ठाकुर ताँर भक्ति योग देखि। 'दुःखी' नाम घुचाइया थुइलेन 'सुखी' ॥४०॥
नाना वेद मंत्र पढ़ि सर्व-भक्त गण। स्नान कराइया अङ्ग करिला मार्जन ॥४१॥
परिधान कराइला नूतन वसन। श्री अङ्गे लेपिला दिव्य सुगन्धि-चन्दन ॥४२॥
विष्णु खट्टा पड़िलेन उपस्कार करि। वसिलेन प्रभु निज खट्टार उपरि ॥४३॥
छत्र धरिलेन शिरे नित्यानन्द राय। कोन भाग्यवन्त रहि चामर ढुलाय ॥४४॥
पूजार सामग्री लइ सर्व-भक्त गण। पूजिते लागिला निज प्रभुर चरण ॥४५॥
पाद्य, अर्घ्य, आचमनी, गन्ध, पुष्प, धूप। प्रदीप, नैवेद्य, वस्त्र-यथा अनुरूप ॥४६॥
यज्ञ सूत्र, यथा शक्ति अङ्गे अलङ्कार। पूजिलेन करिया षोड्श-उपचार ॥४७॥
चन्दने करिया लिप्त तुलसी मञ्जरी। पुनः पुन देन सभे चरण-उपरि ॥४८॥
दशाक्षर-गोपाल मंत्रेर विधि मते। पूजा करि सभे स्तव लागिला पढ़िते ॥४९॥
अद्वैतादि आर जत पार्षद प्रधान। पड़िला चरणे करि दण्ड–परणाम ॥५०॥
प्रेम नदी बहे सर्व-गणेर नयने। स्तुति करे सभे, प्रभु अमायाय शुने ॥५१॥
"जय जय जय सर्व-जगतेर नाथ। तप्त-जगतेरे कर' शुभ-दृष्टिपात ॥५२॥
जय आदि हेतु जय जनक सभार। जय जय सङ्कीर्त्तनारम्भ-अवतार ॥५३॥
जय जय वेद-धर्म-साधुजन-त्राण। जय जय आब्रह्म-स्तम्वेर मूल प्राण ॥५४॥

सेवा का यही फल है (कि स्वयं भगवान् को सेवा मिल जाती है) ॥ ३८ ॥ जल लाने वालों में एक भाग्यवती दासी का नाम 'दुःखी' था। उसको जल लाते देख कर प्रभु स्वयं कहते हैं–"लाओ २" ॥ ३९ ॥ और उसके भक्तिभाव को देख कर प्रभु स्वयं उसका "दुखी" नाम मिटा कर "सुखी" नाम रख देते हैं ॥ ४० ॥ अनेक वेद मंत्रों के द्वारा सब भक्तों ने प्रभु को स्नान कराया, श्री अङ्ग को पोंछा ॥ ४१ ॥ नवीन वस्त्र धारण कराये और श्रीअङ्ग पर दिव्य सुगन्धित चन्दन का लेप किया ॥ ४२ ॥ पश्चात्, संस्कार करके विष्णु सिंहासन लगाया गया, तब उस पर प्रभु गौरसुन्दर विराजमान हुए ॥ ४३ ॥ श्री नित्यानन्दराय ने शिर पर क्षत्र लगाया और कोई भाग्यवान चँवर करने लगे ॥ ४४ ॥ फिर सब भक्त गण पूजा की सामग्री लेकर प्रभु के श्री चरण की पूजा करने लगे ॥ ४५ ॥प्रथम पाद्य और अर्घ्य देकर फिर आचमन कराते हैं। फिर श्रीअङ्ग में गन्ध लेप कर पुष्पमाला अर्पण करते हैं। धूप-दीप दान करते हैं। नैवेध समर्पण करते हैं। यथोचित वस्त्र यज्ञोपवीत और यथाशक्ति अलङ्कार श्रीअङ्ग में धारण कराते हैं। इस प्रकार षोडशोपचार से प्रभु की पूजा सम्पन्न हुई ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ फिर सब भक्त लोग तुलसी की मंजरी पर चन्दन लगा २ कर प्रभु के श्रीचरणों पर बार २ चढ़ाने लगे ॥ ४८ ॥ दशाक्षर गोपाल मंत्र की विधि के अनुसार पूजा करने के पश्चात् सब भक्त लोग प्रभु की स्तुति पढ़ने लगे ॥ ४९ ॥ श्री अद्वैताचार्य आदि प्रधान २ पार्षदगण ने श्री चरणों में दण्डवत् पाइ कर प्रणाम किया ॥ ५० ॥ सब भक्तों के नेत्रों से प्रेम को नदी बह रही है और सब स्तुति कर रहे हैं और प्रभु सहज निष्कपट भाव से सुन रहे हैं ।५१ ॥ स्तुतिः—"सब जगत् के नाथ को जय ३ हो। हे प्रभो ! इस तप्त जगत् के प्रति शुभ दृष्टि दीजिए ॥ ५२ ॥ आप सब के आदि कारण हैं–आप को जय हो। आप सब के पिता हैं–आपको जय हो ॥ संकीर्त्तन प्रचार के लिए आप का अवतार है–आप की जय हो–जय हो ॥ ५३ ॥ "हे वेद-धर्म-साधुजन रक्षक ! आप को जय हो। हे ब्रह्मा से तृण पर्यन्त के मूल प्राणस्व-

जय जय पतित पावन गुण-सिन्धु । जय जय परम-शरण दीन बन्धु ।।५५।।
जय जय क्षीर सिन्धु-मध्ये गुप्तवासी । जय जय भक्त-हेतु प्रकट विलासी ।।५६।।
जय जय अचिन्त्य अगम्य आदि-तत्त्व । जय जय परम-कोमल शुद्ध-सत्त्व ।।५७।।
जय जय विप्र कुल-पावन-भूषण । जय वेद-धर्म-आदि सभार जीवन ।।५८।।
जय जय अजामिल-पतित-पावन । जय जय पूतना-दुष्कृति-विमोचन ।।५९।।
जय जय अदोष-दरशी रमाकान्त" । एइ मत स्तुति करे सकल महान्त ।।६०।।
परम प्रकट रूप प्रभुर प्रकाश । देखि परानन्दे डूबिलेन सर्व-दास ।।६१।।
सर्व माया घुचाइया प्रभ गौरचन्द्र । श्रीचरण दिलेन–पूजये भक्त वृन्द ।।६२।।
दिव्य गन्ध आनि केहो लेपे श्रीचरणे । तुलसी-कमले मेलि पूजे कोन जने ।।६३।।
केहो रत्न-सुवर्ण-रजत-अलङ्कार । पाद पद्मे दिया दिया करे नमस्कार ।।६४।।
पट्ट-नेत-शुक्ल नील सुपीत वसन । पाद पद्मे दिया नमस्करे सर्व जन ।।६५।।
नाना विध धातु पात्र देइ सर्व जने । ना जानि कतेक आसि पड़े श्रीचरणे ।।६६।।
जे चरण पूजिवारे सभार भावना । अज-रमा-शिव करे जे लागि कामना ।।६७।।
वैष्णवेर दास-दासी गणे ताहा पूजे । एइ मत फल हये–वैष्णवे जे भजे ।।६८।।
दूर्वा, धान्य, तुलसी लइया सर्व जने । पाइया अभय सभे देन श्रीचरणे ।।६९।।
नाना विध फल आनि देन पद तले । गन्ध, पुष्प, चन्दन चरणे केहो ढाले ।।७०।।

रूप ! आपकी जय हो, जय हो ।। ५४ ।। पतित पावन गुणसिन्धु की जय जय हो । परम शरण की, दीन-बन्धु की जय जय हो ।। ५५ ।। "हे क्षीरसिन्धु में गुप्तवास करने वाले ! आपकी जय हो, जय हो । हे भक्तों के लिए प्रकट विलास करने वाले । आपकी जय हो, जय हो ।। ५६ ।। अचिन्त्य, अगम्य, आदि तत्त्वस्वरूप आपकी जय २ हो । परम कोमल शुद्ध सत्त्व स्वरूप आपकी जय २ हो ।। ५७ ।। "विप्रकुल पावन की जय विप्रकुल भूषण की जय ! वेद धर्म के आदि और सब के जीवन स्वरूप प्रभु की जय ।। ५८ ।। अजामिल पतित पावन की जय २ ! पूतना दुष्कृति विनाशक की जय २ ।। अदोषदर्शी रमाकान्त की जय ३ । इस प्रकार सब बड़े २ पार्षद स्तुति करते हैं ।। ५९ ।। ६० ।। प्रभु के इस प्रकाश में उनका परम रूप प्रकट हुआ है उसके दर्शन कर प्रभु के सब दास परानन्द में डूब गए ।। ६१ ।। प्रभु गौरचन्द्र ने आज माया का सब आवरण हटाकर अपने श्री चरणों को अर्पण किया–भक्तवृन्द उनकी पूजा करने लगे ।। ६२ ।। कोई दिव्य गन्ध लाकर प्रभु के श्री चरणों पर लगाते हैं तो कोई कमल पर तुलसी रख कर उनसे श्री चरणों को पूजते हैं ।। ६३ ।। कोई रत्न के कोई स्वर्ण के, कोई चाँदी के अलङ्कारों को श्री चरण कमलों में अर्पण कर करके नमस्कार करते हैं ।। ६४ ।। पट्ट वस्त्र, नेत वस्त्र, शुक्ल, नील, पीत वस्त्रादि को श्री पाद पद्मों में अर्पण करके सब नमस्कार करते हैं ।। ६५ ।। सब भक्त वृन्द नाना प्रकार के धातु-पात्र भी चढ़ाते हैं । इस प्रकार न जाने कितने पात्र श्री चरणों में आ आ कर पड़े हुए हैं ।। ६६ ।। जिन श्री चरणों को पूजने की भावना सब की रहती है जिनकी कामना ब्रह्मा लक्ष्मी और शिवजी भी करते हैं ।। ६७ ।। उन्हीं की पूजा आज वैष्णवों के दास-दासीगण भी कर रहे हैं । वैष्णवों की सेवा करने वालों को ऐसा ही फल मिलता है ।।६८।। वे सब लोग आज समय प्राप्त करके, दूब, धान और तुलसीदल ले ले कर श्री चरणों पर चढ़ाते है ।। ६९ ।। नाना प्रकार के फल लाकर चरण समीप रखते है, और कोई गन्ध, पुष्प, चन्दन ही श्री चरणों पर ढाल देते हैं ।। ७० ।। कोई षोडशोपचार से पूजा करते हैं तो कोई षडङ्ग से ही–जैसी जिसके चित्त में स्फुरण हुई

केहो पूजे करिया षोड़श-उपचारे। केहो वा षडङ्ग-मते-जेन स्फुरे जारे ।।७१।।
कस्तूरी, कुङ्कम, श्रीकर्पूर, फागु धूलि। सभे श्रीचरणे देइ हइ कुतूहली ।।७२।।
चम्पक, मल्लिका, कुन्द, कदम्व, मालती। नाना-पुष्पे शोभे श्रीचरण-नख-पाँति ।।७३।।
परम प्रकाश–वैकुण्ठेर चूड़ा मणि। "किछु देह' खाइ" प्रभु चाहेन आपनि ।।७४।।
हस्त पोते प्रभु, सव देखे भक्त गण। जे जे मत देइ-सव करेन भोजन ।।७५।।
केहो देइ कदलक केहो दिव्य मुद्ग। केहो दधि क्षीर वा नवनी, केहो दुग्ध ।।७६।।
प्रभुर श्रीहस्ते सव देइ भक्त गण। अमायाय महाप्रभु करेन भोजन ।।७७।।
धाइल सकल गण नगरे नगरे। किनिञा उत्तम द्रव्य आनेन सत्त्वरे ।।७८।।
केहो दिव्य नारि केल उपस्कार करि। शर्करा-सहित देइ श्रीहस्त-उपरि ।।७९।।
नाना विध प्रकार सन्देश देइ आनि। श्रीहस्ते लइया प्रभु खायेन आपनि। ८०।।
केहो देइ मेओया क्षिरा-कर्कटिका फल। केहो देइ इक्षु केहो देइ गङ्गा जल ।।८१।।
देखिया प्रभुर सभे आनन्द-प्रकाश। दश-वार वीस-वार देइ कोन दास ।।८२।।
शत शत जने वा कतेक देइ जल। महा योगेश्वर पान करेन सकल ।।८३।।
सहस्र सहस्र भाण्ड–दधि क्षीर दुग्ध। सहस्र सहस्र कान्दिकला, कत मुद्ग ।।८४।।
कतेक वा सन्देश, कतेक वा फल मूल। कतेक सहस्र वाटा कर्पूर ताम्वूल ।।८५।।
कि अपूर्व शक्ति प्रकाशिला गौरचन्द्र। 'केमते खायेन' नाहि जाने भक्त वृन्द ।।८६।।
भक्तेर पदार्थ प्रभु खायेन सन्तोषे। खाइया सभार जन्म-कर्म कहे शेषे ।।८७।।

।। ७१ ।। सब बड़े आनन्द से कस्तूरी, कुंकुम, श्री कपूर, अबीर गुलाल, श्री चरणों पर डालते जाते हैं ।। ७२ ।। और श्री चरणों की नख-पंक्ति चम्पा, चमेली, कुन्द, कदम्ब, मालती आदि नाना प्रकार के पुष्पों से शोभा को प्राप्त हो रही हैं ।। ७३ ।। वैकुण्ठ के नायक चूडामणि प्रभु आज अपने ऐश्वर्य का परम प्रकाश करते हुए आप ही माँगने भी लगे–"कुछ दो तो खाऊँ ।। ७४ ।। ऐसा कह कर प्रभु हाथ पसारते हैं–तो यह देख भक्त गण भोजन देने लगते हैं, जो कोई जैसा कुछ भी देता हैं, प्रभु सब खा जाते हैं ।। ७५ ।। कोई केला देते हैं तो कोई दिव्य मूँग की दाल। कोई दही कोई खीर, कोई मक्खन, कोई दूध देता है ।। ७६ ।। सब भक्त लोग प्रभु के श्री हस्त में ही देते हैं और महाप्रभु सहज निष्कपट भाव से खाते जाते हैं ।। ७७ ।। (फिर तो क्या था) भक्त लोग सब बाजारों में दौड़ते फिरते हैं और उत्तम २ पदार्थ मोल लेकर भागे आते हैं ।। ७८ ।। कोई दिव्य नारियल संस्कार करके, उसमें शक्कर मिलाकर श्रीहस्त में अर्पण करते हैं ।। ७९ ।। कोई नाना प्रकार के सन्देश ला ला कर देते हैं और प्रभु स्वयं श्रीहस्त में लेकर खाते हैं ।। ८० ।। कोई मेवा कोई खीरा, कोई ककड़ी, कोई गन्ना तो कोई गङ्गाजल देता है ।। ८१ ।। प्रभु के आनन्द-प्रकाश के दर्शन कर कोई २ दास तो दस २ बीस २ बार देते हैं ।। ८२ ।। सैकड़ों ही भक्तों ने न जाने कितना जल दे डाला परन्तु प्रभु सब को पी गए महा योगेश्वर जो ठहरे ।। ८३ ।। दही, दूध और खीर के हजारों पात्र खाली हो गए। हजारों गढ केला के खा गए। कितनी मूँग की दाल ।। ८४ ।। कितना सन्देश कितना फल, कन्दमूल स्वाहा कर गए–इसका पार नहीं। कपूर मिले पानों के तो हजारों पानदान खाली हो गए ।। ८५ ।। अहो ! कैसी अपूर्व शक्ति आज श्री गौरचन्द्र ने प्रकाशित की ! इतना सब आप कैसे खाते जा रहे हैं–इसे भक्त लोग कोई नहीं जान पाते हैं ।। ८६ ।। भक्तों को वस्तु प्रभु बड़े संतुष्ट होकर खाते हैं और खाकर पीछे से सब के जन्म-कर्म बखानते जाते हैं ।। ८७ ।। (जिसकी जो बातें प्रभु बताते हैं) उस भक्त को वे सबे तत्काल स्म-

ततक्षणे से भक्तेर हय समङ्गरण। सन्तोषे आछाड़ खाय, करये क्रन्दन ॥८८॥
श्रीवासेरे बोले "अरे! पड़े तोर मने। भागवत शुनिलि जे अमुकेर स्थाने ॥८९॥
पदे पदे भागवत प्रेम रस मय। शुनिया द्रविल अति तोमार हृदय ॥९०॥
उच्च स्वर करि तुमि लागिला कान्दिते। विह्वल हइया तुमि पड़िला भूमिते ॥९१॥
अबुध पढ़ुया भक्ति योग ना जानिञा। वलाये कान्दये केने ना वूझिल इहा ॥९२॥
वाह्य नाहि जान' तुमि प्रेमेर विकारे। पढुया तोमारे निल वाहिर-दुयारे ॥९३॥
देवानन्द इथे ना करिल निवारण। गुरु यथा अज्ञ-सेइ मत शिष्य गण ॥९४॥
वाहिर-दुयारे तोमा' एड़िल टानिञा। तवे तुमि आइला परम दुःख पाञा ॥९५॥
दुःख पाइ मने तुमि विरले वसिला। आर वार भागवत चाहिते लागिला ॥९६॥
देखिया तोमार दुःख श्रीवैकुण्ठ हैते। आविर्भाव हइलाङ तोमार देहेते ॥९७॥
तवे आमि तोमार एइ हृदये वसिया। कान्दाइलुँ आपनार प्रेम योग दिया ॥९८॥
आनन्द हइल देह शुनि भागवत। सव तिति स्थान हैल वरिषार मत" ॥९९॥
अनुभव पाइया विह्वल श्रीनिवास। गड़ा गड़ि जाय कान्दे वहे घन श्वास ॥१००॥
एइ मत अद्वैतादि जतेक वैष्णव। सभारे देखिया करायेन अनुभव ॥१०१॥
आनन्द सागरे मग्न सर्व-भक्त गण। वसिया करेन प्रभु ताम्बूल भक्षण ॥१०२॥
कोन भक्त नाचे, केहो करे सङ्कीर्त्तन। केहो बोले 'जय जय श्रीशची नन्दन" ॥१०३॥
कदाचित् जे भक्त ना थाके सेइ-स्थाने। आज्ञा करि प्रभु तारे आनान आपने। १०४॥

रण हो आती हैं और वह आनन्द-विह्वल हो पछाड़ खाकर गिर पड़ता है और रोने लगता है ॥ ८८॥ श्रीवास से बोले—"अरे! आती है याद तूझे! तूने अमुक (देवानन्द पण्डित) के स्थान पर श्री भागवत सुनी थी ॥ ८९ ॥ श्री भागवत पद २ पर प्रेम रसमय है—उसे सुन कर तुह्मारा हृदय अत्यन्त ही पिघल चला था ॥ ९० ॥ "तब तुम ऊँचे स्वर से रोने लगे थे और विह्वल होकर भूमि पर गिर गए थे ॥ ९१ ॥ अबोध विद्यार्थी गण भला भक्ति भाव को क्या समझें। वे कहने लगे 'यह क्यों इतना रोता—पीटता है-कुछ समझ में नहीं आता ॥ ९२ ॥ "तुम तो भाव के तरङ्गों में पड़े बाहर से बेसुध थे। विद्यार्थी लोग तुमको घसीटते हुए बाहर द्वार पर ले गए ॥ ९३ ॥ इस पर देवानन्द ने उनको मना नहीं किया। गुरु जैसे अज्ञ वैसे ही शिष्य गण भी अज्ञ! ॥ ९४ ॥ "उन्होंने तुमको घसीट कर बाहर द्वार पर छोड़ दिया। तब तुम वहाँ से बड़े दुखित होकर घर लौटे ॥ ९५ ॥ मन में दुःख पाकर तुम एकान्त में जा बैठे और श्रीमद्भागवत को उठा कर देखने लगे ॥ ९६ ॥ "तब मैं तुम्हारा दुःख देख श्री वैकुण्ठ से आकर तुह्मारी देह में प्रकट हो गया ॥ ९७ ॥ तब मैंने तुम्हारे इस हृदय में बैठ निज प्रेमयोग देकर, तुमको रुलाया था ॥ ९८ ॥ "तब तुमको भागवत सुनकर बड़ा ही आनन्द हुआ और तुम्हारे नेत्रों के जल से वह स्थान सारा भीग गया—मानो तो वर्षा हुई हो" ॥ ९९ ॥ इस अनुभव को प्राप्त होकर श्रीवास आनन्द में विह्वल हो भूमि पर लोट पोट हो गए रोने और लम्बी २ साँस लेने लगे ॥ १०० ॥ इसी प्रकार श्री अद्वैतादि जितने वैष्णवजन हैं, सब को देख २ कर उनके अनुभव की सुध कराते हैं ॥ १०१ ॥ सब भक्त लोग आनन्द-सागर में मग्न हैं और प्रभु बैठे हुए ताम्बूल चर्बण कर रहे हैं ॥ १०२ ॥ भक्त लोग कोई नाच रहे हैं, कोई संकीर्त्तन कर रहे हैं, कोई "जय २ श्री शचीनन्दन" कर रहे हैं ॥ १०३ ॥ यदि कोई भक्त वहाँ नहीं भी है तो प्रभु आप आज्ञा करके उसे बुलवा भेजते हैं ॥ १०४ ॥ आने पर प्रभु "कुछ दो, खाऊँगा" कह कर श्रीहस्त फैला देते हैं। और जो भी जोकुछ

"किछु देह' खाइ" वलि पातेन श्रीहस्त । जेइ जे देयेन ताहा खायेन समस्त ॥१०५॥
खाइया वोलेन प्रभु "तोर मने आछे । अमुक निशाय आमि वसि तोर काछे ॥१०६॥
विप्र रूपे तोर ज्वर करिलाङ नाश । शुनिञा विह्वल हइ पड़े सेइ दास ॥१०७॥
गङ्गा दासे देखि बोले "तोर मने जागे । राज भये पलाइस् जवे निशा भागे ॥१०८॥
सर्व-परिकर सने आसि खेया घाटे । कोथाह नाहिक नौका–पड़िला सङ्कटे ॥१०९॥
रात्रि शेष हैल, तुमि नौका ना पाइया । कान्दिते लागिला अति दुःखित हइया । ११०॥
'मोर आगे जवने स्पर्शिवे परिवार । गाङ्गे प्रवेशिते मन हइल तोमार ॥१११॥
तवे आमि नौका निया खेयारिर रूपे । गङ्गाय वाहिया जाइ तोमार समीपे ॥११२॥
तवे नौका देखि तुमि सन्तोष हइला । अतिशय प्रीत करि कहिते लागिला ॥११३॥
'अरे भाइ ! आमारे राखह एइ वार । जाति प्राण धन देह–सकलि तोमार ।॥११४॥
रक्षा कर' परिकर-सङ्गे कर' पार । एक-तङ्का एक-जोड़ वस्त्र से तोमार ।॥११५॥
तवे तोमा' सङ्गे परिकर करि पार । तवे निज वैकुण्ठे गेलाङ आर वार" ॥११६॥
शुनि भासे गङ्गादास आनन्द सागरे । हेन लीला करे प्रभु गौराङ्ग सुन्दरे ॥११७॥
"गङ्गाय हइते पार चिन्तिले आमारे । मने पड़े पार आमि करिलाङ तोरे" ॥११८॥
शुनिञा मूर्च्छित गङ्गा दास गड़ि जाय । एइ मत कहे प्रभु अति अमायाय ॥११९॥
वसिया आछेन वैकुण्ठेर अधीश्वर । चन्दन-मालाय परिपूर्ण कलेवर ॥१२०॥
कोन प्रियतम करे श्रीअङ्गे व्यजन । श्रीकेश-संस्कार करे अति प्रिय जन ॥१२१॥
ताम्बूल जो गाय कोन् अति प्रिय भृत्य । केहो गाय, केहा वा सम्मुखे करे नृत्य ॥१२२॥

देते हैं उसे वे सब खा जाते हैं ॥ १०५ ॥ खाकर किसी से प्रभु कहते हैं–"तुझे याद है–उस रात को मैंने विप्र रूप से तेरे पास बैठ कर तेरा ज्वर नाश किया था" । यह सुन कर वह दास विह्वल होकर गिर पड़ता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ गङ्गादास को देख कर बोले–"तुझे याद आती है कि जब तू राजा के भय से रात में भाग निकला था ।। और कुटुम्ब सहित जव तू नौका-घाट पर आया, तो वहाँ कहीं भी नौका न मिली और तू सङ्कट में फँस गया ।। १०८ ।। १०९ ॥ रात बीत चली पर नौका न मिली । तब तू अत्यन्त दुखित होकर रोने लगा ॥ ११० ।। "अब मेरी आँखों के आगे राजा के यवन सिपाही मेरे बाल-बच्चों को पकड़ लेंगे–उनको स्पर्श कर लेंगे"–इस दुःख में तुमने गंगा में डूब मरने की मन में ठान ली ।। १११ ॥ तब मैं ही मल्लाह के रूप में नौका को लेकर गंगा में नौका खेता हुआ तुम्हारे पास आया था ॥ ११२ ॥ तब नौका देख कर तुम बड़े ही प्रसन्न हुए और अतिशय प्रीति पूर्वक मुझसे कहने लगे ॥ ११३ ।। "अरे भाई ! अबकी बार मेरी रक्षा कर दो–यह मेरी जाति, प्राण, धन देह–सब तुम्हारे ही हैं ।। ११४ ।। रक्षा करो ! परिवार समेत पार कर दो ।। एक टका (रुपया) और एक जोड़ा धोती तुम्हें दूँगा ॥ ११५ ।। "तब मैं तुमको परिवार समेत पार कर अपने वैकुण्ठ को चला गया" ।। ११६ ॥ यह सुन कर गंगादास आनन्द-सागर में बहने लगे । ऐसी २ लीला प्रभु श्री गौरांग सुन्दर करते हैं ।। ११७ ।। (प्रभु पुनः कहते हैं) 'गङ्गा से पार होने के लिए मेरा चिन्तन करने पर मैंने ही तुझे पार किया था–याद आती है ?" ।। ११८ ॥ यह सुन कर मूर्च्छित गङ्गादास लोट पोट होने लगते हैं । इस प्रकार आज प्रभु सब माया–छलना से रहित होकर भक्तों के प्रति कह रहे हैं ॥ ११९ ॥ श्री वैकुण्ठ के अधीश्वर विराजमान हैं । चन्दन और मालाओं से श्री अंग परिपूर्ण है ॥ १२० ॥ कोई प्यारा भक्त श्रीअंग पर पंखा कर रहा है, कोई अति लाडला उनके केशों को सँवार रहा है ॥ १२१ ॥

एइ मत सकल दिवस पूर्ण हैल। सन्ध्या आसि परम-कौतुके प्रवेशिल ॥१२३॥
धूप दीप लइया सकल भक्त गण। अर्चना करिते लागि लेन श्रीचरण ॥१२४॥
शङ्ख, घन्टा, करताल, मन्दिरा, मृदङ्ग। वाजायेन वहु विध उठिल आनन्द ॥१२५॥
अमायाय वसिया आछेन गौरचन्द्र। किछु नाहि वोले जत करे भक्त वृन्द ॥१२६॥
नाना विध पुष्प सभे पाद पद्मे दिया। "त्राहि प्रभु" वलि पड़े दण्डवत् हैया ॥१२७॥
केहो काकु करे, केहो करे जय ध्वनि। चतुर्दिगे आनन्द क्रन्दन मात्र शुनि ॥१२८॥
कि अद्भुत सुख हैल निशार प्रवेशे। जे आइसे से-इ जेन वैकुण्ठे प्रवेशे ॥१२९॥
प्रभुर हइल महा-ऐश्वर्य-प्रकाश। जोड़ हस्ते सम्मुखे रहिला सर्व दास ॥१३०॥
भक्त-ग्रङ्गे ग्रङ्ग दिया पाद पद्म मेलि। लीलाय आछेन गौर सिंह कुतूहली ॥१३१॥
करोन्मुख हइलेन श्रीगौर सुन्दर। जोड़ हस्ते रहिलेन सर्व-अनुचर ॥१३२॥
सात प्रहरिया-भावे सर्व जने जने। अमायाय प्रभु कृपा करेन आपने ॥१३३॥
आज्ञा हैल "श्रीधरेर झाट गिया आन'। आसिया देखुक मोर प्रकाश-विधान ॥१३४॥
निरवधि भावे मोर वड़ दुःख पाय्या। आसिया देखुक मोरे, झाट आन' गिया ॥१३५॥
नगरेर अन्ते गिया थाकिह वसिया। जे मोरे डाकये तारे आनिह धरिया" ॥१३६॥
धाइल वैष्णव गण प्रभुर वचने। आज्ञा लइ गेला तारा श्रीधर-भवने ॥१३७॥
सेइ श्रीधरेर किछु शुनह आख्यान। खोलार पसार करि राखे निज-प्राण ॥१३८॥
एक बार खोला गाछि किनिञा आनय। खानि खानि करि ताहा काटिया वेचय ॥१३९॥

कोई दूसरा दुलारा दास उनको ताम्बूल अर्पण कर रहा है। कोई गा रहे हैं तो कोई सामने नृत्य कर रहे हैं ॥ १२२ ॥ इसी प्रकार समस्त दिन व्यतीत हो गया। परम कौतुक के साथ संध्या ने प्रवेश किया ॥ १२३॥ भक्त लोग सब धूप दीप लेकर प्रभु के श्री चरणों की आरती उतारने लगे॥ १२४ ॥ और शङ्ख घण्टा, करताल, मजीरा, मृदंग बजाने लगे—परम आनन्द छा गया॥ १२५ ॥ प्रभु माया—रहित होकर बैठे हैं। भक्त लोग कुछ भी करें, प्रभु कुछ नहीं कहते हैं ॥ १२६ ॥ फिर सब भक्तों ने नाना प्रकार के पुष्प प्रभु के श्री पाद पद्म पर अर्पण किये तथा "रक्षा करो प्रभो ! कहते हुए दण्ड के समान भूमि पर पड़ गए। १२७॥ कोई भक्त गिडगिड़ाते हुए विनती कर रहे हैं तो कोई जय जयकार कर रहे हैं। बस चारों ओर आनन्द का क्रन्दन कोलाहल मचा हुआ है ॥ १२८ ॥ संध्या के समय कैसा अद्भुत सुख छा गया कि जो आता है वही मानो तो वैकुण्ठ में ही चला जाता है ॥ १२९ ॥ प्रभु अपने महा ऐश्वर्य का प्रकाश करके विराजमान हैं और सब दास वृन्द हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हैं ॥ १३० ॥ परम विनोदी गौरसिंह भक्त के अंग के ऊपर अङ्ग (हस्त ?) दिये चरण कमलों को मिला कर आनन्द पूर्वक सिंहासन पर विराजमान हैं॥ १३१ ॥ तब श्री गौरसुन्दर वर देने के लिए तैयार हुए। सब अनुचर वृन्द हाथ जोड़े हुए हैं ॥ १३२ ॥ इस "सात—पहरिया भाव" में एक २ भक्त के ऊपर प्रभु स्वयं अमायिकी कृपा करते हैं ॥१३३॥ श्रीमुख से आज्ञा हुई कि 'झट से श्रीधर को ले आओ। वह आकर मेरे प्रकाश के विधान को देखे" ॥१३४॥ "वह बड़ा दुःख पाता हुआ भी निरन्तर मेरा चिन्तन किया करता है। झटपट ले आओ उसे। वह आकर मुझे देखे ॥१३५ ॥ तुम लोग इस मोहल्ले के आखीर में जाकर रहो। वहाँ जिस को तुम मुझे बुलाते हुए सुनो, उसे पकड़ लाना" ॥ १३६ ॥ प्रभु के वचनों को सुन कर वैष्णव लोग "जो आज्ञा" कह कर श्रीधर के घर को उठ भागे॥ १३७ ॥ उस श्रीधर का चरित्र कुछ सुनो। वह केला की दुकान कर अपने प्राणों की रक्षा करता है ॥ १३८ ॥ एक बार

ताहाते जे-किछु हय दिवसे उपाय। तार अर्द्ध गङ्गार नैवेद्य लागि जाय ॥१४०॥
अर्द्धक सदाय हय निज-प्राण-रक्षा। एइ मत हय विष्णु भक्तेर परीक्षा ॥१४१॥
महा सत्य वादी तिंहो जेन युधिष्ठिर। आर जेइ मूल्य बोले, ना हय वाहिर ॥१४२॥
मध्ये मध्ये जेवा जन ताँर तत्त्व जाने। ताहार वचने मात्र द्रव्य-खानि किने ॥१४३॥
एइ मते नवद्वीपे आछे महाशय। 'खोलावेचा' ज्ञान करि केहो नाविनय ॥१४४॥
चारि-प्रहर रात्रि निद्रा नाहि कृष्ण नामे। सर्व-रात्रि 'हरि' बोले दीघल-आह्वाने ॥१४५॥
जतेक पाषण्डी बोले श्रीधरेर डाके। रात्रे निद्रा नाहि जाइ दुइ कर्ण फाटे ॥१४६॥
महा-चाषा वेटा ! भाते पेट नाहि भरे। क्षुधाय व्याकुल हैया रात्रि जागि मरे' ॥१४७॥
एइ मत पाषण्डी मरये मन्द वलि। निज कार्य करये श्रीधर कुतूहली ॥१४८॥
'हरि' वलि, डाकिते जे आछये श्रीधर। निशा भागे प्रेम योगे डाके उच्च स्वर ॥१४९॥
आध पथ भक्त गण गेल मात्र धाय्या। श्रीधरेर डाक शुने–तथाइ थाकिया ॥१५०॥
डाक-अनुसारे गेला भागवत गण। श्रीधरेर धरिया लइला ततक्षण ॥१५१॥
"चल चल महाशय ! प्रभु देख सिया। आमरा कृतार्थ हइ तोमा परशिया ॥१५२॥
शुनिञा प्रभुर नाम श्रीधर मूर्च्छित। आनन्दे विह्वल हइ पड़िला भूमित ॥१५३॥
आथे व्यथे भक्त गण लइला तुलिया। विश्वम्भर-अग्रे निल आलग करिया ॥१५४॥
श्रीधर देखिया प्रभु प्रसन्न हइला। 'आइस-आइस' करि वलिते लागिला ॥१५५॥

जो केला का वृक्ष खरीद कर ले आता है, उसके टुकड़े २ कर उन्हें बेचता है ॥ १३९ ॥ उससे दिन भर में जो कुछ कमाई होती है, उसके आधे से श्री गङ्गाजी को भोग लगाता है ॥ १४० ॥ और आधे से ही सदा अपने प्राणों की रक्षा करता है। विष्णु-भक्त की परीक्षा इसी प्रकार हुआ करती है ॥ १४१ ॥ वह महा सत्यवादी है मानो तो युधिष्ठिर ही हो। जो मूल्य एक बार कह देता, उससे फिर दूसरा मूल्य नहीं कहता ॥ १४२ ॥ जो लोग उसकी इस यथार्थ वादिता को जानते हैं, वे बीच २ में इसके पास से लेते हैं। जो मूल्य वह एक बार कह देता है, तुरन्त ही वही मूल्य देकर ले जाते हैं ॥ १४३ ॥ इस प्रकार ये 'महाशय' नवद्वीप में रहते हैं। पर 'खोला बेचने वाला' समझ कर कोई इनको नहीं पहचानता है ॥ १४४ ॥ श्रीकृष्ण नाम लेते हुए इन्हें रात चार पहर नींद नहीं सारी रात "हरि हरि" को ऊँची २ टेर लगाते हैं ॥ १४५ ॥ पाखण्डी निन्दक लोग कहते कि श्रीधर की चिल्लाहट के मारे हम रात भर सो नहीं पाते हैं और हमारे दोनों कान फटे जाते हैं ॥ १४६ ॥ "गँवार उल्लू कहीं का। भात से पेट भरता नहीं–इसी से भूख से व्याकुल होकर यह रात भर जग जग कर मरता है" ॥ १४७ ॥ इस प्रकार पाखण्डी लोग गाली दे दे कर जलते-मरते पर श्रीधर मस्त होकर अपने काम में लगा रहता ॥ १४८ ॥ रात्रि का समय है। श्रीधर अपने घर में ऊँचे २ सुर से, बड़े प्रेम के साथ "हरि हरि टेर रहा है ॥ १४९ ॥ इधर से भक्त लोग आधा ही रास्ता जा पाये थे कि वहीं उनको श्रीधर की टेर सुनायी पड़ी ॥ १५० ॥ उस टेर का अनुसरण करते हुए भक्त लोग चले और तुरन्त ही श्रीधर को जा पकड़ा ॥ १५१ ॥ वे बोले–"महाशय जी ! चलिए, चलिए ! प्रभु के दर्शन कीजिए। हमतो आज तुम्हारा स्पर्श पा कर कृतार्थ हुए" ॥ १५२ ॥ प्रभु का नाम सुन कर श्रीधर तो मूर्च्छित हो गया और आनन्द में विह्वल होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥ १५३ ॥ भक्त लोगों ने जैसे-तैसे उसको उठाया और सब से बचा कर श्री विश्वम्भर के आगे ले आए ॥ १५४ ॥ श्रीधर को देख कर प्रभु बड़े प्रसन्न हुए और "आओ २" कहने लगे ॥ १५५ ॥ श्रीधर ! तुमने मेरी अमित आराधना की है और मेरे

विस्तर करिया आछ मोर आराधन । वहु जन्म मोर प्रेमे त्यजिला जीवन ।।१५६।।
एइ जन्मे मोर सेवा करिला विस्तर । तोमार खोलाय अन्न खाइलुँ निरन्तर ।।१५७।।
तोमार हस्तेर द्रव्य खाइलुँ विस्तर । पासरिला आमा' सङ्गे जे कैला उत्तर'' ।।१५८।।
जखने करिला प्रभु विद्यार विलास । परम-उद्धत हेन जखने प्रकाश ।।१५९।।
सेइ काले गूढ़-रूपे श्रीधरेर सङ्गे । खोला-केना-बचा-छले कैल वहुरङ्गे ।।१६०।।
प्रतिदिन श्रीधरेर पसारेते गिया । थोड़, कला, मूल, खोला आनेन किनिया ।।१६१।।
प्रति दिन चारि दण्ड कलह करिया । तवे से किनये द्रव्य अर्द्ध-मूल्य दिया ।।१६२।।
सत्य वादी श्रीधर- जे निव ताहा वोले । अर्द्ध मूल्य दिया प्रभु निज-हस्ते तोले ।।१६३।।
उठिया श्रीधर दास करे काढ़ा काढ़ि । एइ मत श्रीधर-ठाकुरे हुड़ा हुड़ि ।।१६४।।
प्रभु वोले ''केने भाइ श्रीधर तपस्वि । अनेक तोमार अर्थ आछे हेन वासि ।।१६५।।
आमार हाथेर द्रव्य लहसि काढ़िया । एत-दिने केवा आमि ना जानिल इहा ।।१६६।।
परम व्रह्मण्य श्रीधर-क्रुद्ध नाहि हय । वदन देखिया सब द्रव्य काढ़ि लय ।।१६७।।
मदन मोहन रूप गौराङ्ग सुन्दर । ललाटे तिलक उर्द्ध शोभे मनोहर ।।१६८।।
त्रिकच्छ-वसन शोभे कुटिल-कुन्तल । प्रकृते नयन दुइ परम चञ्चल ।।१६९।।
शुभ्र यज्ञ सूत्र शोभे वेढ़िया शरीरे । सूक्ष्म रूपे अनन्त जे हेन कलेवरे ।।१७०।।
अधरे ताम्वूल-हासे श्रीधरे चाहिया । आर वार खोला लये आपने तुलिया ।।१७१।।

प्रेम में बहुत से जन्मों में प्राण दिये हैं ।। १५६ ।। ''इस जन्म में भी तुमने मेरी बहुत सेवा की है । तुम्हारे खोला (केला की बाहरी धूल) पर मैंने सदा अन्न-प्रसाद पाया है ।। १५७ ।। तुम्हारे हाथ के बहुत से पदार्थ मैंने खाये हैं । तुम मेरे साथ जो सवाल-जबाब किया करते थे—उन्हें भूल गए क्या ?'' ।। १५८ ।। (वह कथा इस प्रकार से है कि) जिस समय प्रभु-विद्या-विलास में रत थे उस समय आप अपने को परम उद्दण्ड जैसा दिखलाते थे ।। १५९ ।। उस समय अपने रूप को छिपाकर, प्रभु ने श्रीधर के साथ, केला के पत्ते, फल-फूल लेने के छल से बहुत कुछ कौतुक-विनोद किया था ।। १६० ।। आप नित्य प्रति श्रीधर के दुकान पर जाकर केला के फूल गुदा फल, मूल छाल, मोल ले आते थे ।। १६१ ।। परन्तु प्रति दिन चार घड़ी उससे लड़-झगड़ लेते थे और तब आधे दाम पर वस्तु मोल लेते थे ।। १६२ ।। सत्यवादी श्रीधर जो दाम लेंगे वही बतलायेंगे भी, परन्तु प्रभु उसका आधा ही देकर वस्तु अपने ही हाथ से उठा लेते हैं ।। १६३ ।। तब दास श्रीधर भी उठ कर खड़ा हो जाता है और छीनने लगता है । इस प्रकार सेवक श्रीधर और प्रभु गौर में खूब छीना-झपटी और जिद्दम जिद्द चलती है ।। १६४ ।। प्रभु कहते—''क्यों भाई तपस्वी श्रीधर ! मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे पास बहुत धन है ।। १६५ ।। तुम मेरे हाथ से चीज-वस्तु छीन लेते हो ! अरे ! तुम इतने दिनों में भी न जान पाये कि मैं कौन हूँ ?'' ।। १६६ ।। श्रीधर परम ब्राह्मण भक्त है, वह प्रभु पर क्रोध नहीं करता हैं । बस उनके मुख-चन्द्र की ओर ताकता है और अपनी सब चीजें छीन लेता है ।। १६७ ।। श्री गौरांग-सुन्दर का मदनमोहन रूप है—मस्तक पर ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक मनोहर शोभा दे रहा है ।।१६८।। त्रिकच्छ वस्त्र धारण किये हुए हैं, कुटिल कुन्तल शोभा दे रहे हैं । नयन युगल सहज स्वभाव से परम चंचल हैं ।। १६९ ।। शुभ्र यज्ञोपवीत वदन पर शोभा दे रहा है—यह यज्ञोपवीत क्या है—मानो तो अनन्त (शेष) देव ही सूक्ष्म रूप से श्री अंग पर विराजमान हैं ।। १७० ।। अधर पर पान की लाली है । ऐसे अधरों से आप श्रीधर की ओर देख कर हँस देते हैं . और फिर दुबारा केला उठा लेते हैं ।। १७१ ।। श्रीधर कहता है ''सुनो ब्राह्मण

श्रीधर बोलेन "शुन ब्राह्मण-ठाकुर। क्षमा कर' मोरे मुञि तोमार कुक्कुर ॥१७२॥
प्रभु बोले "जानि तुमि परम-चतुर। खोला-वेचा अर्थ आछे तोमार प्रचुर ॥१७३॥
"आर कि पसार नाहि" श्रीधर से बोले। "अल्प कड़ि दिया तथा किन' पात खोले ॥१७४॥
प्रभु बोले "योग निञा आमि नाहि छाड़ि। थोड़ कला दिया मोरे तुमि लह कड़ि ॥१७५॥
रूप देखि मुग्ध हैया श्रीधर से हासे। गालि पाड़े विश्वम्भर परम सन्तोषे ॥१७६॥
"प्रत्यह गङ्गारे द्रव्य देह' त किनिया। आमारे वा किछु दिले मूल्येते छाड़िया ॥१७७॥
जे गङ्गा पूजह तुमि, आमि तार पिता। सत्य सत्य तोमारे कहिलुँ एइ कथा" ॥१७८॥
कर्ण धरि श्रीधर से 'हरि हरि' बोले। उद्धत देखिया तारे देइ पात-खोले ॥१७९॥
एइ मत प्रति दिन करेन कन्दल। श्रीधरेर ज्ञान-"विप्र परम-चञ्चल" ॥१८०॥
श्रीधर बोलेन "मुञि हारिलुँ तोमारे। कड़ि विनु किछु दिव क्षमा कर' मोरे ॥१८१॥
एक खण्ड खोला दिव, एक खण्ड थोड़। एक खण्ड कला मूल, आरो दोष मोर ॥१८२॥
प्रभु बोले "भाल भाल आर नाहि दाय। श्रीधरेर खोले प्रभु प्रत्यह अन्न खाय ॥१८३॥
भक्तेर पदार्थ प्रभु हेन मते खाय। कोटि हैले अभक्तेर उलटि ना चाय ॥१८४॥
एइ लीला करिव चैतन्य हेन आछे। इहार कारणे से श्रीधर खोला बेचे ॥१८५॥
एइ लीला लागिया श्रीधरे वेचे खोला। के वुझिते पारे विष्णु-वैष्णवेर लीला ॥१८६॥
विनि प्रभु जानाइले सेइ नाहि जाने। सेइ कथा प्रभु कराइ लेन स्मरणे ॥१८७॥

देवता! मुझे क्षमा करो। मैं तो तुम्हारा कुत्ता हूँ" ॥ १७२ ॥ प्रभु कहते-"मैं जानता हूँ, तुम बड़े चतुर हो। खोला बेच २ कर तुम्हारे पास काफी धन हो गया है ॥ १७३ ॥ श्रीधर कहता-"क्या और दुकानें नहीं है। कम दाम देकर वहीं से केला, पत्ता खरीद लो" ॥ १७४ ॥ प्रभु कहते-"मैं अपने रोज के सौदागर को नहीं छोड़ सकता। अरे! दाम लो मुझसे और दो थोड़े (केला का गुदा) और केला ॥ १७५ ॥ श्रीधर तो प्रभु का रूप देख कर मुग्ध हो जाता है और हँसने लगता है। तब तो प्रभु विश्वम्भर मन में परम संतुष्ट होते हुए भी बाहर से खरी-खोटी सुनाने लगते हैं ॥ १७६ ॥ प्रभु कहते-"तुम नित्य प्रति चोज वस्तु खरीद कर गङ्गा को तो चढ़ाते हो, फिर मेरे लिए दाम कुछ छोड़ दोगे तो क्या हो जायगा ॥ १७७ ॥ अरे! जिस गङ्गा की तुम पूजा करते हो मैं तो उसका बाप हूँ। यह मैंने तुमसे सत्य २ बात कही है ॥ १७८ ॥ तब तो श्रीधर झट से अपने कानों को पकड़ कर "हरि हरि" कहने लगता, और अत्यन्त ढीठ देख कर उनको खोला-पत्ता दे देता ॥ १७९ ॥ इस प्रकार प्रभु नित्य प्रति श्रीधर से तकरार किया करते। श्रीधर बस इतना ही जानता कि यह विप्र बड़ा चंचल है ॥ १८० ॥ श्रीधर कहता-"मैं हारा! मैं तुम्हें बिना मूल्य के कुछ दूँगा-क्षमा करो मुझे ॥ १८१ ॥ एक टुकड़ा खोला ऐक टुकड़ा थोड, और एक टुकड़ा केला-मूल दूँगा-फिर तो मेरा कोई दोष नहीं रहेगा न ॥ १८२ ॥ प्रभु कहते-'अच्छा २! अब और तुम्हारा देना नहीं है"। श्रीधर के खोला पर प्रभु प्रति दिन अन्न-भात खाते हैं। १८३ ॥ भक्तों की वस्तु ही प्रभु इस प्रकार खाते हैं। अभक्तों की वस्तु कोटि २ क्यों न हो-उधर उलट कर के भी नहीं देखते हैं ॥ १८४ ॥ श्री चैतन्यचन्द्र श्रीधर के साथ इस प्रकार की लीला करेंगे ऐसा ही विधान था। इसीलिए श्रीधर खोला बेचते हैं ॥ १८५ ॥ इस लीला के लिए ही श्रीधर खोला बेचते हैं। विष्णु और वैष्णवों की लीला कौन समझ सकता है ॥ १८६ ॥ बिना प्रभु के जनाये, वह (श्रीधर) भी इसे नहीं जानता था। इसीलिए प्रभु ने उस प्रसङ्ग को यहाँ सुध दिलाई ॥ १८७ ॥ प्रभु बोले-"श्रीधर! देख मेरे रूप को! यदि तू चाहे तो अष्ट सिद्धियों को आज

प्रभु बोले "श्रीधर ! देखह रूप मोर। अष्ट सिद्धि दास आजि करि देङ तोर" ॥१८८॥
माथा तुलि चा'हे महा पुरुष श्रीधर। तमाल-श्यामल देखे सेइ विश्वम्भर ॥१८९॥
हाथे वंशी मोहन, दक्षिणे वलराम। महा ज्योतिर्मय सब देखे विद्यमान ॥१९०॥
कमला ताम्बूल देइ हस्तेर उपरे। चतुर्मुख पञ्च मुख आगे स्तुति करे ॥१९१॥
महा फणा-छत्र देखे शिरेर उपरे। सनक, नारद, शुक, देखे जोड़ करे ॥१९२॥
प्रकृति-स्वरूपा सव जोड़-हस्त करि। स्तुति करे चतुर्दिगे परम-सुन्दरी ॥१९३॥
देखि मात्र श्रीधर हइला मूरछित। सेइ मत ढलिया पड़िला पृथिवीत ॥१९४॥
"उठ उठ श्रीधर !" प्रभुर आज्ञा हैल। प्रभु-वाक्ये श्रीधर से चैतन्य पाइल ॥१९५॥
प्रभु वोले "श्रीधर ! आमारे कर' स्तुति"। श्रीधर वोलये "नाथ मुञि मूढ़ मति ॥१९६॥
कोन् स्तुति जानों मुञि-छारेर शकति। प्रभु वोले "तोर वाक्य-सेइ मोर स्तुति" ॥१९७॥
प्रभुर आज्ञाय जगन्माता सरस्वती। प्रवेशिला जिह्वाय, श्रीधर करे स्तुति ॥१९८॥
"जय जय जय महाप्रभु विश्वम्भर। जय जय जय नवद्वीप-पुरन्दर ॥१९९॥
जय जय अनन्त-ब्रह्माण्ड-कोटि-नाथ। जय जय शची-पुण्यवती-गर्भ जात ॥२००॥
जय महा-वेद-गोप्य जय विप्रराज। युगे युगे धर्म पाल करि नाना काज ॥२०१॥
गूढ़ रूपे पेड़ाइला नगरे नगरे। विनि तुमि जानाइले के जानिते पारे ॥२०२॥
तुमि धर्म तुमि कर्म तुमि भक्ति ज्ञान। तुमि शास्त्र तुमि वेद तुमि सर्व ध्यान ॥२०३॥
तुमि ऋद्धि तुमि सिद्धि तुमि योग भोग। तुमि श्रद्धा तुमि दया तुमि मोह लोभ ॥२०४॥

तेरी दासी बना दूँ" ॥ १८८ ॥ महापुरुष श्रीधर ने सिर उठा कर देखा तो गौर विश्वम्भर को तमाल सदृश श्याम रूप में दर्शन किया ॥ १८९ ॥ उनके हाथ में मोहिनी वंशी है, दाहिनी ओर बलराम हैं और भी महा ज्योतिर्मय स्वरूप विराजमान हैं ॥ १९० ॥ लक्ष्मी जो आप के हाथ में ताम्बूल दे रही हैं। सामने चतुर्मुख पञ्चमुख आदि देवता गण स्तुति कर रहे हैं ॥ १९१ ॥ शीश के ऊपर महाफणों का क्षत्र दिखाई देता है। और हाथ जोड़े हुए सनकादि, नारद, शुकदेव आदि मुनिगण भी दिखाई देते हैं ॥ १९२ ॥ शक्ति स्वरूपिणी परम सुन्दरी रमणी गण सब हाथ जोड़े, चारों ओर खड़ी स्तुति कर रही है ॥ १९३ ॥ ये सब देखते ही श्रीधर तो मूर्च्छित हो गया, और पृथ्वी पर लुढक पड़ा ॥ १९४ ॥ तब प्रभु को आज्ञा हुई कि "उठ २ श्रीधर" प्रभु के वाक्य से श्रीधर सचेत हो उठा ॥ १९५ ॥ प्रभु बोले "श्रीधर ! मेरी स्तुति कर !" श्रीधर बोला- "नाथ ! मैं तो मूढ मति हूँ" ॥ १९६ ॥ "मैं भला आपकी स्तुति क्या जानूँ। इस तुच्छ की शक्ति ही क्या ? प्रभु बोले "तेरे मुख के वचन ही मेरी स्तुति है। तू बोल कुछ" ॥ १९७ ॥ प्रभु की आज्ञा से जगन्माता सरस्वती श्रीधर की जिह्वा पर आ विराजीं, और श्रीधर स्तुति करने लगा ॥ १९८ ॥ "महाप्रभु विश्वम्भर की जय ३ नवद्वीप–पुरन्दर की जय ३ ॥ १९९ ॥ अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नाथ की जय २। पुण्यवती शची के गर्भ से प्रकट प्रभु की जय २ ॥ २०० ॥ "हे वेद के महागोप्य तत्त्व ! आपकी जय हो। हे विप्रराज ! आपकी जय हो। आप युग २ में नाना कार्य द्वारा धर्म को पालन किया करते हैं ॥ २०१ ॥ आप इस नदिया नगर में गुप्त रूप से विचरते रहे, आप को कोई पहचान न सका। आप के जनाये बिना कौन आप को जान भी कौन सकता है ॥ २०२ ॥ "तुम धर्म स्वरूप हो, तुम कर्म स्वरूप हो। तुम ही भक्ति और ज्ञान स्वरूप हो। तुम शास्त्र हो तुम वेद हो और तुम ही सर्वध्यान स्वरूप हो ॥ २०३ ॥ तुम ऋद्धि हो, तुम सिद्धि हो, तुम ही योग और भोग-स्वरूप हो। तुम श्रद्धा हो, तुम दया हो, तुम ही मोह और लोभ-स्वरूप हो ॥२०४॥

तुमि इन्द्र तुमि चन्द्र तुमि अग्नि जल। तुमि सूर्य तुमि वायु तुमि धन बल ॥२०५॥
तुमि भक्ति तुमि मुक्ति तुमि अज भव। तुमिवा हइबे केने–तोमार ए सब ॥२०६॥
पूर्वे मोर स्थाने तुमि आपने वलिला। 'तोर गङ्गा देख मोर चरण-सलिला" ॥२०७॥
तभू मोर पाप-चित्ते नहिल स्मरण। ना जानिलुँ तुमा दुइ अमूल्य चरण ॥२०८॥
जे तुमि करिला धन्य गोकुल नगरे। एखने हइला नवद्वीप-पुरन्दरे ॥२०९॥
राखिया वेड़ाओ भक्ति शरीर-भितरे। हेन भक्ति नवद्वीपे हइला वाहिरे ॥२१०॥
भक्ति योगे भीष्म तोमा' जिनिल समरे। भक्ति योगे यशोदाय वान्धिल तोमारे ॥२११॥
भक्ति योगे तोमारे बेचिल सत्य भामा। भक्ति वशे तुमि कान्धे कैल गोपरामा ॥२१२॥
अनन्त ब्रह्माण्ड-कोटि बहे जारे मने। से तुमि श्रीदाम गोप वहिला आपने ॥२१३॥
जाहा हैते आपनार पराभव हये। सेइ वड़ गोप्य, लोक काहारेओ ना कहे ॥२१४॥
भक्ति लागि सर्व-स्थाने पराभव पाय्या। जिनिञा वेड़ाओ तुमि भक्ति लुकाइया ॥२१५॥
से माया हइल चूर्ण आर नाहि लागे। हेर-देख सकल भुवने भक्ति मागे ॥२१६॥
से काले हारिला जन-दुइ चारि-स्थाने। ए काले वान्धिवा तोमा' सर्व जने जने" ॥२१७॥
महा-शुद्धा-सरस्वती श्रीधरेर शुनि। विस्मय पाइला सर्व-वैष्णव-आनि ॥२१८॥
प्रभु वोले "श्रीधर! वाछिया माग' वर। अष्ट सिद्धि दिव आजि तोमार गोचर ॥२१९॥
श्रीधर वोलेन "प्रभु! आरो भाण्डाइवा। निश्चिन्त्ये थाकह तुमि आइ ना पारिवा ॥२२०॥

"तुम इन्द्र हो, तुम चन्द्र हो, तुम अग्नि और जल स्वरूप हो। तुम सूर्य हो, तुम वायु हो, तुम ही धन और बल स्वरूप हो ॥२०५॥ तुम भक्ति हो, तुम मुक्ति हो, तुम ही ब्रह्मा और शङ्कर हो। (नहीं २) तुम ये सब क्यों होओगे! ये हो सब तुम्हारे हैं ॥ २०६ ॥ "तुमने आप ही मुझसे पहले कहा था कि देख! यह तेरी गङ्गा तो मेरे चरणों का जल है। २०७ ॥ तब भी मेरे पापी चित्त को चेत नहीं हुआ और मैं तुम्हारे इन अमूल्य चरण युगल को नहीं पहचान सका ॥ २०८ ॥ "जिस तुमने गोकुल नगर को धन्य किया वही तुम अब नवद्वीप में पुरन्दर हुए हो ॥ २०९ ॥ आप जिस भक्ति को अपने भीतर धारण करके विचरते हो, वह भक्ति यहाँ नवद्वीप में बाहर प्रकट हो गई ॥ २१० ॥ "भक्ति के प्रभाव से ही भीष्म पितामह ने तुमको जीत लिया था। भक्ति के बल से ही यशोदा जी ने तुमको बाँध लिया था ॥ २११ ॥ भक्ति के भाव में ही सत्य-भामा ने तुमको बेच दिया था और भक्ति के वशीभूत होकर ही तुमने गोपरमणी (श्रीराधा) को अपने कन्धे पर चढ़ाया था ॥ २१२ ॥ तुमको तो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के प्राणी अपने हृदय में धारण करते हैं और आप तुम श्रीदामा गोप को अपने कन्धे पर ले जाते हो ॥ २१३ ॥ जिसके द्वारा अपनी पराजय होती है, उसे लोग किसी को बतलाते नहीं, उसे तो बड़े यत्न से छिपा कर रखते हैं ॥ २१४ ॥ तुम भी भक्ति महारानी के द्वारा सब ठौर पछाड़ पा करके भी भक्ति को छिपा कर, विजयी बने हुए विचरते हो ॥२१५॥ अब वह आप की माया (छल-कपट) चूर २ हो गई है–वह अब और नहीं चल रही है। कारण कि यह देखो यह देखो सब लोक भक्ति माँग रहे हैं ॥ २१६ ॥ उस समय तो तुम दो चार जनों के पास ही हारे थे, परन्तु इस समय तो तुमको एक २ जन सब (अपने प्रेम में) तुमको बाँध लेंगे" ॥ २१७ ॥ श्रीधर की ऐसी महा विशुद्ध वाणी को सुनकर वैष्णव अग्रगण्य सब विस्मित को प्राप्त हुए ॥ २१८ ॥ तब प्रभु बोले "श्रीधर! चुन करके वर माँग लो। मैं आज अष्ट सिद्धि प्रत्यक्ष रूप में तुमको दे दूँगा" ॥ २१९ ॥ श्रीधर बोला–"प्रभो! और बहकाने चाहते हो क्या? पर यह निश्चय मानो कि अब तुम्हारी चाल चलेगी नहीं

प्रभु बोले "दर्शन मोर व्यर्थ नहे। अवश्य पाइवा वर-जेइ चिते लये" ॥२२१॥
"माग' माग" पुन: पुन बोले विश्वम्भर। श्रीधर बोलये "प्रभु! देह' एइ वर ॥२२२॥
'जे ब्राह्मण काढ़ि लेन मोर खोला पात। से ब्राह्मण हउ मोर जन्मे जन्मे नाथ ॥२२३॥
जे ब्राह्मण मोर सङ्गे करिल कन्दल। मोर प्रभु हउ ताँर चरण-युगल' ॥२२४॥
वलिते वलिते प्रेम वाढ़ये श्रीधरे। दुइ वाहु तुलि कान्दे महा-उच्च स्वरे ॥२२५॥
श्रीधरेर भक्ति देखि वैष्णव-सकल। अन्योऽन्ये कान्दे सव हइया विह्वल ॥२२६॥
हासि बोले विश्वम्भर "शुनह श्रीधर। एक महा राज्ये करों तोमारे ईश्वर ॥२२७॥
श्रीधर बोलये आमि किछुइ ना चाइ। हेन कर' प्रभु! जेन तोर नाम गाइ ॥२२८॥
प्रभु बोले "श्रीधर! आमार तुमि दास। एतेके देखिले तुमि आमार प्रकाश ॥२२९॥
एतेके तोमार मति-भेद ना हइल। वेद गोप्य भक्ति योग तोरे आमि दिल ॥२३०॥
जय जय ध्वनि हैल वैष्णव मण्डले। 'श्रीधर पाइल वर' शुनिल सकले ॥२३१॥
धन नाहि, जन नाहि, नाहिक पाण्डित्य। के चिनिव ए सकल चैतन्येर भृत्य ॥२३२॥
कि करिव विद्या-धन-रूप-वेश-कुले। अहङ्कार वाढ़ि सब पड़ये निर्मूले ॥२३३॥
कला मूला वेचिया श्रीधर पाइल जाहा। कोटि-कल्पे कोटीश्वरे ना देखिल ताहा ॥२३४॥
अहङ्कार द्रोह मात्र विषयेते आछे। अध: पात-फल तार ना जानये पाछे ॥२३५॥
देखि मूर्ख-दरिद्रेरे सुजने जे हासे। कुम्भी पाके जाय सेइ निज-कर्म-दोषे ॥२३६॥
वैष्णव चिनिते पारे काहार शकति। आछये सकल सिद्धि, देखिते दुर्गति ॥२३७॥

॥ २२० ॥ प्रभु बोले—"परन्तु मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। जो तुम्हारा चित्त चाहेगा वही वरदान मिल जायगा ॥ २२१ ॥ इस प्रकार जव विश्वम्भर प्रभु बार २ "माँग २" कहने लगे तो श्रीधर बोला—"प्रभो! यह वर दो कि ॥ २२२ ॥ "जिस ब्राह्मण ने मेरे खोला पत्ते छीने थे, वह ब्राह्मण जन्म २ में मेरे नाथ हों ॥ २२३ ॥ जिस ब्राह्मण ने मेरे साथ झगड़ा किया था उनके युगल चरण मेरे प्रभु हों ॥ २२४ ॥ कहते २ श्रीधर का प्रेमभाव बढ़ चला और वह दोनों वाहु उठा कर बड़े जोर से रोने लगा ॥ २२५ ॥ श्रीधर की यह भक्ति देखकर वैष्णव लोग सब विह्वल हो गए और आपस में रोने लगे ॥ २२६ ॥ तब विश्वम्भर प्रभु हँस कर बोले—"सुनो श्रीधर! मैं तुमको एक महाराज्य का स्वामी बना देता हूँ" ॥ २२७ ॥ श्रीधर बोला—"मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस ऐसा करदो प्रभो! कि मैं तुम्हारा नाम गाया करूँ" ॥ २२८ ॥ प्रभु बोले—'श्रीधर! तुम मेरे दास हो। इसीलिऐ तुमने मेरा यह महा प्रकाश देखा ॥ २२९ ॥ इतने पर भी तुम्हारी मति नहीं टली—अतएव मैंने तुझे वेद-गोप्य भक्ति योग दिया ॥ २३० ॥ वैष्णव मण्डली में जय जयकार की ध्वनि गूंज उठी। श्रीधर को वरदान मिला—यह सबने सुना ॥ २३१ ॥ ओह! श्री चैतन्यचन्द्र के इन भृत्यों के पास न धन है, न जन है, न पण्डिताई है, इनको कौन पहचान सकता है ॥ २३२ ॥ अरे! विद्या, धन, रूप, कुल, वेश-भूषा—इनसे क्या होगा? ये तो अहंकार बढ़ा कर आप भी जड़ समेत नष्ट हो जाते हैं ॥२३३॥ श्रीधर ने केला-मूल बेच कर जो भक्तियोग पाया उसके दर्शन भी करोड़पतियों को करोड़ों कल्पों में नहीं हुए ॥ २३४ ॥ विषय वस्तुओं में केवल अहंकार और द्रोह मात्र हैं, उसका फल अध:पतन है—पर इस परिणाम को लोग नहीं जानते हैं ॥ २३५ ॥ जो सज्जन को मूर्ख और दरिद्र देख कर हँसता है, वह अपने कर्म के दोष से कुम्भीपाक नरक में जाता है ॥ २३६ ॥ किसकी सामर्थ्य है कि वैष्णवों को पहजान सके? देखने में ही उनकी दुर्गति सी है, पर सब सिद्धियाँ उनमें हैं ॥ २३७ ॥ इसका साक्षी है खोला-बेचने बाला श्रीधर!,

खोला वेचा श्रीधर- ताहार एइ साक्षी । भक्ति मात्र निल अष्ट-सिद्धिके उपेक्षि ॥२३८॥
जत देख वैष्णवेर व्यवहार-दुःख । निश्चय जानिह सेइ परानन्द सुख ॥२३९॥
विषय मदान्ध सब ए मर्म ना जाने । विद्या मदे धन मदे वैष्णव ना चिने ॥२४०॥
भागवत पढ़ियाओ कारो बुद्धि नाश । नित्यानन्द निन्दा करे जाइवेक नाश ॥२४१॥
श्रीधर पाइला वर करिया स्तवन । इहा जेइ शुने तारे मिले प्रेम धन ॥२४२॥
प्रेम भक्ति हय कृष्ण चरणार विन्दे । से-इ कृष्ण पाये जे वैष्णव ना निन्दे ॥२४३॥
निन्दाये नाहिक कार्य, सबे पाप-लाभ । एतेके ना करे निन्दा महा महाभाग ॥२४४॥
अनिन्दक हइ जे सकृत् कृष्ण बोले । सत्य सत्य कृष्ण तारे उद्धारिव हेले ॥२४५॥
वैष्णवेर पा'ये मोर एइ मनस्काम । श्रीचैतन्य-नित्यानन्द हउ मोर प्राण ॥२४६॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥२४७॥

अथ दशवाँ अध्याय

मोर बधुँया । गौर गुण निधिया ॥ ध्रु ॥१॥
जय जय महा प्रभु श्रीगौर सुन्दर । जय जय नित्यानन्द अनादि ईश्वर ॥२॥
हेन मते प्रभु श्रीधरेरे वर दिया । 'नाढ़ा नाढ़ा नाढ़ा' वोले मस्तक ढुलाञा ॥३॥
प्रभु वोले आचार्य ! मागह निज कार्ये । "जे मागिलुँ ताहा पाइलुँ" बोलये आचार्य ॥४॥
हुङ्कार करये जगन्नाथेर नन्दन । हेन शक्ति नाहि कारो–बलिते वचन ॥५॥

जिसने अष्ट सिद्धियों की उपेक्षा करके केवल मात्र भक्ति हा लो ॥ २३८ ॥ वैष्णवों के व्यवहारिक जीवन में जितने भी दुःख दिखाई देते हैं, उनको निश्चय ही परानन्द सुख रूप ही जानना चाहिए ॥ २३९ ॥ विषय-मदान्ध लोग सब इस मर्म को नहीं जानते हैं । वे विद्या और धन के मद में वैष्णव को नहीं पहचान पाते हैं ॥ २४० ॥ किसी २ की बुद्धि तो भागवत पढ़ करके भो नष्ट हो गई है, और वे श्री नित्यानन्द की निन्दा करते हैं–उनका नाश हो जायगा ॥ २४१ ॥ श्रोधर ने प्रभु की स्तुति करके वरदान पाया-इस प्रसङ्ग को जो सुनते हैं वे प्रेम धन पाते हैं ॥ २४२ ॥ उनकी श्री कृष्ण चरणारविन्द में प्रेमभक्ति होती है । वे ही श्रीकृष्ण को पाते हैं जो वैष्णवों की निन्दा नहीं करते हैं ॥ २४३ ॥ निन्दा के द्वारा कुछ काम नहीं बनता है, केवल पाप ही पल्ले पड़ता है । इसी कारण श्रेष्ठ महापुरुष किसी की निन्दा नहीं करते हैं ॥ २४४ ॥ अनिन्दक बन कर जो एक बार भी श्रीकृष्ण का नाम लेता है, श्रीकृष्ण उसका सहज ही में उद्धार कर देंगे–यह सत्य है, सत्य है ॥ २४५ ॥ श्री वैष्णवों के चरणों में मेरी यही मनोकामना है कि श्री चैतन्यचन्द्र और श्रीनित्यानन्द मेरे प्राण हों ॥ २४६ ॥ श्री कृष्णचैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दावनदास उनके युगल चरणों में उनके ही गुण–गान को समर्पण करता है ॥ २४७ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे श्रीधर वर लाभ वर्णनं नाम नवमोऽध्याय ॥

मेरे प्राण बन्धु, गौर गुण निधि ॥ १ ॥ महाप्रभु श्री गौरसुन्दर की जय हो, जय हो । अनादि ईश्वर श्री नित्यानन्द की जय हो, जय हो ॥ २ ॥ इस प्रकार प्रभु ने श्रीधर को वरदान देकर फिर सिर हिलाते हुए "नाड़ा ३" पुकारा ॥ ३ ॥ और बोले "आचार्य ! माँग लो जो तुम्हारी इच्छा हो" । आचार्य बोले–"जो माँगा था वह तो मिल ही गया" ॥ ४ ॥ तव जगन्नाथ-नन्दन हुँकार करने लगे–किसी की शक्ति

महा परकाश प्रभु विश्वम्भर-राय। गदाधर जो गाय ताम्बूल, प्रभु खाय ॥६॥
धरणी धरेन्द्र नित्यानन्द धरे छत्र। सम्मुखे अद्वैत-आदि सब महा पात्र ॥७॥
मुरारिरे आज्ञा हैल "मोर रूप देख"। मुरारि देखये—रघुनाथ परतेख ॥८॥
दूर्वादल श्याम देखे सेइ विश्वम्भर। वीरासने वसि आछे महा धनुर्द्धर ॥९॥
जानकी लक्ष्मण देखे—वामेते दक्षिणे। चौदिगे करये स्तुति वानरेन्द्र गणे ॥१०॥
आपन प्रकृति वासे' जे हेन वानर। सकृत् देखिया मूर्च्छा पाइल वैद्य वर॥११॥
मूर्च्छित हइया गुप्त मुरारि पड़िला। चैतन्येर फाँदे गुप्त मुरारि रहिला॥१२॥
डाकि बोले विश्वम्भर "आरे रे बानरा। पासरिलि-तोरे पोड़ाइल सीता चोरा॥१३॥
तुइ तार पुरी पुड़ि कैलि वंश क्षय। सेइ प्रभु आमि—तोरे दिल परिचय॥१४॥
उठ उठ मुरारि! आमार तुमि प्राण। आमि सेइ राघवेन्द्र, तुमि हनुमान्॥१५॥
सुमित्रा-नन्दन देख तोमार जोवन। जारे जियाइले आनि से गन्ध मादन॥१६॥
जानकीर चरणे करह नमस्कार। जार दुःख देखि तुमि कान्दिला अपार" ॥१७॥
चैतन्येर वाक्ये गुप्त चैतन्य पाइला। देखिया सकल प्रेमे कान्दिते लागिला॥१८॥
शुष्क काष्ठ द्रवे' शुनि गुप्तेर क्रन्दन। विशेषे द्रविला सर्व-भागवत गण॥१९॥
पुनरपि मुरारिरे बोले विश्वम्भर। "जे तोमार अभिमत इच्छि लह वर" ॥२०॥
मुरारि वोलये "प्रभु! आर नाहि चाहों। हेन कर' प्रभु! जेन तोर गुण गाङो॥२१॥

नहीं जो मुख से एक भी वचन बोल सके ॥ ५ ॥ (स्मरण रहे कि) यह प्रभु विश्वम्भर राय का महाप्रकाश है। श्री गदाधर ताम्बूल दे रहे हैं और प्रभु चबा रहे हैं ॥ ६ ॥ धरणी धरेन्द्र श्री नित्यानन्द राय क्षत्र धारण किये हुए हैं, और अद्वैताचार्य आदि महापात्र सब सन्मुख हैं ॥ ७ ॥ तब मुरारि के लिए प्रभु की आज्ञा हुई—"देख मेरा रूप"। तो मुरारि गुप्त साक्षात् श्री रघुनाथ जी के दर्शन करने लगा ॥ ८ ॥ उन्हीं गौर विश्वम्भर देव को वह अब दूर्बा दल श्याम वर्ण का देखता है। वीरासन मे विराजमान हैं। महान् धनुष धारण कर रक्खा है॥ ९ ॥ बांई ओर श्री जानकी जी के और दांई ओर श्री लक्ष्मण जी के दर्शन होते हैं। और चारों ओर बानर राज वृन्द स्तुति कर रहे हैं ॥ १० ॥ श्री मुरारि भी तो अपने को बानर ही समझते हैं। सो अपने प्रभु श्री रामचन्द्र के एक ही बार दर्शन कर वैद्यराज मुरारि मूर्च्छित हो गए ॥ ११ ॥ इस प्रकार मुरारि गुप्त मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा—श्री चैतन्यचन्द्र की कृपा के फन्दे में गिरफ्तार हो रहा ॥ १२ ॥ प्रभु विश्वम्भर पुकार कर बोले—"अरे ओ बानर! भूल गया क्या ? सीता चोर रावण ने तुझे जलाना चाहा था ॥ १३ ॥ पर तूने ही उसकी पुरी को जलाकर उसके वंश का विध्वंस कर दिया था। वही प्रभु मैं हूँ—यह मैं तुझे अपना परिचय दे रहा हूँ ॥ १४ ॥ "उठो, उठो मुरारि! तुम तो मेरे प्राण हो। मैं वही राघवेन्द्र राम हूँ और तुम वही हनूमान हो ॥ १५ ॥ और अपने जीवन स्वरूप सुमित्रानन्दन (लक्ष्मण) को देखो, जिनके प्राणों की रक्षा तुमने गन्ध मादन पर्वत लाकर की थी ॥ १६ ॥ "और जिनके दुःख को देखकर तुम बहुत रोये थे उन जानकी जी के चरणों में नमस्कार करो ॥ १७ ॥ प्रभु चैतन्य चन्द्र के वचनों से मुरारि गुप्त सचेत हुए और इन सब के दर्शन करके मारे प्रेम के रोने लगा ॥ १८ ॥ गुप्त के रोने को सुनकर काठ भी पिघल गये और विशेष करके तो सब भक्त लोग पिघल गये ॥ १९ ॥ प्रभु विश्वम्भर मुरारि से पुनः बोले—"जो तुम्हारी इच्छा हो, सो वर माँग लो" ॥ २० ॥ मुरारि बोला—"प्रभो! मैं और कुछ नहीं चाहता हूँ बस इतना कर दो कि मैं तुम्हारा गुण गाया करूँ ॥ २१ ॥ और हे

जे-ते ठाञि प्रभु ! केने जन्म नहे मोर । तथाइ तथाइ जेन स्मृति हय तोर ।।२२।।
जन्म जन्म तोमार जे सब प्रभु ! दास । ताँ' सभार सङ्गे जेन हय मोर वास ।।२३।।
'तुमि प्रभु, मुञि दास' इहा नाहि जथा । हेन सत्य कर' प्रभु ! ना फेलिवे तथा ।।२४।।
स पार्षदे तुमि जथा कर' अवतार । तथाइ तथाइ दास हइव तोमार'' ।।२५।।
प्रभु बोले ''सत्य सत्य एइ वर दिल । महा-महा-जय ध्वनि ततक्षणे हैल ।।२६।।
मुरारिर प्रति सर्व-वैष्णवेर प्रीत । सर्व-भूते कृपालुता मुरारि चरित ।।२७।।
जे ते स्थान मुरारिर जदि सङ्ग हय । सेइ स्थान सर्व-तीर्थ-श्रीवैकुण्ठ मय ।।२८।।
मुरारिर प्रभाव बलिते-शक्ति कार । मुरारि-वल्लभ प्रभु सर्व-अवतार । २९।।
ठाकुर चैतन्य बोले ''शुन सर्व-गण । सकृत् मुरारि-निन्दा करे जेइ जन ।।३०।।
कोटि-गङ्गा स्नाने तार नाहिक निस्तार । गङ्गा-हरि-नामे तार करिव सँहार ।।३१।।
मुरारि वैसये गुप्त इहार हृदये । एतेके 'मुरारि गुप्त' नाम जोग्य हये'' ।।३२।।
मुरारिरे कृपा देखि भागवत गण । प्रेम योगे 'कृष्ण' वलि करये रोदन ।।३३।।
मुरारिरे कृपा कैल श्रीचैतन्य-राय । इहा जेइ शुने सेइ प्रेम भक्ति पाय ।।३४।।
मुरारि श्रीधर कान्दे सम्मुखे पड़िया । प्रभुओ ताम्बूल खाय गर्जिया गर्जिया ।।३५।।
हरि दास प्रति प्रभु सदय हइया । ''मोरे देख हरिदास !'' बोले डाक दिया ।।३६।।
''एइ मोर देह हैते तुमि मोर वड़ । तोमार जे जाति, सेइ जाति मोर दृढ़ ।।३७।।
पापिष्ठ जवने तोमा' बड़े दिल दुःख । ताहा स्मङरिते मोर विदरये बुक ।।३८।।

प्रभो ! जहाँ कहीं भी मेरा जन्म क्यों न हो, वहाँ २ तुम्हारी स्मृति बनी रहे ।। २२ ।। ''और प्रभो ! जो सब आपके दास हैं, मेरा उन सबके साथ जन्म २ में वास हो ।। २३ ।। और जहाँ ''तुम प्रभु और मैं दास'' यह न हो वहाँ मुझ नहीं पटक देना—यह सत्य २ करके दिखाना ।। २४ ।। ''और जहाँ २ आप अपने पार्षदों के सहित अवतार लें, वहाँ २ मैं आपका दास बनूँ ।। २५ ।। तब प्रभु बोले—''जाओ सत्य २ यही बर दिया'' तब तो तुरन्त ही महा २ जय जयकार ध्वनि होने लगी ।। २६ ।। श्री मुरारि के प्रति सब वैष्णवों की बड़ी प्रीति है । मुरारि का चरित्र भो सब जोवों पर कृपा-पूर्ण है ।। २७ ।। जैसी-कैसी ठौर पर भी यदि मुरारि का सङ्ग हो जाय, तो वह ठौर सर्व तीर्थमय तथा श्रीवैकुण्ठ मय हो जाता है ।।२८।। श्री मुरारि गुप्त के प्रभाव को वर्णन करने की सामर्थ्य किसमें है ? सब अवतारों में प्रभु मुरारि-वल्लभ हैं (अर्थात् (१) मुरारि उनका परम प्रिय है (२) वे मुरारि के परम प्रिय हैं) ।। २९ ।। प्रभु श्री चैतन्य देव फिर बोले—''सब भक्त लोगो ! सुनो ! एक बार भो जो मुरारि की निन्दा करता हैं ।। ३० ।। उसका निस्तार कोटि गङ्गा-स्नान से भी नहीं हो सकता है । गङ्गा और हरि नाम ही उसका नाश कर देंगे ।। ३१ ।। इसके हृदय में गुप्त रूप से भगवान् मुरारि निवास करते हैं इसोलिए इसका ''मुरारि गुप्त'' नाम योग्य ही है ।। ३२ ।। इस प्रकार मुरारि गुप्त के ऊपर प्रभु को कृपा देख कर सब भक्त लोग प्रेमपूर्वक ''कृष्ण २'' कह कर रोने लगे ।।३३।। मुरारि के ऊपर श्री चैतन्य राय ने जो कृपा की है इसको जो कोई सुनेगा वह भी प्रेम पायगा ।। ३४ ।। इधर मुरारि और श्रीधर प्रभु के सामने पड़े हुए रो रहे हैं और प्रभु भी गरज २ कर पान चबा रहे हैं ।।३५।। फिर हरिदास के ऊपर दयालु हो प्रभु पुकार कर बोले—''हरिदास ! मुझे देखो ।। ३६ ।। ''इस मेरी देह से तुम्हारी देह बड़ो है । और तुम्हारी जो जाति है, मेरी भी निश्चय वही जाति है ।। ३७ ।। पापी यवन लोगों ने तुम्हें बड़ा दुःख दिया था । हाय ! उसके स्मरण से मेरा हृदय फटता है ।। ३८ ।। ''सुनो २ हरिदास !

शुन शुन हरिदास ! तोमारे जखने । नगरे नगरे मारि बेड़ाय जवने ।।३६।।
देखिया तोमार दुःख, चक्र धरि करे । नाम्विलुँ वैकुण्ठ हैते सभा' काटि वारे ।।४०।।
प्राणान्त करिया तोमा' मारये सकल । तुमि मने चिन्त' ताहा सभार कुशल ।।४१।।
आपने मारण खाओ, ताहा नाहि लेख' । तखनेओ ता' सभारे मने भाल देख ।।४२।।
तुमि भाल देखिले ना करों मुञि बल । तोलों चक्र, तोमा' लागि से हय विफल ।।४३।।
काटिते ना पारों तोर सङ्कल्प लागिया । तोर पृष्ठे पडों तोर मारण देखिया ।।४४।।
तोहोर मारण निज-अङ्गे करि लञो । एइ तार चिह्न आछे, मिछा नाहि कहों ।।४५।।
जेवा गौण छिल मोर प्रकाश करिते । शीघ्र आइलुँ तोर दुःख ना पारों सहिते ।।४६।।
तोमारे चिनिल मोर नाढ़ा भाल मते । सर्व-भावे मोरे वन्दी करिला अद्वैते ।।४७।।
भक्त-वाढ़ाइते निज ठाकुर से जाने । कि ना बोले, कि ना करे, भक्तेर कारणे ।।४८।।
ज्वलन्त-अनल कृष्ण भक्त लागि खाय । भक्तेर किङ्कर हय आपन-इच्छाय ।।४६।।
भक्त वइ कृष्ण आर किछुइ ना जाने । भक्तेर समान नाहि अनन्त-भुवने ।।५०।।
हेन कृष्ण भक्त-नामे ना पाय सन्तोष । सेइ सव पापीरे लागिल दैव दोष ।।५१।।
भक्तेर महिमा भाइ ! देख चक्षु भरि । कि वलिला हरिदास प्रति गौर हरि ।।५२।।
प्रभु मुखे शुनि महा-कारुण्य-वचन । मूर्च्छित पड़िला हरिदास ततक्षण ।।५३।।
वाह्य दूरे गेल, भूमि तले हरि दास । आनन्दे डूबिला तिलार्द्धेक नाहि श्वास ।।५४।।
प्रभु बोले 'उठ उठ मोर हरिदास । मनोरथ भरि देख आमार प्रकाश'' ।।५५।।

जिस समय यवन लोग तुमको मोहल्ले २ में मारते हुए घूम रहे थे, ।। ३६ ।। उस समय तुम्हारे दुःख को देख कर उन सब यवनों को काट डालने के लिए मैं वैकुण्ठ से चक्र लिये हुए उतरा था ।। ४० ।। "वे तुम्हारे प्राणों का अन्त करते हुए तुमको मार रहे थे पर तुम अपने मन में उनकी मङ्गल-कामना ही कर रहे थे ।। ४१ ।। तुम आप जो मार खा रहे थे, उसकी चिन्ता तुम्हें नहीं थी, तुम तो उस समय भी मन में उनका ही भला सोच रहे थे ।। ४२ ।। "तुम्हें उनका भला सोचते देख कर मैं भी अपने बल से काम नहीं ले सका। मैं चक्र उठाता पर तुम्हारे कारण से वह बिना चलाये व्यर्थ हो जाता ।। ४३ ।। तुम्हारे शुभ-संकल्प के कारण मैं चक्र चला कर उनको काट नहीं सकता था । तब तुम्हारे ऊपर मार पड़ती देख कर मैं ही तुम्हारे पीठ के ऊपर पड़ गया था ।। ४४ ।। "और तुम पर पड़ने वाली मार को मैंने अपने पीठ पर ले लिया था । मैं मिथ्या नहीं कह रहा हूँ–यह देखो मार के चिन्ह ।। ४५ ।। मेरी इच्छा तो अपने को प्रकट करने की अभी नहीं थी, परन्तु तुम्हारा दुःख न सह सकने के कारण शीघ्र ही प्रकट होना पड़ा ।। ४६ ।। "तुमको मेरे नाढा ने ही भली भाँति पहचाना । अद्वैत ने मुझे सब प्रकार से बन्दी बना लिया है ।। ४७ ।। अपने भक्तों को बढाना भगवान् ही जानते हैं । वे भक्त के लिये क्या २ नहीं कहते और करते हैं ।। ४८ ।। भक्तों के लिए श्री कृष्ण जलती हुई अग्नि को खा जाते हैं और स्वेच्छा से ही भक्तों के किंकर बन जाते हैं ।।४६।। भक्त को छोड़ श्रीकृष्ण और कुछ नहीं जानते हैं । भक्त के समान अनन्त भुवनों में कोई नहीं है ।। ५० ।। ऐसे कृष्ण भक्त के नाम से जो लोग प्रसन्न नहीं होते हैं, वे सब पापी दैव के मारे हुए अभागे हैं ।। ५१ ।। भाइयो ! भक्त की महिमा आँख खोल कर देख लो ! हरिदास के प्रति गौरहरि ने क्या कहा ।। ५२ ।। प्रभु के श्रीमुख से परम करुणा युक्त वचनों को सुनकर हरिदास तत्क्षण मूर्च्छित हो गए ।। ५३ ।। बाहर की सुध जाती रही, भूमि पर पड़े हुए हरिदास आनन्द में डूब गए । साँस आधा तिल भर भी चलती न थी ।। ५४ ।। प्रभु बोले–"मेरे हरि-

बाह्य पाइल हरि दास प्रभुर वचने। कोथा रूप-दरशन-करये क्रन्दने ॥५६॥
सकल अङ्गणे पड़ि गड़ा गड़ि जाय। महाश्वास वहे क्षणे, क्षणे मूर्च्छा पाय ॥५७॥
महावेश हैल हरि दासेर शरीरे। चैतन्य कराये स्थिर, तभू नहे स्थिरे ॥५८॥
"वाप विश्वम्भर प्रभु जगतेर नाथ। पात कीरे कर' कृपा, पडिलुँ तोमा' त ॥५९॥
निर्गुण अधम सर्व-जाति-वहिष्कृत। मुञि कि वलिव प्रभु! तोमार चरित ॥६०॥
देखिले पातक मोरे, परशिले स्नान। मुञि कि वलिव प्रभु! तोमार आख्यान ॥६१॥
एक सत्य करियाछ आपन-वदने। जे जन तोमार करे चरण-स्मरणे ॥६२॥
कीट तुल्य हय तभु तारे नाहि छाड़। इहाते अन्यथा हैले नरेन्द्रे रे पाड़' ॥६३॥
एह वल नाहि मोर-स्मरण विहीन। स्मरण करिले मात्र-राख तुमि दीन ॥६४॥
सभा-मध्ये द्रोपदी करिते विवसन। आनिल पापिष्ठ दुर्योधन दुःशासन ॥६५॥
सङ्कटे पड़िया कृष्णा तोमा स्मङरिला। स्मरण-प्रभावे तुमि वस्त्रे प्रवेशिला ॥६६॥
स्मरण-प्रभावे वस्त्र हइल अनन्त। तथापिह ना जानिल से सब दुरन्त ॥६७॥
कोन-काले पार्वतीरे डाकि नीर गणे। वेढ़िया खाइते कैल तोमार स्मरणे ॥६८॥
स्मरण-प्रभावे तुमि आविर्भाव हैया। करिला सभार शास्ति वैष्णवी तारिया ॥६९॥
हेन-तुया-स्मरण-विहीन मुञि पाप। मोरे तोर चरणे शरण देह' बाप ॥७०॥
विष, सर्प, अग्नि, जले पाथरे वान्धिया। फेलिल प्रह्लादे दुष्ट हिरण्य धरिया ॥७१॥

दास! उठो २। प्राण भर कर मेरे ऐश्वर्य प्रकाश के दर्शन करो" ॥ ५५ ॥ प्रभु के वचन से हरिदास की सुध-बुध लौट आई परन्तु रूप के दर्शन करना तो कहाँ, रोना शुरु किया ॥ ५६ ॥ वे रोते २ सारे आंगन भर में लुढकने लगे क्षण में तो लम्बी २ साँसे लेते हैं, और क्षण में बेसुध पड़े रहते हैं ॥ ५७ ॥ हरिदास के शरीर में भाव का बड़ा भारी आवेश हो आया। श्री चैतन्य प्रभु उसे शान्त करते हैं पर तब भी वे शान्त नहीं हो पाते हैं ॥ ५८ ॥ हरिदास जी बोले -"हे मेरे बाप! हे विश्वम्भर! हे प्रभो! हे जगन्नाथ! पातकी के ऊपर कृपा करो। यह तुम्हारे श्री चरणों में पड़ा है ॥ ५९ ॥ मैं निगुनी हूँ, अधम हूँ, सब जाति से बाहर हूँ। हे प्रभो! मैं भला तुम्हारे चरित्र को क्या कह सकता हूँ ॥ ६० ॥ मुझे देख लेने से पाप लगता है, छू लेने से नहाना पड़ता है-ऐसा मैं प्रभो! तुम्हारे चरित्र को क्या बखान करूँ ॥ ६१ ॥ (पर हाँ) आप अपने श्रीमुख के एक वचन को सदा सत्य करते आये हैं कि जो जन तुम्हारे श्री चरण का स्मरण करता है ॥ ६२ ॥ वह चाहे कीट समान क्यों न हो, उसे भी आप कभी नहीं छोड़ते हैं। पर विपरीत चलने वाला राजा ही क्यों न हो, उसे भी आप नीचे गिरा देते हैं ॥ ६३ ॥ केवल स्मरण मात्र करने पर आप दीन की रक्षा कर देते हैं-परन्तु मैं तो स्मरण-शून्य हूँ स्मरण का यह बल भी तो मुझमें नहीं हैं ॥ ६४ ॥ सभा के मध्य में द्रौपदी को नंगी करने के लिये पापी दुर्योधन और दुशासन उसे ले आए ॥ ६५ ॥ उस समय संकट में पड़ कर द्रौपदी ने तुम्हारा स्मरण किया। स्मरण के प्रभाव से तुम उसके वस्त्र में प्रवेश कर गए ॥ ६६ ॥ स्मरण के प्रभाव से वस्त्र अनन्त हो गया। तब भी वे सब दुष्ट इस कृपा को न समझ सके ॥ ६७ ॥ किसी समय पार्वती को डाकिनियों के झुण्ड ने घेर लिया और उनको खाना चाहा। तब उन्होंने तुम्हारा स्मरण किया ॥ ६८ ॥ स्मरण के प्रभाव से तुम प्रकट हुए और उन डाकिनियों को दण्ड देकर तुमने वैष्णवी देवी (पार्वती) की रक्षा की ॥ ६९ ॥ ऐसा जो तुम्हारा स्मरण हूँ, मैं पापी तो उससे विहीन हूँ। हे बाप जो! मुझे अपने चरणों की शरण दो ॥ ७० ॥ दुष्ट हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को विष दिया, सर्प से डस-

प्रह्लाद करिल तोर चरण-स्मरण । स्मरण-प्रभावे सर्व-कृत्या विमोचन ।।७२।।
कारो वा भाङ्गिल दन्त, कारो तेज नाश । स्मरण-प्रभावे तुमि हइला प्रकाश ।।७३।।
पाण्डु पुत्र स्मङरिल दुर्वाशार भये । अरण्ये प्रत्यक्ष हैला हइया सदये ।।७४।।
चिन्ता नाहि युधिष्ठिर ! हेर् देख आमि । आमि दिव मुनि-भिक्षा, वसि थाक तुमि ।।७५।।
अवशेष एक शाक आछिल हाण्डीते । सन्तोषे खाइला निज भकत राखिते ।।७६।।
स्नाने सव ऋषिर उदर महा फूले' । सेइ मत सव ऋषि पलाइला डरे ।।७७।।
स्मरण-प्रभावे पाण्डु पुत्रे'र मोचन । ए सव कौतुक सव स्मरण-कारण ।।७८।।
अखण्ड स्मरण-धर्म इहा-सभाकार । तेञि चित्र नहे इहा-सभार उद्धार । ७९।।
अजामिल-स्मरणेर महिमा अपार । सर्व-धर्म-हीन ताहा वइ नाहि आर ।।८०।।
दूत भये पुत्र स्नेहे देखि पुत्र मुख । स्मङरिल पुत्र नाम 'नारायण' रूप ।।८१।।
सेइ त स्मरणे सब खण्डिल आपद । तेञि चित्र नहे- भक्त स्मरण-सम्पद ।।८२।।
हेन तोर चरण-स्मरण-हीन मुञि । तथापिह प्रभु ! मोरे ना छाड़िवि तुञि ।।८३।
तोमा' देखिवारे मोर कोन् अधिकार । एक वइ प्रभु ! किछु ना चाहिव आर" ।।८४।।
प्रभु बोले "बोल बोल—सकल तोमार । तोमारे अदेय किछु नाहिक आमार" ।।८५।।
कर-जोड़ करि वोले प्रभु हरिदास । "मुञि अल्प भाग्य प्रभु ! करों वड़ आश ।।८६।।
'तोमार चरण भजे—जे सकल दास । तार अवशेष जेन हय मोर ग्रास ।।८७।।

वाया, अग्नि में जलाया, पत्थर बाँध कर जल में डुबाया ।। ७१ ।। तब प्रह्लाद ने तुम्हारे चरणों का स्मरण किया । स्मरण के प्रभाव से वह सब आपदाओं से मुक्त हो गया ।। ७२ ।। स्मरण के प्रभाव से तुम प्रकट हो गए और तुमने किसी के दाँत तोड़ डाले, और किसी का तेज नष्ट कर दिया ।। ७३ ।। पाण्डवों ने दुर्वासा के भय से तुमको स्मरण किया तो तुम दया करके घोर बन में प्रकट हो गए ।। ७४ ।। और बोले "युधिष्ठिर जी ! चिन्ता मत करो । देखो, मुझे देखो । मैं मुनि को भिक्षा दूँगा तुम तो निश्चिन्त बैठे रहो ।। ७५ ।। हँडिया में साग का एक तिनका मात्र कहीं शेष था । तुमने प्रसन्न होकर अपने भक्तों की रक्षा के लिए उसे ही खा लिया ।। ७६ ।। तब तो उधर स्नान करते हुए सब ऋषियों के पेट बड़े भारी फूल उठे और वे डर के मारे जैसे के तैसे वहीं से खिसक गए ।। ७७ ।। इस प्रकार स्मरण के प्रभाव से पाण्डवों को दुःख से छुटकारा मिला । ये सब कौतुक केवल एक स्मरण के कारण हुए ।। ७८ ।। ये सब भक्त तुम्हारा स्मरण निरन्तर करते थे । अखण्ड स्मरण ही इन सब का धर्म था । अतएव इनका जो उद्धार हुआ तो कोई आश्चर्य नहीं ।। ७९ ।। अजामिल के स्मरण की महिमा तो अपार है । वह सब धर्मों से सर्वथा शून्य था ।। ८० ।। उसने यमदूतों के भय से पुत्र के स्नेह में पुत्र का मुख देखने के लिए उसका नाम 'नारायण' स्मरण किया ।।८१।। बस उस स्मरण से सब आपदाएँ दूर हो गईं । इसमें कोई आश्चर्य नहीं । हरि—स्मरण ही भक्त की सम्पदा है ।। ८२ ।। ऐसा जो आपका चरण-स्मरण है, मैं तो उससे शून्य हूँ, तथापि हे प्रभो ! तुम मुझे न छोड़ना ।। ८३ ।। तुम्हारे दर्शन पाने का भला मेरा क्या अधिकार है । हे प्रभो ! मैं एक बात को छोड और कुछ नहीं चाहता हूँ ।। ८४ ।। प्रभु बोले—"बोलो २ सब कुछ तुम्हारा ही है । तुम्हारे लिए मेरे पास कोई भी वस्तु अदेय नहीं ।। ८५ ।। प्रभु हरिदास हाथ जोड़ कर बोले—"हे प्रभो ! मैं हूँ तो मन्दभागा पर आशा बहुत बड़ी करता हूँ ।। ८६ ।। (मैं यही चाहता हूँ कि) जो सब दास तुम्हारे श्री चरण का भजन करते हैं, उनका शेष जूँठा मेरा भोजन हो ।। ८७ ।। मेरा प्रत्येक जन्म में वही एक भोजन हो और वही शेष प्रसाद ही मेरी क्रिया

सेइ से भोजन मोर हउ जन्म जन्म। सेइ अवशेष मार क्रिया कुल धर्म' ॥८८॥
तोमार स्मरण-हीन पाप-जन्म मोर। सफल करह दासोच्छिष्ट दिया तोर ॥८९॥
एइ मोर अपराध हेन चित्ते लय। महा पद चाहों—जे मोहर जोग्य नय ॥९०॥
प्रभुरे नाथरे मोर वाप विश्वम्भर। मृत मुञि, मोर अपराध क्षमा कर' ॥९१॥
शचीर नन्दन वाप ! कृपा कर' मोरे। कुक्कुर करिया मोरे राख भक्त-घरे" ॥९२॥
प्रेम भक्ति मय हैला प्रभु हरिदास। पुन: पुन करे काकु ना पूरये आश ॥९३॥
प्रभु बोले "शुन शुन मोर हरिदास। दिवसे को तोमा' सङ्गे कल जेइ वास ॥९४॥
तिलार्द्ध को तुमि जार सङ्गे कह कथा। से अवश्य आमा' पाइ वेक नाहिक अन्यथा ॥९५॥
तोमारे जे करे श्रद्धा, से करे आमारे। निरन्तर आछि आमि तोमार शरीरे ॥९६॥
तुमि-हेन सेवके आमार ठाकुराल। तुमि मोरे हृदये वान्धिला सर्व काल ॥९७॥
मोर स्थाने मोर सर्व-वैष्णवेर स्थाने। विनि अपराधे तोरे भक्ति दिल दाने" ॥९८॥
हरिदास—प्रति वर दिलेन जखने। जय जय महा ध्वनि उठिल तखने ॥९९॥
जाति कुल क्रिया धने किछु नाहि करे। प्रेम धन आर्त्ति विने ना पाइ कृष्णेरे ॥१००॥
जे ते-कुले वैष्णवेर जन्म केने नहे। तथापिह सर्वोत्तम—सव शास्त्र कहे ॥१०१॥
एइ तार प्रमाण—जवन हरिदास। ब्रह्मादिर दुर्लभ देखिल परकाश ॥१०२॥
जे पापिष्ठ वैष्णवेर जाति वुद्धि करे। जन्म जन्म अधम-जोनिते डूवि मरे ॥१०३॥
हरिदास स्तुति-वर शुने जेइ जन। अवश्य मिलिव तारे कृष्ण-प्रेम धन ॥१०४॥

मेरा कुल और धर्म हो ॥ ८८ ॥ तुम्हारे स्मरण से शून्य यह मेरा पाप-जन्म है। इसे अपने दासों का उच्छिष्ट प्रसाद देकर सफल करो ॥ ८९ ॥ मेरे मन में ऐसा लगता है कि यह मेरा अपराध है कि मैं परम पद को चाहता हूँ कि जिसके योग्य मैं नहीं हूँ ॥ ९० ॥ हे प्रभो। हे नाथ। हे मेरे बाप विश्वम्भर। मैं तो मरा हुआ हूँ। मेरे अपराधों को क्षमा करो ॥ ९१ ॥ हे शची-नन्दन। हे मेरे बाप। मेरे ऊपर कृपा करो। मुझे कुत्ता बना कर भक्तों के घर में रख दो (जिससे कि उनका जूँठा मुझे मिलता रहे) ॥ ९२ ॥ प्रभु हरिदास की देह प्रेम भक्तिमय हो गई बे बार २ गिडगिडाते हैं, पर फिर भी साध नहीं मिटती ॥ ९३ ॥ तब प्रभु बोले—"सुनो २ मेरे हरिदास। एक दिन के लिए भी जिसने तुम्हारे साथ वास किया, ॥ ९४ ॥ (अथवा) आधा तिल भर समय के लिए भी तुम जिससे कुछ बोलो वह अवश्य ही मुझे देखेगा यह बात अन्यथा नहीं हो सकती ॥ ९५ ॥ तुम्हारी जो श्रद्धा-भक्ति करेगा, वह मेरी करेगा। मैं निरन्तर तुम्हारे शरीर में स्थित हूँ ॥ ९६ ॥ तुम जैसे सेवकों से ही मेरी ठकुराई है, तुमने सब समय के लिए मुझे अपने हृदय में बाँध लिया है ॥ ९७ ॥ तुम्हारा मेरे और मेरे भक्तों के प्रति कोई अपराध नहीं है, इसी से मैंने तुमको भक्ति दान दी ॥९८॥ इस प्रकार प्रभु ने जब हरिदास को वरदान दिया तो उस समय जय जयकार की महाध्वनि उठी ॥ ९९ ॥ देखो, जाति, कुल, क्रिया, धन, इत्यादि से कुछ नहीं होता। प्रेमधन—आर्ति बिना श्रीकृष्ण नहीं मिलते ॥ १०० ॥ वैष्णव का जन्म जिस किसी कुल में क्यों न हो तथापि वह सर्वोत्तम है—यही सब शास्त्र कहते हैं ॥ १०१ ॥ उसका प्रमाण यह है कि यवन हरिदास ने प्रभु का वह स्वरूप प्रकाश देखा जो ब्रह्मादिक देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ १०२ ॥ (अतएव) जो पापी वैष्णवों की जाति देखता है, वह जन्म २ तक नीच योनियों में मरता फिरता है ॥ १०३ ॥ हरिदास जी की स्तुति और प्रभु का वरदान—इसे जो जन सुनेंगे, वे अवश्य श्रीकृष्ण प्रेमधन पायेंगे ॥ १०४ ॥ यह वचन मेरे नहीं हैं—सब शास्त्र यही कहते हैं कि भक्त की

ए वचन मोर नहे, सर्व-शास्त्रे कहे। 'भक्ताख्यान शुनिले कृष्णेते भक्ति हये' ॥१०५॥
महा भक्त हरिदास जय जय जय। हरिदास स्मरणे सकल पाप क्षय ॥१०६॥
केहो बोले "चतुर्मुख जेन हरिदास"। केहो बोले "प्रह्लादेर जेन परकाश" ॥१०७॥
सर्व-मते महा भागवत हरिदास। चैतन्य गोष्ठीर सङ्गे जाहार विलास ॥१०८॥
ब्रह्मा शिव हरिदास-हेन भक्त-सङ्ग। निरवधि करिते चित्तेर बड़ रङ्ग ॥१०९॥
हरिदास-स्पर्श-वाञ्छा करे देव गण। गङ्गाओ वाञ्छेन हरिदासेर मज्जन ॥११०॥
स्पर्शेर कि दाय, देखि लेइ हरिदास। छिण्डे सर्व-जीवेर अनादि कर्म पाश ॥१११॥
प्रह्लाद जे हेन दैत्य, कपि हनुमान्। एइ मत हरिदास' नीच-जाति-नाम ॥११२॥
हरिदास कान्दे, कान्दे मुरारि श्रीधर। हासिया ताम्बूल खाय प्रभु विश्वम्भर ॥११३॥
वसि आछे महा ज्योति खट्टार उपरे। महा ज्योति नित्यानन्द छत्र धरे शिरे ॥११४॥
अद्वैतेर भिते चाहि हासिया हासिया। मनेर वृत्तान्त ताँर कहे प्रकाशिया ॥११५॥
"शुन शुन आचार्य ! तोमारे निशा भागे। भोजन कराइल आमि, ताहा मने जागे ॥११६॥
जखन आमार नाहि हय अवतार। आमारे आनिते श्रम करिले अपार ॥११७॥
गीता शास्त्र पढाओ—वाखान' भक्ति मात्र। वुझिते तोमार व्याख्या केवा आछे पात्र ॥११८॥
जे श्लोकेर व्याख्याय नाहि पाओ भक्ति योग। श्लोकेरे ना देह' दोष, छाड़' सर्व भोग ॥११९॥
दुःख पाइ सुति थाक करि उपवास। तवे आमि तोमा' स्याने हइ परकाश ॥१२०॥

कथा सुनने से भगवान् श्री कृष्ण में भक्ति होती है ॥ १०५ ॥ महाभक्त हरिदास की जय हो, जय हो, जय हो। हरिदास जी के स्मरण से सब पापों का क्षय हो जाया है ॥ १०६ ॥ तब उस समय कोई बोले—"हरिदास जी तो मानो ब्रह्मा ही हैं"। कोई बोले "यह तो मानो प्रल्हाद जी की ही दूसरी मूर्ति हैं" ॥ १०७ ॥ पर इसमें सब एक ही मत हैं कि हरिदास जी महा भागवत हैं, जो श्री चैतन्य-गोष्ठी में नित्य विलास किया करते हैं ॥ १०८ ॥ हरिदास जी जैसे भक्त का सङ्ग करने के लिए ब्रह्मा, शिव भी चित्त में नित्य उत्सुक रहते हैं ॥ १०९ ॥ देवता लोग तो हरिदास जी के स्पर्श की चाहना करते हैं और गङ्गा जी भी यह चाहती हैं कि हरिदास जी मुझ में स्नान करें ॥ ११० ॥ स्पर्श की तो बात ही क्या, हरिदास जी को कहीं देख लेने से ही जीव के अनादि कर्म-बन्धन सब छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥ १११ ॥ (कहने को ही) जैसे प्रल्हाद जी दैत्य और हनुमान जी कपि हैं, वैसे ही हरिदास जी भी नाम मात्र के लिए नीच यवन हैं ॥ ११२ ॥ (प्रभु की इस दीनवत्सलता का अनुभव प्राप्त करके) हरिदास जी रो रहे हैं और मुरारि गुप्त और श्रीधर भी रो रहे हैं और प्रभु विश्वम्भर हँसते हुए पान खा रहे हैं ॥ ११३ ॥ महा ज्योतिर्मय श्री गौरचन्द्र सिंहासन पर विराजमान हैं और महा ज्योतिःस्वरूप श्री नित्यानन्द सिर पर क्षत्र धारण किये हुए हैं ॥ ११४ ॥ तब प्रभु हँस २ कर श्री अद्वैत की ओर देखने और अपने मन की बात उनसे प्रकट करके कहने लगे ॥ ११५ ॥ "सुनो २ हे आचार्य ! मैंने तुमको रात्रि काल में भोजन कराया था—याद है तुम्हें ॥ ११६ ॥ "जब मेरा अवतार नहीं हुआ था, उस समय तुमने मुझे प्रकट करने के लिए अपार परिश्रम किया था ॥ ११७ ॥ तुम गीता शास्त्र पढ़ाया करते थे और केवल भक्ति में ही उसकी व्याख्या करते थे। तुम्हारी व्याख्या को समझने वाला भला कौन पात्र है ॥ ११८ ॥ "जब किसी श्लोक की व्याख्या में तुमको भक्तियोग नहीं मिलता तो तुम श्लोक को दोष नहीं देते परन्तु खान-पानादि सब भोगों को छोड़ बैठते ॥ ११९ ॥ मन में दुःखित हो भोजन छोड़ करके तुम सो जाते। तब तुम्हारे निकट मेरा प्रकाश होता था ॥ १२० ॥ "तुम्हारे उपवास में

तोमार उपासे मुञि मानों उपवास। तुमि मोरे जेइ देह' सेइ मोर ग्रास ॥१२१॥
तिलार्द्ध तोमार दुःख आमि नाहि सहि। स्वप्ने आमि तोमार सहित कथा कहि ॥१२२॥
उठ उठ आचार्य ! श्लोकेर अर्थ शुन। एइ अर्थ, एइ पाठ, निःसन्देह जान' ॥१२३॥
उठिया भोजन कर' ना कर' उपास। तोमार लागिया आमि करिव प्रकाश। १२४॥
सन्तोषे उठिया तुमि करह भोजन। आमि वलि, तुमि जेन मानह स्वपन ॥१२५॥
एइ मत जेइ जेइ पाठे द्विधा हय। आसिया - चैतन्य चन्द्र आपने कहय ॥१२६॥
जत रात्रि स्वप्न हय, जे दिन, जखने। जत श्लोक—सब प्रभु कहिला आपने ॥१२७॥
धन्य धन्य अद्वैतेर भक्तिर महिमा। भक्ति शक्ति कि वर्णिव, एइ तार सीमा ॥१२८॥
प्रभु बोले "सर्व-पाठ कहिल तोमारे। एक पाठ नाहि कहि, आजि कहि तोरे ॥१२९॥
सम्प्रदाय-अनुरोधे सभे मन्द पढ़े। 'सर्वतः पाणि पादन्तत्' एइ पाठ नड़े ॥१३०॥
आजि तोरे सत्य कहि छाड़िया कपट। 'सर्वत्र पाणि पादन्तत्' एइ सत्य पाठ ॥१३१॥
तथाहि (गीता १३। १३) सर्वतः पाणि पादन्तत् सर्वतोऽक्षि शिरो मुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति" ॥१३२॥
"अति-गुप्त-पाठ आमि कहिल तोमारे। तोमा' वइ पात्र केवा आछे कहि वारे" ॥१३३॥
चैतन्येर गुप्त-शिष्य आचार्य गोसाञि। चैतन्येर सर्व-व्याख्या आचार्येर ठाञि ॥१३४॥
शुनिञा आचार्य प्रेमे कान्दिते लागिला। पाइया मनेर कथा महानन्दे भोला ॥१३५॥
अद्वैत बोलये "आर कि बलिव मुञि। एइ मोर महत्त्व जे, मोर नाथ तुञि" ॥१३६॥

मैं अपना उपवास मानता, कारण कि तुम मुझे जो कुछ देते हो, वही मेरा भोजन है ॥ १२१ ॥ मैं तुम्हारा आधा तिल भर दुःख नहीं सह सकता हूँ—इसलिए स्वप्न में मैं तुमसे बातें किया करता ॥१२२॥ (मैं कहता) "उठो २ आचार्य ! श्लोक का अर्थ सुनो। यह अर्थ है, यह (शुद्ध) पाठ है—ऐसा जान सन्देह रहित हो जाओ ॥ १२३ ॥ अब उठ कर भोजन करो, उपवास मत करो। तुम्हारे लिए मैं अपने को प्रकट करूँगा ॥१२४॥ "उठ कर प्रसन्न चित्त से भोजन करो—यह मैं ही कहा करता पर तुम उसे स्वप्न ही माना करते" ॥१२५॥ इस प्रकार जिस २ पाठ में श्री अद्वैत को सन्देह होता था, स्वयं चैतन्यचन्द्र आकर उन्हें बतलाया करते थे ॥ १२६ ॥ तब प्रभु ने जिस २ दिन, जिस २ रात को स्वप्न हुए और जितने श्लोकों की व्याख्या बतायो, वह सब कुछ बता दिया ॥ १२७ ॥ धन्य है, धन्य है, श्री अद्वैत की भक्ति की महिमा को। भक्ति की शक्ति को मैं क्या कहूँ—यही उसकी सीमा है ॥ १२८ ॥ प्रभु फिर बोले—"आचार्य ! मैंने तुमको सब पाठ तो बतलाया परन्तु एक पाठ नहीं बतलाया उसे आज तुमसे कहता हूँ ॥ १२९ ॥ सम्प्रदाय का पक्ष लेकर सब ही "सर्वतः पाणिपादन्तत्" ऐसा अशुद्ध पाठ करते हैं ॥ १३० ॥ पर मैं आज कपट छोड़ कर तुमसे सत्य कहता हूँ कि "सर्वत्र पाणिपादन्तत्" यह है सत्य पाठ ॥ १३१ ॥ श्लोकार्थ ॥ सब ओर को जिनके हस्त और चरण हैं सब ओर को जिनके नेत्र, मस्तक और मुख हे तथा सब ओर को जिनके कर्ण हैं वे ही परमात्म वस्तु हैं- वे ही इस लोक में सबको आवृत्त करके वर्तमान हैं (गीता-१३-१३) ॥ १३२ ॥ "यह मैंने तुमको अत्यन्त गुप्त पाठ बतलाया। (कारण कि) एक तुमको छोड़ कर और कौन पात्र है कि जिससे यह कहा जा सके" ॥ १३४ ॥ (अतएव) श्री चैतन्य चन्द्र के गुप्त शिष्य हैं श्री अद्वैताचार्य। श्री चैतन्य चन्द्र अपनी व्याख्या सब आचार्य के निकट ही करते हैं ॥ १३४ ॥ प्रभु के ऐसे वचनों को सुनकर आचार्य मारे प्रेम के रोने लगे, और मनचाही बात को पाकर आनन्द में विभोर हो गए ॥ १३५ ॥ अद्वैत बोले—"मैं और क्या कहूँ मेरा

आनन्दे विह्वल हैला आचार्य गोसाञ्जि। प्रभुर प्रकाश देखि बाह्य किछु नाञ्जि ॥१३७॥
ए सब कथाय जार नाहिक प्रतीत। अधः पात हय तार, जानिह निश्चित ॥१३८॥
महा भागवते बुझे अद्वैत्तेर व्याख्या। आपने चैतन्य जारे कराइल शिक्षा ॥१३९॥
वेदे जेन नाना मत करये कथन। एइ मत आचार्येर दुर्ज्ञेय वचन ॥१४०॥
अद्वैतेर वाक्य बुझिवार शक्ति जार। जानिह ईश्वर-सङ्गे भेद नाहि तार ॥१४१॥
शरतेर मेघ जेन पर भाग्य वशे। सर्वत्र ना करे वृष्टि, नाहि तार दोषे ॥१४२॥
तथाहि भागवते १०। २०। ३६ "गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम्।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददतेन वा" ॥१४३॥
एइ मत अद्वैतेर किछु दोष नाञ्जि। भाग्याभाग्य बुझि व्याख्या करे सेइ ठाञ्जि ॥१४४॥
चैतन्य-चरण-सेवा अद्वैतेर काज। इहाते प्रमाण सब-वैष्णव-समाज ॥१४५॥
सर्व-भागवतेर वचन अनादरि। अद्वैतेर सेवा करे, नहे प्रियङ्करी ॥१४६॥
चैतन्येते महा महेश्वर-वुद्धि जार। से-इ से अद्वैत भक्त-अद्वैत ताहार ॥१४७॥
'सर्व प्रभु गौरचन्द्र' इहा जे ना लय। अक्षय-अद्वैत-सेवा व्यर्थ तार हय ॥१४८॥
शिरच्छेदि भक्ति जेन करे दशानन। ना मानये रघुनाथ-शिवेर कारण ॥१४९॥
अन्तरे छाड़िल शिव, से ना जाने इहा। सेवा व्यर्थ हैल, मैल सवंशे पुड़िया ॥१५०॥
भाल-मन्द शिवे झाट भाङ्गिया ना कहे। जार वुद्धि थाके, से-इ चित्ते बुझि लये ॥१५१॥

बड़प्पन है तो यही है कि तुम मेरे नाथ हो ॥ १३६ ॥ प्रभु के स्वरूप प्रकाश के दर्शन कर आचार्य गुसांई आनन्द में विह्वल हो गए और बाहर की सुध बुध सब जाती रही ॥ १३७ ॥ इन सब कथाओं में जिसका विश्वास नहीं है निश्चय समझो कि उसका अधः पतन होगा ॥ १३८ ॥ जिन अद्वैताचार्य को स्वयं श्री-चैतन्य चन्द्र ने शिक्षा दी उनकी व्याख्या को महा भागवत ही समझ सकते हैं ॥ १३९ ॥ जैसे वेदों में नाना प्रकार के वचन है, वैसे ही अद्वैताचार्य के वचन भी दुर्ज्ञेय हैं ॥ १४० ॥ अद्वैत जी के वचनों को समझने की शक्ति जिसमें होगी, उसका ईश्वर के साथ कोई भेद नहीं है—यह जान लेना ॥ १४१ ॥ शरद के मेघ सर्वत्र नहीं बरसते हैं —(कहीं २ ही बरसते हैं) इसमें दोष मेघ का नहीं अपने भाग्य का ही है ॥ १४२ ॥ जैसे श्रीभागवत में कहा है कि—"शरद ऋतु में, पर्वत समूह कल्याण कारी जल कहीं देते हैं, कहीं नहीं भी देते जैसे ज्ञानी जन कभी ज्ञानामृत दान करते हैं, कभी नहीं भी करते (भाग १०-२०-३६) ॥ १४३ ॥ ऐसे ही अद्वैत प्रभु का भी कोई दोष नहीं है वह दूसरों के भाग्य-अभाग्य को जान बूझ करके वैसी ही वहाँ व्याख्या करते हैं ॥ १४४ ॥ श्री अद्वैत का कार्य है श्रीचैतन्य चरण की सेवा। वैष्णव समाज सब इस बात को स्वीकार करती हैं ॥१४५॥ जो लोग सब वैष्णव भक्तों के वचनों का निरादर करके श्रीअद्वैत की ही सेवा करते हैं वह सेवा श्री अद्वैत को प्रिय नहीं है ॥ १४६ ॥ जिसकी श्री चैतन्य चन्द्र में महा-महेश्वर बुद्धि है, वही श्री अद्वैत का भी भक्त है और अद्वैत प्रभु भी उसके हैं ॥ १४७ ॥ "श्री गौरचन्द्र सब के प्रभु-सर्वेश्वर हैं" इस तत्त्व को जो स्वीकार नहीं करते हैं उनकी अद्वैत प्रभु की अक्षय सेवा भी निष्फल है ॥ १४८ ॥ जैसे रावण ने अपनी शिवभक्ति, सिर काट करके तो दिखाई परन्तु शिवजी के कारण स्वरूप रघुनाथ जी को नहीं माना ॥ १४९ ॥ तो शिवजी ने भी उसे अपने अन्तस् से छोड़ दिया—वह इसे नहीं जान सका। फल यह हुआ कि उसकी सेवा व्यर्थ हुई और वह वंश सहित विध्वंस हो गया ॥ १५० ॥ शिवजी भला-बुरा झट खोल करके प्रकाश नहीं कर देते हैं—जिसमें बुद्धि होती है वह हृदयंगम कर लेता है ॥ १५१ ॥ इसी

एइ मत अद्वैतेर चित्त ना वुझिया। वोलाय 'अद्वैत भक्त'—चैतन्य निन्दिया ।।१५२।।
ना वोले अद्वैत किछु स्वभाव-कारणे। ना धरे वैष्णव वाक्य, मरे भाल-मने ।।१५३।।
जाहार प्रसादे अद्वैतेर सर्व-सिद्धि। हेन चैतन्येर किछु ना जानये शुद्धि ।।१५४।।
इहा वलि तेइ आइसे धाइया मारि वारे। अहो माया वलवतो ! कि वलिव तारे ।।१५५।।
प्रभुर जे अलङ्कार-इहा नाहि जाने। अद्वैतेर प्रभु गौर-इहा नाहि माने ।।१५६।।
पूर्वे जे आख्यान हैल, सेइ सत्य हय। ताहाते प्रतीत जार नाहि तार क्षय ।।१५७।।
जत जत शुन जार महत्त्व बड़ाञि। चैतन्येर सेवा हैते आर किछु नाञि ।।१५८।।
नित्यानन्द-महाप्रभु जारे कृपा करे। जार जेन योग्य भक्ति सेइ से आदरे ।।१५९।।
अहर्निश लओयाय ठाकुर नित्यानन्द। "बोल भाइ सब ! मोर प्रभु गौरचन्द्र" ।।१६०।।
चैतन्य-स्मरण करि आवाय गोसाञि। निरबधि कान्दे, आर किछु स्मृति नाञि ।।१६१।।
इहा देखि चैतन्येते जार भक्ति नय। ताहार आलाये हय सुकृतिर क्षय ।।१६२।।
वैष्णवाग्रगण्य-वुद्धे जे अद्वैत गाय। सेइ से वैष्णव जन्म जन्म कृष्ण पाय ।।१६३।।
अद्वैतेर से-इ से एकान्त प्रिय कर। ए मर्म ना जाने जत अधम किङ्कर ।।१६४।।
'सभार ईश्वर प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। ए कथाय अद्वैतेरे प्रीत बहुतर ।।१६५।।
अद्वैतेर श्रीमुखेर ए सकल कथा। इहाते सन्देह किछु ना कर सर्वथा ।।१६६।।
मध्य खण्ड-कथा बड़ अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले सर्व खण्डये पाषण्ड ।।१६७।।

प्रकार अद्वैत के मनोभाव को तो समझते नहीं है और श्री चैतन्यचन्द्र की निन्दा करते हुए "अद्वैत-भक्त" कहलाते हैं ।। १५२ ।। अपने (गम्भीर) स्वभाव के कारण श्री अद्वैत तो कुछ कहते नहीं हैं परन्तु जो वैष्णवों के वचन को नहीं मानते हैं, वे निश्चय ही समाप्त हो जाते हैं ।। १५३ ।। जिनकी कृपा से श्री अद्वैत चन्द्र को सब सिद्धि प्राप्त हैं, ऐसे श्री चैतन्यचन्द्र के तत्त्व का वे (निन्दक जन) कुछ नहीं जानते हैं ।।१५४।। उनसे यह तथ्य कहने पर तो वह वे मारने दौड़ते हैं । अहो ! बलवती माया ! उनसे क्या कहा जाय ।।१५५।। वे यह नहीं जानते हैं कि श्री अद्वैत तो श्री गौर प्रभु के अलङ्कार हैं और न वे यही मानते हैं कि श्री अद्वैत के प्रभु श्रीगौर हैं ।। १५६ ।। जो कुछ ऊपर प्रसङ्ग में कहा गया—वह सब सत्य है-करके जिनका विश्वास हैं, उनका नाश नहीं है ।।१५७।। जिसको जितनी भी महिमा और गरिमा सुनने में आती है वह सब श्री चैतन्य चन्द्र की सेवा से ही है । अन्य किसी कारण से नहीं है ।।१५८।। श्री नित्यानन्द प्रभु जिस पर कृपा करते हैं, वेही जन २ प्रति यथायोग्य आदर-भक्ति प्रदर्शन करते हैं ।।१५९।। ठाकुर नित्यानन्द अहर्निश लोगों से गौर-चन्द्र का नाम बुलवाते हैं । वे कहते हैं-"भाइयो ! तुम सब मेरे प्रभु गौरचन्द्र को गाओ" ।।१६०।। और अद्वैता-चार्य भी श्री चैतन्यचन्द्र को स्मरण करके निरन्तर रोते रहते हैं-और सब बात भूल जाते हैं ।।१६१।। श्री चैतन्य चन्द्र में किसी को भक्ति-शून्य देख सुन करके भी जो उसके साथ वार्तालाप करता है, उसके सुकृति का क्षय हो जाता है ।१६२।। जो जन वैष्णव-श्रेष्ठ-बुद्धि से श्री अद्वैत को गाते हैं, वे वैष्णव ही जन्म २ में श्री-कृष्ण को पाते हैं ।।१६३। और वे ही जन अद्वैत प्रभु के भी परम प्रियकर हैं। और इस मर्म को न जानने वाले सब अधम सेवक हैं ।।१६४।। "प्रभु गौरांग सुन्दर सब के ईश्वर हैं" यह कथन अद्वैत प्रभु को अत्यन्त प्रिय है ।।१६५।। यह सब बातें श्री अद्वैत प्रभु के ही श्रीमुख के हैं। इनमें किसी प्रकार का कुछ भी सन्देह नहीं करना ।१६६।। मध्यखण्ड की कथा तो अमृत का ही खण्ड (टुकड़ा) है, जिस कथा के श्रवण से हृदय का पाखण्ड सब खण्डित हो जाता है ।। १६७ ।। श्री अद्वैत को गीता का सत्य पाठ बतला कर श्री विश्व-

एइ मत अद्वैतेर चित्त ना बुझिया। बोलाय 'अद्वैत भक्त'—चैतन्य निन्दिया ।।१५२।।
ना बोले अद्वैत किछु स्वभाव-कारणे। ना धरे वैष्णव वाक्य, मरे भाल-मने ।।१५३।।
जाहार प्रसादे अद्वैतेर सर्व-सिद्धि। हेन चैतन्येर किछु ना जानये शुद्धि ।।१५४।।
इहा बलि तेइ आइसे धाइया मारि बारे। अहो माया बलवती! कि बलिब तारे ।।१५५।।
प्रभुर जे अलङ्कार-इहा नाहि जाने। अद्वैतेर प्रभु गौर-इहा नाहि माने ।।१५६।।
पूर्वे जे आख्यान हैल, सेइ सत्य हय। ताहाते प्रतीत जार नाहि तार क्षय ।।१५७।।
जत जत शुन जार महत्त्व बड़ाञि। चैतन्येर सेवा हैते आर किछु नाञि ।।१५८।।
नित्यानन्द-महाप्रभु जारे कृपा करे। जार जेन योग्य भक्ति सेइ से आदरे ।।१५९।।
अहर्निश लओयाय ठाकुर नित्यानन्द। "बोल भाइ सब! मोर प्रभु गौरचन्द्र" ।।१६०।।
चैतन्य-स्मरण करि आचार्य गोसाञि। निरबधि कान्दे, आर किछु स्मृति नाञि ।।१६१।।
इहा देखि चैतन्येते जार भक्ति नय। ताहार आलाये हय सुकृतिर क्षय ।।१६२।।
वैष्णवाग्रगण्य-बुद्धे जे अद्वैत गाय। सेइ से वैष्णव जन्म जन्म कृष्ण पाय ।।१६३।।
अद्वैतेर से-इ से एकान्त प्रिय कर। ए मर्म ना जाने जत अधम किङ्कर ।।१६४।।
'सभार ईश्वर प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। ए कथाय अद्वैतेरे प्रीत बहुतर ।।१६५।।
अद्वैतेर श्रीमुखेर ए सकल कथा। इहाते सन्देह किछु ना कर सर्वथा ।।१६६।।
मध्य खण्ड-कथा बड़ अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले सर्व खण्डये पाषण्ड ।।१६७।।

प्रकार अद्वैत के मनोभाव को तो समझते नहीं है और श्री चैतन्यचन्द्र की निन्दा करते हुए "अद्वैत-भक्त" कहलाते हैं ।। १५२ ।। अपने (गम्भीर) स्वभाव के कारण श्री अद्वैत तो कुछ कहते नहीं हैं परन्तु जो वैष्णवों के वचन को नहीं मानते हैं, वे निश्चय ही समाप्त हो जाते हैं ।। १५३ ।। जिनकी कृपा से श्री अद्वैत चन्द्र को सब सिद्धि प्राप्त हैं, ऐसे श्री चैतन्यचन्द्र के तत्त्व को वे (निन्दक जन) कुछ नहीं जानते हैं ।।१५४।। उनसे यह तथ्य कहने पर तो वह वे मारने दौड़ते हैं। अहो! बलवती माया! उनसे क्या कहा जाय ।।१५५।। वे यह नहीं जानते हैं कि श्री अद्वैत तो श्री गौर प्रभु के अलङ्कार हैं और न वे यही मानते हैं कि श्री अद्वैत के प्रभु श्रीगौर हैं ।। १५६ ।। जो कुछ ऊपर प्रसङ्ग में कहा गया—वह सब सत्य है-करके जिनका विश्वास हैं, उनका नाश नहीं है ।।१५७।। जिसकी जितनी भी महिमा और गरिमा सुनने में आती है वह सब श्री चैतन्य चन्द्र की सेवा से ही है। अन्य किसी कारण से नहीं है ।।१५८।। श्री नित्यानन्द प्रभु जिस पर कृपा करते हैं, वेही जन २ प्रति यथायोग्य आदर-भक्ति प्रदर्शन करते हैं ।।१५९।। ठाकुर नित्यानन्द अहर्निश लोगों से गौर-चन्द्र का नाम बुलवाते हैं। वे कहते हैं-"भाइयो! तुम सब मेरे प्रभु गौरचन्द्र को गाओ" ।।१६०।। और अद्वैता-चार्य भी श्री चैतन्यचन्द्र को स्मरण करके निरन्तर रोते रहते हैं-और सब बात भूल जाते हैं ।।१६१।। श्री चैतन्य चन्द्र में किसी को भक्ति-शून्य देख सुन करके भी जो उसके साथ वार्तालाप करता है, उसके सुकृति का क्षय हो जाता है ।।१६२।। जो जन वैष्णव-श्रेष्ठ-बुद्धि से श्री अद्वैत को गाते हैं, वे वैष्णव ही जन्म २ में श्री-कृष्ण को पाते हैं ।।१६३। और वे ही जन अद्वैत प्रभु के भी परम प्रियकर हैं। और इस मर्म को न जानने वाले सब अधम सेवक हैं ।।१६४।। "प्रभु गौरांग सुन्दर सब के ईश्वर हैं" यह कथन अद्वैत प्रभु को अत्यन्त प्रिय है ।।१६५।। यह सब बातें श्री अद्वैत प्रभु के ही श्रीमुख के हैं। इनमें किसी प्रकार का कुछ भी सन्देह नहीं करना ।।१६६।। मध्यखण्ड की कथा तो अमृत का ही खण्ड (टुकड़ा) है, जिस कथा के श्रवण से हृदय का पाखण्ड सब खण्डित हो जाता है ।। १६७ ।। श्री अद्वैत को गीता का सत्य पाठ बतला कर श्री विश्व-

अद्वैतेरे वलिया गीतार सत्य पाठ। विश्वम्भर मुकाइल भक्तिर कपाट ॥१६८॥
श्रीभुज तुलिया बोले प्रभु विश्वम्भर। "सभे मोरे देख, माग' जार जेइ वर ॥१६९॥
आनन्द पाइला सभे प्रभुर वचने। जार जेइ इच्छा मागे' ताहार कारणे ॥१७०॥
अद्वैत बोलये "प्रभु मोर एइ वर। मूर्ख नीच दरिद्रेरे अनुग्रह कर" ॥१७१॥
केहो बोले "मोर वापे आसि वारे ना दे। तार चित्त भाल हउ तोमार प्रसादे ॥१७२॥
केहो वोले शिष्य-प्रति केहो पुत्र प्रति। केहो भार्या केहो भृत्ये जार जथा रति ॥१७३॥
केहो बोले "आमार हउक गुरु भक्ति। एइ मत वर मागे' जार जेन शक्ति ॥१७४॥
भक्त-वाक्य-सत्यकारी प्रभु विश्वम्भर। हासिया हासिया सभा कारे देन वर ॥१७५॥
मुकुन्द आछेन अन्तः पटेर वाहिरे। सम्मुख हइते शक्ति मुकुन्द ना धरे ॥१७६॥
मुकुन्द सभार प्रिय–परम-महान्त। भाल मते जाने सेइ सभार वृत्तान्त। १७७॥
निरवधि कीर्तन करिया प्रभु-सने। कोन जन ना वुझे, तथापि दण्ड केने ॥१७८।
ठाकुरेह नाहि डाके आसिते ना पारे। देखिया जन्मिल दुःख सभार अन्तरे ॥१७९॥
श्रीवास बोलेन 'शुन जगतेर नाथ। मुकुन्द कि अपराध करिल तोमा' त ॥१८०॥
मुकुन्द तोमार प्रिय–मो' सभार प्राण। केवा नाहि द्रवे' शुनि मुकुन्देर गान ॥१८१॥
भक्ति परायण सर्ब दिगे सावधान। अपराध ना देखिये कर' अपमान ॥१८२॥
यदि अपराध थाके, तार शास्ति कर। आपनार दास केने दूरे परिहर ॥१८३॥
तुमि ना डाकिले नारे सम्मुख हइते। देखुक तोमारे प्रभु! बोल भाल मते" ॥१८४॥

म्भर देव ने भक्ति के किवाड़ खोल दिये ॥ १६८ ॥ (यथा) श्रीभुज उठाकर प्रभु बोले–"सब मेरे दर्शन करो, और जिसकी जो इच्छा हो सो वर माँग लो" ॥ १६९ ॥ प्रभु के वचन से सबको बड़ा आनन्द हुआ और सब अपनी २ इच्छानुसार वर माँगने लगे ॥ १७० ॥ पहले अद्वैत जी बोले–"प्रभु ! मैं यह वर चाहता हूँ कि आप मूर्ख, नीच, और दरिद्रों के ऊपर कृपा करें ॥ १७१ ॥ फिर कोई बोला–"मेरा बाप मुझे आप के पास नहीं आने देता है, आपकी कृपा से उनका चित्त स्वस्थ हो जाय" ॥ १७२ ॥ किसी ने शिष्य के लिए, किसी ने पुत्र के लिए, किसी ने स्त्री के लिये, किसी ने सेवक के लिये,–जिसकी जिसमें प्रीति थी उसके लिये वरदान माँगा ॥ १७३ ॥ कोई बोला–"मुझे गुरु-भक्ति मिले" इस प्रकार सब लोग अपनी २ शक्ति अनुसार वर माँगते हैं ॥ १७४ ॥ भक्तों के वचन को सत्य करने वाले प्रभु विश्वम्भर भी हँस २ कर सबको वर देते हैं ॥ १७५ ॥ मुकुन्द दत्त पर्दा के बाहर ही खड़े हैं। भीतर प्रभु के सन्मुख आने की शक्ति नहीं है ॥ १७६ ॥ मुकुन्द सब के प्रिय हैं, महान् हृदयवान् हैं, सब वैष्णवों से भली भाँति परिचित हैं ॥१७७॥ वे प्रभु के साथ निरन्तर कीर्त्तन करते हैं फिर भी उनको यह दण्ड क्यों ? यह किसी की समझ में नहीं आ रहा है ॥१७८॥ प्रभु भी उसे नहीं बुलाते हैं और वह स्वयं आ नहीं सकता यह देख कर सब के चित्त में बड़ा ही दुःख हो रहा है ॥ १७९ ॥ तब श्री वास जी बोले–"हे जगन्नाथ प्रभो ! सुनिए। मुकुन्द ने आप का क्या अपराध किया है ? ॥ १८० ॥ मुकुन्द तो आप का बड़ा प्यारा है और हम सबों का प्राण है–उसके गायन को सुन कर किसका हृदय नहीं पिघल जाता है ॥ १८१ ॥ वह भक्ति परायण है, सब ओर से सावधान रहता है। उसका अपराध तो बताइये जिस कारण उसका अपमान कर रहे हैं ॥ १८२ ॥ यदि कोई अपराध हो तो उसका दण्ड दें, पर अपने दास को दूर न कर दें ॥ १८३ ॥ आप के बिना बुलाये वह आपके सम्मुख हो नहीं सकता। प्रभो ! आप उसे भली प्रकार से बुलावें। वह भी आप का दर्शन करे ॥ १८४ ॥ तब प्रभु

प्रभु बोले "हेन वाक्य कभु ना वलिवा । ओ वेटार लागि मोरे केहो ना साधिवा ।।१८५।।
'खड़ लय जाठि लय' पूर्वे जे शुनिला । अइ वेटा सेइ हय, केहो ना चिनिला ।।१८६।।
क्षणे दन्ते तृण लय, क्षणे जाठि मारे । ओ खड़-जाटिया वेटा ना देखिव मोरे" ।।१८७।।
महा वक्ता श्रीनिवास बोले आर वार । "वुझिते तोमार वाक्य कार अधिकार ।।१८८।।
आमरात मुकुन्देर दोष नाहि देखि । तोमार अभय-पाद पद्म तार साक्षी ।।१८९।।
प्रभु वोले 'ओ वेटा जखन जथा जाय । सेइ मत कथा कहि तथाय मिशाय ।।१९०।।
वाशिष्ठ पढ़ये जवे अद्वैतेर सङ्गे । भक्ति योगे नाचे गाय तृण करि दन्ते ।।१९१।।
अन्य-सम्प्रदाये गिया जखने साम्भाय । नाहि माने' भक्ति, जाठि मारये सदाय ।।१९२।।
'भक्ति हैते वड़ आछे' जे इहा वाखाने । निरन्तर जाठि मारे मोरे सेइ जने ।।१९३।।
भक्ति-स्थाने उहार हइल अपराध । एतेके उहार हैल दरशन-वाध" ।।१९४।।
मुकुन्द शुनये सव वाहिरे थाकिया । 'ना पाइव दरशन' शुनि लेन इहा ।।१९५।।
"गुरु-उपरोधे पूर्वे ना मानिलुँ भक्ति । सव जाने महाप्रभु-चैतन्येर शक्ति ।।१९६।।
मने चिन्ते मुकुन्द परम-भागवत । "ए देह राखिते मोर ना हय युगत ।।१९७।।
अपराधी शरीर छाड़िव आजि आमि । देखिव कतेक काले, इहा नाहि जानि" ।।१९८।।
मुकुन्द बोलेन "शुन ठाकुर श्रीवास । कभू नि देखिमू मुञि' वोल प्रभु-पाश ।।१९९।।
कान्दये मुकुन्द दुइ झरये नयने । मुकुन्देर दुःखे कान्दे भागवत गणे ।।२००।।

बोले-"ऐसी बात फिर कभी न कहना । उस बेटा के लिए मुझसे कोई भी प्रार्थना न करे ।। १८५ ।। "तुम लोगों ने पहले सुना ही होगा कि एक प्रकार के मनुष्य होते हैं जो कभी दाँतों में तिकना पकड़ते हैं तो कभी हाथ में लाठी सम्हालते हैं-यह बेटा मुकुन्द भी वैसा ही है-इसे किसी ने पहचाना नहीं ।। १८६ ।। यह क्षण में तो दाँतों में तृण ले लेता है, और क्षण में लाठी चलाता है ऐसा "खड-जाठिया" बेटा (खड-तृण जाठिया-लाठी) मुझे नहीं देख पायगा । १८७ ।। श्री निवास जी बड़े भारी वक्ता हैं-वे फिर बोले-"प्रभो ! आपके वाक्य समझने वाला अधिकारी यहाँ कौन है ? ।। १८८ ।। हमको तो मुकुन्द का कोई दोष नहीं दिखाई देता है-तुम्हारे अभय पाद-पद्म ही इसके साक्षी हैं ।। १८९ ।। प्रभु बोले-"यह बेटा जहाँ जाता है, वहाँ वैसी ही बातें बना कर मिल जुल जाता है ।। १९० ।। जब अद्वैत के साथ योगवाशिष्ठ पढ़ता है तब दाँतों में तृण पकड़ कर भक्ति-पूर्वक नाचता है ।। १९१ ।। "और जब किसी अन्य सम्प्रदाय में जा घुसता है तब भक्ति को नहीं मानता है उस पर निरन्तर प्रहार करता है ।। १९२ ।। "भक्ति से भी कोई वस्तु बड़ी है"-ऐसा जो कोई कहता है, वह मुझ पर निरन्तर लाठी मारता है ।। १९३ ।। इस प्रकार भक्ति के निकट उसका अपराध हुआ है अतएव उसके लिए मेरे दर्शन में बाधा पड़ गई है" ।। १९४ ।। मुकुन्द बाहर से सब सुन रहे थे । उन्होंने सुना कि "मुझे दर्शन नहीं मिलेगा" ।। १९५ ।। तब मुकुन्द मन में सोचने लगे कि "मैंने पहले गुरु के समझाने पर भी भक्ति को नहीं माना । मेरी इस बात को महाप्रभु श्री चैतन्य की ज्ञान शक्ति सब जानती है ।।१९६।। परम भागवत मुकुन्द फिर मन में सोचते हैं कि "अब इस देह को रखना मेरे लिए उचित नहीं है ।। १९७ ।। यह शरीर अपराधी है, आज मैं इसे अवश्य त्याग दूँगा । पर यह भी तो नहीं मालूम कि कितने समय में प्रभु का दर्शन मिलेगा ।। १९८ ।। तब मुकुन्द ने बाहर से कहा "पण्डित श्रीवास जी ! सुनिए । प्रभु से इतना पूछ दीजिए कि मुझे कब उनके दर्शन होंगे ।। १९९ ।। यह कह कर मुकुन्द रोने लगे और उसके दुःख से और वैष्णव लोग भी रोने लगे ।। २०० ।। तब प्रभु बोले-"जब उसके कोटि जन्म और बीत जायँगे, । तब जाकर

प्रभु बोले "आर यदि कोटि जन्म हय । तवे मोर दरशन पाइव निश्चय" ॥२०१॥
शुनिल 'निश्चय-प्राप्ति' प्रभुर श्रीमुखे । मुकुन्द सिञ्चित हैला परानन्द सुखे ॥२०२॥
"पाइव पाइव" वलि करे महा नृत्य । आनन्दे विह्वल हैला चैतन्येर भृत्य ॥२०३॥
महानन्दे मुकुन्द नाचये सेइ खाने । 'देखि वेन हेन वाक्य शुनिञा श्रवणे ॥२०४॥
मुकुन्द देखिया प्रभु हासे' विश्वम्भर । आज्ञा हैल "मुकुन्देरे आनह सत्वर" ॥२०५॥
सकल वैष्णव डाके "आइसह मुकुन्द" । ना जाने मुकुन्द किछु, पाइया आनन्द ॥२०६॥
प्रभु बोले "मुकुन्द ! घुचिल अपराध । आइस आमारे देख, घरह प्रसाद" ॥२०७॥
प्रभुर आज्ञाय सभे आनिल धरिया । पड़िला मुकुन्द महापुरुष देखिया ॥२०८॥
प्रभु बोले "उठ उठ मुकुन्द आमार । तिलार्द्धे को अपराध नाहिक तोमार ॥२०९॥
सङ्ग-दोष तोमार सकल हैल क्षय । तोर स्थाने आमार हइल पराजय ॥२१०॥
'कोटि जन्मे पाइवा' हेन वलिलाङ आमि । तिलार्द्धे के सव ताहा घुचाइले तुमि ॥२११॥
'अव्यर्थ आमार वाक्य' तुमिसे जानिला । तुमि आमा' सर्व काल हृदये वान्धिला ॥२१२॥
आमार गायन तुमि, थाक आमा' सङ्गे । परिहास पात्र-सङ्गे आमि कैल रङ्गे ॥२१३॥
सत्य यदि तुमि कोटि अपराध कर' । से सकल मिथ्या, तुमि मोर प्रिय दृढ़ ॥२१४॥
भक्ति मय तोमार शरीर-मोर दास । तोमार जिह्वाय मोर निरन्तर वास" ॥२१५॥
प्रभुर आश्वास शुनि कान्दये मुकुन्द । धिक्कार करिया आपनारे बोले मन्द ॥२१६॥
"भक्ति ना मानिलुँ मुञि एइ छार मुखे । देखिलेइ भक्ति शून्य कि पाइव सुखे ॥२१७॥

निश्चय ही वह मेरा दर्शन पायगा" ॥ २०१ ॥ "निश्चय पायगा" ये शब्द प्रभु के श्रीमुख के सुनते ही मुकुन्द के तो तन-मन रोम २ परानन्द सुख में भीग गए ॥ २ २ ॥ और वह "पाऊँगा २" कहता हुआ महा नृत्य करने लगा विह्वल हो गया मारे आनन्द के श्री चैतन्य चन्द्र का भृत्य (मुकुन्द) ॥ २०३ ॥ 'देखेगा' इस वचन को कानों से सुनकर महा-आनन्द के साथ मुकुन्द वहीं बाहर नाचने लगा ॥ २०४ ॥ मुकुन्द को देख कर प्रभु विश्वम्भर हँसे और आज्ञा की "मुकुन्द को शीघ्र ही ले आओ" ॥ २०५ ॥ तब तो सब वैष्णव लोग "आओ मुकुन्द ! आओ मुकुन्द !" कह कर पुकारने लगे । पर सुने कहाँ मुकुन्द-वह तो आनन्द में डूब रहा है ॥ २०६ ॥ प्रभु बोले-"मुकुन्द ! तुम्हारा अपराध नष्ट हो गया । आओ ! मेरे दर्शन करो ! प्रसाद लो" ॥ २०७ ॥ प्रभु की आज्ञा से भक्त लोग उसे पकड़ लाए । अपने सम्मुख महापुरुष को देख कर मुकुन्द पृथ्वी पर लम्बा पड़ गया ॥ २०८ ॥ प्रभु बोले-"उठो, मेरे मुकुन्द ! उठो ! तुम्हारा आधा तिल भर भी अपराध नहीं हैं ॥२०९॥ तुम्हारा सङ्ग-दोष सब क्षय हुआ और तुम्हारे निकट मेरा पराजय हुआ ॥२१०॥ मैंने तो कहा कि "कोटि जन्म में पाओगे"-और तुमने उसे क्षण काल में ही मिटा दिया । २११ ॥ "मेरे वचन अव्यर्थ हैं" यह तुमने निश्चय करके पकड़ लिया । इसीसे तुमने मुझे सब समय के लिये अपने हृदय में बाँध लिया ॥ २१२ ॥ तुम तो मेरे गायक (कीर्त्तनिया) हो, सदा मेरे साथ रहते हो, हँसी-विनोद के साथी हो-इसीलिए तुम्हारे साथ मैंने कुछ कौतुक-खेल किया था ॥ २१३ ॥ "यदि सचमुच तुम कोटि अपराध भी कर डालो, तथापि वे सब मिथ्या हैं । तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो ॥ २१४ ॥ तुम्हारा भक्तिमय शरीर मेरा दास है । और तुम्हारी जिह्वा पर मेरा निरन्तर निवास है ॥ २१५ ॥ प्रभु के आश्वासन को सुनकर मुकुन्द रोने लगा, और अपने को धिक्कारता हुआ भला बुरा कहने लगा ॥ २१६ ॥ वह बोला-"मैंने इस नीच मुख से भक्ति नहीं माना । ऐसा मैं भक्ति शून्य, प्रभु का दर्शन करने पर भी क्या सुख पाऊँगा ॥ २१७ ॥ दुर्योधन

विश्वरूप तोमार देखिल दुर्योधन। जाहा देखिवारे वेदे करे अन्वेषण ॥२१८॥
देखियाओ सवंशे मरित दुर्योधन। ना पाइल सुख-भक्ति शून्येर कारण ॥२१९॥
हेन भक्ति ना मानिल आमि छार मुखे। देखिले कि हैव आर मोर प्रेम सुखे ॥२२०॥
जखने चलिला तुमि रुक्मिणी हरणे। देखिल नरेन्द्र-सब गरुड़ वाहने ॥२२१॥
अभिषेके हैल राज राजेश्वर नाम। देखिल नरेन्द्र तोमा महा ज्योतिर्धाम ॥२२२॥
ब्रह्मादि देखिते जाहा करे अभिलाष। विदर्भ-नगरे ताहा करिला प्रकाश ॥२२३॥
ताहा देखि मरे सब नरेन्द्रेर गण। ना पाइल सुख-भक्ति शून्येर कारण ॥२२४॥
सर्व यज्ञ मय रूप-कारण-शूकर। आविर्भाव हैला तुमि जलेर भितर ॥२२५॥
अनन्त पृथिवी लागि आछये दशने। जे प्रकाश देखिते देवेर अन्वेषणे ॥२२६॥
देखिलेक हिरण्य-अपूर्व-दरशने। ना पाइल सुख-भक्ति शून्येर कारणे ॥२२७॥
आर महा प्रकाश देखिल तार भाइ। जाहा गोप्य हृदये ते कमलार ठाँइ ॥२२८॥
अपूर्व नृसिंह-रूप कहे त्रिभुवने। ताहा देखि मरे भक्ति शून्येर कारणे ॥२२९॥
हेन भक्ति मोर छार-मुखे ना मानिल। ए बड़ अद्भुत! मुख खसि ना पड़िल ॥२३०॥
कुब्जा, यज्ञ पत्नी, पुर नारी, मालाकार। कोथाय देखिल तारा प्रकाश तोमार ॥२३१॥
भक्ति योगे तोमारे पाइल सेइ सब। सेइ खाने मरे कंस-देखि अनुभव ॥२३२॥
हेन भक्ति मोर छार-मुखे ना मानिल। एइ वड़ कृपा तोर-तथापि रहिल ॥२३३॥

[दुर्योध]ने भी तो आप के उस विश्वरूप को देखा था कि जिसको देखने को वेद निरन्तर ढूँढते फिरते हैं ॥२१८॥ विराट रूप देख करके भी दुर्योधन वंश सहित विध्वंस हो गया। भक्ति शून्य होने के कारण दर्शन के सुख से वह वंचित ही रह गया ॥ २१९ ॥ मैंने ऐसी सुखदायिनी भक्ति को अपने इस अधम मुख से नहीं माना। अतएव आपके दर्शन करने पर भी मुझे क्या सुख मिलेगा ॥ २२० ॥ और जिस समय आप रुक्मिणी को हरण करने गए थे, उस समय सब राजाओं ने भी तो आपको गरुड़ पर सवार देखा था ॥ २२१ ॥ फिर अभिषेक के समय आप का राज-राजेश्वर नाम हुआ। राजाओं ने तुम्हारा महा-ज्योतिर्मय रूप देखा ॥ २२२ ॥ ब्रह्मादि भी जिस रूप के दर्शन की अभिलाषा करते हैं, वह रूप आप ने विदर्भ नगर में प्रकाशित किया ॥ २२३ ॥ परन्तु तथापि उस रूप को देख कर सब राजा लोग जल मरे और सुख से कोरे ही रह गए—कारण कि वे भक्ति शून्य जो थे ॥ २२४ ॥ और एक बार आप सर्व यज्ञमय, कारण स्वरूप, शूकर रूप में भी तो जल में प्रकट हुए थे ॥ २२५ ॥ अनन्त विशाल पृथ्वी आपके दाँतों के ऊपर थी। ऐसा जो आप का अपूर्व रूप प्रकाश था कि जिसके दर्शन के लिए देवता लोग भी खोजते फिरते हैं ॥ २२६ ॥ उसका दर्शन हिरण्याक्ष ने किया परन्तु भक्ति शून्य होने के कारण सुख उसे भी न मिला ॥ २२७ ॥ और एक महाप्रकाश को उसके भाई (हिरण्यकश्यप) ने देखा था। वह रूप लक्ष्मी देवी के भी गोप्य, हृदय में भी था ॥२२८॥ जिसे त्रिभुवन में नृसिंह का अपूर्व रूप कहते हैं। उसे देख करके भी वह मरा भक्ति शून्य होने के कारण ॥ २२९ ॥ ऐसी भक्ति को मेरे नीच मुख ने स्वीकार नहीं की—पर यह बड़ी अद्भुत बात है कि मेरी जीभ (मुख) उस समय कट कर कैसे नहीं गिर पड़ी ॥ २३० ॥ (परन्तु दूसरी ओर) कुब्जा, यज्ञ पत्नीगण, मथुरा नारीगण और मथुरा के माली ने आपका कोई (अद्भुत) प्रकाश कहाँ देखा था भला ॥ २३१ । परन्तु उनमें भक्ति थी, उस भक्ति योग के कारण उन्होंने आप को प्राप्त किया और उसी मथुरा में कंसादि आप को देख करके मरे—यह देखते-अनुभव करते हुए भी ॥ २३२ ॥ ऐसी भक्ति को मेरे नीच मुख ने न

जे भक्तिर प्रभावे अनन्त महाबली। अनन्त ब्रह्माण्ड धरे हइ कुतूहलो ।।२३४।।
सहस्र फणार एक फणे विन्दु जेन। यशे मत्त प्रभु, ना जानये 'आछे हेन' ।।२३५।।
निराश्रये पालन करेन सभाकार। भक्ति योग-प्रभावे ए सब अधिकार ।।२३६।।
हेन भक्ति ना मानिलुँ मुञि पाप मति। अशेष-जन्मेओ मोर नाहि भाल-गति ।।२३७।।
भक्ति योगे गौरी पति हइला शङ्कर। भक्ति योगे नारद हइला मुनिवर ।।२३८।।
वेद धर्म योग-नाना शास्त्र करि व्यास। तिलार्द्ध क चित्ते नाहिं वासेन प्रकाश ।।२३९।।
महा-गोप्य-ज्ञाने भक्ति वलिला संक्षेपे। सवे एइ अपराध-चित्तेर विक्षेपे ।।२४०।।
नारदेर वाक्ये भक्ति करिला विस्तार। तवे मनो दुःख गेल तारिला संसार ।।२४१।।
कीट हइ ना मानिलुँ मुञि हेन भक्ति। आरो तोमा' देखिवारे आछे मोर शक्ति'' ।।२४२।।
बाहु तुलि कान्दये मुकुन्द महा दास। चलये शरीर जेन, हेन वहे श्वास ।।२४३।।
सहजे एकान्त-भक्त कि कहिव सोमा। चैतन्य प्रियेर माझे जाहार गण ना ।।२४४।।
मुकुन्देर खेद देखि प्रभु विश्वम्भर। लज्जित हइया किछु करिला उत्तर ।।२४५।।
''मुकुन्देर भक्ति मोर बड़ प्रियङ्करी। जथा गाओ तुमि तथा आमि अवतरि ।।२४६।।
तुमि जत कहिले, सकल सत्य हय। भक्ति विने आमा' देखिलेओ किछु नय ।।२४७।।
एइ तोरे सत्य कहि, बड़ प्रिय तुमि। वेद मुख वलियाछि जत किछु आमि ।।२४८।।
जे जे कर्म कैले हय जे जे दिव्य गति। ताहा घुचाइते पारे काहार शकति ।।२४९।।

माना इतना होने पर भी यही आप की बड़ी कृपा है कि मैं जीवित हूँ ।। २३३ ।। जिस भक्ति के प्रभाव से महाबली अनन्त देव सहज विनोद में ही अनन्त ब्रह्माण्डों को ऐसे धारण किये हुए हैं ।।२३४।। जैसे कि मानो तो सहस्र फणों में से एक फण के ऊपर एक बूँद पड़ी हुई हो। प्रभु के यश गान में वे ऐसे मत्त हैं कि ''फण पर भी कुछ है''—इसका कुछ ज्ञान हो नहीं है ।। २३५ ।। स्वयं वे निराधर हैं परन्तु सब को धारण कर पालन कर रहे हैं—यह अधिकार उनका भक्ति योग के प्रभाव से हो प्राप्त है ।। २३६ ।। ऐसे भक्ति योग को मुझ पाप मति ने नहीं माना। अतएव अनन्त जन्मों में भी मेरी सद्‌गति नहीं होगी ।। २३७ ।। भक्ति योग के प्रभाव से हो शङ्कर गोरी-पति हैं, और भक्ति योग के प्रभाव से ही नारद मुनिश्रेष्ठ हैं ।। २३८ ।। व्यास जी ने वेद, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र आदि अनेक शास्त्रों की रचना करके भी अपने चित्त में तिल भर भी प्रसन्नता का अनुभव नहीं किया ।। २३९ ।। उनके चित्त विक्षेप का केवल यही एक अपराध था कि उन्होंने भक्ति को महा गोप्य समझ कर संक्षेप में वर्णन किया था ।। २४० ।। फिर नारद जी के कहने पर जब उन्होंने भक्ति विस्तार पूर्वक वर्णन की तब उनका मानो दुःख दूर हुआ और संसार का भी उद्धार हुआ ।।२४१।। एक कीट होकर के भी मैंने ऐसी भक्ति को नहीं माना फिर भी आपके दर्शन करने की मेरो सामर्थ्य तो देखो ।।२४२।। ऐसा कहता हुआ महादास मुकुन्द, भुजाओं को उठा कर रोता जाता है और साँस ऐसी चलती है कि शरीर नहीं धौंकनी चल रही हो ।। २४३ ।। श्री चैतन्य चन्द्र के प्रिय जनों में जिनकी गणना है, ऐसे सहज अनन्य भक्त मुकुन्द की भक्ति की सीमा मैं क्या कहूँ ।। २४४ ।। मुकुन्द के खेद को देख कर प्रभु विश्वम्भर ने लज्जित होकर उत्तर दिया ।।२४५।। 'मुकुन्द की भक्ति मुझे बड़ी प्रिय है। तुम जहाँ गाते हो, मैं वहाँ प्रकट होता हूँ ।। २४६ ।। तुमने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है। भक्ति के बिना मेरा दर्शन मिल जाने पर कुछ हाथ नहीं लगता ।। २४७ ।। ''यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, (कारण कि) तुम मेरे बड़े प्रिय हो। मैंने जो कुछ भी वेद के मुख से कहा है कि ।। २४८ ।। जिन २ कर्मों के करने से जो २ दिव्य गति प्राप्त होती है,

मुञि पारों सकल अन्यथा करि वारे। सर्व-विधि-उपरे आमार अधिकारे ।।२५०।।
मुञि सत्य करियाछों आपनार मुहे। मोर भक्ति विने कोन कर्म किछु नहे ।।२५१।।
भक्ति ना मानिले हय मोर मर्म-दुःख। मोर दुःखे घुचे तार दरशन-सुख ।।२५२।।
रजकेओ देखिल, मागिल तार ठाञि। तथापि वञ्चित हैल, जाते प्रेम नाञि ।।२५३।।
आमा देखिवारे सेइ कत तप कैल। कत कोटि देह सेइ रजक छाड़िल ।।२५४।।
पाइलेक महा भाग्ये मोर दरशने। ना पाइल सुख भक्ति शून्येर कारणे ।।२५५।।
मोर सेव केर ठाञि जार अपराध। मोर दरशन-सुख तार हय बाध ।।२५६।।
भक्त-स्थाने अपराध कैले घुचे भक्ति। भक्तिर अभावे घुचे दरशन-शक्ति ।।२५७।
जतेक कहिले तुमि सब मोर कथा। तोमार मुखे वा केने आसिव अन्यथा ।।२५८।।
'भक्ति विलाइमु मुञि' बलिल तोमारे। आगे प्रेम भक्ति दिल तोर कण्ठ स्वरे ।।२५९।।
जत देख आछे मोर वैष्णव मण्डल। शुनिले तोमार गान द्रवये सकल ।।२६०।।
आमार जे मन तुमि वल्लभ एकान्त। एइ मत हओ तोरे सकल महान्त ।।२६१।।
जे खाने जे खाने हय मोर अवतार। तथाय गायन तुमि हइवे आमार ।।२६२।।
मुकुन्देर प्रति यहि वरदान कैल। महा-जय जय ध्वनि तखने उठिल ।।२६३।।
'हरि बोल हरि बोल जय जगन्नाथ। 'हरि' वलि निवेदइ सभे तुलि हाथ ।।२६४।।
मुकुन्देर स्तुति वर शुने जेइ जन। सेहो मुकुन्देर सङ्गे हइव गायन ।।२६५।।
ए सब चैतन्य कथा वेदेर निगूढ़। सुवुद्धि मानये इहा, ना मानये मूढ़ ।।२६६।।

उसको मिटाने की भला किसकी सामर्थ्य है ।। २४९ ।। "परन्तु मैं सब कुछ उलट सकता हूँ। सब विधि-विधान के ऊपर मेरा अधिकार है ।। २५० ।। मैंने अपने ही मुख से यह सत्य घोषणा कर रक्खी हैं कि मेरी भक्ति के बिना कोई भी कर्म का सार कुछ नहीं है ।। २५१ ।। "भक्ति को न मानने से मुझे मार्मिक दुःख होता है। मेरे दुःख के कारण उसको दर्शन का सुख नहीं मिलता है ।। २५२ ।। कंस के धोबी ने मेरा दर्शन किया मैंने उससे वस्त्र भी माँगे, पर फिर भी वह दर्शन के आनन्द सुख से वंचित ही रहा-कारण कि उसमें प्रेमभक्ति नहीं थी ।। २५३ ।। मेरे दर्शन के लिए उसने कितना तो तप किया था और कितने करोड़ देह उस धोबी ने छोड़े थे ।। २५४ ।। महाभाग्य से उसे मेरा दर्शन तो मिला पर भक्ति शून्य होने के कारण दर्शन का सुख न मिला। २५५ ।। "मेरे सेवक के निकट जिसका अपराध होता है उसको मेरे दर्शन के सुख में बाधा पड़ जाती है ।। २५६ ।। (कारण कि) भक्त के निकट अपराध करने से भक्ति मिट जाती है और भक्ति के अभाव में दर्शन करने की शक्ति चली जाती है ।। २५७ ।। "तुमने जो कुछ भी कहा वह सब मेरी ही बातें थीं। तुम्हारे मुख में दूसरी बातें आ भी कैसे सकती हैं ।। २५८ ।। मैं तुमसे कहता हूँ कि मैं भक्ति वितरण करूँगा और मैं सब से आगे तुम्हारे कण्ठस्वर में प्रेमभक्ति देता हूँ ।। २५९ ।। "देखो जितने भी मेरे वैष्णव भक्त मण्डल हैं, वे सब तुम्हरे गायन को सुन कर द्रवीभूत हो जाँयगे ।। २६० ।। जैसे तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, वैसे ही तुम और सब महानुभावों के भी प्रिय होगे ।। २६१ ।। और जहाँ २ मेरा अवतार होगा, वहाँ २ तुम मेरे गायक बनोगे ।। २६२ ।। जब मुकुन्द के प्रति ऐसा वरदान दिया तो महा जय जयकार ध्वनि होने लगी ।। २६३ ।। सब लोग हाथ उठा २ कर 'हरि बोल' 'हरि बोल' 'जय जगन्नाथ' "हरि २" कह २ के अपने २ हृदयोच्छ्वास को निवेदन करने लगे ।। २६४ ।। मुकुन्द की स्तुति और वर प्राप्ति के प्रसङ्ग को जो कोई सुनेंगे वे भी मुकुन्द के साथ प्रभु के गायक होंगे ।। २६५ ।। यह सब चैतन्य-चरित्र वेद के लिए भी गुप्त है, सुबुद्धिमान इसे मानते

शुनिले ए सब कथा जार हय सुख। अवश्य देखिब सेइ श्रीचैतन्य-मुख ।।२६७।।
एइ मत जत जत भक्तेर मण्डल। सभे कैला स्तुति-वर पाइल सकल ।।२६८।।
श्रीवास पण्डित अति महा महोदार। अतएव तान गृहे सब व्यवहार ।।२६९।।
जार जेन मत इष्ट प्रभु आपनार। सेइ विश्वम्भर देखे सेइ अवतार ।।२७०।।
'महा-महा-परकाश' इहारे से वलि। ए मत करये गौरचन्द्र कुतूहली। २७१।।
एइ मत दिने दिने प्रभुर प्रकाश। सपत्नीके चैतन्येर देखे जत दास ।।२७२।।
देह-मन-निर्विशेषे जे जे हय दास। तारा से देखिते पाय ए सब प्रकाश ।।२७३।।
सेइ नवद्वीपे आर कत कत आछे। तपस्वी, संन्यासी, ज्ञानी, योगी माझे माझे ।।२७४।।
यावत्काल गीता भागवत केहो पड़े। केहो वा पढ़ाय स्वधर्मे ते नाहि नड़े ।।२७५।।
केहो केहो परिग्रह किछुइ ना लय। वृथा आकुमार-धर्मे शरीर शोषय। २७६।।
सेइ खाने हेन वैकुण्ठेर सुख हैल। वृथा-अभिमानो एको जना ना देखिल ।।२७७।।
श्रीवासेर दास दासी जे सब देखिल। शास्त्र पढ़ियाओ ताहा केहो ना जानिल ।।२७८।।
मुरारि गुप्तेर दासे जे प्रसाद पाइल। केहो माथा मुण्डाइया ताहा ना देखिल। २७९।।
धने कुले पाण्डित्ये चतन्य नाहि पाइ। केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञ्नि ।।२८०।।
बड़ कीर्त्ति हइले चैतन्य नाहि पाइ। भक्ति वश सबे प्रभु-चारि-वेदे गाइ ।।२८१।।
सेइ नवद्वीपे हेन प्रकाश हइल। जत भट्टाचार्य एको जना ना देखिल ।।२८२।।
दुष्कृतिर सरोवरे कभू जल नहे। ए मन प्रकाशे कि वञ्चित जीव हये ।।२८३।।

हैं, मूढ़ जन नहीं मानते हैं ।। २६६ ।। यह सब कथा सुनने पर जिसे सुख होता है, वह श्री चैतन्य के मुखचन्द्र का अवश्य दर्शन करेगा ।।२६७।। इसी प्रकार से जितना भी भक्त मण्डल था, सबने स्तुति की और वर पाया ।। २६८ ।। श्रीवास पण्डित "अति महा २ उदार" है, अतएव उनके ही घर पर यह सब विहार हुए। २६९।। जिसका इष्टदेव जैसा था, वह प्रभु विश्वम्भर को उसी अवतार के रूप में देखते हैं ।। २७० ।। इसीलिए इसको 'महा २ प्रकाश' कहते हैं। इस प्रकार कौतुक श्री गौरचन्द्र लीला करते हैं ।। २७१ ।। इसी प्रकार दिन प्रति दिन प्रभु अपने स्वरूप का प्रकाश करते हैं और चैतन्य दास सब अपनी स्त्रियों के सहित दर्शन करते हैं ।।२७२।। जो अपने शरीर और मन के भेद को मिटा कर उन्हें एक करके प्रभु के दास बनते हैं, वे ही यह सब प्रकाश देख पाते हैं ।।२७३।। उसी नवद्वीप में और भी तो कितने २ लोग थे-तपस्वी, सन्यासी, ज्ञानी, बीच २ में योगी भी थे। २७४ ।। उनमें से कोई जब तक गीता-भागवत पढ़ते या पढ़ाते तब तक अपने स्वधर्म से नहीं टलते ।। २७५ ।। कोई कोई तो कुछ भी परिग्रह नहीं करते और ब्रह्मचर्य धर्म पालन करते हुए वृथा ही अपने शरीर को सुखा डालते हैं ।। २७६ ।। उसी स्थान में वैकुण्ठ का जैसा परमानन्द हुआ पर वृथा अभिमानी जन एक भी उसे न देख पाए ।। २७७ ।। श्रीवास के दास दासियों ने जो कुछ प्रत्यक्ष दर्शन किया, शास्त्र पढ़कर के भी किसी को उसका परोक्ष ज्ञान तक न हो सका ।। २७८ ।। मुरारि गुप्त के दासों को जो कृपा मिली उसे मूड़ मुड़ाकर भी किसी ने न देखा ।। २७९ ।। (अतएव) धन, कुल, पण्डिताई आदि से श्री चैतन्यचन्द्र नहीं मिलते-श्री चैतन्य गुसांई तो केवल भक्ति के वश हैं ।। २८० ।। बड़ी भारी कीर्ति से भी चैतन्यचन्द्र नहीं मिलते हैं प्रभु तो केवल भक्ति के वश में है—यही चारों वेद गाते हैं ।।२८१।। उसी नवद्वीप में ऐसे २ विलक्षण प्रकाश हुए परन्तु इतने भट्टाचार्यों (पण्डितों) में से एक को भी देखने को न मिला ।। २८२ ।। भला दुष्कृति रूप सरोवर में भी कभी (सुकृति रूप) जल रहता है नहीं तो ऐसे २ प्रकाशों से भी जीव क्या

ए सब लीलार कभू नाहि परिच्छेद । 'आविर्भाव तिरोभाव' एइ कहे वेद ॥२८४॥
अद्यापिह चैतन्य ए सब लीला करे । जखने जाहारे करे दृष्टि-अधिकारे ॥२८५॥
सेइ देखे, आर देखिवारे शक्ति नाञि । निरन्तर क्रीड़ा करे चैतन्य गोसाञि ॥२८६॥
जे मंत्रे ते जे वैष्णव इष्ट ध्यान करे । सेइ मत देखाय ठाकुर विश्वम्भरे ॥२८७॥
देखाइया आपने शिखाय सभाकारे । "ए सकल कथा भाइ ! शुने पाछे आरे ॥२८८॥
जन्म जन्म तोमरा पाइवे मोर सङ्ग । तोमा' सभार भृत्येओ देखिव मोर रङ्ग ॥२८९॥
आपन गलार माला दिला सभा कारे । चर्बित-ताम्बूल आज्ञा हइल सभारे ॥२९०॥
महानन्दे खाय सभे हरषित हैया । कोटि-चान्द-शारद-मुखेर द्रव्य पाय्या ॥२९१॥
भोजनेर अवशेष जतेक आछिल । नारायणी पुण्यवती ताहा से पाइल ॥२९२॥
श्रीवासेर भ्रातृ-सुता बालिका अज्ञान । ताहारे भोजन शेष प्रभु करे दान ॥२९३॥
परम-आनन्दे खाय प्रभुर प्रसाद । सकल वैष्णव ताँरे करे आशीर्वाद ॥२९४॥
"धन्य धन्य एइ से सेविला नारायण । वालिका स्वभावे धन्य इहार जीवन" ॥२९५॥
खाइले प्रभुर आज्ञा हये "नारायणि । कृष्णेर परमानन्दे कान्द देखि शुनि ॥२९६॥
हेन प्रभु चैतन्येर आज्ञार प्रभाव । 'कृष्ण' वलि कान्दे अति बालिका स्वभाव ॥२९७॥
अद्यापिह वैष्णव मण्डले जार ध्वनि । 'गौराङ्गेर अवशेष पात्र नारायणी' ॥२९८॥
जारे जेन आज्ञा करे ठाकुर चैतन्य । से आसिया अविलम्वे हय उपसन्न ॥२९९॥
ए सव वचने जार नाहिक प्रतीत । सत्य अधः पात तार जानिह निश्चित ॥३००॥

वंचित रह सकता है ? ॥ २८३ ॥ इन सब लीलाओं की कभी समाप्ति नहीं है । वेद (शास्त्र) इनका केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही वतलाता है ॥ २८४ ॥ आज भी श्री चैतन्य देव यह सब लीला कर रहे हैं, किन्तु जिस समय जिसको देखने का अधिकार प्रदान करते है ॥ २८५ ॥ तब ही वह देख पाता है औरों की शक्ति नहीं है देखने:को । पर श्री चतन्य प्रभु तो निरन्तर क्रीड़ा कर रहे है ॥ २८६ ॥ जो वैष्णव जन जिस मंत्र द्वारा अपने इष्ट का ध्यान करते हैं ठाकुर विश्वम्भर उनको उसी रूप में दर्शन देते हैं ॥ २८७ ॥ दर्शन देकर आप ही सब को सावधान भी करते हैं कि "भाइयो ! यह सब बातें और कोई न सुन पाए ॥ २८८ ॥ "तुम लोग जन्म २ में मेरा सङ्ग पाओगे । तुस सब के नौकर चाकर भो मेरा कौतुक-विहार देखेंगे" ॥२८९॥ ऐसा कह कर फिर आपने अपने गले की मालाएँ सब को दीं और अपना चर्बित ताम्बूल सब को बाँट देने के लिए आज्ञा को ॥ २९० ॥ कोटि शरच्चन्द सदृश श्री मुख का पान प्रसाद पाकर उसे भक्त लोग परम आनंद के साथ पाने लगे ॥ २९१ ॥ (प्रभु के) भोजन का शेष प्रसाद जो कुछ था, वह पुण्यवती नारायणी ने पाया ॥ २९२ ॥ नारायणी श्रीवास के भाई की पुत्री है—अज्ञान बालिका है, उसको प्रभु ने अपना भोजन-शेष प्रदान किया ॥ २९३ ॥ वह परम आनन्द के साथ प्रभु का प्रसाद पाती है और वैष्णव लोग उसे आशीर्वाद देते हैं ॥ २९४ (और कहते हैं) "इसे धन्य है, धन्य है । इसने नारायण को सेवा की है । वालिका रूप में इसका जीवन धन्य है ॥ २९५ ॥ प्रसाद पा चुकने पर उसके लिए प्रभु की आज्ञा हुई—"नारायणी ! तुम कृष्ण के परमानन्द में रोओ—हम सब देख सुनें तो सही ॥ २९६ ॥ प्रभु श्री चैतन्य देव की आज्ञा का ऐसा प्रभाव है कि अति बालिका स्वभाव नारायणी "कृष्ण २" कह कर रोने लगी ॥ २९७ ॥ आज भी वैष्णव मंडली में यह ध्वनि प्रचलित है कि "श्री गौरांग के शेष- प्रसाद की पात्री नारायणी ॥ २९८ ॥ और भी प्रभु श्री चैतन्य देव जिसको बुलाते हैं वही तुरन्त आकर उपस्थित हो जाता है ॥ २९९ ॥ इन सब बातों का जिसको

अद्वैतेर प्रिय प्रभु चैतन्य ठाकुर। एइ से अद्वैतेर बड़ महिमा प्रचुर ॥३०१॥
चैतन्येर प्रिय देह ठाकुर निताइ। एइ से महिमा तान चारि वेदे गाइ ॥३०२॥
'चैतन्येर भक्त' हेन नाहि जार नाम। यदि वा से वस्तु, तभू तृणेर समान ॥३०३॥
नित्यानन्द कहे आमि चैतन्येर दास। अहर्निश आर प्रभु ना करे प्रकाश ॥३०४॥
ताहान कृपाय हय चैतन्येते रति। नित्यानन्द भजिले आपद नाहि कति ॥३०५॥
आमार प्रभुर प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर ॥३०६॥
धरणी धरेन्द्र-नित्यानन्देर चरण। देह' प्रभु गौरचन्द्र! आमारे शरण ॥३०७॥
बलराम-प्रीते गाइ चैतन्य चरित। कर बलराम प्रभु! जगतेर हित ॥३०८॥
'चैतन्येर दास' वइ निताइ ना जाने। चैतन्येर दास्य नित्यानन्द करे दाने ॥३०९॥
नित्यानन्द कृपाय से गौरचन्द्र चिनि। नित्यानन्द-प्रसादे से भक्त तत्त्व जानि ॥३१०॥
सर्व-वैष्णवेर प्रिय नित्यानन्द-राय। सभे नित्यानन्द-स्थाने भक्ति-पद पाय ॥३११॥
कोन मते यदि करे नित्यानन्दे हेला। आपने चैतन्य बोले 'सेइ जन गेला ॥३१२॥
आदि देव महा योगी ईश्वर वैष्णव। महिमार अन्त इहा ना जानये सब ॥३१३।
काहारो ना करे निन्दा, 'कृष्ण कृष्ण' बोले। अजय चैतन्य सेइ जिनिबेक हेले ॥३१४॥
'निन्दाय नाहिक लभ्य' सर्व-शास्त्रे कहे। सभार सम्मान-भागवत-धर्म हये ॥३१५॥
मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड। महा-निम्ब हेन वासे' जतेक पाखण्ड ॥३१६॥

विश्वास नहीं है, उसका अवश्य ही अधःपतन होगा—यह निश्चय जानो ॥ ३०० ॥ श्री चैतन्य चन्द्र श्रीअद्वैत के प्रिय प्रभु हैं—यही श्री अद्वैत की बड़ी भारी महिमा है ॥ ३०१ ॥ प्रभु नित्यानन्द श्री चैतन्य प्रभु की प्रिय देह है—उनकी इस महिमा को चारों वेद गाते हैं ॥ ३०२ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र के भक्तों में जिसका नाम नहीं है, चाहे वह (कैसी ही महान्) वस्तु क्यों न हो, तो भी वह तृणवत् है ॥ ३०३ ॥ नित्यानन्द प्रभु कहते हैं कि "मैं श्री चैतन्य का दास हूँ। रात दिन वे इसे छोड़ और कुछ कहते ही नहीं हैं ॥ ३०४ ॥ उनकी कृपा से ही श्री चैतन्य प्रभु में रति होती है। श्री नित्यानन्द का भजन करने से कोई आपदा नहीं आती है ॥३०५॥ मेरे प्रभु (नित्यानन्द) के प्रभु श्री गौरांग सुन्दर हैं—मेरे चित्त में निरन्तर यही बड़ा भारी भरोसा है ॥३०६॥ हे प्रभो गौरचन्द्र ! धरणी धरेन्द्र श्री नित्यानन्द के चरण की शरण मुझे प्रदान करो ॥ ३०७ ॥ श्रीबलराम (नित्यानन्द) की प्रसन्नता के लिए मैं यह चैतन्य-चरित गा रहा हूँ। हे बलराम प्रभो ! जगत् का कल्याण करो ॥ ३०८ ॥ श्री चैतन्य के दास के बिना श्रीनिताई और कुछ नहीं जानते हैं। और आप दान भी चैतन्य के दासत्व का ही करते हैं ॥ ३०९ ॥ श्री नित्यानन्द की कृपा से ही मैं श्री गौरचन्द्र को पहचानता हूँ और उन्ही की कृपा से भक्त-तत्त्व को भी जानता हूँ ॥ ३१० ॥ श्री नित्यानन्द राय सब वैष्णवों के प्रिय हैं और सब ही श्री नित्यानन्द के निकट से भक्ति-पद को प्राप्त करते हैं ॥ ३११ ॥ यदि कोई किसी प्रकार से श्रीनित्यानन्द की अवहेलना करता है तो स्वयं श्री चैतन्य चन्द्र कह देते है कि "वह तो नष्ट हो गया" ॥३१२॥ श्री नित्यानन्द प्रभु आदिदेव हैं, महा योगी हैं, ईश्वर हैं, वैष्णव हैं, महिमा की अवधि हैं यह सब लोग नहीं जानते हैं ॥ ३१३ । जो किसी की निन्दा नहीं करता है, "कृष्ण २" कहता है, वह अजय श्री चैतन्य चन्द को अनायास ही जीत लेगा ॥ ३१४ ॥ "निन्दा से कुछ लाभ नहीं होता" यही सब शास्त्र कहते हैं "सब का सम्मान" यही भागवत् धर्म है ॥ ३१५ ॥ मध्यखण्ड की कथा मानो अमृत का ग्रास है। परन्तु जितने पाखंडी लोग हैं उनको यह नीम जैसी बड़ी कड़वी लगती है ॥ ३१६ ॥ यदि किसी को शक्कर में नीम का स्वाद आवे

केहो जेन शर्कराये निम्ब-स्वादु पाय। तार दैव,—शर्कराय स्वादु नाहि जाय ॥३१७॥
एइ मत चैतन्येर परानन्द-यशे। शुनिते ना पाय सुख—हइ दैव वशे ॥३१८॥
संन्यासीह यदि नाहि माने गौरचन्द्र। जानिह से खल-जन, जन्म जन्म अन्ध ॥३१९॥
पक्षि मात्र यदि बोले चैतन्येर नाम। सेहो सत्य जाइवेक चैतन्येर धाम ॥३२०॥
जय गौरचन्द्र! नित्यानन्देर जीवन। तोर नित्यानन्द मोर हउ प्राण-धन ॥३२१॥
जार जार सङ्गे तुमि करिला विहार। से सब गोष्ठीर पा'ये मोर नमस्कार ॥३२२॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥३२३॥

अथ ग्यारहवाँ अध्याय

राग मलार— (निधि गौराङ्ग कोथा हैते आइला प्रेमा सिन्धु।
अनाथेर नाथ प्रभु पतित जनेर बन्धु॥ ध्रु)

जय जय विश्वम्भर द्विज कुल सिंह। जय हउ तोर जत चरणेर भृङ्ग ॥१॥
जय श्रीपरमानन्द पुरीर जीवन। जय दामोदर स्वरूपेर प्राण धन ॥२॥
जय रूप-सनातन-प्रिय महाशय। जय जगदीश-गोपीनाथेर हृदय ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। क्रीड़ा करे, नहे सर्व-जनेर गोचर ॥४॥
नवद्वीपे मध्य खण्डे कौतुक अनन्त। घरे वसि देखये श्रीवास भाग्य वन्त ॥५॥
निष्कपटे प्रभुरे सेविला श्रीनिवास। गोष्ठी-सङ्गे देखये प्रभुर परकाश ॥६॥

तो ये उसका दुर्भाग्य समझो शक्कर तो शक्कर ही है—उसका स्वाद कहीं नहीं गया है ॥ ३१७ ॥ इस प्रकार वे दुर्भाग्यवशत: श्री चैतन्य के परानन्दमय यश को श्रवण करके भी सुख नहीं पाते हैं ॥ ३१८ ॥ यदि कोई सन्यासी भी श्री गौरचन्द्र को नहीं मानता है तो उसको खल जन्म २ का अन्धा ही समझो ॥ ३१९ ॥ और यदि पक्षी भी श्री चैतन्य चन्द्र के नाम को लेता है तो वह श्री चैतन्य के धाम को निश्चय ही प्राप्त कर लेगा ॥ ३२० ॥ श्री नित्यानन्द के जीवन स्वरूप श्री गौरचन्द्र की जय हो। हे गौर प्रभो! तुम्हारे नित्यानन्द मेरे प्राण धन हों ॥ ३२१ ॥ हे गौर! जिन २ को साथ लेकर तुमने विहार किया है, उन सब भक्त मण्डली के श्रीचरणों में मेरा नमस्कार है ॥ ३२२ ॥ श्री कृष्ण चैतन्य एवं श्री नित्यानन्द चन्द्र को जान कर यह वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनके गुण—गान को समर्पण करता है ॥ ३२३ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे महा प्रकाश वर्णनं नाम दशमोऽध्याय: ॥

हे गौरांग निधि! हे प्रेम सिन्धो! हे अनाथों के नाथ! हे प्रभो! हे पतित जनों के बन्धो! आप कहाँ से आए ॥टेक॥ हे विश्वम्भर! हे द्विज कुलसिंह! जय हो, जय हो आप की और आपके चरण कमलों के समस्त मधुकर कुल की ॥ १ ॥ श्री परमानन्द पुरी के जीवन स्वरूप प्रभु की जय। श्री स्वरूप दामोदर के प्राणधन गौर की जय ॥ २ ॥ श्री रूप सनातन के प्रिय महाशय प्रभु की जय। श्री जगदीश-गोपीनाथ के हृदय गौर की जय ॥ ३ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में विश्वम्भर प्रभु क्रीड़ा कर रहे हैं, पर सब लोग यह नहीं जानते हैं ॥ ४ ॥ इस मध्य खण्ड में नवद्वीप में प्रभु द्वारा कृत अनन्त कौतुकों का वर्णन है जिन्हें भाग्यवान श्री वास पण्डित घर बैठे २ देखते हैं ॥ ५ ॥ श्री निवास पंडित ने निष्कपट भाव से प्रभु की सेवा की है, अतएव सपरिवार प्रभु की प्रकाश लीलाओं का दर्शन कर रहे हैं ॥ ६ ॥ श्रीवास के घर में ही नित्यानन्द जो

श्रीवासेर घरे नित्यानन्देर वसति। 'वाप !' वलि श्रीवासेरे करये पिरिति ॥७॥
अहर्निश वाल्य-भावे वाह्य नाहि जाने। निरवधि मालिनीर करे स्तन-पाने ॥८॥
कभू नाहि दुग्ध, परशिले मात्र हय। ए सव अचिन्त्य-शक्ति मालिनी देखय ॥९॥
चैतन्येर निवारणे कारेओ ना कहे। निरवधि शिशु-रूप मालिनी देखये ॥१०॥
प्रभु विश्वम्भर बोले "शुन नित्यानन्द। काहारो सहित पाछे कर' तुमि द्वन्द ॥११॥
चञ्चलता ना करिवा श्रीवासेर घरे"। शुनि नित्यानन्द विष्णु स्मङरण करे ॥१२॥
"आमार चाञ्चल्य तुमि कभू ना पाइवा। आपनार मत तुमि कारो ना वासिवा" ॥१३॥
विश्वम्भर बोले "आमि तोमा' भाले जानि"। नित्यानन्द बोले "दोष कह देखि शुनि" ॥१४॥
हासि बोले गौरचन्द्र "कि दोष तोमार। सव घरे अन्नवृष्टि कर' अवतार" ॥१५॥
नित्यानन्द बोले "इहा पागल से करे। ए छलाये घरे भात ना दिवे आमारे ॥१६॥
आमारे ना दिया भात सुखे तुमि खाओ। अपकीर्ति आर केने वलिया वेड़ाओ ॥१७॥
प्रभु बोले "तोमार अपकीर्ति आमि पाइ। से इत कारणे आमि तोमारे शिखाइ ॥१८॥
हासि बोले नित्यानन्द "वड़ भाल भाल। चाञ्चल्य देखिले शिखाइवा सर्वकाल ॥१९॥
निश्चय वलिला तुमि-आमि त चञ्चल। एत वलि प्रभु चा'हि हासे' खल खल ॥२०॥
आनन्दे ना जाने वाह्य कोन् कर्म करे। दिगम्बर हइ वस्त्र वान्धिलेन शिरे ॥२१॥
जोड़े जोड़े लाफ देइ हासिया हासिया। सकल अङ्गने वुले दुलिया दुलिया ॥२२॥

का निवास है। वे श्रीवास को "बाप" कह कर उनसे स्नेह करते हैं ॥ ७ ॥ श्री नित्यानन्द दिन रात बाल भाव में डूबे हुए बाहर से बेखबर रहते हैं। और बार २ मालिनी (श्रीवास की पत्नी) का स्तन पान करते हैं ॥ ८ ॥ यद्यपि मालिनी के स्तनों में दूध लेश मात्र भी नहीं होता, तथापि श्री नित्यानन्द जी के स्पर्श मात्र से दूध भर आता है। उनकी इस अचिन्त्य प्रभाव को मालिनी सब देखती हैं ॥ ९ ॥ (पर) वे किसी से कहती नहीं है कहीं ऐसा न हो कि प्रभु विश्वम्भर इनको निषेध करें। वह भी नित्यानन्द जी को सदा शिशु रूप में ही देखती हैं ॥ १० ॥ एक दिन प्रभु विश्वम्भर बोले—"सुनो, नित्यानन्द जी ! आप किसी से न लड़े-झगड़े ॥ ११ ॥ "और श्रीवास के घर पर चांचलता न करें। यह सुनकर नित्यानन्द जी "श्री विष्णु" "श्री विष्णु" ऐसा स्मरण करने लगे ॥ १२ ॥ (और कहने लगे) "तुम कभी मुझमें चांचलताई न पाओगे। तुम अपना जैसा किसी को मत समझो" ॥ १३ ॥ विश्वम्भर देव बोले—"मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ"। तो नित्यानन्द बोले—"तो बताओ मेरे दोष क्या हैं—सुनूँ तो" ॥ १४ ॥ श्री गौरचन्द्र हँस कर बोले—"तुम्हारा क्या दोष ? (दोष यही है कि) सारे घर भर तुम अन्न-वर्षा का अवतार कर देते हो। (श्लोकार्थ:—सब पर बिना विचारें प्रेम की वर्षा करते हो) ॥ १५ ॥ नित्यानन्द बोले—"ऐसा तो पागल किया करते हैं ! अच्छा ! इसी बहाने से तुम मुझे अपने घर में भात नहीं खिलाओगे ॥ १६ ॥ "अच्छा—मत खिलाओ मुझे न देकर आप ही अकेले मौज से खाओ लेकिन अपनी इस अपयश का ढोल क्यों बजाते फिरते हो" ॥ १७ ॥ प्रभु बोले—"तुम्हारा अपयश आकर मुझे लगता है। इसीलिए तो मैं तुमको सीख दे रहा हूँ" ॥१८॥ तब नित्यानन्द जो हँस कर बोले—"अच्छा-बड़ा अच्छा" चांचलताई देखने हर सदैव सीख देते रहना ॥ १९ ॥ तुमने ठीक ही कहा मैं तो चांचल हूँ"। इतना कह कर प्रभु को ओर देखते हुए खिलखिला कर हँस पड़े ॥ २० ॥ मारे आनन्द के बाहर को कुछ सुध बुध नहीं है—मैं क्या कह रहूँ हूँ इसका होश नहीं। झट दिगम्बर बन गए और वस्त्र को लेकर सिर पर लपेट लिया ॥ २१ ॥ वे दोनो पाँवों को मिलाकर उछलते- कूदते हैं, हँसते हैं

गदाधर श्रीनिवास हासे' हरिदास। शिक्षार प्रसादे सभे देख दिगवास ॥२३॥
डाकि बोले विश्वम्भर ए कि कर' कर्म्म। गृहस्थेर वाड़ीते ए मत न हे धर्म्म ॥२४॥
एखनि बलिला तुमि 'आमि कि पागल'। एइ क्षणे निज वाक्य घुचिल सकल" ॥२५॥
जार वाह्य नाहि, तार वचने कि लाज। नित्यानन्द भासये आनन्द सिन्धु माझ ॥२६॥
आपने धरिया प्रभु पराय वसन। ए मत अचिन्त्य नित्यानन्देर कथन ॥२७॥
चैतन्येर वचन अङ्कुश मात्र माने। नित्यानन्द मत्त सिंह आर नाहि जाने ॥२८॥
आपनि तुलिया हाथे भात नाहि खाय। पुत्र प्राय करि अन्न मालिनी जो गाय ॥२९॥
नित्यानन्द-अनुभाव जाने पतिव्रता। नित्यानन्द-सेवा करे-जेन पुत्र माता ॥३०॥
एक दिन पित्तलेर वाटि निल काके। उड़िया वसिल काक जे डाले ते थाके ॥३१॥
अदृश्य हइल काक कोन् राज्ये गेल। महा-चिन्ता मालिनीर चित्ते ते जन्मिल ॥३२॥
वाटि थुइ सेइ काक आइल आर बार। मालिनी देखये शून्य बदन ताहार ॥३३॥
"महा-तीव्र ठाकुर पण्डित-व्यवहार। 'श्रीकृष्णेर घृत पात्र हैल अपहार' ॥३४॥
शुनिले प्रमाद हैव" हेन मने मणि। नाहिक उपाय किछु, कान्दये मालिनी ॥३५॥
हेन काले नित्यानन्द आइला सेइ स्थाने। देखये मालिनी कान्दे, नाहिक कारणे ॥३६॥
हासि बोले नित्यानन्द "कान्द कि कारण। कोन् दुःख वोल, सब करिव खण्डन" ॥३७॥
मालिनी बोलये "शुन श्रीपाद गोसाञि। घृत पात्र काके लइ गेल कोन् ठाञि ॥३८॥

और झूमते-झामते हुए सारे आंगन भर में घूमते फिरते हैं ॥ २२ ॥ गदाधर, श्रीनिवास और हरिदास जी हंसते हैं, कि देखो प्रभु ने तो इनको चांचलताई न करने की सीख दी परन्तु उसका फल यह हुआ कि ये दिगम्बर बने घूम रहे हैं ॥ २३ ॥ तब विश्वम्भर प्रभु टेर कर कहते हैं—"तुम यह क्या कर रहे हो ? गृहस्थियों के घर में ऐसा करना धर्म नहीं है ॥ २४ ॥ अभी तो तुमने कहा था "मैं क्या पागल हूँ" । और अभी क्षण भर में अपनी बात को सब मिटा दी (और पागल बन गए) ॥ २५ ॥ परन्तु जिसे बाहर की कुछ खबर ही नहीं उनको किसी की बातों से ताना-झांसे से-भला शर्म कहां । नित्यानन्द तो आनन्द सागर में बहे जा रहे हैं ॥ २६ ॥ तब प्रभु ने स्वयं उन्हें पकड़ कर वस्त्र पहनाया । श्री नित्यानन्द का चरित्र ऐसा अचिन्त्य (दुर्गम) है ॥ २७ ॥ श्री नित्यानन्द एक मत्त सिंहराज है जो एक श्री चैतन्य चन्द्र के वचन-अंकुश को ही मानते हैं और कुछ नहीं जानते हैं ॥ २८ ॥ वे अपने आप तो हाथ उठा कर मुख में भात भी नहीं देते हैं । मालिनी ही पुत्र जैसा समझ कर उनके मुख में अन्न देती हैं ॥ २९ ॥ श्री नित्यानन्द के प्रभाव को पतिव्रता मालिनी देवी जानती हैं और माता जैसे पुत्र की सेवा करती है उसी प्रकार वे श्री नित्यानन्द की सेवा करती हैं ॥ ३० ॥ एक दिन पीतल की एक कटोरी को कौआ ले गया । वह जिस डाल पर रहता था वहीं उड़कर जा बैठा ॥ ३१ ॥ काक अदृश्य होकर न जाने किस राज्य में चला गया—तब तो मालिनी के चित्त को बड़ी भारी चिन्ता ने आ दबाई ॥ ३२ । वह कौआ कटोरी को कहीं रख कर फिर आ गया मालिनी ने देखा कि उसकी चोंच पर कुछ नहीं है ॥ ३३ ॥ वह सोचने लगी कि श्री ठाकुर पंडित (श्रीवास) का व्यवहार बड़ा कड़ा है ! वह कटोरी तो श्री कृष्ण के घी की कटोरी है । वह चली गयी ॥ ३४ ॥ यह सुन पायँगे तो गजब हो जायगा" । ऐसा सोच और कुछ उपाय न देखकर बेचारी मालिनी रोने लगी ॥३५॥ उसी समय नित्यानन्द जी वहाँ आ गए, और देखा कि मालिनी बिना बात के रो रही है ॥ ३६ ॥ हँस कर नित्यानन्द बोले—"क्यों रो रही हो ? क्या दुःख है ? बोलो—बताओ ! मैं सब दूर कर दूंगा" ॥ ३७ ॥ मालिनी बोली—"श्री

नित्यानन्द बोले "माता ! चिन्ता परिहर। आमि दिव वाटि, तुमि क्रन्दन सम्वर" ॥३९॥
काक प्रति हासि प्रभु बोलये वचन। "अहे काक ! झाट वाटि आनह एखन" ॥४०॥
सभार हृदये नित्यानन्देर वसति। ताँर आज्ञा लङ्घिवेक–काहार शकति ॥४१॥
शुनिया प्रभुर आज्ञा काक उड़ि जाय। शोकाकुली मालिनी काकेर दिगे चाय ॥४२॥
क्षणे के उड़िया काक अदृश्य हइल। वाटि मुखे करि, पुन से खाने आइल ॥४३॥
आनिञा थुइल वाटि मालिनीर स्थाने। नित्यानन्द-प्रभाव मालिनी भाल जाने ॥४४॥
आनन्दे मूर्च्छिता हैला अपूर्व देखिया। नित्यानन्द-प्रति स्तुति करे दाण्डाइया ॥४५॥
'जे जन आनिल मृत गुरुर नन्दन। जे जन पालन करे सकल भुवन ॥४६॥
जमेर घरे ते हैते जे आनिते पारे। काक-स्थाने वाटि आने' कि महत्त्व ताँरे ॥४७॥
जाँहार मस्तको परि अनन्त-भुवन। लीलाय ना जाने भर, करये पालन ॥४८॥
अनादि अविद्या ध्वंस हय जाँर नामे। कि महत्त्व ताँर-वाटि आने' काक-स्थाने ॥४९॥
जे तुमि लक्ष्मण-रूपे पूर्वे वनवासे। निरवधि रक्षक आछिला सीता-पाशे ॥५०॥
तथापिह मात्र तुमि सीतार चरण। इहा वइ, सीता नाहि देखिले के मन ॥५१॥
तोमार से वाणे रावणेर वंश नाश। से तुमि जे वाटि आन' के मन प्रकाश ॥५२॥
जाँहार चरणे पूर्वे कालिन्दी आसिया। स्तवन करिल महा-प्रभाव देखिया ॥५३॥
चतुर्दश भुवन-पालन-शक्ति जाँर। काक स्थाने वाटि आने' कि महत्त्व ताँर ॥५४॥
तथापि तोमार कर्म अल्प नाहि हये। 'जेइ कर, सेइ सत्य' चारि-वेदे कहे" ॥५५॥

पाद गुसांई ! सुनो श्रीकृष्ण के घी की कटोरी को कौआ न जाने कहाँ ले गया" ॥ ३८ ॥ नित्यानन्द जी बोले–"माता ! चिन्ता छोड़ो। मैं ला दूँगा कटोरी। तुम रोना बन्द करो ॥ ३९ ॥ फिर प्रभु हँस कर कौआ से बोले–"अरे कौवे ! अभी ले आओ कटोरी यहाँ" ॥ ४० ॥ सब के हृदय में नित्यानन्द जी का निवास है, फिर किसकी शक्ति है जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करे ॥ ४१ ॥ प्रभु की आज्ञा को सुन कर कौआ उड़ चला और दुःखिनी मालिनी कौवे की तरफ देखने लगी ॥ ४२ ॥ कौआ उडकर थोड़ी देर में गायब हो गया फिर कटोरी को मुख में लेकर वहीं आ गया । ४३ ॥ उसने कटोरी को लाकर मालिनी के पास रख दी। नित्यानन्द जी के प्रभाव को मालिनी खूब जानती हैं ॥ ४४ ॥ आज इस अपूर्व घटना को देख कर वे मारे आनन्द के मूर्च्छित सी हो गई और (फिर सम्हल कर) खडी होकर उनकी स्तुति करने लगी ॥ ४५ ॥ (स्तुति)–"जो गुरु के मृत पुत्र को ले आए, जो सकल भुवनों का पालन करते हैं ॥ ४६ ॥ जो यमराज के घर से भी ला सकते हैं, वे कौए के पास से कटोरी ले आयँ, यह कौन सी बडाई है उनकी ॥४७॥ "जिन्होंने अपने शीश के उपर अनन्त भुवन अनायास ही धारण कर रक्खा है–उनका भार वे जानते ही नहीं ॥ ४८ ॥ जिनके नाम मात्र से अनादि काल की अविद्याध्वंस हो जाती है, उनके लिए कौए के पास से कटोरी मँगवा लेना कौन से महत्त्व की बात है ॥ ४९ । "जो तुम पूर्वकाल में लक्ष्मण रूप से बनवास के समय सीताजी के निकट निरन्तर रक्षक बन कर रहे थे ॥ ५० ॥ तब भी तुमने सीताजी के केवल चरणों को छोड़ कर सीताजी को देखा ही नहीं कि वे कैसी हैं ॥ ५१ ॥ "तुम्हारे ही उन बाणों से रावण का वंश विध्वंस हुआ था, वही तुम कटोरी ले आओ तो इसमें तुम्हारी शक्ति का क्या प्रकाश भला ॥ ५२ ॥ पूर्व काल में जिनके महा प्रकाश को देख कर कालिन्दी जी ने जिनके चरणों में आकर स्तुति की थी ॥ ५३ ॥ "चौदह भुवनों को पालन करने की जिनमें सामर्थ्य है, उनके लिए कौए से कटोरी मँगवा लेना क्या महत्त्व की बात है ॥५४॥

हासे नित्यानन्द शुनि ताँहार स्तवन । वाल्य भावे बोले "मुञ्चि करिमु भोजन" ॥५६॥
नित्यानन्द देखिले ताँहार स्तन झरे । वाल्य भावे नित्यानन्द स्तन पान करे ॥५७॥
एइ मत अचिन्त्य नित्यानन्देर चरित्र । आमि कि वलिव-सर्व जगते विदित ॥५८॥
करये दुर्विज्ञ कर्म अलौकिक जेन । जे जानये तत्त्व, से वासये सत्य हेन ॥५९॥
अहर्निश भावावेशे परम उद्दाम । सर्व नदियाय बुले ज्योतिर्मय-धाम ॥६०॥
किवा योगी नित्यानन्द, किवा भक्त ज्ञानी । जाहार जे मत इच्छा ना बोलये केनि ॥६१॥
जे से केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे । तभु से चरण-धन रहुक हृदये ॥६२॥
एत परिहारेओ जे पापी निन्दा करे । तवे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥६३॥
एइ मत आछे प्रभु श्रीवासेर घरे । निरवधि आपने गौराङ्ग रक्षा करे ॥६४॥
एक दिन निज गृहे प्रभु विश्वम्भर । वसिआछे लक्ष्मी-सङ्गे परम-सुन्दर ॥६५॥
जो गाय ताम्वूऌ लक्ष्मी परम-हरिषे । प्रभुर आनन्दे ना जानये रात्रि दिसे ॥६६॥
जखन थाकये लक्ष्मी सङ्गे विश्वम्भर । शचीर चित्ते ते हय आनन्द विस्तर ॥६७॥
मायेर चित्ते र सुख ठाकुर जानिया । लक्ष्मीर सङ्गे ते प्रभु थाकेन वसिया ॥६८॥
हेन काले नित्यानन्द आनन्द-विह्वल । आइला प्रभुर वाड़ी-परम-चञ्चल ॥६९॥
वाल्य भावे दिगम्बर हैला दाण्डाइया । काहारो ना करे लाज प्रेमाविष्ट हैया ॥७०॥
प्रभु बोले "नित्यानन्द ! केने दिगम्वर । नित्यानन्द "हय हय" करये उत्तर ॥७१॥
प्रभु बोले "नित्यानन्द ! परह वसन । नित्यानन्द बोले "आजि आमार गमन ॥७२॥

तथापि तुम्हारे कोई कर्म तुच्छ नहीं हैं । तुम जो कुछ करते हो वही सत्य है–यही चारों वेद कहते हैं ॥५५॥ श्री नित्यानन्द जो उनको स्तुति सुनकर हँसे और बाल-भाव में बोले–"मैं भोजन करूँगा" ॥ ५६ ॥ नित्यानन्द को देखने पर उनके स्तन बहने लगते और बाल भाव में नित्यानन्द स्तन पान करते ॥ ५७ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द जी के चरित्र अचिन्त्य हैं उन्हें मैं क्या कहूँ वे जगत् में प्रसिद्ध ही हैं ॥ ५८ ॥ आप ऐसे दुर्विज्ञेय कर्म करते हैं जो अलौकिक से लगते हैं, जो उनके तत्त्व को जानते हैं वे उनको सत्य मानते हैं ॥ ५९ ॥ वे अहर्निश भावावेश में परम उन्मत्त बने नदिया में घूमते फिरते हैं–दिव्य ज्योतिर्मय उनका स्वरूप है । ६०॥ नित्यानन्द जी को योगी, भक्त, ज्ञानी जिसकी जो इच्छा हो, क्यों न वह लेओ ॥ ६१ ॥ और श्री चैतन्यचन्द्र के नित्यानन्द जी जो कुछ भी क्यों न हों, तथापि उनके चरण धन मेरे हृदय में निवास करें ॥ ६२ ॥ इतने परिहार करने पर भी जो पापी उनकी निन्दा करता है तो उसके माथे पर लात मारूँगा ॥६३॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द प्रभु श्रीवास जी के घर में निवास कर रहे हैं । स्वयं श्री गौरांग प्रभु उनकी निरन्तर रक्षा करते हैं ॥ ६४ ॥ एक दिन प्रभु विश्वम्भर अपने गृह में श्री लक्ष्मी जी के साथ परम सुन्दर रूप से विराजे हुए हैं ॥ ६५ ॥ परम हर्षोत्फुल्ल होकर श्री लक्ष्मी जी ताम्बूल अर्पण कर रही हैं । प्रभु के आनन्द में वे दिन रात सब भूल जाती हैं ॥ ६६ ॥ जिस समय श्री विश्वम्भर लक्ष्मी जी के साथ रहते हैं उस समय शची माता के हृदय में बड़ा ही आनन्द होता है ॥ ६७ ॥ प्रभु भी माता के चित्त के सुख की बात जान कर लक्ष्मी जी के साथ बैठे रहते हैं ॥ ६८ ॥ ऐसे समय पर एक दिन आनन्द में विह्वल परम चंचल नित्यानन्द जी प्रभु के घर आ पहुँचे ॥६९॥ और आकर बाल भाव में दिगम्बर खड़े हो गए । वे प्रेमावेश में चूर किसी की लज्जा-शर्म नहीं करते ॥ ७० ॥ यह देख कर प्रभु बोले–"नित्यानन्द जी ! दिगम्बर कैसे हो" ? नित्यानन्द जी उत्तर देते है "हाँ हाँ" ॥ ७१ ॥ प्रभु बोले–"नित्यानन्द जी ! वस्त्र पहनो"–तो नित्यानन्द बोले–"आज मैं जाऊँगा"

प्रभु बोले "नित्यानन्द ! इहा केने करि" । नित्यानन्द बोले "आर खाइते ना पारि" ॥७३॥
प्रभु बोले "एक एड़ि कह केने आर" । नित्यानन्द बोले "आमि गेलुँ दशवार" ॥७४॥
क्रुद्ध हइ बोले प्रभु "मोर दोष नाञि । नित्यानन्द बोले "प्रभु ! एथा नाहि आइ" ॥७५॥
प्रभु कहे "कृपा करि परह वसन । नित्यानन्द बोले "आमि करिव भोजन" ॥७६॥
चैतन्येर भावे मत्त नित्यानन्द-राय । एक शुने, आर कहे, हासिया वेडाय ॥७७॥
आपने उठिया प्रभु पराय वसन । वाह्य नाहि, हासे पद्मावतीर नन्दन ॥७८॥
नित्यानन्द-चरित्र देखिया आइ हासे । विश्वरूप पुत्र हेन मने मने वासे' ॥७९॥
सेइ मत वचन शुनये सव मुखे । माझे माझे से-इ रूप आइ मात्र देखे ॥८०॥
काहारे ना कहे आइ, पुत्र स्नेह करे । सम-स्नेह करे नित्यानन्द-विश्वम्भरे ॥ १॥
वाह्य पाइ नित्यानन्द परिला वसन । सन्देश दिलेन आइ करिते भोजन ॥८२॥
आइ-स्थाने पञ्च क्षीर-सन्देश पाइया । एक खाइ, आर चारि फेले छड़ाइया ॥८३॥
"हाय हाय" बोले आइ "केने फेलाइला" । नित्यानन्द बोले "केने एक ठाञि दिला" ॥८४॥
आइ बोले "आर नाहि, आर कि खाइवा । नित्यानन्द बोले "चाह, अवश्य पाइवा" ॥८५॥
घरेर भितरे आइ अपरूप देखे । सेइ चारि सन्देश देखये परतेखे ॥८६॥
आइ बोले "से सन्देश कोथाय पड़िल । घरेर भितरे कोन् पथेते आइल ॥८७॥
धूला घुचाइया सेइ सन्देश लइया । हरिषे आइला आइ अपूर्व देखिया ॥८८॥
आसि देखे नित्यानन्द सेइ लाडू खाय । आइ बोले "बाप ! इहा पाइला कोथाय" ॥८९॥

॥७२॥ प्रभु बोले—"नित्यानन्द जी ! ऐसा क्यों करते हो" ? तो वे बोले—"अब और खा नहीं सकता" ॥७३॥ प्रभु बोले—"एक बात छोड़ दूसरी क्यों करते हो" तो वे बोले—"मैं दस बार गया" । ७४ ॥ तब प्रभु रिसा कर बोले—"मेरा दोष नहीं है" तो नित्यानन्द बोले—"यहाँ मा नहीं हैं" ॥ ७५ ॥ फिर प्रभु बोले—"कृपा कर वस्त्र तो पहनो" तो वे बोले—"मैं भोजन करूँगा" ॥ ७६ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द राय श्री चैतन्य चन्द्र के भाव में मतवाले बने हुए हैं—सुनते कुछ और कहते कुछ हैं, और हँसते फिरते हैं ॥ ७७ ॥ तब प्रभु ने उठ कर स्वयं उनको वस्त्र पहनाया, परन्तु पद्मावती नन्दन (नित्यानन्द) को बाहरी ज्ञान कहाँ वे तो हँस रहे हैं ॥ ७८ ॥ नित्यानन्द जी के चरित्र को देख कर शची मा हँसती हैं और मन ही मन उनको विश्वरूप पुत्र जैसा ही मानती हैं ॥ ७९ ॥ उसी (विश्वरूप) के जैसे वचन इनके मुख से भी सुन पाती है, और बीच २ में उसी का रूप भी शची मा ही केवल देख पाती हैं ॥ ८० ॥ पर माता किसी से कहती नहीं पुत्र सा उन पर स्नेह करती हैं और वह स्नेह भी नित्यानन्द और विश्वम्भर पर समान होता है ॥ ८१ ॥ तब बाहरी सुध आने पर नित्यानन्द जी ने वस्त्र पहने और शची मा ने सन्देश लाकर खाने को दिया ॥ ८२ ॥ माता के पास से दूध के सार से बने हुए पाँच सन्देश मिठाई को पाकर नित्यानन्द जी ने एक तो खा लिया और चार को फेंक कर बिखेर दिया ॥ ८३ ॥ माता बोली—"हाय ! हाय ! यह तुमने क्यों फेंक दिए" । तो नित्यानन्द बोले "तुमने इकट्ठे इतने क्यों दे दिए ? ॥ ८४ ॥ माता बोली—'और तो हैं नहीं, अब क्या खाओगे ?" तो वे बोले—"देखो तो सही अवश्य और होंगे" ॥ ८५ ॥ माता ने भीतर जाकर क्या अचरज देखा कि वे ही चार सन्देश प्रत्यक्ष भीतर हैं ॥ ८६ ॥ माता बोली—"अरे ! वे सन्देश तो न जाने कहाँ जाकर पड़े थे-वे घर के भीतर कौन से रास्ते से आ गए ॥ ८७ ॥ यह अचरज देख वह बड़ी प्रसन्न हुई, और वह उन सन्देशों को उठा कर, झाड़ पोंछ के बड़ी प्रसन्न होकर ले आई ॥ ८८ ॥ तो आकर क्या देखती हैं कि नित्यानन्द राय उन्हीं

नित्यानन्द बोले "जाहा छढ़ाइ फेलिलुँ। तोर दुःख देखि ताइ चाहिया आनिलुँ ॥९०॥
अद्भुत देखिया आइ मने मने गणे'। "नित्यानन्द महिमा ना जाने कोन् जने" ॥९१॥
आइ बोले "नित्यानन्द ! केने मोरे भाँड'। जानिल ईश्वर तुमि, मोरे माया छाड़" ॥९२॥
बाल्य भावे नित्यानन्द आइर चरण। धरिवारे जाय, आइ करे पलायन ॥९३॥
एइ मत नित्यानन्द चरित्र अगाध। सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्य-बाध ॥९४॥
नित्यानन्द-निन्दा करे जे पापिष्ठ जन। गङ्गाओ ताहारे देखि करे पलायन ॥९५॥
वैष्णवेर अधिराज अनन्त ईश्वर। नित्यानन्द महाप्रभु 'शेष' महीधर ॥९६॥
जे ते केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे। तभु से चरण-धन रहुक हृदये ॥९७॥
वैष्णवेर पाये मोर एइ मनस्काम। मोर प्रभु नित्यानन्द हउ बलराम ॥९८॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान ॥९९॥

अथ बारहवाँ अध्याय

हेन लीला नित्यानन्द विश्वम्भर सङ्गे। नवद्वीपे दुइ जन करे बहु रङ्गे ॥१॥
प्रेमानन्दे अलौकिक नित्यानन्द-राय। निरवधि वालकेर प्राय व्यवसाय ॥२॥
सभारे देखिया प्रीत मधुर-सम्भाष। आपना आपनि नृत्य, गीत, वाद्य, हास ॥३॥
स्वानुभावानन्दे क्षणे करये हुङ्कार। शुनिते अपूर्व बुद्धि जन्मये सभार ॥४॥

(फेंके हुए) लड्डुओं (सन्देशों) को खा रहे हैं माता ने पूछा—"बेटा ! ये कहाँ से आ गए" ? ॥ ८९ ॥ नित्यानन्द बोले—"वही हैं जो मैंने फेंक दिये थे। तुमको दुःखित देखकर मैं उनको उठा लाया हूँ" ॥ ९० ॥ यह अचरज देख कर माता मन ही मन सोचती हैं कि नित्यानन्द की महिमा कोई नहीं जानता है ॥९१॥ माता बोली—"नित्यानन्द ! तुम क्यों मुझे भुलाते हो। मैं जान गई तुम ईश्वर हो। अब मेरे आगे माया मत चलाओ ॥ ९२ ॥ तब नित्यानन्द जी बाल भाव में माता जी के चरण पकड़ने को दौड़े-तो माता जी भाग निकलीं ॥ ९४ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द जी के चरित्र अगाध हैं जो सुकृतिशालियों के लिए शुभकारी हैं और दुष्टों के लिए बाधा विघ्नकारी हैं ॥ ९४ ॥ जो पापी लोग श्री नित्यानन्द की निन्दा करते हैं। गङ्गाजी भी उन्हें देख कर भाग जाती हैं ॥ ९५ ॥ श्री नित्यानन्द महा प्रभु वैष्णवों के अधिराज हैं, अनन्त देव हैं, ईश्वर हैं, महीधर शेष जी हैं ॥ ९६ ॥ श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य चन्द्र के जो कुछ भी क्यों न हों, तौभी मेरे लिए तो उनके ही श्री चरणारविन्द परम धन हैं वे ही मेरे हृदय में सदा निवास करें ॥ ९७ ॥ और वैष्णवों के श्री चरणों में भी मेरी यही मनोकामना है कि श्री नित्यानन्द बलराम मेरे प्रभु हों ॥ ९८ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्री नित्यानन्द चन्द्र को जान कर यह वृन्दावन दास उनके श्री चरणों में उनके ही गुण गान को समर्पण करता है ॥ ९९ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे नित्यानन्द चरित्र वर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥

ऐसी २ लीलाएँ नवद्वीप में श्री नित्यानन्द और विश्वम्भर देव मिल कर दोनों जने बड़े आनन्द से किया करते हैं ॥ १ ॥ श्री नित्यानन्द राय अलौकिक प्रेमानन्द में निमग्न निरन्तर बालकों की भाँति चेष्टा किया करते हैं ॥ २ ॥ मिलने पर सबसे प्रेमपूर्वक मधुर बोलते हैं, और अपने आप ही नाचने गाने बजाने और हँसनेलगते हैं ॥३॥ और क्षण में अपने अनुभव के आनन्दमें हुँकार करने लगते हैं, जिसे सुनकर सब लोगों

वर्षाय गङ्गार ढेउ कुम्भीरे वेष्टित। ताहाते भासये, तिलार्द्धेक नाहि भीत ॥५॥
सर्व लोक देखि ताँरे करे 'हाय हाय'। तथापि भासेन हासि नित्यानन्द-राय ॥६॥
अनन्तेर भावे प्रभु भासेन गङ्गाय। ना बुझिया सर्व लोक करे हाय हाय ॥७॥
आनन्दे मूर्च्छित वा हयेन कोन क्षण। तिन-चारि दिवसेओ ना हय चेतन ॥८॥
एइ मत आर कत अचिन्त्य-कथन। अनन्त मुखेओ नारि करिते वर्णन ॥९॥
दैवे एक दिन जथा प्रभु वसि आछे। आइलेन नित्यानन्द ईश्वरेर काछे ॥१०॥
बाल्य भावे दिगम्बर, हास्य श्रीवदने। सर्वदा आनन्द धारा बहे श्रीनयने ॥११॥
निरवधि एइ वलि करेन हुङ्कार। "मोर प्रभु निमाञि पण्डित नदियार ॥१२॥
हासे' प्रभु देखि तान मूर्ति दिगम्बर। महा-ज्योतिर्मय तनु देखिते सुन्दर ॥१३॥
आथे व्यथे प्रभु निज-मस्तकेर वास। पराइया थुइलेन तथापिह हास ॥१४॥
आपने लेपिला ताँर अङ्गे दिव्य-गन्धे। शेषे माल्य परिपूर्ण दिलेन श्रीअङ्गे ॥१५॥
वसिते दिलेन निज-सम्मुखे आसन। स्तुति करे प्रभु, शुने सर्व भक्त गण ॥१६॥
"नामे नित्यानन्द तुमि रूपे नित्यानन्द। एइ तुमि नित्यानन्द-राम-मूर्ति मन्त ॥१७॥
नित्यानन्द-पर्यटन भोजन व्यवहार। नित्यानन्द बिने किछु नाहिक तोमार ॥१८॥
तोमारे बुझिते शक्ति मनुष्येर कोथा। परम सुसत्य-तुमि जथा कृष्ण तथा" ॥१९॥
चैतन्येर रसे नित्यानन्द-महा मति। जे बोलेन, जे करेन, सर्वत्र सम्मति ॥२०॥
प्रभु बोले "एक खानि कौपीन तोमार। देह'-इहा बड़ इच्छा आछये आमार" ॥२१॥

को बड़ा ही अपूर्व (अद्भुत) लगता है ॥ ४ ॥ वर्षाकाल में गङ्गा की तरङ्गों में मगर घडियालों की भरमार होती है, पर नित्यानन्द जी उन तरङ्गों में बहते फिरते हैं—तिल भर भी भय नहीं करते ॥ ५ ॥ लोग तो सब उनको देख कर "हाय २" करते हैं और फिर भी नित्यानन्द राय हँसते हुए बहते फिरते हैं ॥ ६ ॥ प्रभु तो शेष नाग के भावावेश में बहते हैं परन्तु इसे समझें बिन लोग सब हाय हाय मचाते हैं ॥ ७ ॥ किसी समय आप मूर्च्छित हो जाते हैं तो तीन चार दिन तक चेत ही नहीं होता हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार के उनके और भी अचिन्त्य चरित्र हैं—अनन्त मुखों से भी उनका वर्णन नहीं हो सकता है ॥ ९ ॥ दैवयोग से एक दिन जहाँ प्रभु गौरचन्द्र बैठे हुए थे, श्री नित्यानन्द जी उनके पास आ गए ॥ १० ॥ बाल भाव में निमग्न आपका दिगम्बर रूप है, श्रीमुख पर हँसी है और श्रीनेत्रों से निरन्तर आनन्द की धाराएँ बह रही हैं ॥ ११ ॥ और आप बारम्बार यह कह कर हुँकार कर रहे हैं कि "नदिया के निमाइ पण्डित मेरे प्रभु हैं ॥ १२ ॥ गौर प्रभु उनकी दिगम्बर मूर्ति को देख कर हँसे। उनकी देह ज्योतिर्मय है और देखने में सुन्दर है ॥ १३ ॥ प्रभु ने झट पट अपने मस्तक का वस्त्र उनको पहना दिया पर फिर भी वे हँस रहे हैं ॥ १४ ॥ प्रभु ने स्वयं उनके अङ्ग पर दिव्य गन्ध का लेप किया, और फिर पीछे से उनके श्री अङ्ग को मालाओं से भर दिया ॥ १५ ॥ फिर बैठने के लिए अपने सन्मुख एक आसन दिया और उनकी स्तुति करना आरम्भ किया भक्त लोग सुन रहे हैं ॥ १६ ॥ "नाम से तुम नित्यानन्द हो और रूप में भी तुम नित्यानन्द हो। तुम नित्यानन्द मूर्तिमान् बलराम हो ॥ १७ ॥ नित्यानन्द (नित्य-आनन्द) ही तुम्हारा भ्रमण है, भोजन है, और सब व्यवहार है। नित्यानन्द बिना तुम्हारा कुछ भी नहीं है ॥ १८ ॥ "तुमको समझने की शक्ति मनुष्य में कहाँ ? यह परम सु-सत्य हैं कि जहाँ तुम हो, वहाँ कृष्ण है" ॥ १९ ॥ श्री चैतन्य के आस्वादन में डूबे हुए महामति नित्यानन्द जो जो कुछ कहते हैं और करते हैं, वे सब प्रभु सम्मत ही होते हैं ॥ २० ॥ प्रभु बोले—"आप अपनी एक

एत बलि प्रभु ताँर कौपीन आनिया। छोट करि चिरिलेन अनेक करिया ॥२२॥
सकल-वैष्णव मण्डलीर जने जने। खानि खानि करि प्रभु दिलेन आपने ॥२३॥
प्रभु बोले "ए वस्त्र वान्धह सभे शिरे। अन्येर कि दाय, इहा वाञ्छे योगेश्वरे ॥२४॥
नित्यानन्द-प्रसादे से हय विष्णु भक्ति। जानिह कृष्णेर नित्यानन्द पूर्ण-शक्ति ॥२५॥
कृष्णेर द्वितीय नित्यानन्द वइ नाइ। सङ्गी, सखा, शयन, भूषण, बन्धु, भाइ ॥२६॥
वेदेर अगम्य-नित्यानन्देर चरित्र। सर्व-जीव-जनक-रक्षक-सर्व-मित्र ॥२७॥
इहान व्यभार कर्म कृष्ण रस मय। इहाने सेविले कृष्णे प्रेम भक्ति हय ॥२८॥
भक्ति करि इहान कौपीन वान्ध' शिरे। महा-यत्ने इहा पूजा कर' गिया घरे" ।२९॥
पाइया प्रभुर आज्ञा सर्व भक्त गण। परम-आदरे शिरे करिला वन्धन ॥३०॥
प्रभु बोले "शुनह सकल भक्त गण। नित्यानन्द पादोदक करह ग्रहण ॥३१॥
करिले इँहार पादोदक-रस-पान। कृष्णे दृढ़-भक्ति हय, इथे नाहि आन" ॥३२॥
आज्ञा पाइ सभे नित्यानन्देर चरण। पाखालिया पादोदक करये ग्रहण ॥३३॥
पाँच बार दश बार एको जने खाय। वाह्य नाहि नित्यानन्द हासये सदाय ॥३४॥
आपने वसिया महाप्रभु गौर राय। नित्यानन्द-पादोदक कौतुके लुटाय ॥३५॥
सभे नित्यानन्द-पादोदक करि पान। मत्त-प्राय 'हरि' वलि करये आह्वान ॥३६॥
केहो बोले 'आजि धन्य हइल जीवन"। केहो बोले "आजि सब खण्डिल वन्धन" ॥३७॥
केहो बोले "आजि हइलाङ कृष्ण दास"। केहो बोले "आजि धन्य दिवस प्रकाश" ।।३८॥
केहो बोले "पादोदक वड़ स्वादु लागे। एखनेओ मुखेर मिष्टता नाहि भागे" ॥३९॥

कौपीन दें यह मेरी बड़ी इच्छा है" ॥ २१ ॥ ऐसा कह कर प्रभु ने उनकी कौपीन लेकर उसके छोटे २ बहुत से टुकड़े कर लिए ॥ २२ ॥ और वैष्णव मण्डली में प्रत्येक जन को स्वयं प्रभु ने टुकड़े बाँट दिए ॥ २३ ॥ और बोले—"सब लोग अपने २ सिर पर इन टुकड़ों को बाँध। औरों की तो बात ही क्या, योगेश्वर भी इस वस्त्र की बड़ी इच्छा करते हैं ॥ २४ ॥ "इन नित्यानन्द जी की कृपा से ही विष्णु-भक्ति होती है। इनको तुम श्रीकृष्ण को पूर्ण शक्ति करके ही जानो ॥ २५ ॥ श्री नित्यानन्द के बिना श्री कृष्ण का संगी सखा, शय्या, भूषण, बन्धु, भाई और दूसरा कोई नहीं है ॥ २६ ॥ "नित्यानन्द जी के चरित्र वेदों को भी अगम्य हैं। ये सब जीवों के जनक, रक्षक और मित्र हैं ॥ २७ ॥ इनके व्यवहार और कर्म सब कृष्ण रसमय हैं। इनकी सेवा करने से श्री कृष्ण में प्रेम भक्ति होती है ॥ २८ ॥ "इनकी कौपीन को भक्ति पूर्वक सिर पर बाँधो और घर जाकर महा यत्न पूर्वक इसकी पूजा करो" ॥ २९ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर सब भक्तों ने बड़े आदर पूर्वक टुकड़े सिरपर बाँध लिये ॥३०॥ प्रभु कहते हैं कि-हेसब भक्तगण सुनो, नित्यानन्द पादोदक का पानकरो ॥३१॥ इन का पादोदक रस पान करने से श्री कृष्ण में दृढ़ भक्ति होती है ॥ ३२ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर भक्त जन श्री नित्यानन्द के चरण प्रक्षालन कर पादोदक पान करते हैं ॥ ३३ ॥ एक २ जन पाँच २ एवं दस २ बार पीता है, इधर श्री नित्यानन्द को वाह्य ज्ञान नहीं है वे निरन्तर हँस रहे हैं ॥ ३४ ॥ श्री महाप्रभु गौरराय स्वयं बैठ कर आनन्द पूर्वक नित्यानन्द पादोदक लुटा रहे हैं ॥ ३५ ॥ सर्व भक्त गण पादोदक पान कर मत्तों की भांति "हरि बोल हरि बोल" पुकारते हैं ॥ ३६ ॥ कोई कहता है कि "आज जीवन धन्य हो गया" कोई कहता है कि "आज समस्त बन्धन नष्ट हो गये" ॥ ३७ ॥ कोई कहता है कि "आज मैं कृष्ण दास बन गया" कोई कहता है कि "आज के दिन का प्रकाश होना मेरे लिये धन्य है ॥ ३८ ॥ कोई कहता है कि—"पादोदक

किसे नित्यानन्द-पादोदकेर प्रभाव। पान-मात्र सभे हैला चञ्चल-स्वभाव ॥४०॥
केहो नाचे, केहो गाय, केहो गड़ि जाय। हुङ्कार गर्जन केहो करये सदाय ॥४१॥
उठिल परमानन्द कृष्ण सङ्कीर्तन। विह्वल हइया नृत्य करे भक्त गण ॥४२॥
क्षणेके श्रीगौरचन्द्र करिया हुङ्कार। उठिया लागिला नृत्य करिते अपार ॥४३॥
नित्यानन्द स्वरूप उठिला ततक्षण। नृत्य करे दुइ प्रभु वेढ़ि भक्त गण ॥४४॥
कार गा'ये केवा पड़े केवा कारे धरे। केवा कार चरणेर धूलि लय शिरे ॥४५।
केवा कार गला धरि करये क्रन्दन। केवा कोन् रूप करे, ना जाय वर्णन ॥४६॥
'प्रभु' करियाओ कारो किछु भय नाञि। प्रभु-भृत्य सकले नाचये एक ठाञि ॥४७।
नित्यानन्द-चैतन्य करिया कोला कोलि। आनन्दे नाचेन दुइ महा-कुतूहली ॥४८॥
पृथिवी कम्पिता नित्यानन्द पद ताले। देखिया आनन्दे सर्व-गण 'हरि' बोले ॥४९॥
प्रेम रसे मत्त हइ वैकुण्ठ ईश्वर। नाचेन लइया सब प्रेम-अनुचर ॥५०॥
ए सब लीलार कभू नाहि परिच्छेद। 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र कहे वेद ॥५१।
एइ मत सर्व दिन प्रभु नृत्य करि। वसिलेन सर्व गण-सङ्गे गौर हरि ॥५२॥
हाथे तिन तालि दिया गौराङ्ग सुन्दर। सभारे कहेन अति-अमाया उत्तर ॥५३॥
प्रभु बोले "एइ नित्यानन्द स्वरूपेरे। जे करये भक्ति श्रद्धा, से करे आमारे ॥५४॥
इहान चरण ब्रह्मा शिवेरो वन्दित। अतएव इहाने करिह सभे प्रीत ॥५५॥
तिलार्द्धेको इहाने जाहार द्वेष रहे। भक्त हइलेओ से आमार प्रिय नहे ॥५६॥

तो बड़ा स्वादिष्ट लगता है। अभी मुख का मिठास दूर नहीं हुआ है ॥ ३९ ॥ श्री नित्यानन्द पादोदक का कैसा प्रभाव है कि- पान मात्र करते ही सब कोई चंचल स्वभाव के हो गये हैं ॥ ४० ॥ फिर तो कोई नाचने लगा, कोई गाने लगा, कोई जमीन पर लोट-पोट हो गया, कोई बारम्बार हुँकार और गर्जना करने लगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार परमानन्द मय श्री कृष्ण-संकीर्त्तन मच गया और भक्त लोग विह्वल होकर नाचने लगे ॥ ४२ ॥ थोड़ी देर में श्री गौरचन्द्र भी हुँकार करते हुए उठ खड़े हुए और अपार नृत्य करने लगे ॥ ४३ ॥ तुरन्त ही श्री नित्यानन्द स्वरूप भी उठ खड़े हुए और भक्तों से घिरे हुए दोनों प्रभु नृत्य करने लगे ॥ ४४ । कोई किसी के शरीर के ऊपर गिर पड़ता है तो कोई किसी को पकड़ता है, कोई किसी की चरण धूलि सिर पर चढ़ाता है ॥ ४५ ॥ कोई किसी का गला पकड़ कर रोता है, कोई कुछ कोई कुछ करते हैं-सो सब वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ४६ ॥ "प्रभु" मानने पर भी किसी को कुछ भय नहीं है। प्रभु और दास सब एकत्र नृत्य कर रहे हैं ॥ ४७ ॥ श्री नित्यानन्द और श्री चैतन्य चन्द्र परस्पर आलिंगन किए हुऐ नाच रहे हैं-दोनों महा कौतुकी हैं ॥ ४८ ॥ श्री नित्यानन्द के चरणों के ताल से पृथ्वी कम्पायमान हो रही है-यह देख कर भक्त लोग सब "हरि बोल" ध्वनि कर रहे हैं ॥ ४९ ॥ प्रेम रस में मत्त होकर वैकुण्ठ के ईश्वर सब प्रेम के अनुचरों को लेकर नाच रहे हैं ॥ ५० ॥ इन सब लीलाओं की कभी इति श्री नहीं है वेद इनका केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही कहते हैं ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सारा दिन नृत्य करके प्रभु गौर हरि सब भक्त जनों के साथ बैठे ॥ ५२ ॥ प्रभु गौरांग सुन्दर अपने हाथों से तीन तालियाँ देकर सब लोगों के प्रति अमायिक वचन बोले कि-"इन नित्यानन्द स्वरूप की जो कोई भक्ति-श्रद्धा करता है, वे मेरी हो करता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ "इनके श्री चरण ब्रह्मा और शिव करके भी बन्दित हैं। अतएव इनसे सब कोई प्रेम करें ॥ ५५ ॥ इनसे तिल भर भी जो द्वेष करता है, वह भक्त होने पर भी मेरा प्यारा नहीं है ॥ ५६ ॥ "इनकी वायु भी जिसके शरीर

इहान वातास लागिवेक जार गाय । ताहारेओ कृष्ण ना छाड़िव सर्वथाय" ।।५७।।
शुनिञा प्रभुर वाक्य सर्व भक्त गण । महा-जय जय ध्वनि करिला तखन ।।५८।।
भक्ति करि जे शुनये ए सब आख्यान । तार स्वामी हय गौरचन्द्र भगवान् ।।५९।।
नित्यानन्द स्वरूपेर ए सकल कथा । जे देखिल ताँहारे, से जानये सर्वथा ।।६०।।
एइ मत कत नित्यानन्देर प्रभाव । जाने जत चैतन्येर प्रिय महा भाग ।।६१।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ।।६२।।

अथ तेरहवाँ अध्याय

"आजानु लम्बित भुजौ कनकावदातौ । सङ्कीर्त्तनैक पितरौ कमलायताक्षौ ।।
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युग धर्म पालौ । वन्दे जगत्प्रिय करौ करुणावतारौ ।।
जय जय महाप्रभु श्रीगौर सुन्दर । जय नित्यानन्द सर्व सेव्य-कलेवर ।।१।।
जय जय शची सुत द्विज कुल मणि । नित्यानन्दाद्वैत दुइ ताहि मध्ये गणि ।।२।।
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर । क्रीड़ा करे, नहे सर्व-नयन-गोचर ।।३।।
लोके देखे पर्वे जेन निमाञि पण्डित । अतिरिक्त आर किछु ना देखे चरित ।।४।।
जखन प्रविष्ट हय सेवकेर मेले । तखन भासेन एइ मत कुतूहले ।।५।।
जार जेन भाग्य, तेन ताहारे देखाय । बाहिर हइले सब आपना लुकाय ।।६।।
एक दिन आचम्बिते हैले हेन मति । आज्ञा कैल नित्यानन्द-हरिदास-प्रति ।।७।।
"शुन शुन नित्यानन्द ! शुन हरिदास । सर्वत्र आमार आज्ञा करह प्रकाश ।।८।।

को लग जायगी उसे भी श्री कृष्ण कदापि नहीं छोड़ेंगे ।। ५७ ।। प्रभु के वचनों को सुन कर सब भक्तों ने तत्क्षण महा "जय जय" ध्वनि मचा दी ।। ५८ ।। जो कोई भक्ति पूर्वक इन सब चरित्रों को सुनते हैं, उनके स्वामी श्री गौरचन्द्र भगवान् होते हैं ।। ५९ ।। श्री नित्यानन्द स्वरूप के इन सब चरित्रों को जिन्होंने देखा वे भली भाँति इसे जानते हैं ।। ६० ।। ऐसे २ नित्यानन्द जी के प्रभाव के कितने ही चरित्र हैं—उन्हें श्रीचैतन्य चन्द्र के प्रिय महा भागवान् ही जानते हैं ।। ६१ ।। श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र जिसके जीवन हैं, वह वृन्दावन दास उनके श्री चरण युगल में उनका यश गान समर्पण करता है ।। ६२ ।।

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे नित्यानन्द प्रभाव वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।।

महा प्रभु श्री गौर सुन्दर की जय हो जय हो, सर्वसेव्य कलेवर श्री नित्यानन्द की जय हो ।। १ ।। शची नन्दन द्विज कुलमणि की जय हो जय हो । उनके जय के मध्य में ही श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैताचार्य जी की भी जय हो, जय हो ।। २ ।। इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर नवद्वीप में लीला कर रहे हैं, परन्तु सब लोग उसे देख नहीं पाते ।। ३ ।। और लोग तो जैसे पहले वैसे ही अब भी प्रभु को निमाइ पण्डित करके ही जानते हैं इसके अतिरिक्त उनके और चरित्र कुछ भी नहीं देख पाते हैं ।। ४ ।। जब प्रभु अपने सेवकों के दल में पधारते हैं तब ही वे इस प्रकार के कौतुक के तरङ्गों में क्रीड़ा करते हैं ।। ५ ।। जिसका जैसा भाग्य, उसको वैसा ही दिखाते है, और भक्तों से अलग होने पर फिर अपना सब कौतुक छिपा लेते हैं ।। ६ ।। एक दिन अचानक उनकी कुछ ऐसी इच्छा हुई और उन्होंने श्री नित्यानन्द और हरिदास जी के प्रति यह आज्ञा की ।। ७ ।। "सुनो सुनो नित्यानन्द जी और हरिदास जी सुनो ! मेरी आज्ञा का सर्वत्र प्रचार करो ।। ८ ।।

प्रति घरे घरे गिया कर' एइ भिक्षा। 'कृष्ण भज, कृष्ण बोल, कर' कृष्ण-शिक्षा ॥९॥
इहा बइ आर ना वलिवा बोलाइ वा। दिन-अवसाने आसि आमारे .कहिवा ॥१०॥
तोमरा करिले भिक्षा, जेइ ना वलिव। तबे आमि चक्र-हस्ते सभारे काटिव ॥११॥
आज्ञा शुनि हासे' सब वैष्णव मण्डल। अन्यथा करिते आज्ञा आछे कार् बल ॥१२॥
आज्ञा शिरे करि नित्यानन्द हरिदास। सेइ क्षणे चलिला पथेते आसि हास ॥१३॥
हेन आज्ञा जाहा नित्यानन्द शिरे वहे। इहाते अप्रीत जार, से सुबुद्धि नहे ॥१४॥
करये अद्वैत-सेवा, चैतन्य ना माने'। अद्वैतेइ तारे संहारिव भाल-मने ॥१५॥
आज्ञा पाइ दुइ जने वुले घरे घरे। "वोल कृष्ण, गाओ कृष्ण, भजह कृष्णेरे ॥१६॥
कृष्ण प्राण, कृष्ण धन, कृष्ण से जीवन। हेन कृष्ण बोल भाइ ! हइ एक-मन" ॥१७॥
एइ मत नदियाय-प्रति घरे घरे। वलिया बेडान दुइ जगत्-ईश्वरे ॥१८॥
दोहान संन्यासि-वेश, जान जार घरे। आथे व्यथे आसि भिक्षा-निमंत्रण करे ॥१९॥
नित्यानन्द हरिदास बोले "एइ भिक्षा। कृष्ण बोल, कृष्ण भज, कर कृष्ण शिक्षा" ॥२०॥
एइ वोल वलि दुइ जन चलि जाय। जे हय सुजन, सेइ बड़ सुख पाय ॥२१॥
अपरूप शुनि लोक दुइ जन-मुखे। नाना-जने नाना-कथा कहे नाना-सुखे ॥२२॥
"करिव करिव" केहो बोलये सन्तोषे। केहो बोले "दुइ जन क्षिप्त मंत्र-दोषे ॥२३॥
तोमराह पागल हइया मंत्र-दोषे। 'आमा' सभा' पागल करिते आइस किसे" ॥२४॥
जे-गुला चैतन्य-नृत्ये ना पाइल द्वार। तार बाड़ी गेले मात्र बोले "मार मार ॥२५॥

प्रत्येक घर २ में जाकर यही भिक्षा माँगो कि "कृष्ण भजो, कृष्ण कहो, और कृष्ण सीखो" ॥ ९ ॥ इसके अतिरिक्त न तो कुछ बोलो न बुलवाओ। और संध्या समय आकर मुझे सब सुनाओ ॥१०॥ "तुह्मारे (नाम की) भिक्षा माँगने पर भी जो नाम नहीं लेंगे, तो फिर मैं हाथ में चक्र लेकर उन सब को काट डालूंगा" ॥ ११ ॥ इस आज्ञा को सुनकर वैष्णव मण्डली सब हँसने लगी कि भला प्रभु की आज्ञा टालने की किसमें शक्ति है ॥ १२ ॥ प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके श्री नित्यानन्द और हरिदास जी उसी समय चल पड़े और हँसी-विनोद करते नगर को बढ़े ॥ १३ ॥ ऐसी है प्रभु की आज्ञा कि जिसे नित्यानन्द जी भी सिर पर चढ़ाते हैं, इसमें जिसकी अप्रसन्नता है, वह सुबुद्धिमान् नहीं है ॥ १४ ॥ और अद्वैताचार्य की तो जो सेवा करता है परन्तु श्री चैतन्य देव को नहीं मानता है, अद्वैत जी ही उसको समुचित दण्ड दे देते हैं ॥ १५ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर दोनों जने घर २ घूमते हुए यही भिक्षा माँगते हैं कि भाइयो ! बोलो कृष्ण, गाओ कृष्ण भजो कृष्ण" । १६॥ "कृष्ण ही प्राण हैं, कृष्ण ही धन हैं, कृष्ण ही जीवन हैं। ऐसे कृष्ण का नाम भाइयो ! एक मन से बोलो ॥ १७ ॥ इस प्रकार नवद्वीप के घर २ में ऐसा कहते हुए ये दोनों जगदीश्वर घूमते फिरते हैं ॥ १८ ॥ दोनों का संन्यासी भेष है, जिसके घर जा पहुँचते हैं वही झट पट आकर भिक्षा के लिए निमंत्रण करता है ॥ १९ ॥ तो श्री नित्यानन्द और हरिदास जी कहते हैं कि हमारी तो यही भिक्षा है कि "कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो और कृष्ण सीखो" ॥ २० ॥ ऐसा कह कर दोनों चल पड़ते हैं, तो जो सज्जन होते हैं। वे बड़ा सुख पाते हैं ॥ २१ ॥ इन दोनों के मुख से अपूर्व भिक्षा की बात को सुनकर लोग नाना प्रकार की बातें कह कर अपना मन संतोष करते हैं ॥२२॥ कोई तो प्रसन्न होकर कहता है "करूंगा करूंगा" कोई कहता "मंत्र-दोष के कारण दोनों जने पागल हो गए हैं ॥ २३ ॥ और इनसे कहते हैं--अरे ! तुम तो मंत्र-दोष से पागल हुए सो हुए पर हम सब को भी पागल करने क्यों आए" ॥ २४ ॥ जिन लोगों को श्री

भव्य भव्य लोक-सब हइल पागल। निमाञ्नि पण्डित नष्ट करिल सकल" ॥२६॥
केहो बोले "दुइ जन किवा चोर-चर। छला करि चर्चिया वुलये घरे घर ॥२७॥
ए मत प्रकट केनें करिव सुजने। आर वार आइले धरि लइव देयाने" ॥२८॥
शुनि शुनि नित्यानन्द-हरिदास हासे'। चैतन्येर आज्ञा-वले ना पाय तरासे ॥२९॥
एइ मत घरे घरे वुलिया वुलिया। प्रति दिन विश्वम्भर-स्थाने कहे गिया ॥३०॥
एक दिन पथे देखे दुइ मातोयाल। महा-दस्यु-प्राय दुइ मद्यप विशाल ॥३१॥
से दुइ जनेर कथा कहिते अपार। तारा नाहि करे, हेन पाप नाहि आर ॥३२॥
ब्राह्मण हइया मद्य-गोमाँस-भक्षण। डाका, चूरि, परगृह दाहे' सर्व क्षण ॥३३॥
देयाने नाहिक देखा, वोलाय' कोटाल। मद्य पान बिने आर नाहि जाय काल ॥३४॥
दुइ जन पथे पड़ि गड़ा गड़ि जाय। जाहारे जे पाय, सेइ ताहारे किलाय ॥३५॥
दूरे थाकि लोक सब पथे देखे रङ्ग। सेइ खाने नित्यानन्द हरिदास-सङ्ग ॥३६॥
क्षणे दुइ जने प्रीत, क्षणे धरे चूले। 'चकार वकार' शब्द उच्च करि बोले ॥३७॥
नदियार विप्रेर करिल जाति नाश। मद्येर विक्षेपे क़ारे करये आश्वास ॥३८॥
सर्व पाप सेइ दुइर शरीरे जन्मिल। वैष्णवेर निन्दा पाप सवे ना हइल ॥३९॥
अहर्निश मद्यपेर सङ्गे रङ्गे थाके। नहिल वैष्णव-निन्दा एइ सब पाके ॥४०॥
जे सभाय वैष्णवेर निन्दा मात्र हय। सर्व-धर्म थाकिलेओ तभु हय क्षय ॥४१॥

चैतन्य चन्द्र के सङ्कीर्त्तन नृत्य देखने के लिए भीतर जाने को नहीं मिला था, उनके घर पर जाते ही वे "मारो मारो इनको" कह के चिल्ला उठते ॥ २५॥ और कहते "सज्जन भद्र पुरुष सब पागल हो गए। निमाइ पण्डित ने सब को बिगाड डाला" ॥ २६ ॥ कोई कहता—"ये दो कहीं चोरों के चर तो नहीं हैं। नाम के बहाने से घर २ देखते फिरते हैं ॥ २७ ॥ यदि ये सज्जन होते तो ऐसे ढोल बजा कर काम क्यों करते ? अबकी बार आएँ तो सही, पकड कर दीवान के हवाले न कर दूँ ॥ २८ ॥ यह सुन २ कर श्री नित्यानन्द और हरिदास जी हँसते हैं पर श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा के बल पर भयभीत नहीं होते हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार दिन भर घर २ प्रति घूम २ कर संध्या काल को, प्रभु के पास आकर सब वृत्तान्त सुनाते हैं ॥ ३० ॥ एक दिन उन्होंने मार्ग में दो मतवालों को देखा। वे बड़े भयंकर डाकू जैसे लगते थे और दोनों बड़े भारी शराबी थे ॥ ३१ ॥ उन दोनों के कुकर्मों का कोई ठिकाना नहीं था ऐसा कोई पाप नहीं था जो वे करते न थे ॥ ३२ ॥ वे थे तो जाति से ब्राह्मण पर मदिरा पीते और गोमांस तक खाते थे, और डाका चोरी और घर जलाना तो उनका नित्य कर्म था ॥ ३३ ॥ वे कहलाते तो शहर-कोतवाल थे पर कार्यालय का मुँह उन्होंने कभी नहीं देखा था। वे शराब पीने के सिवाय और कुछ नहीं जानते थे ॥ ३४ ॥ जो कोई उनके हाथ आ जाता उसी को वे मरम्मत कर देते ॥ ३५ ॥ अतएव रास्ते पर लोग दूर से खड़े २ उनका तमाशा देख रहे थे वहीं पर नित्यानन्द और हरिदास जी भी थे ॥ ३६ ॥ वे दोनों मतवाले क्षण में तो आपस में प्यार करते और क्षण में एक दूसरे के बालों को नोचते, और जोर २ से "चकार बकार" अर्थात् गन्दी गालियां बकते ॥ ३७ ॥ इन्होंने नदिया के विप्र की जाति नाश कीनी है और मदिरा के विक्षेप में किसी को नहीं मानते हैं ॥३८॥ जितने भी पाप हैं सब इन दोनों के शरीर में प्रकट हुए—केवल एक वैष्णवों की निन्दा रूपी पाप से ये बचे हुए थे ॥ ३९ ॥ दिन रात शराबियों के सङ्ग-रङ्ग में रहने के कारण ये वैष्णवों की निन्दा से बचे रह गए ॥ ४० ॥ जिस सभा में वैष्णवों की निन्दा होती है, उसका सब धर्मों के रहते हुए भी

संन्यासि-सभाय यदि हय निन्द्य कर्म। मद्यपेरो सभा हेते से सब अधर्म्य ॥४२॥
मद्यपेर निष्कृति आछये कोनो काले। पर चर्च केर गति नहे कभु भाले ॥४३॥
शास्त्र पढ़ियाओ कारो कारो बुद्धि नाश। निन्दानन्द-निन्दा करे, हवे सर्व नाश ॥४४॥
दुइ-जना किला किलि गाला गालि करे। नित्यानन्द-हरिदास देखे थाकि दूरे ॥४५॥
लोक-स्थाने नित्यानन्द जिज्ञासे आपने। "कोन् जाति दुइ जन, हेन-मत केने" ॥४६॥
लोक बोले "गोसाञि! ब्राह्मण दुइ जन। दिव्य पिता माता, महा कुले उतपन्न ॥४७॥
सर्व काल नदियाय पुरुषे पुरुषे। तिलार्द्धेको दोष नाहि ए-दोंहार वंशे ॥४८॥
एइ दुइ गुणवन्त पासरिल धर्म। जन्म हैते ए मत करये अपकर्म ॥४९॥
छाडिल गोष्ठीये बड़ दुर्जन देखिया। मद्यपेर सङ्गे बुले स्वतंत्र हइया ॥५०॥
ए-दुइ देखिया सब नदिया डराय। पाछे कारो कोन दिन वसति पोड़ाय ॥५१॥
हेन पाप नाहि, जाहा ना करे दुइ जन। डाका, चुरि, मद्य-माँस करये भक्षण" ॥५२॥
शुनि नित्यानन्द बड़ करुण-हृदय। दुइर उद्धार चिन्ते' हइया सदय ॥५३॥
"पापी उद्धारिते प्रभु कैला अवतार। ए मत पातकी कोथा पाइवेन आर ॥५४॥
लुकाइया करे प्रभु आपना प्रकाश। प्रभाव ना देखि लोक करे उपहास ॥५५॥
ए-दुइरे प्रभु जदि अनुग्रह करे। तवे से प्रभाव देखे सकल-संसारे ॥५६॥
तवे हङ नित्यानन्द-चैतन्येर दास। ए-दुइरे करों यदि चैतन्य-प्रकाश ॥५७॥

नाश होता है ॥ ४१ ॥ संन्यासी सभा में यदि वैष्णवों की निन्दा होती है तो वह शराबियों की सभा से अधिक अधर्मी है ॥ ४२ ॥ (कारण कि) शराबियों का उद्धार तो किसी समय हो भी सकता है परन्तु पर-चर्चा करने वाले की कभी भी उत्तम गति नहीं हो सकती ॥ ४३ ॥ शास्त्र पढ़ करके भी किसी २ की बुद्धि नष्ट हो गई है, जो वे श्री नित्यानन्द की निन्दा करते हैं। उनका सर्वनाश होगा ॥४४॥ दोनों शराबी आपस में मार पीट, गाली गलौज कर रहे हैं और नित्यानन्द और हरिदास जी दूर से देख रहे हैं ॥ ४५ ॥ फिर नित्यानन्द जी ने आप ही लोगों से पूछा कि ये दोनों किस जाति के हैं और ऐसे कैसे हैं ॥ ४६ ॥ लोग बोले-"गुसांई जी! ये दोनों ब्राह्मण हैं। उच्चकुल में उत्पन्न हुए हैं इनके माता पिता बड़े ही उत्तम हैं ॥ ४७ ॥ इनके पूर्व पुरुष चिरकाल से नदिया में निवास करते आए हैं इनके वंश में किसी में भी तिल भर दोष नहीं था ॥ ४८ ॥ पर ये दो ऐसे गुणवन्त निकले कि अपना धर्म-कर्म सब भूल गए। ये बचपन से ही ऐसे कुकर्म करते आए हैं ॥ ४९ ॥ इनको दुष्ट- दुर्जन देख कर इनके बन्धु-बान्धवों ने भी इनको छोड दिया। अब ये परम स्वतंत्र हो शराबियों के साथ घूमते फिरते हैं ॥ ५० ॥ इन दोनों को देख कर सारी नदिया डरती है-कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन हमारा किसी का घर न जला दें ॥ ५१ ॥ ऐसा पाप नहीं है, जो ये दोनों नहीं करते हैं डाका डालते, चोरी करते, मद्य-मांस खाते पीते हैं ॥ ५२ ॥ यह सुन कर दयालु हृदय वाले नित्यानन्द जी दया के परवश होकर उनके उद्धार की चिन्ता करने लगे ॥ ५३ ॥ वे सोचते हैं-"पापियों को उद्धार करने के लिए ही प्रभु ने अवतार लिया है। तो फिर ऐसे पापी उनको और कहाँ मिलेंगे ॥ ५४ ॥ "प्रभु लोगों से छिपा कर अपनी प्रकाश लीला करते हैं। लोगों को प्रभु का प्रभाव प्रत्यक्ष देखने को न मिलने से वे उपहास करते हैं ॥५५॥ "इन दोनों के ऊपर यदि प्रभु कृपा करें, तभी संसार प्रभु के प्रभाव को देखेगा ॥५६॥ और मैं भी नित्यानन्द श्री चैतन्य का दास तभी हूँगा जब मैं इन दोनों के हृदय में चैतन्य का प्रकाश कर दूँगा ॥ ५७ ॥ "इस समय जो मदिरा में मतवाले बने अपने को भूले हुए हैं, ऐसे ही यदि श्री कृष्ण के नाम

एखने जे मदे मत्त, आपना' ना जाने। एइ मत हय यदि श्रीकृष्णेर नामे॥
'मोर प्रभु' वलि यदि कान्दे दुइ जन। तवे से सार्थक मोर जत पर्यटन॥५८॥
जे जे जन ए-दुइर छाया परशिया। वस्त्रेर सहित गङ्गा स्नान कैल गिया॥५९॥
सेइ सब जन जवे ए-दोंहारे देखि। गंगा स्नान हेन माने,' तवे मोरे लेखि"॥६०॥
श्रीनित्यानन्द प्रभुर महिमा अपार। पतितेर त्राण लागि जाँर अवतार॥६१॥
ए सब चिन्तिया मने हरिदास-प्रति। बोले "हरिदास! देख दोंहार दुर्गति॥६२॥
ब्राह्मण हइया हेन दुष्ट-व्यवहार। ए-दोंहार जम घरे नाहि प्रतिकार॥६३॥
प्राणान्ते मारिल तोमा' जे जवन गणे। ताहारओ करिला तुमि भाल मने मने॥६४॥
जदि तुमि शुभानु सन्धान कर' मने। तवे से उद्धार पाय एइ दुइ जने॥६५॥
तोमार सङ्कल्प प्रभु ना करे अन्यथा। आपने कहिला प्रभु एइ तत्त्व कथा॥६६॥
प्रभुर प्रभाव सब देखुक संसार। चैतन्य करिल हेन-दुइर उद्धार॥६७॥
जेन गाय अजामिल-उद्धार पुराणे। साक्षाते देखुक एवे ए-तिन-भुवने"॥६८॥
नित्यानन्द-तत्त्व हरिदास भाल जाने। 'पाइल उद्धार दुइ' जानि लेन मने॥६९॥
हरिदास प्रभु बोले "शुन महाशय। तोमार जे इच्छा, से-इ प्रभुर निश्चय॥७०॥
आमारे भाण्डाह जेन पशुरे भाण्डाह। आमारे से तुमि पुनः पुन परिरवाह॥७१॥
हासि नित्यानन्द ताने दिला आलिङ्गन। अत्यन्त कोमल हइ बोलेन वचन॥७२॥
"प्रभुर जे आज्ञा लइ आमरा बेड़ाइ। ताहा कहि एइ दुइ मद्यपेर ठाँइ॥७३॥
सभारे भजिते 'कृष्ण' प्रभुर आदेश। तार मध्ये अतिशय-पापीरे विशेष॥७४॥

में मतवाले बन जायँ और "हे मेरे प्रभो" कह २ कर रोने लग जायँ तभी मेरा यह नगर भ्रमण सार्थक होगा ॥ ५८ ॥ "जिन २ लोगों ने इन दोनों के छाया को छूकर के गङ्गा में जा वस्त्र सहित स्नान किया है ॥५९॥ वे ही सब लोग जब इन दोनों के दर्शन में ही अपना गङ्गा स्नान मानेंगे, तब ही मेरा नाम नित्यानन्द करके जानना ॥६०॥ श्री नित्यानन्द प्रभु की महिमा अपार है जिनका अवतार हो पतितों के उद्धार के लिए हुआ है ॥ ६१ ॥ इस प्रकार मन में विचार करके वे हरिदास जी से बोले—"हरिदास! इन दोनों की दुर्गति तो देखो ॥ ६२ ॥ "ब्राह्मण होकर ऐसा दुष्ट आचरण !! इन दोनों के लिए तो यम के घर में भी छुटकारा नहीं ॥ ६३ ॥ जिन यवन सिपाहियों ने तुम्हारे अन्तिम श्वास तक तुमको मारा था, उनका भी तुमने अपने मन में शुभ चिन्तन ही किया था ॥ ६४ ॥ "वही तुम यदि इनके लिए भी मन में शुभ कामना करो तो इन दोनों का भी उद्धार हो जाय ॥ ६५ ॥ (कारण कि) तुम्हारे संकल्प को प्रभु अन्यथा नहीं कर सकते—यह विल्कुल सत्य है-यह प्रभु ने ही स्वयं कहा है ॥ ६६ ॥ "और प्रभु का प्रभाव भी तो संसार देखे कि श्री चैतन्य प्रभु ने ऐसे २ दुष्टों का उद्धार किया है ॥ ६७ ॥ अजामिल का उद्धार पुराण जो गाते हैं, उसे अब यह तीनों लोक प्रत्यक्ष देख लें" ॥ ६८ ॥ श्री नित्यानन्द के तत्त्व को हरिदास जी भली प्रकार से जानते हैं अतएव उनके मन ने जान लिया कि इनका उद्धार हो गया ॥ ६९ ॥ हरिदास प्रभु फिर नित्यानन्द प्रभु से बोले -"सुनो महाशय जी ! तुम्हारी जो इच्छा है, वही प्रभु का निश्चय है ॥ ७० ॥ जैसे लोग पशु को भुलाते हैं, वैसे तुम मुझे क्या भुलाते हो। मैं भूलने वाला नहीं हूँ। मेरी तुम बार २ परीक्षा लेते हो" ॥ ७१ ॥ तब हँस करके नित्यानन्द जी ने उनको छाती से लगा लिया और कुछ अत्यन्त कोमल होकर बोले ॥ ७२ ॥ "तो सुनो ! हम प्रभु की जो आज्ञा लेकर घूम रहे हैं, उस आज्ञा को इनके पास चल कर सुनाएँ ॥ ७३ ॥ "सब लोगों से

वलिवार भार मात्र आमरा-दुइर। वलिले ना लय, तवे सेइ महावीर ॥७५॥
वलिते प्रभुर आज्ञा से-दुइर स्थाने। नित्यानन्द-हरिदास करिला गमने ॥७६॥
साधु लोके माता करे "निकटे ना जाओ। नागालि पाइले पाछे पराण हाराओ ॥७७॥
आमरा अन्तरे थाकि परम-तरासे। तोमरा निकटे जाह के मन साहसे ॥७८॥
किसेर संन्यासि-ज्ञान ओ-दुइर ठाञि। ब्रह्म बधे गो बधे जाहार अन्त नाञि" ॥७९॥
तथापिह दुइ जन 'कृष्ण कृष्ण वलि। निकटे चलिला, दोहे महा-कुतूहली ॥८०॥
'शुनि वारे पाय' हेन निकटे थाकिया। कहेन प्रभुर आज्ञा डाकिया डाकिया ॥८१॥
"बोल कृष्ण,भज कृष्ण,लह कृष्ण नाम। कृष्ण माता,कृष्ण पिता,कृष्ण धन प्राण ॥८२॥
तोमा 'सभा' लागिया कृष्णेर अवतार। हेन कृष्ण भज, सब छाड़ अनाचार" ॥८३॥
डाक शुनि माथा तुलि चाहे दुइ जन। महा-क्रोधे दुइ जन अरुण-नयन ॥८४॥
संन्यासि-आकार देखि माथा तुलि चाहे। "धर धर" बलि दोंहे धरि वारे जाये ॥८५॥
आथे व्यथे नित्यानन्द-हरिदास धाय। "रह रह" वलि दुइ दस्यु पाछे जाय। ८६॥
धाइया आइसे पाछे तर्ज गर्ज करे। महा-भय पाइ दुइ प्रभु धाय डरे ॥८७॥
लोक बोले "तखनेइ निषेध करिल। ए दुइ संन्यासी आजि सङ्कटे पड़िल ॥८८॥
जतेक पाषण्डि-सब हासे' मने मने। "भण्डेर उचित शास्ति कैल नारायणे" ॥८९॥
"कृष्ण ! रक्ष, कृष्ण ! रक्ष" सु ब्राह्मण बोले। से स्थान छाड़िया भये चलिला सकले ॥९०॥

और उनमें भी विशेष करके अतिशय पापीयों से श्री कृष्ण का भजन कराने के लिए प्रभु का आदेश है ॥७४। (जो यदि तुम यह कहोगे कि ये मतवाले प्रभु के आदेश को क्या सुनेंगे तो) हम दोनों के ऊपर तो आज्ञा सुना देने का ही भार है यदि कहने पर भी ये नाम न लें, तो प्रभु महावीर हैं-वे ही उनसे बुलवा लेंगे ॥७५॥ अब नित्यानन्द और हरिदास जी प्रभु की आज्ञा सुनाने के लिए उन दोनों के पास चले ॥७६। यह देख कर सज्जन लोग मना करने लगे-"अरे ! नजदीक मत जाओ ! उनके हाथ पड़ गए तो प्राणों को खो बैठोगे ॥ ७७ ॥ "हम तो मारे डर के दूर २ रहते हैं और तुम कैसे इनके पास जाने का साहस करते हो। ७८॥ (यह मत समझो कि हम संन्यासी हैं) अरे ! जिन्होंने न जाने कितनी ब्राह्मण हत्याएं और गोहत्याएँ कर डाली हैं, वे दोनों संन्यासी को क्या समझें" ॥ ७९ ॥ इस प्रकार मना किये जाने पर भी वे दोनों जने 'कृष्ण कृष्ण' कहते हुए उनके पास चले। उन्हें (भय नहीं) बड़ा आनन्द था ॥ ८० ॥ वे सुन सकें, इतने समीप जा कर, वे पुकार २ कर प्रभु की आज्ञा सुनाने लगे ॥ ८१ ॥ 'कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो, कृष्ण का नाम लो। कृष्ण ही माता, कृष्ण ही पिता और कृष्ण ही धन प्राण हैं ॥ ८२ ॥ तुम सब के लिए ही श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है। ऐसे कृष्ण को भजो और सब अनाचार छोड़ो ॥ ८३ ॥ पुकार सुन कर दोनों ने सिर उठा कर देखा महा क्रोध से दोनों आँखें लाल हो रही हैं ॥ ८४ ॥ सिर उठा कर जब उन्होंने दो संन्यासी मूर्त्ति को देखा तो "पकड़ो पकड़ो" कहते हुए दोनों को पकड़ने के लिए चले ॥ ८५ ॥ नित्यानन्द और हरिदास तो झट-पट भागे, गिरते-पड़ते और "ठहरो ठहरो" कहते हुए पीछे २ वे दोनों डाकू चले ॥ ८६ ॥ वे गर्जन-तर्जन करते हुए पीछे २ दौड़े आ रहे हैं और दोनों प्रभु महा भय भीत होकर भागे जा रहे हैं ॥ ८७ ॥ लोग कहने लगे-"हमने तो तभी मना किया था-पर माने नहीं। आज ये दोनों संन्यासी बड़े संकट में पड़ गए" ॥ ८८ ॥ और जितने पाखण्डी लोग थे वे सब मन २ में हँसने लगे "अच्छा हुआ ! ढोंगियों के लिए नारायण ने उचित दण्ड दिया" ॥ ८९ ॥ सज्जन ब्राह्मण लोग "हे कृष्ण ! रक्षा करो ! इनकी रक्षा करो" कहने लगे

दुइ दस्यु धाय, दुइ ठाकुर पलाय । "धरिलुँ धरिलुँ" वलि लागि नाहि पाय ॥९१॥
नित्यानन्द बोले "भाल हइल वैष्णव । आजि जदि प्राण बाँचे, तवे पाइ सब ॥९२॥
हरिदास बोले "ठाकुर ! आर केने वोल । तोमार बुद्धिते अपमृत्ये प्राण गेल ॥९३॥
मद्यपेरे कैले जेन कृष्ण-उपदेश । उचित ताहार शास्ति-प्राण अवशेष" ॥९४॥
एत वलि धाय प्रभु हासिया हासिया । दुइ दस्यु पाछे धाय तर्जिया गर्जिया ॥९५॥
दोंहार शरीर स्थूल-ना पारे धाइते । तथापिह धाय दुइ मद्यप त्वरिते ॥९६॥
दुइ दस्यु बोले "भाइ ! कोथारे जाइवा । जगा-माधार ठाञि आजि केमते एडाइवा ॥९७॥
तोमरा ना जान' एथा जगा-माधा आछे । खानि रह उलटिया हेर-देख पाछे" ॥९८॥
त्रासे धाय दुइ प्रभु वचन शुनिया । "रक्ष कृष्ण ! रक्ष कृष्ण ! गोविन्द !" वलिया ॥९९॥
हरिदास बोले "आमि ना पारि चलिते । जानिञाओ आसि आमि चञ्चल सहिते ॥१००॥
राखिलेन कृष्ण काल यवनेर ठाँइ । चञ्चलेर वुद्धये आजि प्राण से हाराइ" ॥१०१॥
नित्यानन्द बोले "आमि नहिये चञ्चल । मने भावि देख तोमार प्रभु से विह्वल ॥१०२॥
ब्राह्मण हइया जेन राज-आज्ञा करे । तान वोल वलि सब प्रति घरे घरे ॥१०३॥
कोथाओ जे नाहि शुनि-सेइ आज्ञा ताँर । चोर ढङ्ग वइ लोक नाहि बोले आर ॥१०४॥
ना करिले आज्ञा तान सर्व नाश करे । करिलेओ आज्ञा तान एइ फल धरे ॥१०५॥
आपन प्रभुर दोष ना जानह तुमि । दुइ-जने वलिलाङ, दोष भागी आमि" ॥१०६॥

और उस स्थान को छोड़ २ कर सब भाग चले ॥९०॥ इधर ये दोनों डाकू पीछे २ दौड रहे हैं, उधर वे दोनों ठाकुर भागे जा रहे हैं । "पकड़ा अब पकड़ा" कहते हैं, पर पकड़ नहीं पाते हैं ॥ ९१ ॥ नित्यानन्द बोले—"अच्छे वैष्णव हुए ! आज अगर प्राण बच गये तो जानो कि सब कुछ पा लिया" ॥ ९२ ॥ हरिदास बोले—"बस ठाकुर ! रहने दो ! और बातें मत बनाओ । तुम्हारी बुद्धि के कारण अकाल मृत्यु में प्राण गए समझो ॥ ९३ ॥ "हमने शराबियों को जो कृष्ण भजन का उपदेश किया उसका दण्ड ठीक ही मिल रहा है-अब प्राण ही कुछ शेष है" ॥ ९४ ॥ परस्पर में ऐसा कहते हुए दोनों प्रभु हँसते २ भागे जा रहे हैं, और वे दोनों डाकू सरीखे गरजते तरजते हुए पीछे २ दौड़े जा रहे हैं ॥ ९५ ॥ दोनों शराबियों का शरीर स्थूल है, दौड़ नहीं सकते, फिर भी तेजी से दौनों दौड़े जा रहे हैं ॥ ९६ ॥ दोनों दस्यु बोले—"अरे भाइयो ! कहाँ जाओगे भाग के । जगाइ-मधाइ के हाथ से आज कैसे छूट पाओगे ॥ ९७ ॥ "तुम नहीं जानते थे क्या, कि यहाँ जगाई—मधाई हैं अरे नेक ठहर कर पीछे मुड़ कर तो देखो" ॥ ९८ ॥ उनके वचनों को सुन कर दोनों प्रभु डर के "हे कृष्ण ! रक्षा करो ! हे कृष्ण रक्षा करो ! हे गोविन्द !" कहते हुए भागे चले जाते हैं ॥ ९९ ॥ हरिदास जी बोले—"मैं तो अब नहीं चल सकता । मैं जान बूझ कर भो (ऐसे) चंचल के साथ आया । १०० ॥ यवनों के हाथ से तो श्री कृष्ण ने मृत्यु रक्षा की, परन्तु इस चंचल की बुद्धि के कारण आज प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे" ॥ १०१ ॥ तब नित्यानन्द जी बोले—"मैं चञ्चल नहीं हूँ। मन में नेक विचार करके तो देखो, कि चञ्चल तो तुम्हारे प्रभु ही हैं ॥ १०२ ॥ कि जो ब्राह्मण हो करके भो राजा की तरह आज्ञा देते हैं-उन्हीं की तो आज्ञा हम सब घर २ में सुनाते फिर रहे हैं । १०३ ॥ "और आज्ञा भी तो उनकी ऐसी (अनोखी) है कि जो कहीं नहीं सुनी गई । इसीलिए लोग हमको चोर, ढोंगी छोड़ कर और कुछ कहते ही नहीं ॥१०४॥ जो हम उनकी आज्ञा पर नहीं चलते तो वे हमारा सर्वनाश करते हैं और जो चलते हैं तो इधर ऐसा फल मिलता है ॥ १०५ ॥ "अपने प्रभु के दोष को तुम देखते नहीं हो ! और इन दो शराबियों से भजन करने के लिए

हेन मते दुइ जने आनन्द कन्दल। दुइ दस्यु धाय पाछे, देखिया विकल ॥१०७॥
धाइया आइला निज ठाकुरेर वाड़ी। मद्येर विक्षेपे दस्यु पाड़े रड़ा रड़ि ॥१०८॥
देखा ना पाइया दुइ मद्यप रहिल। शेषे हुड़ा हुड़ि दुइ जनेइ बाजिल ॥१०९॥
मद्येर विक्षेपे दुइ किछु ना जानिल। आछिल वा कोन् स्थाने, कोथा वार हिल ॥११०॥
कथो क्षणे दुइ प्रभु उलटिया चा'हे। कोथा गेल दुइ दस्यु देखिते ना पाये ॥१११॥
स्थिर हइ दुइ जने कोला कोलि करे। हासिया चलिला जथा प्रभु-विश्वम्भरे ॥११२॥
वसि आछे महाप्रभु कमल लोचन। सर्वाङ्ग सुन्दर रूप मदन मोहन ॥११३॥
चतुर्दिगे रहियाछे वैष्णव मण्डल। अन्योऽन्ये कृष्ण कथा कहेन सकल ॥११४॥
कहये आपन तत्त्व सभा' मध्ये रङ्गे। श्वेत-द्वीप पति जेन सनकादि-सङ्गे ॥११५॥
नित्यानन्द-हरिदास हेनइ समय। दिवस वृत्तान्त जत सम्मुखे कहय ॥११६॥
"अपरूप देखिलाङ आजि दुइ जन। परम मद्यप, पुन बोलाय 'ब्राह्मण ॥११७॥
भाल रे वलिल तारे 'बोल कृष्ण-नाम। खेदाडिया आइँल, भाग्ये रहिल पराण ॥११८॥
प्रभु बोले "के से दुइ, किवा तार नाम। ब्राह्मण हइया केने करे हेन काम" ॥११९॥
सम्मुखे आछिला गङ्गादास श्रीनिवास। कहये जतेक तार विकर्म-प्रकाश ॥१२०॥
"से-दुइर नाम प्रभु! जगाइ माधाइ। सु ब्राह्मण पुत्र दुइ, जन्म एइ ठाँइ ॥१२१॥
सङ्ग दोषे से-दोंहार हैल हेन मति। आजन्म मदिरा वइ आन नाहि गति ॥१२२॥
से-दुइर भये नदियार लोक डरे। हेन नाहि जार घरे चुरि नाहि करे ॥१२३॥

तो हम दोनों ने ही कहा परन्तु दोषी मैं ही अकेला ठहरा" ॥१०६॥ इस प्रकार दोनों प्रभु आनन्द का कलह मचाते हैं और दोनों डाकुओं को पीछे २ दौडते हुए देख कर व्याकुल भी होते हैं ॥ १०७ ॥ दोनों प्रभु दौड़ कर अपने ठाकुर (प्रभु) के भवन में घुस गए, और वे दोनों डाकू शराब के नशे में दौड़ते ही रहे ॥ १०८ ॥ परन्तु इनको देख न पाने पर वे रुक गए और अन्त में उन दोनों की आपस में ही ठन गई ॥ १०९ ॥ शराब के नशे में दोनों यह नहीं जानते कि हम कहाँ तो थे और अब कहाँ आ पड़े हैं ॥ ११० ॥ कुछ देर बाद दोनों प्रभु ने मुड़ कर देखा तो वे दो दस्यु दिखाई नहीं दिए-न जाने वे कहाँ चले गए थे ॥ १११ ॥ तब शान्त हो कर दोनों प्रभु आपस में मिले और फिर हँसते हुए प्रभु विश्वम्भर के पास चले ॥ ११२ ॥ मश्रीन्महाप्रभु बैठे हुए हैं। कमल सदृश नयन हैं, सर्वाङ्ग सुन्दर है, रूप मदन मोहन है ॥११३॥ चारों ओर वैष्णव-मंडली विराजमान है, सब परस्पर में श्री कृष्ण की चर्चा कर रहे हैं ॥ ११४ ॥ प्रभु स्वयं सभा के मध्य में अपना तत्त्व बड़े आनन्द के साथ वर्णन कर रहे हैं मानो तो श्वेत द्वीप पति श्री विष्णु सनकादिकों के सहित विराजे हों ॥ ११५ ॥ ऐसे समय श्री नित्यानन्द और हरिदास जी सन्मुख आकर दिन भर का वृत्तान्त सुनाने लगे ॥ ११६ ॥ वे बोले-"आज हमने दो अनोखे जीव देखे-पूरे शराबी, परन्तु कहने को ब्राह्मण ॥ ११७ ॥ हम तो उनके भलाई के लिए बोले-"कृष्ण नाम बोलो" परन्तु वे तो हमारे ऊपर टूट पड़े, भाग्य से ही प्राण बचे ॥ ११८ ॥ प्रभु बोले-"वे दो कौन हैं? क्या उनके नाम हैं? ब्राह्मण होकर वे ऐसा काम क्यों करते हैं ॥ ११९ ॥ प्रभु के सामने पं० गङ्गादास और श्री निवास जी बैठे हुए थे। वे उनके सब दुष्कर्मों को बखाने लगे ॥ १२० ॥ वे बोले-"प्रभो! उन दोनों का नाम है जगाइ-मधाइ दोनों सद ब्राह्मण के पुत्र हैं, जन्म यहीं का है ॥ १२१ ॥ "सङ्ग-दोष से उन दोनों की ऐसी बुद्धि हो गई है कि जन्म से ही मदिरा के बिना और कुछ जानते ही नहीं ॥ १२२ ॥ उन दोनों के भय से नदिया के सब लोग डरते हैं। ऐसा कोई मनुष्य नहीं

से-दुइर पातक कहिते नाहि ठाञि । आपने सकल देख, जानह गोसाञि" ॥१२४॥
प्रभु बोले "जानों जानों सेइ दुइ बेटा । खण्ड खण्ड करिमु आइले मोर एथा ॥१२५॥
नित्यानन्द बोले "खण्ड खण्ड कर' तुमि । से-दुइ थाकिते कति ना जाइव आमि ॥१२६॥
किसेर वा एत तुमि करह बड़ाइ । आगे सेइ-दुइर जे 'गोविन्द' बोलाइ ॥१२७॥
स्वभावेइ धार्मिक बोलये कृष्ण नाम । ए दुइविकर्म वइ नाहि जाने आन ॥१२८॥
ए दुइ उद्धार' जदि दिया भक्ति-दान । तवे जानि 'पातकि पावन' हेन नाम ॥१२९॥
आमारे तारिया जत तोमार महिमा । ततोधिक ए-दोंहार उद्धारेर सोमा" ॥१३०॥
हासि बोले विश्वम्भर "हइल उद्धार । जेइ क्षणे दरशन पाइल तोमार ॥१३१॥
विशेषे चिन्तह तुमि एतेक मङ्गल । अविरात कृष्ण तार करि व कुशल" ॥१३२॥
श्रीमुखेर वाक्य शुनि भागवत गण । जय जय-हरि-ध्वनि करिला तखन ॥१३३॥
"हइल उद्धार" सभे मानिला हृदये । अद्वैतेर स्थाने हरिदास कथा कहे ॥१३४॥
"चञ्चलेर सङ्गे प्रभु आमारे पाठाय । आमि थाकि कोथा, से वा कोन दिगे जाय ॥१३५॥
वर्षाते जाह्नवी जले कुम्भीर बेड़ाय । साँतार एड़िया तारे धरिवारे जाय ॥१३६॥
कूले थाकि डाक पाड़ि करि 'हाय हाय' । सकल-गङ्गार माझे भासिया बेड़ाय ॥१३७॥
जदि वा कूले ते उठे छाओयाल देखिया । मारि वार तरे शिशु जाय खेदाड़िया ॥१३८॥
तार पिता माता आइसे हाथे ठेङ्गा लैया । ना' सभा' पाठाइ आमि चरणे धरिया ॥१३९॥
गोपालार घृत दधि लइया पलाय । आमारे धरिया तारा मारि वारे चाय ॥१४०॥

कि जिसके घर चोरी न करते हों ॥ १२३ ॥ "उन दोनों के पापों का बखान आप के सामने क्या करें ? हे प्रभो ! आप सब देखते और जानते हैं" ॥ १२४ ॥ प्रभो बोले—"जानता हूँ, उन दोनों बेटाओं को जानता हूँ। यहाँ मेरे पास आयँगे तो मैं उनके टुकड़े २ कर डालूँगा ॥ १२५ ॥ नित्यानन्द जी बोले—"टुकड़े २ तो आप करेंगे ही ! परन्तु मैं तो उनके रहते कहीं भी नहीं जाऊँगा ॥ १२६ ॥ आप किस लिए इतनी बड़ी २ बातें करते है। पहले उन दोनों से तो 'गोविन्द" बुलवा लो ॥ १२७ ॥ "धार्मिक पुरुष तो स्वभाव से ही कृष्ण नाम लेते हैं। परन्तु ये दोनों तो दुष्कर्म के अतिरिक्त और कुछ जानते ही नहीं हैं ॥ १२८ ॥ इन दोनों को यदि भक्ति दान करके उद्धार करो तब हम जाने कि आपका नाम "पतित पावन" है ॥ १२९ ॥ "हम लोगों को तारने में जो कुछ भी आपकी महिमा है, उससे कहीं अधिक महिमा की सीमा इन दोनों के उद्धार में है" ॥ १३० ॥ तब विश्वम्भर प्रभु हँस कर बोले—"उद्धार तो हो चुका उसी समय जिस समय उनको तुम्हारा दर्शन मिला ॥ १३१ ॥ "ऊपर से आप उनके मंगल की जो विशेष चिन्ता कर रहे हैं, तो श्रीकृष्ण शीघ्र ही उनका कल्याण करेंगे" ॥ १३२ ॥ श्रीमुख के ऐसे वचन सुन कर सब भक्त लोगों ने उस समय "जय जय" और "हरि बोल" ध्वनि की ॥ १३३ ॥ सब ने मन में समझ लिया कि "उद्धार हो गया" तब अद्वैत जो से हरिदास जी बोले ॥ १३४ ॥ प्रभु चंचल के साथ मुझे भेजते हैं। मैं कहीं रहता हूँ और वे कहीं को चल देते हैं ॥ १३५ ॥ "वर्षा के दिन हैं, गङ्गा के जल में मगर घूमते फिरते हैं। और ये मुझे छोड़ कर जल में कूद पड़ते हैं और तैरते हुए मगर पकड़ने जाते हैं ॥ १३६ ॥ मैं किनारे पर खड़े पुकारता हूँ, हाय २ मचाता हूँ, पर ये सारी गङ्गा में मौज से तैरते फिरते हैं ॥ १३७ ॥ "और जब किनारे पर बाहर निकल भी आते हैं, तो बालकों को देख कर मारने के लिए उनके पीछे दौड़ते हैं ॥ १३८ ॥ उनके मा बाप हाथ में लाठी ले लेकर आते हैं तो मैं उनके पाँवों पड़ २ कर उनको लौटाता हूँ ॥ १३९ ॥ "कभी ग्वालाओं के दूध, दही, मक्खन

सेइ से करये कर्म, जे जुगत नहे। कुमारी देखिया बोले' मोरे विवाहिये ।।१४१।।
चढ़िया षाँडेर पिठे 'महेश' बोलाय। परेर गाभीर दुग्ध—ताहा दुहि' खाय ।।१४२।।
आमि शिखाइते गालि पाड़ये तोमारे। ताहोर अद्वैत मोर कि करिते पारे ।।१४३।।
चैतन्य-वलिस् जारे 'ठाकुर' करिया। से वा कि करिते पारे आमारे आसिया' ।।१४४।।
किछुइ ना कहि आमि ठाकुरेर स्थाने। दैवे भाग्ये आजि रक्षा पाइल पराणे ।।१४५।।
महा-मातोयाल दुइ पथे पड़ि आछे। कृष्ण-उपदेश गिया कहे तार काछे ।।१४६।।
महा-क्रोधे धाइया आइसे मारि वार। जीवन-रक्षार हेतु-प्रसाद तोमार ।।१४७।।
हासिया अद्वैत बोले "कोन चित्र नहे। मद्यपेर उचित-मद्यप-सङ्ग हये ।।१४८।।
तीन-मातोयाल-सङ्ग एकत्र उचित। नैष्ठिक हइया केने तुमि तार भित ।।१४९।।
नित्यानन्द करिब-सकल मातोयाल। उहान चरित्र आमि जानि भाले भाल ।।१५०।।
एइ देख तुमि दिन-दुइ-तिन व्याजे। सेइ दुइ मद्यप आनिव गोष्ठी-माझे" ।।१५१।।
वलिते अद्वैत हइलेन क्रोधा वेश। दिगम्बर हइ बोले अशेष विशेष ।।१५२।।
"शुषिव सकल चैतन्येर कृष्ण भक्ति। के मने नाचये गाय देखों ताँर शक्ति ।।१५३।।
देख कालि सेइ दुइ मद्यप आनिया। निमाञि निताइ दुइ नाचिव मिलिया ।।१५४।।
एकाकार करिवेक सेइ-दुइ-जने। जाति लइ तुमि आमि पलाइ जतने" ।।१५५।।
अद्वैतेर क्रोधा वेशे हासे' हरिदास। 'मद्यप उद्धार' चित्ते हइल प्रकाश ।।१५६।।
अद्वैत-वचन बुझे काहार शकति। बुझे हरिदास प्रभु, जार जेन मति ।।१५७।।

को लेकर भाग जाते हैं, तो वे मुझे पकड़ कर मारना चाहते हैं ।। १४० ।। यह वही सब काम करते हैं जो करना नहीं चाहिए। कोई कुमारी कन्या को देख कर कहते हैं—'मेरे साथ व्याह कर लो" ।।१४१।। "कभी साँड़ की पीठ पर चढ़ कर कहते हैं कि मुझे 'शङ्कर' कहो। कभी किसी की गाय को दुह कर दूध पी जाते हैं ।।१४२।। मैं इनको समझाता हूँ तो आप को गाली देते हैं कि "तेरा अद्वैत मेरा क्या कर सकता है" ।।१४३।। "स्वयं श्री चैतन्य भी जिसको तुम ठाकुर कहते हो, वह भी आकर मेरा क्या कर सकता है ।। १४४ ।। मैं यह सब बातें प्रभु से कभी कहता नहीं हूँ। और आज तो दैव की कृपा से बड़े भाग्य से प्राण बचे हैं ।। १४५ ।। "दो महा मतवाले रास्ते पर पड़े हुए थे। यह उनके पास जाकर कृष्ण नाम का उपदेश करने लगे। १४६।। वे बड़े क्रोध में भर कर मारने को दौड़े आये, आपकी कृपा से ही जीवन की रक्षा हुई ।। १४७ ।। तब अद्वैत हँस कर बोले—"कोई आश्चर्य नहीं है। मतवालों को मतवालों का सङ्ग मिलना उचित ही है ।।१४८।। तीन मतवालों का एकत्र सम्मिलन तो होना ही चाहिए तुम डरते क्यों हो ? तुम तो पूरे निष्ठावान हो ।। १४९ ।। नित्यानन्द तो सब को मतवाला बनायँगे। उनके चरित्र को तो अच्छी तरह जानता हूँ ।।१५०।। "और अब तुम यह देख लेना कि दो तीन दिन में ही ये उन दोनों शराबियों को अपनी गोष्ठी में ही ले आयँगे ।।१५१।। कहते २ अद्वैत प्रभु में क्रोध का आवेश हो आया और वे दिगम्बर होकर सब कुछ कहने लगे ।। १५२ ।। वे बोले—"मैं श्री चैतन्य की सम्पूर्ण कृष्ण-भक्ति को सोख लूँगा-देखूँगा उनकी शक्ति को वे कैसे नाचते-गाते हैं ।।१५३।। देखो, कल ही उन दोनों शराबियों को लाकर निमाइ-निताइ दोनों उनसे मिलकर नाचेंगे ।।१५४।। "वे दोनों जने सब की जाति-पाँति एक मेक कर डालेंगे। अतएव तुम हम अपनी २ जाति लेकर भाग चलें" ।। १५५ ।। अद्वैत के क्रोधावेश पर हरिदास जी हँसने लगे। मद्यपों का भावी उद्धार उनके चित्त में प्रकाशित हो आया ।। १५६ ।। श्री अद्वैत के वचनों को समझने की किसको शक्ति है, केवल हरिदास ठाकुर ही समझते

एवे पापि सब अद्वैतेर पक्ष हैया। गदाधर-निन्दा करे, मरये पुड़िया ॥१५८॥
जे पापिष्ठ एक वैष्णवेर पक्ष हय। अन्य-वैष्णवेरे निन्दे' से-इ जाय क्षय ॥१५९॥
सेइ दुइ मद्यप वेड़ाय स्थाने स्थाने। आइल जे घाटे प्रभु करे गङ्गा स्नाने ॥१६०॥
दैव योगे सेइ खाने कारलेक थाना। वेड़ाइया वुले सर्व ठाञि देइ हाना ॥१६१॥
सकल-लोकेर चित्त हइल सशङ्क। किवा बड़, किवा धनी, किवा महारङ्क ॥१६२॥
निशा हैले केहो नाहि जाय गङ्गा स्नाने। जदि जाय, तवे दश-विशेर गमने ॥१६३॥
प्रभुर वाड़ीर काछे थाके निशा भागे। सर्व-रात्रि प्रभुर कीर्त्तन शुनि जागे ॥१६४॥
मृदङ्ग मन्दिरा बाजे कीर्त्तनेर सङ्गे। मद्येर विक्षेपे तारा शुनि नाचे रङ्गे ॥१६५॥
दूरे थाकि सब ध्वनि शुनि वारे पाय। शुनि लेइ नाचिया अधिक मद्य खाय ॥१६६॥
जखन कीर्त्तन रहे, सेह दुइ रहे। शुनिञा कीर्त्तन पुन उठिया नाचये ॥१६७॥
मद्यपाने विह्वल, किछुइ नाहि जाने। आछिल वा कोथाय, आछये कोन स्थाने ॥१६८॥
प्रभुरे देखिञा बोले "निमाञि पण्डित। कराइला सम्पूर्ण मङ्गल चण्डी गीत। १६९॥
गायेन सब भाल मुञि देखिवारे चाङ। सकल आनिञा दिव, जथा जेइ पाङ ॥१७०॥
दुर्जन देखिया प्रभु दूरे दूरे जाय। आर आर पथ दिया सभेइ पलाय ॥१७१॥
एक दिन नित्यानन्द नगर भ्रमिया। निशाय आइसे दोंहे धरिलेक गिया ॥१७२॥
'केरे केरे' बलि डाके जगाइ माधाइ। नित्यानन्द बोलेन "प्रभुर वाड़ी जाइ" ॥१७३॥
मद्येर विक्षेपे बोले "किवा नाम तोर"। नित्यानन्द बोले "अवधूत नाम मोर ॥१७४॥

है, और तो अपनी २ मति अनुसार अनुमान लगाते हैं ॥ १५७ ॥ इस समय पापी लोग श्री अद्वैत का पक्ष लेकर श्री गदाधर की निन्दा करते हैं, जल कर मरते हैं ॥१५८॥ जो पापी एक वैष्णव का पक्ष लेकर दूसरे वैष्णव की निन्दा करता है, उसका सर्वनाश होता है ॥ १५९ ॥ वे दोनों शराबी जगह २ घूमते फिरते हैं, एक दिन वे उसी घाट पर आ पड़े जिस पर प्रभु नित्य गंगा स्नान करते हैं ॥ १६० ॥ दैवेच्छा से वहीं पर उन्होंने अपना डेरा डाल लिया। और इधर उधर सब जगह घूमने और चोट करने लगे ॥ १६१ ॥ इससे छोटे बड़े धनी-गरीब सब के चित्तों में शङ्का भय होने लगा ॥ १६२ ॥ रात होने पर कोई गंगा-स्नान को नहीं जाते हैं, जाते भी हैं तो दस बीस जने मिल कर ॥ १६३ ॥ वे दोनों रात में महाप्रभु के घर के पास ही रहते हैं और सारी रात प्रभु का कीर्त्तन सुन २ जागते रहते हैं ॥ १६४ ॥ कीर्त्तन के साथ मृदंग-मजीरा बजते हैं तो शराब के नशे में उसे सुन २ कर वे बड़े आनन्द में नाचते हैं ॥ १६५ ॥ वे दूर रह कर सब ध्वनि सुन पाते हैं। सुनते ही नाचते हैं और खूब शराब पीते हैं ॥ १६६ ॥ जिस समय कीर्त्तन बन्द हो जाता है, तो वे भी बन्द हो जाते है, और कीर्त्तन होने पर सुन कर फिर नाचने लग जाते हैं ॥ १६७ ॥ शराब पीकर मतवाले, चंचल बने हुए उन्हें कुछ पता नहीं रहता कि हम कहाँ थे और अब कहाँ हैं ॥ १६८ ॥ प्रभु को देख कर कहते हैं "निमाइ पण्डित ! मंगल चण्डी का गोत पूरा करा कर आये ? ॥ १६९ ॥ तुम्हारा गाना तो अच्छा होता है, हम भी देखना चाहते हैं। जहाँ से जो कुछ मिलेगा, वह सब तुमको लाकर देंगे (क्यों दिखाओगे न ?) ॥ १७० ॥ दुर्जन समझ कर प्रभु दूर २ रहते हैं। और लोग सब दूसरे रास्ते से भाग निकलते हैं ॥ १७१ ॥ एक दिन नित्यानन्द जी नगर में घूम कर रात के समय आ रहे थे कि दोनों ने जाकर उन्हें घेर लिया ॥ १७२ ॥ जगाइ-मधाइ चिल्लाते हैं—"कौन है रे कौन है ? नित्यानन्द जी कहते हैं-"प्रभु के घर जा रहा हूँ" ॥ १७३ ॥ शराब में चूर वे पूछते हैं "तेरा नाम क्या है" ? नित्यानन्द जो कहते है-"अवधूत है नाम

वाल्य भावे महा-मत्त नित्यानन्द-राय । मद्यपेर सङ्गे कथा कहेन लीलाय ॥१७५॥
'उद्धारिव दुइ जन' हेन आछे मने । अत एव निशा भागे आइला से-स्थाने ॥१७६॥
'अवधूत' नाम शुनि माधाइ कुपिया । मारिल प्रभुर शिरे मुटुकी तुलिया ॥१७७॥
फूटिल मुटुकी शिरे, रक्त पड़े धारे । नित्यानन्द महाप्रभु 'गोविन्द' स्मङरे ॥१७८॥
दया हैल जगाइर रक्त देखि माथे । आर वार मारिते-धरिल .दुइ-हाथे ॥१७९॥
"केने हेन करिले निर्दय तुमि दृढ़ । देशान्तरी मारिया कि हैवा तुमि बड़ ॥१८०॥
एड़ एड़-अवधूत ना मारिह आर । संन्यासी मारिया कोन् लाभ वा तोमार" ॥१८१॥
आथे व्यथे लोक गिया प्रभुरे कहिला । साङ्गो पाङ्गे ततक्षणे ठाकुर आइला ॥१८२॥
नित्यानन्द-अङ्गे सब रक्त पड़े धारे । हासे' नित्यानन्द सेइ-दुइर भितरे ॥१८३॥
रक्त देखि क्रोधे प्रभु बाह्य नाहि माने । "चक्र ! चक्र ! चक्र !" प्रभु डाके घने घने ॥१८४॥
आथे व्यथे चक्र आसि उपसन्न हैल । जगाइ माधाइ ताहा नयने देखिल ॥१८५॥
प्रमाद गणिला सब-भागवत गण । आथे व्यथे नित्यानन्द करे निवेदन ॥१८६॥
"माधाइ मारिते प्रभु ! राखिल जागाइ । दैवे से पडिल रक्त, दु:ख नाहि पाइ ॥१८७॥
मोरे भिक्षा देह' प्रभु ! ए दुइ शरीर । किछु दु:ख नाहि मोर, तुमि हओ स्थिर ॥१८८॥
"जगाइ राखिल" हेन वचन शुनिया । जगाइरे आलिङ्गन कैला सुखी हैया ॥१८९॥
जगाइरे बोले "कृष्ण कृपा करु तोरे । नित्यानन्द राखिया, किनिल तुञि मोरे ॥१९०॥

मेरा" ॥ १७४ ॥ बालभाव में महा मतवाले श्री नित्यानन्द राय शराबियों के साथ कौतुक वश बातें कर रहे हैं ॥ १७५ ॥ उनके मन में यही है कि "इन दोनों का उद्धार करूँगा" इसी लिए वे रात में वहाँ आए हैं ॥ १७६ ॥ "अवधूत" नाम सुनते ही मधाइ ने कुपित होकर एक मटकी का ठीकरा उठा कर दे मारा ॥१७७॥ वह ठीकरा सिर पर लग कर फूट गया और रक्त की धारा बह चली । श्री नित्यानन्द जी तो प्रभु श्री गोविन्द का स्मरण करने लगे ॥ १७८ ॥ सिर से रक्त-धार बहती देख जगाइ के मन में दया आ गई और मधाइ के दुबारा मारने के लिए उठे हुए दोनों हाथों को उसने पकड़ लिया ॥ १७९ ॥ (और वह बोला कि) "तूने क्यों ऐसा किया ? तुम बड़े निर्दयी हो । एक परदेशी को मार कर क्या तुम बड़े बन जाओगे ॥१८०॥ "छोड़ो २ बस करो ! अवधूत को और मत मारो । संन्यासी को मारने में तुम्हारा लाभ भी क्या ? ॥१८२ ॥ कुछ लोग हड़बडा कर भागे और प्रभु से जाकर सब बातें कहीं तो प्रभु सब परिवार सहित तुरंत ही वहाँ आ पहुँचे ॥ १८२ ॥ श्री नित्यानन्द के शरीर के ऊपर रक्त की धाराएँ पड़ रही हैं और वे दोनों के बीच में खड़े हँस रहे हैं ॥ १८३ ॥ रुधिर देखते ही प्रभु अत्यन्त क्रोधित होकर बाहर की सब बातें भूल गए और "चक्र ! चक्र ! चक्र" कह कर बार २ पुकारने लगे ॥ १८४ ॥ घबडाता हुआ चक्र आ कर उपस्थित हो गया—उसे आँखों से जगाइ-मधाइ ने देखा ॥ १८५ ॥ भक्त लोग तो सब घबड़ा उठे कि अब न जाने क्या काण्ड हो जायगा और हडबड़ा कर नित्यानन्द जी ने प्रभु से निवेदन किया कि ॥ १८६ ॥ "हे प्रभो ! मधाइ के मारने पर जगाइ ने मेरी रक्षा की है । यह रक्त तो अकस्मात् निकल आया पर इससे मैं कोई दु:ख नहीं पा रहा हूँ ॥ १८७ ॥ "हे प्रभो ! ये दो शरीर तो मुझे भीख दे दो ! मुझे कुछ दु:ख नहीं है । तुम तो शान्त हो जाओ" ॥ १८८ ॥ "जगाइ ने बचाया" यह बात सुनते ही प्रभु ने सुखी होकर जगाइ को अपनी छाती से लगा लिया ॥ १८९ ॥ और बोले "जगाइ ! तेरे ऊपर श्री कृष्ण कृपा करें ! नित्यानन्द को बचा कर तैंने मुझे खरीद लिया ॥ १९० ॥ तुम्हारे चित्त में जो भी इच्छा हो, वह तुम माँग लो । आज से तुझे प्रेम

जे अभीष्ट चित्ते देख, ताहा तुमि माग'। आजि हैते हउ तोर प्रेम भक्ति-लाभ" ।।१६१।।
जगाइरे वर शुनि वैष्णव मण्डल। जय जय-हरि-ध्वनि करिला सकल ।।१६२।।
"प्रेम भक्ति हउ" करि जखन वलिल। तखने जगाइ प्रेमे मूर्च्छित हइल ।।१६३।।
प्रभु बोले "जगाइ ! उठिया देख मोरे। सत्य आमि प्रेम-भक्ति-दान दिल तारे" ।।१६४।।
चतुर्भुज—शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधर। जगाइ देखिल सेइ प्रभु विश्वम्भर ।।१६५।।
देखिया मूर्च्छित हैया पड़िल जगाइ। वक्षे श्रीचरण दिला चैतन्य गोसाञ्ि ।।१६६।।
पाइया चरण-धन लक्ष्मीर जीवन। धरिल जगाइ जेन अमूल्य-रतन ।।१६७।।
चरणे धरिया कान्दे सुकृति जगाइ। ए मत अपूर्व करे गौराङ्ग गोसाञ्ि ।।१६८।।
एक-जीव, दुइ देह, जगाइ माधाइ। एक-पुण्य, एक-पाप, वैसे एक-ठाँइ ।।१६९।।
जगाइरे प्रभु जवे अनुग्रह कैल। माधाइर चित्त ततक्षणे भाल हैल ।।२००।।
आथे व्यथे नित्यानन्द-वसन एड़िया। पड़िल चरण धरि दण्डवत् हैया ।।२०१।।
"दुइ जने एक-ठाञि कैल प्रभु ! पाप। अनुग्रह केने प्रभु ! हय दुइ-भाग ।।२०२।।
मोरे अनुग्रह कर,' लङ तोर नाम। आमारे उद्धार करिवारे नारे आन" ।।२०३।।
प्रभु बोले "तोर त्राण नाहि देखि मुञि। नित्यानन्द अङ्गे रक्त पाड़िलि से तुञि" ।।२०४।।
माधाइ बोलये "इहा वलिते ना पार। आपनार धर्म्म प्रभु ! आपनि केने छाड़ ।।२०५।।
वाणे विन्धिलेक तोमा' जे असुर गणे। निज-पद ता' सभारे तवे दिले केने ।।२०६।।
प्रभु बोले "ताहा हैते तोर अपराध। नित्यानन्द-अङ्गे तुञि कैलि रक्त पात ।।२०७।।
मो' हइते मोर नित्यानन्द-देह वड़। तोर स्थाने एइ सत्य कहिलाङ दढ़ ।।२०८।।

भक्ति लाभ हो" ।।१६१।। जगाइ के लिए ऐसा वरदान सुनकर वैष्णव-मण्डली सब "जय जय" "हरि बोल" ध्वनि करने लगी ।। १६२ ।। प्रभु ने जैसे ही "प्रेम भक्ति मिले" कहा वैसे ही जगाइ प्रेम में मूर्च्छित हो पड़ा ।। १६३ ।। प्रभु बोले—"जगाइ ! उठ कर मुझे देखो। सचमुच ही मैंने तुझे प्रेम भक्ति दे दी है" ।। १६४ ।। जगाइ ने आँखें खोलीं तो उन्हीं प्रभु विश्वम्भर को शङ्ख, चक्र-गदा-पद्म-धारी चतुर्भुज रूप में देख पाया ।। १६५ ।। देखते ही जगाइ फिर मूर्च्छित हो पड़ा तब उसकी छाती पर श्री चैतन्य देव ने अपना चरण रख दिया ।। १६६ ।। श्री लक्ष्मी के जीवन धन स्वरूप श्री चरण को पाकर जगाइ ने उसे एक अमूल्य रत्न की भाँति अपने हृदय पर धारण कर लिया ।। १६७ ।। पुण्यशाली जगाइ श्री चरण को धारण कर रो रहा है- ऐसा अपूर्व कौतुक श्री गौरांग प्रभु करते हैं ।। १६८ ।। जगाइ-मधाइ एक आत्मा दो शरीर हैं। उनका एक-सा पुण्य और एक-सा पाप है, और वे एक ही ठौर रहते हैं ।। १६९ ।। जब जगाइ के ऊपर प्रभु ने कृपा की तो मधाइ का चित्त भी तत्काल स्वस्थ हो गया ।। २०० ।। वह घबड़ा कर नित्यानन्द जी के वस्त्र को छोड़ प्रभु के चरणों पर दण्डवत् गिर पड़ा ।। २०१ ।। और बोला—"प्रभो ! हम दोनों ने मिल कर एक साथ सब पाप किये, फिर आप की कृपा के दो भाग क्यों हुए प्रभो ? ।। २०२ ।। "मेरे ऊपर कृपा करो ! मैं आपका नाम लूँगा। और कोई तो मेरा उद्धार नहीं कर सकेगा ।। २०३ ।। प्रभु बोले—"तेरा उद्धार मुझे दिखाई नहीं देता कारण कि तूने नित्यानन्द के श्रीअङ्ग का रक्त बहाया है" ।। २०४ ।। मधाइ बोला—"यह आप नहीं कह सकते हैं ! प्रभो ! आप अपने धर्म को क्यों छोड़ते हो ?" ।। २०५ ।। "जिन असुरों ने आप को बाणों से बींध दिया था, उन सब को आपने अपनी पदवी (अथवा श्री चरण) क्यों दी ?" ।। २०६ ।। प्रभु बोले—"उनसे तेरा अपराध विशेष है, कारण कि तूने नित्यानन्द के अङ्ग से रक्त बहाया है ।। २०७ ।। मेरी देह से

"सत्य जदि कहिला ठाकुर ! मोर स्थाने । बोलह निष्कृति-मुञि तरिमु के मने ॥२०६॥
सर्व-रोग नाश'–वैद्य चूड़ामणि तुमि । तुमि रोग चिकिच्छिले सुस्थ हइ आमि ॥२१०॥
ना कर' कपट प्रभु ! संसारेर नाथ । विदित हइला आर लुकाइवा का'त" ॥२११॥
प्रभु बोले "अपराध कैले तुमि बड़ । नित्यानन्द चरण धरिया तुमि पड़" ॥२१२॥
पाइया प्रभुर आज्ञा माधाइ तखन । धरिल अमूल्य धन निताइ चरण ॥२१३॥
जे चरण धरिले ना जाइ कभू नाश । रेवती जानेन जेइ चरण-प्रकाश ॥२१४॥
विश्वम्भर बोले "शुन नित्यानन्द-राय । पडिले चरणे-कृपा करिते जुयाय ॥२१५॥
तोमार अङ्गे ते जेन कैल रक्त पात । तुमि से क्षमिते पार, पड़िल तोमा' त" ॥२१६॥
नित्यानन्द बोले "प्रभु ! कि वलिव मुञि । वृक्ष द्वारे कृपा कर' सेह शक्ति तुञि ॥२१७॥
कोन जन्मे थाके यदि आमार सुकृत । सव दिलुँ माधाइरे शुनह निश्चित ॥२१८॥
मोर जत अपराध-किछु दाय नाइ । माया छाड़, कृपा कर,' तोमार माधाइ" ॥२१६॥
विश्वम्भर बोले "यदि क्षमिला सकल । माधाइर कोल देह,' हउक सफल" ॥२२०॥
प्रभुर आज्ञाय कैल दृढ़-आलिङ्गन । माधाइर हैल सर्व-वन्ध-विमोचन ॥२२१॥
माधाइर देहे नित्यानन्द प्रवेशिला । सर्व-शक्ति-समन्वित माधाई हइला ॥२२२॥
हेन मते दुइ जने पाइला मोचने । दुइ जने स्तुति करे दुइर चरणे ॥२२३॥
प्रभु बोले "तोरा आर ना करिस् पाप" । जगाइ माधाइ बोले "आर नारे बाप" । २२४॥

नित्यानन्द की देह बड़ी है । यह मैं तेरे निकट सत्य कहता हूँ" ॥ २०८ ॥ मधाइ बोला–"हे प्रभो ! यदि यह आपने मुझ से सत्य कहा है तो मेरे उद्धार का उपाय बताइये, कहिये मैं कैसे करूँ ॥ २०६ ॥ आप तो सब प्रकार के रोगों के नाश करने वाले वैद्य शिरोमणि हैं । यदि आप ही मेरी चिकित्सा कर दें तो मैं स्वस्थ हो सकता हूँ ॥ २१० ॥ "हे प्रभो ! हे संसार के नाथ ! मुझसे छल कपट न करें । आप तो प्रकट हो चुके हैं, अब कहाँ छिपेंगे ?" ॥ २११ ॥ प्रभु बोले–"तुमने अपराध तो बड़ा भारी किया है, (अतएव) श्री नित्यानन्द के चरणों में पडो" ॥ २१२ ॥ प्रभु की आज्ञा होने पर मधाइ ने श्री नित्यानन्द के श्री चरण रूपी अमूल्य धन को पकड़ लिया ॥ २१३ ॥ जिन चरणों के पकड़ने से जीव कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है, जिन चरणों के स्वरूप को श्री रेवती जी जानती हैं ॥२१४॥ प्रभु विश्वम्भर बोले–"नित्यानन्द राय जी ! सुनो ! चरणों में पड़ने से अब यह कृपा करने योग्य है ॥ २१५ ॥ "तुम्हारे अङ्ग से जो इसने रक्त बहाया है, इसे तुम ही क्षमा कर सकते हो-इसीलिये यह तुम्हारे चरणों पर पड़ा हुआ है" ॥ २१६ ॥ नित्यानन्द जी बोले-"प्रभो ! मैं क्या कहूँ ? वृक्ष के द्वारा भी जो आप कृपा करते हो, वह भी आप को ही शक्ति है ॥ २१७ ॥ सुनिये यदि किसी जन्म के मेरे जो कुछ भी पुण्य हों, वह सब, मैं निश्चय पूर्वक कहता, मैंने मधाइ को दिया ॥ २१८ ॥ "मेरे प्रति इसका जो अपराध है, उसका इस पर अब कुछ भार नहीं है । (अतएव अब तो) आप माया को छोड़, कृपा करें-यह मधाइ तुम्हारा है" ॥ २१६ ॥ विश्वम्भर प्रभु बोले–"यदि सब क्षमा किया, तो इसे हृदय से लगावें-यह सफल होवे" ॥२२०॥ प्रभु की आज्ञा से नित्यानन्द जी ने दृढ़ आलिंगन किया-(जिससे) मधाइ सब बन्धनों से मुक्त हो गया ॥ २२१ ॥ (आलिंगन के द्वारा) मधाइ को देह में नित्यानन्द (की शक्ति) का प्रवेश हो गया और मधाइ सर्व शक्तिमान् बन गया ॥ २२२ ॥ इस प्रकार दोनों जने का उद्धार हुआ तब दोनों जने दोनों प्रभु के चरणों में स्तुति करने लगे ॥ २२३ ॥ प्रभु बोले–"तुम दोनों अब फिर पाप नहीं करना" । जगाइ–मधाइ बोले "नहीं बाप ! अब नहीं" ॥ २२४ ॥ प्रभु बोले–"सुनो ! तुम दोनों जने सुनो ।

प्रभु बोले "शुन शुन तुमि दुइ-जन। सत्य एइ तोरे आमि वलिल वचन ॥२२५॥
कोटि कोटि जन्मे जत आछे पाप तोर। आर यदि ना करिसू, सब दाय मोर ॥२२६॥
तो-सभार मुखे मुञि करिव आहार। तोर देहे हइवेक मोर अवतार" ॥२२७॥
प्रभुर शुनिञा वाक्य जगाइ माधाइ। आनन्दे मूर्च्छित हइ पड़िला तथाइ ॥२२८॥
मोह गेल, दुइ विप्र आनन्द सागरे। वुझि आज्ञा करिलेन प्रभु विश्वम्भरे ॥२२९॥
"दुइ जने तुलि लह आमार वाड़ी ते। कीर्त्तन करि व दुइ जनेर सहिते ॥२३०॥
ब्रह्मार दुर्लभ आजि ए-दोंहारे दिव। ए दुइरे जगतेर उत्तम करिव ॥२३१॥
ए-दुइ-परशे जे करिल गङ्गा स्नान। ए-दुइरे वलिवेक गङ्गार समान ॥२३२॥
नित्यानन्द-प्रतिज्ञा अन्यथा नाहि हय। नित्यानन्द-इच्छा मुञि जानिह निश्चय" ॥२३३॥
जगाइ माधाइ सब वैष्णवे धरिया। प्रभुर वाड़ीर अभ्यन्तरे गेला लैया ॥२३४॥
आप्त गण साम्भाइला प्रभुर सहिते। पड़िल कपाट, कारो शक्ति नाहि जाइते ॥२३५॥
वसिला आसिया महाप्रभु विश्वम्भर। दुइ-पाशे शोभे नित्यानन्द-गदाधर ॥२३६॥
सम्मुखे अद्वैत वैसे महा पात्र-राज। चारि दिगे वैसे सब वैष्णव-समाज ॥२३७॥
पुण्डरीक विद्यानिधि, प्रभु हरिदास। गरुड़ाइ, रामाइ, श्रीवास, गङ्गादास ॥२३८॥
वक्रेश्वर-पण्डित, चन्द्र शेखर-आचार्य। ए सब जानये चैतन्येर सर्व-कार्य ॥२३९॥
अनेक महान्त आर चैतन्य वेढ़िया। आनन्दे वसिला जगाइ माधाइ लइया ॥२४०॥
लोम हर्ष, महा अश्रु कम्प सर्व-गा'य। जगाइ माधाइ दुइ गड़ा गड़ि जाय ॥२४१॥
कार् शक्ति वुझिते चैतन्य-अभिमत। दुइ दस्यु करे-दुइ महा भागवत ॥२४२॥

मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूँ कि ॥ २२५ ॥ जो यदि तुम फिर पाप न करो तो तुम्हारे करोड़ों जन्मों के जितने पाप हैं उन सब का भार मेरे ऊपर रहा ॥ २२६ ॥ तुम्हारे मुख से मैं भोजन करूँगा और तुम्हारी देह में मैं प्रकट हूँगा" ॥ २२७ ॥ प्रभु के वचनों को सुन कर जगाइ–मधाइ आनन्द में मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़े ॥ २२८ ॥ उनका मोह दूर हुआ, वे आनन्द के सागर में डूब गए उनकी दशा को समझ कर प्रभु विश्वम्भर ने यह आज्ञा की कि ॥ २२९ ॥ "दोनों को उठा कर हमारे घर ले चलो। मैं इन दोनों के साथ कीर्त्तन करूँगा ॥ २३० ॥ और जो ब्रह्मा को दुर्लभ है वह (प्रेमभक्ति) मैं आज इन दोनों को दूँगा और संसार में इनको उत्तम बनाऊँगा ॥ २३१ ॥ "जिन्होंने इन दोनों से स्पर्श होने पर गङ्गा स्नान किया है, वे हो अब इन दोनों को गङ्गा के समान कहेंगे ॥२३२॥ नित्यानन्द जी की प्रतिज्ञा अन्यथा नहीं होगी। नित्यानन्द की इच्छा मैं अच्छी तरह से जानता हूँ" ॥ २३३ ॥ तब सब वैष्णव जगाइ मधाइ को पकड़ कर प्रभु के घर के भीतर ले गए ॥ २३४ ॥ जब प्रभु के साथ निज जन सब भीतर प्रवेश कर चुके तो किवाड़ बन्द कर दिये गए–फिर किसको शक्ति जो भीतर जा सके ॥ २३५ ॥ महा प्रभु विश्वम्भर आकर बैठ गए। दोनों बगल में नित्यानन्द और गदाधर शोभा दे रहे हैं ॥ २३६ ॥ सामने महापात्र राज श्री अद्वैत बैठे हुए हैं और चारों ओर सब वैष्णव समाज हैं ॥ २३७ ॥ (यथा) पुण्डरीक विद्यानिधि हरिदास ठाकुर, गरुडाइ, रामाइ, श्रीवास, गङ्गादास, वक्रेश्वर पण्डित, चन्द्रशेखर आचार्य–ये सब भक्त वृन्द श्री चैतन्य देव के सब कार्य को जानते हैं ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ और भी अनेक महानुभाव जगाइ मधाइ को ले श्री चैतन्य प्रभु को घेर कर आनन्द से बैठ गऐ ॥ २४० ॥ जगाइ मधाइ के शरीर में रोमाञ्च, पुलक अश्रु, कम्प इत्यादि विकार प्रकट हो रहे हैं और वे दोनों पृथ्वी पर लोट पोट हो रहे हैं ॥ २४१ ॥ श्री चैतन्य देव के मनोभाव को समझने की

तपस्वी संन्यासि करे परम पाषण्ड । एइ मत लीला तान अमृतेर खण्ड ॥२४३॥
इहाते विश्वास जार, से-इ कृष्ण पाय । इथे जार सन्देह, से अधः पाते जाय ॥२४४॥
जगाइ माधाइ दुइ जने स्तुति करे । सभार सहित शुने गौराङ्ग सुन्दरे ॥२४५॥
शुद्धा सरस्वती दुइ जनेर जिह्वाय । वसिला चैतन्य चन्द्र प्रभुर आज्ञाय ॥२४६॥
नित्यानन्द-चैतन्येर प्रकाश एकत्र । देखिलेन दुइ जने-जार जेन तत्त्व ॥२४७॥
सेइ मत स्तुति करे दुइ महाशय । जे स्तुति शुनिले कृष्ण भक्ति लभ्य हय ॥२४८॥
"जय जय महाप्रभु जय विश्वम्भर । जय जय नित्यानन्द-विश्वम्भर-धर ॥२४९॥
जय जय निज नाम विनोद आचार्य । जय नित्यानन्द चैतन्येर सर्व-कार्य ॥२५०॥
जय जय जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन । जय जय नित्यानन्द चैतन्य-शरण ॥२५१॥
जय जय शची सुत करुणार सिन्धु । जय जय नित्यानन्द चैतन्येर वन्धु ॥२५२॥
जय राज पण्डित दुहिता प्राणेश्वर । जय नित्यानन्द कृपा मय कलेवर ॥२५३॥
सेइ जय प्रभु ! तुमि जत कर' काज । जय नित्यानन्द चन्द्र वैष्णवाधिराज ॥२५४॥
जय जय शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधर । प्रभुर विग्रह जय अवधूत वर ॥२५५॥
जय जय अद्वैत जीवन गौरचन्द्र । जय जय सहस्र वदन नित्यानन्द ॥२५६॥
जय गदाधर-प्राण मुरारि-ईश्वर । जय हरिदास-वासुदेव-प्रिय कर ॥२५७॥
पापी उद्धारिले जत नाना अवतारे । 'परम अद्भुत' जाहा घोषये संसारे । २५८॥

सामर्थ्य किस में है (देखो तो सही) उन्होंने दोनों डाकू जैसों को महा भागवत बना दिया ॥ २४२ ॥ और तपस्वी और संन्यासियों को वड़ा पाखण्डी कर रक्खा है । इस प्रकार उनकी लीला अमृत खण्ड के समान है ॥ २४३ ॥ इसमें जिसका विश्वास है वही श्रीकृष्ण को पाता है, और इसमें जिसको सन्देह है उसका अधः-पतन होता है ॥२४४॥ जगाइ–मधाइ दोनों स्तुति करते हैं और सब के साथ गौरांग सुन्दर सुनते हैं ॥२४५॥ श्री चैतन्यचन्द्र प्रभु की आज्ञा से शुद्धा सरस्वती उन दोनों जने की जीभ पर आ बैठीं ॥ २४६ ॥ श्री नित्यानन्द और श्री चैतन्यचन्द्र का एकत्र प्रकाश और उनका पृथक २ तत्त्व दोनों जने ने देख पाया ॥ २४७ ॥ और तब दोनों महाशय उसी प्रकार उनको स्तुति करने लगे कि जिस स्तुति को सुनने से श्रीकृष्ण भक्ति प्राप्त होती है ॥ २४८ ॥ स्तुतिः–"महाप्रभु विश्वम्भर को जय हो, जय हो, जय हो । विश्वम्भर धारी नित्यानन्द की जय हो, जय हो ॥ २४९ ॥ अपने नाम में आनन्द लेने वाले तथा उस नाम के उपदेष्टा गुरु-स्वरूप गौर-चन्द्र ! आपकी जय हो, जय हो । श्री चैतन्य देव के समस्त कार्य के साधन स्वरूप श्री नित्यानन्द को जय हो जय हो ॥ २५० ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र के नन्दन की जय हो, जय हो ! श्री चैतन्य शरण श्री नित्यानन्द की जय हो, जय हो ॥ २५१ ॥ करुणा सिन्धु श्री शचीनन्दन की जय हो, जय हो । श्री चैतन्य-वन्धु श्री नित्या-नन्द की जय हो, जय हो ॥ २५२ ॥ राज पण्डित सनातन मिश्र को कन्या श्री विष्णु प्रिया के प्राणेश्वर की जय हो जय हो । कृपामय कलेवर श्री नित्यानन्द को जय हो जय हो ॥ २५३ ॥ हे प्रभो ! आप जितने कार्य करते हो उन सब की जय हो । वैष्णवाधिराज श्री नित्यानन्द को जय हो ॥ २५४ ॥ शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी की जय हो जय हो, प्रभु के विग्रह स्वरूप अवधूत श्रेष्ठ की जय हो ॥ २५५ ॥ अद्वैत-जीवन श्री गौर-चन्द्र की जय हो, जय हो । सहस्र वदन श्री नित्यानन्द को जय हो, जय हो ॥ २५६ ॥ श्री गदाधर के प्राण तथा श्री मुरारि गुप्त के ईश्वर की जय हो । श्री हरिदास और वासुदेव के प्रिय कारी (नित्यानन्द) की जय हो ॥ २५७ ॥ आपने नाना अवतारों में जितने पापियों का उद्धार किया है, जिन्हें "परम अद्भुत" कह कर

आमि-दुइ पातकीर देखिया उद्धार। अल्पत्व पाइल पूर्व-महिमा तोमार ॥२५९॥
अजामिल-उद्धारेर जतेक महत्त्व। आमार उद्धारे सेहो पाइल अल्पत्त्व ॥२६०॥
सत्य कहि, आमि किछु स्तुति नाहि करि। उचितेइ अजामिल मुक्ति-अधिकारी ॥२६१॥
कोटि ब्रह्म बधि' जदि तोर नाम लये। 'सद्य मोक्ष तार' वेदे एइ सत्य कहे ॥२६२॥
हेन नाम अजामिल कैल उच्चारण। तेञि चित्र नहे अजामिलेर मोचन ॥२६३॥
वेद सत्य पालिते तोमार अवतार। मिथ्या हय वेद तवे ना कैले उद्धार ॥२६४॥
आमि द्रोह कैलुँ प्रिय-शरीरे तोमार। तथापिह आमि-दुइ करिले उद्धार ॥२६५॥
एवे बुझि देख प्रभु! आपनार मने। कत कोटि अन्तर आमरा दुइ जने ॥२६६॥
'नारायण' नाम शुनि अजामिल-मुखे। चारि महाजन आइला सेइ जन देखे ॥२६७॥
आमि देखिलाङ तोमा' रक्त पाड़ि अङ्गे। साङ्गोपाङ्ग,अस्त्र, पारिषद-सब सङ्गे ॥२६८॥
गोप्य करि राखि छिला ए सब महिमा। एवे व्यक्त हैल प्रभु! महिमार सीमा ॥२६९॥
एवे से हइल वेद महा बलवन्त। एवे से वड़ाञि करि गाइव अनन्त ॥२७०॥
एवे से विदित हैल गोप्य-गुण ग्राम। 'निलक्ष्य-उद्धार' प्रभु! इहार से नाम ॥२७१॥
जदि हेन बोल कंस-आदि दैत्य गण। ताहाराओ द्रोह करि पाइल मोचन ॥२७२॥
कत लक्ष्य आछे तथि देख निज-मने। निरन्तर देखिलेक से नरेन्द्र गणे ॥२७३॥
तोमा' सने जूझिलेक क्षत्रियेर धर्मे। भये तोमा' निरन्तर चिन्तिलेक मर्मे ॥२७४॥

संसार घोषित करता है ॥ २५८ ॥ वह आप की पूर्व महिमा भी आज हम दोनों पापियों के उद्धार को देख कर अल्पता को प्राप्त हो गई है। २५९ ॥ अजामिल उद्धार की जो भी महिमा है हमारे उद्धार से वह भी अल्प हो गई है ॥२६०॥ हम यह सत्य कह रहे हैं स्तुति मात्र नहीं कर रहे हैं। (देखिए) अजामिल को मुक्ति का अधिकारी होना तो उचित ही है ॥ २६१ ॥ (कारण कि) कोटि ब्रह्म हत्या कारी भी यदि आपका नाम लेवे तो उसकी तत्काल मुक्ति हो जाती है–यह वेद सत्य कहते हैं ॥ २६२ ॥ ऐसा नाम अजामिल ने उच्चारण किया था, इसलिए अजामिल के मोक्ष में कोइ आश्चर्य नहीं ॥२६३॥ वेद की सत्य वाणी की रक्षा के निमित्त आप अवतार लेते हैं अतएव (नाम लेने पर) जो आप उद्धार न करें तो वेद–वाणी मिथ्या हो जाय ॥२६४॥ (परन्तु) हमने तो आपके प्रिय शरीर के प्रति द्रोह किया तथापि आप ने हम दोनों का उद्धार ही किया ॥ २६५ ॥ अब प्रभो! आप अपने मन में विचार कर देखिए कि हम दोनों में (हम में और अजामिल में) कितना करोड़ अन्तर है। २६६॥ अजामिल के मुख से 'नारायण' नाम सुन कर चार महापुरुष आए जिनको केवल उसी ने ही देखा। २६७ ॥ जब मैंने आपके शरीर से रक्त बहाया तो मैंने आप का अङ्ग, उपांग, अस्त्र एवं पार्षद आदि सब के साथ दर्शन किया ॥ २६८ ॥ हे प्रभो! आप अपनी यह सब महिमा छिपाए हुए थे-परन्तु अब आपकी महिमा की सीमा प्रकट हो गई है ॥ २६९ ॥ अतएव अब ही वेद भी महा बलवान बने और अब अनन्त देव भी अधिक प्रशंसा के सहित आप का गुण गान करेंगे ॥ ॥ २७० ॥ अब ही आप के गुप्त गुण गण प्रकट हो गये। हे प्रभो "अहैतुकि उद्धार" इसी का नाम है ॥ २७१ ॥ जो यदि आप कहें कि कंस आदि दैत्यगण भी तो द्रोह करके मुक्ति हुए। २७२ ॥ तो आप अपने मनमें विचार करके तो देखें कि वहाँ कितने निमित्त हैं। (प्रथम तो) उन (दुष्ट) राजाओं ने निरन्तर आप का दर्शन किया ।२७३॥ (दूसरा) उन्होंने क्षत्रिय का धर्म समझ कर आपसे युद्ध किया। (तीसरा) वे भय के कारण आपका ही सदा मन में चिन्तन किया करते थे। २७४ ॥ तथापि वे द्रोह के पाप से नहीं बच सके और वंश के सहित सब राजा

तथापि नारिल द्रोह पाप एड़ाइते । पड़िल नरेन्द्र सब वंशेर सहिते ॥२७५॥
तोमारे देखिते निज शरीर छाड़िल । तवे कोन् महाजन तारे परशिल ॥२७६॥
आमारे परशे' सबे भागवत गणे । छाया छुञि जेइ जन कैला गङ्गा स्नाने ॥२७७॥
सर्वं मते प्रभु ! तोर ए महिमा बड़ । काहारे भाण्डिवे–सभे जानिलेक दृढ़ ॥२७८॥
महा भक्त गजराज करिला स्तवन । एकान्त शरण देखि करिला मोचन ॥२७९॥
दैवे से उपमा नहे असुरा पूतना । अघ बक-आदि जत, केहो नहे सीमा ॥२८०॥
छाड़िया से देह तारा गेल दिव्य-गति । वेद विने ताहा देखे काहार शकति ॥२८१॥
जे करिला एइ दुइ पातकि-शरीरे । साक्षाते देखिल इहा सकल-संसारे ॥२८२॥
जतेक करिला तुमि पातकि-उद्धार । कारो कोनो रूपे लक्ष्य आछे सभाकार ॥२८३॥
निर्लक्ष्ये तारिला ब्रह्म दैत्य दुइ जन । तोमार कारुण्य सबे इहार कारण" ॥२८४॥
वलिया वलिया कान्दे जगाइ माधाइ । ए मत अपूर्व करे चैतन्य गोसाञि ॥२८५॥
जतेक वैष्णव गण अपूर्व देखिया । जोड़ हाथे स्तुति करे सभे दाण्डाइया ॥२८६॥
"जे स्तुति करिल प्रभु ! ए दुइ मद्यपे । तोर कृपा बिने इहा जाने कार बापे ॥२८७॥
तोमार अचिन्त्य शक्ति के वुझिते पारे । जखन जे रूपे कृपा करह जाहारे" ॥२८८॥
प्रभु बोले "ए-दुइ मद्यप नहे आर । आजि हैते एइ दुइ सेवक आमार ॥२८९॥
सभे मिलि अनुग्रह कर ए-दुइरे । जन्मे जन्मे आर जेन आमा ना पासरे ॥२९०॥

लोग नाश को प्राप्त हुये ॥ २७५ ॥ उन्होंने आपके देखने में अपना शरीर छोड़ा, पर उस समय, कहिये, किन महापुरुषों ने उनको स्पर्श किया था ॥ २७६ ॥ और इधर हम ऐसे कि हमारी छाया को छूकर के भी लोग गङ्गा स्नान किया करते–ऐसे हमको समस्त भागवत–मंडली ने स्पर्श किया ॥ २७७ ॥ (अतएव) हे प्रभो ! सब प्रकार से आपकी यह महिमा बड़ी है–अब आप छल करके अपने को छिपा नहीं सकते, सब आपको निश्चय पूर्वक जान गये हैं ॥ २७८ ॥ और गजराज तो महा भक्त था, उसने तो आपकी स्तुति की थी, आपकी अनन्य शरण ली थी–तब आपने उसका उद्धार किया था ॥ २७९ ॥ और राक्षसो पूतना, अघासुर, बकासुर आदि किसी के भी भाग्य में यह उपमा (तुलना) नहीं है, ये कोई भी उद्धार (अथवा कृपा) की सीमा नहीं हैं ॥ २८० ॥ उन्होंने तो देह छोड़ करके ही दिव्य गति पाई, और उस गति को भी कोई देख सके, ऐसो शक्ति वेद के अतिरिक्त और किसकी है ॥ २८१ ॥ और इधर आपने इन दो पापी शरीरों के साथ जो कुछ किया (अर्थात् कृपा और दिव्य गति दान) उसे सब संसार ने प्रत्यक्ष देख पाया ॥ २८२ ॥ आपने जितने भी पापियों का उद्धार किया, उन सब का कहीं न कहीं, कोई न कोई हेतु है ही ॥ २८३ ॥ पर हम दो ब्रह्म-दैत्यों का तो आपने बिना कोई हेतु के उद्धार किया है इसका कारण केवल आपकी करुणा ही है ॥ २८४ ॥ इस प्रकार जगाइ-मधाइ कहते जाते और रोते जाते हैं ! श्री चैतन्य प्रभु ऐसा अपूर्व काण्ड करते हैं ॥ २८५ ॥ सब वैष्णव लोग इस अपूर्व घटना को देख कर खड़े हो, हाथ जोड़ कर स्तुति करते हैं ॥ २८६ ॥ "हे प्रभो ! इन दोनों मद्यपों ने आप की जो स्तुति की, वह आप की कृपा बिना किसी का बाप भी क्या जान सकता, कर सकता है ॥ २८७ ॥ आप जिस शक्ति के द्वारा जिस समय, जिसके प्रति, जिस रूप में जो कृपा करते हैं, वह शक्ति अचिन्त्य है, उसे कौन समझ सकता है ? ॥ २८८ ॥ प्रभु बोले–"अब ये दो मद्यप नहीं रहे । आज से ये दोनों मेरे सेवक हैं ॥ २८९ ॥ तुम सब मिल कर इन दोनों पर कृपा करो कि जिससे ये जन्म जन्मान्तर तक मुझे न भूलें ॥ २९० ॥ "इनका जिस २ के प्रति जो जो अपराध है, वह सब क्षमा करके इन दोनों पर

जे जे रूपे जार ठाञि आछे: अपराध। क्षमिया ए दुइ प्रति करह प्रसाद" ॥२६१॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य जगाइ-माधाइ। सभार चरण धरि पड़िला तथाइ ॥२६२॥
सर्व-महा भागवत कैला आशीर्वाद। जगाइ-माधाइ हैला निर-अपराध ॥२६३॥
प्रभु बोले "उठ उठ जगाइ-माधाइ। हइला आमार दास, आर चिन्ता नाइ ॥२६४॥
तुमि-दुइ जत किछु करिला स्तवन। परम सुसत्य, किछु ना हय खण्डन ॥२६५॥
स शरीरे कभु कारो हेन नाहि हय। नित्यानन्द-प्रसादे से जानिह निश्चय ॥२६६॥
तो' सभार जत पाप मुञि निल सब। साक्षाते देखह भाइ! एइ अनुभव" ॥२६७॥
दुइ जनार शरीरे पातक नाहि आर। इहा बुझाइते हैला कालिया आकार ॥२६८॥
प्रभु बोले "तोमरा आमारे देख केन"। अद्वैत बोलये "श्रीगोकुल चन्द्र जेन" ॥२६९॥
अद्वैते-प्रतिभा शुनि हासे' विश्वम्भर। 'हरि' बलि ध्वनि करे जत अनुचर ॥३००॥
प्रभु बोले "काला देख दुइर पातके। कीर्त्तन करह सब जाउक निन्दके ॥३०१॥

निन्दका: शूकराश्चैव सफलं निर्मितं हरे:।
शुध्यन्ति शूकरा ग्रामं साधून शुध्यन्ति निन्दका: ॥३०२॥

शुनिञा प्रभुर वाक्य: सभार उल्लास। महानन्दे हइल कीर्त्तन-परकाश ॥३०३॥
नाचे प्रभु विश्वम्भर नित्यानन्द-सङ्गे। वेढ़िया वैष्णव-सब यश गाय रङ्गे ॥३०४॥
नाचये अद्वैत-जार लागि अवतार। जाहार कारणे हैल जगत्-उद्धार ॥३०५॥
कीर्त्तन करये सभे दिया करताली। सभेइ करेन नृत्य हइ :कुतूहली ॥३०६॥

कृपा करो ॥ २६१ ॥ प्रभु के वचन सुनकर जगाइ-मधाइ वहाँ पर सब के चरणों को पकड़ कर पड़ गये ॥ २६२ ॥ तब सब महा भागवतों ने उनको आशीर्वाद दिया और जगाइ-मधाइ निरपराध हो गए ॥२६३॥ प्रभु बोले—"जगाइ! उठो! मधाइ! उठो! तुम मेरे दास हो गये अब कोई चिन्ता की बात नहीं ॥ २६४ ॥ "तुम दोनों ने जो कुछ स्तुति की, वह सब परम सुन्दर सत्य है, उसका कुछ भी खण्डन योग्य नहीं है ॥२६५॥ शरीर को नष्ट किये बिना इसी शरीर में ऐसा कभी नहीं होता है। तुम्हारे साथ जो ऐसा हुआ, यह श्री नित्यानन्द की कृपा का फल है यह निश्चय जान लो ॥ २६६ ॥ "तुम्हारे जितने भी पाप हैं, वे सब मैंने ले लिए। भाइयो! इसे प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देख लो" ॥ २६७ ॥ (इतना कह कर) यह बतला देने के लिए कि उन दोनों के शरीर में अब पाप और नहीं रहा प्रभु का गौर वर्ण श्याम हो गया ॥ २६८ ॥ प्रभु बोले—"तुम लोग मुझे कैसा देखते हो ?" श्री अद्वैत बोले—"श्री गोकुल चन्द्र जैसा" ॥२६९॥ श्री अद्वैत का उत्तर सुन कर प्रभु विश्वम्भर हसे और सब भक्त लोगों ने हरि बोल ध्वनि किया ॥ ३०० ॥ प्रभु बोले "इन दोनों के पाप के कारण तुम मुझको काला देखते हो। (अतएव) सब मिलकर कीर्त्तन करो जिससे ये पाप सब निन्दक में चले जायँ ॥ ३०१ ॥ श्लोकार्थ:—भगवान् ने निन्दक और शूकरों को सफल बनाया है। (कारण कि) शूकर तो ग्राम की शुद्धि करते हैं और निन्दक लोग साधुओं की शुद्धि करते हैं ॥ ३०२ ॥ प्रभु के वचन सुनकर सब को बड़ा उल्लास हुआ और महा आनन्द के साथ कीर्त्तन प्रारम्भ हुआ ॥ ३०३ ॥ प्रभु विश्वम्भर श्री नित्यानन्द के साथ नाचते हैं और भक्त लोग दोनों को घेर कर आनन्द में यश गाते हैं ॥ ३०४ ॥ श्री अद्वैत भी नाचते हैं, जिनके लिए यह अवतार हुआ है और जिनके कारण जगत् का उद्धार हुआ है ॥ ३०५ ॥ सब लोग ताली दे दे कर कीर्त्तन कर रहे हैं और मस्त होकर नाच रहे हैं ॥ ३०६ ॥ सब महा आनन्द में विभोर हैं, प्रभु के प्रति किसी का भय नहीं है। नृत्य में प्रभु के साथ लाखों बार धक्कम-धक्का हो

प्रभु प्रति महानन्दे कारो नाहि भय। प्रभु-सङ्गे कत लक्ष ठेला ठेलि हय ॥३०७॥
वधू-सङ्गे देखे आइ घरेर भितरे। वसिया भासये आइ आनन्द सागरे ॥३०८॥
सभेइ परमानन्द देखिया प्रकाश। काहारो ना घुचे कृष्ण वेशेर उल्लास ।३०९॥
जार अङ्ग परशिते रमा पाय भय। से प्रभुर अङ्ग-सङ्गे मद्यप नाचय ॥३१०॥
मद्यपेरे उद्धारिला चैतन्य गोसाञि। वैष्णव निन्दके कुम्भीपाके दिला ठाञि ॥३११॥
निन्दाय ना बाढ़े धर्म, सवे पाप-लाभ। एतेके ना करे निन्दा कोनो महा भाग ॥३१२॥
दुइ दस्यु दुइ महा भागवत करि। गण-सहे नाचे प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि ॥३१३॥
नृत्या वेशे वसिला ठाकुर विश्वम्भर। वसिला चौदिगे वेढ़ि वैष्णव मण्डल ॥३१४॥
सब अङ्गे धूला चारि-अङ्गुलि-प्रमाण। तथापि सभार-अङ्ग निर्मल-गेयान ॥३१५॥
पूर्ववत् हैला प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। हासिया सभारे बोले प्रभु विश्वम्भर ॥३१६॥
"ए दुइरे पापी-हेन ना करिह मने। ए-दुइर पाप मुञि लइलुँ आपने। ३१७॥
सर्व देहे मुञि करों बोलों चालों खाङ। तवे देह-पात जवे मुञि चलि जाङ ॥३१८॥
जेइ देहे अल्प-दुःखे जीव डाक छाड़े। मुञि विने सेइ देह पुड़िले ना नड़े ॥३१९।
तवे जे जीवेर दुःख—करे अहङ्कार। 'मुञि करों बोलों!' बलि पाय महा मार ॥३२०॥
एतेके जतेक कैल एइ-दुइ-जने। करिलाङ आमि, घुचाइ लाङ आपने ॥३२१॥
इहा जानि ए-दुइरे सकल वैष्णव। देखिवा अभेद दृष्ट्ये-जेन तुमि सब ॥३२२॥
शुन एइ आज्ञा मोर-जे हओ आमार। ए-दुइरे श्रद्धा करि जे दिव आहार ॥३२३॥

जाती है ॥ ३०७ ॥ घर भीतर से शची माता बधू के साथ, यह आनन्द देख रही हैं और बैठी २ ही आनन्द सागर में बही जा रही हैं ॥ ३०८ । उस समय वहाँ परमानन्द छा गया, उसमें सब ही निमग्न हो गये। (अतएव) किसी का भी कृष्ण—कीर्त्तन के आवेश का उल्लास दूर नहीं हो रहा है । ३०९ ॥ जिनके अंग को स्पर्श करने में लक्ष्मी जी भी भय खाती हैं, उन प्रभु के अंग—संग में मद्यप नाच रहे हैं ॥ ३१० ॥ श्री चैतन्य प्रभु ने मद्यपों का तो उद्धार कर दिया परन्तु वैष्णव-निन्दकों को कुम्भीपाक नरक में स्थान दिया ॥ ३११ ॥ निन्दा से धर्म नहीं बढ़ता है, केवल पाप ही पल्ले पड़ता है । इसलिये कोई भी महापुरुष निन्दा नहीं करते हैं ॥३१२॥ दोनों डाकुओं को महा भागवत बना करके प्रभु गौरांग श्रीहरि परिकर सहित नाच रहे हैं ।३१३॥ नृत्य के आवेश में प्रभु विश्वम्भर बैठ पड़े और चारों ओर से घेर कर वैष्णव-मण्डली बैठ गई ॥ ३१४ ॥ सब के शरीरों पर चार २ अंगुल धूल चढ़ी हुई है, फिर भी सब अपने २ शरीर को निर्मल समझ रहे हैं ॥३१५॥ प्रभु गौरांग सुन्दर पूर्ववत् हुये और (प्रभु विश्वम्भर) हँसते हुए सब से बोले ॥ ३१६ ॥ "इन दोनों को "ये पापी हैं" ऐसा कोई न सोचें । इन दोनों का पाप स्वयं मैंने ले लिया है ॥३१७॥ सब की देह में मैं ही करता हूँ, बोलता हूँ, चलता हूँ, खाता हूँ, । (इसीलिये) जब मैं चला जाता हूँ तो देह गिर पड़ता है ॥ ३१८ ॥ "जिस देह में जरा सा दुःख होते ही जीव चिल्लाने लगता है, वही देह, मेरे बिना जलाई जाने पर भी हिलती तक नहीं है ॥ ३१९ ॥ तो फिर जीव के दुःख में हेतु है—अहंकार । "मैं करता हूँ, मैं बोलता हूँ"-ऐसा अहंकार करके बोलने के कारण ही उस पर मार पड़ा करती है । ३२०॥ "इसलिए इन दोनों ने जो कुछ किया वह मैंने ही किया और मैंने ही उसे मिटाया भी" ॥ ३२१ ॥ ऐसा समझ कर इन दोनों को तुम सब वैष्णव लोग अभेद दृष्टि से देखना—अपनी ही भाँति समझना ॥ ३२२ ॥ "(फिर भी कहता हूँ कि) जो मेरे हों, वे मेरी इस आज्ञा को सुनें । इन दोनों को जो श्रद्धा पूर्वक भोजन देंगे ॥३२३॥ तो अनन्त ब्रह्माण्डों में जितना

अनन्त ब्रह्माण्ड-माझे जत मधु वैसे। जे हय कृष्णेर मुखे दिले प्रेम रसे ।।३२४।।
ए-दुइरे वट-मात्रो दिव जेइ जन। तार से कृष्णेर मुखे मधु-समर्पण ।।३२५।।
ए-दुइ-जनेरे जे करिव परिहास। ए-दुइर अपराधे तार सर्व नाश" ।।३२६।।
शुनिञा वैष्णव गण कान्दे महा प्रेमे। जगाइ-माधाइ-प्रति करे परणामे ।।३२७।।
प्रभु बोले "शुन सब भागवत गण। चल सभे जाइ भागीरथीर चरण ।।३२८।।
सर्व-गण-सहित ठाकुर विश्वम्भर। पड़िला जाह्नवी जले बन माला घर ।।३२९।।
कीर्त्तन आनन्दे जत भागवत गण। शिशु-प्राय चञ्चल-चरित्र सर्व क्षण ।।३३०।।
महा भव्य वृद्ध सब, सेहो शिशु मति। एइ मत हय विष्णु भक्तिर शकति ।।३३१।।
गङ्गा स्नान-महोत्सव कीर्त्तनेर शेषे। प्रभु-भृत्य-वुद्धि गेल आनन्द आवेशे ।।३३२।।
जल देइ प्रभु-सर्व-वैष्णवेर गाय। केहो नाहि पारे, सभे हासिया पलाय ।।३३३।।
जल युद्ध करे प्रभु जार जार सङ्गे। कथो क्षण युद्ध करि सभे देइ भङ्गे ।।३३४।।
क्षणे केलि अद्वैत-गौराङ्ग-नित्यानन्दे। क्षणे केलि हरिदास-श्रीवास-मुकुन्दे ।।३३५।।
श्रीगर्भ, श्रीसदा शिव, मुरारि, श्रीमान्, । पुरुषोत्तम सञ्जय, वुद्धि मन्त खान ।।३३६।।
विद्यानिधि, गङ्गादास, जगदीश नाम। गोपी नाथ, गदाधर, गरुड़, श्रीराम ।।३३७।।
गोविन्द, श्रीधर, कृष्णानन्द, काशीश्वर। जगदानन्द, गोविन्दानन्द, श्रीशुक्लाम्वर ।।३३८।।
अनन्त चैतन्य भृत्य, कत निब नाम। वेद व्यास हैते व्यक्त हइवे पुराण ।।३३९।।
अन्योन्ये सर्व जन जल केलि करे। परानन्द रसे केहो जिने, केहो हारे ।।३४०।।

भी मधु है उसे प्रेम पूर्वक श्रीकृष्ण के मुख में देने से जो फल होता है।। ३२४।। "वही फल इन दोनों को बट के बीज के बराबर (अत्यल्प) अन्न देने से होगा—वह मानो तो श्रीकृष्ण के मुख में अनन्त ब्रह्माण्डों का मधु समर्पण करना है।। ३२५।। "और इन दोनों की जो हँसी करेगा, वह इन दोनों का अपराधी बनकर सर्वनाश को प्राप्त होगा"।। ३२६।। यह सुन कर वैष्णव भक्त वृन्द महा प्रेम में आकर रोने लगे और जगाइ-मधाइ को प्रणाम करने लगे।। ३२७।। प्रभु बोले—"भक्तजनो! सब सुनो! चलो अब श्री गङ्गाजी को चलें"।। ३२८।। तब सब परिकर सहित वनमाला धारी प्रभु विश्वम्भर वहाँ से चल कर गङ्गाजल में उतर पड़े।।३२९।। कीर्त्तन के आनन्द में सब भक्त लोग सब समय बालक की भाँति चंचल-चरित करते रहते हैं।।३३०।। बड़े २ सब बूढ़े लोगों में भी बाल स्वभाव आ जाता है विष्णु भक्ति की शक्ति ऐसी ही होती है।। ३३१।। कीर्त्तन की समाप्ति पर गङ्गा स्नान महोत्सव प्रारम्भ हुआ—जिसमें आनन्द के आवेश में स्वामी-सेवक बुद्धि लोप हो गई।। ३३२।। प्रभु सब भक्तों के ऊपर जल उछालते हैं पर प्रभु के ऊपर कोई डाल नहीं पाता सब हार २ कर हँसते हुए भाग जाते हैं।। ३३३।। प्रभु जिस जिसके साथ जल युद्ध करते हैं, उसे थोड़ी ही देर में हरा देते हैं।। ३३४।। कभी श्री अद्वैत. श्री गौरांग और श्री नित्यानन्द में जल केलि होती है तो कभी जल केलि हरिदास, श्रीवास, मुकुन्द में होती है।। ३३५।। श्रीगर्भ, श्री सदाशिव मुरारि, श्रीमान्, पुरुषोत्तम संजय, बुद्धिमन्त खान,।। ३३६।। पुण्डरीक विद्यानिधि, गङ्गादास, जगदीश, गोपीनाथ, गदाधर, गरुड़ श्रीराम।। ३३७।। गोविन्द, श्रीधर, कृष्णानन्द, काशीश्वर, जगदानन्द, गोविन्दानन्द, श्री शुक्लाम्बर।।३३८।। इस प्रकार कहाँ तक नाम गिनाएँ। श्री चैतन्य चन्द्र के अनन्त भृत्य हैं। वे सब वेद व्यास द्वारा पुराण में प्रकाशित होंगे।।३३९।। सब लोग परस्पर में जल-केलि कर रहे हैं। परानन्द रसमें मतवाले बने कोई जीतते हैं तो कोई हारते हैं।।३४०।। श्री गदाधर और श्री गौरांग मिल कर जल क्रीड़ा कर रहे हैं, और श्रीनित्या-

गदाधर-गौराङ्ग मिलिया जल केलि। नित्यानन्द-अद्वैते खेलये हइ मेलि ।।३४१।।
अद्वैत-नयने नित्यानन्द कुतूहली। निर्घात करिया जल दिला महाबली ।।३४२।।
दुइ चक्षु अद्वैत मेलिते नाहि पारे। महा क्रोधा वेशे प्रभु गाला गालि पाड़े ।।३४३।।
"नित्यानन्द मद्यप करिल चक्षु काण। कोथा हैते मद्यपेर हैल उपस्थान ।।३४४।।
श्रीनिवास पण्डितेर मूले जाति नाञि। कोथाकार अवधूत आनि दिल ठाञि ।।३४५।।
शचीर नन्दन चोरा एत कर्म्म करे। निरवधि अवधूत-संहति विहरे" ।।३४६।।
नित्यानन्द बोले "मुखे नाहि वास' लाज। हारिले आपने,आर कन्दले कि काज" ।।३४७।।
गौरचन्द्र बोले "एक-बारे नाहिं जान। तिन-बार हइले से हारि-जिति-मानि" ।।३४८।।
आर बार जल युद्ध अद्वैत-निताइ। कौतुक लागिया एक-देह दुइ ठाञि ।।३४९।।
दुइ जने जल युद्ध–केहो नाहि पारे। एक-बार जिने केहो आर-बार हारे ।।३५०।।
आर-बार नित्यानन्द सम्भ्रम पाइया। दिलेन नयने जल निर्घात करिया ।।३५१।।
अद्वैत पाइया दुःख बोले ' माता लिया। संन्यासी ना हय कभु ए ब्रह्म वधिया ।।३५२।।
पश्चिमार घरे घरे खाइयाछे भात। कुल जन्म जाति केहो ना जाने कोथात ।।३५३।।
माता पिता गुरु नाहि, ना जानि कि रूप। खाय परे' सकल, बोलाय अवधूत" ।।३५४।।
नित्यानन्द-प्रति स्तव करे व्यप देशे। शुनि नित्यानन्द प्रभु गण-सह हासे ।।३५५।।
"संहारिब सकल, आमार दोष नाञि"। एत बलि जले झाँपे' आचार्य गोसाञि ।।३५६।।
आचार्येर क्रोधे हासे' भागवत गण। क्रोधे तत्त्व कहे, जेन शुनि कुवचन ।।३५७।।

नन्द और श्री अद्वैत मिल कर खेल रहे हैं ।। ३४१ ।। महावली कौतुकी नित्यानन्द जी ने श्री अद्वैत के नेत्रों में जोर से जल मारते हैं ।। ३४२ ।। जिससे कि अद्वैत आँखें खोल नहीं पाते और बड़े क्रोध में भरकर गाली निकालते हैं ।। ३४३ ।। (यथा) "अरे इस मतवाले नित्यानन्द ने मेरी आँख कानी कर दीं। न जाने यह मतवाला कहाँ से यहाँ आ गया है ।।३४४।। "श्रीवास पण्डित की तो जड़ से कोई जाति नहीं है। (तब ही तो) कहाँ के एक अवधूत को लाकर अपने घर में बास दिया है ।। ३४५ ।। "यह चोर शचीनन्दन भी तो यही सब कर्म करता है–सदा अवधूत की संगति में घूमता रहता है" ।। ३४६ ।। तब नित्यानन्द जी बोले–"ऐसा कहने में तुम्हें लज्जा भी नहीं आती अपने आप हार जाने पर दूसरों से झगड़ने का क्या काम" ।। ३४७ ।। प्रभु गौरचन्द्र बोले–"हम एक बार की नहीं मानेंगे। तीन बार खेल होने पर हार-जीत मानी जायगी" ।।३४८।। बस फिर दूसरी बार श्री अद्वैत और श्री नित्यानन्द में जल-युद्ध ठन गया कौतुक के लिए ही तो यह एक देह दो ठौर हैं ।। ३४९ ।। दोनों जनों में जल-युद्ध हो रहा है। कोई किसी को हरा नहीं पाता है। एक बार कोई जीत भी जाता है तो दूसरी बार हार जाता है ।। ३५० ।। नित्यानन्द जी ने हड़बड़ा कर दुबारा अद्वैत जी की आँखों में जल दे मारा।। ३५१ ।। दुःख पाकर अद्वैत जी बोले–"यह मतबाला तो संन्यासी कभी नहीं है यह तो ब्रह्म-बधिक है ।। ३५२ ।। पश्चिमी हिन्दुस्तानियों के घर २ में इसने भात खाया है। इसके कुल जन्म, जाति को कोई नहीं जानता कि यह कहाँ का है ।। ३५३ ।। "इसके माता, पिता, गुरु भी नहीं है न जाने क्या इसका रूप है सब कुछ खाता-पहनता हैं और कहलाता है "अवधूत" ।। ३५४ ।। इस प्रकार अद्वैत जी नित्यानन्द जी की निन्दा के छल से स्तुति करते हैं जिसे सुनकर नित्यानन्द प्रभु परिकर सहित हँसते हैं ।। ३५५ ।। फिर अद्वैताचार्य प्रभु ' सब का संहार कर डालूँगा, इसमें मेरा दोष नहीं है" इतना कह कर जल में कूद पड़े ।। ३५६ ।। आचार्य के क्रोध पर भागवत गण हँसते हैं। क्रोध में भरे हुए कहते तो नित्यानन्द-तत्त्व हैं पर

हेन रस-कहेर मर्म ना वुझिया। भिन्न ज्ञाने निन्दे' वन्दे' से मरे पुड़िया ।।३५८।।
निश्चय गौराङ्ग चन्द्र जारे कृपा करे। से-इ से वैष्णव वाक्य वुझिवारे पारे ।।३५९।।
सेइ कथो क्षणे दुइ महा कुतूहली। नित्यानन्द-अद्वैते हइल कोला कोलि ।।३६०।।
महा मत्त दुइ प्रभु गौरचन्द्र-रसे। सकल गङ्गार माझे नित्यानन्द भासे ।।३६१।।
हेन मते जल केलि कीर्त्तनेर शेषे। प्रति रात्रि सभा' लैया करे प्रभु रसे ।।३६२।।
ए लीला देखिते मनुष्येर शक्ति नाइ। सवे देखे देव गण सङ्गोपे तथाइ ।।३६३।।
सर्व-गणे गौरचन्द्र गङ्गा स्नान करि। कूले उठि उच्च करि बोले 'हरि हरि' ।।३६४।।
सभारे दिलेन माला-प्रसाद-चन्दन। विदाय हइला सभे करिते भोजन ।।३६५।।
जगाइ-माधाइ समर्पिला सभा' स्थाने। आपन-गलार माला दिला दुइ जने ।।३६६।।
ए सव लीलार कभू अवधि ना हय। 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र वेदे कय ।।३६७।।
गृहे आसि प्रभु धुइलेन श्रीचरण। तुलसीर करिलेन चरण-वन्दन ।।३६८।।
भोजन करिते वसिलेन विश्वम्भर। नैवेद्यान्न आनि मा'ये करिला गोचर ।।३६९।।
सर्व-भागवतेरे करिया निवेदन। अनन्त-ब्रह्माण्ड नाथ करये भोजन ।।३७०।।
परम-सन्तोषे महा प्रसाद खाइया। मुख शुद्धि करि वारे वसिला आसिया ।।३७१।।
वधू-सङ्गे देवे आइ नयन भरिया। महानन्द-सागरे शरीर डुवाइया ।।३७२।।
आइर भाग्येर सीमा के वलिते पारे। सहस्र वदन प्रभु यदि शक्ति धरे ।।३७३।।
प्राकृत-शब्देओ जेवा वलिवेक 'आइ'। आइ-शब्द-प्रभावेओ तार दुःख नाइ ।।३७४।।

सुनने में कठोर वचन जैसा लगता है ।। ३५७ ।। ऐसे रसमय कलह का मर्म न समझ कर जो इन दोनों को भिन्न जानकर एक की निन्दा और दूसरे की बन्दना करता है, वह (अपराध से) जल कर भस्म हो जाता है ।।३५८।। श्री गौरांग चन्द्र जिस पर कृपा करते हैं, वही निश्चय करके वैष्णवों के वाक्यों को समझ सकता है ।। ३५९ ।। कुछ समय पश्चात् वे दोनों महा कौतुकी श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैत में परस्पर में आलिंगन हुआ ।। ३६० ।। दोनों प्रभु गौरचन्द के रस में मतवाले बने हुए हैं और नित्यानन्द तो सारी गङ्गा में तैरते फिर रहे हैं ।। ३६१ ।। इस प्रकार की जल–क्रीड़ा, कीर्त्तन की समाप्ति पर प्रत्येक रात्रि प्रभु गौरचन्द्र सबको लेकर बड़े आनन्द में किया करते हैं ।। ३६२ ।। इस लीला को देखने की शक्ति मनुष्य में नहीं है, केवल देवगण ही गुप्त होकर इसे देखते हैं ।। ३६३ ।। इस प्रकार सब परिकरों के साथ गङ्गा स्नान करके प्रभु गौरचन्द्र बाहर किनारे पर निकले और ऊँचे स्वर से "हरि बोल" "हरि बोल" ध्वनि की ।। ३६४ ।। प्रभु ने सब को माला और प्रसादी चन्दन दिया और सब भक्त लोग भोजन के लिए बिदा हुए ।।३६५।। प्रभु ने जगाइ-मधाइ को सब भक्तों के हाथ सौंपा और दोनों को अपने गले को माला दी ।। ३६६ ।। इन सब लीलाओं की कभी समाप्ति नहीं है, इनका केवल आविर्भाव–तिरोभाव मात्र होता है-यही वेद कहते हैं ।। ३६७ ।। प्रभु ने गृह में आकर श्री चरण धोए और तुलसी जी को चरण-बन्दना की ।। ३६८ ।। फिर विश्वम्भर देव भोजन के लिए बैठे। शची माता ने निवेदित अन्न लाकर सन्मुख रक्खा ।। ३६९ ।। सब भक्तों को निवेदन करके अनन्त ब्रह्माण्डों के नाथ भोजन करते हैं ।।३७०।। प्रभु ने परम संतोष के साथ महा प्रसाद पाया, और फिर मुख शुद्धि के लिए बाहर आकर बैठे ।। ३७१ ।। शची माता बधू के साथ नेत्र भर पुत्र को देख रही हैं और महान् आनन्द सागर में डूब रही हैं ।। ३७२ ।। सहस्र वदन वाले अनन्त देव के यदि सामर्थ्य भी हो तौभी शची माता के भाग्य की सीमा का पार न पा सकें ।। ३७३ ।। प्राकृत भाषा में जो लोग 'आइ' (माता) शब्द

पुत्रेर श्रीमुख देखि आइ जगन्माता । निज देह आइ नाहि जाने आछे कोथा ।।३७५।।
विश्वम्भर चलिलेन करिते शयन । तखन विदाय करे गुप्त देव गण ।।३७६।।
चतुर्मुख-पञ्च मुख आदि देव गण । निति आसि चैतन्येर करये सेवन ।।३७७।।
देखिते ना पाय इहा केहो आज्ञा विने । सेइ प्रभु अनुग्रहे बोले कारो स्थाने ।।३७८।।
कोन दिन वसिया थाकये विश्वम्भर । सम्मुखे आइला मात्र कोन अनुचर ।।३७९।।
"आइ-खाने थाक" प्रभु बोलये आपने । "चारि-पाँच-मुख गुला लोटाय अङ्गने ।।३८०।।
पड़िया आछये जत नाहि लेखा जोखा । तोमरा-सभेरे कि ए गुला ना दे देखा" ।।३८१।।
कर-जोड़ करि बोले सब भक्त गण । "त्रिभुवने करे प्रभु ! तोमार सेवन ।।३८२।।
आमरा-सभेर कोन शक्ति देखि वार । विने प्रभु ! तुमि दिले दृष्टि-अधिकार" ।।३८३।।
ए सब अद्भुत चैतन्येर गुप्त कथा । सर्व-सिद्धि हय इहा शुनिले सर्वथा ।।३८४।।
इहाते सन्देह किछु ना करिह मने । अज-भव निति आइसे गौराङ्गेर स्थाने ।।३८५।।
हेन मते जगाइ-माधाइ-परित्राण । करिला श्रीगौर चन्द्र जगतेर प्राण ।।३८६।।
सभार करिव गौर सुन्दर उद्धार । व्यतिरिक्त वैष्णव निन्दक दुराचार ।।३८७।।
शूल पाणि-सम यदि भक्त निन्दा करे । भागवत प्रमाण—तथापि शीघ्र मरे ।।३८८।।
तथाहि भागवते (५ । १० । २५)—"महद्विमानात् स्वकृताद्धि माद्दक् ।
नङ्क्ष्यत्य दूरादपि शूलपाणिः" ।।३८९।।
हेन वैष्णवेरे निन्दे' असर्वज्ञ हइ । से जनेर अधः पात सर्व—शास्त्रे कइ । ३९०।।

बोलेंगे, उनके सब दुःख 'आइ' शब्द के प्रभाव से जाते रहेंगे ।।३७४।। पुत्र के श्रीमुख को देख कर जगन्माता 'आइ' को अपनी देह की भी सुधि नहीं है कि वे कहाँ है ।। ३७५ ।। फिर विश्वम्भर देव शयन के लिए चले, तो देवता लोग भी गुप्त रूप से बिदा लेकर चले ।। ३७६ ।। चतुर्मुख पंचमुख आदि देवता लोग नित्य प्रति आकर श्री चैतन्य चन्द्र की सेवा करते हैं ।। ३७७ ।। परन्तु प्रभु को आज्ञा बिना कोई भी इनको नहीं देख पाते हैं । प्रभु ही स्वयं कृपा करके किसी २ को दिखला देते हैं ।। ३७८ ।। किसी दिन विश्वम्भर बैठे हुए हैं कि सामने कोई सेवक आ गया ।। ३७९ ।। तो प्रभु स्वयं उससे कहते हैं—"माता के पास जाकर रहो । आंगन पर चार पाँच मुख वाले लोट पोट हो रहे हैं ।। ३८० ।। कितनी संख्या में ये पड़े हुए हैं, इसका कुछ हिसाब किताब नहीं है । तुम लोगों को ये सब दिखाई नहीं पड़ते क्या" ।।३८१ ।। सब भक्त लोग हाथ जोड़ कर बोले "प्रभो ! त्रिभुवन आपकी सेवा करता है ।। ३८२ ।। प्रभो ! जब तक इनके दर्शन का अधिकार आप हमें न दें, तब तक इनको देखने की शक्ति हम सब की कहाँ है" ।। ३८३ ।। श्री चैतन्य चन्द्र की ये सब अद्भुत गुप्त कथाएँ हैं । इनके श्रवण करने से निश्चय हो सर्व सिद्धि होती है ।। ३८४ ।। ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवता लोग नित्य प्रति श्री गौरांग देव के समीप आते हैं—इसमें कुछ भी सन्देह मन में नहीं करना । ३८५ ।। इस प्रकार जगत् के प्राण श्री गौरसुन्दर ने जगाइ-मधाइ का उद्धार किया ।। ३८६ ।। श्री गौरसुन्दर सभी का उद्धार करेंगे, एक वैष्णव निन्दक दुराचारी को छोड़ ।। ३८७ ।। इसमें भागवत का प्रमाण है कि यदि शूलपाणी शङ्कर जैसा भी भक्त की निन्दा करता है, तो वह उस अपराध से शीघ्र ही मरता है ।।३८८।। यथा (भाग. ५. १०. २५) महत् पुरुष का अपमान करने से अपने किये हुए उस कर्म के फल से, मुझ शूलपाणी जैसा भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं है ।। ३८९ ।। फिर जो अल्पज्ञ जन वैष्णवों की निन्दा करते हैं, उनका अधःपतन होता है—यही सब शास्त्र कहते हैं ।। ३९० ।। जो श्रीकृष्ण का नाम सब पापों का महान

सर्व-महा प्रायश्चित जे कृष्णेर नाम। वैष्णवापराधे से-इ नामे लय प्राण ॥३६१॥
पद्म पुराणेर एइ परम वचन। प्रेम भक्ति हय इहा करिले पालन ॥३६२॥

तथाहि पद्म पुराणे ब्रह्म खण्डे २५ वाँ अध्याय १४ वाँ श्लोक

"सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते। यतः ख्यातिं यातं कथमु सहते तद्विगरिहाम्" ॥३६३॥
जेइ 'शुने दुइ-महा दस्युर उद्धार। तारे उद्धारिव गौरचन्द्र अवतार ॥३६४॥
ब्रह्म दैत्य-पावन गौराङ्ग! जय जय। करुणा सागर प्रभु परम सदय ॥३६५॥
सहज-करुणा सिन्धु महा कृपा मय। दोष नाहि देखे प्रभु. गुण मात्र लय ॥३६६॥
हेन-प्रभु-विरहे जे पापि-प्राण रहे। सवे परमायु-गुण, आर किछु नहे ॥३६७॥
तथापिह एइ कृपा कर' महाशय। "श्रवणे वदने जेन तोर यश लय ॥३६८॥
आमार प्रभुर सङ्गे गौराङ्ग सुन्दर। जथा वैसे, तथा जेन हङ अनुचर" ॥३६९॥
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि जानि। जे-ते-मते चैतन्येर यश से वाखानि ॥४००॥
गण-सह प्रभु पाद पद्मे नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥४०१॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान। वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥४०२॥

अथ चौदहवाँ अध्याय

जय जय शची पुत्र स्वयं भगवान्। जय नित्यानन्दाद्वैत करुणानिधान ॥१॥
चतुर्मुख-पञ्चमुख-आदि देव गण। निति आसि चैतन्येर करये सेवन ॥२॥

प्रायश्चित है वही वैष्णव अपराध होने पर प्राण ले लेता है ॥३६१॥ पद्मपुराण का यह (नीचे दिया हुआ) परम वचन है, इसके पालन करने से प्रेम-भक्ति का उदय होता है ॥ ३६२ ॥ यथा:—पद्मपुराण, ब्रह्मखण्ड में २५ वाँ अध्याय का १४ वाँ श्लोक:—"सत्पुरुषों की निन्दा श्री हरिनाम के निकट परम अपराध को विस्तार करती है। भला जिन सत्पुरुषों से नाम को नाम मिला, उनकी ही निन्दा नाम कैसे सह सकता है" ॥३६३॥ जो इन दो महान् दस्यु (जगाइ-मधाइ) का उद्धार सुनेंगे श्री गौरचन्द्र उनका उद्धार करेंगे ॥ ३६४ ॥ हे ब्रह्मदैत्य पावन कारी गौरांग! हे करुणा सागर! हे परम दयालु प्रभो! आप की जय हो, जय हो ॥३६५॥ प्रभु सहज करुणा सिन्धु हैं, महान कृपालु हैं, वे दोष तो नहीं देखते हैं, वे तो केवल गुण ही लेते हैं ॥३६६॥ ऐसे प्रभु के विरह में जो ये पापी प्राण रह रहे हैं, वह केवल परमायु के गुण से, और किसी कारण से नहीं ॥ ३६७ ॥ तथापि हे महाशय! यही कृपा करें कि मेरे श्रवण और मुख आपके यश को ही ग्रहण करते रहें ॥ ३६८ ॥ और मेरे प्रभु (नित्यानन्द) के साथ गौरांग सुन्दर जहाँ विराजें, वहाँ मैं उनका अनुचर बन कर रहूँ ॥ ३६९ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र की कथा का मैं आदि अन्त कुछ नहीं जानता हूँ। मैं तो जैसे तैसे श्री चैतन्य का यश बखान करता हूँ। ४०० ॥ सब परिकरों के सहित प्रभु गौरचन्द्र के पादपद्मों में नमस्कार है। इसमें मेरा कभी कोई अपराध न हो जाय ॥ ४०१ ॥ श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दावन दास उनके चरण कमलों में उनका कुछ यश गान समर्पण करता है ॥ ४०२ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे जगाइ—मधाइ उद्धार वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

स्वयं भगवान् शची-सुत की जय हो, जय हो। करुणा निधान श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैत की जय हो ॥१॥ कनक किरण-वान गौरांग सुन्दर का कलेवर प्रेम के भार से डगमगा रहा है। रंगीले गौरांग

आज्ञा विने केहो इहा देखिते ना पारे। ताना पुनि ठाकुरेर सभे सेवा करे ।।३।।
सर्व दिन देखे प्रभु जत लीला करे। शयन करिले प्रभु सभे चले घरे ।।४।।
ब्रह्म दैत्य-दुइर से देखिया उद्धार। आनन्दे चलिला ता'इ करिया विचार।५।।
"ए मत कारूण्य आछे चैतन्येर घरे। ए मत जनेरे प्रभु करये उद्धारे ।।६।।
आजि बड़ चित्ते प्रभु दिलेन भरसा। 'अवश्य पाइव पार' धरिलाङ आशा" ।।७।।
एइ मत अन्योऽन्ये करि सङ्कथन। महानन्दे चलिला सकल देव गण ।।८।।
प्रभु-स्थाने प्रत्यह आइसे धर्मराज। आपने देखिल प्रभु चैतन्येर काज ।।९।।
चित्र गुप्त स्थाने जिज्ञासये प्रभु यम। "किवा ए दुइर पाप, किवा उपशम" ।।१०।।
चित्र गुप्त बोले "शुन प्रभु धर्मराज। ए विफल परिश्रमे आर किवा काज ।।११।।
लक्षेक कायस्थ यदि एक मास पढ़ि। तथापि पाइते अन्त शीघ्र नहे वड़ि ।।१२।।
तुमि यदि शुन लक्ष करिया श्रवण। तथापिह शुनि वारे तुमि से भाजन ।।१३।।
ए-दुइर पाप निरन्तर दूते कहे। लिखिते कायस्थ सब उत्तापित हये ।।१४।।
ए-दुइर पाप दूत कहे अनुक्षण। इहा लागि दूत कत खाइल मारण ।।१५।।
दूत बोले "पाप करे सेइ दुइ जने। लिखाइते भार मोर, मोरे मार' केने" ।।१६।।
ना लिखिले हय शास्ति, हेन करि लिखि। पर्वत-प्रमाण 'गडा' आछे तार साक्षी। १७।।
आमराओ कान्दि याछि ओ-दुइ लागिया। के मते वा ए यातना सहिव आसिया ।।१८।।

सुन्दर नृत्य कर रहे हैं ।। टेक १।। चतुर्मुख पंचमुख आदि देवगण नित्य प्रति आकर श्री चैतन्य देव की सेवा करते हैं ।। २ ।। प्रभु की आज्ञा विना उनकी इस सेवा को कोई देख नहीं पाता है परन्तु वे सब प्रभु की सेवा करते हैं ।। ३ ।। प्रभु जो २ लीला करते हैं उसे वे सब दिन भर देखते हैं और प्रभु के शयन करने पर वे सब घर चले जाते हैं ।। ४ ।। आज दो ब्रह्म.दैत्यों का उद्धार देख कर वे उस पर विचार करते हुए आनन्द में चले जा रहे हैं ।। ५ ।। (यथा) "ओह ! श्री चैतन्य देव के घर में ऐसी करुणा भी है ! वे प्रभु ऐसे जनों का भी उद्धार करते हैं ।। ६ ।। प्रभु ने आज हमारे चित्त को बड़ा ही भरोसा दिया। अब हमें भी यह आशा हो गई कि हम भी अवश्य पार हो जायँगे ।। ७ ।। इस प्रकार से परस्पर में वार्त्तालाप करते हुए सब देवता लोग महान् आनन्द में चले जा रहे हैं ।। ८ ।। प्रभु के समीप धर्मराज भी नित्य आया करते हैं। उन्होंने भी आज श्री चैतन्य प्रभु के कार्य को आप देखा ।। ९ ।। तब वे प्रभु यमराज (धर्मराज) चित्रगुप्त से पूछते हैं कि "इन दोनों के क्या २ पाप थे और क्या उनके लिए उपयुक्त दण्ड था" ।। १० ।। चित्रगुप्त बोला—"हे प्रभु धर्मराज! सुनिए ! इस (लेखा-जोखा) के व्यर्थ परिश्रम से मतलब ही क्या" ।। ११ ।। "(इनके पापों को) यदि एक लाख कायस्थ (लेखक-मुनीम) एक महीना तक पढ़ें तौभी वे पढ़कर जल्दी खतम नहीं कर पायेंगे ।। १२ ।। और आप यदि लाख कान बना कर सुनें तो ऐसे सुनने वाले एक आप ही होंगे ।। १३ ।। "इन दोनों के पापों को दूत लोग आ २ कर लगातार कहते ही रहते हैं, जिन्हें लिखते २ मुनीम लोगों को गर्मी चढ़ जाती है ।। १४ ।। (तो जब इधर) दूत लोग इनके पापों को क्षण २ में कहते ही जाते हैं, (तो उधर मुनीम लोगों का लिखते २ दिमाग गर्म हो जाने के कारण) कितने ही दूतों को तो मार खानी पड़ती है ।।१५।। तब दूत कहते हैं—"जब वे दो जने तो पाप करते जाते हैं और लिखवाने का जिम्मा हमारे ऊपर ही है, तो फिर हमें मारते क्यों हैं ?" ।। १६ ।। न लिखें तो दण्ड मिले, इसलिए मुनीम लोगों को भी लिखना पड़ता है। लिख लिख कर बही खातों का ढेर लगकर एक पर्वत वन गया यही उनके पापों का साक्षी है ।। १७ ।। हम भी उन दोनों के

तिल-मात्र महा प्रभु सब कैला दूर। एवे आज्ञा कर' 'गडा' डुवाइ प्रचुर'' ॥१६॥
कभु नाहि देखे यम ए मत महिमा। पातकि-उद्धार जत—तार एइ सीमा ॥२०॥
स्वभाव-वैष्णव यम-मूर्तिमन्त धर्म। भागवत धर्मेर जानये सर्व-मर्म ॥२१॥
जखन शुनिला चित्र गुप्तेर वचन। कृष्णावेशे देह पासरिला ततक्षण ॥२२॥
पड़िला मूर्च्छित हैया रथेर उपरे। कोथाओ नाहिक धातु सकल शरीरे ॥२३॥
आथे व्यथे चित्र गुप्त-आदि जत गण। धरिया लागिला सभे करिते क्रन्दन ॥२४॥
सर्व देव रथे जाय कीर्त्तन करिया। रहिल यमेर रथ शोकाकुल हैया ॥२५॥
दुइ ब्रह्म-असुरेर मोचन देखिया। सेइ गुण-कर्म्म सभे चलिल गाइया ॥२६॥
काहो केहो ना जानये आनन्द-कीर्त्तने। कारुण्य देखिया केहो करये क्रन्दने ॥२७॥
रहियाछे यम-रथ—देखे देव गणे। रहिल सकल रथ यम-रथ-स्थाने ॥२८॥
शेष, अज, भव, नारदादि ऋषि गणे। देखे पड़ि आछे यमदेव अचेतने ॥२६॥
विस्मित हइला सभे—ना जानि कारण। चित्र गुप्त कहिलेन सकल कारण ॥३०॥
'कृष्णावेश' हेन जानि अज-पञ्चानन। कर्ण मूले सभे मिलि करये कीर्त्तन ॥३१॥
उठि लेन यमदेव कीर्तन शुनिया। चैतन्य पाइया नाचे महा मत्त हैया ॥३२॥
उठिल परमानन्द देव-सङ्कीर्त्तन। कृष्णेर आवेशे नाचे सूर्येर नन्दन ॥३३॥
यम नृत्य देखि नाचे सर्व-देव गण। नारदादि-सङ्गे नाचे अज-पञ्चानन ॥३४॥

लिए रोये हैं कि वे दोनों यहाँ (नरक में) आकर कैसे यहाँ की यातनाएँ सहेंगे। १८ ॥ परन्तु महाप्रभु ने क्षण भर में उनके सब पाप दूर कर दिए। अब आज्ञा करिये—इस पर्वत जैसी ढेरी को (कहीं समुद्र में) डुबा दें'' ॥ १६ ॥ यमराज ने ऐसी महिमा कभी नहीं देखी थी। जितने भी पातकियों का उद्धार हुआ है, उन सब की सीमा है—यही (जगाइ-मधाइ) उद्धार ॥२०॥ यमराज का वैष्णव स्वभाव है, वे मूर्त्तिमान् धर्म हैं, भागवत् धर्म के मर्म को सब जानने वाले हैं ॥ २१ ॥ (अतएव) जब उन्होंने चित्रगुप्त के वचन सुने तो तुरन्त ही कृष्ण भक्ति के आवेश में देह को भूल गए ॥ २२ ॥ और मूर्च्छित होकर रथ के ऊपर गिर पड़े-समस्त शरीर में कहीं चेतनता न रही ॥ २३ ॥ तब चित्रगुप्त आदि सब गणों ने हडबड़ा कर उनको सम्हाला और उनको पकड़ कर वे सब रोने लगे ॥ २४ ॥ और सब देवता तो अपने २ रथ पर बैठे प्रभु की लीला का कीर्त्तन करते हुए जा रहे हैं परन्तु यमराज का रथ (गणों के) शोकाकुल होने से वहीं रह गया ॥ २५ ॥ दो ब्रह्म राक्षसों का उद्धार देख कर, प्रभु के उन्हीं सब गुण-कर्म को गाते हुए और सब देव गण जा रहे हैं ॥ २६ ॥ कीर्त्तन के आनन्द में किसी को किसी की खोज खबर नहीं है। कोई २ प्रभु की अद्भुत करुणा को देख कर रो भी रहे हैं ॥२७॥ जब देवताओं ने देखा कि यमराज का रथ पीछे रह गया, तो वे अपने २ रथ को वहाँ ले आए ॥ २८ ॥ (वहाँ आकर) शेषजी, ब्रह्मा, शिव, नारद आदि ऋषियों ने देखा कि यमराज रथ पर अचेत पड़े हैं ॥ २९ ॥ इसका कारण न जानने से सब बड़े विस्मित हुए। तब चित्रगुप्त ने सब कारण सुनाया ॥ ३० ॥ उनमें कृष्ण भक्ति का आवेश हुआ है—ऐसा जानकर ब्रह्मा, शिव आदि सब मिल कर उनके कर्ण-मूल में कृष्ण कीर्त्तन करते हैं ॥ ३१ ॥ कीर्त्तन सुनकर यमदेव उठ बैठे। चेतनता लौट आने पर वे महामत्त होकर नाचने लगे ॥ ३२ ॥ देवताओं के संकीर्त्तन में परमानन्द उदय हो आया। सूर्यनन्दन यमराज कृष्ण-प्रेम के आवेश में नाच रहे हैं ॥ ३३ ॥ यम के नृत्य को देख सब देवता लोग भी नाचने लगे। श्री नारदादिकों के साथ ब्रह्मा-शिव नाचने लगे ॥३४॥ देवताओं का नृत्य सावधान होकर सुनो। यह अत्यन्त गुह्य है। इसको

देव गण-नृत्य शुन सावधान हैया। अति गुह्य—वेदे व्यक्त करि वेन इहा ॥३५॥
श्रीराग—नाचइ धर्मराज, छाड़िया सकल काज, कृष्णावेशे ना जाने आपना'।
स्मङरिया श्रीचैतन्य, बोले "अति धन्य धन्य, पतित पावन धन्य वाना" ॥१॥
हुँ हुङ्कार गरजन, स पुलक महा प्रेम, यमेर भावेर अन्त नाइ।
विह्वल हइया यम, करे बहु क्रन्दन, स्मङरिया जगाइ माधाइ ॥२॥
यमेर जतेक गण, देखिया यमेर प्रेम, आनन्दे पड़िया गड़ि जाय।
चित्र गुप्त महा भाग, कृष्णे बड़ अनुराग, माल साट पूरि पूरि धाय ॥३॥
नाचे प्रभु शङ्कर, हइया दिगम्बर, कृष्णा वेशे वसन ना जाने।
वैष्णवेर अग्रगण्य, जगत् करये धन्य, कहिया तारक-राम नामे ॥४॥
शिव नाचे महानन्दे, जटाओ नाहिक वान्धे, देखि निज-प्रभुर महिमा।
कार्तिक गणेश नाचे, महेशेर पाछे पाछे, स्मङरिया कारुण्येर सीमा ॥५॥
नाचे जे चतुरानन, भक्ति जार प्राण धन, लइया सकल परिवार।
कश्यय कर्दम दक्ष, मनु भृगु महा मुख्य, पाछे नाचे सकल ब्रह्मार ॥६॥
सभे महा भागवत, कृष्ण रसे महामत्त, सभे करे भक्ति-अध्यापना।
वेढ़िया ब्रह्मार पाशे, कान्दे छाड़ि दीर्घ श्वासे, स्मङरिया प्रभुर करुणा ॥७॥
देवर्षि नारद नाचे, रहिया ब्रह्मार पाछे, नयने वहये प्रेम जल।
पाइया यशेर सीमा, कोथावा रहिल वीणा, ना जानये, आनन्दे विह्वल ॥८॥
चैतन्येर प्रिय भृत्य, शुक देव करे नृत्य, भक्तिर महिमा शुक जाने।
लोटाइया पड़े धूलि, जगाइ माधाइ वलि, करे बहु दण्ड परणामे ॥९॥

वेद व्यक्त करेंगे ॥ ३५ ॥ (पद—अर्थ)—सब कामों को छोड़ कर धर्मराज नाच रहे हैं। वे कृष्ण-प्रेम के आवेश में अपने को भूल गए हैं। श्री चैतन्य चन्द्र का स्मरण कर करके वे कह उठते हैं—"आपको धन्य है, अति धन्य है। आपके पतित पावन बाने को धन्य है ॥ १ ॥ यमराज महान् प्रेमावेश में कभी हुँकार करते और कभी गरजते हैं, शरीर पुलकित हो रहा है। उनके भावों का अन्त नहीं है। जगाइ—मधाइ के ऊपर प्रभु की कृपा का स्मरण कर करके यमराज विह्वल हो जाते हैं और बहुत रोते हैं ॥ २ ॥ यमराज के गण सब, उनके ऐसे प्रेम को देख कर मारे आनन्द के भूमि पर लोट पोट हो रहे हैं, चित्रगुप्त तो महाभग है, उनका श्रीकृष्ण में बड़ा अनुराग है। वे तो ताल ठोक कर उछलते फिरते हैं ॥ ३ ॥ भोले शङ्कर बाबा तो दिगम्बर बन के नाच रहे हैं। कृष्ण प्रेम के आवेश में उन्हें वस्त्र की सुध बुध ही नहीं। वे वैष्णवों में अग्रगण्य है और तारक राम नाम सुना कर जगत् को धन्य कर रहे हैं ॥ ४ ॥ अपने प्रभु की महिमा को देखकर शिवजी महान् आनन्द में नाच रहे हैं, जटाओं को भी नहीं बाँधते हैं। और कार्त्तिकेय, गणेश भी प्रभु की करुणा की अवधि को स्मरण कर करके नाच रहे है ॥ ५ ॥ भक्ति जिनका प्राण धन है ऐसे ब्रह्मा जी अपने सब परिवार सहित नाच रहे हैं। और ब्रह्मा जी के पीछे कश्यप, कर्दम, दक्ष, मनु, भृग आदि प्रधान २ महाजन नाच रहे हैं ॥ ६ ॥ सभी महा भागवत हैं, कृष्ण—रस में महामत्त हैं, भक्ति के अध्यापक हैं। वे ब्रह्मा जी को घेरे हुए, प्रभु की करुणा का स्मरण करके रुदन करते हैं और दीर्घ श्वास त्याग करते हैं ॥७॥ ब्रह्मा जी के पीछे देवर्षि नारद भी नाच रहे हैं, उनके नेत्रों से प्रेम जल बह रहा हैं। प्रभु के यश की सीमा को पाकर आनन्द में विह्वल हो रहे हैं—वीणा कहाँ गिर पड़ी है, कुछ सुध ही नही है ॥ ८॥ श्री चैतन्य प्रभु

नाचे इन्द्र सुरेश्वर, महावीर वज्र धर, आपनाके करे अनुताप।
सहस्र नयने धार, अविरत वहे जार, सफल हइल ब्रह्म शाप ॥१०॥
प्रभुर महिमा देख, इन्द्र देव बड़ सुखी, गड़ा गड़ि जाय परवश।
कोथा गेल वज्र सार, कोथाय किरीट हार, इहारे से वलि 'कृष्ण रस' ॥११॥
चन्द्र सूर्य पवन, कुवेर वह्नि वरुण, नाचे सब्ब-जत लोक पाल।
सभेइ कृष्णेर भृत्य, कृष्ण रसे करे नृत्य, देखिया कृष्णेर ठाकुराल ॥१२॥
नाचे सब देव गण, सभे उलसित मन, छोट बड़ ना जाने हरिषे।
बड़ हय ठेला ठेलि, तभु सभे कुतूहली, सत्य सुख कृष्णेर आवेशे ॥१३॥
नाचे प्रभु भगवान्, 'अनन्त जाहार नाम, विनता नन्दन करि सङ्गे।
सकल वैष्णव राज, पालन जाहार काज, आदि देव सेहो नाचे रङ्गे ॥१४॥
अज भव नारद, शुक आदि जत देव, अनन्त वेढ़िया सभे नाचे।
गौरचन्द्र अवतार, ब्रह्म दैत्य-उद्धार, सहस्र वदन गाय माझे ॥१५॥
केहो कान्दे केहो हासे,' देखि महा परकाशे, केहो मूर्च्छा पाय सेइ ठाञि।
केहो बोले "भाल भाल, गौरचन्द्र ठाकुराल, धन्य पापी जगाइ माधाइ" ॥१६॥
नृत्य गीत-कोलाहले, कृष्ण-यश सुमङ्गले, पूर्ण हैल सकल आकाश।
महा-जय जय-ध्वनि, अनन्त ब्रह्माण्डे शुनि, अमङ्गल सब गेल नाश ॥१७॥

का प्रिय भृत्य श्री शुकदेव भी नाच रहे हैं। श्री शुक भक्ति की महिमा को जानते हैं, वे जगाइ-मधाइ का नाम ले ले कर धूल में लोट पोट होते हैं और अनेक प्रणाम करते हैं॥ ९ ॥ देवताओं के ईश्वर, ब्रजधारी महावीर इन्द्रराज भी नाच रहे हैं तथा अपने को धिक्कार दे रहे हैं। उनके सहस्र नेत्रों से निरन्तर अश्रु की धाराएँ वह रही हैं, आज ब्रह्म शाप उनके लिए सफल हो गया॥ १० ॥ प्रभु की महिमा को देख कर इन्द्र-देव बड़े सुखी हैं और भाव विवश होकर भूमि पर लोट पोट हो रहे हैं। कहाँ गया उनका वज्रसार ! कहाँ रहे उनके किरीट हार !! इसका नाम है श्रीकृष्ण-रस !!! ॥ ११ ॥ चन्द्र, सूर्य, कुवेर, अग्नि, वरुण आदि सब लोकपाल नाच रहे हैं। सभी श्रीकृष्ण के भृत्य हैं, श्री कृष्ण की ठकुराई को देख कर वे श्रीकृष्ण रस में मत्त होकर नाच रहे हैं॥ १२ ॥ सब देवता लोग नाच रहे हैं, सबके मन में उल्लास है, मारे हर्ष के छोटे-बड़े का भेद भूल गए हैं। बड़ी ठेलम ठेला मची हुई है तौभी सबको बड़ा आनन्द आ रहा है, कारण कि श्री कृष्ण की भक्ति का आवेश ही तो सच्चा सुख है।।१३। प्रभु भगवान जिनका नाम श्री अनन्त देव है वे विनता सुत गरुड़ जी के साथ नाच रहे हैं। सभी वैष्णव राज हैं। पालन करना जिनका कार्य हैं, जो आदि देव हैं, वे (श्री अनन्त देव) भी आनन्द में नाच रहे हैं॥ १४ ॥ ब्रह्मा, शिव, नारद, शुक आदि जितने देव और ऋषि मुनि हैं, वे सब अनन्त देव को घेर कर नाच रहे हैं। सब के मध्य में सहस्र वदन शेष जी "गौरचन्द्र-अवतार" तथा "ब्रह्म–दैत्य–उद्धार" का कीर्त्तन कर रहे हैं॥ १५ ॥ महा प्रकाश को देख कर कोई रोते हैं, कोई हँसते हैं कोई वहीं मूर्च्छित हो जाते हैं। कोई कहते हैं –"वाह ! वाह ! गौरचन्द्र की ठकुराई को और धन्य है पापी जगाइ–मधाइ को" ॥१६॥ श्री कृष्ण यश के सुमंगल नृत्य गीत के कोलाहल से आकाश पूर्ण हो गया। अनन्त ब्रह्माण्डों में जय जयकार की ध्वनि सुनाई दे रही है जिससे सब अमङ्गल नष्ट हो रहे हैं॥ १७ ॥ वह मङ्गल ध्वनि सत्य लोक आदि को पार कर गयी उसने स्वर्ग-मर्त्य और पाताल को भर दिया। ब्रह्म,दैत्य-उद्धार के अतिरिक्त और कुछ सुनाई नहीं पड़ती (इस प्रकार) श्री गौरांग देव की ठकुराई

सत्य लोक-आदि जिनि, उठिल मङ्गल ध्वनि, स्वर्ग मर्त्य पूरिल पाताल।
ब्रह्म दैत्य उद्धार, वइ नाहि शुनि आर, प्रकट गौराङ्ग-ठाकुराल ॥१८॥
हेन मते महाजन, भागवत देव गण, कृष्णा वेशे चलिलेन पुरे।
गौराङ्ग चन्द्रेर यश, विने आर कोन रस, काहारो वदने नाहि स्फुरे ॥१९॥
जय जगत मङ्गल, प्रभु गौर चन्दर, जय सर्व-जीव लोक नाथ।
उद्धारिला करुणाते, व्रह्म दैत्य जेन मते, सभा' प्रति कर' दृष्टि पात ॥२०॥
जय जय श्रीचैतन्य, संसार तारक धन्य, पतित पावन धन्य वाना।
श्रीचैतन्य-नित्यानन्द, प्रभु भाल भक्त वृन्द, वृन्दावन गुण गाना ॥२१॥

अथ पन्द्रहवाँ अध्याय

"मायूर राग। देख गौराचांदेर कत भाँति।
शिव शुक नारद, धेयानेना पाओत, सोयंहु अकिंचन सङ्गे दिन राति ॥ध्रु॥"
हेन मते नवद्वीपे विश्वम्भर राय। अनन्त अचिन्त्य लीला करये सदाय ॥१॥
एत सब प्रकाशेओ केहो नाहि चिने। सिन्धु माझे चन्द्र जेन ना जानिल मीने ॥२॥
जगाइ माधाइ दुइ—चैतन्य कृपाय। परम धार्मिक रूपे वैसे नदियाय ॥३॥
ऊष काले गङ्गा स्नान करिया निर्जने। दुइ लक्ष कृष्ण नाम लय प्रति दिने ॥४॥
आपनारे धिक्कार करये अनुक्षण। निरवधि 'कृष्ण' वलि करये क्रन्दन ॥५॥
पाइया कृष्णेर रस परम उदार। 'कृष्णेर दयित' देखे सकल संसार ॥६॥
पूर्वे जे करिल हिंसा, ताहा स्मङरिया। कान्दिया भूमिते पड़े मूर्च्छित हइया ॥७॥

प्रकट हो रही है ॥१८॥ इस प्रकार महा पुरुष भागवत देवगण श्री कृष्ण के प्रेमावेश में अपने २ लोक को रहे हैं। श्री गौरांग चन्द्र के यश को छोड़ और कोई रस किसी की रसना पर आ नहीं रहा है ॥ १९ ॥ जगन्मङ्गल प्रभु गौरचन्द्र की जय हो, सब जीव तथा सर्व लोक के नाथ की जय हो। हे प्रभो ! जैसे आपने करुणा करके ब्रह्म-दैत्यों का उद्धार किया वैसे ही आप सबके प्रति शुभ दृष्टि पात करें ॥ २० ॥ श्री चैतन्य चन्द्र की जय हो। संसार तारक आपको धन्य हो, आपके पतित पावन बाने को धन्य हो। श्री चैतन्य चन्द्र श्री नित्यानन्द और उनके भक्तों के गुणों को (यह) वृन्दावन दास गान करता है ॥ २१ ॥

इति यमराज कीर्त्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

मायूर राग ॥ देखो गौर चन्द्र का कैसा सुन्दर प्रकाश है। जिनको शिव, शुक, नारदादि ध्यान में भी नहीं पाते हैं, वे ही प्रभु निष्किचन जनों के साथ दिन रात विहार करते हैं ॥ टेर ॥ इस प्रकार से नवद्वीप में श्री विश्वम्भर राय सदा ही अनन्त और अचिन्त्य लीला करते रहते हैं ॥ १ ॥ इतना सब प्रकाश होने पर भी कोई आप को नहीं पहचानता है जैसे समुद्र के भीतर रहने वाले चन्द्रमा को मछलियों ने नहीं जाना था ॥२॥ श्री चैतन्य की कृपा से जगाइ मधाइ दोनों परम धर्मात्मा बन कर नदिया में रहने लगे ॥३॥ ऊषा काल में गङ्गा स्नान कर निर्जन में बैठ कर प्रति दिन दो लाख 'कृष्ण' नाम का जप करते हैं ॥ ४ ॥ वे अपने को क्षण २ से धिक्कारते रहते हैं और कृष्ण २ कहते हुए निरन्तर रोते हैं ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण-रस को पाकर दोनों परम उदार हो गये हैं (अतएव) समस्त संसार को श्री कृष्ण के प्रिय रूप में देखते हैं ॥ ६ ॥

"गौरचन्द्र आरे बाप पतित पावन। स्मङरि स्मङरि पुन करये क्रन्दन ॥८॥
आहारेर चिन्ता गेल कृष्णेर आनन्दे। स्मङरि चैतन्य कृपा दुइ जन कान्दे ॥९॥
सर्व जन सहित ठाकुर विश्वम्भर। अनुग्रह आश्वास करये निरन्तर ॥१०॥
आपने वसिया प्रभु भोजन कराय। तथापिह दुँहे चित्ते सो याथना पाय ॥११॥
विशेषे माधाइ नित्यानन्देरे लङ्घिया। पुनः पुन कान्दे विप्र ताहा स्मङरिया ॥१२॥
नित्यानन्द छाड़िल सकल अपराध। तथापि माधाइ चित्ते ना पाय प्रसाद ॥१३॥
"नित्यानन्द-अङ्गे मुञि कैलुँ रक्त पात"। इहा वलि निरन्तर करे आत्म घात ॥१४॥
"जे अङ्गे चैतन्य चन्द्र करये विहार। हेन अङ्गे मुञि पापी करिलुँ प्रहार" ॥१५॥
मूर्च्छागत हय इहा स्मङरि माधाइ। अहर्निश कान्दे, आर किछु चिन्ता नाइ ॥१६॥
नित्यानन्द महाप्रभु बालक-आवेशे। अहर्निश नदियाय वुलेन हरिषे ॥१७॥
सहजे परमानन्द नित्यानन्द-राय। अभिमान नाहि—सर्व नगरे वेड़ाय ॥१८॥
एक दिन नित्यानन्दे निभृते देखिया। पड़िला माधाइ दुइ-चरणे धरिया ॥१९॥
प्रेम जले धोयाइल प्रभुर चरण। दन्ते तृण करि करे प्रभुर स्तवन ॥२०॥
"विष्णु रूपे तुमि प्रभु! करह पालन। तुमि से फनाय धर अनन्त भुवन ॥२१॥
भक्तिर स्वरूप प्रभु! तोमार कलेवर। तोमारे चिन्तये मने पार्वती-शङ्कर ॥२२॥
तोमार से भक्ति योग, तुमि कर' दान। तोमा' वइ चैतन्येर प्रिय नाहि आन ॥२३॥

उन्होंने पहिले जो २ हिंसा की थीं उनका स्मरण कर २ वे रोते २ मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ॥ ७ ॥ हे मेरे बाप! हे पतित पावन गौरचन्द्र स्मरण कर करके बारम्बार रोते हैं ॥८॥ श्रीकृष्ण के प्रेमानन्द में मगन रहने के कारण भोजन की चिन्ता चली गयी। वे दोनों केवल श्री चैतन्य प्रभु की कृपा का स्मरण कर करके रोते रहते हैं ॥ ९ ॥ विश्वम्भर प्रभु, सब भक्त जनों के साथ दोनों को कृपा करके निरन्तर आश्वासन देते रहते हैं ॥ १० ॥ प्रभु आप बैठ करके उनको भोजन कराते हैं, फिर भी उनके चित्त को चैन नहे पड़ता ॥ ११ ॥ विशेष करके तो विप्र मधाइ, जिसने श्री नित्यानन्द पर प्रहार किया था, उस अपने कृत्य को स्मरण कर करके बार २ रोता है ॥ १२ ॥ यद्यपि नित्यानन्द जी ने उसके सब अपराध क्षमा कर दिये हैं तथापि मधाइ के चित्त में प्रसन्नता नहीं है ॥ १३ ॥ "हाय! नित्यानन्द जी के श्रीअङ्ग में से मैंने रक्त बहाया है"! यह कह २ कर वह बार २ अपने शरीर को पीटता है ॥ १४ ॥ "अरे! जिस अङ्ग में श्री चैतन्य चन्द्र विहार करते हैं ऐसे श्रीअंग पर मुझ पापी ने प्रहार किया" ॥ १५ ॥ यह स्मरण कर मधाइ मूर्च्छित हो जाता है और दिन रात रोता रहता है—और कोई दूसरी चिन्ता उसे नहीं है ॥ १६ ॥ और श्री नित्यानन्द महा प्रभु तो बालभाव के आवेश में आनन्द से नदिया में दिन रात घूमते फिरते हैं ॥ १७ ॥ श्री नित्यानन्द राय तो सहज स्वभाव से ही परमानन्दमय हैं, (देह) अभिमान तो आप में है ही नहीं। (अतएव बालवत्) सब शहर में घूमते फिरते हैं ॥ १८ ॥ एक दिन श्री नित्यानन्द को एकान्त में देख कर मधाइ उनके दोनों चरणों को पकड़ कर पड़ गया ॥ १९ ॥ प्रेम के अश्रुजल से प्रभु के चरणों को धो डाला और दाँतों में तिनका ले कर प्रभु की स्तुति करने लगा ॥ २० ॥ "हे प्रभो! विष्णु रूप से तुम ही (जगत् का) पालन करते हो! तुम ही अनन्त रूप से अनन्त लोकों को अपने फण पर धारण करते हो ॥२१॥ हे प्रभो! तुम्हारा श्रीअङ्ग भक्ति का स्वरूप ही है। श्री पार्वती-शङ्कर तुम्हारा ही मन में चिन्तन करते हैं ॥ २२ ॥ "भक्तियोग भी तुम्हारा ही है और तुम ही उसे दान करते हो। तुम्हारे अतिरिक्त श्री चैतन्य प्रभु का और कोई प्रिय

तोमार से प्रसादे गरुड़ महाबली। लीलाय वहये कृष्ण हइ कुतूहली ॥२४॥
तुमि से अनन्त-मुखे कृष्ण गुण गाओ। सर्व-धर्म-श्रेष्ठ 'भक्ति' तुमि से बुझाओ ॥२५॥
तोमारि से गुण गाय ठाकुर नारद। तोमार से जत किछु चैतन्य सम्पद ॥२६॥
तोमार से 'कालिन्दी भेदन' करि नाम। तोमा' सेवि जनक पाइल महा ज्ञान ॥२७॥
सर्व धर्म मय तुमि पुरुष पुराण। तोमारे से वेदे बोले "आदि देव नाम ॥२८॥
तुमि से जगत्पिता महा योगेश्वर। तुमि से लक्ष्मण चन्द्र महा धनुर्धर ॥२९॥
तुमि से पाषण्ड क्षय रसिक आचार्य। तुमि से जानह चैतन्येर सर्व कार्य ॥३०॥
तोमारे सेविया पूज्या हैला महा माया। अनन्त-ब्रह्माण्ड चाहे तोमा' पद-छाया। ३१॥
तुमि चैतन्येर भक्त, तुमि महा भक्ति। जत किछु चैतन्येर-तुमि सर्व शक्ति ॥३२॥
तुमि शय्या, तुमि खट्टा, तुमि से शयन। तुमि चैतन्येर छत्र, तुमि प्राण धन ॥३३॥
तोमा' वइ कृष्णेर द्वितीय नाहि आर। तुमि गौरचन्द्रेर सकल अवतार ॥३४॥
तुमि से करह प्रभु! पतितेर त्राण। तुमि से संहार' सर्व-पाषण्डीर प्राण ॥३५॥
तुमि से करह प्रभु! वैष्णवेर रक्षा। तुमि से वैष्णव-धर्म कराइला शिक्षा ॥३६॥
तोमार कृपाय सृष्टि करे अज-देवे। तोमारे से रेवती वारुणी सदा सेवे ॥३७॥
तोमार से क्रोधे महारुद्र-अवतार। सेइ द्वारे कर' सर्व-सृष्टिर संहार ॥३८॥
तथाहि विष्णु पुराणे (२। ५। १९) 'कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानल शिखोज्वलः।
संकर्षणात्मकोरुद्रो निष्क्रम्यात्तिजगत् त्रयम्" ॥३९॥

नहीं है ॥ २३ ॥ तुम्हारे ही कृपा से गरुड जी इतने महाबली हैं कि खेल २ में ही बड़े आनन्द के साथ श्रीकृष्ण को उठाये फिरते हैं ॥२४॥ तुम ही अनन्त मुख से श्रीकृष्ण के गुणों को गाते हो। "सब धर्मों में भक्ति ही श्रेष्ठ है" यह तुम ही समझाते हो ॥२५॥ तुम्हारे ही गुणों को नारद ठाकुर गाते हैं, । जो कुछ श्री चैतन्य चन्द्र की सम्पदा है वह सब तुम्हारी है ॥ २६ ॥ तुम्हारा ही नाम 'कालिन्द्री–भेदन कारी' है। तुम्हारी सेवा करके ही जनक ने महाज्ञान प्राप्त किया था ॥ २७ ॥ तुम सर्व धर्ममय पुराण पुरुष हो। वेद तुमको ही "आदि देव" नाम से पुकारते हैं ॥ २८ ॥ तुम हो जगत्पिता हो, महा योगेश्वर हो, और तुम ही महान् धनुषधारी लक्ष्मण हो ॥ २९ ॥ तुम ही पाषण्ड-नाशक हो, रसिकाचार्य हो और तुम ही चैतन्य के सब कार्य के ज्ञाता हो ॥ ३० ॥ तुम्हारी सेवा करके ही महामाया पूज्य बनी हैं। तुम्हारी चरण छाया ही अनन्त ब्रह्माण्ड चाहते हैं ॥ ३१ ॥ तुम श्री चैतन्य के भक्त हो, और महा भक्ति के स्वरूप भी तुम ही हो श्रीचैतन्य के तुम ही सब कुछ हो और तुम्ही सर्व शक्ति हो ॥ ३२ ॥ तुम ही श्री चैतन्य की शय्या हो, उनके सिंहासन हो, शयन हो, क्षत्र हो, प्राणधन हो, ॥३३॥ तुम्हारे सिवाय श्री कृष्ण का कोई दूसरा नहीं है, तुम ही गौरचन्द्र के सब अवतार स्वरूप हो ॥ ३४ ॥ हे प्रभो! तुम ही पतितों का उद्धार करते हो और तुम ही सब पाखंडियों के प्राणों को हरण करते हो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो! तुम ही वैष्णवों की रक्षा करते हो और वैष्णव धर्म की शिक्षा भी तुम ही देते हो ॥३६॥ तुम्हारी कृपा से ही ब्रह्मदेव सृष्टि करते हैं। तुम्हारी ही सेवासदा श्री रेवती, वारुणी और कान्ति किया करती हैं ॥ ३७ ॥ तुम्हारे ही क्रोध से महारुद्र का अवतार होता है। उन्हीं के द्वारा तुम सृष्टि का संहार करते हो ॥ ३८ ॥ जैसा कि विष्णु पुराण में (२. ५. १९) में कहा है कि "कल्प के अन्त में जिनके (अनन्तदेव के) अनेक मुखों से विषमय अग्नि शिखा से उज्ज्वल संकर्षणात्मक रुद्र प्रकट होकर तीनों लोकों को ग्रस लेते हैं ॥ ३९ ॥ "तुम सब कुछ करके भी कुछ नहीं करते हो। तुम अनन्त

"सकल करिया तुमि किछु नाहि कर'। अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ ! तुमि वक्षे धर ॥४०॥
परम-कोमल सुख-विग्रह तोमार। जे विग्रहे करे कृष्ण शयन विहार ॥४१॥
से हेन श्रीअङ्गे आमि करिलुँ प्रहार। मुञि हेन दारुण पातकी नाहि आर ॥४२॥
पार्वती-प्रभृति नवार्बुद नारी लैया। जे अङ्ग पूजये शिव–जीवन करिया ॥४३॥
जे अङ्ग-स्मरणे सर्व-वन्ध-विमोचन। हेन अङ्गे रक्त पड़े मोहर कारण ॥४४॥
चित्रकेतु-महाराजा जे अङ्ग सेविया। सुखे विहरये वैष्णवाग्रगण्य हैया ॥४५॥
जे अङ्ग सेविया शौनकादि ऋषि गण। पाइल नैमिषारण्ये वन्ध विमोचन ॥४६॥
अनन्त ब्रह्माण्ड करे जे अङ्ग स्मरण। हेन अङ्गे मुञि पापी करिलुँ लङ्घन ॥४७॥
जे अङ्ग लङ्घिया इन्द्रजित गेल क्षय। जे अङ्ग लङ्घिया द्विविदेर नाश हय ॥४८॥
जे अङ्ग लङ्घिया नाश गेल जरासन्ध। आरो मोर कुशल ! लङ्घिलुँ हेन अङ्ग ॥४९॥
लङ्घनेर कि दाय, जाहार अपमाने। कृष्णेर श्यालक 'रुक्मी' त्यजिल पराणे ॥५०॥
दीर्घ-आयु ब्रह्मासन पाइयाओ सूत। तोमा' देखि ना उठिल, हैल भस्मी भूत ॥५१॥
जाँर अपमान करि राजा दुर्योधन। स वान्धवे राजपुरे पाइल मरण ॥५२॥
दैव जोगे छिला तथा महा भक्त गण। ताँरा सब जानिलेन तोमार कारण ॥५३॥
कुन्ती, भीष्म, युधिष्ठिर, विदुर, अर्जुन। ताँ' सभार वाक्ये पुर पाइलेन पुन ॥५४॥
जाँर अपमान-मात्र जीवनेर नाश। मुञि-दारुणेर कोन् लोके हैव वास" ॥५५॥
वलिते वलिते प्रेमे भासये माधाइ। वक्षे दिया श्रीचरण पडिला तथाइ ॥५६॥

ब्रह्माण्डों के नाथ को अपने वक्षःस्थल पर धारण कर रहे हो ॥ ४० ॥ तुम्हारा श्री विग्रह परम कोमल है, और सुख स्वरूप है कि जिस पर श्रीकृष्ण शयन और विहार करते हैं ॥ ४१ ॥ "ऐसे तुम्हारे श्रीअङ्ग पर मैंने प्रहार किया (अतएव) मुझ जैसा घोर पापी और कोई नहीं है । ४२ ॥ जिस श्रीअङ्ग को जीवन सर्वस्व समझ शिवजी पार्वती आदि नौ अरब स्त्रियों को लेकर पूजा करते हैं ॥ ४३ ॥ "जिस अङ्ग के स्मरण से सब बन्धन टूट जाते हैं, ऐसे अङ्ग में से मेरे कारण रक्त बहा ॥ ४४ ॥ जिस अङ्ग की सेवा करके चित्रकेतु महाराज वैष्णवों में अग्रगण्य बन कर सुख पूर्वक विहार कर रहे हैं ॥ ४५ ॥ "जिस अङ्ग का सेवन करके शौनकादि ऋषियों ने नैमिषारण्य में बन्धन से मुक्ति पाई ॥ ४६ ॥ जिस अङ्ग का अनन्त ब्रह्माण्ड स्मरण करते हैं, उस अङ्ग से मैंने विरोध किया ॥ ४७ ॥ "(जिस अङ्ग से विरोध करके रावण वंश सहित ध्वंस हुआ) जिस अङ्ग से विरोध करके इन्द्रजीत नष्ट हुआ । जिस अङ्ग से विरोध करके द्विविद नष्ट हुआ ॥ ४८ ॥ जिस अङ्ग से विरोध करके जरासन्ध का नाश हुआ, ऐसे उस अङ्ग से विरोध करके फिर मेरी कुशलता कैसी ? ॥ ४९ ॥ "विरोध वैर तो दूर रहे जिसके अपमान से ही श्रीकृष्ण के साले रुक्मी को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े थे ॥ ५० ॥ सूत को दीर्घायु और ब्रह्मासन (व्यासासन) प्राप्त थे परन्तु वह तुमको देख कर न उठा, इसलिए भस्म हो गया ॥५१॥ "जिस अङ्ग के अपमान करने से राजा दुर्योधन बन्धु–बान्धवों के साथ राजपुर में मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ५२ ॥ दैवयोग से वहाँ बड़े २ भक्तजन थे । वे सब समझ गये कि तुम्हारे कारण हो ऐसा हुआ ॥ ५३ ॥ "पश्चात् श्री कुन्ती, भीष्म, युधिष्ठिर, विदुर, अर्जुन आदि सब के कहने पर वे पुनः पुर को प्राप्त हुए ॥ ५४ । अतएव जिन (श्रीअङ्ग) के अपमान मात्र मे जीवन का नाश हो जाता है तो (फिर कहिये) मुझ जैसे घोर पापी को किस लोक में ठौर मिलेगी" ? ॥ ५५ ॥ इस प्रकार कहते २ मधाइ प्रेम में बहा जा रहा है । वह श्री चरणों को अपनी छाती पर धारण करके वहीं पड़ गया ॥ ५६ ॥ जिन

"जे चरण धरिले ना जाइ कभू नाश। पतितेर त्राण लागि जाहार प्रकाश ॥५७॥
शरणागतेरे बाप ! कर' परित्राण। माधाइर तुमि से जीवन धन प्राण ॥५८॥
जय जय जय पद्मावतीर नन्दन। जय नित्यानन्द–सर्व वैष्णवेर धन ॥५९॥
जय जय अक्रोध परमानन्द राय। शरणागतेर दोष क्षमिते जुयाय ॥६०॥
दारुण चण्डाल मुञि कृतघ्न गोखर। सर्व-अपराध प्रभु ! मोर क्षमा कर" ॥६१॥
माधाइर काकु-प्रेम शुनिञा स्तवन। हासि नित्यानन्द-राय वलिला वचन ॥६२॥
"उठ उठ माधाइ ! आमार तुमि दास। तोमार शरीरे हैल आमार प्रकाश ॥६३॥
शिशु-पुत्रे मारिले कि वापे दुःख पाय। एइ मत तोमार प्रहार मोर गा'य ॥६४॥
तुमि जे करिले स्तुति, इहा जेइ शुने। सेह भक्त हइवेक आमार चरणे ॥६५॥
आमार प्रभुर तुमि अनुग्रह पात्र। आमाते तोमार दोष नाहि तिल-मात्र ॥६६॥
जे जन चैतन्य भजे, से-इ मोर प्राण। जुगे जुगे आमि तार करि परित्राण। ६७।
ना भजे चैतन्य जवे मोरे भजे गाय। मोर दुःख सेहो जन्मे जन्मे दुःख पाय" ॥६८॥
एत वलि तुष्ट हैया दिला आलिङ्गन। सर्व दुःख माधाइर हैल विमोचन ॥६९॥
पुन बोले माधाइ धरिया श्रीचरण। "आर एक प्रभु ! मोर आछे निवेदन ॥७०॥
सर्व-जीव-हृदये बसह प्रभु ! तुमि। हेन जीव बहु हिंसा करियाछि आमि ॥७१॥
कारे वा करिलुँ हिंसा ताहा नाहि चिनि। चिनिले वा अपराध मागिये आपनि ॥७२॥
जा' सभार स्थाने करिलाङ अपराध। कोन् रूपे तारा मोरे करिव प्रसाद। ७३॥

श्री चरणों को पकड़ लेने पर कभी नाश नहीं होता, जिन श्री चरणों का प्रकाश पतितों के उद्धार के लिए ही है ॥ ५७ ॥ (मधाइ बोला)–'हे पिता ! मुझ शरणागत की रक्षा करो ! इस मधाइ के तो तुम ही जीवन धन प्राण हो ॥ ५८ ॥ पद्मावती नन्दन की जय हो, जय हो। सब वैष्णवों के धन श्री नित्यानन्द की जय हो ॥ ५९ ॥ "अक्रोध परमानन्द राय की जय हो जय हो। शरणागत के दोष तो क्षमा के ही योग्य हैं ॥ ६० ॥ मैं घोर चाण्डाल हूँ, कृतघ्न हूँ, गधा हूँ। हे प्रभो ! मेरे सब अपराधों को क्षमा करो ॥ ६१ ॥ मधाई की दीनता और प्रेम से भरे हुए स्तुति को सुन करके श्री नित्यानन्द राय हँस कर बोले ॥६२॥ "उठो ! मधाइ ! उठो ! तुम तो मेरे दास हो। तुम्हारे शरीर में मेरा प्रकाश हुआ है ॥ ६३ ॥ "बालक पुत्र के मार देने से क्या पिता को दुःख होता है। मेरे शरीर पर तुम्हारा प्रहार भी ऐसा हीं है ॥ ६४ । तुमने जो मेरी स्तुति की है, उसे जो सुनेगा, वे भी मेरे चरणों का भक्त बनेगा ॥६५॥ मेरे प्रभु के तुम कृपा पात्र हो। मेरे निकट तुम्हारा तिल भर भी दोष नहीं है ॥ ६६ ॥ जो जन श्री चैतन्य चन्द्र का भजन करते हैं, वे ही मेरे प्राण हैं, और मैं युग २ में उनकी रक्षा करता हूँ ॥६७। और जब श्री चैतन्य चन्द्र को तो नहीं भजता है और मुझको भजता है और गाता है तो मुझे उससे जो दुःख होता है उससे वह भी जन्म २ में दुःख पाता है" ॥ ६८ ॥ इतना कह कर नित्यानन्द प्रभु ने संतुष्ट होकर उसे अपना आलिंगन दिया। मधाइ के सब दुःख दूर हो गये ॥६९॥ प्रभु के श्री चरणों को पकड़ कर मधाइ फिर बोला–"हे प्रभो ! एक निवेदन मेरा और है" ॥७०॥ "हे प्रभो ! सब जीवों के हृदय में तुम ही निवास करते हो। ऐसे बहुत से जीवों की मैंने हिंसा की है ॥७१॥ (परन्तु) किस २ की हिंसा की है मैं उनको पहचानता नहीं हूँ। यदि पहचान पाता तो अपने आप मैं उनसे अपराधों के लिए क्षमा चाहता ॥ ७२ ॥ "(ऐसी दशा में) जिन सब के निकट मैंने अपराध किये हैं, वे सब किस प्रकार मेरे ऊपर प्रसन्न होंगे ? ॥ ७३ ॥ हे प्रभो ! जब तुम मेरे ऊपर इतने दयालु बने हो तो हे महा-

जदि मोरे प्रभु ! तुमि हइला सदय। इथे उपदेश मोरे कर महाशय ॥७४॥
प्रभु बोले "शुन कहि तोमारे उपाय। गङ्गा घाट तुमि सज्ज करह सदाय ॥७५॥
सुखे लोक जखने करिव गङ्गा स्नान। तखने तोमारे सभे करिव कल्याण ॥७६॥
अपराध-भञ्जनी गङ्गार सेवा कार्य। इहाते अधिक वा तोमार कोन् भाग्य ॥७७॥
काकु करि सभारे करिह नमस्कार। सब अपराध तवे क्षमिव तोमार ॥७८॥
उपदेश पाइया माधाइ ततक्षणे। चलिला प्रभुरे करि बहु प्रदक्षिणे ॥७९॥
'कृष्ण कृष्ण बलिते नयने बहे जल। गङ्गा घाट सज्ज करे, देखये सकल ॥८०॥
लोके देखि करे बड़ अपरूप ज्ञान। सभारे माधाइ करे दण्ड परणाम ॥८१॥
'ज्ञाने वा अज्ञाने जत कैलुँ अपराध। सकल क्षमिया मोरे करह प्रसाद" ॥८२॥
माधाइर क्रन्दने कान्दये सर्व जन। आनन्दे 'गोविन्द' सभे करये स्मरण ॥८३॥
शुनिल सकल लोके 'निमाञ्चि पण्डित। जगाइ-माधाइर कैल उत्तम चरित" ॥८४॥
शुनिञा सकल लोक हइला विस्मित। सभे बोले "नर नहे निमाञ्चि पण्डित ॥८५॥
ना बुझि निन्दये जत सकल दुर्जन। निमाञ्चि पण्डित सत्य करये कीर्त्तन ॥८६॥
निमाञ्चि पण्डित सत्य गोविन्देर दास। नष्ट हैव-जे तारे करिवे परिहास ॥८७॥
ए-दुइर बुद्धि भाल जे करिते पारे। सेइ वा ईश्वर, कि ईश्वर-शक्ति धरे ॥८८॥
प्राकृत मानुष नहे निमाञ्चि पण्डित। एवे से महिमा तान हइल विदित" ॥८९॥
एइ मत नदियार लोक कहे कथा। आर लोक ना मिशाय-निन्दा हय जथा ॥९०॥
परम-कठोर तप करये माधाइ। 'ब्रह्मचारी' हेन ख्याति हइल तथाइ ॥९१॥

शय ! इस विषय में भी मुझे उपदेश करो" ॥ ७४ ॥ प्रभु बोले–"सुनो ! तुमको उपाय बतलाता हूँ। तुम सदा गङ्गा जी के घाटों को साफ किया करो ॥ ७५ ॥ उससे सुख पाकर जब लोग गङ्गा स्नान करेंगे तो सब तुम्हारा कल्याण करेंगे" ॥ ७६ ॥ "देखो ! गङ्गा जी की सेवा समस्त अपराधों का भंजन करने वाली है। इससे अधिक तुम्हारा और क्या भाग्य होगा ॥ ७७ ॥ "तुम अति दीनता के साथ सब को नमस्कार करना। वे तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा करेंगे ॥ ७८ ॥ ऐसा उपदेश पाने पर मधाइ उसी समय प्रभु की बहुत सी प्रदक्षिणा करके चल पड़ा ॥ ७९ ॥ (घाट पर) मधाइ "कृष्ण २" कहता हुआ नेत्रों से अश्रु-जल बहा रहा है और गङ्गा के घाटों को साफ कर रहा है–सब ने यह देख पाया ॥ ८० ॥ देख कर लोगों को बड़ा ही आश्चर्य मालूम होता है। मधाइ सब को दण्डवत् प्रणाम करता है ॥ ८१ ॥ (और कहता है) "मैंने जान–अनजान में जितने अपराध किये हैं उनको आप सब क्षमा करके मुझ पर कृपा करें ॥ ८२ ॥ मधाइ के रोने पर सब लोग रो पड़ते हैं और आनन्द से "गोविन्द २" कहते हुए प्रभु का स्मरण करते हैं ॥ ८३ ॥ (अब तो) सब लोगों ने सुन पाया कि निमाइ पण्डित ने जगाइ–मधाइ को उत्तम चरित्रवान् बना दिया है ॥८४॥ सुनकर सब लोगों ने बड़ा अचरज माना और वे कहने लगे "निमाइ पण्डित मनुष्य नहीं है ॥८५॥ "बिना समझे ही दुष्ट लोग सब उनकी निन्दा करते हैं। निमाइ पण्डित सचमुच कीर्त्तन ही करते हैं ॥ ८६॥ निमाइ पण्डित श्री गोविन्द के सच्चे दास हैं। जो उनकी हँसी उडायँगे वे नष्ट हो जायँगे ॥ ८७ ॥ "जो इन दोनों की बुद्धि को उत्तम बना सकते हैं, वे या तो ईश्वर हैं या ईश्वर के समान शक्ति धारी हैं ॥८८॥ (अवश्य) ही निमाइ पण्डित प्राकृत मनुष्य नहीं है। अब उनकी महिमा प्रकट हो गई" ॥८९॥ इस प्रकार नदिया के लोग कहने लगे और उन्होंने प्रभु की निन्दा करने वालों से मिलना जुलना छोड़ दिया ॥ ९० ॥ इधर

निरवधि गङ्गा देखि थाके गङ्गा घाटे। स्वहस्ते कोदालि लइ आपनेइ खाटे ॥९२॥
अद्यापिह चिह्न आछे चैतन्य-कृपाय। 'माधाइर घाट' वलि सर्व लोके गाय ॥९३॥
एइ मत सत्कीर्ति हैल दोंहाकार। चैतन्य प्रसादे दुइ-दस्युर उद्धार ॥९४॥
मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड। जाहाते उद्धार दुइ परम-पाषण्ड ॥९५॥
महा प्रभु गौरचन्द्र सभार कारण। इहा शुनि जार दुःख, खल सेइ जन ॥९६॥
चारि वेद-गुप्त-धन चैतन्येर कथा। मन दिया शुन जे करिल जथा जथा ॥९७॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥९८॥

अथ सोलहवाँ अध्याय

हेममते नवद्वीपे विश्वम्भर-राय। भक्त-सङ्गे सङ्कीर्त्तन करये सदाय। १॥
द्वार दिया निशा भागे करये कीर्त्तन। प्रवेशिते नारे भिन्न-लोक कोन जन ॥२॥
एक दिन नाचे प्रभु श्रीवासेर वाड़ी। घरे छिल लुकाइया श्रीवास-शाशुड़ी ॥३॥
ठाकुर पण्डित-आदि केहो नाहि जाने। डोल मुण्डे दिया आछे घरे एक कोणे ॥४॥
लुकाइले कि हयु अन्तरे भाग्य नाइ। अल्प-भाग्ये सेइ नृत्य देखिते ना पाइ ॥५॥
नाचिते नाचिते प्रभु बोले घने-घन। "उल्लास आमार आजि नहे कि कारण" ॥६॥
सर्व-भूत अन्तर्यामि—जानेन सकल। जानिआओ ना कहेन, करे कुतूहल। ७॥
पुनः पुन नाचि बोले "सुख नाहि पाइ। केवा जानि लुकाइया आछे कोन् ठाँइ" ॥८॥

मधाइ परम कठोर तप करने लगा। नदिया में वह "ब्रह्मचारी" नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥ ९१ ॥ वह निरन्तर गङ्गा जी का दर्शन करता हुआ गङ्गा घाट पर ही रहता है और अपने हाथ में कुदाली लेकर अपने आप ही कड़ी मेहनत करता है ॥ ९२ ॥ श्री चैतन्य को कृपा से आज भी उसके चिन्ह हैं। सब लोग उसे 'मधाइ—घाट' के नाम से पुकारते हैं ॥ ९३ ॥ इस प्रकार दोनों ने सत्कीर्ति कमाई। श्री चैतन्य की कृपा से दो डाकुओं का उद्धार हुआ ॥ ९४ ॥ मध्यखण्ड की कथा मानो अमृत का खण्ड है, जिसमें दो परम पाखंडियों के उद्धार की कथा है ॥ ९५ ॥ महाप्रभु श्री गौरचन्द्र सब के कारण (मूल) हैं—यह सुनकर जिसे दुःख हो, वह जन खल है ॥ ९६ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र की कथा चारों वेदों का गुप्त धन है। प्रभु ने जहाँ २ जो २ किया वह सब मन देकर सुनो ॥ ९७ ॥ श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जानकर यह वृन्दावन दास उनके श्री चरण युगल में उनके गुणगान को समर्पण करता है ॥ ९८ ॥

इति जगाइ—मधाइ—चरित्र वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार नवद्वीप में श्री विश्वम्भर राय भक्तों के साथ नित्य संकीर्त्तन करते हैं ॥ १ ॥ कीर्त्तन रात्रि के समय द्वार बन्द करके करते हैं (जिसमें) कोई भी अन्य लोग प्रवेश नहीं कर पाते हैं ॥ २ ॥ एक दिन प्रभु श्रीवास के घर में नाच रहे हैं भीतर घर में श्रीवास की सास छिप करके बैठी है ॥ ३ ॥ पण्डित श्रीवास आदि कोई भी नहीं जानते हैं। वह कोठी मे सिर देकर छिपी बैठी है ॥४। पर छिपने से क्या होता है, भाग्य तो नहीं है। थोड़े भाग्य से वह नृत्य देखने को नहीं मिलता है ॥ ५ ॥ प्रभु नाचते २ बारम्बार कहने लगे कि "क्या कारण है जो मेरे हृदय में उल्लास नहीं हो रहा है ?" ॥ ६ ॥ प्रभु सब जीवों के घट घट वासी हैं—अतएव सब जानते हैं, पर जान करके भी नहीं कहते—कौतुक करते हैं ॥७॥ प्रभु नाचते हुए बार-

सर्व वाड़ी विचार करिल जने जने। श्रीवास चाहिल घर सकल आपने ॥९॥
"भिन्न केहो नाहि" वलि करये कीर्त्तन। उल्लासे नाचये प्रभु श्रीशचीनन्दन ॥१०॥
आर बार रहि बोले "सुख नाहि पाइ। आजिवा आमारे कृष्ण-अनुग्रह नाइ" ॥११॥
महा त्रासे चिन्ते' सब भागवत गण। "आमा' सभा' वइ आर नाहि कोनो जन ॥१२॥
आमराइ कोन वा करिल अपराध। अतएव प्रभु चित्ते ना पाय प्रसाद ॥१३॥
आर वार ठाकुर पण्डित घरे गिया। देखे निज शाशुड़ी आछे लुकाइया। १४॥
कृष्णावेशे महामत्त ठाकुर पण्डित। जार वाह्य नाहि, तार किसेर गर्वित ॥१५॥
विशेषे प्रभुर वाक्ये कम्पित-शरीर। आज्ञा दिया चूले धरि करिला वाहिर ॥१६॥
केहो नाहि जाने इहा, आपने से जाने। उल्लासित विश्वम्भर नाचे ततक्षणे ॥१७॥
प्रभु बोले "चित्ते एवे वासिये उल्लास"। हासिया कीर्त्तन करे पण्डित-श्रीवास ॥१८॥
महानन्दे हइल कीर्त्तन कोलाहल। हासिया पड़ये सब वैष्णव मण्डल। १९॥
नृत्य करे गौर सिंह महा कुतूहली। धरिया वुलेन नित्यानन्द महाबली ॥२०॥
चैतन्येर लीला केवा देखिवारे पारे। से'इ देखे, जारे प्रभु देन अधिकारे ॥२१॥
एइ मत प्रतिदिन हरि सङ्कीर्त्तन। गौरचन्द्र करे, नाहि देखे सर्व जन ॥२२॥
आर एक दिन प्रभु नाचिते नाचिते। ना पाय उल्लास, प्रभु चा'य चारि भिते ॥२३॥
प्रभु बोले "आजि केने सुख नाहि पाइ। किवा अपराध हइयाछे कार ठाँइ" ॥२४॥
स्वभावे चैतन्य भक्त आचार्य गोसाञि। चैतन्येर दास्य वइ मने आर नाञि ॥२५॥

बारम्बार कहते हैं कि "आज सुख नहीं मिलता। कौन जाने घर में कहीं कोई छिपा हुआ हो" ॥८॥ सब लोगघर में देखने लगे श्रीवास ने स्वयं सारा घर देख डाला ॥९॥ "बाहर वाला तो यहाँ कोई नहीं हैं"-ऐसा कह कर सब कीर्त्तन करने लगे, प्रभु श्री शचीनन्दन भी उल्लास पूर्वक नाचने लगे ॥ १० ॥ परन्तु फिर रुक कर बोले—"सुख नहीं आ रहा है। आज मेरे ऊपर श्रीकृष्ण की कृपा नहीं हैं" ॥ ११ ॥ सब भागवत गण महा त्रस्त होकर सोचते हैं—"हमारे अतिरिक्त तो यहाँ और कोई है नहीं ॥ १२ ॥ कदाचित् हम लोगों ने ही कोई अपराध किया है। जिसके कारण प्रभु का चित्त प्रसन्न नहीं हो पाता है" ॥ १३ ॥ श्रीवास पण्डित दूसरी बार घर के भीतर गये तो देखा कि उनको अपनी सास दुवकी बैठी है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण के भावावेश में महामत्त श्रीवास पण्डित को अपनी देह की ही सुध बुध नही है फिर बड़े-छोटे का विचार कहाँ ॥ १५ ॥ और उस पर प्रभु के वचन से उनका शरीर काँप रहा है। अतएव उन्होंने अपनी सास को "निकल यहाँ से" ऐसी आज्ञा देकर उसे केशों से पकड़ बाहर कर दिया ॥ १६ ॥ इस बात को कोई नहीं जानता है, एक श्री वास जी ही जानते हैं। इधर प्रभु उसी क्षण बड़े उल्लास के साथ नाचने लगे ॥ १७ ॥ प्रभु बोले—"अब चित्त में उल्लास का अनुभव कर रहा हूँ"। (सुनकर) श्रीवास पण्डित हँस कर कीर्त्तन करते हैं ॥१८॥ तब तो बड़े आनन्द में कीर्त्तन का कोलाहल होने लगा ओर सब वैष्णव मंडली हँस २ कर लोट पोट होने लगी ॥ १९ ॥ महा कौतुकी गौरसिंह नृत्य कर रहे हैं और महाबली उनको सम्हाले हुए घूम रहे हैं ॥२०॥ श्री चैतन्य चन्द्र की लीला कौन देख सकता है। हाँ जिसको वे अधिकार देते हैं वहीं देख पाता है ॥ २१ ॥ इस प्रकार श्री गौरचन्द्र नित्य हरि संकीर्त्तन करते हैं, पर सब लोग उसे देख नहीं पाते हैं ॥ २२ ॥ और एक दिन भी प्रभु को नाचते २ कोई उल्लास नहीं मिला, तो वे चारों ओर देखने लगे ॥ २३ ॥ प्रभु बोले—"आज मुझे सुख क्यों नहीं मिल रहा है। न जाने किसी का क्या अपराध मुझ से हो गया" ॥ २४ ॥ श्री

जखन खट्टाय उठे प्रभु विश्वम्भर। चरण अर्पये सर्व-शिरेर उपर ।।२६।।
जखन ठाकुर निज ऐश्वर्य प्रकाशे'। तखन अद्वैत सुख-सिन्धु-माझे भासे ।।२७।।
प्रभु बोले "आरे नाढ़ा ! तुइ मोर दास। तखन अद्वैत पाय परम उल्लास ।।२८।।
अचिन्त्य गौराङ्ग तत्त्व बुझन ना जाय। सेइ क्षणे धरे प्रभु वैष्णवेर पा'य ।।२९।।
दशने धरिया तृण करये क्रन्दन। "कृष्णरे ! बापरे ! तुमि आमार जीवन" ।।३०।।
ए मत क्रन्दन करे-पाषाण विदरे। निरन्तर दास्य भावे प्रभु केलि करे ।।३१।।
खण्डिले ईश्वर भाव सभाकार स्थाने। असर्वज्ञ-हेन प्रभु जिज्ञासे आपने ।।३२।।
"किछु-निचाश्चल्य मुञ्चि उपाधिक करों। वलिह आमारे जेन तखनेइ मरों ।।३३।।
कृष्ण मोर प्राण धन, कृष्ण मोर धर्म। तोमरा आमार भाइ ! वन्धु जन्म जन्म ।।३४।।
कृष्ण दास्य वइ मोर आर नाहि गति। वलिह आमारे पाछे हय अन्य मति" ।।३५।।
भये सब वैष्णव करेन सङ्कोचन। हेन प्राण नाहि कारो–करिव कथन ।।३६।।
एइ मत जखन आपने आज्ञा करे। तखन से चरण स्पर्शिते केहो पारे ।।३७।।
निरन्तर दास्य भावे वैष्णव देखिया। चरणेर धूली लय सम्भ्रमे उठिया ।।३८।।
इहाते वैष्णव सब दुःख पाय मने। अतएव सभारे करये आलिङ्गने ।।३९।।
गुरु-वुद्धि अद्वैतेरे करे निरन्तर। एतेके अद्वैत दुःख पाय वहुतर ।।४०।।
आपनेह सेविते साक्षाते नाहि पाय। उलटिया आरो प्रभु धरे दुइ पा'य। ४१।।
जे चरण मने चिन्ते' से हैल साक्षाते। अद्वैतेर इच्छा थाके सदाइ ताहाते ।।४२।।

अद्वैताचार्य जी स्वभाव से ही श्री चैतन्य चन्द्र के भक्त हैं। उनके मन में श्री चैतन्य के दासत्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।। २५ ।। जिस समय विश्वम्भर प्रभु विष्णु सिंहासन पर चढ़ बैठते हैं और सब भक्तों के शिर पर अपना चरण अर्पण करते हैं ।। २६ ।। जिस समय गौरचन्द्र प्रभु अपना ऐश्वर्य प्रकाशित करते हैं, तब उस समय अद्वैत प्रभु सुख के सागर में बहने लगते हैं ।। २७ ।। प्रभु कहते हैं–"अरे नाढा ! तू मेरा दास है"। तब तो अद्वैत जी को परम आनन्द प्राप्त होता है ।। २८ ।। श्री गौरांग का तत्त्व अचिन्त्य है समझ में नहीं आता है (कारण कि) उसी समय क्षण भर में प्रभु वैष्णवों के पाँव पकड़ने लग जाते हैं। २९।। (तथा) दाँतों में तिनका लेकर रोते हैं और "कृष्ण हे ! बाप हे ! तुम्ही मेरे जीवन हो" कह २ कर पुकारते हैं ।।३०।। प्रभु ऐसा रोते हैं कि सुनकर पत्थर भी फट जाय। (इस प्रकार) प्रभु निरन्तर दास भाव में लीला करते हैं ।। ३१।। ईश्वर भाव के तिरोभाव होने पर प्रभु असर्वज्ञ की भाँति स्वयं सब से पूछते हैं ।। ३२ ।। "मैंने कुछ अस्वाभिक चंचलता तो नहीं की ? की हो तो कहो। मैं अपने प्राणों को त्याग दूँगा ।। ३३ ।। श्रीकृष्ण मेरे प्राणधन हैं, श्रीकृष्ण मेरे धर्म हैं, और तुम सब मेरे भाई हो, जन्म २ के बन्धु हो ।। ३४ ।। "श्रीकृष्ण की दासता के बिना मेरी और कोई गति नहीं है। यदि पीछे कभी मेरी मति कुछ और हो जाय तो मुझसे कह देना ।। ३५ ।। (परन्तु) वैष्णव लोग भय के मारे सब संकोच करते हैं, किसी में यह दम नहीं कि कुछ कह दें ।। ३६ ।। इस प्रकार जब स्वयं प्रभु आज्ञा करते हैं तभी कोई उनके चरण स्पर्श कर सकता है ।। ३७ ।। प्रभु निरन्तर दास भाव में रहते हैं, और वैष्णवों को देखते ही सम्भ्रम सहित उठकर उनकी चरण धूल लेते हैं ।। ३८ ।। इससे वैष्णव सब मन में दुःख पाते हैं अतएव प्रभु फिर सब को आलिंगन करते हैं ।। ३९ ।। श्री अद्वैत के प्रति प्रभु सदैव गुरु-बुद्धि रखते हैं, इससे अद्वैत जी बड़ा दुःख पाते हैं ।। ४० ।। (कारण कि) वे आप तो प्रभु की साक्षात् सेवा कर नहीं पाते हैं, और उल्टे प्रभु ही उनके दोनों पाँव पकड़ लेते हैं ।।४१।।

साक्षाते ना पारे, प्रभु करियाछे राग। तथापिह चूरि करे चरण-पराग ॥४३॥
भावावेशे प्रभु जे समये मूर्च्छा पाय। तखने अद्वैत चरणेर पाछु जाय ॥४४॥
दण्डवत् हइ पड़े चरणेर तले। पाखाले चरण दुइ-नयनेर जले ॥४५॥
कखनो वा निछिया पूँछिया लय शिरे। कखनो वा षड़ङ्ग-विहित पूजा करे ॥४६॥
एहो कर्म अद्वैत करिते पारे मात्र। प्रभु करियाछे जारे महा महापात्र ॥४७॥
अत एव अद्वैत सभार अग्रगण्य। सकल वैष्णव बोले "अद्वैत से धन्य ॥४८॥
अद्वैत सिंहेर एइ एकान्त महिमा। ए रहस्य ना जानये दुष्ट जत जना ॥४९॥
एक दिन महा प्रभु विश्वम्भर नाचे। आनन्दे अद्वैत तान वुले पाछे पाछे ॥५०॥
'हइल प्रभुर मूर्च्छा' अद्वैत वुझिया। लेपिला चरण धूला अङ्गे लुकाइया ॥५१॥
अशेष कौतुक जाने प्रभु गौर राय। नाचिते नाचिते प्रभु सुख नाहि पाय ॥५२॥
प्रभु कहे "चित्ते केने ना वासों प्रकास। कार् अपराधे मोर ना हय उल्लास ॥५३॥
कोन् चोरे आमारे वा करियाछे चुरि। सेइ अपराधे आमि नाचिते ना पारि ॥५४॥
केहो वा कि लइयाछे मोर पद धूली। सभे सत्य कह, चिन्ता नाहि आमि वलि ॥५५॥
अन्तर्यामि-वचन शुनिञा भक्त गण। भये मौन सभे, केहो ना बोले वचन ॥५६॥
वलिते अद्वैत-भय, ना वलिले मरि। वुझिया अद्वैत बोले जोड़ हाथ करि ॥५७॥
"शुन बाप! चोरे यदि साक्षाते ना पाय। तवे तार अगोचरे चूरि से जुयाय ॥५८॥

जिन चरणों का वे मन में चिन्तन किया करते हैं, वे अब साक्षात् प्रकट हो गये है, उनमें ही सदा अद्वैत की इच्छा रहती है ॥ ४२ ॥ वे उन श्री चरणों की साक्षात् सेवा तो कर नहीं सकते कारण कि प्रभु रुष्ट होते हैं परन्तु तथापि चरण-रज को चोरी करते हैं ॥ ४३ ॥ प्रभु जिस समय भावावेश में मूर्च्छित हो जाते हैं, तब अद्वैत जी उनके चरणों के पीछे की ओर जाते हैं ॥ ४४ ॥ और चरण तल पर दन्डवत् पड़ जाते हैं और नेत्रों के जल से दोनों चरणों को पखारने लगते हैं ॥ ४५ ॥ कभी बलैया लेते है. पोंछते हैं, औप मस्तक पर लगा लेते हैं, तो कभी षाड़ाङ्ग पूजा श्री चरणों की करते हैं ॥ ४६ ॥ इस कर्म को केवल एक श्री अद्वैत ही कर सकते हैं कि जिनको प्रभु ने (अपनी कृपा का) महान् से महान् पात्र बनाया है ॥ ४७ ॥ अतएव श्री-अद्वैत सब वैष्णवों के अग्रगण्य हैं और सब वैष्णव वृन्द उनको हो धन्य कहते हैं ॥ ४८ ॥ श्री अद्वैत सिंह की यही ऐकान्तिक महा महिमा है। इस रहस्य को दुष्ट लोग नहीं जानते हैं ॥ ४९ ॥ एक दिन महा प्रभु विश्वम्भर नाच रहे हैं और श्री अद्वैत आनन्द में पीछे २ घूम रहे हैं ॥ ५० ॥ प्रभु मूर्च्छित हो पड़े-यह जान कर अद्वैत जी ने चुपके से उनकी चरण रज ले अपने अङ्ग में लगा ली ॥ ५१ ॥ प्रभु गौर राय भी अनन्त कौतुक जानते हैं। (मूर्च्छा भंग के पश्चात् जब वे नाचने लगे तो) नाचते २ प्रभु को सुख नहीं मिला ॥५२॥ तब प्रभु बोले—"मैं अपने चित्त में प्रकाश का अनुभव क्यों नहीं कर रहा हूँ ? किसके अपराध से मेरे चित्त को उल्लास नहीं हो रहा है ॥५३॥ "अथवा तो किसी चोर ने मेरी चोरी की हैं। उसी अपराध से मैं नाच नहीं पाता हूँ ॥५४। अथवा क्या किसी ने मेरे पाँव की धूल ली है ? मैं कहता हूँ कि सब सच्ची बात बतला देवें कोई चिन्ता न करें ॥ ५५ ॥ अन्तर्यामी प्रभु के बचनों को सुनकर भक्त लोग सब भय से मौन हैं कोई कुछ नहीं कहता है ॥ ५६ ॥ यदि कहैं तो इधर अद्वैत का भय और न कहें तो उधर मरते हैं (प्रभु का भय) भक्तों के संकट को समझ कर अद्वैत प्रभु हाथ जोड़ कर बोले ॥ ५७ ॥ "बाप जी! सुनो! यदि चोर को साक्षात् में नहीं मिले तो फिर पीठ पीछे चुरा लेना ही उसके लिए ठीक है ॥ ५८ ॥ मैंने ही चोरी की है,

मुञि चूरि करियाछों, मोर क्षम' दोष। आर ना करिव यदि तोमा' असन्तोष" ॥५९॥
अद्वैतेर वाक्ये महाक्रुद्ध विश्वम्भर। अद्वैत महिमा क्रोधे बोलये विस्तर ॥६०॥
सकल संसार तुमि करिया संहार। तथापिह चित्ते नाहि वास' प्रतिकार ॥६१॥
संहारेर अवशेष सवे आछि आमि। आमा' संहारिवा तवे सुखे थाक तुमि ॥६२॥
तपस्वी संन्यासी ज्ञानी योगी ख्याति जार। कारे तुमि नाहि कर' शूलेते संहार ॥६३॥
कृतार्थ हइते जे आइसे तोमा' स्थाने। ताहारे संहार कर' धरिया चरणे ॥६४॥
मथुरा निवासी एक परम वैष्णव। तोमार देखिते आइल चरण-वैभव ॥६५॥
तोमा' देखि कोथा से पाइल विष्णु भक्ति। आरो संहारिले तार चिरन्तन-शक्ति ॥६६॥
लइया चरण धूली तारे कैला क्षय। संहार करिते तुमि परम-निर्दय ॥६७॥
अनन्त-ब्रह्माण्डे जत आछे भक्ति योग। सकल तोमारे कृष्ण दिला उपभोग ॥६८॥
तथापिह तुमि चूरि कर' क्षुद्र-स्थाने। क्षुद्र संहारिते कृपा नाहि वास' मने ॥६९॥
महा डाकाइत तुमि चोरे महा-चोर। तुमि से करिला चूरि प्रेम-सुख मोर ॥७०॥
एइ मत छले कहे सुसत्य वचन। शुनिञा आनन्दे भासे भागवत गण ॥७१॥
"तुमि से करिला चुरि, आमि कि ना पारि। हेर-देख चोरेर उपरे करों चुरि" ॥७२॥
एत वलि अद्वैतेरे आपने धरिया। लूटये चरण धूलि हासिया हासिया ॥७३॥
महाबली गौर सिंह, अद्वैत ना पारे। अद्वैत-चरण प्रभु घषे निज-शिरे ॥७४॥
चरण धरिया वक्षे अद्वैतेरे बोले। "हेर्-देख चोर बान्धिलाङ निज कोले ॥७५॥

मेरे दोष को क्षमा करो। यदि तुम असंतुष्ट हो तो मैं ऐसा फिर कभी नहीं करूँगा" ॥ ५९ ॥ अद्वैत के वाक्य से श्री विश्वम्भर महा क्रुद्ध हो गये और क्रोध में भरकर अद्वैत की बहुत कुछ महिमा बखानने लगे ॥ ६० ॥ (प्रभु बोले) "तुमने समस्त संसार का संहार किया, फिर भी उसके प्रतिकार का तुम्हारे चित में कुछ भान ही नहीं है ॥ ६१ ॥ अब मैं ही एक संहार के लिए शेष रह गया हूँ, सो अब मुझे मार कर तुम सुख से रहना ॥ ६२ ॥ "तपस्वी, संन्यासी, ज्ञानी, योगी इत्यादि नाम वालों में से तुम किसको अपने त्रिशूल से समाप्त नहीं कर देते हो ॥ ६३ ॥ जो तुम्हारे निकट कृतार्थ होने के लिए आता है, तुम उसका चरण पकड़ कर संहार करते हो ॥ ६४ ॥ "मथुरा वासी एक परम वैष्णव तुम्हारे चरण वैभव-दर्शन को आया ॥६५॥ पर तुम्हारे दर्शन कर उसे विष्णु भक्ति तो मिली नहीं, उल्टा तुमने उसकी पूर्व-शक्ति का ही संहार कर दिया ॥ ६६ ॥ "उसकी चरण धूल को लेकर उसको समाप्त कर दिया। तुम संहार कर देने में परम निर्दयी हो ॥ ६७ ॥ अनन्त ब्रह्माण्डों में जितना भक्ति योग है वह तो सब श्रीकृष्ण ने तुम्हारी भेंट कर दी ॥६८॥ "तथापि तुम क्षुद्र जनों की चोरी करते हो। छोटों को मार डालने में तुम्हारे दया-माया भी तो नहीं होती ॥६९॥ (अतएव) तुम महाडाकू हो, चोर हो, महा चोर हो। तुमने ही मेरे प्रेम-सुख को चोरी की है ॥७०॥ इस प्रकार (निन्दा) के बहाने से प्रभु सु-सत्य वचन कहते हैं, जिसे सुन २ कर भागवत जन आनन्द में बहने लगे ॥ ७१ ॥ (प्रभु फिर बोले) "तुमने चोरी की, क्या मैं नहीं कर सकता हूँ ? लो देखो अब मैं चोर की भी चोरी करता हूँ " ॥ ७२ ॥ इतना कह कर प्रभु ने अपने आप अद्वैत को पकड़ लिया और हँस २ कर उनकी चरण धूल लूटने लगे ॥ ७३ ॥ गौरसिंह महा बलवान् हैं, श्री अद्वैत उनसे पार नहीं पाते हैं। अतएव श्री अद्वैत के चरण ले ले कर प्रभु अपने मस्तक पर घिसते हैं ॥ ७४ ॥ चरणों को वक्षःस्थल पर रख कर श्री अद्वैत से कहते हैं "देख लो आँखें खोल कर, मैंने चोर को अपनी भुजाओं में बाँध लिया है ॥ ७५ ॥ चोर

करिते थाकये चुरि चोर शत बार। बारे के गृहस्थ सब करये उद्धार" ॥७६॥
अद्वैत बोलये "सत्य कहिला आपनि। तुमि जे गृहस्थ आमि किछुइ ना जानि ॥७७॥
प्राण, वुद्धि, मन, देह, सकल तोमार। के राखिव तुमि प्रभु! करिले संहार ॥७८॥
हरिषेरो दाता तुमि, तुमि देह, ताप। तुमि संहारिले वा राखिव कार् वाप ॥७९॥
नारदादि जाय प्रभु! द्वारका नगरे। तोमार चरण-धन-प्राण देखिवारे ॥८०॥
तुमि ता' सभार लह चरणेर धूली। से सब कि करे प्रभु! सेइ आमि वलि ॥८१॥
आपनार सेवक आपने जवे खाओ। कि करिव सेवके, आपने भावि चाओ ॥८२॥
कि दाय चरण धूलि, सेह रहु पाछे। काटिले तोमार शास्ता कोन् जन आछे ॥८३॥
तवे जे ए मत कर'—नहे ठाकुराली। आमार संहार हय, तुमि कुतूहली ॥८४॥
तोमार से देह, तुमि राख वा संहार'। जे तोमार इच्छा प्रभु! ताइ तुमि कर' ॥८५॥
विश्वम्भर बोले "तुमि भक्तिर भाण्डारी। एतेके तोमार चरणेर सेवा करि ॥८६॥
तोमार चरण-धूली सर्वाङ्गे लेपिले। भासये पुरुष कृष्ण प्रेम रस जले ॥८७॥
विने तुमि दिले भक्ति, केहो नाहि पाय। 'तोमार से आमि' हेन जान' सर्वथाय ॥८८॥
तुमि आमा' जथा वेच, तथाइ विकाइ। एइ सत्य कहिलाङ तोमार से ठाँइ" ॥८९॥
अद्वैतेर प्रति देखि कृपार वैभव। अपूर्व चिन्तये मने सकल वैष्णव ॥९०॥
"सत्य से सेविला प्रभु ए महा पुरुषे। कोटि मोक्ष तुल्य नहे ए कृपार लेशे ॥९१॥
कदाचित् ए प्रसाद शंकर से पाय। जाहा करे अद्वैतेरे श्रीगौराङ्ग राय ॥९२॥
आमराओ भाग्यवन्त हेन भक्त-सङ्गे। ए भक्तेर पद धूलि लइ सर्व-अङ्गे" ॥९३॥

सैकड़ों बार चोरी करता है पर गृहस्थी एक ही बार में सब बसूल कर लेता है" ॥ ७६ ॥ श्री अद्वैत बोले—"आप सत्य कहते हैं। किन्तु आप गृहस्थ हैं, यह तो मैं कुछ नहीं जानता ॥७७॥ हे प्रभो! ये मेरे प्राण बुद्धि मन, देह सभी तुम्हारे हैं! तुम ही इनको मारोगे तो फिर कौन इनको बचायगा ?॥ ७८ ॥"तुमही हर्ष के दाता हो, और (दुःख ताप) भी तुम ही देते हो। तुम ही यदि मारो तो किसका बाप बचा सकता है ॥७९॥ हे प्रभो! नारद आदि तुम्हारे चरण धन प्राण के दर्शन करने के लिए द्वारिका में जाते हैं॥ ८० ॥ "तुम उन सब की चरण धूल लेते हो। वे विचारे क्या करें! मेरी भी वही दशा है प्रभो ॥ ८१ ॥ जब आप अपने सेवक को खाने लगो तो सेवक विचारा क्या करे? आप ही नेक विचार कर देखो॥ ८२ ॥ "चरण-धूल की बात तो छोड़ो यह तो दूर रहे। तुम यदि काट भी डालो तो तुम्हारे ऊपर शासन करने वाला कौन है? ॥ ८३ ॥ परन्तु तुम जो ऐसा करते हो—यह ठकुराई नहीं है। मेरे तो प्राण जायँ तुम्हारा खेल होवे ॥८४॥ "यह देह तुम्हारी है, तुम इसे रक्खो चाहे मारो! जो तुम्हारी इच्छा होवे प्रभो! वही करो ॥ ८५ ॥ तब विश्वम्भर प्रभु बोले—"तुम भक्ति के भण्डारी हो। इसी कारण तुम्हारे चरणों की मैं सेवा करता हूँ ॥८६॥ तुम्हारे चरणों की धूल को सर्वांग में लेप करने से मनुष्य श्री कृष्ण की प्रेम रस सरिता में बहने लगता है ॥८७॥ "तुम्हारे दिये बिना भक्ति कोई नहीं पाता है। यह तुम निश्चय जान लो कि "मैं तुम्हारा हूँ" ॥८८॥ तुम मुझे जहाँ बेच देते हो, मैं वहीं बिक जाता हूँ यह मैंने तुम्हारे निकट सत्य कहा ॥ ८९ ॥ श्री अद्वैत के प्रति प्रभु की कृपा का वैभव देख कर सब वैष्णवों के चित्त में बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ९० ॥ " सचमुच में इन महापुरुष ने ही प्रभु की सेवा की है! कोटि मोक्ष भी इस कृपा की कणिका के तुल्य नहीं है ॥ ९१ ॥ "श्री गौरांगराय जो कृपा श्री अद्वैत पर करते हैं वह प्रसाद कदाचित् शंकर जी को मिलता हो तो हो॥ ९२ ॥

हेन 'भक्त' अद्वैतेरे वलिते हरिषे। पापि-सब दुःख पाय निज-कर्म्म-दोषे ॥९४॥
से-काले जे हैल कथा, से-इ सत्य हय। ना माने' वैष्णव-वाक्य, से-इ जाय क्षय ॥९५॥
'हरि बोले' वलि उठे प्रभु विश्वम्भर। चतुर्दिगे वेढ़ि सब गाय अनुचर ॥९६॥
अद्वैत-आचार्य महा-आनन्दे विह्वल। महामत्त हइ नाचे पासरि सकल ॥९७॥
तर्जे गर्जे आचार्य दाड़िते दिया हाथ। भ्रुकुटी करिया नाचे शान्ति पुर नाथ ॥९८॥
"जय कृष्ण गोविन्द गोपाल वनमाली। अहर्निश गाय सभे हइ कुतूहली। ९९॥
नित्यानन्द महाप्रभु परम-विह्वल। तथापि चैतन्य नृत्ये परम-कुशल ॥१००॥
सावधाने चतुर्दिगे दुइ-हस्त मेलि। पड़िते चैतन्य धरि रहे महाबली ॥१०१॥
अशेष-आवेशे नाचे श्रीगौराङ्ग राय। ताहा वर्णिवार शक्ति कोन वा जिह्वाय ॥१०२॥
सरस्वती-सहिते आपने वलराम। सेइ से ठाकुर गाय पूरि मनस्काम ॥१०३॥
क्षणे क्षणे मूर्च्छा पाय क्षणे क्षणे कम्प। क्षणे तृण लय करे, क्षणे महा-दम्भ ॥१०४॥
क्षणे हासे, क्षणे श्वास, क्षणे वा विवास। एइ मत प्रभुर भावेर परकाश ॥१०५॥
वीरासन करिया ठाकुर क्षणे वैसे। महा-अट्ट-अट्ट करि माझे प्रभु हासे' ॥१०६॥
भाग्य-अनुरूप कृपा करये सभारे। डूविला वैष्णव-सब आनन्द सागरे ॥१०७॥
सम्मुखे देखये शुक्लाम्बर-व्रह्मचारी। अनुग्रह करे ताने गौराङ्ग श्रीहरि ॥१०८॥
सेइ शुक्लाम्बरेर शुनह किछु कथा। नवद्वीपे वसति-प्रभुर जन्म जथा ॥१०९॥

ऐसे भक्त के सङ्ग से हम भी भाग्यवान् हैं। आओ इन भक्त की पदधूल अपने सब अङ्ग में लगावें" ॥ ९३॥ इस प्रकार वे सब अद्वैत जी को "भक्त" कहने में परम आनन्द मानते हैं परन्तु (इसे सुन कर) पापी सब अपने कर्म दोष से दुःख पाते हैं ॥ ९४ ॥ उस समय जो २ बातें हुई वे सब सत्य हैं। जो वैष्णव-वाक्य को नहीं मानते हैं वे ही नष्ट होते हैं ॥ ९५ ॥ विश्वम्भर प्रभु 'हरि बोल' कहते हुए उठ खड़े हुए और उन्हें चारों ओर से घेर कर सब अनुचर वृन्द गाने लगे। ९६ ॥ अद्वैताचार्य महान् आनन्द में बिह्वल हैं, वे सब कुछ भूल कर महामत्त बने हुए नाच रहे हैं ॥ ९७ ॥ शान्तिपुर के आचार्य प्रभु दाढ़ी पर हाथ रख कर तर्जन-गर्जन करते हैं और भौंह टेढ़ी करके नाचते हैं ॥ ९८ ॥ सब आनन्द-मग्न होकर अहर्निश "जय कृष्ण गोविन्द गोपाल बनमाली" गाते हैं ॥ ९९ ॥ श्री नित्यानन्द महाप्रभु भी परम विह्वल हो रहे हैं, फिर भी श्री चैतन्य चन्द्र के नृत्य के समय परम चतुर हैं ॥ १०० ॥ (कारण कि) वे सावधानता से (महाप्रभु के पीछे २) चारों ओर अपने दोनों हाथों को फैलाये हुए फिरते हैं। जब श्री चैतन्य देव गिरने लगते हैं तो महाबली नित्यानन्द झट पकड़ लेते हैं ॥ १०१ ॥ श्री गौरांग राय अशेष आवेश पूर्वक नृत्य कर रहे हैं। उनके आवेश को वर्णन करने को शक्ति किस जिह्वा में है भला ? ॥ १०२ ॥ सरस्वती जी के सहित श्री बलराम जी अपनी साध पूरी करते हुए उन्हीं प्रभु का गुण गाते हैं ॥१०३॥ प्रभु क्षण २ में मूर्च्छित होते हैं, क्षण २ में काँपते हैं, क्षण में हाथ में तिनका लेते हैं (दीन बनते हैं) और क्षण में बड़ा अहंकार प्रकट करते हैं ॥१०४॥ प्रभु क्षण में हँसते हैं, क्षण में लम्बी २ सासें छोड़ते हैं, क्षण में विवश हो जाते हैं इस प्रकार से प्रभु के भाव का प्रकाश हो रहा है ॥१०५॥ प्रभु क्षण में वीरासन मार कर बैठ जाते हैं और बीच २ में अट्ट २ हास करते हैं ॥१०६॥ प्रभु सब पर उनके भाग्य के अनुसार कृपा करते हैं। (अतएव) सब वैष्णव जन आनन्द सागर में डूब रहे हैं ॥ १०७ ॥ प्रभु के सामने शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी को देखते हैं और उन पर कृपा करते हैं ॥ १०८ ॥ उन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी की कुछ कथा सुनो। प्रभु के जन्म स्थान नवद्वीप में ही उनका निवास है ॥ १०९ ॥ वे

परम स्वधर्म पर, परम सुशान्त। चिनिते ना पारे केहो, परम-महान्त ॥११०॥
नवद्वीपे घरे घरे झुलि लइ कान्धे। भिक्षा करे, अर्हनिश 'कृष्ण' वलि कान्दे ॥१११॥
'भिखारी' करिया ज्ञान, लोके नाहि चिने। दरिद्रेर अवधि–करये भिक्षाटने ॥११२॥
भिक्षा करि दिवसे जे किछु विप्र पाय। कृष्णेर नैवेद्य करि तवे शेषे खाय ॥११३॥
कृष्णानन्द-प्रसादे दारिद्र नाहि जाने। वलिया वेड़ाय 'कृष्ण' सकल-भवने ॥११४॥
चैतन्येर कृपा पात्र के चिनिते पारे। जखने चैतन्य अनुग्रह करे जारे ॥११५॥
पूर्वे जेन आछिल दरिद्र दामोदर। सेइ मत शुक्लाम्वर विष्णु भक्ति धर ॥११६॥
सेइ मत कृपाओ करिला विश्वम्भर। जे रहे प्रभुर नृत्ये वाड़ीर भितर ॥११७॥
झुलि कान्धे लइ विप्र नाचे महा रङ्गे। देखि हासे' प्रभु सब-वैष्णवेर सङ्गे ॥११८॥
वसिया आछये प्रभु ईश्वर-आवेशे। झुलि कान्धे शुक्लाम्वर नाचे कान्दे हासे' ॥११९॥
शुक्लाम्वर देखिया गौराङ्ग कृपामय। "आइस आइस" करि (प्रभु) वोलये सदय ॥१२०॥
"दरिद्र सेवक मोर तुमि जन्म जन्म। आमारे सकल दिया तुमि भिक्षु धर्म ॥१२१॥
आमिह तोमार द्रव्य अनुक्षण चाइ। तुमि ना दिलेओ आमि बल करि खाइ ॥१२२॥
द्वार कार माझे खुद काढ़ि खाइलुँ तोर। पासरिला ? कमला धरिला हस्त मोर" ॥१२३॥
ए वलिया हस्त दिया झुलिर भितर। मुष्टि मुष्टि तण्डुल चिवाय विश्वम्भर ॥१२४॥
शुक्लाम्बर बोले "प्रभु ! कैला सर्व नाश। ए तण्डुले खुद-कण विस्तर प्रकाश" ॥१२५॥
प्रभु बोले "तोर खुद-कण मुञि खाङ। अभक्तेर अमृते उलटि नाहि चा'ङ" ॥१२६॥

परम स्वधर्म परायण हैं, परम सुशान्त हैं परम महन्त हैं-पर कोई आपको पहचानता नहीं है ॥११०॥ कन्धा पर झोली लिये आप नवद्वीप में घर २ भिक्षा माँगते हैं और दिन रात 'कृष्ण २' गाते हुए रोते रहते हैं ॥ १११ ॥ भिखारी समझ कर लोग नहीं पहचानते। दरिद्रता की सीमा हैं आप भिक्षा करके निर्वाह करते हैं ॥ ११२ ॥ दिन में विप्र भिक्षा माँग कर जो कुछ पाते हैं उसे श्रीकृष्ण को निवेदन करके पीछे से आप खाते हैं ॥ ११३ ॥ श्री कृष्णानन्द की प्रसन्नता में दरिद्रता का अनुभव नहीं करते सबों के घर "कृष्ण २" कहते हुए घूमते रहते हैं ॥ ११४ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र के कृपा पात्र को कौन पहचान सकता है ? वही जिस पर श्री चैतन्य प्रभु जब कभी कृपा कर दें ॥ ११५ ॥ पूर्व काल में जैसे दरिद्र दामोदर (सुदामा) थे वैसे ही अब के विष्णु भक्ति धारी शुक्लाम्बर हैं ॥ ११६ ॥ और वैसी ही कृपा भी विश्वम्भर प्रभु ने इनके ऊपर की। यह प्रभु के नृत्य के समय (श्रीवास के) घर के भीतर ही रहते हैं ॥११७॥ (आज भी ये) झोली काँधे पर लटका ब्राह्मण बड़े आनन्द से नाच रहे हैं। यह देख कर प्रभु सब वैष्णवों के साथ हँसने लगे ॥ ११८ ॥ प्रभु ईश्वर के आवेश में बैठे हुए हैं और काँधे झोली लिये शुक्लाम्बर नाच-से-हँस रहे हैं ॥ ११९ ॥ शुक्लाम्बर को देख कर कृपामय श्री गौरांग प्रभु कृपार्द्र होकर "आओ २" कहके बुलाने लगे ॥ १२० ॥ "तुम मेरे जन्म २ के दरिद्र सेवक हो तुमने मुझे अपना सर्वस्व देकर भिक्षु धर्म को पकड़ा है ॥ १२१ ॥ मैं भी तुम्हारी वस्तु सदव चाहता हूँ। तुम न दो तो मैं बलपूर्वक लेकर खाता हूँ ॥ १२२ ॥ "द्वारिका के बीच में मैंने तुम्हारे चाँवल के कण छीन कर खाये थे। भूल गये क्या ? जब रुक्मिणी ने मेरा हाथ पकड़ लिया था ॥ १२३ ॥ इतना कह कर झोली के भीतर हाथ डालकर चाँवल मुट्ठी भर २ कर विश्वम्भर प्रभु चवाने लगे ॥१२४॥ शुक्लाम्बर जी बोले-"मेरा सर्वनाश कर दिया प्रभो ! इन चाँवलों में तो छोटे २ कन बहुतेरे भरे पड़े हैं ॥ १२५ ॥ प्रभु बोले-"तेरे क्षुद्र कणों को भी मैं खाता हूँ परन्तु अभक्त के अमृत की ओर मैं फिर करके भी नहीं देखता

स्वतन्त्र परमानन्द भक्तेर जीवन। चिवाय तण्डुल, के करिव :निवारण ॥१२७॥
प्रभुर कारुण्य देखि सर्व भक्त गण। शिरे हाथ दिया सभे करेन क्रन्दन ॥१२८॥
ना जाने के कोन् दिगे पड़ये कान्दिया। सभेइ विह्वल हैला कारुण्य देखिया ॥१२६॥
उठिल परमानन्द-कृष्णेर कीर्त्तन। शिशु-वृद्ध आदि करि कान्दे सर्व जन ॥१३०॥
दन्ते तृण करे केहो केहो, नमस्करे। केहो बोले "प्रभु! कभू ना छाड़िवा मोरे ॥१३१॥
गड़ा गड़ि जायेन सुकृति शुक्लाम्बर। तण्डुल खायेन सुखे वैकुण्ठ-ईश्वर ॥१३२॥
प्रभु बोले "शुन शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी। तोमार हृदये ग्रामि सवथा विहरि ॥१३३॥
तोमारे भोजने हय ग्रामार भोजन। तुमि भिक्षा चलिले, ग्रामार पर्यटन ॥१३४॥
प्रेम भक्ति विलाइते मोर ग्रवतार। जन्म जन्म तुमि प्रेम सेवक ग्रामार ॥१३५॥
तोमारे दिलाङ आमि प्रेम भक्ति-दान। निश्चय जानिह 'प्रेम भक्ति' मोर प्राण" ॥१३६॥
शुक्लाम्वरे वर शुनि वष्णव मण्डल। जय जय-हरि ध्वनि करिला सकल ॥१३७॥
कमला नाथेर भृत्य घरे घरे मागे'। ए रसेर मर्म जाने कोनो महा भागे ॥१३८॥
दश-घरे मागिया तण्डुल विप्र पाय। लक्ष्मी पति गौरचन्द्र ताहा काढ़ि खाय ॥१३९॥
मुद्रार सहित नैवेद्येर जेन विधि। वेद रूपे आपने वलिला गुण निधि ॥१४०॥
बिनि सेइ विधि, किछु स्वीकार ना करे। सकल प्रतिज्ञा चूर्ण-भक्तेर दुयारे ॥१४१॥
शुक्लाम्बर-तण्डुल—ताहार परमाण। ग्रतएव सकल बिधिर 'भक्ति' प्राण ॥१४२॥
जत विधि-प्रतिषेध—सब भक्ति-दास। इहाते जाहार दुःख, से-इ वुद्धि नाश ॥१४३॥

॥ १२६ ॥ प्रभु स्वतन्त्र हैं, परमानन्द मय हैं, भक्तों के जीवन हैं। वे चाँवल चबा रहे हैं, कौन रोके उनको ॥ १२७ ॥ प्रभु की करुणा को देख कर सब भक्त लोग सिर पर हाथ रख कर रोने लगे ॥ १२८ ॥ रोते २ न जाने कौन २ किस २ तरफ जा गिरे। प्रभु की करुणा को देख कर सभी विह्वल हो रहे हैं ॥१२६॥ लोग परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण नाम का कीर्त्तन करने लगे। बाल-वृद्ध सब लोग आनन्द से रोने लगे ॥ १३० ॥ कोई दाँतों में तिनका ले रहा है तो कोई नमस्कार कर रहा है। कोई कह रहा है "प्रभो! मुझे कभी न छोड़े" ॥ १३१ ॥ पुण्यशाली शुक्लाम्बर तो भूमि पर लोट पोट हो रहे हैं ग्रौर प्रभु बैकुण्ठनाथ बैठे सुख से चाँवल चबा रहे हैं ॥ १३२ ॥ प्रभु बोले—"शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी! सुनो! तुम्हारे हृदय में मैं सदा विहार करता हूँ ॥ १३३ ॥ तुह्मारे भोजन करने में मेरा भोजन होता है और तुह्मारे भिक्षा के लिये चलने में मेरा भ्रमण होता है ॥१३४॥ "प्रेम भक्ति वितरण करने के लिये मेरा अवतार है। तुम मेरे जन्म २ के प्रेम सेवक हो ॥१३५॥ तुमको मैंने प्रेम भक्ति दी। यह निश्चय जानो कि प्रेम भक्ति मेरी प्राण है" ॥१३६॥ शुक्लाम्बर के लिये वरदान को सुनकर सब वैष्णव मण्डल "जय जय" "हरि बोल", "हरि बोल" की ध्वनि करते हैं ॥ १३७ ॥ लक्ष्मीनाथ का सेवक घर २ में भीख माँगे-इस रस के मर्म को विरला कोई महाभाग ही जानता है ॥ १३८ ॥ दस घरों में माँगने पर ब्राह्मण को चाँवल मिलता है ग्रौर उस चाँवल को लक्ष्मी पति गौरचन्द्र छीन कर खाते हैं ॥ १३९ ॥ (उधर तो भगवान् को नैवेद्य अर्पण करने के लिए) मुद्राग्रों के सहित निवेदन करने की विधि है, जिसे स्वयं गुणनिधि प्रभु ने वेद में वर्णन की है ॥ १४० ॥ उस विधि के विना प्रभु कुछ नहीं स्वीकार करते हैं, परन्तु भक्त के द्वार पर भगवान् की सब प्रतिज्ञाएं चूर्ण हैं ॥ १४१ ॥ शुक्लाम्बर के चाँवल ही इसका प्रमाण है, अतएव समस्त विधियों की प्राण है "भक्ति" ॥ १४२ ॥ ग्रौर जितने भी विधि निषेध हैं वे सब भक्ति के दास हैं। इसमें जिसको दुःख होवे उसकी बुद्धि नष्ट है ॥ १४३ ॥ वेदव्यास ने भक्ति

'भक्ति विधि मूल कहिलेन वेद व्यास। साक्षाते गौराङ्ग ताहा करिला प्रकाश ।।१४४।।
मुद्रा नाहि करे विप्र, ना दिल आपने। तथापि तण्डुल प्रभु खाइला जतने ।।१४५।।
विषय मदान्ध-सब ए मर्म ना जाने। सुत-धन-कुल-मदे वैष्णव ना चिने ।।१४६।।
देखि मूर्ख दरिद्र जे सुजनेरे हासे। तार पूजा वित्त कभू कृष्णेरे ना वासे ।।१४७।।

तथाहि भागवते (४। ३। २१)

"न भजति कुमनिषिणां सइज्यां हरिरधनात्मधन प्रियो रसज्ञः।
श्रुत धन कुल कर्मणामदैर्ये विदधति पापमकिंचनेषु सत्सु" ।।

अकिञ्चन-प्राण कृष्ण' सर्व वेदे गाय। साक्षाते गौराङ्ग एइ ताहारे देखाय ।।१४८।।
शुक्लाम्वर-तण्डुल-भोजन जेइ शुने। सेइ प्रेम भक्ति पाय चैतन्य चरणे ।।१४९।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ।।१५०।।

अथ सत्रहवाँ अध्याय

मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले घुचे अन्तर पाखण्ड ।।१।।
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। गूढ़ रूपे सङ्कीर्त्तन करे निरन्तर ।।२।।
जखन करये प्रभु नगर भ्रमण। सर्व लोक देखे जेन साक्षात् मदन ।।३।।
व्यवहारे देखे प्रभु जेन दम्भ मय। विद्यावल देखिया पाषण्डी करे भय ।।४।।
व्याकरण-शास्त्रे सवे विद्यार आदान। भट्टाचार्य प्रतिओ नाहिक तृण ज्ञान ।।५।।

को सब विधियों का मूल कहा है। श्री गौरांग ने उसे प्रत्यक्ष प्रकाशित कर दिया ।। १४४ ।। देखो यहाँ न तो ब्राह्मण ने मुद्रा ही दिखाई, न स्वयं अर्पण ही किया परन्तु फिर भी प्रभु ने बड़े यत्न के साथ खाया। १४५।। विषय मदान्ध जन इस मर्म को नहीं जानते हैं। वे सुत-धन-कुल के मद से अन्धे हुए वैष्णव को नहीं पहचानते हैं ।। १४६ ।। जो कोई सज्जन को मूर्ख और दरिद्र देख कर हँसता है, उसकी पूजा-सम्पत्ति को प्रभु कभी हृदय में भी नहीं लाते हैं ।।१४७।। जैसा कि श्री मद्भागवत में (४। ३। २१) कहा है कि "जो लोग विद्या, धन, कुल एवं कर्मों के अभिमान में आकर निष्किंचन सत्पुरुषों के प्रति पापाचरण करते हैं, श्री हरि उन दुर्बुद्धियों की पूजा को ग्रहण नहीं करते, कारण कि एक ओर तो निर्धनों के आत्मा रूपी भगवान् ही एक मात्र धन हैं अतएव वे प्रभु के प्रिय हैं, और दूसरी ओर भगवान् भी अनन्य भक्ति प्रेम-रस में आसक्त रसज्ञ हैं"। "अकिंचनों के प्राण कृष्ण हैं और कृष्ण के प्राण अकिंचन जन है "यही सब वेद गाते हैं, इसे ही श्री गौरांग देव ने उनको प्रत्यक्ष दिखा दिया ।। १४८ ।। शुक्लाम्बर के तण्डुल भोजन की कथा जो सुनते हैं वे श्री चैतन्य चरण में प्रेम भक्ति पाते हैं ।। १४९ ।। श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जानकर यह वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनका गुण गान समर्पण करता है ।। १५० ।।

इति शुक्लाम्बर तण्डुल भोजनं नाम षोडशोऽध्यायः।।

इस मध्य खण्ड की कथा मानों अमृत का खण्ड है जिसको सुनने से हृदय का पाखण्ड दूर हो जाता है ।। १ ।। इस प्रकार नवद्वीप में प्रभु विश्वम्भर गूढ रूप से निरन्तर संकीर्त्तन करते हैं ।। २ ।। जिस समय प्रभु नगर में भ्रमण करते हैं, उस समय सब लोग आपको साक्षात् कामदेव जैसा देखते हैं ।। ३ ।। व्यवहार में प्रभु को दम्भपूर्ण देखते हैं और विद्याबल को देखकर पाखण्डी लोग भी डरते हैं ।। ४ ।। यद्यपि प्रभु ने

नगर भ्रमण करे प्रभु निज-रङ्गे । गूढ़ रूपे थाकये सेवक-सब सङ्गे ।।६।।
पाषण्डि-सकल बोले "निमाञि पण्डित । तोमारे राजार आज्ञा आइसे त्वरित ।।७।।
लुकाइया निशा भागे करह कीर्त्तन । देखिते ना पाय लोक, शाँपे' अनुक्षण ।।८।।
मिथ्या नहे लोक-वाक्य सम्प्रति फलिल । सुहृद् ज्ञाने से कथा तोमारे कहिल" ।।९।।
प्रभु बोले "अस्तु अस्तु ए सब वचन । मोर इच्छा आछे-करों राज-दरशन ।।१०।।
पढिलुँ सकल शास्त्र अलप-बयसे । शिशु-ज्ञान करि मोरे केहो ना जिज्ञासे' ।।११।।
मोरे खोजे हेन जन कोथाओ ना पाङ । जेवा जन मोरे खोजे, मुञि इहा चाङ" ।।१२।।
पाषण्डी बोलये "राजा चाहिव कीर्त्तन । ना करे पाण्डित्य-चर्चा राजा से जवन" ।।१३।।
तृण-ज्ञान पाषण्डीरे ठाकुर ना करे । आइलेन महाप्रभु आपन-मन्दिरे ।।१४।।
प्रभु बोले "हैल आजि पाषण्डि-सम्भाष । सङ्कीर्त्तन कर' सब दुःख जाउ नाश" ।।१५।।
नृत्य करे महाप्रभु वैकुण्ठ-ईश्वर । चतुर्दिगे वेढ़ि गाय सब अनुचर ।।१६।।
रहिया रहिया बोले "अरे भाइ सब । आजि केने नहे मोर प्रेम-अनुभव ।।१७।।
नगरे हइल किवा पाषण्डि सम्भाष । एइ वा कारणे नहे प्रेमेर प्रकाश ।।१८।।
तोमा' सभा' स्थाने वा हइल अवज्ञान । अपराध क्षमिया राखह मोर प्राण" ।।१९।।
महा पात्र अद्वैत भ्रकुटी करि नाचे । "के मते हइव प्रेम, नाढ़ा शुषियाछे ।।२०।।
महा प्रेमे अद्वैत वलये हासि हासि । उलटा चोर शिरिवान्धे सेइ हेन वासि ।।२१।।
मुञि नाहि पाङ प्रेम, ना पाय श्रीवास । तेलि-मालि-सने कर' प्रेमेर विलास ।।२२।।

विद्या में केवल व्याकरण शास्त्र ही पढ़ा है तथापि वे भट्टाचार्यों को तृण के समान भी नहीं समझते हैं ।।५।। प्रभु अपने आनन्द में नगर भ्रमण करते हैं और सेवक लोग गूढ रूप से सब साथ रहते हैं ।। ६ ।। पाखण्डी लोग सब कहते हैं–"निमाइ पण्डित ! तुम्हारे लिए शीघ्र ही राजा की आज्ञा आ रही है ।। ७ ।। तुम छिप करके रात के समय कीर्त्तन करते हो लोग देख नहीं पाते इसलिए रोज स्राप देते हैं ।।८।। 'लोगों के वचन मिथ्या नहीं हैं। वे अब फल रहे हैं। सुहृद समझ कर हमने तुमसे सब बातें कह दीं" ।। ९ ।। प्रभु बोले- "तुम्हारे ये वचन सब फलें, फलें ! मेरी भी इच्छा है कि मैं राजा के दर्शन करूँ ।।१०।। "मैंने छोटी अवस्था में ही सब शास्त्र पढ़ लिये परन्तु बालक समझ कर कोई मेरी बात नहीं पूछता ।। ११ ।। मुझे खोजे ऐसा मनुष्य मैं कहीं नहीं देखता। (इसीसे) मैं यही चाहता हूँ कि कोई मेरी खोज-खबर करे ।। १२ ।। पाखण्डी बोले–"राजा तुम्हारा कीर्त्तन देखेगा !! पाण्डित्य की चर्चा तो करेगा नहीं कारण कि वह यवन है" ।।१३।। प्रभु पाखण्डियों को तिनका जैसा भी नहीं समझते हैं। महाप्रभु अपने घर चले आये ।। १४ ।। आकर बोले "आज पाखण्डियों के साथ वार्तालाप हुआ है। अतएव संकीर्त्तन करो जिससे सब दुःख नाश होवें" ।।१५।। वैकुण्ठ नाथ महाप्रभु नृत्य करते हैं और सब अनुचर गण चारों ओर से घेर कर गाते हैं ।।१६।। प्रभु ठहर २ कर कह उठते हैं "अरे भाइयो ! आज मुझे प्रेम का अनुभव क्यों नहीं हो रहा है ।। १७ ।। 'नगर में आज पाखंडियों से सम्भाषण हुआ क्या इसी कारण से प्रेम का प्रकाश नहीं है ? ।। १८ ।। अथवा तुम सब के निकट कोई अज्ञानता हुई है ? सो मेरे अपराध को क्षमा कर मेरे प्राण बचाओ ।। १९ ।। महापात्र श्री अद्वैत भौंह टेढी कर २ के नाच रहे हैं। प्रभु कहते हैं "प्रेम होगा कैसे ? नाढा ने सोख जो लिया है" ।।२०।। तब महा प्रेम में मत्त अद्वैताचार्य हँस २ कर कहते हैं "यह तो चोर का उल्टा चोरी लगाना जैसा लगता है ।। २१ ।। "देखो तो सही, न मैं प्रेम पाता हूँ, न श्रीवास ही पाते हैं। और तेली-मालियों के साथ प्रेम-

अवधूत तोमार प्रेमेर हैल दास। आमि से वाहिर, आर पण्डित-श्रीवास ॥२३॥
आमि-सब नहिलाङ प्रेम-अधिकारी। अवधूत आजि आसि हइला भाण्डारी ॥२४॥
यदि मोरे प्रेम योग ना देह' गोसाञि। शुषिव सकल प्रेम, मोर दोष नाञि" ॥२५॥
चैतन्येर प्रेमे मत्त आचार्य गोसाञि। कि वोलये, कि करये, किछु स्मृति नाञि ॥२६॥
सर्व मते कृष्ण भक्ति महिमा बाढ़ाय। भक्त जने यथा बेचे, तथाइ विकाय ॥२७॥
जे भक्ति-प्रभावे कृष्णे वेचिवारे पारे। से जे वाक्य वलिवेक, कि विचित्र तारे ॥२८॥
नाना रूपे भक्त वाढ़ायेन गौरचन्द्र। के वुझिते पारे तान अनुग्रह दण्ड ॥२९॥
ठाकुर-विषाद ना पाइया प्रेम-सुख। हाथे तालि दिया नाचे अद्वैत कौतुक ॥३०॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि प्रभु विश्वम्भर। प्रभु आर किछु ना करिला प्रत्युत्तर ॥३१॥
सेइ मत रड़ दिया घुचाइया द्वार। पाछे धाय नित्यानन्द-हरिदास तार ॥३२॥
'प्रेम-शून्य शरीर थुइया किवा काज'। चिन्तिया पड़िला प्रभु जाह्नवीर माझ ॥३३॥
झाँप दिया ठाकुर पड़िला गङ्गा माझे। नित्यानन्द-हरिदास झाँप दिला पाछे ॥३४॥
आथे व्यथे नित्यानन्द धरिलेन केशे। चरण चापिया धरे प्रभु हरि दासे ॥३५॥
दुइ जने धरिया तुलिला लँया तीरे। प्रभु बोले तोमरा वा धरिले किसेरे ॥३६॥
कि काजे राखिव प्रेम रहित जीवन। किसेरे वा तोमारा धरिले दुइ जन" ॥३७॥
दुइ जने महा कम्प—आजि किवा फले। नित्यानन्द-दिग चा'हि गौरचन्द्र बोले। ३८॥
"तुमि केने धरिला आमार केश भारे"। नित्यानन्द बोले "केने जाओ मरि वारे" ॥३९॥

विलास करते हो तुम ॥ २२ ॥ और वह अवधूत भी तुम्हारे प्रेम का दास हो गया एक मैं बाहर हूँ और है श्रीवास बाहर ॥ २३ ॥ "हम तो सब प्रेम के अधिकारी न हुए और वह अवधूत बाहर से आकर (प्रेम का) भण्डारी हो गया ॥ २४ ॥ हे गुसांई ! यदि तुम मुझे अपना प्रेमयोग नहीं दोगे तो मैं तुम्हारे सब प्रेम को सोख लूँगा—फिर मुझे दोष न देना" ॥ २५ ॥ श्रीचैतन्य के प्रेम में अद्वैताचार्य मत्त हैं- भला क्या बोलते हैं, क्या करते हैं, इसकी कुछ सुधि नहीं है ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण सब प्रकार से भक्ति की महिमा को बढ़ाते हैं। भक्त जन जहाँ उनको बेच देते हैं, वहीं वे बिक जाते हैं ॥ २७ ॥ जो अपनी भक्ति के बल पर श्रीकृष्ण को बेच सकते हैं, वे यदि कुछ उल्टी-सीधी कह भी दें, तो उनके लिए कोई विचित्र बात नहीं ॥ २८ ॥ श्री-गौरचन्द्र नाना प्रकार से भक्त को बढ़ाते हैं। उनके अनुग्रह—विग्रह को कौन समझ सकता है ॥ २९ ॥ प्रभु को तो प्रेम सुख के न मिलने से विषाद है और अद्वैत ताली बजा कर कौतुक करते हुए नाच रहे हैं ॥३०॥ श्री अद्वैत के वाक्य को सुनकर प्रभु ने कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ३१ ॥ वे उसी अवस्था में दौड़ कर द्वार खोल भाग गए पीछे २ नित्यानन्द जी और हरिदास जी भागे ॥ ३२ ॥ प्रेम शून्य इस शरीर को रख कर क्या लाभ—"ऐसा सोच कर प्रभु गङ्गा जी में कूद पड़े ॥३३॥ प्रभु झम्म से गङ्गा जी में कूद पड़े तो पीछे २ नित्यानन्द—हरिदास जी भी झम्म से कूद पड़े ॥ ३४ ॥ नित्यानन्द ने लपक झपक कर प्रभु के केश पकड़ लिये और हरिदास जी ने चरण दबोच कर पकड़ लिये ॥ ३५ ॥ दोनों ने पकड़ कर किनारे पर ला रक्खा तो प्रभु बोले "तुम दोनों ने मुझे क्यों पकड़ा ? ॥ ३६ ॥ यह प्रेम रहित जीवन किस कार्य के लिये रक्खूँ ? किस लिए तुम दोनों ने मुझे पकड़ा ?" ॥ ३७ ॥ दोनों जने तो काँपने लगे सोचते हैं कि न जाने आज क्या होने वाला है, तब नित्यानन्द जी की ओर देख गौरचन्द्र बोले ॥ ३८ ॥ "तुमने मेरे केश भार क्यों पकड़े ?" नित्यानन्द जी भी बोले "मरने के लिए क्यों जाते हो ? ॥ ३९ ॥ प्रभु बोले "मैं जानता हूँ तुम परम विह्वल

प्रभु बोले "जानि तुमि परम-विह्वल" । नित्यानन्द बोले "प्रभु ! क्षमह सकल ॥४०॥
जार शास्ति करि वारे पार' सर्व मते । तार लागि चल निज शरीर एड़िते ॥४१॥
अभिमाने सेवके वा वलिल वचन । प्रभु ताहे लय किवा भृत्येर जीवन" ॥४२॥
प्रेम मय नित्यानन्द, वहे प्रेम जल । जार प्राण धन वन्धु-चैतन्य सकल ॥४३॥
प्रभु बोले "शुन नित्यानन्द ! हरिदास । कारो स्थाने पाछे कर' आमार प्रकाश ॥४४॥
'आमा' ना देखिला' वलि वलिवा वचन । आमार आज्ञाय एइ करिह पालन ॥४५॥
मुञि आजि सङ्गोपे थाकिव एक ठाञि । कारे पाछे कह, तवे मोर दोष नाञि" ॥४६॥
ए वलिया प्रभु नन्दनेर घरे जाय । ए दुइ सङ्गोप कैला प्रभुर आज्ञाय ॥४७॥
भक्त-सब ना पाइया प्रभुर उद्देश । दुख मय हैल सब श्रीकृष्ण-आवेश ॥४८॥
परम-विरहे सभे करेन क्रन्दन । केहो किछु ना बोलये, पोड़े सर्व-मन ॥४९॥
सभार उपर जेन हैल वज्राघात । महा-अपरुद्ध हैला शान्ति पुर नाथ ॥५०॥
अपरुद्ध हइ प्रभु प्रभुर विरहे । उपवास करि थाकि लेन गिया गृहे ॥५१॥
सभेइ चलिला धरे शोकाकुलि हैया । गौराङ्ग-चरण-धन हृदये वान्धिया ॥५२॥
ठाकुर आइला नन्दन-आचार्येर घरे । वसिला आसिया विष्णु खट्टार उपरे ॥५३॥
नन्दन देखिया गृहे परम-मङ्गल । दण्डवत् हइया पड़िला भूमितल ॥५४॥
सत्वरे दिलेन आनि नूतन वसन । तिता-वस्त्र एडिलेन श्रीशचीनन्दन ॥५५॥
प्रसाद, चन्दन, माला, दिव्य अर्घ्य, गन्ध । चन्दने भूषित कैल प्रभुर श्रीअङ्ग ॥५६॥
कर्पूर-ताम्बूल आनि दिलेन सम्मुखे । भक्तेर पदार्थ प्रभु खाय निज-सुखे ॥५७॥

हो" । नित्यानन्द जी बोले—"प्रभो ! सब क्षमा करो ॥ ४० ॥ "तुम जिसको सव प्रकार से दण्ड दे सकते हो, उसके लिये तुम अपने शरीर को छोड़ने जाते हो ॥ ४१ ॥ सेवक ने अभिमान में आकर कुछ वचन कह भी दिये तो क्या उसके लिये प्रभु को सेवक का प्राण ले लेना चाहिये ?" ॥ ४२ ॥ प्रेममय श्रीनित्यानन्द के नेत्रों से प्रेम जल बह रहा है—(क्यों न हों) उनके प्राण, बन्धु, धन सब श्री चैतन्य ही हैं ॥ ४३ ॥ प्रभु बोले "सुनो ! नित्यानन्द और हरिदास जी ! किसी के निकट मेरा प्रकाश न कर देना (मुझे बतला न देना) ॥४४॥ "तुम दोनों तो यही कहना कि "हमने उनको नहीं देखा" । मेरी आज्ञा से इसका पालन करो ॥४५॥ मैं आज एक जगह छिप कर रहूँगा । तुमने यदि किसी से कह दिया तो फिर मुझे दोष न देना" ॥ ४६ ॥ यह कह कर प्रभु नन्दनाचार्य के घर चले गए । और इन दोनों ने भी प्रभु की आज्ञा मे इस बात को गुप्त रक्खी ॥ ४७ ॥ तब तो प्रभु का पता न मिलने पर सब भक्त लोगों का श्री कृष्ण आनन्द का आवेश दुःख में परिणत हो गया ॥ ४८ ॥ परम विरह में सब लोग रोने लगे कोई कुछ नही बोलते हैं । सबके मन जल रहे हैं ॥ ४९ ॥ मानो तो सब के ऊपर बज्र गिर पड़ा हो और शान्तिपुर नाथ (अद्वैताचार्य) तो बड़े अपराधी बन गए ॥ ५० ॥ वे अपराधी बन कर प्रभु के विरह में अनशन करके घर में जा बैठे ॥ ५१ ॥ श्री गौरांग चरण धन को हृदय में बाँध कर सब शोकाकुल हो अपने २ घर चले गए ॥ ५२ ॥ प्रभु नन्दनाचार्य के घर में आए और आकर विष्णु—सिंहासन पर बैठ गए ॥ ५३ ॥ नन्दनाचार्य ने घर में परम मङ्गल (मूर्त्ति प्रभु) को देख पृथ्वी पर पड़कर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ५४ ॥ और जल्दी से नये वस्त्र लाकर दिये । तब श्रीशचीनन्दन ने गीले वस्त्रों को बदला ॥५५॥ फिर नन्दनाचार्य ने प्रसाद, चन्दन, माला, दिव्य अर्घ्य गन्धादि अर्पण किया और प्रभु के श्रीअङ्ग को चन्दन से चर्चित किया ॥५६॥ और कपूर युक्त ताम्बूल लाकर सन्मुख रक्खा

पासरिला दुःख प्रभु नन्दन-सेवाय । सुकृति नन्दन वसि ताम्बूल जो गाय ॥५८॥
प्रभु वोले "मोर वाक्य शुनह नन्दन । आजि तुमि आमारे करिवा सङ्गोपन" ॥५९॥
नन्दन बोलये "प्रभु ! ए बड़ दुष्कर । कोथा लुकाइवा तुमि संसार-भितर ॥६०॥
हृदये थाकिया ना परिला लुकाइते । विदित करिल तोमा' भक्त तथा हैते ॥६१॥
जे नारिल लुकाइते क्षीर सिन्धु-माझे । से केमने लुकाइव वाहिर-समाजे" ॥६२॥
नन्दन-आचार्य-वाक्य शुनि प्रभु हासे' । वञ्चिलेन निशि प्रभु नन्दन-सम्भाषे ॥६३॥
भाग्यवन्त नन्दन अशेष-कथा-रङ्गे । सर्व रात्रि गोङाइला ठाकुरेर सङ्गे ॥६४॥
क्षण-प्राय गेल निशा कृष्ण-कथा-रसे । प्रभु देखे-दिवस हइल परकाशे ॥६५॥
अद्वैतेर प्रति दण्ड करिया ठाकुर । शेषे अनुग्रह मने वाढ़िल प्रचुर ॥६६॥
आज्ञा कैल प्रभु नन्दन आचार्य चा'हिया । "एकेश्वर श्रीवास पण्डिते आन' गिया" ॥६७॥
सत्वरे नन्दन गेला श्रीवासेर स्थाने । आइला श्रीवास लैया–प्रभ -जेइ खाने ॥६८॥
प्रभु देखि ठाकुर पण्डित कान्दे प्रेमे । प्रभु बोले "चिन्ता किछु ना करिह मने ॥६९॥
सदय हइया प्रभु जिज्ञासे' आपने । "आचार्येर वार्त्ता कह–आछये के मने" ॥७०॥
"आरो वार्तालह" बोले पण्डित-श्रीवास । "आचार्येर कालि प्रभु ! हैल उपवास ॥७१॥
आछि वारे आछे प्रभु ! सवे देह मात्र । कि वलिव आमरा-तोमार प्रेम पात्र ॥७२॥
अन्य जन हइले कि आमराइ सहि । तोमार से सभेइ जीवन प्रभु ! वहि' ॥७३॥
तोमा' विने कालि प्रभु ! सभार जीवन । महाशोच्य वासिलाङ-आछे कि कारण ॥७४॥

प्रभु अपने आनन्द में भक्त की वस्तु खा रहे हैं ॥ ५७ ॥ नन्दनाचार्य की सेवा से प्रभु दुःख भूल गए हैं और पुण्यशाली नन्दनाचार्य सन्मुख बैठकर ताम्बूल अर्पण कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ प्रभु बोले "नन्दन ! मेरी बात सुनो ! आज तुम मुझको छिपा कर रखना" ॥ ५९ ॥ नन्दनाचार्य बोले–"प्रभो ! यह तो बड़ा दुष्कर कार्य है। (बताओ तो सही) संसार के भीतर तुम कहाँ छिपोगे ? ॥ ६० ॥ "हृदय में रहकर आप छिप न सके। भक्तों ने तुमको वहाँ से बाहर निकाल कर छोड़ा ॥ ६१ ॥ और जो क्षीर समुद्र में छिप न सके वे भला बाहर समाज में कैसे छिप सकेंगे ?" ॥ ६२ ॥ नन्दनाचार्य के वचनों को सुनकर प्रभु हँसे और वह रात्रि प्रभु ने नन्दनाचार्य के सहित सम्भाषण में बिताई ॥६३॥ भाग्यवान् श्रीनन्दन ने प्रभु के साथ अशेष वार्त्ताओं के आनन्द में समस्त रात्रि बिताई ॥ ६४ ॥ श्रीकृष्ण कथा रस में रात्रि एक क्षण के समान बीत गई। प्रभु ने देखा कि उज्याला हो आया है ॥ ६५ ॥ अद्वैत को दण्ड देकर अन्त में प्रभु के मनमें बड़ी भारी कृपा उमड आई ॥ ६६ ॥ और वे नन्दनाचार्य के प्रति दृष्टि देकर बोले "जाकर अकेले एक श्रीवास पण्डित को बुला लाओ" ॥६७॥ नन्दनाचार्य शीघ्रता से श्रीवास के घर गये और उन्हें लेकर प्रभु के पास आये ॥६८॥ प्रभु को देखकर श्रीवास पण्डित प्रेम में रोने लगे । तब प्रभु बोले "श्रीवास ! मनमें कुछ चिन्ता मत करो" ॥ ६९ ॥ प्रभु ने दयालु होकर स्वयं पूछा–'आचार्य की बात कहो ! कैसे हैं वे ?" ॥ ७० ॥ श्रीवास पण्डित बोले–"फिर भी उनकी ही बात पूछते हो (तो सुनो) प्रभो ! आचार्य का कल उपवास हुआ है ॥ ७१ ॥ रहने के लिये प्रभो ! उनकी एक देह मात्र रह गई है ! हम लोग भला क्या कहें ! वे आपके प्रेम–पात्र हैं ॥ ७२ ॥ "और कोई होता तो क्या हम ही लोग सह लेते ? हे प्रभो ! तुम से ही सब जीवन धारण किये हुए हैं ॥ ७३ ॥ परन्तु तुम्हारे बिना कल सब का जीवन परम शोचनीय लगता था न जाने रह क्यों गया ॥ ७४ ॥ "जैसे उनके वचन वैसा उनको आप दण्ड दे चुके । अब आकर प्रसन्नता पूर्वक सन्मुख हो जाँय"

जेन दण्ड करिला वचन अनुरूप। एखन आसिया हश्रो प्रसाद-सम्मुख" ॥७५॥
श्रीवासेर वचन शुनिञा कृपा मय। चलिला, आचार्य-प्रति हइया सदय ॥७६॥
मूर्च्छागत आसि प्रभु देखे आचार्येरे। महा-अपराधी हेन माने' आपनारे ॥७७।
प्रसादे हइया मत्त बुले अहङ्कारे। पाइया प्रभुर दण्ड कम्प देह भारे ॥७८॥
देखिया सदय प्रभु बोलये उत्तर। "उठह आचार्य ! हेर-आमि विश्वम्भर" ॥७९॥
लज्जाय अद्वैत किछु ना बोले वचन। प्रेम योगे मने चिन्ते' प्रभुर चरन ॥८०॥
आर बार बोले प्रभु "उठह आचार्य। चिन्ता नाहि, उठि कर' आपनार कार्य" ॥८१॥
अद्वैत बोलये "प्रभु ! कराइला कार्य। जत किछु बोल मोरे, सब प्रभु ! बाह्य ॥८२॥
मोरे तुमि निरन्तर लओयाओ कुमति। अहङ्कार दिया मोरे कराओ दुर्गति ॥८३॥
सभारे उत्तम दिया आछ दास्य भाव। मोरे दिया छह प्रभु ! जत किछु राग ॥८४॥
लओयाओ आपने दण्ड कराह आपने। मुखे एक बल तुमि, कर' आर मने ॥८५॥
प्राण, देह, धन, मन,' सब तुमि मोर। तबे मोरे दुःख देह,' ठाकुरालि तोर ॥८६॥
हेन कर' प्रभु ! मोरे दास्य भाव दिया। चरणे राखह दासी नन्दन करिया" ॥८७॥
शुनिञा अद्वैत वाक्य प्रभु विश्वम्भर। अकैतवे कहे सर्व-वैष्णव-भितर ॥८८॥
शुन शुन आचार्य तोमार तत्त्व कइ। व्यवहार-दृष्टान्त देखह तुमि एइ ॥८९॥
राज पात्र राजा-स्थाने चालये जखने। दुयारी प्रहरी सब करे निवेदने ॥९०॥
महा पात्र यदि गोचरिया राजा-स्थाने। जीव्य लइ दिले रहे गोष्ठीर जीवने ॥९१॥
जे महापात्रेर स्थाने करे निवेदन। राज-आज्ञा हैले काटे सेइ सब जन ॥९२॥

॥ ७५ ॥ श्रीवास के वचन सुनकर कृपामय प्रभु अद्वैताचार्य के प्रति दयालु होकर चले ॥७६॥ प्रभु ने आकर देखा कि आचार्य मूर्च्छित से पड़े हैं। अपने को महा अपराधी जैसा माने हुए हैं ॥ ७७ ॥ (जो) प्रभु की प्रसन्नता में मत्त होकर बड़े अभिमान में घूमा करते थे, (आज) वे प्रभु का दण्ड पाकर काँप रहे हैं, देह सम्हाले नहीं सम्हलती है ॥ ७८ ॥ यह देखकर दयालु प्रभु बोले "उठो आचार्य ! देखो ! मैं विश्वम्भर हूँ" ॥ ७९ ॥ अद्वैत जी लज्जावश कुछ बोलते नहीं, मन में ही प्रेम पूर्वक प्रभु के श्रीचरणों का चिन्तन करते रहते हैं ॥८०॥ प्रभु फिर बोले–"उठो आचार्य कोई चिन्ता मत करो। उठ कर अपना काम करो" ॥८१॥ अद्वैत जी बोले " हे प्रभो ! काम तो करा चुके। तुम जो मुझसे कहते हो, वे सब बाहर का दिखावा है ॥ ८२ ॥ तुम मुझे सदा कुमति में ले जाते हो और अहंकार देकर मेरी दुर्गति करते हो ॥ ८३ ॥ "सब को तो उत्तम दास भाव दे रक्खा है और जितना कुछ क्रोध है वह प्रभो ! मुझको ही दिया है ॥ ८४ ॥ आप ही सब कुछ करवाते हो और आप ही दण्ड देते हो। मुख से तुम कुछ कहते हो, मन में कुछ और करते हो ॥ ८५ ॥ "मेरे प्राण, देह, धन, मन सब तुम ही हो। फिर भी जो तुम मुझे दुःख देते हो यही तो तुम्हारी ठकुराई है ॥ ८६ ॥ हे प्रभो ! (अब तो) ऐसा करो कि मुझे दास भाव दे दासीपुत्र बनाकर अपने चरणों में रख लो" ॥ ८७ ॥ अद्वैताचार्य के वचनों को सुनकर प्रभु विश्वम्भर निष्कपट भाव से सब वैष्णवों के मध्य में बोले ॥ ८८ ॥ "सुनो हे आचार्य ! सुनो ! मैं तुम्हारा तत्त्व वर्णन करता हूँ, व्यवहार में भी इसका दृष्टान्त तुम यह देख लो कि ॥८९॥ "राज-मंत्री जब राजा के निकट जाता है तो द्वारिया-पौरिया आदि सब उनको अपना निवेदन जनाते हैं ॥ ९० ॥ जब महामंत्री राजा को उनका निवेदन सुनाकर उनकी जीविका लेकर उनको देता है तब ही वे अपने कुटुम्ब सहित जीवन पाते हैं ॥ ९१ ॥ (परन्तु) जिस राज मंत्री के निकट वे

सब राज्य भार देइ जे महा पात्रे रे। अपराधे शोच्य-हाथे तार शास्ति करे।।९३।।
एइ मत कृष्ण महाराज राजेश्वर। कर्ता हर्ता-ब्रह्मा शिव जाहार किङ्कर ।।९४।।
सृष्टि-आदि करितेओ दिया छेन शक्ति। शास्ति करितेओ केहो ना करे द्विरुक्ति ।।९५।।
रमा-आदि भवादिओ कृष्ण-दण्ड पाय। दोषो प्रभु सेवकेर क्षमये सदाय ।।९६।।
अपराध देखि कृष्ण जार शस्ति करे। जन्म जन्म दास सेइ-वलिल तोमारे ।।९७।।
उठिया करह स्नान, कर' आराधन। नाहिक तोमार चिन्ता, करह भोजन" ।।९८।।
प्रभुर वचन शुनि अद्वैत-उल्लास। दासेर शुनिञा दण्ड, वड़ हैल हास ।।९९।।
"एखने से वलि प्रभु ! तोर ठाकुरालि"। नाचेन अद्वैत रङ्गे दिया कर तालो ।।१००।।
प्रभुर आश्वास शुनि आनन्दे विह्वल। पासरिला पूर्व जत विरह सकल ।।१०१।।
सकल वैष्णव हैला परम-आनन्द। तखने हासये हरिदास-नित्यानन्द ।।१०२।।
ए सब परमानन्द-लीला-कथा-रसे। केहो केहो वञ्चित हइल दैव दोषे ।।१०३।।
चैतन्येर प्रेम पात्र श्रीअद्वैत-राय। ए सम्पत्ति अल्प हेन बुझये मायाय ।।१०४।।
अल्प करि ना मानिह 'दास' हेन नाम। अल्प भाग्ये 'दास' नाहि करे भगवान् ।।१०५।।
आगे हय मुक्त, तवे सर्व-वन्ध-नाश। तवे सेइ हैते पारे 'श्रीकृष्णेर दास' ।।१०६।।
एइ व्याख्या करे भाष्य कारेर समाजे। मुक्त सब लीला तनु करि कृष्ण भजे ।।
तथा चोक्तं भाष्य कृद्भिः—"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते" ।।१०७।।

सब विनती जनाते हैं, राजा की आज्ञा होने पर वे ही सब उसका सिर काट डालते हैं।। ९२ ।। राजा जिस महा मंत्री को राज्य का सारा भार दे देता है, अपराध होने पर अति तुच्छ जन के हाथ से उसी को दण्ड देता है ।।९३।। "इसी प्रकार श्रीकृष्ण राजेश्वर हैं, कर्त्ता, हर्त्ता हैं, ब्रह्मा, शिव आदि जिनके किंकर हैं ।।९४।। (श्रीकृष्ण ने) उनको सृष्टि, संहार आदि की शक्ति भी दे रक्खी है, और कदाचित् उनको दण्ड भी देव तो कोई एक शब्द नहीं कह सकता ।। ९५ ।। "लक्ष्मी आदि (प्रियागण) और शिव आदि (देवगण) भी श्रीकृष्ण के दण्ड को पाते हैं परन्तु सेवक के दोषों को भी प्रभ सदा क्षमा कर देते हैं ।। ९६ ।। अपराध देखकर श्रीकृष्ण जिसको दण्ड देते हैं, उसे (श्रीकृष्ण का) जन्म २ का दास समझो यह मैंने तुमसे (सत्य) कहा ।। ९७ ।। "अब तुम उठकर स्नान करो, पूजा करो, भोजन करो । अब तुह्मारे लिए कोई चिन्ता नहीं है" ।। ९८ ।। प्रभु के वचनों को सुनकर अद्वैत जी को बड़ा उल्लास हुआ, दास को दण्ड मिलता है सुनकर तो खूब हास-परिहास हुआ ।। ९९ ।। "प्रभो ! अब मैं कहूँगा कि यह है तुम्हारी ठकुराइ" (ऐसा कह) अद्वताचार्य ताली बजाते हुए आनन्द में नाचने लगे।। १०० ।। प्रभु का आश्वासन सुनकर आनन्द में विह्वल हो रहे हैं, पहले का विरह सब भूल गये ।। १०१ ।। सब वैष्णवों को परम आनन्द हुआ और तब श्री नित्यानन्द और हरिदास जी हँसने लगे ।। १०२ ।। इन सब परमानन्दमयी लीला कथा के रस से कोई २ लोग अपने भाग्य-दोष के कारण वंचित रह गये ।। १०३ ।। श्री अद्वैताराय श्री चैतन्य चन्द्र के प्रेमपात्र हैं इस सम्पत्ति को कोई २ माया के कारण अल्प समझते हैं ।। १०४ ।। (परन्तु) 'दास' नाम को छोटा नहीं समझना थोड़े भाग्य से भगवान् अपना 'दास' नहीं बनाते हैं ।। १०५ ।। पहले (जीव) मुक्त होता है, फिर सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं, तब कहीं वह श्रीकृष्ण का दास हो सकता है ।। १०६ ।। भाष्यकार (श्री शङ्कराचार्य) ने भी समाज में यही व्याख्या की है कि "मुक्त पुरुष भी स्वेच्छा से शरीर धारण कर श्री भगवान् का भजन करते हैं" ।। १०७ ।। श्रीकृष्ण के सब सेवक श्रीकृष्ण की शक्ति रखते हैं परन्तु अपराध होने पर दण्ड श्रीकृष्ण ही

जेन दण्ड करिला वचन अनुरूप। एखन आसिया हय्रो प्रसाद-सम्मुख" ॥७५॥
श्रीवासेर वचन शुनिञा कृपा मय। चलिला, आचार्य-प्रति हइया सदय ॥७६॥
मूर्च्छागत आसि प्रभु देखे आचार्येरे। महा-अपराधी हेन माने' आपनारे ॥७७।
प्रसादे हइया मत्त वुले अहङ्कारे। पाइया प्रभुर दण्ड कम्प देह भारे ॥७८॥
देखिया सदय प्रभु बोलये उत्तर। "उठह आचार्य ! हेर-आमि विश्वम्भर" ॥७९॥
लज्जाय अद्वैत किछु ना बोले वचन। प्रेम योगे मने चिन्ते' प्रभुर चरन ॥८०॥
आर बार वोले प्रभु "उठह आचार्य। चिन्ता नाहि, उठि कर' आपनार कार्य" ॥८१॥
अद्वैत बोलये "प्रभु ! कराइला कार्य। जत किछु बोल मोरे, सब प्रभु ! वाह्य ॥८२॥
मोरे तुमि निरन्तर लओयाओ कुमति। अहङ्कार दिया मोरे कराओ दुर्गति ॥८३॥
सभारे उत्तम दिया आछ दास्य भाव। मोरे दिया छह प्रभु ! जत किछु राग ॥८४॥
लओयाओ आपने दण्ड कराह आपने। मुखे एक बल तुमि, कर' आर मने ॥८५॥
प्राण, देह, धन, मन,' सब तुमि मोर। तवे मोरे दुःख देह,' ठाकुरालि तोर ॥८६॥
हेन कर' प्रभु ! मोरे दास्य भाव दिया। चरणे राखह दासी नन्दन करिया" ॥८७॥
शुनिञा अद्वैत वाक्य प्रभु विश्वम्भर। अकै तवे कहे सर्व-वैष्णव-भितर ॥८८॥
शुन शुन आचार्य तोमार तत्त्व कइ। व्यवहार-दृष्टान्त देखह तुमि एइ ॥८९॥
राज पात्र राजा-स्थाने चालये जखने। दुयारी प्रहरी सब करे निवेदने ॥९०॥
महा पात्र यदि गोचरिया राजा-स्थाने। जीव्य लइ दिले रहे गोष्ठीर जीवने ॥९१॥
जे महापात्रेर स्थाने करे निवेदन। राज-आज्ञा हैले काटे सेइ सब जन ॥९२॥

॥ ७५ ॥ श्रीवास के वचन सुनकर कृपामय प्रभु अद्वैताचार्य के प्रति दयालु होकर चले ॥७६॥ प्रभु ने आकर देखा कि आचार्य मूर्च्छित से पड़े हैं। अपने को महा अपराधी जैसा माने हुए हैं ॥ ७७ ॥ (जो) प्रभु की प्रसन्नता में मत्त होकर बड़े अभिमान में घूमा करते थे, (आज) वे प्रभु का दण्ड पाकर काँप रहे हैं, देह सम्हाले नहीं सम्हलती है ॥ ७८ ॥ यह देखकर दयालु प्रभु बोले "उठो आचार्य ! देखो ! मैं विश्वम्भर हूँ" ॥ ७९ ॥ अद्वैत जी लज्जावश कुछ बोलते नहीं, मन में ही प्रेम पूर्वक प्रभु के श्रीचरणों का चिन्तन करते रहते हैं ॥८०॥ प्रभु फिर बोले—"उठो आचार्य कोई चिन्ता मत करो। उठ कर अपना काम करो" ॥८१॥ अद्वैत जी बोले " हे प्रभो ! काम तो करा चुके। तुम जो मुझसे कहते हो, वे सब बाहर का दिखावा है ॥ ८२ ॥ तुम मुझे सदा कुमति में ले जाते हो और अहंकार देकर मेरी दुर्गति करते हो ॥ ८३ ॥ "सब को तो उत्तम दास भाव दे रक्खा है और जितना कुछ क्रोध है वह प्रभो ! मुझको ही दिया है ॥ ८४ ॥ आप ही सब कुछ करवाते हो और आप ही दण्ड देते हो। मुख से तुम कुछ कहते हो, मन में कुछ और करते हो ॥ ८५ ॥ "मेरे प्राण, देह, धन, मन सब तुम ही हो। फिर भी जो तुम मुझे दुःख देते हो यही तो तुम्हारी ठकुराई है ॥ ८६ ॥ हे प्रभो ! (अब तो) ऐसा करो कि मुझे दास भाव दे दासीपुत्र बनाकर अपने चरणों में रख लो" ॥ ८७ ॥ अद्वैताचार्य के वचनों को सुनकर प्रभु विश्वम्भर निष्कपट भाव से सब वैष्णवों के मध्य में बोले ॥ ८८ ॥ "सुनो हे आचार्य ! सुनो ! मैं तुम्हारा तत्त्व वर्णन करता हूँ, व्यवहार में भी इसका दृष्टान्त तुम यह देख लो कि ॥८९॥ "राज-मंत्री जब राजा के निकट जाता है तो द्वारिया-पौरिया आदि सब उनको अपना निवेदन जनाते हैं ॥ ९० ॥ जब महामंत्री राजा को उनका निवेदन सुनाकर उनकी जीविका लेकर उनको देता है तब ही वे अपने कुटुम्ब सहित जीवन पाते हैं ॥ ९१ ॥ (परन्तु) जिस राज मंत्री के निकट वे

सब राज्य भार देइ जे महा पात्रे रे। अपराधे शोच्य-हाथे तार शास्ति करे।।६३।।
एइ मत कृष्ण महाराज राजेश्वर। कर्ता हर्ता-ब्रह्मा शिव जाहार किङ्कर ।।६४।।
सृष्टि-आदि करितेओ दिया छेन शक्ति। शास्ति करितेओ केहो ना करे द्विरुक्ति ।।६५।।
रमा-आदि भवादिओ कृष्ण-दण्ड पाय। दोषो प्रभु सेवकेर क्षमये सदाय ।।६६।।
अपराध देखि कृष्ण जार शस्ति करे। जन्म जन्म दास सेइ-वलिल तोमारे ।।६७।।
उठिया करह स्नान, कर' आराधन। नाहिक तोमार चिन्ता, करह भोजन" ।।६८।।
प्रभुर वचन शुनि अद्वैत-उल्लास। दासेर शुनिञा दण्ड, वड़ हैल हास ।।६६।।
"एखने से वलि प्रभु ! तोर ठाकुरालि"। नाचेन अद्वैत रङ्गे दिया कर तालो ।।१००।।
प्रभुर आश्वास शुनि आनन्दे विह्वल। पासरिला पूर्व जत विरह सकल ।।१०१।।
सकल वैष्णव हैला परम-आनन्द। तखने हासये हरिदास-नित्यानन्द ।।१०२।।
ए सब परमानन्द-लीला-कथा-रसे। केहो केहो वञ्चित हइल दैव दोषे ।।१०३।।
चैतन्येर प्रेम पात्र श्रीअद्वैत-राय। ए सम्पत्ति अल्प हेन वुझये मायाय ।।१०४।।
अल्प करि ना मानिह 'दास' हेन नाम। अल्प भाग्ये 'दास' नाहि करे भगवान् ।।१०५।।
आगे हय मुक्त, तवे सर्व-वन्ध-नाश। तवे सेइ हैते पारे 'श्रीकृष्णेर दास' ।।१०६।।
एइ व्याख्या करे भाष्य कारेर समाजे। मुक्त सब लीला तनु करि कृष्ण भजे ।।
तथा चोक्तं भाष्य कृद्भिः—"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते" ।।१०७।।

सब विनती जनाते हैं, राजा की आज्ञा होने पर वे ही सब उसका सिर काट डालते हैं।। ६२ ।। राजा जिस महा मंत्री को राज्य का सारा भार दे देता है, अपराध होने पर अति तुच्छ जन के हाथ से उसी को दण्ड देता है ।।६३।। "इसी प्रकार श्रीकृष्ण राजेश्वर हैं, कर्त्ता, हर्त्ता हैं, ब्रह्मा, शिव आदि जिनके किंकर हैं ।।६४।। (श्रीकृष्ण ने) उनको सृष्टि, संहार आदि की शक्ति भी दे रक्खी है, और कदाचित् उनको दण्ड भी देव तो कोई एक शब्द नहीं कह सकता ।। ६५ ।। "लक्ष्मी आदि (प्रियागण) और शिव आदि (देवगण) भी श्रीकृष्ण के दण्ड को पाते हैं परन्तु सेवक के दोषों को भी प्रभ सदा क्षमा कर देते हैं ।। ६६ ।। अपराध देखकर श्रीकृष्ण जिसको दण्ड देते हैं, उसे (श्रीकृष्ण का) जन्म २ का दास समझो यह मैंने तुमसे (सत्य) कहा ।। ६७ ।। "अब तुम उठकर स्नान करो, पूजा करो, भोजन करो । अब तुम्हारे लिए कोई चिन्ता नहीं है" ।। ६८ ।। प्रभु के वचनों को सुनकर अद्वैत जी को बड़ा उल्लास हुआ, दास को दण्ड मिलता है सुनकर तो खूब हास-परिहास हुआ ।। ६६ ।। "प्रभो ! अब मैं कहूँगा कि यह है तुम्हारी ठकुराइ" (ऐसा कह) अद्वैताचार्य ताली बजाते हुए आनन्द में नाचने लगे ।। १०० ।। प्रभु का आश्वासन सुनकर आनन्द में विह्वल हो रहे हैं, पहले का विरह सब भूल गये ।। १०१ ।। सब वैष्णवों को परम आनन्द हुआ और तब श्री नित्यानन्द और हरिदास जी हँसने लगे ।। १०२ ।। इन सब परमानन्दमयी लीला कथा के रस से कोई २ लोग अपने भाग्य-दोष के कारण वंचित रह गये ।। १०३ ।। श्री अद्वैताराय श्री चैतन्य चन्द्र के प्रेमपात्र हैं इस सम्पत्ति को कोई २ माया के कारण अल्प समझते हैं ।। १०४ ।। (परन्तु) 'दास' नाम को छोटा नहीं समझना थोड़े भाग्य से भगवान् अपना 'दास' नहीं बनाते हैं ।। १०५ ।। पहले (जीव) मुक्त होता है, फिर सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं, तब कहीं वह श्रीकृष्ण का दास हो सकता है ।। १०६ ।। भाष्यकार (श्री शङ्कराचार्य) ने भी समाज में यही व्याख्या की है कि "मुक्त पुरुष भी स्वेच्छा से शरीर धारण कर श्री भगवान् का भजन करते है" ।। १०७ ।। श्रीकृष्ण के सब सेवक श्रीकृष्ण की शक्ति रखते हैं परन्तु अपराध होने पर दण्ड श्रीकृष्ण ही

कृष्णेर सेवक सब कृष्ण शक्ति धरे। अपराध हइलेओ कृष्ण शास्ति करे ॥१०८॥
हेन कृष्ण भक्त नामे कोन शिष्य गण। अल्प हेन जाने द्वन्द्व करे अनुक्षण ॥१०९॥
से सब दुष्कृति अति जानिह निश्चय। जाये सर्व वैष्णवेर पक्ष नाहि लय ॥११०॥
'सर्व-प्रभु गौरचन्द्र' इथे द्विधा जार। कभु शुद्ध भक्त नहे सेइ दुराचार ॥१११॥
गर्दभ-शृगाल-तुल्य शिष्य गण लैया। केहो बोले "आमि रघुनाथ भाव' गिया" ॥११२॥
सृष्टि स्थिति प्रलय करिते शक्ति जार। चैतन्य-दासत्व बइ बल नाहि आर ॥११३॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड धरे प्रभु बलराम। सेहो प्रभु दास्य करे, केबा हय आन ॥११४॥
जय जय हलधर नित्यानन्द-राय। चैतन्य कीर्तन स्फुरे जाहार कृपाय ॥११५॥
ताँहार प्रसादे हैल चैतन्येते रति। जत किछु बलि-सब ताँहार शकति ॥११६॥
आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौर सुन्दर। ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर ॥११७॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥११८॥

अथ अठारहवाँ अध्याय

जय जय जगत् मङ्गल गौरचन्द्र। दान देह' हृदये तोमार पद द्वन्द्व ॥१॥
जय जय नित्यानन्द स्वरूपेर प्राण। जय जय भकत वत्सल गुण धाम ॥२॥
भक्त गोष्ठी सहिते गौराङ्ग जय जय। शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे विश्वम्भर-राय। सङ्कीर्त्तन सुख प्रभु करये सदाय ॥४॥

देते हैं ॥ १०८ ॥ ऐसे 'श्रीकृष्ण भक्त' नाम को कोई २ शिष्य जन छोटा समझ कर जब देखो तब कलह मचाते हैं ॥ १०९ ॥ वे सब अति दुष्ट कर्मा हैं-ऐसा निश्चय जानो, अतएव सब वैष्णवों के बीच में किसी का पक्ष न लेवे ॥ ११० ॥ "श्री गौरचन्द्र सबके प्रभु हैं" इसमें जिसको सन्देह हो, वह कभी शुद्ध भक्त नहीं, वह दुराचार है ॥ १११ ॥ गदहा और स्याल जैसे चेलों को लेकर कोई कहते हैं "मुझे रघुनाथ मानो ॥ ११२॥ (और इधर) सृष्टि, स्थिति और संहार करने की शक्ति जिनकी है, उनका भी श्रीचैतन्य की दासता के बिना और कोई दूसरा बल नहीं है ॥ ११३ ॥ (यथा) प्रभु बलराम जी अनन्त ब्रह्माण्डों को धारण करते हैं, वे भी प्रभु की दासता करते हैं–फिर दूसरा कौन होता है ? ॥ ११४ ॥ हलधर श्री नित्यानन्दराय की जय हो, जय हो, जिनकी कृपा से श्री चैतन्य कीर्त्तन की (मुझमें) स्फूर्ति होती है ॥ ११५ ॥ उन्हीं की कृपा से श्रीचैतन्यदेव में मेरी रति हुई और जो कुछ मैं कह रहा हूँ–यह सब उन्हीं की शक्ति है ॥ ११६ ॥ मेरे प्रभु के प्रभु हैं श्री गौरचन्द्र, इस बात का मुझे चित्त में निरन्तर बड़ा भारी भरोसा है ॥ ११७ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्दचन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दावन दास उनके श्री चरण युगल में उनका गुण-गान समर्पण करता है ॥ ११८ ॥

इति भक्त–माहात्म्य–कीर्त्तनं नाम सप्तदशोऽध्यायः

जगन्मंगल श्रीगौर चन्द्र की जय हो जय हो। हे प्रभो ! अपने श्रीचरण युगल मेरे हृदय में अर्पण करो ॥ १ ॥ श्रीनित्यानन्द स्वरूप के प्राण श्रीगौर चन्द्र की जय हो जय हो। भक्त वत्सल गुण धाम गौर की जय हो जय हो ॥ २ ॥ भक्त मण्डली के सहित श्रीगौरांग की जय हो जय हो। श्रीचैतन्य चन्द्र की कथा सुनने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर राय सदा संकीर्तन का सुख लेते हैं

मध्य खण्ड कथा भाई ! शुन एक मने। लक्ष्मी-काचे प्रभु नृत्य करिला जे मने ॥५॥
एक दिन प्रभु वलिलेन सभा' स्थाने। "आजि नृत्य करिवाङ अङ्केर विधाने" ॥६॥
सदा शिव-वुद्धि मन्त खानेरे डाकिया। वलिलेन प्रभु "काच सज्ज कर' गिया ॥७॥
शङ्ख, काँचुली, पाट शाड़ी, अलङ्कार। योग्य योग्य करि सज्ज कर' सभाकार ॥८॥
गदाधर काचिवेन–रुक्मिणीर काच। व्रह्मानन्द ताँर बुड़ी–सखी सुप्रभात ॥९॥
नित्यानन्द हइवेन वड़ाइ आमार। कोतोयाल हरिदास–जागाइते भार ॥१०॥
श्रीवास नारद-काच, स्नातक श्रीराम"। दियड़िया हाड़ि मुञि" बोलये श्रीमान् ॥११॥
अद्वैत बोलये "के करिव पात्र-काच"। प्रभु बोले "पात्र सिंहासने गोपीनाथ ॥१२॥
सत्वरे चलह वुद्धि मन्त खान ! तुमि। काच-सज्ज कर' गिया नाचिवाङ आमि" ॥१३॥
आज्ञा शिरे करि सदा शिव-वुद्धिमन्त। गृहे चलिलेन, आनन्देर नाहि अन्त ॥१४॥
सेइ क्षणे कथिवार चान्दोया काटिया। काच-सज्ज करिलेन सुन्दर करिया ॥१५॥
लइया जतेक काच वुद्धिमन्त खान। थुइलेन लइया ठाकुर-विद्यमान ॥१६॥
देखिया हइला प्रभु सन्तोषित-मन। सकल-वैष्णव प्रति वलिला वचन ॥१७॥
"प्रकृति-स्वरूपे नृत्य हइव आमार। देखिते जे जितेन्द्रिय-तार अधिकार ॥१८॥
सेइ से जाइव आजि वाड़ीर भितरे। जेइ जन इन्द्रिय धरिते शक्ति धरे" ॥१९॥
लक्ष्मी वेशे अङ्क-नृत्य करिव ठाकुर। सकल-वैष्णव-रङ्ग वाढ़िल प्रचुर ॥२०॥
शेषे प्रभु कथा खानि कहिलेन दृढ़। शुनिञा हइला सभे विषादित बड़ ॥२१॥

॥ ४ ॥ जिस प्रकार प्रभु ने लक्ष्मी वेश में नृत्य किया है, वह, मध्य खण्ड की कथा भाइयो ! मन लगाकर सुनो ॥ ५ ॥ एक दिन प्रभु सबसे बोले–"आज मैं नाटक के नियमानुसार नृत्य करूँगा" ॥ ६ ॥ फिर प्रभु, सदा शिव एवं बुद्धिमन्त खान को पुकार कर बोले–"जाकर वेश-भूषा सजाओ" ॥ ७ ॥ सब को यथा योग्य शंख की चूड़ी, चोली, रेशमी साड़ी, आभूषण आदि पहिना कर वेश सजाओ ॥ ८ ॥ "गदाधर रुक्मिणी का वेश सजेंगे और ब्रह्मानन्द को उनकी रक्षक सखी "सुप्रभात" के वेश में सजाना ॥ ९ ॥ नित्यानन्द मेरी रक्षक सखी होंगे और हरिदास कोतवाल बनें–उन पर लोगों को सावधान करने का भार रहेगा ॥ १० ॥ श्रीवास नारद जी का और श्रीराम स्नातक का वेश बनावें"। (इतने में) श्रीमान् बोल उठा कि "मैं शूद्र मशालची बनूँगा" ॥ ११ ॥ तब अद्वैत जी बोले–"नायक कौन सजेगा ?" प्रभु बोले–"नायक के सिंहासन पर होंगे (स्वय) श्रीगोपीनाथ" ॥ १२ ॥ "बुद्धिमन्त खान ! तुम शीघ्र जाओ ! और पात्रों की वेश-रचना करो। आज मैं नाचूँगा ॥ १३ ॥ सदा शिव और बुद्धिमन्त, प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके घर को चले। उनके आनन्द की सीमा नहीं हैं ॥ १४ ॥ उसी समय जाकर काठिया वाड़ देश का बना हुआ सुन्दर चँदोआ टँगाया और सुन्दर २ वेश-भूषा तँय्यार किए ॥ १५ ॥ बुद्धिमन्त खान ने उन सब वेष-भूषाओं को लेकर प्रभु गौरचन्द्र के सन्मुख रख दिया ॥ १६ ॥ उन्हें देखकर प्रभु मन में संतुष्ट होकर सब वैष्णवों के प्रति बोले ॥ १७ ॥ "मेरा नृत्य नारी के रूप में होगा। जो जितेन्द्रिय हैं उनको ही उसे देखने का अधिकार होगा ॥ १८ ॥ (अतएव) आज घर के भीतर वे ही जायँ कि जो इन्द्रियों को वश में रखने में समर्थ हों ॥ १९ ॥ आज प्रभु लक्ष्मी वेश में नाटक में नृत्य करेंगे–सुनकर तो सब वैष्णवों को बड़ा ही आनन्द हुआ ॥ २० ॥ (परन्तु) अन्त में प्रभु ने जो बात जोर देकर कही उसे सुनकर सब उदास हो गए ॥ २१ ॥ (अतएव) सर्व प्रथम अद्वैताचार्य ने पृथ्वी पर रेखा खींची और बोले "आज

सर्वाद्य भूमिते अङ्क दिलेन आचार्य । "आजि नृत्य-दरशने मोर नाहि कार्य ॥२२॥
आमि से अजितेन्द्रिय, ना जाइब तथा" । श्रीवास पण्डित कहे "मोर सोइ कथा" ॥२३॥
शुनिञा ठाकुर बोले ईषत् हासिया । "तोमरा ना गेले नृत्य काहारे लइया" ॥२४॥
सर्वज्ञेर चूड़ामणि चैतन्य गोसाञि । पुन आज्ञा करिलेन "कारो चिन्ता नाञि ॥२५॥
महा योगेश्वर आजि तोमरा हइबा । देखिया आमारे केहो मोह ना पाइबा" ॥२६॥
शुनिञा प्रभुर आज्ञा अद्वैत श्रीवास । सभार सहित महा पाइला उल्लास ॥२७॥
सर्व गण-सहित ठाकुर विश्वम्भर । चलिला आचार्य-चन्द्र शेखरेर घर ॥२८॥
आइ चलिलेन निज-वधूर सहिते । लक्ष्मी रूपे नृत्य बड़ अद्भुत देखिते ॥२९॥
जत आप्त-वैष्णव गणेर परिवार । चलिला आइर सङ्गे नृत्य देखिवार ॥३०॥
श्रीचन्द्र शेखर-भाग्य-तार एइ सीमा । जार घरे प्रभु प्रकाशिला ए महिमा ॥३१॥
वसिला ठाकुर सर्व-वैष्णव-सहिते । सभारे हइल आज्ञा स्वकाच काचिते ॥३२॥
कर जोड़े अद्वैत बोलये वार बार । "मोरे आज्ञा प्रभु ! कोन् काच काचिवार" ॥३३॥
प्रभु बोले "जत काच सकल तोमार । इच्छा-अनुरूप काच काच' आपनार" ॥३४॥
वाह्य नाहि अद्वैतेर, कि करिब काच । भ्रकुटी करिया नाचे शान्ति पुर नाथ ॥३५॥
सब भावे नाचे महा-विदूषक-प्राय । आनन्द-सागर-माझे भासिया वेड़ाय ॥३६॥
महा-कृष्ण-कोलाहल उठिल सकल । आनन्दे वैष्णव-सब हइला विह्वल ॥३७॥
कीर्त्तनेर शुभारम्भ करिला मुकुन्द । 'राम कृष्ण नर हरि गोपाल गोविन्द' ॥३८॥
प्रथमे प्रविष्ट हैला प्रभु हरिदास । महा दुइ गोंफ करि वदन-विलास ॥३९॥

नृत्य देखना मेरा काम नहीं है ॥ २२ ॥ मैं अजितेन्द्रिय हूँ, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा" श्रीवास पण्डित बोले "मेरी भी यही बात है" ॥ २३ ॥ सुनकर प्रभु तनिक मुस्करा कर बोले—"तुम लोगों के न जाने पर फिर मैं किनको लेकर नाचूँगा" ॥ २४ ॥ प्रभु चैतन्य देव सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं अतएव फिर बोले "किसी के लिए चिन्ता की बात नहीं ॥ २५ ॥ आज तुम सब महा योगीश्वर हो जाओगे (अतएव) मुझे देखकर किसी को मोह नहीं होगा" ॥ २६ ॥ प्रभु की आज्ञा को सुनकर श्रीअद्वैत और श्रीवास को सब भक्तों के समेत, बड़ा आनन्द हुआ ॥ २७॥ तब सब परिकर वृन्द सहित प्रभु विश्वम्भर आचार्य चन्द्र शेखर के घर पधारे ॥२८॥ माता शची भी प्रभु के लक्ष्मी रूप के बड़े अद्भुत नृत्य को देखने के लिए अपनी पुत्र-वधू के सहित चलीं ॥ २९ ॥ अपने स्वजन वैष्णवों की स्त्रियाँ भी नृत्य देखने के लिए माता शची के साथ चलीं ॥ ३० ॥ श्रीचन्द्रशेखर के भाग्य की यही सीमा है कि जिसके घर में प्रभु ने यह महिमा प्रकाशित की ॥ ३१ ॥ सब वैष्णवों के साथ प्रभु गौरचन्द्र विराजे और आपने सबको अपना २ श्रृङ्गार करने के लिए कहा ॥ ३२ ॥ श्रीअद्वैत ने हाथ जोड़ कर बार २ कहा—"प्रभो ! मेरे लिए कौन सा वेश बनाने की आज्ञा है ?" ॥ ३३ ॥ प्रभु बोले—"सब वेश तुम्हारे ही हैं । जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा ही अपना वेश बना लो" ॥ ३४ ॥ श्रीअद्वैत को तो बाहर की सुध-बुध कुछ है नहीं, फिर वे कौन सा वेश बनाएँ ! वे (शान्ति पुर-नाथ) तो भौंह टेडी कर करके नाचने लगे ॥ ३५ ॥ समस्त भावों को प्रकट करते हुए वे एक बड़े भारी विदूषक (मसखरे) की भाँति नाच रहे हैं, और आनन्द सागर में बहे २ डोल रहे हैं ॥ ३६ ॥ वहाँ सर्वत्र कृष्ण नाम का महा कोलाहल मच गया और वैष्णव लोग सब आनन्द में विह्वल हो गए ॥ ३७ ॥ श्री मुकुन्द ने "राम कृष्ण नर हरि गोपाल गोविन्द" आदि नामों का कीर्त्तन करते हुए मङ्गला चरण किया ॥ ३८ ॥ प्रथम

महा-पाग शोभे शिरे, धटी परिधान। दण्ड हस्ते सभारे करये सावधान ॥४०॥
"आरे आरे भाइ-सब हओ सावधान। नाचिव लक्ष्मीर वेशे जगतेर प्राण" ॥४१॥
हाथे नड़ि चारि दिगे धाइया वेड़ाय। सर्वाङ्गे पुलक 'कृष्ण' सभारे जागाय ॥४२॥
"कृष्ण भज, कृष्ण सेव, बोल कृष्ण-नाम"। दम्भ करि हरिदास करये आह्वान ॥४३॥
हरिदास देखिया सकल गण हासे। "के तुमि, एथाय केने ?" सभेइ जिज्ञासे' ॥४४॥
हरिदास बोले "आमि वैकुण्ठ-कोटाल। 'कृष्ण' जागाइया आमि वुलि सर्वकाल ॥४५॥
वैकुण्ठ छाड़िया प्रभु आइलेन एथा। प्रेम भक्ति लुटाइव ठाकुर सर्वथा ॥४६॥
लक्ष्मी वेशे नृत्य आजि करिव आपने। प्रेम भक्ति लूटि आजि हओ सावधाने ॥४७॥
एत वलि दुइ गोंफ मोचड़ाय हाथे। रड़ दिया वुले गुप्त-मुरारिर साथे ॥४८॥
दुइ महा-विह्वल कृष्णेर प्रिय दास। दुइर शरीरे गौरचन्द्रेर विलास ॥४९॥
क्षणेके नारद-काच करिया श्रीवास। प्रवेशिला सभा-माझे करिया उल्लास ॥५०॥
महा-दीर्घ पाका दाड़ि, फोंटा सर्व गाय। वीणा कान्धे, कुश-हस्ते चारि दिगे चा'य ॥५१॥
रामाञ्चि-पण्डित कक्षे करिया आसन। हाथे कमण्डलु-पाछे करिला गमन ॥५२॥
वसिते दिलेन राम-पण्डित आसन। साक्षात् नारद जेन दिला दरशन ॥५३॥
श्रीवासेर वेश देखि सर्व गण हासे'। करिया गभीर नाद अद्वैत जिज्ञासे' ॥५४॥
"के तुमि आइला एथा के मन कारणे"। श्रीवास बोलेन "शुन कहिये कथने ॥५५॥

हरिदास ठाकुर ने प्रवेश किया, दो लम्बी २ मूँछ आप के वदन पर विशेष शोभा दे रही हैं ॥ ३९ ॥ शिर पर एक बड़ा सा पगड़ शोभा दे रहा है, कमर पर सुन्दर वस्त्र पहिने हुए हैं और हाथ में सोंठा लेकर सब को सावधान कर रहे हैं ॥ ४० ॥ "अरे ओ भाइयो ! सब सावधान हो जाओ। जगत् के प्राण प्रभु आज लक्ष्मी के वेश में नाचेंगे" ॥ ४१ ॥ ऐसा कहते हुए, हाथ में छड़ी लिये हुए वे चारों ओर दौड़ते फिरते हैं, सर्वांग में पुलक हो रहा है, और 'कृष्ण' नाम से सब को जगा रहे हैं ॥ ४२ ॥ "कृष्ण को भजो, कृष्ण की सेवा करो, कृष्ण का नाम बोलो" इस प्रकार बड़े घटाटोप से श्री हरिदास पुकार रहे हैं ॥ ४३ ॥ हरिदास जी को देखकर परिकर लोग सब हंसते हैं, और पूछते हैं—"तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये हो ?" ॥ ४४ ॥ हरिदास जी कहते हैं—"मैं वैकुण्ठ का कोतवाल हूँ। मैं "कृष्ण २" जगाता हुआ सब समय घूमता रहता हूँ ॥ ४५ ॥ वैकुण्ठ छोड़ कर प्रभु यहाँ आये हैं, और वे सब प्रकार से प्रेमभक्ति लुटायँगे ॥ ४६ ॥ "आज वे स्वयं लक्ष्मी वेश में नृत्य करेंगे। अतएव तुम सब सावधान होकर आज प्रेम भक्ति लूटो" ॥ ४७ ॥ इतना कह कर हाथों से दोनों मूँछों पर ताव देते हैं, और मुरारि गुप्त के साथ दौड़े २ फिरते हैं ॥ ४८ ॥ दोनों प्रेम में महा विह्वल हैं, दोनों श्रीकृष्ण के प्रिय दास हैं, और दोनों के शरीर में श्री गौरचन्द्र का विलास है ॥ ४९ ॥ क्षण भर बाद नारद जी का वेश बना कर श्रीवास ने बड़े उल्लास के साथ सभा में प्रवेश किया ॥ ५० ॥ बड़ी लम्बी सफेद दाढ़ी है, सब शरीर पर तिलक की बिन्दियाँ लगी हुई हैं, कन्धे पर वीणा है, हाथ में कुश है और चारों ओर दृष्टि दौड़ा रहे हैं ॥ ५१ ॥ रामाइ पण्डित बगल में आसन दबाए, हाथ में कमण्डलु लिये, पीछे २ चल रहे हैं ॥५२॥ रामाइ पंडित ने उनको बैठने के लिये आसन बिछा दिया। श्रीवास पण्डित ऐसे लगते हैं मानो तो साक्षात् नारद जी दर्शन दे रहे हों ॥ ५३ ॥ श्रीवास के वेश को देखकर परिकर लोग सब हंसते हैं और श्री अद्वैत गम्भीर घोष के साथ पूछते हैं ॥ ५४ ॥ "तुम कौन हो ? यहाँ किस कारण से आये हो ?" श्रीवास जी कहते हैं—"सुनो, बतलाता हूँ ॥ ५५ ॥ मेरा नाम नारद है, मैं श्रीकृष्ण

नारद आमार नाम, कृष्णेर गायन। अनन्त-ब्रह्माण्डे आमि करिये भ्रमण ॥५६॥
वैकुण्ठ गेलाङ–कृष्ण देखिवार तरे। शुनिलाङ 'कृष्ण गेला नदिया-नगरे' ॥५७॥
शून्य देखिलाङ वैकुण्ठेर घर-द्वार। गृहिणी-गृहस्थ नाहि, नाहि परिवार ॥५८॥
ना पारि रहिते–शून्य वैकुण्ठ देखिया। आइलाङ आपन ठाकुर स्मङरिया ॥५९॥
प्रभु आजि नाचिवेन धरि लक्ष्मी-वेश। अतएव ए सभाय आमार प्रवेश" ॥६०॥
श्रीवासेर नारद निष्ठार वाक्य शुनि। हासिया वैष्णव-सब करे जय ध्वनि ॥६१॥
अभिन्न-नारद जेन श्रीवास पण्डित। से-इ रूप, से-इ वाक्य, से-इ से चरित ॥६२॥
जत पतिव्रता गण-सकल लइया। आइ देखे कृष्ण-सुधा-रसे मग्न हैया ॥६३॥
मालिनीरे बोले आइ "एइनि पण्डित"। मालिनी बोलये "आइ! अइ सुनिश्चित" ॥६४॥
परम-वैष्णवी आइ सर्व-लोक-माता। श्रीवासेर मूर्त्ति देखि हइला विस्मिता ॥६५॥
आनन्दे पड़िला आइ हइया मूर्च्छित। कोथाओ नाहिक धातु, सभे चमकित ॥६६॥
सत्त्वरे सकल पतिव्रता-नारी गण। कर्ण मूले 'कृष्ण कृष्ण' करेन स्मरण ॥६७॥
सम्वित् पाइया आइ 'गोविन्द' स्मङरे। पतिव्रता गणे धरे, धरिते ना पारे ॥६८॥
एइ मत कि घरे वाहिरे सर्व जन। वाह्य नाहि स्फुरे, सभे करेन क्रन्दन ॥६९॥
गृहान्तरे वेश करे प्रभु विश्वम्भर। रुक्मिणीर भावे मग्न हइला निर्भर ॥७०॥
आपना ना जाने प्रभु रुक्मिणी-आवेशे। विदर्भेर सुता हेन आपनारे वासे' ॥७१॥
नयनेर जले पत्र लिखये आपने। पृथिवी इइल पत्र, अङ्गुली कलमे ॥७२॥
रुक्मिणीर पत्र 'सप्त श्लोक' भागवते। जे आछे, पढ़ये ताहा कान्दिते कान्दिते ॥७३॥

का गायक हूँ। मैं अनन्त ब्रह्माण्डों में भ्रमण करता रहता हूँ। ५६ ॥ "मैं श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये वैकुण्ठ गया तो वहाँ जाकर सुना कि श्रीकृष्ण तो नदिया नगर में गये हैं ॥ ५७ ॥ मैंने वहाँ वैकुण्ठ के सब घर द्वार शून्य देखे उनमें न गृहिणी हैं, न गृहस्थ हैं और न परिवार हैं ॥ ५८ ॥ "वैकुण्ठ को शून्य देखकर मैं वहाँ न रह सका अतएव अपने प्रभु का स्मरण करता हुआ वहाँ से चला आया ॥ ५९ ॥ प्रभु आज लक्ष्मी वेश बना कर यहाँ नाचेंगे, अतएव मैं इस सभा में आया हूँ" ॥ ६० ॥ श्रीवास के अटल नारद भाव के वचनों को सुन कर वैष्णव लोग हँसते हुए जय जयकार करते हैं ॥ ६१ ॥ श्रीवास पण्डित मानो तो नारद जी से अभिन्न हैं वही रूप, वही वचन, वही चरित्र ॥ ६२ ॥ श्री शची माता सब पतिव्रताओं के समेत श्रीकृष्ण सुधा रस में निमग्न हो कर देख रही हैं ॥ ६३ ॥ श्री शची मा मालिनी देवी (श्रीवास–भार्या) से पूछती हैं "यही हैं न पण्डित जी ?"। मालिनी कहती है "हाँ मा ! सुनिश्चित रूप से यही हैं" ॥ ६४ ॥ परम वैष्णवी सर्व-लोकमाता, शची मा श्रीबास की मूर्त्ति को देखकर विस्मित हो गईं ॥ ६५ ॥ वे आनन्द से मूर्च्छित हो पड़ीं शरीर में चेतनता कहीं न रही सब अचरज मान रहे हैं ॥ ६६ ॥ सब पतिव्रता स्त्रियाँ बड़ी शीघ्रता करके उनके कानों में "कृष्ण २" नाम सुनाने लगीं ॥ ६७ ॥ शची मा सचेत होकर "गोविन्द २" कहती हैं, पतिव्रता गण माता को पकड़ती हैं परन्तु सम्हाल नहीं पातीं ॥६८॥ इस प्रकार क्या घर क्या वाहर, सब लोगों को बाहर की सुधि-बुध नहीं है, सब रो रहे हैं ॥ ६९ ॥ प्रभु विश्वम्भर भीतर घर में अपना रुक्मिणी वेश बना रहे हैं और रुक्मिणी के भाव में एक दम तन्मय हो गये हैं ॥७०॥ श्री रुक्मिणी के आवेश में प्रभु अपने को नहीं जानते वे अपने को विदर्भ राज की कन्या ही मान रहे हैं ॥ ७१ ॥ वे स्वयं अपने नेत्रों के जल से पत्र लिख रहे हैं। पृथ्वी ही पत्र है और अंगुली कलम हैं ॥ ७२ ॥ श्री रुक्मिणी के पत्र के जो सात श्लोक

गीत बन्धे शुन सात-श्लोकेर व्याख्यान । जे कथा शुनिले स्वामी हय भगवान् ।।७४।।

तथाहि भागवते (१० । ५२ । ३७)

"श्रुत्वा गुणान् भुवन सुन्दर ! शृण्वतां ते । निर्विश्य कर्ण विवरै र्हरतोऽङ्ग तापम् ।।
रूपं दृशां दृशिमता मखिलार्थ लाभं । त्वय्य च्युता विशति चित्त मत त्रपंमे" १ इत्यादि ।।७५।।

(कारुण्य सारदा रागेन गीयते)—"शुनिञा तोमार गुण भुवन सुन्दर ।
दूर गेल अङ्ग ताप त्रिविध दुष्कर ।।७६।।
सर्व-निधि-लाभ तोर रूप-दरशने । सुखे देखे विधि जारे दिलेक लोचने ।।७७।।
शुनि यदु सिंह ! तोर यशेर बाखान । निर्लज्ज हइया चित्त जाय तुया-ठाम ।।७८।।
कोन कुलवती धीरा आछे जग-माझे । काल पाइ तोमार चरण नाहि भजे ।।७९।।
विद्या-कुल-शील-धन-रूप-वेश-धामे । सकल विफल हय—तोमार विहने ।।८०।।
मोर धार्ष्ट्य क्षमा कर' त्रिदशेर राय । ना पारि राखिते चित्त तोमाय मिशाय ।।८१।।
एतेके वरिल तोर चरण-युगल । मन प्राण बुद्धि तोहे—अर्पिल सकल ।।८२।।
पत्नी पद दिया मोरे कर' निज दासी । तोर भागे शिशु पाल नहुक विलासी ।।८३।।
कृपा करि मोरे परिग्रह कर' नाथ । जेन सिंह-भाग नहे शृगालेर साथ ।।८४।।
व्रत,-दान,-गुरु-विप्र-देवेर अर्चन । सत्य यदि सेवियाछों अच्युत-चरण ।।८५।।
तबे गदाग्रज मोर हउ प्राणेश्वर । दूर हउ शिशु पाल एइ मोर वर ।।८६।।
कालि मोर विवाह हइव हेन आछे । आजि झाट आसिबा, विलम्ब कर' पाछे ।।८७।।

श्री भागवत में हैं, प्रभु उन्हें रोते २ पढ़ रहे हैं ।। ७३ ।। उन सात श्लोकों की व्याख्या गीत के रूप में सुनो जिसके सुनने से श्रीकृष्ण स्वामी होते हैं ।। ७४ ।। श्लोकार्थ, "हे भुवन सुन्दर ! तुह्मारे गुणों को सुनते २ वे गुण कर्णों के द्वार से हृदय में प्रवेश करके जनों का अङ्ग ताप हर लेते हैं । और जिनके नेत्र हैं' तुम्हारा रूप देखकर उनकी दर्शन—इन्द्रियाँ "हमें अखिल अर्थ लाभ हो गया" ऐसा मानती हैं । हे अच्युत ! मेरा चित्त भी तुम्हारे उसी रूप गुण की कथा सुन कर लज्जा को तिलाञ्जलि देकर तुममें प्रवेश कर रहा है ।। ७५ ।। गीतार्थ (भाग० १० । ५२ । ३७) "हे भुवन सुन्दर ! तुम्हारे गुणों को सुनकर दुष्कर त्रिविध अङ्ग ताप दूर हो गये ।। ७६ ।। तुम्हारा रूप दर्शन ही सर्व निधि प्राप्ती है, विधाता ने जिसको नेत्र दिये हैं वे सुख से तुह्मारे रूप के दर्शन करते हैं ।। ७७ ।। "हे यदुसिंह ! तुम्हारे यश की गाथा सुनकर चित्त निर्लज्ज होकर तुम्हारे पास चला जाता है ।। ७८ ।। जगत् में ऐसी कौन कुलवती धीर नारी है जो समय पाकर तुम्हारे चरणों की सेवा न करे ।। ७९ । ।"तुम्हारे विना विद्या, कुल, शील, धन, रूप, वेश धाम आदि सब व्यर्थ हैं ।। ८० ।। हे देवताओं के नाथ ! मेरी धृष्टता को क्षमा करो मैं अपने चित्त को रोक नहीं सकती । वह तुममें मिला जाता है ।। ८१ ।। "इसलिए मैंने तुम्हारे युगल चरणों को वरण कर लिया है । मैं अपना मन प्राण, बुद्धि सब तुमको अर्पण कर चुकी हूँ ।। ८२ ।। अब मुझे 'पत्नि-पद' देकर अपनी दासी बनाओ तुम्हारे भाग का भोगी शिशुपाल न होने पाय ।। ८३ ।। हे नाथ ! कृपा करके मुझे ग्रहण करो देखो सिंह का भाग स्याल को न मिल जाय ।। ८४ ।। यदि मैंने व्रत दान, किये हों, गुरु विप्र और देवताओं की पूजा की हो और अच्युत के चरण की सेवा सचमुच की हो ।। ८५ ।। तो श्रीकृष्ण मेरे प्राणेश्वर हों और शिशुपाल दूर हो जाय—यही वरदान मुझे मिले ।। ८६ ।। "कल मेरे विवाह की बात है तुम आज ही शीघ्र आ जाओ, ऐसा न हो कि देर कर बैठो ।।८७।। पहले तो तुम गुप्त रूप से आकर विदर्भपुर के समीप रहना सब सेना-सामन्त के साथ लोक

गुप्ते आसि रहिवा विदर्भ पुर-काछे। शेषे सव-सैन्य-सङ्गे आसिवा समाजे ॥८८॥
चैद्य शाल्य जरासन्ध–मथिया सकल। हरि लेह मोरे–देखाइया बाहु वल ॥८९॥
दर्प-प्रकाशेर प्रभु ! एइ से समय। तोमार वनिता–शिशुपाल-योग्य नय ॥९०॥
बिनि वन्धु वधि मोरे हरिवा जे मने। ताहार उपाय वोलों तोमार चरणे ॥९१॥
विवाहेर पूर्व-दिने कुल धर्म आछे। नव-वधू चलि जाय भवानीर काछे ॥९२॥
सेइ अवसरे प्रभु ! हरिवा आमारे। ना मारिवा वन्धु, दोष क्षमिवा सभारे ॥९३॥
जाहार चरण धूलि सर्व अङ्गे स्नान। उमा पति चाहे, चाहे जतेक प्रधान ॥९४॥
हेन धूलि-प्रसाद ना कर' यदि मोरे। मरिव करिया व्रत, वलिलुँ तोमारे ॥९५॥
जत जन्मे पाङ तोर अमूल्य-चरण। तावत मरिव शुन कमल लोचन ॥९६॥
चल चल ब्राह्मण ! सत्वर कृष्ण स्थाने। कह गिया ए सकल मोर विवरणे" ॥९७॥
एइ मत बोले प्रभु रुक्मिणी-आवेशे। सकल-वैष्णव गण प्रेमे कान्दे हासे' ॥९८॥
हेन रङ्ग हय चन्द्र शेखर-मन्दिरे। चतुर्दिगे हरि ध्वनि शुनि उच्चस्वरे ॥९९॥
'जाग जाग जाग' डाके प्रभु हरिदास। नारदेर काचे नाचे पण्डित-श्रीवास ॥१००॥
प्रथम-प्रहरे एइ कौतुक विशेष। द्वितीय–प्रहरे गदाधरेर प्रवेश ॥१०१॥
'सुप्रभात' तान सखी–करि निज-सङ्गे। ब्रह्मानन्द ताहान वड़ाइ वुले रंगे ॥१०२॥
हाथे नड़ि, काँखे डाली, टेन परिधान। ब्रह्मानन्द जे हेन बडाइ विद्यमान ॥१०३॥
डाकि बोले हरिदास 'के सब तोमरा"। ब्रह्मानन्द बोले "जाइ मथुरा आमरा" ॥१०४॥
श्रीवास बोलये "दुइ काहार वनिता"। ब्रह्मानन्द बोले "केने जिज्ञास' वारता" ॥१०५॥

समाज में पीछे आना ॥ ८८॥ "शिशुपाल, शाल्य, जरासन्ध आदि सब को मथ कर अपना बाहुबल दिखाकर मुझे हर लो ॥८९॥ हे प्रभो ! दर्प प्रकाश करने कासमय यही है। तुम्हारी प्रिया शिशुपाल के योग्य नहीं है ॥ ९० ॥ "बन्धु वध बिना जैसे मुझे हर सकोगे उपाय मैं तुम्हारे चरणों में निवेदन करती हूँ ॥९१॥ हमारा कुल धर्म ऐसा है कि ब्याह से पहिले के दिन नव वधू पार्वती जी के पास जाती है ॥ ९२ ॥ "हे प्रभो ! उसी अवसर पर मुझको हर लेना–परन्तु बन्धुओं को न मारना, सब के दोषों को क्षमा कर देना ॥९३॥ जिनकी चरण धूलि से सर्वांग स्नान की चाहना उमापति तथा अन्य सब महानुभाव करते हैं ॥ ९४ ॥ "उस धूलि की कृपा यदि मुझ पर न करोगे तो मैं तुमसे कहे देती हूँ कि मैं व्रत कर करके मर जाऊँगी ॥ ९५ ॥ जितने जन्मों तक तुम्हारे अमूल्य चरण नहीं मिलेंगे, उतने जन्मों तक, हे कमल लोचन ! सुन लो मैं व्रत कर करके मरती जाऊँगी ॥ ९६ ॥ हे ब्राह्मण देव ! शीघ्र ही श्री कृष्ण के समीप गमन करो और जाकर उनको मेरा यह सब वृत्तान्त सुनाओ" ॥ ९७ ॥ इस प्रकार प्रभु रुक्मिणी जी के आवेश में आकर कह रहे हैं, और सब वैष्णव लोग प्रेम में रो रहे, हँस रहे हैं ॥९८॥ श्री चन्द्रशेखर के घर में ऐसा आनन्द हो रहा है और चारों ओर ऊँचे २ सुर से 'हरि बोल' की ध्वनि सुनाई दे रही है ॥ ९९ ॥ हरिदास ठाकुर "जागो ३" पुकार रहे हैं और नारद के वेश में श्रीवास पण्डित नाच रहे हैं ॥ १०० ॥ प्रथम पहर में तो यह कौतुक विशेष रहा। फिर द्वितीय पहर में गदाधर का प्रवेश हुआ ॥ १०१ ॥ उनके साथ में ब्रह्मानन्द "सुप्रभात" सखी के वेश में हैं। वे उनकी रक्षा करती हुई मस्त घूम रहीं हैं ॥ १०२ ॥ उनके हाथ में छड़ी है, काँख में डलिया है, नेत वस्त्र पहिने हुई हैं। ब्रह्मानन्द इस समय ऐसी बड़ी बूढ़ी सखी बने हुए हैं ॥ १०३ ॥ हरिदास जो पुकार कर कहते हैं "तुम सब कौन हो ?"। ब्रह्मानन्द जी कहते हैं "हम मथुरा जा रही हैं" ॥ १०४ ॥ श्रीवास जी

श्रीनिवास बोले "जानि वारे ना जुयाय"। हय वलि ब्रह्मानन्द मस्तक डुलाय ॥१०६॥
गङ्गादास बोले "आजि कोथाय रहिवा"। ब्रह्मानन्द बोले "स्थान खानि तुमि दिवा" ॥१०७॥
गङ्गादास बोले "तुमि जिज्ञासिले धर। जिज्ञासाय कार्य नाहि, झाट तुमि नड़" ॥१०८॥
अद्वैत बोलये "एत विचारे कि काज। 'मातृ-सम पर-नारी केने देह' लाज ॥१०९॥
नृत्य-गीत-प्रिय बड़ आमार ठाकुर। एथाये नाचाह—धन पाइवा प्रचुर" ॥११०॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि परम-सन्तोषे। नृत्य करे गदाधर प्रेम परकाशे' ॥१११॥
रमा-वेशे गदाधर नाचे मनोहर। समय उचित गीत गाय अनुचर ॥११२॥
गदाधर-नृत्य देखि आछे कोन् जन। विह्वल हइया नाहि करये क्रन्दन ॥११३॥
प्रेम नदी वहे गदाधरेर नयाने। पृथिवी हइया सिक्त 'धन्य हेन माने' ॥११४॥
गदाधर हैला जेन गङ्गा मूर्त्ति मती। सत्य सत्य गदाधर—कृष्णेर प्रकृति ॥११५॥
आपने चैतन्य वलियाछे वारे वार। "गदाधर मोर वैकुण्ठेर परिवार" ॥११६॥
जे गाय, जे देखे—सब भासिलेन प्रेमे। चैतन्य प्रसादे केहो वाह्य नाहि जाने ॥११७॥
'हरि हरि' वलिकान्दे वैष्णव मण्डल। सर्व-गणे हइल आनन्द-कोलाहल ॥११८॥
चौदिगे शुनिये कृष्ण प्रेमेर क्रन्दन। गोपिकार वेशे नाचे माधव नन्दन ॥११९॥
हेनइ समये महाप्रभु विश्वम्भर। प्रवेश करिला आद्या शक्ति-वेश धर ॥१२०॥
आगे नित्यानन्द वूड़ी-वड़ाइर वेशे। बङ्क वङ्क करि हाँटे, प्रेम रसे भासे ॥१२१॥

पूछते हैं "ये दो किनकी प्रिया हैं ?" ब्रह्मानन्द जी कहते हैं—"यह क्यों पूछते हो ?" ॥ १०५ ॥ श्रीवास बोले "क्या यह बात जानने योग्य नहीं ?", ब्रह्मानन्द ने "हाँ" (अर्थात् "जानने योग्य नहीं है") कह कर सिर हिला दिया ॥१०६॥ तब गङ्गादास ने पूछा— आज कहाँ रहोगी ? ब्रह्मानन्द जी बोले 'रहने को स्थान तुम दोगे' ॥ १०७ ॥ गङ्गादास बोले 'तुम तो पूछने पर ही गले पड़ने लगती हो ! अतएव पूछ ताछ का काम नहीं चलो अपना रास्ता पकड़ो' ॥ १०८ ॥ अद्वैत जी बोले 'इतने विचार का क्या काम ? पर नारी माता के समान होती है। इनको क्यों लज्जित करते हो' ॥ १०९ ॥ (फिर ब्रह्मानन्द जी से बोले) 'देखो ! हमारे प्रभु को नृत्य गीत बड़ा प्रिय है, अतएव यहीं नाचो खूब धन मिलेगा ॥ ११० ॥ अद्वैत जी के वचन को सुन कर परम सन्तोष के साथ गदाधर जी नृत्य करते हुए प्रेम प्रकट करते हैं ॥ १११ ॥ गदाधर जी लक्ष्मी वेश में मनोहर नृत्य कर रहे हैं, और अनुचर जन समयोचित गीत गा रहे हैं ॥ ११२ ॥ श्री गदाधर के नृत्य को देखकर ऐसा कौन है कि जो विह्वल होकर रोने न लगे ॥ ११३ ॥ श्री गदाधर के नेत्रों से प्रेम की नदी बह रही है जिससे पृथ्वी गीली होकर अपने को धन्य मान रही है ॥ ११४ ॥ श्री गदाधर मानो तो गङ्गा की मूर्त्ति बन गये हैं, सचमुच में श्री गदाधर श्रीकृष्ण की प्रकृति (शक्ति) ही हैं ॥ ११५ ॥ (इसीमे) स्वयं श्री चैतन्य देव ने आगे बार २ यही कहा है कि "गदाधर मेरे वैकुण्ठ का परिवार है ॥ ११६ ॥ उस समय जो गा रहे थे और जो देख रहे थे वे सब प्रेम में बह गये। श्री चैतन्य की कृपा से किसी को बाहर की कुछ सुध बुध न रही ॥११७॥ समस्त वैष्णव मण्डली 'हरि बोल हरि बोल' कह कर रोने लगी सब लोगों में आनन्द का कोलाहल मच गया ॥ ११८ ॥ चारों ओर से श्रीकृष्ण प्रेम के कारण क्रन्दन ध्वनि आ रही है और माधव नन्दन श्री गदाधर गोपिका के वेश में नाच रहे हैं ॥ ११९ ॥ ऐसे समय में महाप्रभु विश्वम्भर ने आदिशक्ति के वेश में प्रवेश किया ॥ १२० ॥ आगे २ नित्यानन्द जी बड़ी बूढ़ी के वेश में हैं, वे टेढे २ चलते हैं और प्रेम रस में बहे जा रहे हैं ॥१२१॥ सब वैष्णव जनों ने मण्डली बना ली और जय जयकार की महाध्वनि करने

मण्डली करिया सब वैष्णव रहिला। जय जय महा ध्वनि करिते लागिला ॥१२२॥
केहो नारे चिनिते-ठाकुर विश्वम्भर। हेन अति-अलक्षित-वेश मनोहर ॥१२३॥
नित्यानन्द महाप्रभु-प्रभुर बड़ाइ। ताँर पाछे प्रभु, आर किछु चिन्ह नाइ ॥१२४॥
अतएव सभेइ चिनिलेन 'प्रभु एइ'। वेशे केहो लखिते ना पारे 'प्रभु सेइ' ॥१२५॥
सिन्धु हैते प्रत्यक्ष कि हइला कमला। रघु सिंह गृहिणी कि जानकी आइला ॥१२६॥
किवा महालक्ष्मी, किवा आइला पार्वती। किवा वृन्दावनेर सम्पत्ति मूर्त्ति मती ॥१२७॥
किवा भागीरथी, किवा रूपवती दया। किवा सेइ महेश मोहिनी महा माया ॥१२८॥
एइ मत अन्योन्ये सर्व-जने जने। ना चिनिञा प्रभुरे आपने मोह माने' ॥१२९॥
आजन्म धरिया प्रभु देखिल जाहारा। तथापि लखिते नारे तिलार्द्धेक तारा ॥१३०॥
अन्येर कि दाय, आइ ना पारे चिनिते। मूर्त्ति भेदे लक्ष्मी किवा आइला नाचिते ॥१३१॥
अचिन्त्य अव्यक्त सत्य महा योगेश्वरी। भकति स्वरूपा हैला आपने श्रीहरि ॥१३२॥
महा योगेश्वर हर-जे रूप देखिया। महा मोह पाइलेन पार्वती लइया ॥१३३॥
तवे जे नहिल मोह वैष्णव-सभार। पूर्व-अनुग्रह-आछे, एइ हेतु तार ॥१३४॥
कृपा-जलनिधि प्रभु हइला सभारे। सभार जननी भाव हइल अन्तरे ॥१३५॥
परलोक हैते जेन आइला जननी। आनन्दे' नन्दन-सब आपना' ना जानि ॥१३६॥
एइ मत अद्वैतादि प्रभुरे देखिया। कृष्ण प्रेम सिन्धु-माझे वुलेन भासिया ॥१३७॥
जगत जननी भावे नाचे विश्वम्भर। समय-उचित गीत गाय अनुचर ॥१३८॥

लगे ॥ १२२ ॥ कोई प्रभु विश्वम्भर को पहचान नहीं पाते हैं,—ऐसा मनोहर वेश बनाया है उन्होंने कि जो कभी पहले देखने में नहीं आया था ॥ १२३ ॥ प्रभु के साथ नित्यानन्द महाप्रभु बड़ी बूढ़ी के रूप में आगे हैं और पीछे प्रभु गौर हैं। (इस आगे पीछे के क्रम के अतिरिक्त उनके पहचान के लिये) और कोई चिन्ह नहीं हैं ॥ १२४ ॥ अतएव (इसी एक चिन्ह से) सब ने पहचान लिया कि प्रभु ये हैं—परन्तु वेश को देखकर कोई नहीं पहचान पाता है कि ये वेही प्रभु हैं ॥ १२५ ॥ क्या समुद्र से लक्ष्मी जी प्रकट हुई हैं अथवा तो रघुकुल सिंह की गृहिणी जानकी जो आई हैं ॥ १२६ ॥ अथवा तो महालक्ष्मी अथवा पार्वती जो आई हैं अथवा तो ये मूर्त्तिमती वृन्दावन की सम्पत्ति हैं ॥ १२७ ॥ अथवा तो भागीरथी गङ्गा हैं अथवा रूपवती दया हैं, अथवा तो महेश मन मोहिनी महामाया हैं ॥ १२८ ॥ इस प्रकार प्रभु को न पहचान कर परस्पर में कहते हुए सब लोग मोह को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १२९ ॥ जिन्होंने जन्म से ही प्रभु को देखा है वे भी उनको आधा तिल भर भी न पहचान सके ॥१३०॥ औरों की तो बात ही क्या, स्वयं शची मा नहीं पहचान सकीं। (वे यही समझ रही हैं कि) कदाचित् लक्ष्मी जी ही एक दूसरी मूर्त्ति प्रकट करके नृत्य करने को आई हैं ॥ १३१ ॥ आज स्वयं श्री गौरहरि अचिन्त्य अव्यक्त सत्य स्वरूपा, महायोगेश्वरी भक्ति स्वरूपिणी हो गये हैं ॥१३२॥ महा-योगेश्वर महादेव पार्वती जी के साथ होते हुए भी जिस रूप को देखकर महामोह को प्राप्त हो गये थे ॥१३३॥ (उस रूप को देखकर) जो आज कोई वैष्णव जन मोहित नहीं हुये उसका कारण यही है कि उनको पहले से प्रभु की कृपा प्राप्त है ॥ १३४ ॥ प्रभु सब के प्रति कृपा सागर बन गये हैं अतएव सब के हृदय में प्रभु के प्रति जननी भाव का उदय हो आया ॥ १३५ ॥ आज मानो तो परलोक (परमलोग) से जननी आई हैं—अतएव मारे आनन्द के पुत्रगण सब अपनपो भूल गये हैं ॥ १३६ ॥ इस प्रकार अद्वैत आदि सब लोग प्रभु को देखकर श्री कृष्णप्रेम सिन्धु में बहे जा रहे हैं ॥ १३७ ॥ प्रभु विश्वम्भर जगज्जननी भाव में नृत्य कर रहे

हेन दढ़ाइते केहो नारे कोन जन। कोन् प्रकृतिर भावे नाचे नारायण ॥१३९॥
कखनो बोलये "विप्र ! कृष्ण कि आइला"। तखन वुझिये जेन विदर्भेर बाला ॥१४०॥
नयने आनन्द धारा देखिये जखन। मूर्तिमती गङ्गा जेन वुझिये तखन ॥१४१॥
भावा वेशे जखन वा अट्ट अट्ट हासे। महाचण्डी हेन सभे वुझन प्रकाशे ॥१४२॥
ढूलिया ढूलिया प्रभु नाचये जखने। साक्षात् रेवती जेन कादम्बरी पाने ॥१४३॥
क्षणे बोले "चल बड़ाइ ! जाइ वृन्दावने। गोकुल सुन्दरी-भाव वुझिये तखने ॥१४४॥
वीरासने क्षणे प्रभु वसे ध्यान करि। सभे देखे जेन महा-कोटि-योगेश्वरी ॥१४५॥
अनन्त-ब्रह्माण्डे जत निज-शक्ति आछे। सकल प्रकाशे' प्रभु रुक्मिणीर काचे ॥१४६॥
व्यपदेशे महाप्रभु शिखाय सभारे। पाछे मोर शक्ति कोन जन निन्दा करे ॥१४७॥
लौकिक वैदिक जत किछु विष्णु शक्ति। सभार सम्माने हय कृष्णे दृढ-भक्ति ॥१४८॥
देव-द्रोह करिले कृष्णेर बड़ दुःख। गण-सह कृष्ण-पुजा करिलेइ सुख ॥१४९॥
जे शिखाये कृष्ण चन्द्र, से-इ सत्य हय। अभाग्ये पापिष्ठ-मति ताहा नाहि लय ॥१५०॥
सर्व-शक्ति-स्वरूपा नाचये विश्वम्भर। केहो नाहि देखे हेन नृत्य मनोहर ॥१५१॥
जे देखे, जे शुने, जेवा गाय प्रभु-सङ्गे। सभेइ भासये प्रेम-सागर-तरङ्गे ॥१५२॥
एको-वैष्णवेर जत नयनेर जल। सेइ जेन महावन्या—थाकुक सकल ॥१५३॥
आद्या शक्ति-वेशे नाचे प्रभु गौर सिंह। सुखे देखे तार जत चरणेर भृङ्ग ॥१५४॥

है और अनुचर जन समयोचित गीत गा रहे हैं। १३८ ॥ परन्तु कोई भी यह निश्चय नहीं कर पाता है कि नारायण (गौर) किस प्रकृति (रमणी) के भाव में नाच रहे हैं ॥१३९॥ कभी तो वे कहते हैं "ब्राह्मण ! क्या श्रीकृष्ण आ गये ?" उस समय तो रुक्मिणी जैसे लगते हैं ॥१४०॥ और नेत्रों की आनन्द धाराओं को देखने पर मूर्तिमती गङ्गा जी जैसी समझ में आते हैं ॥ १४१ ॥ और जब भावावेश में अट्टहास करते हैं तो सब यही समझते हैं कि महाचण्डी का प्रकाश हुआ है ॥ १४२ ॥ और जब प्रभु झूम २ कर नाचने लगते हैं तो कादम्बरी पीये हुई रेवती जैसी लगते हैं ॥ १४३ ॥ फिर क्षण भर में कहते हैं "चल बूढ़ी ! वृन्दावन को चलें"। तब गोकुल सुन्दरी (गोपी) का भाव समझ में आता है ॥ १४४ ॥ क्षण में प्रभु वीरासन में बैठ करके ध्यान करते हैं तब सब उनको कोटी महायोगेश्वरी जैसा देखते हैं ॥ १४५ ॥ अनन्त ब्रह्माण्डों में भगवान् की जितनी निज शक्ति समूह हैं, प्रभु रुक्मिणी के वेश में उन सबको प्रकाशित कर रहे हैं ॥ १४६ ॥ शक्ति प्रकाश के छल से महाप्रभु लोक को शिक्षा भी कर रहे हैं जिससे कि पीछे कोई उनकी शक्तियों की निन्दा न करे ॥ १४७ ॥ (शिक्षा यही है कि) लोक में और वेद में कथित जितनी भी विष्णु–शक्तियाँ हैं उन सबों का सन्मान करने से श्रीकृष्ण में दृढ़भक्ति होती हैं ॥ १४८ ॥ देवताओं के साथ द्रोह करने से श्रीकृष्ण को बड़ा दुःख होता है और समस्त देवगण सहित श्रीकृष्ण पूजा करने से ही उनको सुख होता है ॥ १४९ । श्री कृष्णचन्द्र जो कुछ सिखाते हैं, वही सत्य है। परन्तु अभागे पापी जनों की बुद्धि इसे ग्रहण नहीं करती है ॥ १५० ॥ श्री विश्वम्भर प्रभु सब शक्तियों के स्वरूप में नाच रहे हैं। ऐसा मनोहर नृत्य किसी ने कभी नहीं देखा-था ॥ १५२ ॥ उस समय जो देख रहे थे, जो प्रभु के साथ गा रहे थे, और जो सुन रहे थे, सब ही प्रेम सागर के तरङ्गों में बहे जा रहे थे ॥ १५२ ॥ (कारण कि) एक ही वैष्णव के नेत्रों का जितना जल है वही एक महान् बाढ के समान है समस्त वैष्णवों के नेत्रों के जल की बात तो दूर रहे ॥ १५३ ॥ प्रभु गौरसिंह आद्य शक्ति के वेश में नाच रहे हैं, और उनके चरण कमल के भ्रमर सब सुख से देख रहे हैं ॥ १५४ ॥

कम्प-स्वेद-पुलक-अश्रुर अन्त नाञि । मूर्तिमती भक्ति हैला चैतन्य गोसाञि ।।१५५।।
नाचेन ठाकुर धरि नित्यानन्द-हाथ । से कटाक्ष स्वभाव वर्णिते शक्ति का'त ।।१५६।।
सम्मुखे देउटि धरे पण्डित-श्रीमान् । चतुर्दिगे हरिदास करे सावधान ।।१५७।।
हेनइ समये नित्यानन्द हलधर । पड़िला मूर्च्छित हइ पृथिवी-उपर ।।१५८।।
कोथाय वा गेल बूड़ी बडाइर साज । कृष्ण रसे विह्वल हइला नागराज ।।१५९।।
जेइ मात्र नित्यानन्द पड़िला भूमिते । सकल वैष्णव गण कान्दे चारि भिते ।।१६०।।
हुड़ा हुड़ि हैल कृष्ण प्रेमेर क्रन्दन । सकल कराय प्रभु श्रीशचीनन्दन ।।१६१।।
कारो गला धरि केहो कान्दे उच्च-रा'य । काहारो चरण धरि केहो गड़ि जाय ।।१६२।।
क्षणेके ठाकुर गोपीनाथे कोले करि । महा लक्ष्मी-भावे उठे खट्टार उपरि ।।१६३।।
सम्मुखे रहिला सभे जोड़-हस्त करि । "मोर स्तव पढ़" बोले गौराङ्ग श्रीहरि ।।१६४।।
जननी-आवेश' बुझिलेन सर्व जने । से-इ-रूपे सभे स्तुति पढ़े, प्रभु शुने ।।१६५।।
केहो पढ़े लक्ष्मी स्तव, केहो चण्डी स्तुति । सभे स्तुति पढेन-जाहार जेन मति ।।१६६।।
मालशी (राग)—"जय जय जगत्-जननि महा माया । दुःखित-जीवेरे देह' चरणेर छाया ।।१६७।।
जय जय अनन्त-ब्रह्माण्ड-कोटीश्वरि । तुमि युगे युगे धर्म राख अवतरि ।।१६८।।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरे तोमार महिमा । बलिते ना पारे, अन्य कि दिबेक सीमा ।।१६९।।
जगत-स्वरूपा तुमि, तुमि सर्व-शक्ति । तुमि श्रद्धा, दया, लज्जा, तुमि विष्णु भक्ति ।।१७०।।
जत विद्या—सकल तोमार मूर्ति भेद । 'सर्व प्रकृतिर शक्ति तुमि' कहे वेद ।।१७१।।

प्रभु के कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रु का अन्त नहीं है ! श्रीचैतन्य देव आज मूर्तिमती भक्ति हो गये हैं ।।१५५।। वे प्रभु नित्यानन्द जी का हाथ पकड़ कर नाच रहे हैं, उनके उन कटाक्षों के स्वभाव को वर्णन करने की शक्ति भला किस में है ।। १५६ ।। श्रीमान पण्डित मशाल पकड़े हुए सामने खड़े हैं, और हरिदास चारों ओर सबको सावधान कर रहे हैं ।। १५७ ।। ऐसे ही समय में हलधर नित्यानन्द जी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ।। १५८ ।। उनकी बड़ी बूढी सखी का वेश न जाने कहाँ चला गया ! नागराज अनन्त देव श्रीकृष्ण रस में विह्वल हो गये ! ।। १५९ ।। नित्यानन्द जी के भूमि पर गिरते ही सब वैष्णव लोग चारों ओर रोने लगे ।। १६० ।। श्रीकृष्ण प्रेम में रोने की उनमें एक होड़-सी मच गई—यह सब प्रभु श्रीशची नन्दन करा रहे हैं ।। १६१ ।। कोई किसी का गला पकड़ कर ऊँचे स्वर से रो रहा है तो कोई किसी के पाँव पकड़ कर लोट पोट हो रहा है ।। १६२ ।। क्षण भर में प्रभु गौरचन्द्र श्रीगोपीनाथ नामक श्री विग्रह को लेकर महा लक्ष्मी के भाव में सिंहासन पर चढ़ बैठे ।। १६३ ।। सब भक्त लोग हाथ जोडकर सामने खड़े हो गये । गौरांग श्रीहरि बोले—"मेरी स्तुति पढ़ो" ।। १६४ ।। सब लोग समझ गये कि प्रभु में जगज्जननी का आवेश हुआ है अतऐव सब उसी भाव के अनुसार स्तुति पढ़ते हैं और प्रभु सुनते हैं ।। १६५ ।। कोई लक्ष्मी-स्तुति पढ़ता है तो कोई चण्डी-स्तुति । अपनी-अपनी गति-मति के अनुसार सब ही स्तुति पढ़ते हैं ।। १६६ ।। स्तुतिः—"हे जगज्जननी महा माये ! तुम्हारी जय हो, जय हो । हम दुखित जीवों को श्रीचरण की छाया देवें ।। १६७ ।। हे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की ईश्वरी ! तुम्हारी जय हो जय हो । तुम युग २ में अवतार लेकर धर्म की रक्षा करती हो ।। १६८ ।। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर भी तुम्हारी महिमा को नहीं कह सकते हैं, फिर और कौन उसकी सीमा को पा सकता है ।। १६९ ।। "तुम जगत्-स्वरूपा हो, तुम सर्व शक्ति हो । तुम श्रद्धा, दया, लज्जा हो । तुम ही विष्णु भक्ति हो ।। १७० ।। जितनी विद्याएं हैं, वे सब तुम्हारी भिन्न-भिन्न मूर्त्तियाँ ही

निखिल-ब्रह्माण्डे परिपूर्ण तुमि माता। के तोमार स्वरूप कहिते पारे कथा ।।१७२।।
तुमि त्रिजगत-हेतु गुण त्रयमयी। ब्रह्मादि तोमारे नाहि जाने जाने कोई ।।१७३।।
सर्वाश्रया तुमि सर्व जीवेर वसति। तुमि आद्या अविकारा परमा प्रकृति ।।१७४।।
जगत-आधार तुमि द्वितीय-रहिता। महो-रूपे तुमि सर्व जीव पालयिता ।।१७५।।
जल-रूपे तुमि सर्व जीवेर जीवन। तोमा' स्मङरिले खण्डे' अशेष-बन्धन ।।१७६।।
साधु जन गृहे तुमि लक्ष्मी मूर्त्तिमती। असाधुर घरे तुमि काल रूपाकृति ।।१७७।
तुमि से कराह त्रिजगते सृष्टि-स्थिति। तोमा' ना भजिले पाय त्रिविध दुर्गति ।।१७८।।
तुमि श्रद्धा वैष्णवेर सर्वत्र उदया। राखह जननि! चरणेर दिया छाया ।।१७९।।
तोमार मायाय मग्न सकल संसार। तुमि ना राखिले माता! के राखिब आर ।।१८०।।
सभार उद्धार लागि तोमार प्रकाश। दु:खित-जीवेरे माता! कर' निज-दास ।।१८१।।
ब्रह्मादिर वन्द्य तुमि सर्व-भूत-बुद्धि। तोमा' स्मङरिले सर्व-मंत्रादिर शुद्धि ।।१८२।।
एइ मत स्तुति करे सकल महान्त। वर-मुख महाप्रभु शुनये नितान्त ।।१८३।।
पुन: पुन सभे दण्ड प्रणाम करिया। पुन स्तुति करे श्लोक पढ़िया पढ़िया ।।१८४।।
"सभे लइलाङ माता! तोमार शरण। शुभ दृष्टि कर' तोर पदे रहु मन" ।।१८५।।
एइ मत सभेइ करेन निवेदन। ऊर्द्ध बाहु करि सभे करेन क्रन्दन ।।१८६।।
गृह माझे कान्दे सब पतिव्रता गण। आनन्द हइल चन्द्र शेखर भवन ।।१८७।।
आनन्दे सकल लोक वाह्य नाहि जाने। हेनइ समये निशि हैल अवसाने ।।१८८।।

हैं। वेद तुमको ही सर्व शक्तियों की मूल शक्ति कहते हैं ।। १७१ ।। "मा! तुम निखिल ब्रह्माण्डों में व्याप्त हो। तुम्हारे स्वरूप को कौन वर्णन कर सकता है ।। १७२ ।। तुम ही त्रिलोक के हेतु त्रिगुणमयी प्रकृति हो। ब्रह्मादिक तुमको नहीं जानते हैं, विरला ही कोई जानता हो ।। १७३ ।। "तुम सब की आश्रय हो, सब जीवों की निधान हो। तुम आद्या, विकार रहित परमा प्रकृति हो ।। १७४ ।। तुम अद्वितीय जगत् की आधार हो! पृथ्वी रूप से तुम ही सब जीवों को पालन करने वाली हो ।। १७५ ।। "जल रूप से तुम ही सब जीवों की जीवन हो। तुम्हारा स्मरण करने से अशेष बन्धन खण्डित हो जाते हैं ।। १७६ ।। साधु जनों के गृह में तुम मूर्त्तिमती लक्ष्मी हो और असाधु जनों के घर में तुम ही काल रूपिणी हो ।। १७७ ।। "तुम ही त्रिलोक की सृष्टि करने वाली हो, तुमको न भजने से जीव (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) त्रिविध दुर्गति को प्राप्त होता है ।। १७८ ।। तुम ही वैष्णवों की सर्वत्र उदय होने वाली श्रद्धा हो। हे जननी! हमें अपने श्रीचरणों की छाया देकर रक्षा करो ।। १७९ ।। "यह सारा संसार तुम्हारी माया में ही डूबा हुआ है, तुम ही नहीं बचाओगी मा! तो और कौन बचायगा? ।। १८० ।। सबके उद्धार के लिये ही तुम्हारा अवतार है। हे माता! दुखित जीवों को अपना दास बनाओ ।। १८१ ।। "तुम ब्रह्मादिकों की भी बन्दनीया हो, तुम ही सब प्राणियों की बुद्धि हो। तुम्हारा स्मरण करने से मंत्रादिक सबों की शुद्धि हो जाती है" ।। १८२ ।। इस प्रकार सब महानुभाव स्तुति कर रहे हैं और वरदान को उद्यत महाप्रभु ध्यान पूर्वक सुन रहे हैं ।। १८३ ।। सब लोग बार-बार दण्डवत प्रणाम कर करके फिर श्लोक पढ़ते हुए स्तुति करते हैं ।। १८४ ।। "हे माता! हम सबने तुम्हारी शरण ली है, ऐसी शुभ दृष्टि करो कि तुम्हारे चरण में हमारा मन रहे ।। १८५ ।। इस प्रकार सब ही निवेदन कर रहे है और भुजा ऊपर उठाकर रो रहे हैं ।। १८६ ।। घर भीतर पतिव्रता गण सब रो रही हैं। चन्द्र शेखर के भवन में आनन्द उमड़ रहा है ।। १८७ ।। उस

आनन्दे ना जाने केहो निशि भेल शेष। दारुण अरुण आसि भेल परवेश ॥१८६॥
पोहाइल निशि हैल नृत्य-अवसान। वाजिल सभार बुके जेन महा बाण ॥१६०॥
चमकित हइ सभे चारि दिगे चा'य। 'पोहाइल निशि' करि कान्दे उभरा'य ॥१६१॥
कोटि-पुत्र-शोकेओ एतेक दुःख नहे। जे दुःख जन्मिल सर्व-वैष्णव-हृदये ॥१६२॥
जे दुःखे वैष्णव-सब अरुणेरे चा'हे। प्रभुर कृपार लागि भस्म नाहि हये ॥१६३॥
ए रङ्ग रहिव हेन विषाद भाविया। अतएव गौरचन्द्र करिलेन इहा ॥१६४॥
कान्दे सर्व-भक्त गण विषाद भाविया। पतिव्रता गण कान्दे भूमिते पड़िया ॥१६५॥
जत नारायणी-शक्ति जगत-जननी। सेइ सब हइयाछे वैष्णव गृहिणी ॥१६६॥
अन्योऽन्ये कान्दे सब पतिव्रता गण। सभेइ धरेन शची देवीर चरण ॥१६७॥
चौदिगे उठिल विष्णु भक्तिर क्रन्दन। प्रेम मय हैल चन्द्र शेखर भवन ॥१६८॥
सहजेइ वैष्णवेर क्रन्दन उचित। जन्म जन्म जाने जारा कृष्णेर चरित ॥१६६॥
केहो बोले "आरे रात्रि! केने पोहाइला। हेन रसे केने कृष्ण! वञ्चित करिला" ॥२००॥
चौदिगे देखिया सब-वैष्णव-क्रन्दन। अनुग्रह करिलेन श्रीशचीनन्दन ॥२०१॥
माता-पुत्रे जेन हय स्नेह अनुराग। एइ मत सभारे दिलेन पुत्र-भाव ॥२०२॥
मातृ भावे विश्वम्भर सभारे धरिया। स्तन पान कराय परम स्निग्ध हैया ॥२०३॥
कमला, पार्वती, दया, महा नारायणी। आपने हइला प्रभु जगत जननी ॥२०४॥
सत्य करिलेन प्रभु आपनार गीता। 'आमि पिता, पितामह, आमि धाता, माता' ॥२०५॥

आनन्द में किसी को बाहर को कुछ सुध-बुध नहीं है। ऐसे ही समय में रात्रि शेष हो गई ॥ १८८ ॥ आनन्द में किसी को भी रात बीत जाने की खबर ही नहीं है। उधर अरुणोदय की घोर लालिमा ने आकर प्रवेश किया ॥ १८६ ॥ रात्रि शेष हुई तो नृत्य भी शेष हुआ यह सब की छाती में शेल सा आ चुभा ॥१६०॥ सब लोग चमक कर चारों ओर देखने लगे और "रात तो बीत गई" कहते हुए जोर २ से रोने लगे ॥ १६१ ॥ जो दुःख इस समय सब वैष्णव जनों के हृदय को हुआ, वह दुःख करोड़ों पुत्रों के शोक में भी नहीं है ॥१६२॥ जिस दुःख से वैष्णव लोग सूर्य की ओर देखने लगे (उससे वह भस्म हो जाता) परन्तु प्रभु की कृपा उस पर होने के कारण वह भस्म नहीं हो रहा है ॥ १६३ ॥ इस दुःख की भावना से उस सुख का रङ्ग पक्का हो जायगा सोचकर ही गौरचन्द्र ने ऐसा किया ॥ १६४ ॥ दुःख की भावना में सब भक्त लोग रो रहे हैं और पतिव्रता गण भूमि पर पड़ी रो रही हैं ॥ १६५ ॥ नारायणी शक्तिरूप जितनी जगत् जननी हैं वे ही सब वैष्णव गृहिणी हुई हैं ॥ १६६ ॥ सब पतिव्रता गण परस्पर में रो रही हैं और सभी शची देवी के चरण पकड़ रही हैं ॥ १६७ ॥ चारों ओर विष्णु भक्ति का क्रन्दन मच गया। चन्द्र शेखर का घर प्रेम मय हो गया ॥ १६८ ॥ जो जन्म जन्मान्तर से श्रीकृष्ण के चरित्र को जानते हैं, उन वैष्णवों का रोना सहज स्वभाव से उचित ही है ॥ १६६ ॥ कोई कहते हैं "अरी रात्रि! तू बीत क्यों गई ? हे कृष्ण! ऐसे रस से हमें वञ्चित क्यों कर दिया?" ॥ २०० ॥ चारों ओर सब वैष्णवों को रोते देख श्री शचीनन्दन ने सब के ऊपर अनुग्रह किया ॥ २०१ ॥ उन्होंने माता-पुत्र में जो स्नेह अनुराग होता है वैसा पुत्रभाव सबको प्रदान किया ॥२०२॥ पश्चात् प्रभु विश्वम्भर ने परम स्निग्ध हो, सब भक्तों को उठा २ कर स्तन पान कराया ॥२०३॥ प्रभु स्वयं जगज्जननी कमला, पार्वती, दया, महानारायणी हो गये ॥ २०४॥ प्रभु अपनी गीता के इस वाक्य को सत्य कर रहे हैं कि "मैं ही पिता, पितामह, धाता और माता हूँ ॥ २०५ ॥ (गीता० ६। २७) वैष्णव वृन्द जो

तथाहि गीतायाम् (९ । १७ ।)—"पिताह मस्य जगतो माता धाता पितामहः" ॥

आनन्दे वैष्णव-सब करे स्तन पान । कोटि कोटि जन्म जारा महा भाग्यवान् ॥२०६॥
स्तन पाने सभार विरह गेल दूर । प्रेम रसे सभे मत्त हइला प्रचुर ॥२०७॥
ए सब लीलार कभू अवधि ना हय । 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र वेदे कय ॥२०८॥
महाराज राजेश्वर गौराङ्ग सुन्दर । एहो रङ्ग करिलेन नदीया-भितर ॥२०९॥
निखिल ब्रह्माण्डे जत स्थूल सूक्ष्म आछे । सब चैतन्येर रूप—भेद कर' पाछे ॥२१०॥
इच्छाय काचये काच, इच्छाय घुचाय । इच्छाय करये सृष्टि, इच्छाय मिलाय । २११॥
इच्छा मय महेश्वर-इच्छा काच काचे । तान इच्छा नाहि करे हेन कोन् आछे ॥२१२॥
तथापि ताँहार काच—सकलि सुसत्य । जीव तारिवार लागि ए सब महत्त्व ॥२१३॥
इहा ना बुझिया कोन पापी जना जना । प्रभुरे बोलये "गोपी" खाइया आपना' ॥२१४॥
अद्भुत गोपिका-नृत्य—चारि-वेद-धन । कृष्ण भक्ति हय इहा करिले श्रवण ॥२१५॥
हइला बड़ाइ—बूड़ी प्रभु नित्यानन्द । से लीलाय हेन लक्ष्मी-काचे गौरचन्द्र ॥२१६॥
जखने जे रूपे गौर सुन्दर विहरे । सेइ अनुरूप रूप नित्यानन्द धरे ॥२१७॥
प्रभु हइलेन गोपी, निताइ बड़ाइ । के बुझिव इहा—जार अनुभव नाइ ॥२१८॥
कृष्ण-अनुग्रहे से ए-सब-मर्म जानि । अल्प-भाग्ये नित्यानन्द स्वरूप ना चिनि ॥२१९॥
किवा योगी नित्यानन्द, किबा भक्त ज्ञानी । जार जेन मत इच्छा ना बोलये केनि ॥२२०॥
जे से के ने चैतन्येर नित्यानन्द नहे । तथापि से पाद पद्म रहुक हृदये ॥२२१॥
एत परिहारे ओ जे पापी निन्दा करे । तवे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥२२२॥

कोटि २ जन्मों के महाभाग्यवान् हैं—सब बड़े आनन्द में स्तनपान कर रहे हैं ॥ २०६ ॥ स्तनपान करने से सबों का विरह दूर हो गया और प्रेम रस में सभी बड़े मतवाले हो गये ॥ २०७ ॥ इन सब लीलाओं की कभी कोई सीमा (समाप्ति) नहीं है । इनका केवल आविर्भाव तिरोभाव ही वेद कहते हैं ॥२०८॥ महाराज राजेश्वर श्री गौराङ्ग सुन्दर ने नदिया में यह भी (पूर्वोक्त) लीला विनोद किया ॥ २०९ ॥ अखिल ब्रह्माण्ड में जितने स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं सब चैतन्य के ही रूप हैं—ऐसा न हो कि पीछे कहीं भेद करो ॥ २१०॥ (श्री-चैतन्य) अपने इच्छा से स्वांग सजते हैं, इच्छा से मिटा देते हैं, इच्छा से सृष्टि करते और इच्छा से लय कर देते हैं ॥ २११ ॥ वे इच्छामय महेश्वर हैं, इच्छानुसार स्वाँग सजते हैं । ऐसा कौन है जो उनकी इच्छानुसार न चलै ॥ २१२ ॥ तथापि उनका स्वांग सब ही सुसत्य है जीवोद्धार के लिये ही आपका यह सब महत्व है ॥ २१३ ॥ यह (उपरोक्त तत्त्व) न समझ कर कोई २ पापी जन प्रभु को गोपी कहते हैं वे आत्मघात करते हैं ॥ २१४ ॥ प्रभु के गोपीभाव का अद्भुत नृत्य चारों वेदों का धन है । इसके श्रवण से कृष्णभक्ति होती है ॥ २१५ ॥ जिस लीला में गौरचन्द्र ने लक्ष्मी-वेश बनाया था उसमें प्रभु नित्यानन्द बड़ी बूढ़ी सखी बने थे ॥ २१६ ॥ श्री गौरसुन्दर जब जिस रूप में विहार करते हैं, श्री नित्यानन्द उस समय उसके अनुरूप अपना रूप बनाते हैं ॥ २१७ ॥ महाप्रभु गोपी बने तब श्री नित्यानन्द जी बड़ी बूढ़ी बने—जिसे अनुभव नहीं वह इसे क्या समझेगा ॥ २१८ ॥ श्रीकृष्ण की कृपा से यह सब रहस्य जाना जाता है । अल्प भाग्य से श्रीनित्यानन्द का स्वरूप नहीं पहिचाना जाता है ॥ २१९ ॥ श्री नित्यानन्द को कोई योगी, कोई भक्त, कोई ज्ञानी, जैसी जिसकी इच्छा, वैसा क्यों न कहें ॥ २२० ॥ और श्री नित्यानन्द श्री चैतन्यदेव के चाहे जो कुछ भी क्यों न हों, तथापि उनके वे चरण—कमल मेरे हृदय में सदा रहें ॥ २२१ ॥ इतना समाधान करने पर भी

मध्य खण्ड-कथा जेन अमृत-स्रवण । जहिं लक्ष्मी वेशे नृत्य कैला नारायण ।।२२३।।
नाचिला जननी भावे भक्ति शिखाइया । सभार पूरिला आश स्तन पियाइया ।।२२४।।
सप्त दिन श्रीआचार्य रत्नेर मन्दिरे । परम-अद्भुत तेज छिल निरन्तरे ।।२२५।।
चन्द्र सूर्य विद्युत्—एकत्र जेन ज्वले । देखये सुकृति-सब महा कुतूहले ।।२२६।।
जतेक आइसे लोक आचार्य मन्दिरे । चक्षु मेलिवारे शक्ति केहो नाहि धरे ।।२२७।।
लोके बोले "कि कारणे आचार्येर घरे । दुइ चक्षु मेलिते—फूटिया जेन पड़े" ।।२२८।।
शुनिया वैष्णव गण मने मने हासे । केहो आर किछु नाहि करये प्रकाशे ।।२२९।।
हेन से चैतन्य-माया परम-गहन । तथापिह केहो किछु ना वुझे कारण ।।२३०।।
ए मत अचिन्त्य लीला गौरचन्द्र करे । नवद्वीपे सर्व-शक्ति-सहिते विहरे ।।२३१।।
शुन शुन आरे भाइ ! चैतन्येर कथा । मध्य खण्डे जे जे कर्म कैला जथा जथा ।।२३२।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ।।२३३।।

अथ उन्नीसवाँ अध्याय

जय जय विश्वम्भर सर्व-वैष्णवेर नाथ । भक्ति दिया जीव प्रभु ! कर' आत्म सात् ।।१।।
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर । क्रीड़ा करे, नहे सर्व-नयन-गोचर ।।२।।
आपने भक्तेर सब मन्दिरे मन्दिरे । नित्यानन्द-गदाधर-सहति विहरे ।।३।।

जो पापी उनकी निन्दा करता है, मैं उसके सिर पर लात मारता हूँ ।। २२२ ।। मध्यखण्ड की कथा जिसमें नारायण (गौरचन्द्र) ने लक्ष्मी वेश में नृत्य किया है, अमृत का झरना जैसा है ।। २२३ ।। प्रभु भक्ति की शिक्षा दे कर जननी भाव में नाचे और स्तन पान कराकर सबकी आशा पूरी की ।। २२४ ।। श्री चन्द्रशेखर आचार्य रत्न के घर में सात दिन तक निरन्तर एक परम अद्भुत प्रकाश बना रहा ।। २२५ ।। मानो तो चन्द्रमा सूर्य और विद्युत एक ठौर में चमक रहे हों। पुण्यशाली जन सब परम आनन्द पूर्वक दर्शन करते हैं ।। २२६ ।। आचार्य रत्न के घर में जितने भी लोग आते, उनमें से किसी की मजाल क्या जो घर के भीतर आँख तो खोल ले ।। २२७ ।। सब लोग कहते—"कारण क्या है कि आचार्य के घर भीतर आँख खोलते ही वे फूटने सी लगती हैं ?" ।। २२८ । यह सुन वैष्णव गण मन ही मन हँसते हैं, कोई भी खोल कर कुछ नहीं बतलाते हैं ।। २२९ ।। श्री चैतन्य की वह माया ऐसी ही कुछ परम गहन है कि फिर भी (तेज के मारे आँखें फूटने लगने पर भी) कोई भी कारण को समझ नहीं पाता है ।। २३० ।। इस प्रकार श्री गौरचन्द्र अचिन्त्य लीला करते हैं और सर्व शक्ति सहित नवद्वीप में विहार करते हैं ।। २३१ ।। अरे भाइओ ! श्री चैतन्य के मध्यखण्ड की कथा—जहाँ २ जो २ लीला की हैं—बार बार सुनो ।। २३२ ।। श्री कृष्ण चैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जानकर यह वृन्दावन उनके चरण युगल में उनके गुण गान को समर्पण करता है ।। २३३ ।।

इति श्री गौरांगस्य गोपिका नृत्य वर्णनं नाम अष्टादशोऽध्याय:

सब वैष्णवों के नाथ श्री विश्वम्भर चन्द्र की जय हो, जय हो । हे प्रभो ! भक्ति देकर जीव को अपनाओ ।। १ ।। इस प्रकार नवद्वीप में श्री विश्वम्भर राय क्रीड़ा कर रहे हैं, तथापि उनकी लीलाएँ सब के नयन गोचर नहीं हैं ।। २ ।। प्रभु अपने भक्तों के घर २ श्री नित्यानन्द और श्री गदाधर के साथ विहार

प्रभुर आनन्दे पूर्ण भागवत गण। कृष्ण-परिपूर्ण देखे सकल–भुवन ।।४।।
निरवधि सभार आवेशे नाहि वाह्य। सङ्कीर्तन विना आर नाहि कोन कार्य। ५।।
सभा' हैते मत्त वड़ आचार्य गोसाञि। अगाध चरित्र, वुझे हेन केहो नाञि ।।६।।
जाने जन कथोक श्रीचैतन्य कृपाय। "चैतन्येर महा भक्त शान्ति पुर राय" ।।७।।
वाह्य हैले विश्वम्भर सर्व-वैष्णवेरे। महा भक्ति करेन, विशेष अद्वैतेरे ।।८।।
इहाते असुखी बड़ शान्ति पुर नाथ। मने मने गर्जे चित्ते ना पाय सोयाथ ।।९।।
"निरवधि चोरा मोरे विडम्वना करे। प्रभुता छाड़िया मोर चरणेते धरे ।।१०।।
बले नाहि पारों मुञि, प्रभु महाबली। धरियाओ लय मोर चरणेर धूली ।।११।।
भक्ति-बल सवे मोर आछये उपाय। भक्ति विना विश्वम्भर जिनिल ना जाय ।।१२।।
तवे से 'अद्वैत सिंह' नाम लोके घोषे'। चूर्ण करों माया जवे अशेष विशेषे ।।१३।।
भृगुरे जिनिञा आश पाइयाछे चोरा। भृगु-हेन शत शत शिष्य आछों मोरा ।।१४।।
हेन क्रोध जन्माइव प्रभुर शरीरे। स्वहस्ते आपने जेन मोर शास्ति करे ।।१५।।
'भक्ति' वुझाइते से प्रभुर अवतार। 'हेन भक्ति ना मानिमु' एइ मंत्र सार ।।१६।।
भक्ति ना मानिले, क्रोधे आपना' पासरि। प्रभु मोरे शास्ति करि वेन चूले धरि" ।।१७।।
एइ मंत्र चिन्तिया अद्वैत महा रङ्गे। विदाय करिल प्रभु, हरिदास सङ्गे ।।१८।।
कोन कार्य लक्ष्य करि गृहेते आइला। आसिया मनेर मंत्र करिते लागिला ।।१९।।
निरवधि भावावेशे दोले मत्त हैया। वाखाने वाशिष्ठ-शास्त्र 'ज्ञान' प्रकाशिया ।।२०।।

करते हैं।। ३ ।। प्रभु के आनन्द से भक्त वृन्द भी सब आनन्द से पूर्ण हो रहे हैं और सकल भुवन को कृष्ण से परिपूर्ण देख रहे हैं ।। ४ ।। उन सबों को सदा आवेश में रहने से वाह्य ज्ञान नहीं रहता। संकीर्तन के बिना उनका और कोई कार्य नहीं है ।। ५ ।। श्री अद्वैत गुसांई सब से अधिक मत्त रहते हैं। उनका चरित्र अगाध है, जिसे समझने वाला कोई नहीं है ।। ६ ।। श्री चैतन्यचन्द्र की कृपा से कोई २ ही यह जानते हैं कि शान्तिपुर के नाथ श्रीअद्वैत श्री चैतन्य के महान् भक्त हैं ।। ७ ।। वाह्य ज्ञान आने पर श्री विश्वम्भर प्रभु सब वैष्णवों की बड़ी भारी भक्ति करते हैं, विशेष करके श्री अद्वैताचार्य की ।। ८ ।। इससे शान्तिपुरनाथ बड़े दुःखी रहते हैं, वे मन ही मन गर्जा करते हैं और चित्त में शान्ति नहीं पाते हैं ।। ९ ।। (वे मनमें सोचते हैं कि) "यह चोर (गौरचन्द्र) सदा मेरी विडम्बना करता है अपनी प्रभुताई को छोड कर मेरे चरण पकड़ता है ।। १० ।। "बल में तो मैं इनसे पार नहीं पाता—क्योंकि प्रभु महाबली हैं, मुझे पकड़ करके भी मेरे पांव की धूल ले लेते हैं ।। ११ ।। केवल एक भक्ति बल ही मेरे लिये उपाय है। भक्ति बिना विश्वम्भर जीते नहीं जा सकते ।। १२ ।। "मेरे 'अद्वैतसिंह' नाम की लोक में तभी डंका बजेगी जब मैं प्रभु के छल-छिपाव को अशेष-विशेष प्रकार से चूर २ कर दूँगा ।। १३ ।। भृगु को जीतकर इनका साहस बढ़ गया है परन्तु भृगु जैसे तो मेरे सैकड़ों शिष्य हैं ।। १४ ।। "मैं प्रभु के शरीर में ऐसा क्रोध उत्पन्न करदूँगा कि जिससे वे अपने ही हाथों मुझे दण्ड दें ।। १५ ।। प्रभु का अवतार भक्ति समझाने के लिए ही है। ऐसी जो भक्ति है उसे मैं नहीं मानूँगा, बस यही मंत्र सार है ।।१६।। "भक्ति न मानने पर प्रभु क्रोध में आकर अपने को भूल जायंगे और मेरे केशों को पकड़ कर मुझे दण्ड देंगे ।। १७ ।। ऐसा उपाय निश्चित करके श्री अद्वैताचार्य श्री हरिदास के साथ प्रभु के पास से विदा हुए ।। १८ ।। "किसी कार्य के उद्देश्य से वे घर आये और अपने मन में निश्चित किये हुए उपाय को करने लगे ।। १९ ।। वे सदा भावावेश में मत्त झूमते रहते और ज्ञान का महत्त्व

"ज्ञान विने किवा शक्ति धरे विष्णु भक्ति। अतएव सभार प्राण 'ज्ञान' सर्व शक्ति ॥२१॥
हेन 'ज्ञान' ना वुझिया कोन कोन जन। घरे धन हाराइया, चाहे गिया वन ॥२२॥
'विष्णु भक्ति' दर्पण, लोचन हय 'ज्ञान'। चक्षु हीन-जनेर दर्पणे कोन काम ॥२३॥
आदि वृद्ध, आमि पढिलाङ सर्व शास्त्र। वुझिलाङ सर्व-अभिप्राय 'ज्ञान' मात्र ॥२४॥
अद्वैत-चरित्र भाल वुझे हरिदास। व्याख्यान शुनिञा महा-अट्ट अट्टहास ॥२५॥
एइ मत अद्वैतेर चरित्र अगाध। सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्य बाध ॥२६॥
सर्व वाच्छा कल्प तरु प्रभु विश्वम्भर। अद्वैत-सङ्कल्प चित्ते हइल गोचर ॥२७॥
एक दिन नगर भ्रमये प्रभु रङ्गे। देखये आपन सृष्टि नित्यानन्द-सङ्गे ॥२८॥
आपनारे 'सुकृति' करिया विधि माने'। 'मोर शिल्प चा'हे प्रभु सदय-नयने' ॥२९॥
दुइ चन्द्र जेन दुइ चलिया से जाय। मति-अनुरूप सभे दरशन पाय ॥३०॥
अन्तरिक्षे थाकि सब देखे देव गण। दुइ चन्द्र देखि–सभे गणे' मने मन ॥३१॥
आपन लोकेरे हैल वसुमती-ज्ञान। चान्द देखि पृथिवीरे हैल स्वर्ग-भाण ॥३२॥
नर-ज्ञान आपनारे सभार जन्मिल। चन्द्रे र प्रभावे नरे देव-बुद्धि हैल ॥३३॥
दुइ चन्द्र देखि सभे करेन विचार। 'कभु स्वर्गे नाहि दुइ चन्द्रे र अधिकार ॥३४॥
कोन देव बोले "शुन वचन आमार। मूल चन्द्र एक, एक प्रतिविम्व तार ॥३५॥
कोन देव बोले "हेन वुझिये कारण। भाग चन्द्र विधि किवा करिल योजन ॥३६॥

प्रकाश करते हुए योगवाशिष्ठ शास्त्र की व्याख्या किया करते ॥ २० ॥ यथा:–"ज्ञान के बिना विष्णुभक्ति में भला क्या शक्ति रह जाती है, इसीलिए सब का प्राण, सबकी शक्ति 'ज्ञान' ही है ॥ २१ ॥ ऐसे ज्ञान के बिना समझे कोई २ जन बाहर अन्य चेष्टा करते हैं मानो वे अपने घर में धन भूलकर वन में जाकर ढूँढते हैं ॥ २२ ॥ विष्णभक्ति तो दर्पण है और ज्ञान नेत्र है। नेत्रहीन जन को दर्पण से क्या काम ? ॥ २३ ॥ मैंने सब शास्त्र आदि से अन्त तक पढ़े हैं और उससे यही समझा है कि सब शास्त्रों का अभिप्राय ज्ञान ही है" ॥२४॥ श्री अद्वैत के चरित्र को श्री हरिदास जी भली भाँति समझते हैं, वे इस व्याख्या को सुनकर ठहाका मार कर हँसते हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार अद्वैत जी के चरित्र अगाध हैं जो सुकृतिवान् के लिये उत्तम (भक्ति में सहायक) हैं और दुष्कृतिवान् के कार्य में बाधक हैं ॥ २६ । प्रभु विश्वम्भर सर्ववाच्छा कल्पतरु हैं। वे अद्वैत के सङ्कल्प को मन में जान गये ॥ २७ ॥ एक दिन प्रभु श्री नित्यानन्द के साथ आनन्द से नगर में भ्रमण कर रहे हैं और अपनी सृष्टि को देखते जा रहे हैं ॥ २८ ॥ इससे बिधाता अपने को सुकृतिशाली मान रहा है कि अहा ! प्रभु दया भरे नेत्रों से मेरी कारीगरी (सृष्टि) को देख रहे हैं ॥ २९ ॥ दोनों प्रभु चन्द्रमा जैसे हैं दोनों चले जा रहे हैं और लोग सब अपनो २ भावना के अनुसार उनका दर्शन पा रहे हैं ॥ ३० ॥ देवगण सब आकाश में स्थित होकर देख रहे हैं। दो चन्द्रमा देख कर वे मन २ में कुछ सोचने लगे ॥३१॥ वे अपने लोक को तो पृथ्वी समझने लगे और चाँद को देखकर पृथ्वी को स्वर्ग मानने लगे ॥ ३२ । (इसी प्रकार) वे देवता सब अपने को तो मनुष्य समझने लगे, और चन्द्रमाओं के कारण मनुष्यों को देवता समझने लगे ॥ ३३ ॥ दो चन्द्रमा देखकर वे सब सोचते हैं कि स्वर्ग में तो दो चन्द्रमाओं का राज्य नहीं है (फिर ये दो कैसे हैं) ॥३४॥ कोई देवता बोला–"मेरे वचन सुनो ! एक तो मूल चन्द्रमा है और एक उसका प्रतिविम्ब है ॥ ३५ ॥ दूसरा कोई देवता बोला–"दो होने का कारण ऐसा मालूम होता है कि विधाता ने एक चन्द्रमा के दो भाग कर दिये हैं" ॥ ३६ ॥ तीसरा कोई देवता बोला–"पिता पुत्र एक जैसे ही होते हैं।

केहो बोले "पिता-पुत्र एक रूप हय। एक विधु वुझि, एक चन्द्रेर तनय" ॥३७॥
वेदे नारे निश्चियिते जे प्रभुर रूप। ताहाते जे देव मोहे,' ए नहे कौतुक ॥३८॥
हेन मते नगर भ्रमये दुइ जन। नित्यानन्द, जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन ॥३९॥
नित्यानन्द सम्बोधिया बोले विश्वम्भर। "चल जाइ शान्ति पुर-आचार्येर घर" ॥४०॥
महारङ्गी दुइ प्रभु–परम-चञ्चल। से-इ पथे चलिलेन आचार्येर घर ॥४१॥
मध्य-पथे गङ्गार समीपे एक ग्राम। मुलुकेर काछे से 'ललितपुर' नाम ॥४२॥
सेइ ग्रामे गृहस्थ-संन्यासी एक आछे। पथेर समीपे घर–जाह्नवीर काछे ॥४३॥
नित्यानन्द-स्थाने प्रभु करये जिज्ञासा। "काहार् मण्डप जान,' कह कार् वासा" ॥४४॥
नित्यानन्द बोले 'प्रभु ! संन्यासि-आलय"। प्रभु बोले "तारे देखि, यदि भाग्य हय" ॥४५॥
हासि गेला दुइ प्रभु संन्यासीर स्थाने। विश्वम्भर संन्यासीरे करिला प्रणामे ॥४६॥
देखिया मोहन मूर्त्ति द्विजेर नन्दन। सर्वाङ्गे सुन्दर रूप, प्रफुल्ल वदन ॥४७॥
सन्तोषे संन्यासी करे बहु आशीर्वाद। "धन वंश सुविवाह हउ विद्या लाभ" ॥४८॥
प्रभु बोले "गोसाञि ! ए नहे आशीर्वाद। हेन बोल 'तोरे हउ कृष्णेर प्रसाद' ॥४९॥
विष्णु भक्ति-आशीर्वाद-अक्षय अव्यय। जे वलिला गोसाञि ! तोमार योग्य नय' ॥५०॥
हासिया संन्यासी बोले "पूर्वे जे शुनिल। साक्षात् ताहार आजि निदान पाइल ॥५१॥
भाल रे वलिते लोक ठेङ्गा लैया धाय। ए विप्र पुत्रेर सेइ मत व्यवसाय ॥५२॥
'धन-वर' दिल आमि परम-सन्तोषे। कोथा गेल उपकार, आरो आमा' दोषे" ॥५३॥

इनमें भी एक तो चन्द्रमा है, दूसरा उसका बेटा है" ॥३७॥ जिस प्रभु का रूप वेद निश्चित नहीं कर पाता उससे देवगण मोह को प्राप्त हो जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द और श्री जगन्नाथ मिश्र के पुत्र (श्री विश्वम्भर) दोनों नगर में भ्रमण कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ (इतने में) श्री विश्वम्भर देव श्री नित्यानन्द जी को सम्बोधन करके बोले–"चलो, शान्तिपुर आचार्य के घर चलें" ॥ ४० ॥ दोनों प्रभु बड़े रङ्गीले हैं, बड़े चंचल है, वे उसी मार्ग से आचार्य के घर चल दिये ॥ ४१ ॥ आधे रास्ते पर गङ्गा के समीप और मुलुक के पास 'ललितपुर' नाम का एक गाँव पड़ा ॥ ४२ ॥ उस गाँव में एक गृहस्थ संन्यासी रहता था। उसका घर गङ्गा जी के समीप रास्ते के पास ही था ॥ ४३ ॥ (उसे देख) प्रभु ने नित्यानन्द जी से पूछा "जानते हो, यह किसका स्थान है ? कहो तो कौन इसमें रहते हैं ?" ॥४४॥ नित्यानन्द जी बोले–"प्रभु ! यह संन्यासी का स्थान है, प्रभु बोले-"यदि भाग्य हो तो उनके दर्शन करें ॥ ४५ ॥ हँसते २ दोनों प्रभु संन्यासी के स्थान पर गये। जाकर विश्वम्भर देव ने संन्यासी को प्रणाम किया ॥४६॥ ब्राह्मण के पुत्र को मोहनी मूर्त्ति सर्वांग सुन्दर रूप और प्रसन्न वदन को देखकर संन्यासी प्रसन्न होकर बहुत सा आशीर्वाद देने लगा कि "तुम्हें धन मिले, तुम्हारा वंश बढ़े, सुन्दर स्त्री के साथ तुम्हारा व्याह हो और तुम्हें विद्या प्राप्त हो" ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ प्रभु बोले–"गुसांई ! यह तो आशीर्वाद नहीं है। ऐसा कहो कि तेरे ऊपर श्रीकृष्ण कृपा हो ॥ ४९ ॥ विष्णुभक्ति का आशीर्वाद ही अक्षय है, अव्यय है। जो आशीर्वाद तुमने दिया वह तो गुसांई जी ! तुम्हारे योग्य नहीं है" ॥ ५० ॥ संन्यासी हँसता हुआ बोला कि जो पहले सुना था आज उसका साक्षात् प्रमाण मिल गया ॥ ५१ ॥ भला कहने पर लोग लाठी लेकर दौड़ते हैं, इस विप्र के पुत्र का भी वैसा ही व्यवहार है ॥ ५२ ॥ मैंने परम संतुष्ट होकर धन प्राप्ति का वरदान दिया, तो उपकार मानना तो दूर रहा, उलटा मुझे दोष देने लगा" ॥ ५३ ॥ संन्यासी फिर बोला–"ब्राह्मण कुमार ! सुनो

संन्यासी बोलये "शुन ब्राह्मण कुमार। केने तुमि आशीर्वाद निन्दिले आमार ॥.४॥
पृथिवीते जन्मिया जे ना कैल विलास। उत्तम कामिनी जार ना हइल पाश ॥५५॥
जार धन नाहि, तार जीवने कि काज। हेन 'धन-वर' दिते पाओ तुमि लाज ॥५६॥
हइल वा विष्णु भक्ति तोमार शरीरे। धन विना कि खाइवा ? बोलत आमारे" ॥५७॥
हासे प्रभु संन्यासीर वचन शुनिया। श्रीहस्त दिलेन निज कपाले तुलिया ॥५८॥
व्यपदेशे महाप्रभु सभारे शिखाय। 'भक्ति बिने केहो जेन किछुइ ना चाय ॥५९॥
"शुन शुन गोसाञि संन्यासि ! जे खाइव। निज कर्मे जे आछे, से आपने मिलिव ॥६०॥
धन-वंश-निमित्त संसारे काम्य करे। बोल तार धन-वंश तवे केने मरे ॥६१॥
ज्वरेर लागिया केहो कामना ना करे। तवे केने ज्वर आसि पीड़ये शरीरे ॥६२॥
शुन शुन गोसाञि ! इहार हेतु-'कर्म'। कोन महाजने से इहार जाने मर्म ॥६३॥
वेदेओ बुझाय स्वर्ग, बोले जना जना। मूर्ख-प्रति से केवल वेदेर करुणा ॥६४॥
विषय सुखेते बड़ लोकेर सन्तोष। चित्त वुझि कहे वेद, वेदेर कि दोष ॥६५॥
'धन पुत्र पाइ गङ्गा स्नान हरि नामे। शुनिञा चलये सब वेदेर कारणे ॥६६॥
जे-ते-मते गङ्गा स्नान हरि नाम लैले। द्रव्येर प्रभावे 'भक्ति' हइवेक हेले ॥६७॥
एइ वेद-अभिप्राय मूर्ख नाहि वुझे। कृष्ण भक्ति छाड़िया, विषय सुखे मजे ॥६८॥
भाल मन्द विचारिया वुझह गोसाञि। कृष्ण भक्ति-व्यतिरिक्त आर वर नाञि" ॥६९॥
संन्यासीर लक्ष्ये शिक्षा गुरु भगवान्। 'भक्ति योग' कहे वेद करिया प्रमाण ॥७०॥

तुमने मेरे आशीर्वाद की निन्दा क्यों की, उसे बुरा कैसे बताया ? ॥ ५४ ॥ अरे ! पृथ्वी पर जन्म लेकर जिसने भोग विलास नहीं किया, उत्तम कामिनी जिसके पास न हुई, धन न हुआ उसका जीवन से क्या काम ? ऐसा धन का वरदान देने पर तुम लज्जा मानते हो ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ "अच्छा ! तुम्हारे शरीर में विष्णु भक्ति हो भी गया तो धन बिना क्या खाओगे, बताओ तो मुझे ?" ॥ ५७ ॥ संन्यासी के वचनों को सुनकर प्रभु हँसे और अपने श्रीहस्त से अपने ललाट को स्पर्श किया ॥ ५८ ॥ इस प्रसङ्ग के छल से महाप्रभु सबको यही शिक्षा दे रहे हैं कि भक्ति बिना कोई कुछ भी न चाहे ॥ ५९ ॥ महाप्रभु जी बोले-"हे संन्यासी गुसांई जी ! सुनो जो मैं खाऊँगा। अपने भाग्य में जो है वह आप ही मिल जायगा (उसे ही खाऊँगा) ॥ ६० ॥ "(और सुनो) धन और वंश के लिए संसार कामना करता है फिर उनका (धन वंश का) नाश क्यों हो जाता है, बताओ तो सही ॥ ६१ ॥ और ज्वर को कोई नहीं चाहता है फिर क्यों ज्वर आकर शरीर को पीड़ा देता हैं ॥ ६२ ॥ "सुनो गुसांई जी ! सुनो ! इसका कारण है कर्म। विरले कोई महानुभाव ही इसका मर्म जानते हैं ॥ ६३ ॥ वेद भी स्वर्ग का वर्णन करता है और लोग भी सब कहते हैं, परन्तु इसे केवल मूर्खों के ऊपर वेद की करुणा समझो ॥ ६४ ॥ "(कारण कि) लोगों को विषय सुख में बड़ा ही सन्तोष है—इस चित्त वृत्ति को समझ करके ही वेद (स्वर्ग की) कहते हैं-इसमें वेद का क्या दोष है ॥६५॥ वेद ने कहा कि गङ्गा स्नान से, हरि नाम से, धन और पुत्र मिलते हैं यह सुनकर सब इस पर चलने लगते हैं ॥ ६६ ॥ "जिस किसी प्रकार से गङ्गा स्नान करने और हरि नाम लेने से वस्तु शक्ति के प्रभाव से सहज में ही भक्ति हो जायगी ॥ ६७ ॥ वेद के इस अभिप्राय को मूर्ख नहीं समझते हैं, और श्रीकृष्ण भक्ति को छोड़ कर विषय सुख को भजते हैं ॥ ६८ ॥ "गुसांई जी ! नेक विचार कर भला बुरा समझो। श्रीकृष्ण भक्ति के बिना और दूसरा वरदान नहीं है" ॥ ६९ ॥ संन्यासी को लक्ष्य करके शिक्षागुरु भगवान् वेद के प्रमाण पर

जे कहे चैतन्य चान्द से-इ सत्य हय । पर निन्दा-पापे जीव ताहा नाहि लय ।।७१।।
हासये संन्यासी शुनि प्रभुर वचन । "ए वूझि पागल विप्र–मंत्रे र कारण ।।७२।।
हेन बुझि एइ से संन्यासी वुद्धि दिया । लइ जाय ब्राह्मण कुमार भाङ्गाइया ।।७३।।
संन्यासी बोलये "हेन काल से हइल । शिशु अग्रे ते आमि किछु ना जानिल ।।७४।।
आमि करिलाङ जे पृथिवी पर्यटन । अयोध्या, मथुरा, माया, वदरिकाश्रम ।।७५।।
गुज्जराट, काशी, गया, विजया नगरी । सिंहल गेलाङ आमि, जत आछे पुरी ।।७६।।
आमि ना जानिल भाल मन्द हय का'य । दूधेर छाओयाल आजि आमारे शिखाय" ।।७७।।
हासि बोले नित्यानन्द "शुनह गोसाञि । शिशु-सङ्गे तोमार विचारे कार्य नाञि ।।७८।।
आमि से जानिये भाल तोमार महिमा । आमारे देखिया तुमि सब कर' क्षमा" ।।७९।।
आपनार श्लाघा शुनि संन्यासी सन्तोषे । भिक्षा करिवारे झाट बोलये हरिषे । ८०।।
नित्यानन्द बोले "कार्य गौरवे चलिव । किछु देह' स्नान करि पथेते खाइव" ।।८१।।
संन्यासी बोलये "स्नान कर' एइ खाने । किछु खाइ स्निग्ध हइ करह गमने" ।।८२।।
पातकी तारिते दुइ-प्रभु-अवतारे । रहिलेन दुइ प्रभु संन्यासीर घरे ।।८३।।
जाह्नवीर मज्जने घुचिल पथ श्रम । फलाहार करिते वसिला दुइ जन ।।८४।।
दुग्ध-आम्र पनसादि करि कृष्ण साथ । शेष खाये दुइ प्रभु संन्यासि-साक्षात् ।।८५।।
वाम पथि-संन्यासी–मदिरा पान करे । नित्यानन्द प्रति ताहा करे ठारे ठौरे ।।८६।।
"शुनह श्रीपाद ! किछु 'आनन्द' आनिव । तोमा' हेन अतिथि वा कोथाय पाइव" । ८७।।

भक्ति योग की शिक्षा दे रहे हैं ।। ७० ।। श्री चैतन्यचन्द्र जो कुछ कहते हैं वही सत्य है, परन्तु पराई निन्दा रूपी पाप के कारण जीव उसे पकड़ता नहीं है ।। ७१ ।। प्रभु के कथन को सुनकर संन्यासी हँसने लगा (और मन में कहने लगा कि) "ऐसा लगता है कि मंत्र के कारण यह ब्राह्मण पागल हो गया है" ।। ७२ ।। "ऐसा समझ में आता है कि इसके साथ का संन्यासी (नित्यानन्द) इस ब्राह्मण कुमार की बुद्धि को पलटकर इसे बहका कर ले जा रहा है ।। ७३ ।। फिर वह संन्यासी प्रकट रूप से बोला–"देखो, अब ऐसा जमाना आया है कि बालक के आगे मैं कुछ नहीं जानता ।। ७४ ।। "मैं पृथ्वी भर में घूमा अयोध्या, मथुरा, माया-पुरी (हरिद्वार) बदरिकाआश्रम, गुजरात, काशी, गया, विजयनगर, सिंहलद्वीप आदि सब पुरियों में गया ।। ७५ ।। ७६ ।। (फिर भी) मैं तो भले बुरे को जान न पाया सो यह दूध मुँहा बालक मुझे सिखा रहा है ।। ७७ ।। तब नित्यानन्द जी हँस कर बोले "गुसांई जी सुनो ! एक बालक के साथ तर्क-विचार करने की कोई जरुरत नहीं ।।७८।। मैं तुम्हारी महिमा को अच्छी तरह जानता हूँ मेरी तरफ देख कर तुम सब क्षमा कर दो ।।७९।। अपनी प्रशंसा सुनकर संन्यासी ने सन्तुष्ट होकर झटपट बड़े आनन्द के साथ भिक्षा (भोजन) करने के लिए कहा ।। ८० ।। नित्यानन्द जी बोले–"विशेष कार्य है, चलेंगे । हाँ कुछ दे दो, स्नान करके मार्ग में खा लेंगे" ।। ८१ ।। संन्यासी बोला "स्नान यहीं कर लो । कुछ खा पी कर, ठण्डे होकर, फिर चले जाना ।। ८२ ।। पापियों के उद्धार के लिए ही दोनों प्रभुओं का अवतार हुआ है, (अतएव) दोनों प्रभु संन्यासी के घर ठहर गये ।। ८३ ।। गङ्गा जी के स्नान से मार्ग की थकावट दूर हो गई । फिर दोनों जने फलाहार करने को बैठे ।। ८४ ।। दूध आम, कटहल आदि श्रीकृष्ण को निवेदन करके दोनों प्रभु संन्यासी के सामने प्रसाद पाने लगे ।। ८५ ।। संन्यासी बामपंथी था–मदिरा पीता था । वह नित्यानन्द जी से संकेत द्वारा मदिरा पीने को कहने लगा ।। ८६ ।। वह बोला 'सुनो श्रीपाद ! कुछ "आनन्द" लाऊँ ? तुम जैसे

देशान्तर कारि नित्यानन्द सब जाने। 'मद्यप संन्यासी' हेन जानिलेन मने ॥८८॥
"आनन्द आनिव" न्यासी बोले बार बार।. नित्यानन्द बोले "तवे लड़ से आमार" ॥८९॥
देखिया दोंहार रूप मदन-समान। संन्यासीर पत्नी चा'हे जुड़िया धेयान ॥९०॥
संन्यासीरे निरोध करये तार नारी। "भोजनेते केने तुमि विरोध आचरि" ॥९१॥
प्रभु बोले "कि आनन्द बोलये संन्यासी"। नित्यानन्द बोलये "मदिरा हेन वासि" ॥९२॥
'विष्णु विष्णु' स्मरण करये विश्वम्भर। आचमन करि प्रभु चलिला सत्वर ॥९३॥
दुइ प्रभु चञ्चल गङ्गाय झाँप दिया। चलिला आचार्य गृहे गङ्गाय भासिया ॥९४॥
स्त्रैण मद्यपेरे प्रभु अनुग्रह करे। निन्दक वेदान्ती यदि–तथापि संहरे ॥९५॥
न्यासी हैया मद्यपिये, स्त्री सङ्ग आचरे। तथापि ठाकुर गेला ताहार मन्दिरे ॥९६॥
वाक्ये वाक्य कैला प्रभु शिखाइला धर्म। विश्राम करिया कैला भोजनेर कर्म ॥९७॥
ना हये ए-जन्मे भाल, हैव आर जन्मे। सवे निन्दकेरे नाहि वासे' भाल मर्मे ॥९८॥
देखा नाहि पाय जत अभक्त संन्यासी। तार साक्षी जतेक संन्यासी काशी वासी ॥९९॥
शेष खण्डे जखने चलिला प्रभु काशी। शुनिलेक जत काशी निवासी संन्यासी ॥१००॥
शुनिञा आनन्द बड़ हैला न्यासि गण। देखिव चैतन्य, बड़ शुनि महा जन ॥१०१॥
सभेइ वेदान्ती ज्ञानी, सभेइ तपस्वी। आजन्म काशीते वास, सभेइ यशस्वी ॥१०२॥
एक दोषे सकल गुणेर गेल शक्ति। पढ़ाये वेदान्त, ना वाखाने विष्णु भक्ति ॥१०३॥
अन्तरयामी गौरसिंह इहा सब जाने। गियाओ काशीते नाहि दिला दरशने ॥१०४॥

अतिथि फिर मुझे कहाँ मिलेंगे ॥ ८७ ॥ देश देशान्तर घूमने वाले नित्यानन्द जी सब कुछ जानते हैं, वे मन में समझ गये कि "यह संन्यासी शराबी है" ॥ ८८ ॥ संन्यासी बार २ "आनन्द लाऊँ" "आनन्द लाऊँ" कहने लगा। नित्यानन्द जी बोले "तो हम भागेंगे ॥८९ ॥ कामदेव के समान दोनों के सुन्दर रूप को देख कर संन्यासी की स्त्री बड़े एकाग्र मन से उनको देख रही थी ॥ ९० ॥ उसने संन्यासी को टोककर कहा कि "भोजन के समय तुम क्यों बाधा डाल रहे हो ॥ ९१ ॥ तब प्रभु बोले–"संन्यासीजो 'आनन्द' 'आनन्द' क्या कह रहे हैं ?" नित्यानन्द जी बोले "मदिरा को कहते होंगे । ९२ ॥ यह सुनते ही श्री विश्वम्भर ने श्री-विष्णु २ कहते हुए आचमन किया और तुरन्त ही चल दिये ॥ ९३ ॥ दोनों प्रभु चंचल हैं, वे गङ्गा में कूद पड़े और बहते हुए अद्वैताचार्य के घर को चले ॥ ९४ ॥ प्रभु स्त्री-सङ्गी और शराबी पर भी कृपा करते हैं परन्तु निन्दक यदि वेदान्ती भी हो तो भी उसका संहार करते हैं ॥ ९५ ॥ संन्यासी होकर के भी वह शराब पीता था, स्त्री का सङ्ग करता था, फिर भी प्रभु उसके घर गये ॥ ९६ ॥ उससे चार २ बातें की, उसको धर्म की शिक्षा दी, और उसके यहाँ विश्राम करके भोजन किया ॥ ९७ ॥ चाहे उस (संन्यासी) का इस जन्म में भला न भी हो परन्तु दूसरे जन्म में तो होगा ही। प्रभु के हृदय में केवल एक निन्दक के लिए प्रेम नहीं है ॥ ९८ ॥ (परन्तु) जितने अभक्त संन्यासी हैं वे कोई भी प्रभु का दर्शन नहीं पाते इसमें प्रमाण हैं- काशीवासी संन्यासी गण ॥ ९९ ॥ (यह चरित्र) शेष खण्ड में आयगा कि जब प्रभु काशी को गये तो सब काशीवासी संन्यासियों ने भी यह सुना ॥ १०० ॥ और सुनकर संन्यासी लोगों को बड़ा आनन्द हुआ कि "चैतन्य को देखेंगे सुनते हैं कि वह बड़ा महापुरुष है ॥ १०१ ॥ वे सभी वेदान्ती हैं, ज्ञानी हैं, सभी तपस्वी हैं, जन्म से काशीवासी हैं, सभी यशस्वी हैं, ॥ १०२ ॥ परन्तु एक दोष के कारण सब गुणों की शक्ति मारी गई (वह दोष यही था कि) वे वेदान्त तो पढ़ाते हैं पर विष्णु भक्ति को नहीं बखानते हैं ॥ १०३ ॥ अन्त-

रामचन्द्र पुरीर मठेते लुकाइया। रहिलेन दुइ-मास वाराणसी गिया ॥१०५॥
विश्वरूप क्षौरेर दिवस-दुइ आछे। लुकाइया चलिला, देखये केहो पाछे ॥१०६॥
पाछे शुनिलेन सब संन्यासीर गण। चलिलेन चैतन्य, नहिल दरशन ॥१०७॥
सर्व-बुद्धि हरिलेक एक निन्दा पाप। पाछेओ काहारो चित्ते ना जन्मिल ताप ॥१०८॥
आरो बोले "आमरा सकल पूर्वाश्रमी। आमा' सभा' सम्भाषिया बिना गेला केनि ॥१०९॥
दुइ दिन लागि केने स्वधर्म छाड़िया। केने गेला 'विश्वरूप क्षौर' (से) लङ्घिया" ॥११०॥
भक्ति हीन हैले एइ मत बुद्धि हय। निन्दकेर पूजा शिव कभू नाहि लय ॥१११॥
काशीते जे पर निन्दे,' से शिवेर दण्ड्य। शिव-अपराधे विष्णु नहे तार वन्द्य ॥११२॥
सभार करिव गौर सुन्दर उद्धार। व्यतिरिक्त वैष्णव निन्दक दुराचार ॥११३॥
मद्यपेर घरे कैला स्नान (से) भोजन। निन्दा करे वेदान्ती ना पाइल दर्शन ॥११४॥
चैतन्येर दण्डे जार चित्ते नाहि भय। जन्मे जन्मे सेइ जीव यम दण्ड्य हय ॥११५॥
अज, भव, अनन्त, कमला सर्व माता। सभार श्रीमुखे निरवधि जार कथा ॥११६॥
हेन गौरचन्द्र-यशे जार नहे मति। व्यर्थ तार संन्यास, वेदान्त पाठे रति ॥११७॥
हेन मते दुइ प्रभु आपन-आनन्दे। सुखे दुइ चलिलेन जाह्नवी तरङ्गे ॥११८॥
महाप्रभु निरवधि करये हुङ्कार। "मुञि सेइ मुञि सेइ" बोले बारे बार ॥११९॥

र्यामी गौरसिंह यह सब जानते हैं इसीसे काशी जाकर भी उनको दर्शन नहीं देते हैं ॥ १०४ ॥ प्रभु काशी में जाकर श्री रामचन्द्रपुरी के मठ में दो महीने छिप कर रहे ॥ १०५ ॥ जब विश्वरूप क्षौर के दो दिन रहे तो प्रभु काशी छोड़ कर चल दिये कि कहीं पीछे से कोई देख न ले ॥१०६॥ पीछे से संन्यासियों को पता चला कि चैतन्य चले गये और दर्शन न हुए ॥ १०७ ॥ एक निन्दा पाप ने सब की बुद्धि हर ली, और पीछे भी किसी के चित्त में दुःख न हुआ ॥ १०८ ॥ उल्टा ऊपर से बोले—"हम सब पूर्वाश्रमी हैं फिर वह हम से सम्भाषण किये बिना क्यों चला गया ॥ १०९ ॥ दो दिन के लिये वह क्यों अपने विश्वरूप क्षौर स्वधर्म को त्याग करके चला गया ॥ ११० ॥ यति संन्यासियों के छः ऋतु के छः क्षौर होते हैं जिनके पृथक २ नाम हैं। वैशाखी पूर्णिमा को आचार्य क्षौर आसाढ़ी को व्यास क्षौर और भाद्रपदी को विश्वरूपक्षौर होता है। व्यास क्षौर करा कर संन्यासी चातुर्मास्य के लिये एक स्थान पर बैठता है और विश्वरूप क्षौर के बाद ही स्थान त्याग कर सकता है। यदि देश—काल—जन्य कोई वाधा आ पड़े तो बीच में भी विश्वरूप क्षौर करा कर स्थान त्याग कर सकता है, अन्यथा नहीं। इस स्वधर्म के त्याग का ही यहाँ उल्लेख है। (इस प्रकार के उन्होंने जो वचन कहे सो) ऐसी बुद्धि भक्ति शून्य होने से ही होती है। निन्दक की पूजा शिव जी कभी स्वीकार नहीं करते हैं ॥ १११ ॥ काशी में रहकर जो पराई निन्दा करता है वह शिव जी से दण्ड पाता है, शिव—अपराध के कारण ही विष्णु उसके बन्दनीय नहीं होते, अर्थात् विष्णु भक्ति उनको प्राप्त नहीं होती है ॥ ११२ ॥ दुराचारी वैष्णव निन्दक के अतिरिक्त प्रभु गौरसुन्दर सब का उद्धार करेंगे ॥११३॥ देखो शराबी के घर तो प्रभु ने स्नान और भोजन किया पर निन्दा करने वाले वेदान्तियों को दर्शन न मिला ॥ ११४ ॥ श्री चैतन्यचन्द्र के दण्ड का जिसके चित्त में भय नहीं है, वह जीव जन्म २ में यम के दण्ड का पात्र होता है ॥ ११५ ॥ जिनकी कथा ब्रह्मा, शिव, अनन्तदेव, सर्वमाता कमला आदि सबके मुखों पर रहती है ॥११६॥ ऐसे गौरचन्द्र के यश में जिसकी मति नहीं है, उसका संन्यास और वेदान्त पाठ में रति दोनों व्यर्थ हैं ॥११७॥ इस प्रकार दोनों प्रभु अपने आनन्द में गङ्गा जी के तरङ्गों में सुख से बहे जा रहे हैं ॥ ११८ ॥ महाप्रभु

"मोहोरे आनिल नाढ़ा शयन भाङ्गिया । एखने वाखाने' 'ज्ञान' भक्ति लुकाइया ।।१२०।।
तार शास्ति करों आजि देख परतेखे । के मने देखिव आजि ज्ञान योग राखे" ।।१२१।।
तर्ज गर्ज महाप्रभु गङ्गा स्रोते भासे । मौन हइ नित्यानन्द मने मने हासे' ।।१२२।।
दुइ प्रभु भासि जाय गङ्गार उपरे । अनन्त मुकुन्द जेन क्षीरोद सागरे ।।१२३।।
भक्ति योग-प्रभावे अद्वैत महाबल । वुझिलेन चित्तो "मोर हइवेक फल" ।।१२४।।
'आइसे ठाकुर क्रोधे' अद्वैत जानिया । ज्ञान योग वाखाने' अधिक मत्त हैया ।।१२५।।
चैतन्य भक्तेर के बुझिते पारे लीला । गङ्गा पथे दुइ प्रभु आसिया मिलिला ।।१२६।।
क्रोध मुख विश्वम्भर नित्यानन्द-सङ्गे । देखये-अद्वैत बोले ज्ञानानन्द-रङ्गे ।।१२७।।
प्रभु देखि हरिदास दण्डवत् हय । अच्युत प्रणाम करे-अद्वैत तनय ।।१२८।।
अद्वैत गृहिणी मने मने नमस्करे । देखिया प्रभुर मूर्त्ति चिन्तित-अन्तरे ।।१२९।।
विश्वम्भर-तेज जेन कोटि-सूर्य मय । देखिया सभार चित्ते उपजिल भय ।।१३०।।
क्रोध मुखे बोले प्रभु "आरे ओरे नाढ़ा । बोल देखि 'ज्ञान' 'भक्ति' दुइते के बाढ़ा" ।।१३१।।
अद्वैत बोलये "सर्व-काल बड़ 'ज्ञान' । जार 'ज्ञान' नाहि तार भक्तिते कि काम ।।१३२।।
"ज्ञान बड़" अद्वैतेर शुनिञा वचन । क्रोधे वाह्य पासरिला श्रीशचीनन्दन ।।१३३।।
पिण्डा हैते अद्वैतेरे धरिया आनिया । स्वहस्ते किलाय प्रभु उठाने पाड़िया ।।१३४।।
अद्वैत गृहिणी पतिव्रता जगन्माता । सर्व-तत्त्व जानिञाओ करये व्यग्रता ।।१३५।।

निरन्तर हुँकार कर रहे हैं और बार २ कह रहे हैं "मैं वही हूँ" "मे वही हूँ" ।। ११९ ।। "मेरी निद्रा भंग करके नाढा मुझे ले आया और अब वह भक्ति को दबा करके ज्ञान छाँट रहा है ।। १२० ।। तुम देख लेना प्रत्यक्ष में आज मैं उसको दण्ड दूँगा । देखूँ ज्ञानयोग आज कैसे उसको बचाता है ।। १२१ ।। महाप्रभु तरजते गरजते हुए गङ्गा के प्रवाह में बहे जा रहे हैं और नित्यानन्द जी चुप होकर मन ही मन में हँस रहे हैं ।। १२२ ।। दोनों प्रभु गङ्गा के ऊपर ऐसे बहते चले जा रहे हैं मानो तो क्षीर सागर के ऊपर अनन्त देव और मुकुन्द देव हों ।। १२३ ।। भक्ति योग के प्रभाव से अद्वैताचार्य महाबली हैं, वे अपने मन में समझ गये कि मुझे फल मिलेगा" ।। १२४ ।। अद्वैत प्रभु जान गये कि प्रभु क्रोध में भरे आ रहे हैं और वे और भी अधिक मत्त बनकर ज्ञान योग बखानने लगे ।। १२५ ।। श्री चैतन्य के भक्त की लीला कौन समझ समता है ? दोनों प्रभु गङ्गा के मार्ग से अद्वैत के घर आ पहुँचे ।। १२६ ।। नित्यानन्द जी के साथ क्रोध से लाल विश्वम्भर प्रभु ने देखा कि अद्वैत ज्ञानानन्द के रङ्ग में मस्त झूम रहे हैं ।। १२७ ।। प्रभु को देखकर हरिदास जी भूमि पर दण्डवत् पड़ गये और अद्वैत पुत्र अच्युत ने प्रणाम किया ।। १२८ ।। श्री अद्वैत जी की पत्नी मन २ में प्रभु को नमस्कार करती हैं पर उनके क्रुद्ध मूर्त्ति को देखकर उसका अन्तस् चिन्तित हो जाता है ।।१२९।। श्री विश्वम्भर प्रभु का तेज कोटि सूर्य के समान है, उसे देखकर सब के चित्त में भय उत्पन्न हो आता है ।।१३०।। प्रभु क्रोधित होकर बोले-"अरे २ नाढा ! कहो तो सही ज्ञान और भक्ति में कौन बड़ा है ? ।।१३१।। अद्वैत जी बोले-"सब काल में ज्ञान ही बड़ा है । जिसको ज्ञान नहीं उसको भक्ति से क्या लाभ ?" ।।१३२।। "ज्ञान बड़ा है" ऐसे वचन श्री अद्वैत के सुनकर श्री शचीनन्दन क्रोध में अपनी सुध बुध भूल गए ।। १३३ ।। वे चबूतरे पर से श्री अद्वैत जी को पकड़ लाये और आंगन पर पटक कर अपने हाथ से मारने लगे ।।१३४।। पतिव्रता, जगन्माता अद्वैत जी की स्त्री, सब तत्त्व को जानती हुई भी व्याकुल हो गई और कहने लगी ।। १३५ ।। "यह बूढ़ा ब्राह्मण है, यह बुड्ढ़ा ब्राह्मण है । इनके प्राणों को मत लो, मत लो, किसके सिखाने

"बूढ़ा विप्र, बूढ़ा विप्र, राख राख प्राण । काहार शिक्षाय एत कर' अपमान ॥१३६॥
एइ बूढ़ा बामनेरे, आर कि करिबा । कौन किछु हैले एड़ाईते ना पारिबा ॥१३७॥
पतिव्रता-वाक्य शुनि नित्यानन्द हासे' । भये कृष्ण समङरये प्रभु हरिदासे ॥१३८॥
क्रोधे प्रभु पतिव्रता-वाक्य नाहि शुने । तर्जे गर्जे अद्वैतेरे सदम्भ-वचने ॥१३९।
"सूतिया आछिलुँ क्षीर सागरेर माझे । आरे नाढ़ा ! निद्रा भङ्ग मोर तोर काजे ।.१४०॥
भक्ति प्रकाशिवि तुइ आमारे आनिया । एवे वाखानिसू ज्ञान, भक्ति लुकाइया ॥१४१॥
यदि लुकाइवि भक्ति तोर चित्ते आछे । तवे मोर प्रकाश करिलि कोन काजे ॥१४२॥
तोहोर सङ्कल्प मुञि ना करों अन्यथा । तुञि मोरे विडम्बना करिसू सर्वथा" । १४३॥
अद्वैत एड़िया प्रभु वसिला दुयारे । प्रकाशे' आपन-तत्त्व करि हु हुङ्कारे ॥१४४॥
"आरे आरे कंस जे मारिल, सेइ मुञि । आरे नाढ़ा ! सकल जानिस् देख तुञि ॥१४५॥
अज भव शेष रमा मोर करे सेवा । मोर चक्रे मारिल शृगाल-वासुदेवा ॥१४६॥
मोर चक्रे वाराणसी दहिल सकल । मोर वाणे मारिल रावण महाबल ॥१४७॥
मोर चक्रे काटिल वाणेर बाहुगण । मोर चक्रे नरकेर लइल जीवन ॥१४८॥
मुञि से धरिलुँ गिरि दिया वाम हाथ । मुञि से आनिलुँ स्वर्ग हैते पारिजात ॥१४९॥
मुञि से छलिलुँ वलि करिलुँ प्रसाद । मुञि से हिरण्य मारि राखिलुँ प्रह्लाद" ॥१५०॥
एइ मत प्रभु निज-ऐश्वर्य प्रकाशे' । शुनिञा अद्वैत प्रेम सिन्धु माझे भासे ॥१५१॥
शास्ति पाइ अद्वैत परमानन्द मय । हाथे तालि दिया नाचे करिया विनय ॥१५२॥

से तुम इनका इतना अपमान कर रहे हो ? ॥ १३६ ॥ बूढ़े ब्राह्मण को छोड़ दो, और अधिक क्या करोगे ? कहीं कुछ हो गया तो तुम छूट नही सकोगे" ॥ १३७ ॥ पतिव्रता के वचनों को सुनकर नित्यानन्द जी तो हंसते हैं पर हरिदास प्रभु भयभीत होकर श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं ॥ १३८ ॥ क्रोध में प्रभु पतिव्रता के वचनों को नहीं सुन रहे हैं और अद्वैताचार्य के दम्भपूर्ण वचनों पर तर्जन-गर्जन करते जाते हैं ॥ १३९ ॥ "अरे नाढा ! मैं क्षीर सागर में सो रहा था । तेरे लिए ही मेरी निद्रा भंग हुई ॥ १४० ॥ तू तो मुझे लाकर भक्ति प्रकाशित करना चाहता था, पर अब भक्ति को दबाकर ज्ञान बखान रहा है ॥ १४१ ॥ यदि भक्ति को गुप्त करने की ही तेरे चित्त में थी तो फिर मुझे किस लिये प्रकट कराया ॥ १४२ ॥ "मैं तो तेरे सङ्कल्प को कभी झूठा नहीं करता, पर तू मेरे साथ सर्वथा विडम्बना ही करता है" ॥ १४३ ॥ फिर अद्वैत को छोड़ कर प्रभु द्वार पर जा बैठे और हुँ हुँकार करते हुए अपना तत्त्व प्रकाशित करने लगे ॥ १४४ ॥ "अरे ! अरे ! कंस को जिसने मारा था वह मैं ही हूँ ! अरे नाढा ! तू तो यह सब जानता है ॥ १४५ ॥ ब्रह्मा, शिव, शेष, रमा मेरी सेवा करती हैं । मेरे सुदर्शन चक्र ने ही शृगाल-वासुदेव को मारा था ॥ १४६ ॥ मेरे चक्र ने ही उसकी सारी काशी को जला डाला था । मेरे वाण ने ही महाबली रावण को मारा था ॥ १४७ ॥ "मेरे चक्र ने ही बाणासुर की बाहुओं को काटा था । मेरे चक्र ने ही नरकासुर मारा था ॥ १४८ ॥ मैंने ही बांये हाथ से गिरिराज को धारण किया था । मैं ही स्वर्ग से पारिजात वृक्ष ले आया था ॥ १४९ ॥ मैंने ही राजा बलि को छला था और उस पर कृपा की थी । मैंने ही हिरण्यकशिपु को मार प्रह्लाद की रक्षा की थी" ॥ १५० ॥ इस प्रकार प्रभु अपना ऐश्वर्य प्रकाशित कर रहे हैं जिसे सुन २ कर अद्वैत प्रेम सिन्धु में बहे जा रहे हैं ॥ १५१ ॥ दण्ड पाकर श्री अद्वैत परमानन्द मय हो रहे हैं और हाथों से ताली बजाते और विनती करते हुए नाचते जाते हैं ॥ १५२ ॥ (विनती यथा:–) "जैसा मैंने अपराध किया था, वैसा ही दण्ड भी पा

"जेन अपराध कैलुँ तेन शास्ति पाइलुँ । भालइ करिला प्रभु ! अल्पे एड़ाइलुँ ॥१५३॥
एखने से ठाकुरालि वलिये तोमार । दोष-अनुरूप शास्ति करिला आमार ॥१५४॥
इहाते से प्रभु ! भृत्ये चित्ते बल पाय" । वलिया आनन्दे नाचे शान्तिपुर राय ॥१५५॥
आनन्दे अद्वैत नाचे सकल अङ्गने । भ्रकुटी करिया बोले प्रभुर चरणे । १५६॥
"कोथा गेल एवे मोरे तोमार से स्तुति । कोथा गेल एवे तोर से सब ढाङ्गाति ॥१५७॥
दुर्वाशा ना हउ मुञि जारे क़दर्थिवा । जार अवशेष-अन्न सर्वाङ्गे लेपिवा ॥१५८॥
भृगु-मुनि नहों मुञि जार पद धूली । वक्षे दिया हइवा श्रीवत्स-कुतूहली ॥१५९॥
मोर नाम 'अद्वैत'–तोमार शुद्ध दास । जन्मे जन्मे तोमार उच्छिष्ट मोर ग्रास ॥१६०॥
उच्छिष्ट-प्रभावे नाहि गणों तोर माया । करिलात शास्ति, एवे देह' पद-छाया" ॥१६१॥
एत बलि भक्ति करे शान्ति पुर नाथ । पड़िला प्रभुर पद लइया माथात ॥१६२॥
सम्भ्रमे उठिया कोले कैला विश्वम्भर । अद्वैतेरे कोले करि कान्दये निर्भर ॥१६३॥
अद्वैतेर भक्ति देखि नित्यानन्द राय । क्रन्दन करये जेन नदी बहि' जाय ॥१६४॥
भूमिते पड़िया कान्दे प्रभु हरिदास । अद्वैत-गृहिणी कान्दे, कान्दे जत दास ॥१६५॥
कान्दये अच्युतानन्द–अद्वैत तनय । अद्वैत भवन हैल कृष्ण प्रेममय ॥१६६॥
अद्वैतेरे मारिया लज्जित विश्वम्भर । सन्तोषे आपने देन अद्वैतेरे वर ॥१६७॥
"तिलार्द्ध को जे तोमार करिवे आश्रय । से केने पतङ्ग कीट पशु पक्ष नय ॥१६८॥
यदि मोर स्थाने करे शत अपराध । तथापि ताहारे मुञि करिमुँ प्रसाद" ॥१६९॥

लिया । हे प्रभो ! आप ने अच्छा ही किया । थोड़े ही में मैं छूट गया ॥ १५३ ॥ इस समय मैं आपकी ठकुराई की प्रशंसा करूँगा कि जो दोष के अनुसार मुझे दण्ड दिया ॥ १५४ ॥ 'इससे हे प्रभो ! सेवक को हृदय में बल मिलता है" । ऐसा कहकर शान्तिपुरनाथ आनन्द में नाचते हैं ॥ १५५ ॥ अद्वैत जी सारे आंगन भर में आनन्द से नाचते फिरते हैं और भौंह टेडी कर करके प्रभु के श्री चरणों में निवेदन भी करते जाते हैं ॥ १५६ ॥ (यथाः–) "इस समय मेरे प्रति तुम्हारी वे सब स्तुति कहाँ चली गईं ? वह सब ढोंग कहाँ चला गया ? ॥ १५७ ॥ मैं दुर्वासा नहीं कि जिसकी विडम्बना कर लोगे और जिसके जूठे को अपने सब अङ्गों में लगा लोगे ॥ १५८ ॥ न मैं भृगु मुनि ही हूँ कि जिसकी पद-धूली को वक्षस्थल पर धारण कर कौतुकी श्री वत्सधारी वन जाओगे ॥ १५९ ॥ "मेरा नाम है 'अद्वैत'–तुम्हारा शुद्धादास, तुम्हारा उच्छिष्ट ही जन्म २ में मेरा आहार है ॥ १६० ॥ उस उच्छिष्ट के प्रभाव से मैं तुम्हारी माया को कुछ भी नहीं समझता हूँ । अच्छा प्रभो ! दण्ड तो दे चुके अब अपनी पद की छाया भी तो दो ॥ १६१ ॥ इतना कह कर शान्तिपुर नाथ अपनी भक्ति प्रकट करते हैं और प्रभु के चरणों पर शीश रख कर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ॥ १६२ ॥ हडवड़ा कर श्री विश्वम्भर झट उठते हैं और अद्वैत को अपनी गोद में ले लेते हैं ओर लेकर खब रोते हैं ॥ १६३ ॥ श्री अद्वैत जी की भक्ति को देखकर श्री नित्यानन्द राय इतना रोते हैं कि उनके आँसुओं की नदी सी बहने लगती है ॥ १६४ ॥ श्री हरिदास जी भूमि पर पड़े रो रहे हैं, अद्वैत की पत्नी रो रही हैं, और सब सेवक लोग रो रहे हैं ॥ १६५ ॥ श्री अद्वैत जी के पुत्र श्री अच्युतानन्द भी रो रहे हैं, इस प्रकार अद्वैत भवन कृष्ण प्रेममय हो रहा है ॥ १६६ ॥ श्री अद्वैत को मार कर प्रभु विश्वम्भर बड़े लज्जित हो रहे हैं । (अतऐव) श्री अद्वैत की सन्तुष्टि के लिए वे अपने आप ही उनको वर देते हैं ॥१६७॥ (यथाः-) "जो तिलार्ध भी तुम्हारा आश्रय लेगा, वह चाहे पतंग, कीट, पशु, पक्षी, क्यों न हो ॥ १६८ ॥ वह यदि

वर शुनि कान्दये अद्वैत महाशय। चरणे धरिया कहे करिया विनय ॥१७०॥
"जे तुमि बलिला प्रभु ! कभू मिथ्या नय। मोर एक प्रतिज्ञा शुनह महाशय ॥१७१॥
यदि तोरे ना मानिञा मोरे भक्ति करे। सेइ मोर भक्ति तवे ताहारे संहरे ॥१७२॥
तोर पाद पद्मे जार ना पशिवे मन। तोरे ना मानिले कभु नहे मोर जन ॥१७३॥
जे तोमारे सेवे प्रभु ! से मोर जीवन। ना पारों सहिते मुञि तोमार लङ्घन ॥१७४॥
यदि मोर पुत्र हय, हय वा किङ्कर। वैष्णवा पराधी, मुञि ना देखौं गोचर ॥१७५॥
तोमारे लङ्घिया यदि कोटि देव भजे। सेइ देव ताहारे संहरे कौन व्याजे ॥१७६॥
मुञि नाहि बोलों, एइ वेदेर बाखान। सुदक्षिण-मरण ताहार परमाण ॥१७७॥
सुदक्षिण-नाम-काशी राजेर नन्दन। महा समाधिये शिव कैला आराधन ॥१७८॥
परम-सन्तोषे शिव बोले माग' वर। पाइवे अभीष्ट, अभिचार यज्ञ कर' ॥१७९॥
विष्णु भक्त-प्रति यदि कर' अपमान। तवे सेइ यज्ञ तोर लइव पराण ॥१८०॥
शिव कहिलेन व्याजे, से इहा ना बुझे। शिवाज्ञाय अभिचार यज्ञ गिया भजे ॥१८१॥
यज्ञ हैते उठे एक महा भयङ्कर। तिन कर चरण-त्रिशिर-रूप धर ॥१८२॥
ताल जङ्घ-परमान-बोले वर माग'। राजा बोले द्वारका पोड़ाह महा भाग ॥१८३॥
शुनिञा दुःखित हैला महा शैव मूर्त्ति। वुझिलेन इहार इच्छार नाहि पूर्त्ति ॥१८४॥
अनुरोधे गेला मात्र द्वार कार पाशे। द्वारका रक्षक चक्र खेदाड़िया आइसे ॥१८५॥

मेरे निकट सौ सौ अपराध भी करे तब भी मैं उस पर कृपा करूँगा" ॥ १६९ ॥ वर को सुनकर श्रीअद्वैत महाशय रोने लगे और श्री चरणों को पकड़ कर विनय पूर्वक कहने लगे कि ॥१७०॥ "हे प्रभो ! जो तुमने कहा वह कभी मिथ्या नहीं है। परन्तु हे महाशय ! मेरी भी एक प्रतिज्ञा सुनो ॥ १७१ । (वह यही है कि) जो कोई तुमको न मान कर मेरी भक्ति करेगा तो वह मेरी भक्ति ही उसका नाश कर देगी ॥१७२॥ "तुम्हारे चरण कमलों में जिसका मन नहीं लगेगा, वह तुम्हें न मानने के कारण मेरा भी भक्त कभी नहीं होगा ॥ १७३ ॥ हे प्रभो ! जो तुम्हारी सेवा करता है वह मेरा जीवन है। मैं तुम्हारी अवेहलना को सह नहीं सकता ॥१७४॥ मेरा पुत्र हो अथवा मेरा दास हो, यदि वह वैष्णवापराधी है तो मैं उसको आँखों से कभी देख नहीं सकता ॥ १७५ ॥ "तुम्हारी अवेहलना करके जो कोई करोड़ों देवताओं को भी भजता है तो वे ही देवता कोई न कोई बहाने उसका नाश कर देते हैं ॥ १७६ ॥ यह मैं नहीं कहता हूँ, यह वेद का कथन है, सुदक्षिणा की मृत्यु इसका प्रमाण है ॥ १७७ ॥ सुदक्षिणा नामक काशीराज के पुत्र ने महासमाधि द्वारा शिव जी की आराधना की ॥ १७८ ॥ शिवजी परम सन्तुष्ट होकर बोले कि "वर माँगो, अभीष्ट मिलेगा, अभिचार (मारण) यज्ञ करो ॥ १७९ ॥ परन्तु यदि विष्णु-भक्त का अपमान करोगे तो वही यज्ञ तुम्हारे प्राणों को ले लेगा ॥ १८० ॥ शिवजी ने जो बात ढक करके कहा उसे वह नहीं समझ सका और उसने शिवजी की आज्ञा से अभिचार यज्ञ आरम्भ कर दिया ॥ १८१ ॥ उस यज्ञ में से एक महा भयंकर पुरुष तीन हाथ, तीन पाँव, तीन सिर वाला निकला ॥ १८२ ॥ ताल वृक्ष के बराबर उसकी जंघाएँ थीं। वह बोला 'वर माँग'। तो राजा बोला "हे महाभाग ! द्वारका को जला दो" ॥ १८३ ॥ यह सुन कर उस महाशैव मूर्त्ति को बड़ा दुःख हुआ और वह समझ गई कि इसकी इच्छा की पूर्ति नहीं होगी" ॥ १८४ ॥ फिर भी राजा के कहने से वह द्वारिका के पास तक गया ही था कि द्वारिका के रक्षक सुदर्शन चक्र उसे खदेड़ने के लिए दौड़े हुए आये ॥ १८५ ॥ "भागने से सुदर्शन से बच नहीं सकूँगा" यह विचार कर वह महाशैव पुरुष

पलाइले ना एडाइ सुदर्शन स्थाने। महाशैव पड़ि बोले चक्रेर चरणे ॥१८६॥
"यारे पलाइते नाहि पारिल दुर्वाशा। नारिल राखिते अज विष्णु दिगवासा ॥१८७॥
हेन महा वैष्णव तेजेर स्थाने मुञ्हि। कोथा पलाइव प्रभु ! जे करिस् तुञ्हि ॥१८८॥
जय जय प्रभु मोर सुदर्शन-नाम। द्वितीय-शङ्कर-तेज जय कृष्ण धाम ॥१८६॥
जय महा चक्र जय वैष्णव प्रधान। जय दुष्ट भयङ्कर जय शिष्ट त्राण ॥१६०॥
स्तुति शुनि सन्तोषे वलिल सुदर्शन। पोड़ गिया यथा आछे राजार नन्दन ॥१६१॥
पुन सेइ महा भयङ्कर वाहुड़िया। चलिला काशीर राजपुत्र पोड़ाइया ॥१६२॥
तोमारे लङ्घिया प्रभु ! शिव पूजा कैल। अतएव तार यज्ञे ताहारे मारिल ॥१६३॥
तेञ्हि से वलिलुँ प्रभु ! तोमारे लङ्घिया। मोर सेवा करे, तारे मारिमुँ पूड़िया ॥१६४॥
तुमि मोर प्राण नाथ, तुमि मोर धन। तुमि मोर माता पिता, तुमि वन्धु-जन ॥१६५॥
जे तोमा' लङ्घिया करे मोरे नमस्कार। से जन काटिया शिर करे प्रतिकार ॥१६६॥
सूर्येरे साक्षात् करि राजा सत्राजित। भक्ति वशे सूर्य तार हइलेन मित ॥१६७॥
लङ्घिया तोमार आज्ञा आज्ञा भङ्ग-दुःखे। दुइ भाइ मारा जाय, सूर्य देखे सुखे ॥१६८॥
वलदेव शिष्यत्व पाइया दुर्योधन। तोमारे लङ्घिया पाय सवंशे मरण ॥१६६॥
हिरण्यकशिपु वर पाइया व्रह्मार। लङ्घिया तोमारे गेल सवंशे संहार ॥२००॥
शिरश्छेदे शिव पूजियाओ दशानन। तोमा' लङ्घि पाइलेक सवंशे मरण ॥२०१॥
सर्व-देव-मूल तुमि, सभार ईश्वर। दृश्यादृश्य जत-सब तोमार किङ्कर ॥२०२॥

चक्र के चरणों पर पड़ गया (और बोला) ॥१८६॥ "जिससे दुर्वासा जी नहीं भाग सके और जिससे ब्रह्मा, विष्णु और शिव जी उनकी रक्षा न कर सके ॥ १८७ ॥ ऐसे उस महा वैष्णव तेज के आगे मैं कहाँ भाग सकूँगा। हे प्रभो ! तुम्हें जो करना हो सो करो ॥ १८८ ॥ 'हे सुदर्शन नाम धारी मेरे प्रभो ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे शङ्कर के द्वितीय तेज स्वरूप ! हे श्रीकृष्ण के तेज स्वरूप ! तुम्हारी जय हो ॥१८६॥ "हे महाचक्र ! तुम्हारी जय हो ! हे वैष्णव प्रधान तुम्हारी जय हो ! हे दुष्टों के प्रति भयंकर तुम्हारी जय हो ! हे सज्जनों के रक्षक ! तुम्हारी जय हो ॥ १६० ॥ स्तुति सुन श्री सुदर्शन सन्तुष्ट होकर बोले कि "जहाँ राजा का पुत्र (सुदक्षिण) है वहाँ जाकर जलाओ ॥ १६१ ॥ तब वह महा भयङ्कर पुरुष लौट चला और काशी-राज के पुत्र को जलाकर चला गया ॥ १६२ ॥ हे प्रभो ! तुमको उल्लंघन करके उसने शिव पूजा की थी अतएव उसके यज्ञ ने उसी को मार डाला ॥ १६३ ॥ इसीसे प्रभो ! मैंने यह कहा कि जो तुम्हारा उल्लंघन करके मेरी सेवा करेगा उसे मैं जला मारूँगा ॥ १६४ ॥ 'हे प्रभो ! तुम ही मेरे प्राणनाथ हो, तुम ही मेरे धन हो। तुम ही मेरे माता पिता हो, तुम ही मेरे बन्धुजन हो ॥ १६५ ॥ (अतएव) जो तुम्हारी अवज्ञा करके मुझे नमस्कार करता है, वह अपना सिर काट कर फिर चिकित्सा करता है ॥ १६६ ॥ "सत्राजित राजा ने सूर्यदेव का साक्षात्कार किया। सूर्यदेव भी उसकी भक्ति के वश में होकर उसके मित्र हो गये ॥१६७॥ परन्तु तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन कर उस आज्ञा भङ्ग के दुःख से दोनों भाई मारे गये और सूर्य-देव आनन्द से देखते ही रहे ॥ १६८ ॥ दुर्योधन श्री बलदेव जी का शिष्यत्व प्राप्त करके भी तुमको उल्लंघन करने से वंश सहित मारा गया ॥ १६६ ॥ हिरण्यकशिपु ब्रह्मा का वर पाकर के भी तुम्हारी अवहेलना के कारण वंश सहित मारा गया ॥ २०० ॥ रावण ने अपने मस्तकों को काट २ कर शिवजी की पूजा की परन्तु तुम्हारा उल्लंघन करके वह भी वंश सहित समाप्त हो गया ॥ २०१ ॥ (अतएव) तुम ही सब देव-

प्रभुरे लङ्घिया जे दासेरे भक्ति करे। पूजा खाइ सेइ दास ताहारे संहरे ॥२०३॥
तोमा' ना मानिञा जे शिवादि देव भजे। वृक्ष-मूल काटि जेन पल्लवेरे पूजे ॥२०४॥
देव, विप्र, यज्ञ, धर्म-सब मूल तुमि। जे तोमा ना भजे, तार पूज्य नहि आमि ॥२०५॥
महा तत्त्व अद्वैतेर शुनिञा वचन। हुङ्कार करिया बोले श्रीशचीनन्दन ।२०६॥
"मोर एइ सत्य सभे शुन मन दिया। जेइ मोर पूजे मोरे सेवक लङ्घिया ॥२०७॥
से अधम जने मोरे खण्ड खण्ड करे। तार पूजा मोर गा'ये अग्नि हेन पड़े ॥२०८॥
जेइ मोर दासेर सकृत निन्दा करे। मोर नाम कल्प तरु ताहारे संहारे ॥२०९॥
अनन्त ब्रह्माण्ड जत-सब मोर दास। एतेके जे पर हिंसे' से-इ जाय नाश ॥२१०॥
तुमि त आमार निज देह हैते बड़। तोमारे लङ्घिया दैवे नाश हय दढ़ ॥२११॥
संन्यासीओ यदि अनिन्दक-निन्दा करे। अधः पाते जाय, सर्व धर्म घुचे तारे" ॥२१२॥
बाहु तुलि जगतेरे बोले गौर धाम। "अनिन्दक हइ सभे बोल कृष्ण नाम ॥२१३॥
अनिन्दक हइ जे सकृत 'कृष्ण' बोले। सत्य सत्य मुञि तारे उद्धारिमु हेले ॥२१४॥
एइ यदि महाप्रभु वलिला वचन। 'जय जय जय' बोले सर्व भक्त गण ॥२१५॥
अद्वैत कान्दये दुइ चरणे धरिया। प्रभु कान्दे अद्वैतेरे कोले ते करिया ॥२१६॥
अद्वैतेर प्रेमे भासे सकल मेदिनी। एइ मत महा चिन्त्य अद्वैत-काहिनी ॥२१७॥
अद्वैतेर वाक्य वुझिवार शक्ति जार। जानिह ईश्वर-सने भेद नाहि तार ॥२१८॥

ताओं के मूल में हो, सब के ईश्वर हो, जो कुछ भी दृश्यादृश्य है, वह सब तुम्हारे किंकर हैं ॥ २०२ ॥ प्रभु की अवहेलना कर जो दासों की भक्ति करता है, तो वे दास ही उसकी पूजा खाकर उसे भी खा जाते हैं ॥ २०३ ॥ तुमको न मान कर जो शिवादि देवताओं को भजते हैं, वे वृक्ष के मूल को काटकर पत्तियों को पूजते हैं ॥ २०४ ॥ "तुम ही देवता, ब्राह्मण, यज्ञ, धर्म सब के मूल में हो। जो तुमको नहीं भजता है, तो मैं भी उसका पूज्य नहीं" ॥ २०५ ॥ श्री अद्वैत के परम तत्त्व पूर्ण वचनों को सुनकर श्री शचीनन्दन हुँकार करते हुए बोले ॥ २०६ ॥ "सब लोग मेरे इस सत्य वचन को मन लगा कर सुनो कि जो मेरे सेवक को उल्लंघन करके मेरी पूजा करता है, वह अधम जन मेरे अङ्ग के टुकड़े २ करता है, उसकी पूजा मेरे शरीर पर अग्नि के समान पड़ती है ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ "जो मेरे दास की एक बार भी निन्दा करता है, तो मेरा कल्पतरु नाम उसका संहार कर देता है ॥२०९॥ जितने अनन्त ब्रह्माण्ड हैं वे सब मेरे दास हैं, इसी कारण जो दूसरे की हिंसा करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं ॥ २१० ॥ और तुम तो मेरी देह से भी बड़े हो, तुम्हारी अवहेलना करने से अपने कर्मवश वह निश्चय की नष्ट हो जाता है ॥ २११ ॥ संन्यासी भी यदि कभी निन्दा न करने वाले पुरुष की निन्दा करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है, उसके सब धर्म नष्ट हो जाते हैं" ॥ २१२ ॥ फिर भुजाओं को उठाकर श्री गौरचन्द्र जगत् के प्रति कहते हैं कि "तुम सब अनिन्दक होकर कृष्ण नाम कहो ॥ २१३ ॥ "अनिन्दक होकर जो एक बार भी कृष्ण' कहेगा मैं उसका सहज ही में उद्धार करूँगा यह सत्य है सत्य है ॥ २१४ ॥ जब यह वचन श्री मन्महाप्रभु बोले तो सब भक्त लोग 'जय ३' बोल उठे ॥ २१५ ॥ श्री अद्वैत जी प्रभु के दोनों चरणों को पकड़ कर रोने लगे और प्रभु अद्वैत जी को गोद में लेकर रोने लगे ॥ २१६ ॥ अद्वैताचार्य के प्रेम से पृथ्वी सब प्लावित सी हो गई इस प्रकार श्री अद्वैत की चरित्र कथा बड़ी अचिन्त्य है ॥ २१७ ॥ श्री अद्वैत के वचनों को समझने की जिसमें शक्ति हो उसका ईश्वर से भेद नहीं है:समझना चाहिए ॥ २१८ ॥ श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैत में जो परस्पर गाली गलौज होती

नित्यानन्द-अद्वैते जे गाला गाली वाजे। सेइ से परमानन्द-यदि जने बुझे ॥२१६॥
दुर्विज्ञेय विष्णु वैष्णवेर वाक्य कर्म। तान अनुग्रहे से बुझये तान मर्म ॥२२०॥
एइ मत जत आर हइल कथन। नित्यानन्दाद्वैत-प्रभु आर जत गण ॥२२१॥
इहा कहिवार शक्ति प्रभु बलराम। सहस्र बदने गाय एइ गुण ग्राम ॥२२२॥
क्षणे केइ वाह्य दृष्टि दिया विश्वम्भर। हासिया अद्वैत-प्रति बोलये उत्तर ॥२२३॥
"किछु नि चाञ्चल्य मुञि करियाछों शिशु"। अद्वैत बोलये "उपाधिक नहे किछु" ॥२२४॥
प्रभु बोले "शुन नित्यानन्द महाशय। रक्षिवा-चाञ्चल्य यदि मोर किछु हय" ॥२२५॥
नित्यानन्द चैतन्य अद्वैत हरिदास। परस्पर सभे सभा' चा'हि महाहास ॥२२६॥
अद्वैत गृहिणी महा सती पतिव्रता। विश्वम्भर महाप्रभु जारे बोले 'माता' ॥२२७॥
प्रभु बोले "शीघ्र गिया करह रन्धन। कृष्णेर नैवेद्य कर'-करिव भोजन ॥२२८॥
नित्यानन्द-हरिदास-अद्वैतादि सङ्गे। गङ्गा स्नाने विश्वम्भर चलिलेन रङ्गे ॥२२६॥
से सब आनन्द वेदे वर्णिव विस्तर। स्नान करि प्रभु सब आइलेन घर ॥२३०॥
चरण पाखालि महाप्रभु विश्वम्भर। कृष्णेरे करये दण्ड प्रणाम विस्तर ॥२३१॥
अद्वैत पड़िला विश्वम्भर-पद तले। हरिदास पड़िला अद्वैत-पद मूले ॥२३२॥
अपूर्व कौतुक देखि नित्यानन्द हासे'। धर्म सेतु हेन तिन विग्रह प्रकाशे' ॥२३३॥
उठि देखे ठाकुर-अद्वैत पद तले। आथे व्यथे उठि प्रभु 'विष्णु विष्णु' बोले ॥२३४॥
अद्वैतेर हाथे धरि नित्यानन्द-सङ्गे। चलिला भोजन गृहे विश्वम्भर रङ्गे ॥२३५॥

है, उसे यदि कोई समझ जाय तो वह परमानन्द लाभ करे ॥ २१८ ॥ श्री विष्णु और वैष्णव के वचन और कर्म दुर्विज्ञेय होते हैं। उनका मर्म उनकी ही कृपा से कोई समझ सकता है ॥ २२० ॥ इसी प्रकार से जो कुछ भी श्री नित्यानन्द, श्री अद्वैत और भक्तगण में वार्तालाप हुआ ॥ २२१ ॥ उसे कहने की शक्ति एक बल-राम प्रभु में ही है। वे इन्हीं गुणगण को सहस्र मुख से गाया करते हैं ॥ २२२ ॥ कुछ देर में श्री विश्वम्भर की वाह्य दृष्टि होने पर वे हँस कर श्री अद्वैत के प्रति बोले ॥ २२३ ॥ मुझ शिशु ने कुछ चंचलता कर डाली है क्या ?"। श्री अद्वैत जी बोले "नहीं, स्वभाव से बाहर की कुछ नहीं" ॥ २२४ ॥ प्रभु बोले "महाशय नित्यानन्द जी सुनिए ! जब मुझमें कुछ चंचलता आवे तो आप मुझे सम्हाल लिया करें" ॥२२५॥ श्रीनित्या-नन्द, श्री चैतन्यचन्द्र, श्री अद्वैत और श्री हरिदास एक दूसरे को देखते हैं और खूब हँसते हैं ॥ २२६ ॥ श्री अद्वैत-गृहिणी महासती पतिव्रता हैं, जिनको श्री विश्वम्भर महाप्रभु 'माता' कहते हैं ॥ २२७ ॥ उनसे प्रभु बोले "शीघ्र जाकर रसोई तैयार करो, और श्रीकृष्ण को निवेदन करो मैं भोजन करूँगा ॥२२८॥ (इतना कह कर) श्री विश्वम्भर, श्री नित्यानन्द, श्री हरिदास, श्री अद्वैतादि के साथ बड़े आनन्द में गङ्गा-स्नान को चले ॥ २२९ ॥ वह सब आनन्द वेद में विस्तार पूर्वक वर्णन होगा। स्नान करके सब प्रभु घर को लौट आये ॥ २३० ॥ महाप्रभु विश्वम्भर ने चरणों को धोकर श्रीकृष्ण को अनेक प्रणाम किया ॥ २३१ ॥ श्री-अद्वैत श्री विश्वम्भर के श्रीचरणों पर पड़ गये और श्री हरिदास श्रीअद्वैत के चरणों पर पड़ गये ॥२३२॥ इस अपूर्व कौतुक को देखकर श्री नित्यानन्द जी हँसने लगे इन तीन विग्रहों का प्रकाश धर्म का पुल बाँधने के लिए हुआ है ॥ २३३ ॥ महाप्रभु ने उठते समय जब श्री अद्वैत को अपने चरणों पर पड़ा देखा, तो हड़-बड़ा कर "श्री विष्णु २" कहते हुए झट उठ खड़े हुए ॥ २३४ ॥ फिर अद्वैत जी का हाथ पकड़ कर श्री-नित्यानन्द के साथ विश्वम्भर आनन्द में भोजन-गृह को चले ॥ २३५ ॥ तीन प्रभु श्री विश्वम्भर श्रीनित्या-

भोजने वसिला तिन प्रभु एक ठाञि। विश्वम्भर नित्यानन्द आचार्य गोसाञि ॥२३६॥
स्वभाव चञ्चल तिन प्रभु निजा वेशे। उपाधिक नित्यानन्द प्रभु वाल्य रसे ॥२३७॥
द्वारे वसि भोजन करये हरिदास। जार देखिवार शक्ति-सकल प्रकाश ॥२३८॥
अद्वैत गृहिणी महासती योगेश्वरी। करे परिवेषण स्मङरि 'हरि हरि' ॥२३९॥
भोजन करेन तिन ठाकुर चञ्चल। दिव्य अन्न घृत दुग्ध पायस–सकल ॥२४०॥
अद्वैत देखिया हासे' नित्यानन्द-राय। एक वस्तु दुइ भाग,–कृष्णेर लीलाय ॥२४१॥
भोजन हइल पूर्ण, किछु मात्र शेष। नित्यानन्द हइला परम-वाल्या वेश ॥२४२॥
सर्व-घरे अन्न छड़ाइया हैल हास। प्रभु बोले 'हाय हाय,' हासे' हरिदास ॥२४३॥
देखिया अद्वैत क्रोधे अग्नि-हेन ज्वले। नित्यानन्द तत्त्व कहे क्रोधावेश-छले ॥२४४॥
"जाति नाश करिलेक एइ नित्यानन्द। कोथा हैते आसि हैल मद्यपेर सङ्ग ॥२४५॥
गुरु नाहि बोलय 'संन्यासी' करि नाम। जन्म वा ना जानिये निश्चय कोन् ग्राम ॥२४६॥
केहो त ना चिने, नाहि जानि कोन् जाति। ढुलिया ढुलिया बुले जेन माता-हाथी ॥२४७॥
घरे घरे पश्चिमार खाइयाछे भात। एखने आसिया हैल ब्राह्मणेर साथ ॥२४८॥
नित्यानन्द-मद्यपे करिव सर्व नाश। सत्य सत्य सत्य एइ शुन हरिदास" ॥२४९॥
क्रोधावेशे अद्वैत हइला दिगवास। हाथे तालि दिया नाचे, अट्ट अट्ट हास ॥२५०॥
अद्वैत-चरित्र देखि हासे गौर राय। हासि नित्यानन्द दुइ अङ्गुलि देखाय ॥२५१॥
शुद्ध-हास्य मय अद्वैतेर क्रोधावेशे। किवा वृद्ध किवा शिशु हासये विशेषे ॥२५२॥
क्षणेके हइल वाह्य, कैल आचमन। परस्पर सन्तोषे करिला आलिङ्गन ॥२५३॥

नन्द और श्री अद्वैताचार्य गुसांई, भोजन को एकत्र बैठे ॥२३६॥ अपने २ आवेश में तीनों प्रभुओं का चंचल स्वभाव है, परन्तु नित्यानन्द प्रभु में बाल्य भाव की अधिकता विशेष है ॥ २३७ ॥ श्री हरिदास जी द्वार पर बैठ कर भोजन कर रहे हैं सब प्रकाश स्वरूप के दर्शन करने की इनमें शक्ति है ॥२३८॥ महासती योगेश्वरी अद्वैत–गृहिणी 'हरि २' स्मरण करती हुई परोस रही हैं ॥ २३९ ॥ तीन चंचल प्रभु उत्तम भात घी, दूध, खीर आदि भोजन कर रहे हैं ॥ २४० ॥ श्रीअद्वैत को देख २ कर श्री नित्यानन्द जी हँस रहे हैं, (ये दो) एक ही वस्तु के दो भाग हैं, श्रीकृष्ण की लीला से ॥ २४१ ॥ भोजन पूर्ण हुआ–थोड़ा सा ही शेष है कि श्री नित्यानन्द बालक के आवेश में आ गये ॥ २४२ ॥ और घर में सब भात विखेर कर हँसने लगे। प्रभु 'हाय २' करते हैं, श्री हरिदास जी हँसते हैं ॥२४३॥ यह देख श्री अद्वैत क्रोध से अग्नि की तरह जलते हुए क्रोधावेश के छल से श्री नित्यानन्द तत्त्व बखानने लगे ॥२४४॥ "इस नित्यानन्द ने हमारी जाति बिगाड़ दी, न जाने कहाँ से इस शराबी का सङ्ग हुआ है ॥ २४५ ॥ न कोई इसका गुरु है, अपने को संन्यासी कहता है, जन्म भी न जाने किस गाँव का है कुछ पता नहीं ॥ २४६ ॥ "कोई इसे पहचानता भी नहीं। न जाने इसकी कौन सी जाति है, मतवाले हाथी की तरह झूमता झामता फिरा करता है ॥ २४७ ॥ इसने पश्चिम देश वासियों के घर २ में भात खाया है। यहाँ आकर अब ब्राह्मणों में मिल गया है ॥ ॥ २४८ ॥ "यह शराबी नित्यानन्द सर्वनाश करेगा हे हरिदास यह सत्य ३ है" ॥ २४९ ॥ क्रोध के आवेश में अद्वैत दिगम्बर हो गये और हाथों से ताली बजा २ कर नाचने और ठहाका मार २ कर हँसने लगे ॥ २५० ॥ श्री अद्वैत के चरित्र को देख २ कर श्री गौरसुन्दर हँसते हैं और नित्यानन्द जी हँसते हुए दो अंगुली दिखाते हैं ॥२५१॥ श्री अद्वैत का क्रोधावेश शुद्ध हास्यमय है इसी से क्या बूढ़े क्या बालक सब खूब हँसते हैं ॥२५२॥

नित्यानन्द-अद्वैते हइल कोला कोलि। प्रेम रसे दुइ प्रभु महा कुतूहली ॥२५४॥
प्रभु विग्रहेर दुइ बाहु दुइ जन। प्रीत वइ अप्रीत नाहिक कोन क्षण ॥२५५॥
तवे जे कलह देख, से कृष्णेर लीला। वालकेर प्राय विष्णु-वैष्णवेर खेला ॥२५६॥
हेन मते महाप्रभु अद्वैत मन्दिरे। स्वानुभावा नन्दे हरि कीर्त्तन विहरे ॥२५७॥
इहा वलिवार शक्ति प्रभु बलराम। अन्य नाहि जानये ए सब गुण ग्राम ॥२५८॥
सरस्वती जाने बलरामेर कृपाय। सभार जिह्वाय सेइ भगवती गाय ॥२५९॥
ए सब कथार नाहि जानि अनुक्रम। जे-ते-मते गाइ मात्र कृष्णेर विक्रम ॥२६०॥
चैतन्य प्रियेर पा'य मोर नमस्कार। इहाते जे अपराध-क्षमिह आमार ॥२६१॥
अद्वैतेर 'गृहे प्रभु वञ्चि कथो दिन। नवद्वीपे आइला—संहति करि तिन ॥२६२॥
नित्यानन्द, अद्वैत, तृतीय हरिदास। एइ तिन सङ्गे प्रभु आइला निज-वास ॥२६३॥
शुनिला वैष्णव सब "आइला ठाकुर"। धाइया आइला सभे-आनन्द-प्रचुर ॥२६४॥
देखि सर्व ताप हरे' से चन्द्र वदन। धरिया चरण सभे करेन क्रन्दन ॥२६५॥
विश्वम्भर महाप्रभु—सभार जीवन। सभार करिल प्रभु प्रेम-आलिङ्गन ॥२६६॥
सभेइ प्रभुर निज-विग्रह-समान। सभेइ उदार-भागवतेर प्रधान ॥२६७॥
सभेइ करिला अद्वैतेरे नमस्कार। जार भक्ति-कारणे चैतन्य-अवतार ॥२६८॥
आनन्दे हइला मत्त वैष्णव सकल। सभे करे प्रभु-सङ्गे कृष्ण कोलाहल ॥२६९॥
पुत्र देखि आइ हैला आनन्दे विह्वल। वधू-सङ्गे गृहे करे आनन्द मङ्गल ॥२७०॥

थोड़ी देर में उनको वाह्य ज्ञान हुआ तो उन्होंने आचमन की ओर दोनों प्रसन्न होकर परस्पर से मिले ॥२५३॥ प्रेमरस में विशेष कौतुकी दोनों प्रभु श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैत परस्पर आलिंगन कर रहे हैं ॥ २५४॥ ये दोनों श्री गौर विग्रह की दो भुजा हैं, इनमें परस्पर में प्रीति छोड़ के कभी अप्रीति नहीं है ॥२५५॥ अतएव जो इनमें कलह देखा जाता है वह श्रीकृष्ण की लीला है विष्णु और वैष्णवों के खेल बालकों के समान होते हैं ॥ २५६ ॥ इस प्रकार महाप्रभु श्री अद्वैत के भवन में अपने भाव के आनन्द में हरि—कीर्त्तन में विहार करते हैं ॥ २५७ ॥ इस विहार को वर्णन करने की शक्ति प्रभु श्री बलराम में ही है, और कोई इन सब गुण गण को नहीं जानते हैं ॥ २५८ ॥ हाँ, श्री बलराम जी की कृपा से सरस्वती जी जानती हैं, वही भगवती सबों की जिह्वाएँ द्वारा गान करती हैं ॥ २५९ ॥ मैं भी इन सब चरित्रों का क्रम नहीं जानता हूँ। मैं तो जैसे तैसे श्रीकृष्ण के विक्रम को गा देता हूँ ॥ २६० ॥ श्री चैतन्य के प्रिय जनों के चरणों में मेरा नमस्कार है। इसमें जो मेरा अपराध हो, उसे वे क्षमा करें ॥ २६१ ॥ अद्वैताचार्य के घर में कुछ दिन बिता कर प्रभु तीनों को साथ लेकर नवद्वीप में आये ॥२६२॥ श्री नित्यानन्द, श्री अद्वैत और तीसरे श्री हरिदास इन तीनों के साथ प्रभु अपने भवन में आये ॥ २६३ ॥ सब वैष्णवों ने सुना कि प्रभु आ गये और सब बड़े आनन्द में दौड़े २ आये ॥ २६४ ॥ प्रभु के उस चन्द्रवदन के दर्शन करके सब के ताप दूर हुए। प्रभु ने सबों को अपना प्रेमालिंगन प्रदान किया ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ सभी प्रभु को अपने शरीर के समान हैं (कारण कि सभी बड़े उदार भागवत—प्रधान हैं ॥ २६७ ॥ सभी ने श्री अद्वैत जी को नमस्कार किया कि जिनकी भक्ति के कारण चैतन्यावतार हुआ ॥ २६८ ॥ सब वैष्णव जन आनन्द में मतवाले हो गये और प्रभु के साथ 'कृष्ण २' कहते हुए कोलाहल मचाते हैं ॥ २६९ ॥ पुत्र को देखकर शची माता आनन्द में विह्वल हो जाती है, और वधू के साथ घर में आनन्द मङ्गल मनाती हैं ॥ २७० ॥ इसे वर्णन करने की शक्ति सहस्रवदन प्रभु

इहा वलिवार शक्ति सहस्र वदन। जे प्रभु आमार जन्म जन्मेर जीवन ।।२७१।।
'द्विज' 'विप्र' 'ब्राह्मण' जे हेन नाम भेद। एइ मत प्रभु 'नित्यानन्द' 'वलदेव ।।२७२।।
अद्वैत गृहेते प्रभु जत कैल केलि। इहा जे शुनये सेहो पाय सेइ मेलि ।।२७३।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ।।२७४।।

अथ बीसवाँ अध्याय

जय जय गौरसिंह श्रीशची कुमार। जय सर्व ताप हर चरण तोमार ।।१।।
जय गदाधर-प्राण-नाथ महाशय। कृपा कर' प्रभु! हेन तोहे मन रय ।।२।।
हेन मते भक्त गोष्ठी ठाकुर देखिया। नाचे गाये कान्दे हासे' प्रेम पूर्ण हैया ।।३।।
एइ मत प्रति दिन अशेष कौतुक। भक्त-सङ्गे विश्वम्भर करे नाना रूप ।।४।।
एक दिन महाप्रभु नित्यानन्द-सङ्गे। श्रीनिवास गृहे वसि आछे नाना-रङ्गे ।।५।।
आइला मुरारि गुप्त हेनइ समय। प्रभुर चरणे दण्ड परणाम हय ।।६।।
शेषे नित्यानन्देरे करिया परणाम। सम्मुखे रहिला गुप्त महा ज्योतिर्धाम ।।७।।
मुरारि गुप्तेरे प्रभु बड़ सुखी मने। अकपटे मुरारिरे कहेन आपने ।।८।।
जे करिला मुरारि! ना हय व्यवहार। व्यतिक्रम करिया करिला नमस्कार ।।९।।
कोथा तुमि शिखाइवा, जे ना इहा जाने। व्यवहारे हेन धर्म तुमि लङ्घ केने" ।।१०।।
मुरारि बोलये "प्रभु! जानों केन मते। चित्त तुमिलओ याइया आछ जेन मते ।।११।।

मैं ही कि जो प्रभु मेरे जन्म २ के जीवन हैं।।२७१।। जिस प्रकार 'द्विज' 'विप्र' और 'ब्राह्मण' में नाम का ही भेद है वैसे ही प्रभु 'नित्यानन्द' और 'बलदेव' में भी समझो ।। २७२ ।। श्री अद्वैत के घर प्रभु ने जितनी लीलाएँ कीं, उनको जो कोई सुनेंगे वे भी उस लीला में मिल जायँगे।। २७३ ।। श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दावन दास उनके श्री चरणों में उनके ही गुण गान को निवेदन करता है ।। २७४ ।।

इति–अद्वैत गृह विलास वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय।

हे श्री शचीकुमार! हे गौरसिंह! आप की जय हो, जय हो। आप के सर्वतापहर श्री चरणों की की जय हो।। १ ।। हे गदाधर के प्राणनाथ महाशय! आपकी जय हो। हे प्रभो! ऐसी कृपा कीजिए कि मन आप में लगा रहे ।। २ ।। इस प्रकार भक्त मंडली प्रभु के दर्शन कर प्रेमपूर्ण हो नाचती, गाती, रोती, हँसती है ।। ३ ।। इस प्रकार श्री विश्वम्भर भक्तों के साथ प्रति दिन अशेष कौतुक किया करते हैं ।। ४ ।। एक दिन महाप्रभु जी श्री नित्यानन्द के साथ श्रीवास के घर में नाना प्रकार के कौतुक करते हुए विराजमान हैं ।।५।। उसी समय श्री मुरारि गुप्त वहाँ आये और उन्होंने प्रभु के श्री चरणों में प्रणाम किया ।।६।। पश्चात् श्री नित्यानन्द जी प्रणाम करके महा तेजवान् मुरारि गुप्त सन्मुख खड़े हो गये ।। ७ ।। प्रभु मुरारि-गुप्त के प्रति मनमें बड़े प्रसन्न हुए और उससे निष्कपट भाव से कहने लगे ।।८।। "हे मुरारि! जो तुमने किया यह उचित व्यवहार नहीं है। तुमने क्रम को त्याग करके नमस्कार किया ।। ९ ।। कहाँ तो तुमको व्यवहार न जानने वालों को सिखाना था और कहाँ तुमने स्वयं धर्म का उल्लंघन कर डाला भला ऐसा क्यों किया? ।। १० ।। मुरारि बोला–"प्रभो! मैं कैसे जानूँ। चित्त को तो आप लिये हुए हैं। आप जैसा करवाते हैं,

प्रभु बोले "भाल भाल आजि जाह घरे। सकल जानिवा कालि, वलिल तोमारे" ॥१२॥
सम्भ्रमे चलिला गुप्त सभय-हरिषे। शयन करिला गिया आपनार वासे ॥१३॥
स्वप्ने देखे-महा भागवतेर प्रधान। मल्ल वेशे नित्यानन्द चले आगुयान ॥१४॥
नित्यानन्द शिरे देखे महा 'नागफणा। करे देखे श्रीहल मूसल ताल-वाणा ॥१५॥
नित्यानन्द मूर्त्ति देखे जेन हलधर। शिरे पाखा धरि पाछे जाय विश्वम्भर ॥१६॥
स्वप्ने प्रभु हासि बोले "जानिला मुरारि। आमि जे कनिष्ठ, मने बुझह विचारि" ॥१७॥
स्वप्ने दुइ प्रभु हासे' मुरारि देखिया। दुइ भाइ मुरारिरे गेला शिखाइया ॥१८॥
चैतन्य पाइया गुप्त करेन क्रन्दन। नित्यानन्द वलि श्वास छाड़े घने घन ॥१९॥
महा सती मुरारि गुप्तेर पतिव्रता। 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण' बोले हइ सचकिता ॥२०॥
'बड़ भाइ नित्यानन्द' मुरारि जानिया। चलिला प्रभुर स्थाने आनन्दित हैया ॥२१॥
वसि आछे महाप्रभु कमल लोचन। दक्षिणे से नित्यानन्द प्रफुल्ल वदन ॥२२॥
आगे नित्यानन्देर चरणे नमस्करि। पाछे वन्दे विश्वम्भर-चरण मुरारि ॥२३॥
हासि बोले विश्वम्भर "मुरारि! ए केन"। मुरारि बोलये "प्रभु! लओयाइले जेन ॥२४॥
पवन-कारणे जेन शुष्क तृण चले। जीवेर सकल कर्म तोर शक्ति वले" ॥२५॥
प्रभु बोले "मुरारि! आमार प्रिय तुमि। अतएव तोमारे भाङ्गिल मर्म आमि" ॥२६॥
कहे प्रभु निज तत्त्व मुरारिर स्थाने। जो गाय ताम्बूल प्रिय-गदाधर-नामे ॥२७॥
प्रभु बोले "दास मोर मुरारी प्रधान"। एत बलि चर्वित ताम्वूल कैला दान ॥२८॥

वैसा ही करता हूँ ॥ ११ ॥ प्रभु बोले "अच्छा २! आज तो घर जाओ कल सब जान जाओगे यह तुमसे कहे देता हूँ" ॥ १२ ॥ मुरारि गुप्त सम्भ्रम में आकर चले। उनके मन में भय और हर्ष है। वे अपने घर जाकर सोये ॥ १३ ॥ महा भागवत प्रधान मुरारि गुप्त ने स्वप्न देखा कि श्री नित्यानन्द जी मल्ल वेश में चले जा रहे हैं ॥ १४ ॥ वे श्री नित्यानन्द जी के शिर पर एक बड़ा भारी नागफणि हाथों में हल–मूषल और ताल के चिन्ह वाली पताका देखते हैं ॥ १५ ॥ वे श्री नित्यानन्द मूर्त्ति को श्री हलधर जैसी देखते हैं और उनके पीछे मोर पङ्ख पहिने हुए श्री विश्वम्भर जा रहे हैं ॥ १६ ॥ स्वप्न में प्रभु हँस कर बोले "जान गये न मुरारि? मैं छोटा हूँ! मन में विचार कर देखो" ॥ १७ ॥ स्वप्न में दोनों प्रभु मुरारि को देख कर हँसे। इस प्रकार दोनों भाई मुरारि को शिक्षा देकर चले गये ॥ १८ ॥ (नींद टूटने पर) मुरारि गुप्त जब सचेत हुए तो रोने लगे और नित्यानन्द २ कह कर बारम्बार लम्बी सांस लेने लगे ॥ १९ ॥ मुरारि गुप्त की पत्नी बड़ी सती पतिव्रता हैं, वे चकित होकर कृष्ण ३ कहने लगीं ॥ २० ॥ यह जानकर कि श्री नित्यानन्द जी बड़े भाई हैं मुरारि को बड़ा आनन्द हुआ और वे प्रभु के पास चले ॥ २१ ॥ कमल लोचन महाप्रभु विराजमान हैं दाहिने ओर प्रसन्न वदन श्री नित्यानन्द हैं ॥ २२ ॥ मुरारि ने जाकर पहले श्री नित्यानन्द जी के चरणों में नमस्कार किया और पीछे श्री विश्वम्भर के चरणों की वन्दना की ॥ २३ ॥ श्रीविश्वम्भर हँस कर बोले "ऐसा क्यों मुरारि?" मुरारि बोला "आप ने जैसा कराया प्रभो!" ॥ २४ ॥ जैसे वायु के कारण सूखे तृण उड़ते हैं, वैसे ही आप की शक्ति से ही जीव के समस्त कर्म होते हैं ॥ २५ ॥ प्रभु बोले "मुरारि! तुम मेरे प्रिय हो। इसीसे तुम्हारे निकट मैंने यह रहस्य प्रकट किया" ॥ २६ ॥ प्रभु मुरारि के निकट अपना तत्त्व कहते हैं। प्रभु के प्रिय गदाधर जी ताम्बूल अर्पण करते हैं ॥ २७ ॥ प्रभु बोले "मुरारि मेरा प्रधान दास है", इतना कह कर प्रभु ने अपना चर्बित ताम्बूल उसको दिया ॥ २८ ॥ मुरारि ने बड़े

सम्भ्रमे मुरारी जोड़ हस्त करि लय । खाइया मुरारि महानन्दे मत्त हय ॥२९॥
प्रभु बोले "मुरारि ! सकाले धोह हाथ" । मुरारी तुलिया हस्त दिलेक माथात ॥३०॥
प्रभु बोले "आरे बेटा ! जाति गेल तोर । तोर अङ्गे उच्छिष्ट लागिल सब मोर" ॥३१॥
वलिते प्रभुर हैल ईश्वर-आवेश । दन्त कड़ मांड़ करि बोलये विशेष ॥३२॥
संन्यासी प्रकाशानन्द वसये काशीते । मोरे खण्ड खण्ड वेटा करे भाल मते ॥३३॥
पढ़ाये वेदान्त, मोर विग्रह ना माने' । कुष्ठ कराइलुँ अङ्गे तभु नाहि जाने ॥३४॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर जे अङ्गे ते वैसे । ताहा मिथ्या बोले वेटा के मन साहसे ॥३५॥
सत्य कहों मुरारि ! आमार तुम दास । जे ना माने' मोर अङ्ग, से-इ जाय नाश ॥३६॥
अज भवानन्द माझे विग्रह जे सेवे । जे विग्रह प्राण करि पूजे सर्व-देवे ॥३७॥
पुण्य पवित्रता पाय जे अङ्ग-परशे । ताहा मिथ्या बोले बेटा के मन साहसे ॥३८॥
सत्य सत्य करों तोरे एइ परकाश । सत्य मुञि, सत्य मोर दास तार दास ॥३९॥
सत्य मोर लीला कर्म, सत्य मोर स्थान । इहा मिथ्या बोले मोरे करे खाण खाण ॥४०॥
जे-यश-श्रवणे आदि-अविद्या-विनाश । पापी अध्यापके बोले 'मिथ्या से विलास' ॥४१॥
जे-यश श्रवण-रसे शिव दिगम्बर । जहा गाय आपने अनन्त महीधर ॥४२॥
जे-यश-श्रवणे शुक-नारदादि मत्त । चारि वेदे वाखाने' जे यशेर महत्व ॥४३॥
हेन पुण्य-कीर्त्ति-प्रति अनादर जार । से कभू ना जाने गुप्त ! मोर अवतार ॥४४॥
गुप्त-लक्ष्ये सभारे शिखाय भगवान् । 'सत्य मोर विग्रह, सेवक, लीला स्थान' ॥४५॥

आदर सन्मान के साथ हाथ जोड़ कर उसे ले लिया और उसे खाकर वह महा आनन्द में मतवाला हो गया ॥ २९ ॥ प्रभु बोले "मुरारि ! जल्दी हाथ धोओ" । तो उसने हाथ मस्तक से लगा लिया ॥३०॥ प्रभु बोले "बेटा ! तेरी जाति चली गई (क्योंकि) तेरे सारे शरीर में मेरा जूठा लग गया ॥ ३१ ॥ कहते २ प्रभु को ईश्वर का आवेश हो आया, और दाँत पीसते हुए वे कुछ विशेष कहनेलगे ॥ ३२ ॥ 'काशी में प्रकाशानन्द संन्यासी रहता है । वह बेटा अच्छी तरह से मेरे टुकड़े २ करता है ॥ ३३ ॥ वह वेदान्त पढ़ाता है और मेरे विग्रह को नहीं मानता है । मैंने उसके शरीर में कोढ़ पैदा कर दिया तो भी वह नहीं समझता है ॥ ३४ ॥ "मेरे जिस देह में अनन्त ब्रह्माण्डों का वास है, उसे वह बेटा किस साहस से मिथ्या कहता है ? ॥ ३५ ॥ "मुरारि ! तुम मेरे दास हो ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि जो मेरी देह को नहीं मानता है, वह नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥ ब्रह्मा, शिव आदि जिस विग्रह की सेवा बड़े आनन्द से करते हैं, सब देवता अपना प्राण समझ करके जिस विग्रह को पूजा करते हैं ॥ ३७ ॥ जिस अङ्ग के स्पर्श से पुण्य और पवित्रता प्राप्त होती हैं, उसे किस साहस से वह बेटा मिथ्या कहता है ॥ ३८ ॥ मैं तुम्हारे निकट यह सत्य २ प्रकाश कर रहा हूँ कि मैं सत्य हूँ मेरे दास सत्य हैं, और मेरे दास के दास सत्य हैं ॥ ३९ ॥ मेरी लीला मेरे कर्म सत्य हैं, मेरा धाम सत्य है । जो इनको मिथ्या कहता है वह मेरे टुकड़े २ करता है ॥ ४० ॥ मेरे जिस यश के श्रवण से मूल अविद्या का विनाश होता है, उस विलास को वह पापी अध्यापक मिथ्या कहता है ॥ ४१ ॥ "जिस यश के श्रवण रूपी रस से शिव जी दिगम्बर हैं, जिसको स्वयं महीधर अनन्त देव गाते रहते हैं ॥ ४२ ॥ जिस यश के श्रवण में शुकदेव, नारदादि मतवाले बने हुए हैं, चारों वेद जिस यश के महत्व को बखानने हैं ॥ ४३ ॥ "ऐसा जो मेरा पुण्य यश है उसके प्रति जिसका अनादर भाव है वह, हे गुप्त ! मेरे अवतार को कभी समझ नहीं सकता" ॥ ४४ ॥ भगवान् गौरचन्द्र मुरारि गुप्त को लक्ष्य करके सबको यहीं सिखा रहे हैं कि मेरा

आपनार तत्त्व प्रभु आपने शिखाय। इहा जे ना माने,' से आपने नाश जाय ॥४६॥
क्षणेके हइला बाह्य दृष्टि विश्वम्भर। पुन से हइला प्रभु अकिञ्चन वर ॥४७॥
'भाइ!' वलि मुरारिरे कैला आलिङ्गन। बड़ स्नेह करि बोले सदय-वचन ॥४८॥
"सत्य तुमि मुरारि! आमार शुद्ध-दास। तुमि से जानिला नित्यानन्देर प्रकाश ॥४९॥
नित्यानन्दे जाहार तिलेक द्वेष रहे। दास हइलेओ सेइ मोर प्रिय नहे ॥५०॥
घरे जाह गुप्त! तुमि आमारे किनिला। नित्यानन्द तत्त्व गुप्त! तुमि से जानिला" ॥५१॥
हेन मते मुरारी प्रभुर कृपा पात्र। ए कृपार पात्र सबे हनुमान् मात्र ॥५२॥
आनन्दे मुरारि गुप्त घरेरे चलिला। नित्यानन्द-सङ्गे प्रभु हृदये रहिला ॥५३॥
अन्तरे विह्वल गुप्त गेला निज वासे। एक बोले, आर करे, खल खली हासे' ॥५४॥
परम-उल्लासे बोले करिव भोजन। पतिव्रता अन्न आनि कैल निवेदन ॥५५॥
विह्वल मुरारि गुप्त चैतन्येर रसे। "खाओ खाओ' वलि अन्न फेले ग्रास ग्रासे ॥५६॥
घृत माखि अन्न सब पृथिवीते फेले। "खाओ खाओ खाओ कृष्ण!" एइ बोल बोले ॥५७॥
हासे' पतिव्रता देखि गुप्तेर व्यभार। पुनः पुन अन्न आनि देइ बारे बार ॥५८॥
'महा भागवत गुप्त' पतिव्रता जाने। 'कृष्ण' वलि गुप्तेरे कराय सावधाने ॥५९॥
मुरारी दिले से प्रभु करये भोजन। कभु ना लङ्घये प्रभु गुप्तेर वचन ॥६०॥
जत अन्न देइ गुप्त, ताहा प्रभु खाय। विहाने आसिया प्रभु गुप्तेरे जानाय ॥६१॥

विग्रह, मेरे सेवक, मेरी लीला और मेरे धाम सब सत्य हैं ॥ ४५ ॥ प्रभु अपना तत्त्व आप ही सिखाते हैं, इसे जो नहीं मानता है, वह आप ही नष्ट हो जाता है ॥ ४६ ॥ कुछ समय पश्चात् श्री विश्वम्भर को वाह्य ज्ञान हुआ तो वे प्रभु फिर दीन अकिंचन वन गये ॥ ४७ ॥ उन्होंने मुरारि को 'भाई' कह कर आलिंगन किया और बड़े स्नेह के साथ दया से भरे हुए वचन कहा ॥ ४८ ॥ "हे मुरारि! तुम सचमुच में मेरे शुद्ध दास हो। तुमने ही श्री नित्यानन्द के प्रकाश (अवतार) को जाना है ॥ ४९ ॥ श्री नित्यानन्द जी से जिसका तिल भर भी द्वेष रहता है, वह दास होने पर भी मेरा प्रिय नहीं है ॥५०॥ "हे गुप्त! तुम अब घर जाओ, तुमने मुझे मोल ले लिया है। (कारण कि) हे गुप्त! तुमने ही नित्यानन्द तत्त्व को जाना है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार मुरारि प्रभु के कृपा पात्र हैं। इस कृपा के मात्र केवल एक हनुमान जो ही हैं ॥ ५२ ॥ आनन्द में मग्न मुरारि गुप्त अपने घर को चले। उसके हृदय में श्री नित्यानन्द के सहित प्रभु विश्वम्भर स्थित हैं ॥५३॥ विह्वल हृदय से गुप्त अपने घर गये वे कहते कुछ हैं और करते कुछ और ही हैं और खिलखिला कर हँस पड़ते हैं ॥ ५४ ॥ (घर जाकर) वे बड़े उल्लास के साथ बोले—"मैं भोजन करूँगा"। पतिव्रता पत्नी ने भोजन लाकर निवेदन किया ॥ ५५ ॥ मुरारि गुप्त तो श्री चैतन्य के रस में विह्वल हैं। वे एक २ ग्रास अन्न (भात) का लेते हैं और 'खाओ २' कह कर फेंक देते हैं ॥ ५६ ॥ वे घी मिला हुआ भात सब जमीन पर फेंक रहे हैं, और "खाओ कृष्ण! खाओ २"—यही बार २ कह रहे हैं ॥ ५७ ॥ पतिव्रता अपने पति गुप्त के व्यवहार को देखकर हँसती है और फिर २ भात ला ला कर बार २ देती जाती है ॥५८॥ पतिव्रता जानती हैं कि (मेरे पति) गुप्त बड़े भारी भक्त हैं। अतएव वह 'कृष्ण २' कह करके गुप्त को सावधान कराती हैं ॥ ५९ ॥ मुरारि का दिया हुआ प्रभु भोजन करते हैं। प्रभु गुप्त के वचनों की कभी अवहेलना नहीं करते ॥ ६० ॥ (अतएव) गुप्त ने जितना भी अन्न दिया वह सब प्रभु ने भोजन कर डाला और प्रातः आकर गुप्त को जनाया ॥ ६१ ॥ गुप्त जी श्री कृष्ण प्रेम के आनन्द में मग्न बैठे हैं—उसी समय पर प्रभु आ गये। प्रभु

वसिया आछेन गुप्त कृष्ण प्रेमानन्दे। हेन काले प्रभु आइला, देखि गुप्त वन्दे ॥६२॥
परम-आनन्दे गुप्त दिलेन आसन। वसिलेन जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन ॥६३॥
गुप्त बोले "प्रभु! केने विजया गमन"। प्रभु बोले "विष्टम्भेर चिकित्सा-कारण" ॥६४॥
"कौन् कोन् द्रव्य कालि करिला भोजन" पर। गुप्त बोले "कह देखि अजीर्ण-कारण? पूर्व ॥६५॥
प्रभु बोले "आरे बेटा! जानिवि के मने। 'खाओ खाओ' वलि अन्न फेलिलि जखने।।६६॥
तुञि पासरिलि जबे तोर पत्नी जाने। तुञि दिलि मुञि वा ना खाइमु केमने ॥६७॥
कि लागि चिकित्सा कर' अन्य वा पाचन। विष्टम्भ मोहोर तोर अन्नेर कारण। ६८॥
जल पाने अजीर्ण करिते नारे वल। तोर अन्ने अजीर्ण, औषध तोर जल" ॥६९।
एत वलि धरि मुरारिर जल पात्र। जल प्रिये प्रभु भक्ति रसे पूर्ण मात्र ॥७०॥
कृपा देखि मुरारि हइला अचेतन। महा प्रेमे गुप्त गोष्ठी करये क्रन्दन ॥७१॥
हेन प्रभु, हेन भक्ति योग, हेन दास। चैतन्य प्रसादे हैल भक्तिर प्रकाश ॥७२॥
मुरारि गुप्तेर दासे जे प्रसाद पाइल। सेइ नदियार भट्टाचार्य ना देखिल ॥७३॥
विद्या-धन प्रतिष्ठाय किछु नाहि करे। वैष्णवेर प्रसादे से भक्ति-फल धरे ॥७४॥
जे-से-केने नहे वैष्णवेर दासी दास। सर्वोत्तम से-इ-एइ वेदेर प्रकाश ॥७५॥
एइ मत मुरारीरे प्रति दिने दिने। कृपा करे महाप्रभु आपने आपने ॥७६॥
शुन शुन मुरारिर अद्भुत आख्यान। शुनिले मुरारि कथा पाइ भक्ति दान ॥७७॥
एक दिन महाप्रभु श्रीवास मन्दिरे। हुङ्कार करिया प्रभु निज-मूर्ति धरे ॥७८॥
शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म शोभे चारि कर। 'गरुड़! गरुड़!' वलि डाके विश्वम्भर ॥७९॥

को देखकर गुप्त ने बन्दना की ॥ ६२ ॥ परम आनन्द में गुप्त ने प्रभु को आसन दिया। श्री जगन्नाथ मिश्र के पुत्र विराज गये ॥६३॥ तब गुप्त जी बोले—"कैसे विजय आगमन हुआ है? प्रभु बोले—"अजीर्ण की चिकित्सा के लिए" ॥ ६४ ॥ गुप्त बोले "अजीर्ण का कारण तो कहिये। आप ने कल क्या २ पदार्थ भोजन किया था? ॥ ६५ ॥ प्रभु बोले—"अरे बेटा! तू भला जानेगा कैसे कि "खाओ २" कह २ कर तूने कितना अन्न फेंका था? ॥ ६६ ॥ तू तो भूल गया है पर तेरी पत्नी सब जानती है। तूने जब दिया तो मैं कैसे न खाता?" ॥ ६७ ॥ गुप्त बोला "तो फिर किसलिये चिकित्सा करते हैं, दूसरा पाचन क्या चाहिये?" ॥ ६८ ॥ प्रभु बोले "जल पीने से अजीर्ण जोर नहीं करता है। तेरे अन्न से अजीर्ण हुआ है, और औषधि भी तेरा ही जल है" ॥ ६९ ॥ इतना कहकर मुरारि का जल-पात्र उठा लिया और भक्ति रस से पूर्ण प्रभु उसका जल पीने लगे ॥ ७० ॥ इस कृपा को देखकर मुरारि वेहोश हो गया। और गुप्त के परिवार महा प्रेम वश रोने लगे ॥७१॥ ऐसे हैं प्रभु, ऐसा है उनका भक्तियोग और ऐसे हैं उनके दास इस प्रकार भक्ति का प्रकाश श्री चैतन्य की कृपा से हुआ ॥ ७२ ॥ मुरारि गुप्त के दासों ने जो कृपा पाई उसे नदिया के भट्टाचार्य पंडितों ने देखा तक नहीं ॥ ७३ । विद्या, धन, मान, प्रतिष्ठा इनसे कुछ नहीं होता है। भक्ति फल तो वैष्णवों की कृपा से ही फलता हैं ॥ ७४ ॥ वैष्णवों के दासी दास जो भी कोई क्यों न हों, वे सर्वोतम ही हैं यह वेद में प्रकट है ॥ ७५ ॥ इस प्रकार मुरारि के ऊपर महाप्रभु नित्य प्रति कृपा करते हैं ॥ ७६ ॥ भाइयो! मुरारि की अद्भुत कथाओं को सुनो। उसे सुनने से भक्ति दान मिलता है ॥ ७७ ॥ एक दिन महा प्रभु ने श्रीवास के मन्दिर में हुँकार करते हुए अपनी मूर्त्ति प्रकट की ॥ ७८ ॥ उनकी चार भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभित हैं। वे प्रभु विश्वम्भर 'गरुड' 'गरुड' कह कर पुकारते हैं।। ७९ ॥ उसी समय मुरारि गुप्त

हेनइ समये गुप्त आविष्ट हइया । श्रीवास मन्दिरे आइला हुङ्कार करिया ॥८०॥
गुप्त-देहे हैल महा-वैनतेय-भाव । गुप्त बोले "मुञि सेइ गरुड़ महा भाग" ॥८१॥
'गरुड़ ! गरुड !' वलि डाके विश्वम्भर । गुप्त बोले "मुञि एइ तोहोर किङ्कर" ॥८२॥
प्रभु बोले "बेटा ! तुञि मोहोर वाहन" । "हय हय हय" गुप्त बोलये वचन ॥८३॥
गुप्त बोले "पासरिला तोमारे लइया । स्वर्ग हैते पारिजात आनिलुँ वहिया । ८४॥
पासरिला तोमा' लैया गेलुँ वाण पुरे । खण्ड खण्ड कैलुँ मुञि स्कन्देर मयूरे ॥८५॥
एइ मोर स्कन्धे प्रभु ! आरोहण कर' । आज्ञा कर' निव कोन् ब्रह्माण्ड-भितर" ॥८६॥
गुप्त-स्कन्धे चढ़े मिश्र चन्द्रेर नन्दन । जय जय ध्वनि हैल श्रीवास भवन । ८७॥
स्कन्धे कमलार नाथ, वैद्येर नन्दन । रड़ दिया पाक फिरे सकल अङ्गन ॥८८॥
जय हुला हुलि देइ पतिव्रता गण । महा प्रेमे भक्त सब करये क्रन्दन ॥८९॥
केहो बोले 'जय जय' केहो बोले हरि' । केहो बोले जेन एइ रूप ना पासरि" ॥९०॥
केहो माल साट् मारे परम-उल्लासे । "भालरे ठाकुर मोर" वलि केहो हासे' । ९१॥
"जय जय मुरारि-वाहन विश्वम्भर" । वाहु तुलि केहो डाके करि उच्च स्वर ॥९२॥
मुरारिर कान्धे दोले गौराङ्ग सुन्दर । उल्लासे भ्रमये गुप्त वाड़ीर भितर । ९३॥
सेइ नवद्वीपे हय ए सब प्रकाश । दुष्कृति ना देखें गौरचन्द्रेर विलास ॥९४॥
धन-कुल-प्रतिष्ठाय कृष्ण नाहि पाइ । केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञि ॥९५॥
जन्मे जन्मे जे-सब करिल आराधन । सुखे देखे एवे तार दास-दासी गण ॥९६॥

आवेश में भरे हुँकार करते हुए श्रीवास के भवन आ गये ॥ ८० ॥ उनकी देह में श्रेष्ठ गरुड जी का भाव आ गया और वे बोले "मैं ही वह महाभाग गरुड हूँ" ॥ ८१ ॥ प्रभु विश्वम्भर 'गरुड २' कह कर पुकारते हैं और मुरारि गुप्त कहते हैं–"यह रहा मैं आपका किंकर ॥ ८२ । प्रभु कहते हैं–"अरे बेटा ! तू ही तो मेरा वाहन है ।" गुप्त कहते हैं–"हाँ ३" ॥ ८३ ॥ गुप्त फिर कहते हैं–"भूल गये क्या ? मैं आप को लेकर स्वर्ग से पारिजात वृक्ष अपनी पीठ पर उठा ले आया था ॥८४ । "और भूल गये प्रभो ? मैं आप को लेकर वाणासुर के नगर को गया था । मैंने ही स्कन्ध (कार्त्तिकेय) के मोर के टुकड़े २ किये थे ॥ ८५ ॥ आओ प्रभो ! मेरे इस कन्धे पर चढ़ जाओ । और आज्ञा करो मैं कौन से ब्रह्माण्ड के भीतर ले चलूँ ॥ ८६ ॥ मिश्र नन्दन श्री विश्वम्भर मुरारि गुप्त के कन्धे पर चढ़ बैठे । श्रीवास भवन में जय जय ध्वनि होने लगी ॥ ८७ ॥ कन्धे पर कमलापति को लिये हुए वैद्य नन्दन मुरारि गोल घूमते हुए सारे आँगन में चक्कर देने लगे ॥ ८८ ॥ पतिव्रता स्त्रियाँ जय ध्वनि और हूलु ध्वनि दे रही हैं और भक्त जन सब महा प्रेम में रो रहे हैं ॥८९॥ कोई 'जय २' कहते हैं, कोई 'हरि २' पुकारते हैं । कोई कहते हैं कि "हे प्रभो ! ऐसा करो कि हम इस रूप को कभी न भूलें ॥९०॥ कोई परम उल्लास में ताल ठोंकते और भुजा फटकारते हैं । कोई "वाहरे मेरे ठाकुर ! कह २ कर हँसते हैं ॥ ९१ ॥ कोई भुजा उठाकर ऊँचे स्वर से कहते हैं–'श्री विश्वम्भर के वाहन मुरारि की जय हो, जय हो' ॥ ९२ ॥ श्री विश्वम्भर मुरारि के कन्धे पर झूम रहे हैं और गुप्त बड़े उल्लास के साथ घर भीतर चक्कर लगा रहे हैं ॥ ९३ ॥ नवद्वीप वही है जहाँ ये सब लीलाएँ हो रही हैं, परन्तु दुष्ट जन श्री गौरचन्द्र के विलास को नहीं देख पा रहे हैं ॥ ९४ ॥ (तात्पर्य) धन, कुल, मान, प्रतिष्ठा आदि से श्रीकृष्ण नहीं मिलते हैं । श्री चैतन्य गुसांई तो केवल एक भक्ति के वश में हैं ॥ ९५ ॥ जिन्होंने जन्म २ प्रभु की आराधना की है । अब उनके दास दासी भी सुख से सब कुछ देख रहे हैं ॥ ९६ ॥ जिन्होंने देखा वे यदि कृपा

जेवा देखिलेक, से वा कृपा करि कहे। तथापिह दुष्कृतिर चिते नाहि लये ॥९७॥
मध्य खण्डे गुप्त-कान्धे प्रभुर उत्थान। सर्व-अवतारे गुप्त सेवक प्रधान ॥९८॥
ए सब लीलार कभु अवधि ना हय। 'आविर्भाव' तिरोभाव' एइ वेदे कय ॥९९॥
वाह्य पाइ नाम्विला गौराङ्ग महा धीर। गुप्तेर गरुड़-भाव हइल सुस्थिर ॥१००॥
ए वड़ निगूढ़ कथा केहो केहो जाने। गुप्त-कान्धे महाप्रभु कैला आरोहणे ॥१०१॥
मुरारिरे कृपा देखि वैष्णव मण्डल। 'धन्य धन्य धन्य' वलि प्रशंसे सकल ॥१०२॥
धन्य भक्त मुरारी, सफल विष्णु भक्ति। विश्वम्भर लीलाय वहये जार शक्ति ॥१०३॥
एइ मत मुरारि गुप्तेर पुण्य कथा। अवेकत आछये जे कैला जथा जथा ॥१०४॥
एक दिन मुरारि परम-शुद्ध-मति। निज मने मने गणे' अवतार स्थिति ॥१०५॥
"साङ्गो पाङ्गे आछये यावत अवतार। तावत चिन्ति जे आमि निज प्रतिकार ॥१०६॥
ना वुझि कृष्णेर लीला कखन कि करे। तखने सृजये लीला, तखने संहारे ॥१०७॥
जे सीता लागिया मारे सवंशे रावण। आनिञा छाड़िला सीता के मन कारण ॥१०८॥
जे यादव गण निज-प्राणेर समान। साक्षाते देखये–तारा हाराय पराण ॥१०९॥
अतएव यावत आछये अवतार। तावत आमार देह त्याग प्रतिकार ॥११०॥
देह एड़िवार मोर एइ से समय। पृथिवीते यावत आछये महाशय" ॥१११॥
एनेक निर्वेद गुप्त चिन्ति मने मने। खरसान काति एक आनिल यतने ॥११२॥

करके कहते भी हैं तो भी दुष्टों का चित्त ग्रहण नहीं करता है ॥ ९७ ॥ मध्य खण्ड में गुप्त के कन्धे पर प्रभु के चढ़ने की कथा है। यह गुप्त सब अवतारों में प्रभु का प्रधान सेवक है ॥९८॥ इन सब लीलाओं की कभी समाप्ति नहीं होती है। इनका केवल 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' होता है यही वेद (शास्त्र) कहते हैं ॥९९॥ वाह्य सुध आने पर महाधीर श्री गौरांगचन्द्र कन्धे पर से उतरे और गुप्त का गरुड भाव भी शान्त हो गया ॥ १०० ॥ गुप्त के कन्धे पर प्रभु के चढ़ने की कथा बड़ी निगूढ है–इसे कोई २ ही जानते हैं ॥१०१॥ मुरारि पर प्रभु की कृपा देखकर सब वैष्णव मण्डल धन्य ३ कह २ कर प्रशंसा करते हैं ॥ १०२ ॥ "धन्य है भक्त मुरारि को! इन की विष्णुभक्ति सफल है। यह इनकी ही शक्ति है कि विश्वम्भर को सहज में ही कन्धे पर चढा लेते हैं ॥ १०३ ॥ मुरारि गुप्त के ऐसे २ पुण्य चरित जो जहाँ तहाँ प्रभु ने उनके साथ किये हैं अप्रकट हैं ॥ १०४ ॥ (यथा) एक दिन परम शुद्ध मतिमान् मुरारि अपने मन ही मन में अवतार की स्थिति पर विचार करते हैं ॥ १०५ ॥ (यथा) "जब तक प्रभु का अवतार अपने परिकर रूप अङ्ग उपाङ्गों के सहित (भूतल पर) विद्यमान् है तब तक मुझे अपने लिये उपाय सोच लेना चाहिए ॥ १०६ ॥ (कारण कि) श्री कृष्ण की लीला कुछ समझ में नहीं आती है न जाने वे किस समय क्या कर डालें। वे क्षण में तो लीला की रचना करते हैं और क्षण में उसे समाप्त कर देते हैं ॥ १०७ ॥ (यथा) जिस सीता जी के लिए वंश समेत रावण को मार डाला, उनको घर लाकर फिर न जाने किस कारण से छोड़ दिया ॥ १०८ ॥ "जो यादव-गण उनके प्राणों के समान थे, वे आपस में लड़ कट करके प्राणों को खोते हैं और प्रभु साक्षात् चुपचाप देखते रहते हैं ॥ १०९ ॥ अतएव जब तक प्रभु का अवतार प्रकट है तब तक मुझे अपने देह त्याग का उपाय कर लेना चाहिए ॥ ११० ॥ 'जब तक महाशय गौर प्रभु पृथ्वी पर प्रकट हैं तभी तक मेरे शरीर त्याग करने का भी समय है ॥ १११ । इस प्रकार वैराग्य प्राप्त मुरारि ने मन ही मन में सोचा और वे एक तेज धार की कटारी यत्नपूर्वक ले आये ॥ ११२ ॥ उसे लाकर घर भीतर रख दी। 'आज रात को देह छोड़

आनिञा थुइल काति घरेर भितरे। "निशाय एड़िव देह हरिष-अन्तरे" ॥११३॥
सर्व भूत-हृदय-ठाकुर विश्वम्भर। मुरारिर चित्त वृत्ति हइल गोचर ॥११४॥
सत्वरे आइला प्रभु मुरारि भवन। सम्भ्रमे करिला गुप्त चरण वन्दन ॥११५॥
आसने वसिया प्रभु कृष्ण कथा कहे। मुरारि गुप्तेरे हइ बड़इ सदये ॥११६॥
प्रभु बोले "गुप्त ! वाक्य राखिवा आमार"। गुप्त बोले 'प्रभु ! मोर शरीर तोमार" ॥११७॥
प्रभु बोले "ए-त सत्य ?" गुप्त बोले "हय"। "काति-खानि देह' मोरे" प्रभु काणे कय। ११८॥
"जे काति थुइला देह छाड़िवार तरे। ताहा आनि देह'—आछे घरेर भितरे" ॥११९॥
'हाय हाय' करि गुप्त महा दुःख माने। "मिथ्या कथा कहिल तोमारे कोन् जने" ॥१२०॥
प्रभु बोले "मुरारि ! वड़त देखि भोल। परे कहिले कि आमि जानि हेन वोल ॥१२१॥
जे गढ़िया दिल काति, ताहा जानि आमि। ताहा जानि-जथा काति थुइयाछ तुमि" ॥१२२॥
सर्व भूत-अन्तर्यामी—जाने सर्व-स्थान। घरे गिया काटारि आनिला विद्यमान ॥१२३॥
प्रभु बोले "गुप्त ! एइ तोमार व्यभार। कोन् दोषे आमा' छाड़ि चाह जाइ वार ॥१२४॥
तुमि गेले काहारे लइया मोर खेला। हेन बुद्धि तुमि कार् स्थाने वा शिखिला ॥१२५॥
एखने मुरारि मोरे देह' एइ भिक्षा। आर कभु हेन बुद्धि ना करिवा शिक्षा" ॥१२६॥
कोले करि मुरारिरे प्रभु विश्वम्भर। हस्त तुलि दिला निज शिरेर उपर ॥१२७॥
"मोर माथा खाओ गुप्त ! मोर माथा खाओ। यदि आर बार देह छाड़िवारे चाओ" ॥१२८॥
आथे व्यथे मुरारि पड़िला भूमि तले। पाखालिल प्रभुर चरण प्रेम जले ॥१२९॥
सुकृति मुरारि कान्दे धरिया चरण। गुप्त कोले करि कान्दे श्रीशचीनन्दन ॥१३०॥

दूँगा इस विचार से वे हृदय में प्रसन्न हैं ॥ ११३ ॥ सब प्राणियों के हृदय रूप प्रभु विश्वम्भर मुरारि की चित्त वृत्ति को जान गये ॥ ११४ ॥ प्रभु शीघ्रता करके मुरारि के घर आये। मुरारि ने सम्भ्रम पूर्वक प्रभु की चरण बन्दना की ॥ ११५ ॥ प्रभु आसन पर बैठ कर मुरारि के ऊपर बड़े ही दया युक्त होकर श्रीकृष्ण कथा कहते हैं ॥ ११६ ॥ प्रभु बोले—"गुप्त ! मेरी बात रक्खोगे ?" गुप्त बोले—"प्रभु ! मेरा शरीर आपका ही है ॥ ११७ ॥ प्रभु बोले "यह बात सत्य है ?", गुप्त बोले 'हाँ' ! तब प्रभु कान में बोले 'कटारी मुझे दो' ॥ ११८ ॥ "जो कटारी देह छोड़ने के लिये रक्खी है, उसे लाकर दो वह घर भीतर रक्खी है' ॥ ११९ ॥ गुप्त ने 'हाय २' कहके बड़ा दुःख प्रकट किया और कहा 'आप से किसी ने मिथ्या बात कही है' ॥ १२० ॥ प्रभु बोले 'मुरारि ! तुम तो बड़े भोले मालूम होते हो। अरे ! किसी दूसरे ने मुझे नहीं कहा—मैं सब जानता हूँ ॥ १२१ ॥ 'जिसने कटार बना कर दी है, उसे मैं जानता हूँ, और तुमने उसे जहाँ रक्खी है वह जगह भी जानता हूँ' ॥ १२२ ॥ सर्वभूत अन्तर्यामी प्रभु सब स्थान जानते हैं, वे घर भीतर गये और कटारी सामने ले आये ॥ १२३ ॥ प्रभु बोले 'गुप्त ! यह व्यवहार तुम्हारा ! भला किस दोष के कारण मुझे छोड़ कर जाना चाहते हो ? ॥१२४॥ तुम्हारे चले जाने पर मैं किसके साथ लीला करूँगा ? तुमने ऐसी बुद्धि किससे सीखी ॥ १२५ ॥ 'अब मुरारि ! तुम मुझे यह भीख दो कि ऐसी बुद्धि फिर कभी नहीं सिखोगे' ॥१२६॥ (ऐसा कह कर) प्रभु विश्वम्भर ने मुरारि को गोद में लेकर उसका हाथ उठा अपने सिर पर रक्खा ॥ १२७ ॥ (और कहने लगे) 'मेरे सिर की कसम है तुम्हें गुप्त ! मेरे सिर की कसम है, जो तुम फिर कभी देह छोड़ने की इच्छा करो' ॥ १२८ । हड़बड़ा कर मुरारि पृथ्वी पर गिर पड़ा और प्रभु के श्री चरणों को प्रेम-जल से धोने लगा ॥ १२९ ॥ सुकृतिशाली मुरारि श्री चरणों को पकड़ कर रो रहे हैं, और श्री शचीनन्दन गुप्त

जे प्रसाद मुरारि गुप्तेरे प्रभु करे। ताहा वाञ्छे रमा-अज-अनन्त-शङ्करे ।।१३१।।
ए सब देवता-चैतन्येर भिन्न नहे। इहारा अभिन्न-कृष्ण-वेदे एइ कहे ।।१३२।।
सेइ गौरचन्द्र शेष-रूपे मही धरे। चतुर्मुख रूपे सेइ प्रभु सृष्टि करे ।।१३३।।
संहारे' श्री गौरचन्द्र त्रिलोचन-रूपे। आपनारे स्तुति करे आपनार मुखे ।।१३४।।
भिन्न नाहि भेद नाहि ए सकल देवे। जे सकल देवे चैतन्येर पद सेवे । १३५।।
पक्षि-मात्र यदि बोले चैतन्येर नाम। सेहो सत्य जाइ वेक चैतन्येर धाम ।।१३६।।
संन्यासी ओ यदि नाहि माने' गौरचन्द्र। जानिह से दुष्ट गण जन्म जन्म अन्ध ।।१३७।।
"यद्यपिह ए सब प्रभुर गुप्त दास। तथापि गुप्तेर भाग्ये सभाकार आश ।।१३८।।
प्रभु हइ चाहे जे दासेर उप भोग। ताहाते नाहिक लाभ एइ भक्ति योग" ।।१३९।।
येन तपस्वीर वेशे थाके वाटो यार। एइ मत निन्दक-संन्यासी दुराचार ।।१४०।।
निन्दक-तपस्वी वाटो यारे नाहि भेद। दुइते निन्दक-बड़–एइ कहे वेद ।१४१।।
(तथाहि नारदीये)–"प्रकटं पतितः श्रेयान् य एकोयात्यधः स्वयम् ।
वकवृत्तिः स्वयं पापः पातयत्यपरानपि ।।१।।
हरन्ति दस्यवोऽकुटच्यां विमोह्यास्त्रं र्नृणां धनम् । पावित्रै रति तीक्ष्णाग्रै र्वाणैरेवं वकव्रताः" ।।२।
भालरे आइसे लोक तपस्वी देखिते। साधु निन्दा शुनि मरि जाय भाल मते ।।१४२।।
साधु निन्दा शुनिले सुकृति हय क्षय। जन्म जन्म अधः पात–चारि वेदे कय ।।१४३।।
वाटोयारे सवे मात्र एक जन्मे मारे। जन्मे जन्मे क्षणे क्षणे निन्दके संहरे' ।।१४४।।

को गोद में लेकर रो रहे हैं ।। १३० ।। जो कृपा प्रभु मुरारि गुप्त के ऊपर करते हैं उसकी लालसा लक्ष्मी, ब्रह्मा, शेष, और शङ्कर भी करते हैं ।। १३१ ।। ये सब देवता श्री चैतन्य से भिन्न नहीं हैं। वेद यही कहते हैं कि ये श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं ।। १३२ ।। वे ही श्री गौरचन्द्र शेष रूप से पृथ्वी को धारण करते हैं, वे ही प्रभु ब्रह्मा रूप से सृष्टि करते हैं ।। १३३ ।। श्री गौरचन्द्र ही त्रिलोचन शिव रूप से संहार करते हैं। वे ही अपने मुख से अपनी स्तुति करते हैं ।। १३४ ।। जो सब देवता श्री गौरचन्द्र की सेवा करते हैं वे गौरचन्द्र से भिन्न नहीं हैं, और उनमें भेद नहीं है ।। १३५ ।। यदि एक पक्षी भी श्री चैतन्य का नाम मात्र लेवे तो यह सत्य है कि वह श्री चैतन्य के धाम को जायगा ।। १३६ ।। (और) यदि संन्यासी भी श्री गौरचन्द्र को नहीं मानते हैं तो उन दुष्टों को जन्म २ के अन्धे जानो ।। १३७ ।। अधिक पाठः–यद्यपि ये सब प्रभु के दास हैं तथापि गप्त के भाग्य की अभिलाषा सब कोई करते हैं ।। १३८ ।। प्रभुता में लाभ नहीं है, अतएव वे प्रभु होकर के भी दास का आस्वादन चाहते हैं–यही भक्तियोग है ।। १३९ ।। जैसे तपस्वी के वेश में बटमार रहते हैं, वैसे ही निन्दक संन्यासी भी दुराचारी हैं ।। १४० ।। निन्दक तपस्वी और बटमार में भेद नहीं है तो भी दोनों में निन्दक ही बड़ा है यही वेद कहता है ।। १४१ ।। जैसा श्री नारद पुराण में कहा है कि–'जो प्रकट में पतित है वह अच्छा क्योंकि वह आप अकेला ही गिरता है परन्तु ढोंगी बगला तपस्वी तो पाप मूर्त्ति है, वह औरों को भी गिराता है ।। १ ।। जैसे डाकू लोग वन में अस्त्रों से मूर्च्छित करके लोगों के धन को लूट लेते हैं, ऐसे ही बगला भगत भी अपने दिखाबटी पवित्र चरित्र के नुकीले वाणों से लोगों को मूर्च्छित करके उनका सर्वस्व हरण कर लेते हैं ।। २ ।। लोग तो विचारे तपस्वी के दर्शन को आते हैं परन्तु साधु जनों की निन्दा सुन कर समाप्त हो जाते हैं ।। ४२ ।। साधु की निन्दा सुनने से सुकृति क्षय होती है और जन्म २ के लिए अधःपतन होता है ऐसा चारों वेद कहते हैं ।। १४३ ।। बटमार तो केवल एक जन्म में ही मारता है परन्तु

अतएव निन्दक-तपस्वी—वाटोयार । वाटोयार हैतेओ अत्यन्त दुराचार ॥१४५॥
आब्रह्म-स्तम्बादि सब कृष्णेर वैभव । 'निन्दा-मात्र कृष्ण रुष्ट' कहे शास्त्र सब ॥१४६॥
अनिन्दक हइ ये सकृत् 'कृष्ण' बोले । सत्य सत्य कृष्ण तारे उद्धारिब हेले ॥१४७॥
चारि वेद पढ़ियाओ यदि निन्दा करे । जन्मे जन्मे कुम्भी पाके डूबिया से मरे ॥१४८॥
भागवत पढ़ियाओ कारो बुद्धि नाश । नित्यानन्द-निन्दा करे हैब सर्व नाश ॥१४९॥
एइ नवद्वीपे गौरचन्द्रेर प्रकाश । ना माने' निन्दक सब से सत्य विलास ॥१५०॥
चैतन्य चरणे जार आछे रति मति । जन्म जन्म हय जेन ताहार संहति ॥१५१॥
अष्ट सिद्धि-युत—चैतन्येते भक्ति शून्य । कभु जेन ना देखों से पापी हीन पुण्य ॥१५२॥
मुरारि गुप्तेरे प्रभु सान्त्वना करिया । चलिला आपन-घरे हरषित हैया ॥१५३॥
हेन मते मुरारी गुप्तेर अनुभाव । आमि कि बलिब—व्यक्त ताँहार प्रभाव ॥१५४॥
नित्यानन्द प्रभु-मुखे वैष्णवेर तत्त्व । किछु किछु शुनिलाङ सभार महत्त्व ॥१५५॥
जन्म जन्म नित्यानन्द हउ मोर पति । जाहार प्रसादे हैल चैतन्येते रति ॥१५६॥
जय जय जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन । तोर नित्यानन्द हउ मोर प्राण धन ॥१५७॥
मोर प्राणनाथेर जीवन विश्वम्भर । ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर ॥१५८॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥१५९॥

निन्दक तो जन्म २ में क्षण २ में मारता रहता है ॥ १४४ ॥ अतएव निन्दक तपस्वी बटमार हैं बटमार से भी अधिक दुराचारी है ॥ १४५ ॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी श्रीकृष्ण का वैभव है अतएव किसी की केवल मात्र निन्दा से ही श्रीकृष्ण रुष्ट हो जाते हैं ऐसा सब शास्त्र कहते हैं ॥ १४६ ॥ अनिन्दक होकर जो एक बार 'कृष्ण' कहता है, श्रीकृष्ण उसका सहज में ही उद्धार कर देते हैं यह सत्य है, सत्य है ॥ १४७ ॥ चार वेद पढ़ करके भी यदि कोई निन्दा करता है तो जन्म २ में वह कुम्भीपाक नरक में डूब कर मरता है ॥ १४८ ॥ देखो भागवत पढ़ करके भी किसी २ की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है सो वे नित्यानन्द जी की निन्दा करते हैं । उनका सर्वनाश होगा ॥ १४९ ॥ इसी नवद्वीप में श्री गौरचन्द्र का प्रकाश हुआ, परन्तु उन सब सत्य विलास को निन्दक जन नहीं मानते हैं ॥ १५० ॥ श्री चैतन्य चरणों में जिनकी रति-मति हो, उनकी ही सङ्गत मुझे जन्म २ में प्राप्त हो ॥१५१॥ जो अष्ट सिद्धियों से युक्त हैं पर जो श्री चैतन्य की भक्ति से शून्य है, उस पुण्य हीन पापी का मुख मैं कभी न देखूँ ॥ १५२ ॥ प्रभु मुरारि गुप्त को सान्त्वना देकर प्रसन्न मन से अपने घर को चले गए ॥ १५३ ॥ मुरारि गुप्त के ऐसे २ अनुभव हैं मैं क्या कहूँ । उनका प्रभाव प्रगट ही है ॥ १५४ ॥ श्री नित्यानन्द प्रभु के मुख से वैष्णवों का तत्त्व और उन सबों का महत्त्व मैंने कुछ २ सुना है ॥ १५५ ॥ जिनकी कृपा से श्री चैतन्यचन्द्र में मेरी प्रीति हुई, वे श्री नित्यानन्द जी जन्म २ में मेरे नाथ हों ॥ १५६ ॥ हे जगन्नाथ मिश्र के नन्दन ! तुम्हारी जय हो, जय हो । तुम्हारे नित्यानन्द मेरे प्राण धन हों ॥ १५७ ॥ मेरे प्राणनाथ के जीवन श्री विश्वम्भर देव हैं, यही एक बड़ा भरोसा मेरे चित्त में निरन्तर रहता है ॥ १५८ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जानकर यह वृन्दावन दास उनके गुणों का गान उनके श्री चरणों में निवेदन करता है ॥ १५९ ॥

इति मुरारि गुप्त प्रभाव वर्णन नामक बीसवाँ अध्यायः ।

अथ इक्कीसवाँ अध्याय

जय जय नित्यानन्द प्राण विश्वम्भर। जय गदाधर पति अद्वैत-ईश्वर ॥१॥
जय श्रीनिवास-हरिदास-प्रियङ्कर। जय गङ्गादास-वासुदेवेर ईश्वर ॥२॥
भक्त गोष्ठी-सहित गौराङ्ग जय जय। शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। विहरे संहति नित्यानन्द गदाधर ॥४॥
एक दिन प्रभु करे नगर भ्रमण। चारि दिगे जत आप्त-भागवत गण ॥५॥
सार्व भौम पिता-विशारद महेश्वर। ताँहार जाङ्गाले गेला प्रभु विश्वम्भर ॥६॥
सेइ खाने देवानन्द पण्डितेर वास। परम सुशान्त विप्र मोक्ष-अभिलाष ॥७॥
ज्ञान वन्त तपस्वी आजन्म-उदासीन। भागवत पढ़ाय-तथापि भक्ति हीन ॥८॥
'भागवते महा-अध्यापक' लोके घोषे'। मर्म-अर्थना जानेन भक्ति हीन दोषे ॥९॥
जानिवार योग्यता आछये पुनि तान। कौन अपराधे नहे, कृष्ण से प्रमाण ॥१०॥
दैवे प्रभु भक्त सङ्गे सेइ पथे जाय। जे खाने ते तान व्याख्या शुनिवारे पाय ॥११॥
सर्व भूत हृदय-जानये सर्व तत्त्व। ना शुनये व्याख्या भक्ति योगेर महत्त्व ॥१२॥
कोपे बोले प्रभु "वेटा कि अर्थ वाखाने'। भागवत-अर्थ कोन-जन्मेओ ना जाने ॥१३॥
ए-वेटार भागवते कौन् अधिकार। ग्रन्थ रूपे भागवत कृष्ण-अवतार ॥१४॥
सवे पुरुषार्थ 'भक्ति' भागवते हय। 'प्रेम रूप भागवत' चारि-वेद मय ॥१५॥

हे श्री नित्यानन्द प्राण श्री विश्वम्भर देव ! आपकी जय हो, जय हो। हे गदाधर पति ! हे श्री अद्वैत के ईश्वर ! आपकी जय हो ॥ १ ॥ हे श्री निवास और हरिदास के प्रियकारी ! आपकी जय हो। हे हे श्री गङ्गादास और वासुदेव के ईश्वर ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ भक्त मण्डली सहित हे श्री गौरांगदेव ! आपकी जय हो जय हो। श्री चैतन्यचन्द्र की कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार नबद्वीप में विश्वम्भर प्रभु श्री नित्यानन्द और गदाधर के सहित विहार कर रहे हैं ॥ ४ ॥ एक दिन प्रभु नगर में भ्रमण कर रहे हैं। चारों ओर सब आत्मीय भक्तजन हैं ॥ ५ ॥ भ्रमण करते २ प्रभु विश्वम्भर सार्वभौम के पिता श्री विशारद महेश्वर के मोहल्ले में पहुँच गये ॥ ६ ॥ वहीं देवानन्द पण्डित का घर था। वे बड़े ही शान्त मोक्षाभिलाषी विप्र थे ॥ ७ ॥ वे ज्ञानवान् थे, तपस्वी थे, जन्म से उदासीन थे, वे भागवत् पढ़ाते थे तथापि स्वयं भक्ति हीन थे ॥८॥ लोग उनको भागवत् का महान् अध्यापक कहते थे, परन्तु भक्ति-हीनता दोष के कारण वे भागवत के मर्म को नहीं जानते थे ॥ ९ ॥ जानने की योग्यता तो उनमें थी परन्तु किस अपराध से वे जान नहीं पाते थे यह श्रीकृष्ण ही जानें ॥ १० ॥ दैवयोग से प्रभु भक्तों के साथ उसी मार्ग से जा निकले कि जहाँ से उनको व्याख्या सुनने में आती थी ॥ ११ ॥ सब प्राणियों के हृदय निवासी प्रभु सब तत्त्व जानते हैं। वे देवानन्द पण्डित की व्याख्या में भक्तियोग का महत्त्व नहीं सुन पाते हैं ॥ १२ ॥ तब प्रभु कोप करके बोले "यह बेटा क्या अर्थ बखान रहा है ! इसने भागवत् का अर्थ किसी जन्म में भी न जाना ॥ १३ ॥ इस बेटे का भागवत् में भला क्या अधिकार है ? श्री मद् भागवत् तो ग्रन्थ के रूप में श्रीकृष्ण का अवतार है ॥ १४ ॥ भागवत् में केवल भक्ति ही एक मात्र पुरुषार्थ है। भागवत् प्रेम रूप है, चतुर्वेदमय

चारि वेद 'दधि'–भागवत 'नवनीत'। मथिलेन शुके–खाइलेन परीक्षित ॥१६॥
मोर प्रिय शुक से जानेन भागवत। भागवते वहे मोर तत्त्व अभिमत ॥१७॥
मुञि, मोर दास, आर ग्रन्थ-भागवते। जार भेद आछे, तार नाश भाल मते'' ॥१८॥
भागवत-तत्त्व प्रभु कहे क्रोधा वेशे। शुनिञा वैष्णव गण महानन्दे भासे ॥१९॥
''भक्ति विने भागवते जे आर बाखाने''। प्रभु बोले 'से अधम किछुइ ना जाने ॥२०॥
निरवधि भक्ति हीन ए-वेटा वाखाने'। आजि पूँथि चिरों एइ देख विद्यमाने'' ॥२१॥
पूँथि चिरिवारे प्रभु क्रोधावेशे जाय। सकल वैष्णव गण धरिया रहाय ॥२२॥
'महाचिन्त्य भागवत सर्व शास्त्र राय। इहा ना वुझिये विद्या-तप-प्रतिष्ठाय ॥२३॥
'भागवत बुझि' हेन जार आछे ज्ञान। से ना जाने कभु भागवतेर प्रमाण ॥२४॥
भागवते अचिन्त्य-ईश्वर-बुद्धि जार। से जानये भागवत-अर्थ भक्ति सार ॥२५॥
सर्व गुणे देवानन्द पण्डित-समान। पाइते विरल बड़ हेन ज्ञान वान् ॥२६॥
से-सब लोकेर जाते भागवते भ्रम। ताते जे अन्येर गर्व, तार शास्ता यम। २७॥
भागवत पढ़ाइया कारो बुद्धि नाश। निन्दे' अवधूत चान्द जगत् निवास ॥२८॥
एइ मत प्रति दिन प्रभु विश्वम्भर। भ्रमये नगर सब सङ्गे अनुचर ॥२९॥
एक दिन ठाकुर पण्डित सङ्गे करि। नगर भ्रमण करे विश्वम्भर हरि ॥३०॥
नगरेर अन्ते आछे मद्यपेर घर। जाइते पाइला गन्ध प्रभु विश्वम्भर ॥३१॥
मद्य गन्धे वारुणीर हइल स्मरण। वलराम-भाव हैला शचीरनन्दन ॥३२॥

है ॥ १५ ॥ चारों वेद 'दधि' है, और भागवत् उसका 'नवनीत' है। इसे शुकदेव ने मथ करके निकाला और परीक्षित ने खाया। १६ ॥ मेरा प्यारा शुकदेव ही भागवत् को जानता है और मेरे हार्द तत्त्व को ही भागवत बखानता है ॥ १७ ॥ मुझ में, मेरे दास में, और भागवत् ग्रन्थ में जो भेद करता है, उसका सब प्रकार से नाश हो जाता हैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रभु क्रोध में भरे हुए भागवत् तत्त्व बखान रहे हैं, जिसे सुन २ कर वैष्णव गण महानन्द में बह रहे हैं ॥ १९ ॥ प्रभु फिर बोले "भागवत् में भक्ति के अतिरिक्त जो और कुछ बखानता है वह अधम कुछ भी नहीं जानता है ॥ २० ॥ "यह बेटा तो निरन्तर भक्ति हीन व्याख्या करता जा रहा है। आज मैं इसकी पोथी फाड़ डालूँगा तुम लोग प्रत्यक्ष देख लो" ॥ २१ ॥ क्रोधावेश में प्रभु गौरचन्द्र पोथी फाड़ने के लिये चले तो सब वैष्णवों ने पकड़ करके रोक लिया ॥ २२ ॥ प्रभु फिर बोले–"भागवत् परम अचिन्त्य है, सब शास्त्रों का राजा है। इसको विद्या एवं तप की प्रतिष्ठा से नहीं समझा जा सकता ॥ २३ ॥ जो यह समझता है कि "मैं भागवत जानता हूँ"–वह भागवत के प्रमाण को नहीं जानता है ॥ २४ ॥ "भागवत् में जिसको अचिन्त्य ईश्वर बुद्धि है, वह भागवत् का अर्थ जो भक्ति सार है, उसे जानता है" ॥ २५ ॥ सब गुणों में देवानन्द पण्डित के समान ज्ञानवान कोई विरला ही मिलेगा ॥ २६ ॥ ऐसे (देवानन्द जैसे) भी लोगों का जब भागवत् के विषय में भ्रम है तो फिर औरों का जो भागवत जानने का गर्व है (वह दण्डनीय है) उनके दण्ड दाता यमराज हैं ॥ २७ ॥ भागवत् पढ़-पढ़ा करके भी किसी २ की बुद्धि नष्ट हो गई है जो वे जगन्निवास श्रीअवधूत चन्द्र की निन्दा करते हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार प्रति दिन प्रभु विश्वम्भर सब अनुचरों के सहित नगर में भ्रमण किया करते हैं ॥ २९ ॥ एक दिन विश्वम्भर हरि श्रीवास पण्डित को साथ लेकर नगर-भ्रमण कर रहे हैं ॥ ३० ॥ नगर की सीमा पर शराबियों के घर थे–उधर निकलते ही प्रभु विश्वम्भर को गन्ध आई ॥ ३१ ॥ मदिरा के गन्ध से वारुणी

बाह्य पासरिया प्रभु करये हुङ्कार। "उठों गिया" श्रावासेरे बोले बार-बार ॥३३॥
प्रभु बोले "श्रीनिवास ! एइ उठों गिया"। माना करे श्रीनिवास चरणे धरिया ॥३४॥
प्रभु बोले "मोरेओ कि विधि प्रतिषेध"। तथापिह श्रीनिवास करये निषेध ॥३५॥
श्रीनिवास बोले "तुमि जगतेर पिता। तुमि क्षय करिते वा के आर रक्षिता ॥३६॥
ना बुझि तोमार लीला निन्दिव ये जन। जन्मे जन्मे दुःखे तार हइव मरण ॥३७॥
नित्य धर्ममय तुमि प्रभु सनातन। ए लीला तोमार बुझिवेक कोन जन ॥३८॥
यदि तुमि उठ प्रभु ! मद्यपेर घरे। प्रविष्ट हइमुँ मुञि गङ्गार भितरे" ॥३९॥
भक्तेर सङ्कल्प प्रभु ना करे लङ्घन। हासे प्रभु श्रीवासेर शुनिञा वचन ॥४०॥
प्रभु बोले "तोमार नाहिक जाते इच्छा। ना उठिव तोर वाक्य ना करिव मिछा" ॥४१॥
श्रीवास वचने सम्वरिया राम-भाव। धीरे धीरे राज पथे चले महा भाग ॥४२॥
मद्य पाने-मत्त-सब ठाकुरे देखिया। 'हरि हरि' बोले सब डाकिया डाकिया ॥४३॥
केहो बोले "भाल भाल निमाञि पण्डित। भाल भाव लागे भाल लागे नाट गीत" ॥४४॥
'हरि' वलि हाथे तालि दिया केहो नाचे। उल्लासे मद्यप गण जाय तान पाछे ॥४५॥
महा-हरि-ध्वनि करे मद्यपेर गणे। एइ मत हय विष्णु-वैष्णव-दर्शने ॥४६॥
मद्यपेर चेष्टा देखि विश्वम्भर हासे'। आनन्दे श्रीवास कान्दे देखि परकाशे ॥४७॥
मद्यपेश्रो सुख पाय चैतन्य देखिया। एकले निन्दपे पापी संन्यासी हइया ॥४८॥

(पुष्प-मद) का स्मरण हो आया तथा श्रीशचीनन्दन में बलराम भाव का आवेश हो आया ॥ ३२ ॥ प्रभु बाहर की सुध बुध भूल कर हुँकार करने लगे और बार २ श्रीवास से कहने लगे—"मैं तो भीतर जाता हूँ" ॥ ३३ ॥ प्रभु बोले—"श्रीवास ! मैं तो यह चला भीतर !" श्रीनिवास चरण पकड़ कर निवारण करने लगे ॥ ३४ ॥ प्रभु बोले—"क्या मेरे लिए भी विधि-निषेध ?" तथापि श्रीनिवास निषेध ही करते रहे ॥ ३५ ॥ श्रीनिवास बोले—"हे प्रभो ! तुम जगत् के पिता हो। तुम यदि मारो तो बचा कौन सकता है ॥ ३६ ॥ तुम्हारी लीला न समझ कर जो लोग निन्दा करेंगे, वे जन्म २ में दुःख भोग कर मरेंगे ॥ ३७ ॥ तुम प्रभु हो, सनातन हो, नित्य धर्ममय हो। तुम्हारी इस लीला (मदिरा पानेच्छा) को कौन समझेगा ? ॥३८॥ यदि तुम प्रभो ! शराबियों के घर में घुसोगे, तो मैं भी जाकर गङ्गा में घुसूँगा" ॥ ३९ ॥ भक्त के संकल्प का प्रभु कभो उल्लंघन नहीं करते। (अतएव) प्रभु श्रीवास के वचन को सुनकर हँसने लगे ॥ ४० ॥ प्रभु बोले—"तुम्हारी जिसमें इच्छा नहीं है, वह मैं नहीं करूँगा, नहीं जाऊँगा। तुम्हारा वचन मिथ्या नहीं करूँगा" ॥ ४१ ॥ श्रीवास जी के वचनों से श्रीबलराम जी के भाव को दबा करके महा भाग गौर धीरे धीरे राजपथ पर चलने लगे ॥ ४२ ॥ महाप्रभु को देखकर मदिरा पीकर मतवाले बने हुए लोग सब पुकार २ कर "हरि २" कहने लगे ॥ ४३ ॥ कोई कहता है—"निमाइ पण्डित ? तुम बड़े अच्छे हो ! तुम्हारा भाव हमें अच्छा लगता है। तुम्हारा नाचना-गाना भी अच्छा लगता है" ॥ ४४ ॥ कोई "हरि बोल" कह कर हाथ से ताली बजाते हुए नाचने लगा और शराबी लोग मस्त होकर उसके पीछे पीछे चलने लगे ॥ ४५ ॥ वे मतवाले सब बड़े जोर से 'हरि'-ध्वनि करने लगे श्री विष्णु और वैष्णवों के दर्शन से ऐसा ही होता है ॥ ४६ ॥ शराबियों की चेष्टाओं को देखकर विश्वम्भर प्रभु हँसते हैं और श्रीवास प्रभु का प्रकाश देखकर आनन्द में रोते हैं ॥ ४७ ॥ (अहा !) शराबी भी श्रीचैतन्य चन्द्र को देखकर सुख पाते हैं, केवल एक पापी ही संन्यासी होकर के भी निन्दा करते हैं ॥ ४८ ॥ श्रीचैतन्य चन्द्र के यश से जिसको दुःख होता

चैतन्य चन्द्रेर यशे जार आछे दुःख । कोनो जन्मे आश्रमे नाहिक तार सुख ।।४६।।
जे देखिल चैतन्य चन्द्रेर अवतार । हउक मद्यप, तभु तारे नमस्कार ।।५०।।
मद्यपेरे शुभ दृष्टि करि विश्वम्भर । निजा वेशे भ्रमे प्रभु नगरे नगर ।।५१।।
कथो दूरे देखिया पण्डित-देवानन्द । महा क्रोधे किछु तारे बोले गौरचन्द्र ।।५२।।
"देवानन्द पण्डितेर श्रीवासेर स्थाने । पूर्व-अपराध आछे' ताहा हैल मने ।।५३।।
जे-समये नाहि किछु प्रभुर प्रकाश । प्रेम शून्य जगत्, दुःखित सब दास ।।५४।।
यदि वा पढ़ाय केहो गीता भागवत । तथापि ना शुने केहो भक्ति अभिपत ।।५५।।
से-समये देवानन्द परम-महान्त । लोके बड़ अपेक्षित परम-सुशान्त ।।५६।।
भागवत-अध्यापना करे निरन्तर । आकुमार संन्यासीर प्राय व्रत धर ।।५७।।
दैवे एक दिन तथा गेला श्रीनिवास । भागवत शुनिते करिया अभिलाष ।।५८।।
अक्षरे अक्षरे भागवत प्रेम मय । शुनिञा द्रविल श्रीनिवासेर हृदय ।।५६।।
भागवत शुनिञा कान्दये श्रीनिवास । महा भागवत विप्र छाड़े घन श्वास ।।६०।।
पापिष्ठ पढ़ुया बोले "हइल जञ्जाल । पढ़िते ना पाइ भाइ ! व्यर्थ जाय काल" ।।६१।।
सम्वरण नहे श्रीनिवासेर क्रन्दन । चैतन्येर प्रिय देह जगत पावन ।।६२।।
पापिष्ठ पढ़ या सब जुगति करिया । वाहिरे एड़िल निञा श्रीवासे टानिञा ।।६३।।
देवानन्द पण्डितो ना कैल निवारण । गुरु यथा भक्ति शून्य, तथा शिष्य गण ।।६४।।
वाह्य पाइ दुःखे श्रीनिवास गेला घर । ताहा सब जाने अन्तर्यामि-विश्वम्भर ।।६५।।

है उसे किसी जन्म और किसी आश्रम में सुख नहीं मिलेगा ।। ४६ ।। जिसने श्रीचैतन्य चन्द्र के अवतार के दर्शन किये, वह चाहे शराबी ही हो, तो भी उसे नमस्कार है ।। ५० ।। शराबियों के ऊपर शुभ दृष्टि करके प्रभु विश्वम्भर अपने आवेश में मग्न नगर भर में भ्रमण करते फिरते हैं ।। ५१ ।। कुछ दूर पर पण्डित देवानन्द को देखकर गौरचन्द्र बड़े क्रोध में आकर उनसे कुछ कहने लगे ।। ५२ ।। देवानन्द पण्डित का श्रीवास के निकट पूर्व समय का जो एक अपराध था, वह प्रभु को स्मरण हो आया ।। ५३ ।। जिस समय प्रभु ने अपने ऐश्वर्य का प्रकाश नहीं किया था, यह जगत् प्रेम शून्य था, सब दास दुखी थे ।। ५४ ।। जिस समय यदि कोई गीता-भागवत पढ़ाता भी था तो भी किसी के मुख से यह सुनने में नहीं आता था कि इनका अभिप्राय भक्ति में ही है ।। ५५ ।। उस समय देवानन्द ही बड़े महन्त थे, बड़े शान्त थे–लोगों में इनकी बड़ी पूछ थी ।। ५६ ।। ये निरन्तर भागवत् पढ़ाया करते, और कुमार अवस्था से ही संन्यासी के समान व्रतधारी थे ।। ५७ ।। दैव योग से एक दिन भागवत सुनने की अभिलाषा से श्रीवास उनके यहाँ गये ।। ५८ ।। भागवत् के अक्षर २ प्रेममय हैं–उसे सुनकर श्रीनिवास का हृदय द्रवीभूत हो गया ।। ५६ ।। महा भागवत विप्र श्रीनिवास भागवत सुनकर रोने और लम्बी २ साँस लेने लगे ।। ६० ।। (यह देखकर) पापी विद्यार्थी वृन्द बोले–"बड़ी आफत आई । इसके मारे भाइओ ? हम तो पढ़ नहीं पाते हैं । हमारा समय नष्ट हो रहा है" ।। ६१ ।। श्रीनिवास का रोना बन्द ही नहीं हो रहा था । श्रीनिवास श्रीचैतन्य चन्द्र की प्रिय देह हैं, जगत्-पावन हैं ।। ६२ ।। तब पापी विद्यार्थियों ने परामर्श करके श्रीवास को खींच कर बाहर डाल दिया ।। ६३ ।। देवानन्द पण्डित ने भी उनको निवारण नहीं किया । जैसे गुरु भक्ति शून्य है वैसे ही शिष्य-गण भी हैं ।। ६४ ।। वाह्य ज्ञान होने पर श्रीनिवास दुखित होकर घर चले गये । अन्तर्यामी प्रभु विश्वम्भर यह सब जानते हैं ।। ६५ ।। (अतएव) देवानन्द को देखते ही यह सब स्मरण हो आया और प्रभु शचीनन्दन

देवानन्द-दरशने हइल स्मरण। क्रोध मुखे बोले प्रभु शचीरनन्दन ॥६६॥
"अये अये देवानन्द! वलिये तोमारे। तुमि एवे भागवत पढ़ाओ सभारे ॥६७॥
जे श्रीवास देखिते गङ्गार मनोरथ। हेन-जन गेला शुनिवारे भागवत ॥६८॥
कौन् अपराधे तारे शिष्य हाथाइया। वाड़ीर वाहिरे तारे एड़िले टानिया ॥६९॥
भागवत शुनिते जे कान्दे कृष्ण रसे। टानिञा फेलिते से ताहार योग्य आइसे ॥७०॥
वुझिलाङ तुमि जे पढ़ाओ भागवत। कोनो-जन्मे ना जान' ग्रन्थेर अभिमत ॥७१॥
परिपूर्ण करिया जे-सब जने खाय। तवे वहिर्देश गिया से सन्तोष पाय ॥७२॥
प्रेम मय भागवत पढ़ाइया तुमि। तत सुख ना पाइला कहिलाङ आमि" ॥७३॥
शुनिञा वचन देवानन्द विप्रवर। लज्जाय रहिल, किछु ना करे उत्तर ॥७४॥
क्रोधावेशे वलिया चलिला विश्वम्भर। दुःखिते चलिला देवानन्द निज-घर ॥७५॥
तथापिह देवानन्द बड़ पुण्यवन्त। वचनेओ प्रभु जारे करिलेन दण्ड ॥७६॥
चैतन्येर दण्ड महा सुकृति से पाय। जार दण्डे मरिले वैकुण्ठ पुरी जाय ॥७७॥
चैतन्येर दण्ड जे मस्तके करि लय। सेइ दण्ड तार तरे भक्ति योग हय ॥७८॥
चैतन्येर दण्डे जार चित्ते नाहि भय। जन्म जन्म से पापिष्ठ यम दण्डच हय ॥७९॥
भागवत, तुलसी, गङ्गाय, भक्त जने। चतुर्द्धा-विग्रह कृष्ण एइ-चारि-सने ॥८०॥
जीवन्यास करिले से मूर्ति पूज्य हय। जन्म मात्र ए चारि ईश्वर' वेदे कय ॥८१॥
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि जानि। जें-ते-मते चैतन्येर यश से वाखानि ॥८२॥

क्रोधित होकर बोले ॥ ६६ ॥ "अरे ओ देवानन्द! तुम अब सबको भागवत पढ़ाने लगे हो, इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ—सुनो ॥ ६७ ॥ "जिन श्रीवास के दर्शन के लिये गंगा जी भी मनोरथ करती हैं—ऐसा जन तुम्हारे यहाँ भागवत सुनने को गया था ॥ ६८ ॥ किस अपराध के कारण तुमने उनको अपने शिष्यों के हाथों खिंचवा कर घर के बाहर डाल दिया था? ॥ ६९ ॥ "भागवत सुनने पर जो श्रीकृष्ण के भक्ति रस में रोवे, क्या वह खींचकर बाहर फेंके जाने योग्य है ॥ ७० ॥ मैं समझ गया कि तुम जो भागवत पढ़ाते हो उसका अभीष्ट मत किसी जन्म में भी नहीं जानते हो ॥ ७१ ॥ जब लोग खूब पेट भर करके ठूँस लेते हैं, तो बाहर जाकर निवृत्त होने पर ही उनको सुख-आराम मिलता है ॥ ७२ ॥ (परन्तु) प्रेममय भागवत को पढ़ाकर-मैं तुमसे कहता हूँ कि तुमको उतना सुख भी तो नहीं मिला!! (अधिक प्रेम-सुख तो दूर रहे) ॥ ७३ ॥ यह (व्यंग) वचन सुनकर विप्रवर देवानन्द तो पानी २ हो गया और कुछ उत्तर न दे सका ॥ ७४ ॥ क्रोधावेश में ऐसा कहकर श्रीविश्वम्भर देव तो चले गये और देवानन्द भी दुःखी होकर अपने घर गया ॥ ७५ ॥ तथापि देवानन्द बड़ा पुण्यवान् ही है कि जिसको प्रभु ने अपने वचनों से दण्ड दिया ॥ ७६ ॥ जिनके दण्ड से मृत्यु प्राप्त होने पर जीव वैकुण्ठ पुरी को जाता है उन श्रीचैतन्य चन्द्र के दण्ड को वे ही पाते हैं जो बड़े सुकृतिशाली होते हैं ॥ ७७ ॥ श्रीचैतन्य के दण्ड को जो अपने मस्तक पर चढ़ा लेता है, तो वही दण्ड उसके लिये भक्ति योग हो जाता है ॥ ७८ ॥ श्रीचैतन्य के दण्ड का जिसके चित्त में भय नहीं है, वह पापी जन्म जन्म तक यम के दण्ड का भागी बनता है ॥ ७९ ॥ श्रीभागवत, तुलसी, गंगा और भक्त जन—इन चार स्थानों में श्रीकृष्ण के ही चार प्रकार के विग्रह हैं ॥ ८० ॥ मूर्त्ति तो प्राण-प्रतिष्ठा से पूज्य होती है परन्तु ये चार तो जन्म से ही ईश्वर हैं—ऐसा वेद कहता है ॥ ८१ ॥ मैं श्रीचैतन्य-कथा का आदि-अन्त कुछ नहीं जानता हूँ मैं तो जैसे-तैसे श्रीचैतन्य देव के यश का बखान करता हूँ ॥ ८२ ॥ श्रीचैतन्य चन्द्र के

चैतन्य दासेर पा'ये मोर नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥८३॥
मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले घुचे अन्तर पाखण्ड ॥८४॥
चैतन्येर प्रिय-देह नित्यानन्द राय। प्रभु-भृत्य-सङ्गे जेन ना छाड़े आमाय ॥८५॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥८६॥

अथ बाइसवाँ अध्याय

जय जय गौरचन्द्र कृपार सागर। जय शची-जगन्नाथ-नन्दन सुन्दर ॥१॥
जय जय विश्वम्भर द्विज कुल मणि। शचीर नन्दन प्रभु करुणार खनि ॥२॥
जय जय शची सुत श्रीकृष्ण चैतन्य। कृष्ण नाम दिया प्रभु जगत् कैला धन्य ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। विहरे संहति नित्यानन्द गदाधर ॥४॥
वाक्य दण्ड देवानन्द पण्डितेरे करि। आइला आपन-घरे गौराङ्ग श्रीहरि ॥५॥
देवानन्द पण्डित चलिला निज-वासे। दुःख पाइलेन विप्र दुष्ट-सङ्ग-दोषे ॥६॥
देवानन्द-हेन साधु चैतन्येर ठाँइ। सम्मुख हैते योग्य नहिल तथाइ ॥७॥
वैष्णवेर कृपाय से पाइ विश्वम्भर। भक्ति विने जप तप अकिञ्चित्कर ॥८॥
वैष्णवेर ठाञि जार हय अपराध। कृष्ण प्रेम हइलेओ तार प्रेम-वाध ॥९॥
आमि नाहि वलि—एइ वेदेर वचन। साक्षातेओ कहियाछे शचीरनन्दन ॥१०॥
जे शचीर गर्भे गौरचन्द्र-अवतार। वैष्णवापराध पूर्व आछिल ताँहार ॥११॥

भक्तों के चरणों में मेरा नमस्कार है—वे इसमें मेरा कुछ अपराध न मानें ॥ ८३ ॥ मध्य खण्ड की कथा मानो तो अमृत का खण्ड है, जिस कथा के श्रवण से अन्तस् का पाखण्ड दूर होता है ॥ ८४ ॥ श्रीनित्यानन्द राय श्रीचैतन्य चन्द्र की प्रिय देह हैं। (मेरी यही प्रार्थना है कि) प्रभु और सेवक के संग से मैं कभी अलग न होऊँ ॥ ८५ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्रीनित्यानन्द चाँद को अपना सर्वस्व जानकर वृन्दावन दास उनके ही युगल चरणों में उनका ही कुछ गुण-गान निवेदन करता है ॥ ८६ ॥

इति—देवानन्द-वाक्य-दण्ड-नामक इक्कीसवाँ अध्याय ॥

हे कृपा-सागर गौरचन्द्र ! आपकी जय हो, जय हो ! हे शची-जगन्नाथ-नन्दन गौर सुन्दर ! आप की जय हो ॥ १ ॥ हे द्विज कुल मणि विश्वम्भर ! आपकी जय हो, जय हो। हे करुणा-खान शचीनन्दन प्रभो ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ हे श्रीशची सुत श्रीकृष्ण चैतन्य ! आपकी जय हो, जय हो। आप ने कृष्ण नाम प्रदान करके जगत् को धन्य कर दिया ॥ ३ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में प्रभु विश्वम्भर श्रीनित्यानन्द और श्री गदाधर के साथ विहार करते हैं ॥ ४ ॥ गौरांग श्रीहरि देवानन्द पण्डित को वाक्य-दण्ड देकर अपने घर आये ॥ ५ ॥ देवानन्द पण्डित भी अपने घर को गये, दुष्ट-संग दोष के कारण इस ब्राह्मण को (प्रभु के वचनों से) बड़ा दुःख हुआ ॥ ६ ॥ देवानन्द जैसा साधु व्यक्ति भी श्रीचैतन्य देव के स्थान में (जाकर) उनके सम्मुख होने योग्य न हुआ ॥ ७ ॥ (कारण कि) वैष्णवों की कृपा से ही विश्वम्भर प्राप्त होते हैं। भक्ति के बिना केवल जप तप कुछ भी नहीं कर सकते ॥ ८ ॥ वैष्णवों के निकट जिसका अपराध होता है, उसमें श्रीकृष्ण-प्रेम होने पर भी उस प्रेम में बाधा पड़ जाती है ॥ ९ ॥ यह मैं नहीं कहता—यही वेद का वचन है। और श्रीशची नन्दन ने भी साक्षात् अपने मुख से यही कहा है ॥ १० ॥ जिन श्रीशची के गर्भ में

आपने से अपराध प्रभु घुचाइया। मा'येरे दिलेन प्रेम सभा' शिखाइया ॥१२॥
ए बड़ अद्भुत कथा सुन सावधाने। वैष्णवापराध घूचे इहार श्रवणे ॥१३॥
एक दिन महाप्रभु गौराङ्ग सुन्दर। आसिया वसिला विष्णु खट्टार उपर ॥१४॥
निज मूर्त्ति शिला-सब करि निज-कोले। आपना प्रकाशे गौरचन्द्र कुतूहले ॥१५॥
"मुञि कलियुगे कृष्ण, मुञि नारायण। मुञि राम रूपे कैलुँ सागर बन्धन ॥१६॥
सुतिया आछिलुँ क्षीर सागर-भितरे। मोर निद्रा भाङ्गिलेक नाढ़ार हुङ्कारे ॥१७॥
प्रेम भक्ति विलाइते मोहोर प्रकाश। माग' माग' आरे नाढ़ा! माग' श्रीनिवास" ॥१८॥
देखि महा परकाश नित्यानन्द राय। ततक्षणे तुलि छत्र धरिला माथाय ॥१९॥
वाम दिगे गदाधर ताम्बूल जोगाय। चार दिगे भक्त गण चामर ढुलाय ॥२०॥
भक्ति योग विलाय गौराङ्ग महेश्वर। जाहार जाहाते प्रीत लय सेइ बर ॥२१॥
केहो बोले "मोर बाप बड़ दुष्ट मति। तार चित्त भाल हैले मोर अव्याहति" ॥२२॥
केहो मागे' गुरु प्रति, केहो शिष्य प्रति। केहो पुत्र, केहो पत्नी-जार जथा मति ॥२३॥
भक्त-वाक्य-सत्यकारी प्रभु विश्वम्भर। हासिया सभारे दिला प्रेम भक्ति-वर ॥२४॥
महाशय श्रीनिवास बोलेन "गोसाञि। आइरे देयाव भक्ति सभे एइ ठाञि" ॥२५॥
प्रभु बोले "इहा ना वलिवा श्रीनिवास। ताँरे नाहि दिमुँ प्रेम भक्तिर विलास ॥२६॥
वैष्णवेर ठाञि तान आछे अपराध। अतएव तान हैल प्रेम भक्ति वाध" ॥२७॥
महा वक्ता श्रीनिवास बोले आर बार। "ए कथाय प्रभु! देह त्याग सभाकार ॥२८॥

से श्रीगौरचन्द्र का अवतार है, उनका भी पहले वैष्णव-अपराध रहा ॥ ११ ॥ प्रभु ने स्वयं उस अपराध को दूर करवा कर माता को प्रेम प्रदान किया और सबको शिक्षा दी ॥ १२ ॥ यह बड़ी अद्भुत कथा है सावधान होकर सुनो। इसके श्रवण से वैष्णवापराध मिट जाता है ॥ १३ ॥ एक दिन महाप्रभु गौरांग सुन्दर आकर विष्णु-सिंहासन पर बैठ गये ॥ १४ ॥ अपनी मूर्त्ति शालि ग्राम शिलाओं को अपनी गोद में लेकर श्रीगौरचन्द्र परम कौतूहल पूर्वक अपने स्वरूप को प्रकाशित करने लगे ॥ १५ ॥ (यथा:-) "मैं ही कलियुग में कृष्ण हूँ, मैं ही नारायण हूँ। मैंने ही राम रूप से सागर के ऊपर सेतु बन्धन किया था ॥१६॥ मैं क्षीर सागर में सो रहा था परन्तु नाढा के हुँकार से मेरी नींद टूट गई ॥ १७ ॥ प्रेम भक्ति वितरण करने के लिए ही मेरा प्रकाश है। अरे नाढा! माँग, माँग! श्रीनिवास! माँग ले ॥ १८ ॥ प्रभु का महा प्रकाश देखकर श्रीनित्यानन्द राय ने तुरन्त छत्र उठाकर उनके मस्तक के ऊपर धारण किया ॥ १९ ॥ बांई ओर से श्रीगदाधर ताम्बूल अर्पण करते हैं और भक्त वृन्द चारों ओर से चँवर ढुलाते हैं ॥ २० ॥ महेश्वर श्रीगौरांग भक्ति योग लुटाने लगे जिसकी जिसमें प्रीति है, वह वही वर माँग लेता है ॥ २१ ॥ कोई कहता है-"मेरे बाप की बड़ी दुष्ट मति है। उनकी मति सुधर जाय तो मेरी रक्षा हो जाय" ॥२२॥ (इस प्रकार) कोई गुरु के लिये, कोई शिष्य के लिये, कोई पुत्र के लिये, कोई पत्नी के लिये-जिसकी जैसी मति, वैसा वर माँगते हैं ॥ २३ ॥ प्रभु विश्वम्भर भक्तों के वचनों को सत्य करने वाले हैं-अतएव उन्होंने हँस २ कर सबको प्रेम भक्ति का वरदान दिया ॥ २४ ॥ महाशय श्रीनिवास कहते हैं "हे प्रभो! शची माता को भी आज इस स्थान पर प्रेम भक्ति देनी चाहिये" ॥ २५ ॥ प्रभु बोले-"श्रीनिवास! ऐसा मत कहो। मैं प्रेम भक्ति का विलास उनको नहीं दूँगा ॥ २६ ॥ "वैष्णव के निकट उनका अपराध है। अतएव उनके लिये प्रेम भक्ति का निषेध है अर्थात् वह नहीं मिल सकती" ॥ २७ ॥ श्रीनिवास जी बड़े

तुमि-हेन पुत्र जाँर गर्भे अवतार। ताँर कि नहिव प्रेम योगे अधिकार ॥२६॥
सभार जीवन आइ–जगतेर माता। माया छाड़ि प्रभु! ताने हओ भक्ति दाता ॥३०॥
तुमि जाँर पुत्र प्रभु! से सर्व जननी। पुत्र स्थाने मा'येर कि अपराध गणि ॥३१॥
यदि वा वैष्णव स्थाने थाके अपराध। तथापिह खण्डाइया करह प्रसाद" ॥३२॥
प्रभु बोले "उपदेश कहिते से पारि। वैष्णवापराध आमि खण्डाइते नारि ॥३३॥
जे-वैष्णव-स्थाने अपराध हय जार। पुन सेइ क्षमिले से घुचे, नारे आर ॥३४॥
दुर्वासार अपराध अम्बरीष-स्थाने। तुमि देख जान' क्षय हइल जे मने ॥३५॥
नाढ़ार स्थानेते आछे तान अपराध। नाढ़ा क्षमिले से हय प्रेमेर प्रसाद ॥३६॥
अद्वैत-चरण-धूलि लइले माथाय। हइवेक प्रेम भक्ति आमार आज्ञाय" ॥३७॥
तखने चलिला सभे अद्वैतेर स्थाने। अद्वैतेरे कहिलेन सब विवरणे ॥३८॥
शुनिञा अद्वैत करे श्रीविष्णु-स्मरण। "तोमरा लइते चाह आमार जीवन ॥३६॥
जाँर गर्भ मोहोर प्रभुर अवतार। से मोर जननी, मुञि पुत्र से ताँहार ॥४०॥
जे आइर चरण धुलिर आमि पात्र। से आइर प्रभाव ना जाने' तिल-मात्र ॥४१॥
विष्णु भक्ति स्वरूपिणी आइ जगन्माता। तोमरा वा मुखे केने आन' हेन कथा ॥४२॥
प्राकृत शब्देओ जे वा वलिवेक 'आइ'। 'आइ'-शब्द प्रभावे ताहार दुःख नाइ ॥४३॥
जेन गङ्गा तेन आइ, किछु भेद नाइ। देवकी यशोदा जेइ वस्तु-से-इ आइ" ॥४४॥

भारी वक्ता हैं। वे फिर बोले–"हे प्रभो! आपकी इस बात से तो हमारा देह-त्याग होगा ॥ २८ ॥ "भला जिनके गर्भ से आप जैसे पुत्र का अवतार हो, उनका प्रेम भक्ति में क्या अधिकार नहीं? ॥ २६ ॥ श्रीशची माता सबकी जीवन हैं, जगत् की माता हैं। हे प्रभो! आप कपट त्याग कर उनके लिये भी भक्ति दाता बनें ॥ ३० ॥ "आप जिनके पुत्र हैं, वे तो सबकी जननी हैं। पुत्र के निकट माता का क्या कोई अपराध गिना जाता है ॥ ३१ ॥ यदि उनका किसी वैष्णव के निकट कोई अपराध हो तो भी आप उसका खण्डन कर उन पर कृपा करें ॥ ३२ ॥ प्रभु बोले–"मैं केवल (उपाय का) उपदेश ही दे सकता हूँ पर वैष्णवापराध का खण्डन मैं भी नहीं कर सकता ॥ ३३ ॥ जिस वैष्णव के निकट जिसका अपराध होता है, वह उसी के क्षमा करने पर दूर होता है, औरों से नहीं होता ॥ ३४ ॥ "देखो, दुर्वासा का अपराध राजा अम्बरीष के निकट था। उसका जैसे क्षय हुआ वह तो तुम जानते ही हो ॥ ३५ ॥ उनका (शची माता का) अपराध नाढा (श्री अद्वैत) के निकट है। उसी नाढा के क्षमा करने पर उन्हें भी प्रेम का प्रसाद प्राप्त हो सकता है ॥ ३६ ॥ श्रीअद्वैत की चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ाने से मेरी आज्ञा से उनको प्रेम भक्ति होगी" ॥३७॥ उसी समय सब लोग श्रीअद्वैत के पास गये और जाकर उनको सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ३८ ॥ सुनते ही श्री अद्वैत "श्री विष्णु २" कहते हुए बोले–"तुम लोग मेरी जान लेना चाहते हो ॥ ३६ ॥ अरे! जिनके गर्भ में से मेरे प्रभु का अवतार है, वे तो मेरी जननी हैं, मैं उनका पुत्र हूँ ॥ ४० ॥ "जिन अम्बा की चरण धूलि की मैं अभिलाषा करता हूँ, उन अम्बा का प्रभाव तो मैं तिल भर भी नहीं जानता ॥ ४१ ॥ जगन्माता शची तो विष्णु भक्ति स्वरूपिणी हैं। फिर तुम लोग मुख में ऐसी बात क्यों लाते हो? ॥ ४२ ॥ प्राकृत भाषा में भी जो "आइ" (अम्मा) कहेंगे, तो उस "आइ" शब्द के प्रभाव से उसका दुःख नहीं रहेगा ॥४३॥ जैसी गंगाजी है, वैसी ही "आइ" है, कोई भेद नहीं है। श्री देवकी और यशोदा जी जो वस्तु हैं वही 'आइ' ॥ ४४ ॥ "आइ" का तत्त्व कहते २ आचार्य गुसांई आविष्ट होकर गिर पड़े और वाह्य ज्ञान शून्य हो गये

कहिते आइर तत्त्व आचार्य गोसाञि। पड़िला आविष्ट हइ, वाह्य किछु नाञि ॥४५॥
वुझिया समय आइ आइला बाहिरे। आचार्य-चरण धूलि लइलेन शिरे ॥४६॥
परम-वैष्णवी आइ-मूर्तिमती भक्ति। विश्वम्भर गर्भे धरिलेन जाँर शक्ति ॥४७॥
आचार्य-चरण धूलि लइला जखने। विह्वले पड़िला, किछु वाह्य नाहि जाने ॥४८॥
'जय जय हरि' बोले वैष्णव मण्डल। अन्योन्ये करये चैतन्य कोलाहल ॥४९॥
अद्वैतेर बाह्य नाहि—आइर प्रभावे। आइर नाहिक वाह्य-अद्वैतानुरागे ॥५०॥
दोंहार प्रभावे दोंहे हइला विह्वल। 'हरि हरि हरि' बोले वैष्णव सकल ॥५१॥
हासे प्रभु विश्वम्भर खट्टार उपरे। प्रसन्न हइया प्रभु बोले जननीरे ॥५२॥
"एखने से विष्णु-भक्ति हइल तोमार। अद्वैतेर स्थाने अपराध नाहि आर" ॥५३॥
श्रीमुखेर अनुग्रह शुनिञा वचन। जय जय-हरि ध्वनि हइल तखन ॥५४॥
जननीर लक्ष्ये शिक्षा गुरु भगवान्। करायेन वैष्णवापराध-सावधान ॥५५॥
शूलपाणि-सम यदि वैष्णवेरे निन्दे। तथापिह नाश जाय-कहे शास्त्र वृन्दे ॥५६॥
तथाहि—"महद्विमाना त्स्वकृताद्धि माहक्।
नक्ष्यान्त्य दूरादपि शूल पाणिः" ॥१॥ अनुवाद पूर्व हो चुका है
इहा ना मानिञा जे सुजन-निन्दा करे। जन्म जन्म से पापिष्ठ दैव-दोषे मरे ॥५७॥
अन्येर कि दाय, गौरसिंहेर जननी। ताहानेओ वैष्णवापराध' करि गणि ॥५८॥
वस्तु-विचारेते सेहो 'अपराध' नहे। तथापिह 'अपराध' करि प्रभु कहे ॥५९॥
"इहाने 'अद्वैत' नाम केने लोके घोषे'। द्वैत वलिलेन आइ कौन असन्तोषे ॥६०॥

॥४५॥ "आइ" ने भी देखा कि यही समय है, और वे बाहर आई और उन्होंने आचार्य की चरण-धूलि शीश पर चढ़ा ली ॥ ४६ ॥ "आइ" परम वैष्णवी हैं, मूर्त्तिमती भक्ति हैं, विश्वम्भर को गर्भ में धारण करने की जिनकी सामर्थ्य है ॥ ४७ ॥ जिस समय उन्होंने आचार्य की चरण धूलि ली, उस समय वे विह्वल हो गईं और भूमि पर गिर कर बेसुध हो गईं ॥ ४८ ॥ तब वैष्णव मण्डली "जय जय" "हरि बोल" "हरि बोल" कहने लगे और परस्पर श्रीचैतन्य सम्बन्धी कोलाहल करने लगे ॥ ४९ ॥ 'आइ' के प्रभाव से श्री अद्वैत को वाह्य ज्ञान नहीं है और श्रीअद्वैत के अनुराग में 'आइ' को वाह्य ज्ञान नहीं है ॥ ५० ॥ दोनों के प्रभाव से दोनों विह्वल हो रहे हैं और सब वैष्णव जन हरि ३ बोल रहे हैं ॥ ५१ ॥ सिंहासन पर विराजमान विश्वम्भर प्रभु हंसते हैं और प्रसन्न होकर जननी से कहते हैं ॥ ५२ ॥ "अब तुम्हें विष्णु भक्ति हुई। श्रीअद्वैत के निकट अब अपराध नहीं रहा" ॥ ५३ ॥ श्री मुख के इस अनुग्रह-वचन को सुनते ही फिर "जय जय" और "हरि २" ध्वनि होने लगी ॥ ५४ ॥ भगवान् शिक्षा गुरु हैं। वे जननी को लक्ष्य करके वैष्णवापराध से सावधान करा रहे हैं ॥ ५५ ॥ शास्त्र समूह भी कहते हैं कि शूलपाणि शिवजी के समान भी यदि वैष्णवों की निन्दा करता है तो वह भी नाश हो जाता है ॥ ५६ ॥ (जैसा कि इस शास्त्र वाक्य में पहले कह आये हैं) इसको न मान कर जो सज्जनों की निन्दा करते हैं, वे पापी जन्म २ में अपने कर्मों के दोष से मरते हैं ॥ ५७ ॥ औरों की तो क्या चले, स्वयं गौरसिंह की जननी का भी वैष्णवापराध माना गया ॥ ५८ ॥ यद्यपि वास्तव में विचार करने पर वह अपराध नहीं है, तथापि प्रभु उसे 'अपराध' करके ही कहते हैं ॥ ५९ ॥ शची माता ने किसी कारण से असंतुष्ट होकर कहा था—"लोग इनको अद्वैत क्यों कहते हैं—इनको तो 'द्वैत' कहना चाहिये ॥ ६० ॥ अब मैं वही कथा कहता हूं। सावधान होकर सुनो।

सेइ कथा कहि शुन हइ सावधान। प्रसङ्गे कहिये विश्वरूपेर आख्यान ॥६१॥
प्रभुर अग्रज-विश्वरूप महाशय। भुवन दुर्लभ रूप महा तेजोमय ॥६२॥
सर्व शास्त्रे महाप्रभु परम-सुधीर। नित्यानन्द स्वरूपेर अभेद शरीर ॥६३॥
तान कथा बुझे हेन नाहि नवद्वीपे। शिशु भावे थाके प्रभु बालक-समीपे ॥६४॥
एक दिन सभाय चलिला मिश्रवर। पाछे विश्वरूप पुत्र परम-सुन्दर ॥६५॥
भट्टाचार्य सभाय चलिला जगन्नाथ। विश्वरूप देखि बड़ कौतुक सभा'त ॥६६॥
एक भट्टाचार्य बोले "कि पढ़ छाओयाल"। विश्वरूप बोले "किछु किछु सभाकार" ॥६७॥
शिशु-ज्ञाने केहो किछु ना वलिल आर। मिश्र पाइलेन दुःख, शुनि अहङ्कार ॥६८॥
निज-कार्य करि मिश्र चलिलेन घर। पथे विश्वरूपेरे मारिला एक चड़ ॥६९॥
"जे पुँथि पढिस् बेटा! ताहा ना वलिया। कि बोल बलिलि तुइ सभा-माझे गिया ॥७०॥
तोमारे त सभार हइल मूर्ख ज्ञान। आमारेओ दिल लाज कहि अप्रमाण ॥७१॥
परम-उदार जगन्नाथ महा भाग। घरे गेला पुत्रेरे करिया बड़ राग ॥७२॥
पुन विश्वरूप सेइ सभा माझे गिया। भट्टाचार्य-सभा'-प्रति बोलेन हासिया ॥७३॥
"तोमरा त आमारे जिज्ञासा ना करिला। बापेर स्थानेते मोर शास्ति कराइला ॥७४॥
जिज्ञासा करिते जाहा लय कारो मने। सभे मिलि ताहा जिज्ञासह आमा' स्थाने" ॥७५॥
हासि बोले एक भट्टाचार्य "शुन शिशु। आजि जे पढ़िले ताहा वाखानह किछु" ॥७६॥
वाखानये सूत्र विश्वरूप भगवान्। सभार चित्तेते व्याख्या हइल प्रमाण ॥७७॥

इस प्रसंग में पहले श्री विश्वरूप का आख्यान कहता हूँ ॥ ६१ ॥ श्री विश्वरूप महाशय प्रभु के बड़े भाई थे। उनका रूप बड़ा तेजोमय और भुवन-दुर्लभ था ॥ ६२ ॥ वे सब शास्त्रों के बड़े विद्वान् थे और श्रीनित्यानन्द स्वरूप से अभिन्न देह थे ॥ ६३ ॥ उनकी शास्त्र-व्याख्या को समझने वाला नवद्वीप में कोई नहीं था—तथापि वे प्रभु बालकों के समीप बालक-भाव से ही रहते थे ॥ ६४ ॥ एक दिन श्रीजगन्नाथ मिश्र वर जब सभा को गये तो परम सुन्दर पुत्र विश्वरूप भी पीछे लग गये ॥ ६५ ॥ श्रीजगन्नाथ जी भट्टाचार्य पण्डितों की सभा में गये, तो विश्वरूप को देख कर सभा को बड़ा कौतुक हुआ ॥६६॥ एक भट्टाचार्य बोला—"बालक! क्या पढ़ते हो?" विश्वरूप ने उत्तर दिया—"थोड़ा २ सब में से मैं जो पढ़ता हूँ उसे मैं जानता हूँ। मैं जो शास्त्र बखानता हूँ, उसे औरों को नहीं कहता हूँ ॥ ६७ ॥ बालक समझ कर किसी ने कुछ नहीं कहा, पर उसके अहंकार युक्त वचन को सुनकर मिश्र जी को दुःख हुआ ॥ ६८ ॥ मिश्र जी अपना कार्य कर घर को चले और मार्ग में उन्होंने विश्वरूप को एक थप्पड़ मारा ॥ ६९ ॥ (और वे बोले) "बेटा! जिस पोथी को पढ़ता है उसे न बता कर तूने सभा में जाकर यह क्या शब्द कहा? ॥ ७० ॥ सभा ने यह जाना कि तुम मूर्ख हो और तुमने एक असत्य बात कह कर मुझे भी लज्जित कर दिया" ॥ ७१ ॥ भाग्य शाली परम उदार श्रीजगन्नाथ तो पुत्र के ऊपर बड़ा क्रोध करके घर चले गये ॥ ७२ ॥ और विश्वरूप फिर से उस सभा में जा पहुँचे और हँस करके भट्टाचार्य पण्डितों से बोले ॥ ७३ ॥ आप लोगों ने मुझसे पूछा-ताछा तो कुछ की नहीं, वैसे ही पिता जी से मुझको दण्ड दिलवाया ॥ ७४ ॥ जिस किसी के मन में जो कुछ पूछना हो वह सब मिलकर मुझसे पूछ लें" ॥ ७५ ॥ एक भट्टाचार्य हँसकर बोला, "सुनो बालक! आज तुमने जो पढ़ा उसकी व्याख्या करो" ॥ ७६ ॥ भगवान् विश्वरूप ने सूत्र की व्याख्या की, और सबों ने उस व्याख्या को प्रमाण-युक्त माना ॥ ७७ ॥ सब बोले—"सूत्र की अच्छी व्याख्या की"। प्रभु बोले—"मैंने तो घोखा

सभेइ बोलेन "सूत्र भाल वाखानिला"। प्रभु बोले 'भाण्डाइलुँ, किछु ना वुझिला" ॥७८॥
जत वाखानिल सब करिला खण्डन। विस्मय सभार चित्ते हइल तखन ॥७९॥
एइ मत तिन बार करिया खण्डन। पुन सेइ तिन बार करिला स्थापन ॥८०॥
'परम सुबुद्धि' करि सभे वाखानिल। विष्णु माया मोहे केहो तत्त्व ना जानिल ॥८१॥
हेन मते नवद्वीपे वैसे विश्वरूप। भक्ति शून्य लोके देखि ना पाय कौतुक ॥८२॥
व्यवहार मदे मत्त सकल संसार। ना करे वैष्णव-यश-मङ्गल-विचार ॥८३॥
पुत्रादिर महोत्सवे करे धन-व्यय। कृष्ण पूजा कृष्ण धर्म केहो ना जानय ॥८४॥
जत अध्यापक सब-तर्क से वाखाने'। कृष्ण भक्ति कृष्ण पूजा—किछुइ ना माने ॥८५॥
यदि वा पढ़ाय केहो भागवत गीता। केहो ना वाखाने' भक्ति, करे सूक्ष्म चिन्ता ॥८६॥
सर्व-स्थाने विश्वरूप ठाकुर वेड़ाय। भक्ति योग ना शुनिञा बड़ दुःख पाय ॥८७॥
सकले अद्वैतसिंह पूर्ण-कृष्ण शक्ति। पढ़ाइया वाशिष्ठ, वाखान' कृष्ण भक्ति ॥८८॥
अद्वैतेर व्याख्या वुझे, हेन कौन् आछे। वैष्णवेर अग्रगण्य नदियार माझे ॥८९॥
चारि दिगे विश्वरूप पाय मनो दुःख। अद्वैतेर स्थाने सबे पाय प्रेम सुख ॥९०॥
निरवधि थाके प्रभु अद्वैतेर सङ्गे। विश्वरूप-सहित अद्वैत वैसे रङ्गे ॥९१॥
परम-बालक प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। कुटिल-कुन्तल, वेश अति मनोहर ॥९२॥
मा'ये बोले "विश्वम्भर! जाह रड़ दिया। तोमार भाइरे झाट आनह डाकिया" ॥९३॥
मा'येर आदेशे प्रभु धाय विश्वम्भर। सत्वरे आइला—यथा अद्वैतेर घर ॥९४॥

दिया पर आप लोग न समझ पाये" ॥ ७८ ॥ (ऐसा कह कर) जो कुछ व्याख्या की थी उसे सब खण्डन कर डाला, तब तो सबके चित में बड़ा विस्मय हुआ ॥ ७९ ॥ इस प्रकार तीन बार खण्डन करके फिर उसी की तीन बार स्थापना कर दी ॥ ८० ॥ तब तो "तुम परम सुबुद्धि मान् हो" कह कर सब प्रशंसा करने लगे, परन्तु विष्णु माया से मोहित होने से तत्त्व (यथार्थ बात) कोई न जान पाया ॥ ८१ ॥ इस प्रकार श्रीविश्वरूप नवद्वीप में बास करते हैं पर लोगों को भक्ति शून्य देखकर आनन्द नहीं पाते हैं ॥ ८२ ॥ सब संसार व्यवहार के मद से मतवाला बना हुआ है और वैष्णवों के मंगल मय यश का विचार नहीं करता है ॥ ८३ ॥ (यथा:—) पुत्रादिकों के महोत्सव में तो संसार धन व्यय करता है पर कृष्ण-पूजा, कृष्ण-धर्म को कोई नहीं जानता है ॥ ८४ ॥ जितने भी अध्यापक हैं वे केवल तर्क पूर्ण व्याख्या ही करते हैं, श्रीकृष्ण भक्ति और श्रीकृष्ण पूजा—कुछ भी नहीं मानते हैं ॥ ८५ ॥ यदि कोई भागवत, गीता आदि पढ़ाते भी हैं, तो वे भी भक्ति को नहीं वखानते हैं, केवल सूक्ष्म विचार ही किया करते हैं ॥ ८६ ॥ प्रभु विश्वरूप (इन) सब स्थानों में आते जाते रहते हैं परन्तु भक्तियोग की चर्चा कही भी न सुन पाने से बड़ा दुःख पाते हैं ॥८७॥ उस समय श्रीकृष्ण की पूर्ण शक्ति रूप श्रीअद्वैत सिंह ही एक ऐसे थे जो योग वाशिष्ठ, पढ़ाते हुए भी श्री कृष्ण भक्ति बखाना करते थे ॥ ८८ ॥ श्रीअद्वैत की व्याख्या समझ सके ऐसा (नदिया में) कौन है। वे नदिया में वैष्णवों में अग्रगण्य हैं ॥ ८९ ॥ चारों ओर से विश्वरूप मन में केवल दुःख ही पाते हैं, केवल एक श्रीअद्वैत के निकट ही उन्हें प्रेम भक्ति का सुख मिलता है ॥ ९० ॥ (अतएव) वे सदा श्रीअद्वैत प्रभु के साथ रहते हैं, और श्रीअद्वैत भी श्रीविश्वरूप के साथ बड़े आनन्द में रहते हैं ॥ ९१ ॥ (उस समय) गौर सुन्दर निपट बालक हैं, घुँघराले केश हैं, मनोहर वेश है ॥ ९२ ॥ मा शची कहती हैं—"विश्वम्भर! जा तो दौड़कर! अपने भाई को झट बुला कर ले आ" ॥ ९३ ॥ माता के आदेश पर प्रभु विश्वम्भर दौड़

वसियाछे अद्वैत वेढ़िया भक्त गण। श्रीवासादि करिया जतेक महाजन ॥९५॥
विश्वम्भर बोले "भाइ! भात खाओसिया। विलम्ब ना कर," बोले हासिया हासिया ॥९६॥
हरिल सभार चित्त प्रभु विश्वम्भर। सभेइ चा' हेन रूप परम-सुन्दर ॥९७॥
मोहित हइया चा'हे अद्वैत-आचार्य। सेइ मुख चा'हे सब परिहरि कार्य। ९८॥
एइ मत प्रति दिन मा'येर आदेशे। विश्वरूप डाकिवार छले प्रभु आइसे ॥९९॥
चिन्तये अद्वैत मने-देखि विश्वम्भर। "मोर चित्त हरे' शिशु परम-सुन्दर ॥१००॥
मोर चित्त हरिते कि पारे अन्य जन। एव वा मोहोर प्रभु मोहे' मोर मन ॥१०१॥
सर्व भूत-हृदय ठाकुर विश्वम्भर। चिन्तिते' अद्वैत झाट चलि जाय घर ॥१०२॥
निरवधि विश्वरूप अद्वैतेर सङ्गे। छाड़िया संसार सुख गोङायेन रङ्गे ॥१०३॥
विश्वरूप-कथा आदि खण्डे से विस्तार। अनन्त-चरित्र नित्यानन्द कलेवर ॥१०४॥
ईश्वरेर इच्छा सबे ईश्वर से जाने। विश्वरूप संन्यास करिला कथो दिने। १०५॥
जगते विदित नाम 'श्रीशङ्करारण्य'। चलिला अनन्त-पथे वैष्णवाग्रगण्य। १०६॥
करि दण्ड ग्रहन चलिला विश्वरूप। आइर विदरे निरवधि शोके बुक ॥१०७॥
मने मने गणे' आइ हइया सुस्थिर। "अद्वैत से मोर पुत्र करिला बाहिर" ॥१०८॥
तथापिह आइ वैष्णवापराध-भये। किछु ना बोलये मने महा दुःख पाये ॥१०९॥
विश्वम्भर देखि सब पासरिला दुःख। प्रभुओ मा'येर बड़ बाढ़ायेन सुख ॥११०॥
दैवे कथो दिने प्रभु करिला प्रकाश। निरवधि अद्वैतेर संहति विलास ॥१११॥

कर जाते हैं और शीघ्र ही श्रीअद्वैत के घर जा पहुँचते हैं ॥ ९४ ॥ श्रीवास आदि जितने भक्त महानुभाव हैं, वे सब श्रीअद्वैत को घेर कर बैठे हैं ॥ ९५ ॥ विश्वम्भर आकर कहते हैं—"भैय्या! भात खाने चलो, देर मत करो"—ऐसा हँस २ कर बोले ॥ ९६ ॥ प्रभु विश्वम्भर सबका चित्त हर लेते हैं सभी उस परम सुन्दर रूप को देखने लगते हैं ॥ ९७ ॥ श्री अद्वैताचार्य भी मोहित होकर देखते हैं,—सब कार्य त्याग कर उस मुख को देखते हैं ॥ ९८ ॥ इस प्रकार प्रति दिन माता के आदेश से विश्वरूप को बुलाने के बहाने प्रभु आते (जाते) हैं ॥ ९९ ॥ उनको देखकर श्रीअद्वैत मन में चिन्ता करते हैं कि "यह बालक तो परम सुन्दर है, यह तो मेरा चित्त हरण कर लेता है" ॥ १०० ॥ "मेरे चित्त को और कौन हर सकता है? क्या यह मेरा प्रभु है जो मेरे मन को मोह रहा है?" ॥ १०१ ॥ ऐसी चिन्ता में पड़े हुए श्रीअद्वैत को चट्ट छोड़कर झट्ट ही सर्व-भूत अन्तर्यामी प्रभु विश्वम्भर चले जाते हैं ॥ १०२ ॥ उधर श्रीविश्वरूप संसार के सुख को छोड़कर निरन्तर श्री अद्वैताचार्य के साथ अपना दिन आनन्द से बिताते हैं ॥ १०३ ॥ श्रीविश्वरूप की कथा आदि खण्ड में विस्तार से वर्णित है। श्रीनित्यानन्द से अभिन्न श्रीविश्वरूप के अनन्त चरित्र हैं ॥१०४॥ ईश्वर की इच्छा ईश्वर ही जानते हैं विश्वरूप ने भी कुछ दिनों में संन्यास ले लिया ॥ १०५ ॥ जगत् में वे श्री शङ्करारण्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। वैष्णव-प्रधान श्री शंकरारण्यम् अनन्त के पथ पर चल दिये ॥१०६। श्रीविश्वरूप दण्ड ग्रहण करके चले गए, इधर शची माता की छाती शोक से निरन्तर विदीर्ण होने लगी ॥ १०७ ॥ शची माता सुस्थिर होने पर, मन-मन में विचार करती हैं कि "इस अद्वैत ने ही मेरे पुत्र को बाहर निकाला है" ॥ १०८ ॥ तथापि वैष्णवापराध के भय से शची माता कुछ नहीं कहती हैं, पर उनके मन में बड़ा भारी दुःख है ॥ १०९ ॥ श्रीविश्वम्भर को देख २ कर वे सब दुःख भूल जाती हैं और प्रभु भी माता जी का बड़ा सुख बढ़ाते हैं ॥ ११० ॥ दैवयोग से कुछ दिनों में प्रभु ने अपना आत्म-प्रकाश किया और

छाड़िया संसार सुख प्रभु विश्वम्भर। लक्ष्मी परिहरि थाके अद्वैतेर घर ॥११२॥
ना रहे गृहेते पुत्र-हेन देखि आइ। "एहो पुत्र निला मोर आचार्य गोसाञि" ॥११३॥
सेइ दुःखे सबे एइ बलिलेन आइ। "के बोले 'अद्वैत'–द्वैत' ए बड़ गोसाञि ॥११४॥
चन्द्र सम एक पुत्र करिया बाहिर। एहो पुत्र ना दिलेन करि बारे स्थिर ॥११५॥
अनाथिनी-मोरे त काहारो नाहि दया। जगतेरे अद्वैत, मोरे से द्वैत-माया" ॥११६॥
सबे एइ अपराध, आर किछु नाञि। इहार लागिया भक्ति ना देन गोसाञि ॥११७॥
ए-काले जे वैष्णवेरे 'बड़' 'छोट' बोले। निश्चिन्ते थाकुक् से जानिब कथो काले ॥११८॥
जननीर लक्ष्ये शिक्षा गुरु भगवान्। वैष्णवापराध करायेन सावधान ॥११९॥
चैतन्य सिंहेर आज्ञा करिया लङ्घन। ना बुझि वैष्णव निन्दे' पाइब बन्धन ॥१२०॥
ए कथार हेतु किछु शुन मन दिया। जे निमित्त गौरचन्द्र करिलेन इहा ॥१२१॥
त्रिकाल जानेन प्रभु श्रीशचीनन्दन। जाने-सेविबेक अद्वैतेरे दुष्ट गण ॥१२२॥
अद्वैतेरे गाइबेक 'श्रीकृष्ण' करिया। जत किछु वैष्णवेर वचन लङ्घिया ॥१२३॥
जे बलिब अद्वैतेरे 'परम-वैष्णव'। ताहारेइ वेढ़िया लङ्घिब पापी-सब ॥१२४॥
से-सब-गणेर पक्ष अद्वैत धरिते। अतएव शक्ति नाहि–ए दण्ड देखिते ॥१२५॥
सकल सर्वज्ञ-चूडामणि विश्वम्भर। जानिला-'विलम्बे हइबेक बहुतर ॥१२६॥
अतएव दण्ड देखाइया जननीरे। साक्षी करिलेन अद्वैतादि वैष्णवेरे ॥१२७॥

श्रीअद्वैत के सहित निरन्तर भक्ति-विलास करने लगे ॥ १११ ॥ प्रभु विश्वम्भर, संसार-सुख तथा श्री लक्ष्मी देवी को त्याग कर श्रीअद्वैत के घर रहने लगे ॥ ११२ ॥ यह देखकर कि पुत्र घर पर नहीं रहता है शची मा बोली–"मेरे इस पुत्र को भी आचार्य गुसांई ने ले लिया" ॥ ११३ ॥ केवल इसी दुःख के कारण शची माता बोलीं–"इन गुसांई को अद्वैत (अर्थात् द्वैत-भाव-शून्य समदर्शी) कौन कहता है, ये तो बड़े "द्वैत" (भेद भाव कारी) हैं ॥ ११४ ॥ इन्होंने चन्द्रमा के समान मेरे एक पुत्र को घर से बाहिर किया, अब इस पुत्र को स्थिर नहीं रहने देते हैं ॥ ११५ ॥ "मुझ अनाथिनी पर किसी की दया नहीं है। इसीसे जगत् का अद्वैत मेरे लिये द्वैत माया है" (भेद भाव का मूल है) ॥११६॥ बस शची माता का केवल यही अपराध था, और कुछ नहीं था, कि जिसके लिए प्रभु ने उनको भक्ति प्रदान नहीं की थी ॥ ११७ ॥ फिर आज कल जो वैष्णवों को 'बड़ा' "छोटा" करके कहते है, वे भले ही निश्चिन्त रहें, पर कुछ दिन में सब जान जायँगे (कि इस अपराध का क्या परिणाम होता है) ॥ ११८ ॥ अतएव जननी को लक्ष्य करके शिक्षा गुरु भगवान् गौरचन्द्र वैष्णवापराध से सावधान कराते हैं ॥ ११९ ॥ श्रीचैतन्य सिंह की आज्ञा को उल्लंघन करके जो बिना समझे-बूझे वैष्णवों की निन्दा करते हैं, वे बन्धन में पड़ेंगे ॥ १२० ॥ जिस कारण से श्री गौरचन्द्र ने ऐसा (माता को दण्ड) किया, इस कथा का जो हेतु है, उसे ध्यान पूर्वक सुनो ॥ १२१ ॥ प्रभु श्रीशचीनन्दन तीनों काल को जानने वाले हैं। वे जानते हैं कि दुष्ट लोग श्रीअद्वैत की सेवा करेंगे ॥ १२२ ॥ वे वैष्णवों के सब वचनों का उल्लंघन करके श्रीअद्वैत को 'श्रीकृष्ण' कह कर गायेंगे ॥ १२३ ॥ और जो श्रीअद्वैत को "परम वैष्णव" कहेंगे, उसी को सब पापी घेर कर सतायँगे ॥ १२४ ॥ परन्तु इस दण्ड का देख लेने के पश्चात् फिर श्रीअद्वैत उन सब लोगों का पक्ष नहीं ले सकेंगे ॥ १२५ ॥ सब सर्वज्ञों के चूडामणि श्रीविश्वम्भर जान गये कि विलम्ब के कारण बहुत से (ऐसे लोग) हो जायँगे ॥ १२६ ॥ अतएव माता के प्रति दण्ड दिखला कर श्रीअद्वैतादि वैष्णवों को साक्षी बना लिया ॥ १२७ ॥ जिसके गण (परिकर)

वैष्णवेर निन्दा करिबेक जार गण। तार रक्षा-समर्थ नहिव कोन जन ॥१२८॥
वैष्णव निन्दक गण जाहार आश्रय। आपनेइ एड़ाइते ताहार संशय ॥१२९।
बड़ अधिकारी हय—आपने एड़ाय। क्षुद्र हैले—गण सह अधः पाते जाय ॥१३०॥
चैतन्येर दण्ड वुझि वारे शक्ति कार। जननीर लक्ष्ये दण्ड करिला सभार ॥१३१॥
जे वा जन अद्वैतेरे 'वैष्णव' वलिते। निन्दा करे, द्वन्द्व करे, मरे भाल मते ॥१३२॥
सर्व प्रभु गौराङ्ग सुन्दर महेश्वर। एइ वड़ स्तुति जे 'ताहान अनुचर' ॥१३३॥
नित्यानन्द स्वरूपे से निष्कपट हैया। कहिलेन गौरचन्द्र 'ईश्वर' करिया ।'१३४॥
नित्यानन्द-प्रसादे से गौरचन्द्र जानि। नित्यानन्द-प्रसादे से वैष्णवेर चिनि ॥१३५॥
नित्यानन्द-प्रसादे से निन्दा जाय क्षय। नित्यानन्द-प्रसादे से विष्णु भक्ति हय ।'१३६॥
निन्दा नाहि नित्यानन्द-सेवकेर मुखे। अहर्निश चैतन्येर यश गाय सुखे ।'१३७॥
नित्यानन्द भृत्य सर्व दिगे सावधान। नित्यानन्द भृत्येर 'चैतन्य' धन प्राण ।।१३८॥
अल्प-भाग्ये नाहि हय नित्यानन्द-दास। जाहारा लओयाय गौरचन्द्रेर प्रकाश ॥१३९॥
जे जन शुनये विश्वरूपेर आख्यान। से हय अनन्त दास नित्यानन्द प्राण ॥१४०॥
नित्यानन्द विश्वरूप-अभेद-शरीर। आइ इहा जाने, आर कौन महा धीर ॥१४१॥
जय नित्यानन्द-गौरचन्द्रेर शयन। जय जय नित्यानन्द सहस्र वदन ॥१४२॥
गौड़ देश-इन्द्र जय नित्यानन्द-राय। के पाय चैतन्य विने तोमार कृपाय ॥१४३॥
नित्यानन्द-हेन प्रभु हाराय जाहार। कोथाओ जीवने सुख नाहिक ताहार ॥१४४॥

वैष्णवों की निन्दा करेंगे, उसकी रक्षा करने को कोई समर्थ नहीं होगा ॥ १२८ ॥ जिसके आश्रय में वैष्णव निन्दक गण है, उसको स्वयं अपने को बचाने में संशय है ॥ १२९ ॥ वह यदि बड़ा अधिकारी है तो अपने को बचा लेता है, और यदि क्षुद्र है तो अपने परिकर सहित अधोगति को प्राप्त होता है ॥ १३० ॥ श्रीचैतन्य के दण्ड को समझने की किसकी शक्ति है। प्रभु ने जननी को लक्ष्य बनाकर सबको दण्ड दिया ॥ १३१ ॥ जो जन श्रीअद्वैत को "वैष्णव" कहने पर निन्दा करता है, कलह मचाता है, वह समूल नष्ट हो जाता है ॥ १३२ ॥ श्रीगौरांग सुन्दर सबके प्रभु हैं, महेश्वर हैं। उनका अनुचर होना ही सबसे बड़ी स्तुति है ॥१३३॥ श्रीगौरचन्द्र ने नित्यानन्द स्वरूप के लिये निष्कपट भाव से "ईश्वर" कहा है ॥ १३४ । श्रीनित्यानन्द की कृपा से (मैं) श्रीगौरचन्द्र को जानता हूँ और श्रीनित्यानन्द की ही कृपा से (मैं) वैष्णवों को पहचानता हूँ ॥ १३५ ॥ श्रीनित्यानन्द की कृपा से निन्दा-दोष का क्षय होता है। श्रीनित्यानन्द को कृपा से विष्णु भक्ति होती है ॥ १३६ ॥ श्रीनित्यानन्द के सेवकों के मुख में निन्दा नहीं होती। वे तो दिन-रात सुख से श्रीचैतन्य का यश गाया करते हैं ॥ १३७। श्रीनित्यानन्द का सेवक सब ओर से सावधान रहता है। नित्यानन्द के सेवक के धन, प्राण "श्रीचैतन्य" होते हैं ॥ १३८ ॥ श्रीनित्यानन्द का दास कोई अल्प भाग्य से नहीं होता है। जो श्रीगौरचन्द्र के आत्म प्रकाश को मानते हैं ॥ १३९ ॥ और जो जन श्रीविश्वरूप की कथा को सुनते हैं, वे श्री अनन्त देव श्रीनित्यानन्द के दास एवं प्राण होते हैं ॥ १४० ॥ श्रीनित्यानन्द और श्रीविश्वरूप के शरीर में भेद नहीं—ये दोनों एक ही हैं—यह शची माता जानती हैं और कोई २ महानुभाव जानते हैं ॥१४१॥ श्रीगौरचन्द्र की शय्या श्रीनित्यानन्द की जय हो। सहस्र वदन श्रीनित्यानन्द की जय हो, जय हो ॥ १४२ ॥ गौड-देश के इन्द्र श्रीनित्यानन्द राय की जय हो। तुम्हारी कृपा के बिना श्रीचैतन्य देव को कौन पा सकता है ॥ १४३ ॥ जिसने श्रीनित्यानन्द जैसे प्रभु को गवाँ दिया है उसके लिये जीवन में कहीं भी सुख नहीं है

हेन दिन हइव कि चैतन्य-निताइ। देखिव कि पारिषद-सहे एक-ठाँइ ॥१४५॥
आमार प्रभुर प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। ए बड़ भरसा चित्त धरिये अन्तर ॥१४६॥
अद्वैत चरणे मोर एइ नमस्कार। तान प्रिय ताहे मति रहुक आमार ॥१४७॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥१४८॥

अथ तेईसवाँ अध्याय

जय जय श्रीकृष्ण चैतन्य गुण निधि। जय विश्वम्भर जय भवादिर विधि ॥१॥
जय जय नित्यानन्द-प्रिय द्विज राज। जय जय चैतन्येर भकत-समाज ॥२॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। क्रीड़ा करे, नहे सर्व-नयन-गोचर ॥३॥
दिने दिने महानन्द नवद्वीप पुरी। वैकुण्ठ नायक विश्वम्भर अवतरि ॥४॥
प्रियतम नित्यानन्द सङ्गे कुतूहले। भकत समाजे निज-नाम-रसे खेले ॥५॥
प्रति दिन निशा भागे करये कीर्त्तन। भक्त-विने थाकिते ना पाय अन्य जन ॥६॥
एत बड़ विश्वम्भर शक्तिर महिमा। त्रिभुवने लङ्घिते ना पारे केहो सीमा ॥७॥
अगोचरे दूरे थाकि मिलि दश-पाँचे। मन्द मात्र बोले, यम घरे जाय पाछे ॥८॥
केहो बोले 'कलियुगे किसेर वैष्णव। जत देख-हेर पेट पोषा गुला सब" ॥९॥
केहो बोले "ए-गुलार वान्धि हाथ-पा'य। जले फेलि, जीये यदि, तबे धन्य गाय ॥१०॥

॥ १४४ ॥ क्या ऐसा भी दिन होगा कि जब पार्षदों के सहित श्रीचैतन्य-नित्यानन्द के एक ठौर में दर्शन करूँगा ? ॥ १४५ ॥ मेरे प्रभु के प्रभु श्रीगौरांग सुन्दर हैं—बस मैं अपने अन्तस् चित् में यही एक बड़ा भरोसा रखता हूँ ॥ १४६ ॥ श्रीअद्वैत के चरणों में मेरा यह नमस्कार है। उनके प्रिय में मेरी मति बनी रहे ॥ १४७ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्रीनित्यानन्द चाँद को अपना सर्वस्व जानकर वृन्दावन दास उनके चरण युगल का यश गान करता है । १४८ ॥

इति—शची देवी का वैष्णवापराध खण्डन नामक बाइसवाँ अध्याय ॥

गुण निधि श्रीकृष्ण चैतन्य की जय हो। विश्वम्भर की जय हो। महादेव आदि के जो विधाता (ईश्वर) हैं उनकी जय हो। श्रीनित्यानन्द के प्रिय द्विजराज की जय हो। श्रीकृष्ण चैतन्य के भक्त समाज की जय हो जय हो ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकार विश्वम्भर प्रभु नवद्वीप में क्रीड़ा कर रहे हैं, पर उसका दर्शन सर्व साधारण को नहीं होता है ॥३॥ नवद्वीप पुरी में दिन प्रति दिन महा आनन्द हो रहा है। (कारण कि) बैकुण्ठ नायक विश्वम्भर देव अवतार लेकर अपने प्रियतम नित्यानन्द सहित भक्त समाज में अपने नाम का कौतुहल पूर्वक रसास्वादन करते हुये क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ वे प्रति दिन रात्रि के समय कीर्तन करते हैं। उसमें भक्त जनों के अतिरिक्त और कोई नहीं रहने पाता है ॥ ६ ॥ विश्वम्भर देव की शक्ति की इतनी बड़ी महिमा है कि कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता (अर्थात् संकीर्तन स्थल पर और कोई प्रवेश कर नहीं सकता) ॥ ७ ॥ (अत: कीर्तन से) दूर जहाँ दिखायी न दें, वहाँ रहकर दस पाँच लोग निन्दा करते हैं, ऐसे लोग पीछे नरक को ही प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ कोई कहता है "कलियुग में वैष्णव कैसा ? जितने (वैष्णव) देखते हो, सब अपना पेट पालने वाले है" ॥ ९ ॥ कोई कहता है "इनके हाथ-पाँवों को बाँध कर इन्हें जल में फेंक दो। जो ये जीते रह जायँ तो हम इनको धन्य (वैष्णव) कहेंगे, ॥ १० ॥

केहो बोले आरे भाइ ! जानिह निश्चित । ग्राम-खान लुटाइव निमाञि पण्डित'' ।।११।।
भय देखायेन सभे देखिवार तरे । अन्तरे नाहिक भाग्य, चातुरी किसेरे ।।१२।।
सङ्कीर्त्तन करे प्रभु शचीर नन्दन । जगतेर चित्त वृत्ति करये शोधन ।।१३।।
देखिते ना पाय लोक, करे अनुताप । सभेइ 'अभाग्य' वलि छाड़ये निश्वास ।।१४।।
केहो वा काहारो ठाञि परिहार करे । सङ्गोपे कीर्त्तन गिया देखिवार तरे ।।१५।।
'प्रभु से सर्वज्ञ' इहा सर्व-दासे जाने । एइ भये केहो कारे ना लय से-स्थाने ।।१६।।
एक ब्रह्मचारी सेइ नवद्वीपे वैसे । तपस्वी परम साधु वसये निर्दोषे ।।१७।।
सर्व काल पय-पान, अन्न नाहि खाय । शुनिते कीर्त्तन विप्र देखिवारे चाय ।।१८।।
प्रभु से दुयार दिया करये कीर्त्तन । प्रवेशिते नारे भक्त-विने अन्य जन ।।१९।।
सेइ विप्र प्रति दिन श्रीवासेर स्थाने । नृत्य देखिवार लागि साधये आपने ।।२०।।
''तुमि यदि एक दिन कृपा कर' मोरे । आपने लइया जाओ वाड़ीर भितरे ।।२१।।
तवे से देखिते पाङ पण्डितेर नृत्य । लोचन सफल करों, हङ कृत्य कृत्य'' ।।२२।।
एइ मत प्रति दिन साधये ब्राह्मण । आर दिन श्रीनिवास वलिला ये वचन ।।२३।।
''तोमारे त जानि सर्व काल बड़ भाल । ब्रह्मचर्ये फलाहारे गोङाइला काल ।।२४।।
कौन पाप नाहि जानि तोमार शरीरे । देखिवार तोमार आछये अधिकारे ।।२५।।
प्रभुर से आज्ञा नाहि केहो जाइ वार । 'संगोपे थाकिवा' एइ वलिलुँ तोमारे ।।२६।।
एत वलि ब्राह्मणेरे लइया चलिला । एक दिगे आड़ हइ संगोपे थाकिला ।।२७।।

कोई कहता है'' अरे भाई ! यह निश्चय जान लो कि यह निमाइ पंडित गाँव लुटवा देगा'' ।। ११ ।। इस प्रकार वे सब लोग कीर्तन के दर्शन पाने के लिये भय दिखलाते हैं, पर उनका सौभाग्य कहाँ जो दर्शन पा सकें, फिर चतुराई से क्या होता है ।। १२ ।। शचीनन्दन प्रभु संकीर्तन करते हैं–उसके द्वारा जगत् की चित्त वृत्ति का शोधन करते हैं ।। १३ ।। लोग उस संकीर्तन को देख नहीं पाते हैं, इससे बड़ा पछतावा करते हैं, अपने को 'अभागा' कहकर सभी लम्बी साँसें छोड़ते हैं ।। १४ ।। कोई तो छिप कर संकीर्तन जा देखने के लिये किसी के निकट प्रार्थना करते हैं ।। १५ ।। (परन्तु) प्रभु के सब भक्त जन यह जानते हैं कि वे प्रभु सर्वज्ञ हैं । इस भय के कारण कोई किसी को संकीर्तन के स्थान पर नहीं ले जाता है ।। १६ ।। उसी नवद्वीप में एक ब्रह्मचारी रहता था । वह बड़ा तपस्वी साधु था तथा निर्दोष जीवन बिताता था ।। १७ ।। वह सदा दूध ही पीता और अन्न नहीं खाता था, वह प्रभु का कीर्तन देखना-सुनना चाहता था ।। १८ ।। परन्तु वे प्रभु तो द्वार बन्द करके ही कीर्तन किया करते । वहाँ भक्त बिना और कोई प्रवेश ही नहीं कर पाता था ।।१९।। वह ब्राह्मण संकीर्तन के दर्शन कर पाने के लिये प्रति दिन श्रीवास के निकट चिरौरी-कीया करता ।। २० ।। (वह कहा करता कि) ''यदि तुम एक दिन कृपा करके मुझे अपने घर के भीतर ले चलो तो कहीं मैं निमाई पंडित का वह नृत्य देख सकूँ, और अपने लोचन सफल करूँ, और कृत कृत्य हो जाऊँ'' ।। २१ ।। २२ ।। इस प्रकार वह ब्राह्मण नित्य प्रति श्रीवास को मनाया करता । अन्त में एक दिन श्रीवास ने यह वचन कहा, ''मैं तुम्हें जानता हूँ, तुम तो सदा से ही बड़े सज्जन हो, ब्रह्मचर्य-सहित फलाहार करते हुये तुमने अपनी आयु बिताई है ।। २३ ।। २४ ।। (''अतएव) मैं जानता हूँ कि तुम्हारे शरीर में कोई पाप नहीं है और (संकीर्तन) देखने का तुमको अधिकार है ।। २५ ।। पर वहाँ जाने के लिये किसी को प्रभु की आज्ञा नहीं है । (अतएव) छिप करके रहना–यह मैं तुमसे कह रखता हूँ'' ।। २६ ।। इतना कहकर वे ब्राह्मण को ले

नृत्य करे चतुर्दश भुवनेर नाथ। चतुर्दिगे महाभाग्य वन्त वर्ग साथ ॥२८॥
'कृष्ण राम मुकुन्द मुरारि वनमाली। सभेइ गायन्त हइ महा कुतूहली ॥२९॥
नित्यानन्द-गदाधर धरिया वेड़ाय। आनन्दे अद्वैत सिंह चारि दिगे धाय ॥३०॥
परानन्द सुखे केहो वाह्य नाहि जाने। वैकुण्ठ नायक नृत्य करये आपने ॥३१॥
हरि बोल हरि बोल हरि बोल भाइ। इहा वइ आर किछु शुनिते ना पाय ॥३२॥
अश्रु, कम्प, लोम हर्ष, सघन-हुँकार। के कहिते पारे विश्वम्भरेर विकार ॥३३॥
सर्वज्ञेर चूड़ामणि विश्वम्भर-राय। जाने 'विप्र लुकाइया आछये एथाय' ॥३४॥
रहिया रहिया बोले प्रभु विश्वम्भर। "आजि केने प्रेम योगे ना पाङ निर्भर ॥३५॥
केहो नि आसिया आछे वाड़ीर भितरे। किछु नाहि बुझों, सत्य कह देखि मोरे ॥३६॥
भय पाइ श्रीनिवास बोलये वचन। पाषण्डेर इथे प्रभु! नाहि आगमन ॥३७॥
सबे एके ब्रह्मचारी-बड़ सुब्राह्मण। सर्व काल पयःपान–निष्पाप-जीवन ॥३८॥
देखिते तोमार नृत्य श्रद्धा ताँर वड़। निभृते आछये प्रभु! जानिञाछ दढ़" ॥३९॥
शुनि क्रोधावेशे बोले प्रभु विश्वम्भर। 'झाट झाट बाडीर बाहिर निञा कर' ॥४०॥
मोर नृत्य देखिते उहान कौन शक्ति। पयःपान करिले कि मोहे हय भक्ति" ॥४१॥
दुइ भुज तुलि प्रभु अङ्गुलि देखाय। पयः पाने केहो मोरे देखिते ना पाय ॥४२॥
चण्डालेहो मोहोर शरण यदि लय। सेहो मोर, मुञि तार, जानिह निश्चय ॥४३॥
संन्यासीओ यदि मोर ना लय शरण। सेहो मोर नहे, सत्य वलिलुँ वचन ॥४४॥

चले। वह जाकर एक ओर ओट में छिप रहा ॥ २७ ॥ (उधर) चतुर्दश भुवन पति प्रभु नृत्य कर रहे हैं, साथ में चारों ओर महा भाग्यवान गण हैं ॥ २८ ॥ सब बड़े कौतुहल पूर्वक गा रहे हैं" कृष्ण राम मुरारि बनमाली" ॥ २९ ॥ नित्यानन्द गदाधर को पकड़े हुये घूम रहे हैं और अद्वैताचार्य चारों ओर आनन्द में चक्कर काट रहे हैं ॥ ३० ॥ परानन्द सुख में तल्लीन किसी को बाहर की सुध नहीं है। स्वयं वैकुण्ठ नायक आप जो नृत्य कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ "हरि बोल हरि बोल हरि बोल भाई" इस धुन को छोड़ और कुछ सुनायी नहीं पड़ता ॥ ३२ ॥ विश्वम्भर देव के अश्रु, कम्प, रोम हर्ष, गम्भीर हुँकार आदि भाव विकारों को कौन वर्णन कर सकता है ॥ ३३ ॥ विश्वम्भर राय सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं। जानते हैं कि यहाँ एक विप्र छिप कर बैठा है ॥ ३४ ॥ (अतएव) रुक रुक कर विश्वम्भर प्रभु कहते हैं "आज कीर्तन में उत्तरोत्तर अधिक प्रेम क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है ॥ ३५ ॥ कुछ समझ में नहीं आता। क्या कोई बाहर का आदमी घर भीतर आया है–सच तो बताओ मुझे" ॥ ३६ ॥ श्रीबास डर कर कहने लगे, "प्रभो! यहाँ कोई निन्दक विमुख तो नहीं आया है ॥ ३७ ॥ केवल मात्र एक ब्रह्मचारी,-जो बड़ा सज्जन ब्राह्मण है, सदा दूध ही पीता है, जीवन जिसका निष्पाप है, आप के दर्शन के लिये उसमें बड़ी श्रद्धा है–वह तो एकान्त में अवश्य बैठा हुआ है प्रभो!" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ सुनते ही क्रोधावेश में भर कर विश्वम्भर प्रभु बोले "तुरन्त निकाल बाहर करो घर से उसे ॥ ४० ॥ मेरा नृत्य देखने की उसमें शक्ति ही क्या है? दूध पीने से ही क्या मुझमें भक्ति हो जाती है ॥ ४१ ॥ फिर दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर अंगुली से अपने को दिखलाते हुए बोले, "दूध पीने से कोई मुझे नहीं पाता है। पर यदि चण्डाल भी मेरी शरण लेवे, तो वह भी मेरा है और मैं उसका हूँ यह निश्चय जान लो ॥ और यदि संन्यासी भी मेरी शरण नहीं लेता है तो वह भी मेरा नहीं है, यह मैंने सत्य कहा है ॥ ४२–४४ ॥ भला राजेन्द्र बानरों और गोपों ने कौन सा तप किया था? बताओ तो सही,

गजेन्द्र-वानर-गोप कि तप करिल । वोल देखि तारा मोरे कि तपे पाइल ॥४५॥
असुरेओ तप करे, कि हय ताहार । विने मोर शरण लइले नाहि पार" ॥४६॥
प्रभु बोले "पयःपाने मोरे नाहि पाइ । सकल करिमु चूर्ण, देखिवा एथाइ" ॥४७॥
महा भये ब्रह्मचारी हइला बाहिर । मने मने चिन्तये ब्राह्मण महाधीर ॥४८॥
"एइ मोर भाग्य वड़ जे किछु देखिलु । अपराध-अनुरूप शास्तिओ पाइलु ॥४९॥
अद्भुत देखिलु नृत्य, अद्भुत क्रन्दन । अपराध-अनुरूप पाइलु तर्जन" ॥५०॥
सेवक हइले एइ मत बुद्धि हय । सेवके से प्रभुर सकल दण्ड सय ॥५१॥
एइ मत चिन्तिया चलिते विप्र वर । जानि लेन अन्तर्यामी श्रीगौर सुन्दर ॥५२॥
डाकिया आनिया पुन करुणा सागर । पाद पद्म दिला ताँर मस्तक-उपर ॥५३॥
प्रभु बोले "तप' करि ना कारेह बल । 'विष्णु भक्ति सर्व श्रेष्ठ' जानिह केवल ॥५४॥
एक पुस्तक में अतिरिक्त पाठ—"आनन्दे क्रन्दन करे सेइ विप्रवर ।
प्रभुर करुणा गुण स्मरे निरन्तर" ॥
'हरि' वलि सन्तोषे सकल भक्त गण । दण्डवत् हइया पड़िला ततक्षण ॥५५॥
श्रद्धा करि जे जन शुनये ए रहस्य । गौरचन्द्र प्रभु ताँरे मिलिव अवश्य ॥५६॥
ब्रह्म चारि-प्रति कृपा करिया ठाकुर । आनन्द आवेशे नृत्य करेन प्रचुर ॥५७॥
सेइ विप्र-चरणे आमार नमस्कार ।
चैतन्येर दण्डे हैल हेन बुद्धि जार ॥५८॥ रस के परिवर्तन में ऐसा पाठ है ।
एइ मत प्रति-निशा करये कीर्तन । देखिवार शक्ति नाहि धरे अन्य जन ॥५९॥

उन्होंने किस तप के बल से मुझे पाया ? ॥ ४५ ॥ "असुर भी तो तप करता हैं, पर उसका फल क्या होता है ? बिना मेरी शरण लिये उद्धार नहीं है" ॥ ४६ ॥ प्रभु फिर बोले, "पय-पान से मैं नहीं मिलता हूँ । मैं सबका गर्व चूर्ण कर दूँगा—यहीं देख लोगे ॥ ४७ ॥ अत्यन्त भयभीत होकर वह ब्रह्मचारी निकल बाहर हुआ । वह महाधीर ब्राह्मण मन-ही-मन सोचने लगा कि "यही मेरा सौभाग्य है कि मैं कुछ देख तो पाया । और जैसा अपराध किया, वैसा दण्ड भी मिल गया ! ओह ! अद्भुत नृत्य, अद्भुत कीर्तन देखा ! अपराध जैसा, वैसी ही भर्त्सना भी मिली" ॥ ४८—५० ॥ (ग्रन्थकार कहते हैं कि) सेवक की ऐसी ही बुद्धि होती है—सेवक प्रभु के दिये हुये सब दण्डों को सह लेता है ॥ ५१ ॥ ऐसा मन में सोचता हुआ वह विप्र चल रहा था कि अन्तर्यामी श्रीगौर सुन्दर जान गये और करुणा सागर प्रभु ने पुनः उसको बुलवा कर अपना चरण कमल उसके मस्तक पर अर्पण कर दिया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ प्रभु बोले—"मैं तप करता हूँ—इसका बल मत रक्खो । बस इतना सुनिश्चित जान लो कि विष्णु भक्ति ही श्रेष्ठ है । (तात्पर्य तपस्या से विष्णु भक्ति प्राप्त नहीं होती—वह तो विष्णु-वैष्णव कृपा से ही प्राप्त होती है) ॥ ५४ ॥ (प्रभु के ऐसे वचन सुनकर) समस्त भक्त जनों ने 'हरि' ध्वनि करके आनन्द प्रकट किया वह ब्रह्मचारी भी तत्काल भूमि पर दण्डवत् पड़ कर प्रणाम करने लगा ॥ जो जन इस रहस्य को श्रद्धा पूर्वक श्रवण करेंगे, उन्हें गौरचन्द्र प्रभु अवश्य ही मिलेंगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ब्रह्मचारी पर कृपा करके प्रभु आनन्द के आवेश में प्रचुर नृत्य करने लगे ॥५७॥ उस ब्राह्मण के चरण में मेरा नमस्कार है कि जिसकी श्रीचैतन्य देव के दण्ड के प्रति ऐसी सुबुद्धि हुई (निन्दा-द्वेष नहीं हुआ) ॥ ५८ ॥ इस प्रकार प्रभु प्रति रात्रि कीर्तन करते हैं, पर उसे देखने की शक्ति (भक्तों को छोड़) औरों की नहीं है ॥ ५९ ॥ नदिया वासी सब मन-ही-मन में वड़े दुःखी हैं और निन्दकों

अन्तरे दुःखित लोक सब नदीयार। सभे पाषण्डीरे मन्द बोलये अपार ॥६०॥
"पापिष्ठ निन्दक बुद्धि नाशेर लागिया। हेन महोत्सवे देखिवारे नारे गिया ॥६१॥
पापिष्ठ-पाषण्डि सब सवे निन्दा जाने। वञ्चित हइया मरे ए हेन कीर्त्तने ॥६२॥
पाप-पाषण्डीर लागि निमाञि पण्डित। भालरे ओ द्वार नाहि देन कदाचित् ॥६३॥
तेंहो से कृष्णेर भक्त-जानेन सकल। ताहान हृदय पुनि परम-निर्मल ॥६४॥
आमरा सभेर यदि ताँरे भक्ति थाके। तवे नृत्य देखिव अवश्य कोन पाके" ॥६५॥
कोन नगरिया बोले "वसि थाक भाइ। नयन भरिया देखिवाङ एइ ठाँइ ॥६६॥
संसार उद्धार लागि निमाञि पण्डित। नदियार माझे आसि हइला विदित ॥६७॥
घरे घरे नगरे नगरे प्रति द्वारे। करिवेन सङ्कीर्त्तन वलिल सभारे ॥६८॥
भाग्यवन्त नगरिया सर्व-अवतारे। पण्डितेर गण सब निन्दा करि मरे ॥६९॥
दिवस हइले सब नगरिया गण। प्रभु देखिवार तरे करेन गमन ॥७०॥
केहो वा नूतन द्रव्य, कारो हाथे कला। केंहो घृत, केहो दधि, केहो दिव्य माला ॥७१॥
लइया चलेन सभे प्रभु देखिवारे। प्रभु देखि सर्व जन दण्डवत् करे ॥७२॥
प्रभु बोले "कृष्ण भक्ति हउक सभार। कृष्ण-गुण-नाम वइ ना वलिह आर" ॥७३॥
आपने सभारे प्रभु करे उपदेश। "कृष्ण नाम महा मंत्र शुनह विशेष ॥७४॥
'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" ॥७५॥
प्रभु बोले "कहिलाङ एइ महामंत्र। इहा गिया जप' सभे करिया निर्वन्ध ॥७६॥
इहा हैते सर्व सिद्धि हइव सभार। सर्व क्षण बोल, इथे विधि नाहि आर ॥७७॥

को खूब खरी खोटी सुनाते हैं ॥ ६० ॥ (कि) "ये पापी निन्दक लोग, बुद्धि भ्रष्ट होने के कारण, ऐसे महोत्सव के दर्शन को न जाकर, केवल मात्र निन्दा करना ही जानते हैं और ऐसे संकीर्तन से बंचित ही रह जाते हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ "कदाचित्" इन पापी-निन्दकों के कारण ही निमाई पंडित भलों को भी भीतर नहीं आने देते हैं ॥ ६३ ॥ परन्तु वे तो श्रीकृष्ण के भक्त हैं–सब जानते हैं। उस पर उनका हृदय भी परम निर्मल है। यदि हम सबों को उन पर भक्ति बनी रहेगी तो हम उनका नृत्य किसी-न-किसी प्रकार अवश्य देख पायेंगे" ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ एक नगर वासी बोला–"बैठे रहो भाई! यहीं देख लेना नेत्र भर कर ॥ निमाइ पंडित संसार के उद्धार के लिये नदिया में आकर प्रकट हुये हैं ॥ वे नगर २ में, घर २ में, द्वार २ प्रति संकीर्तन करेंगे–यह मैं तुमसे कहे देता हूँ" ॥ ६६–६८ ॥ (ग्रन्थकार कहते हैं कि) नगरवासी जन सभी अवतारों में भाग्यवान हैं। यह तो पंडितों का ही दल है जो निन्दा कर करके मरता है। दिन निकल आने पर सब नगरवासी प्रभु के दर्शनार्थ गमन करते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ कोई तो नवीन वस्तु भेंट लेकर, कोई हाथ में केला लेकर, कोई घी, कोई दही, कोई सुन्दर माला लेकर प्रभु के दर्शन के लिये चलते हैं तथा दर्शन करने पर सब लोग दण्डवत् प्रणाम करते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ प्रभु कहते हैं, "तुम सबको कृष्ण-भक्ति मिले। तुम सब श्रीकृष्ण के गुण और नाम के अतिरिक्त और कुछ न बोला करो" ॥ ७३ ॥ प्रभु आप ही सब को उपदेश करते हैं कि "ध्यान पूर्वक कृष्ण-नाम-महा मंत्र सुनो, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' ॥ यह महा मंत्र मैंने कहा इसे सब निश्चित संख्या में नियम पूर्वक सब जपा करें ॥ ७४–७६ ॥ "इससे ही सबको सर्व सिद्धि प्राप्त हो जायगी। इसे सब समय कीर्तन किया करो। इसके लिये (देश-काल-पात्रादि की) कोई विधि नहीं है ॥ ७७ ॥ बस, अपने गृह के द्वार पर

दश पाँचे मिलि निज दुयारे वसिया। कीर्तन करिह सभे हाथे तालि दिया ॥७८॥
'हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन' ॥७९॥
कीर्त्तन कहिल एइ तोमा' सभाकारे। स्त्रीये पुत्र बापे मिलि कर' गिया घरे" ॥८०॥
प्रभु-मुखे मंत्र पाइ सभार उल्लास। दण्डवत् करि सभे गेला निज-वास ॥८१॥
निरवधि सभेइ जपेन कृष्ण नाम। प्रभुर चरण काय मने करे ध्यान ॥८२॥
सन्ध्या हैले आपन दुयारे सभे मिलि। कीर्त्तन करेन सभे दिया कर तालि ॥८३॥
एइ मत नगरे नगरे सङ्कीर्त्तन। कराइते लागि लेन शचीरनन्दन ॥८४॥
सभारे उठिया प्रभु आलिङ्गन :करे। आपन गलार माला देइ सभाकारे ॥८५॥
दन्ते तृणकरि प्रभु परिहार करे। "अहर्निश भाइ सब ! बोलह कृष्णेरे ॥८६॥
प्रभुर देखिया आर्ति कान्दे सर्व जन। काय मनो वाक्ये लइलेन सङ्कीर्त्तन ॥८७॥
परम-आनन्दे सब नगरिया गण। हाथे तालि दिया बोले 'राम नारायण' ॥८८॥
मृदङ्ग मन्दिरा शंख आछे सर्व घरे। दुर्गोत्सव काले वाद्य वाजावार तरे ॥८९॥
सेइ सब वाद्य एवे कीर्त्तन समये। गायेन वा'येन सभे आनन्द हृदये ॥९०॥
हरिओ राम राम हरिओ राम राम। एइ मत नगरे उठिल व्रह्म-नाम ॥९१॥
खोला बेचा श्रीधर जायेन सेइ पथे। दीर्घ करि हरि नाम वलिने बलिते ॥९२॥
शुनिञा कीर्त्तन आरम्भिला महा नृत्य। आनन्दे विह्वल हैला चैतन्येर भृत्य ॥९३॥
देखिया ताहान सुख नगरिया गण। वेढिया चौदिगे सभे करेन कीर्त्तन ॥९४॥
गड़ा गड़ि जायेन श्रीधर प्रेम रसे। वहिर्मुख-सकल दूरे ते थाकि हासे' ॥९५॥
कौन पापी बोले "हेर्-देख भाइ-सब। खोला बेचा मुनिसाओ हइल वैष्णव ॥९६॥

दस पाँच जने मिलकर हाथ से ताली देते हुये सब कीर्तन किया करें, ("हरि) हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन"। यह कीर्तन मैंने तुम सबों को बतला दिया। घर जा, स्त्री, पुत्र, पिता, सब मिलकर यह कीर्तन करो" ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ प्रभु के श्रीमुख से महा मंत्र प्राप्त करके सबको बड़ा उल्लास हुआ और वे दण्डवत्-प्रणाम कर अपने घरों को चले गये ॥ अब तो सब वाणी से निरन्तर कृष्ण नाम जपते हैं और चित्त से प्रभु का ध्यान करते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ सन्ध्या होने पर अपने द्वार पर सब मिलकर हाथ से ताली बजाते हुये कीर्तन करते हैं ॥ इस प्रकार श्रीशचीनन्दन नगर २ में संकीर्तन कराने लगे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ (उपदेश के पश्चात्) प्रभु उठकर सब को आलिगन करते हैं और अपने गले की मालाएँ देते हैं ॥ ८५ ॥ और दाँतों में तिनका दबा कर प्रभु निहोरा करके कहते हैं, "भाइयो ! अहर्निश कृष्ण-कोर्तन किया करो" ॥ ८६ ॥ प्रभु की आतुरता को देखकर सब लोग रो पड़ते हैं और काय-मन-वाक्य से संकोर्तन को अपनाते हैं ॥ ८७ ॥ सब नगरबासी बड़े आनन्द के साथ हाथों से ताली देते हुये 'राम नारायण' कहते हैं ॥ ८८ ॥ सब के घरों में दुर्गा-उत्सव के समय बजाने के लिये मृदंग, शंख, मजीरा, वाद्य हैं ही ॥ वे ही सब वाद्य अब संकीर्तन के समय कानन्द भरे हृदय से सब बजाते और गाते हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥ "हरि ओ राम राम, हरि ओ राम"—इस प्रकार (नदिया) नगर में व्रह्म नाम की ध्वनि छा गयी ॥ ९१ ॥ केला का फल-फूल-साग बेचने वाला श्रीधर उस मार्ग से जोर २ से हरि नाम लेता हुआ जा रहा था। उसने संकीर्तन सुना तो महा नृत्य आरम्भ कर दिया। श्रीचैतन्य का भृत्य आनन्द में विह्वल हो गया ॥ ९२-९४ ॥ उसके सुख को देख कर नागरिक लोग उसे चारों ओर से घेर कर कोर्तन करने लगे ॥ ९५ ॥

परिधान-वस्त्र नाहि, पेटे नाहि भात। लोकेरे जानाय 'भाव हइल आमा' त' ॥९७॥
नगरिया गुला बोले "मागि खाइ मरे। अकालेइ दुर्गोत्सव आनिलेक घरे" ॥९८॥
एइ मत पाषण्डीरा वलगये सदाय। प्रति दिन नगरिया गण 'कृष्ण' गाय ॥९९॥
एक दिन दैवे काजि सेइ पथे जाय। मृदङ्ग मन्दिरा शंख शुनिवारे पाय ॥१००॥
हरि नाम-कोलाहल चतुर्दिगे मात्र। शुनिञा स्मङरे काजि आपनार शास्त्र ॥१०१॥
काजि बोले "धर धर आजि करों कार्य। आजि वा कि करे तोर निमाञि-आचार्य" ॥१०२॥
आथे व्यथे पलाइल नगरिया गण। महा त्रासे केश केहो ना करे वन्धन ॥१०३॥
जाहारे पाइल काजि, मारिल ताहारे। भाङ्गिल मृदङ्ग, अनाचार कैल द्वारे ॥१०४॥
काजि बोले "हिन्दु यानि हइल नदिया। करिमुँ इहार शास्ति नागालि पाइया ॥१०५॥
क्षमा करिजाङ आजि, दैवे हैल राति। आर दिन लागि पाइलेइ लैव जाति ॥१०६॥
एइ मत प्रति दिन दुष्ट गण लेया। नगर भ्रमये काजि कीर्त्तन चाहिया ॥१०७॥
दुःखे सब नगरिया थाके लुकाइया। हिन्दु-काजी सब आरो मारे कदर्थिया ॥१०८॥
केहो बोले "हरि नाम लव मने मने। हुड़ा हुड़ि वलियाछे के मन पुराणे ॥१०९॥
लंघिले वेदेर वाक्य एइ शास्ति हय। 'जाति' करियाओ ए-गुलार नाहि भय ॥११०॥
निमाञि पण्डित जे करेन अहंकारे। सब चूर्ण हइवेक काजिर दुयारे ॥१११॥

प्रेम रस में भरे श्रीधर धरती पर लोट-पोट हो गये। यह देख दूर खड़े वहिर्मुख लोग सब हँसने लगे ॥९६॥ एक पापी बोला, "देखो रे देखो भाइयो! साग बेचने वाला यह आदमी भी वैष्णव हो गया! तन में पहनने को कपड़ा नहीं, पेट में भात नहीं, पर दुनिया को जताता है कि मुझे प्रेम आ गया" ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ (दुष्ट) नागरिक लोग भी बोले -"हाँ! माँग २ कर पेट भरने से तो यह मरा जा रहा है, उस पर असमय में ही दुर्गा-उत्सव (अर्थात् नाचना-गाना) घर में बुला लाया है" ॥ ९९ ॥ इस प्रकार निन्दक लोग नित्य बकने लगे पर (सज्जन) नागरिक गण नित्य प्रति ही कृष्ण-कीर्तन करने लगे ॥ १०० ॥ दैवयोग से एक दिन काजी उस मार्ग से जा रहा था तो उसे मृदंग, मजीरा, शंख की ध्वनि सुनायी पड़ी ॥ १०१ ॥ चारों ओर केवल हरि नाम का कोलाहल सुनकर काजी को अपने शास्त्र (कुरान) का स्मरण हो आया ॥ १०२ ॥ वह बोल उठा, "पकड़ो, पकड़ो इन्हें! आज मैं कार्य करूँगा (दण्ड दूँगा)। देखूँ तो आज तुम्हारा आचार्य निमाई क्या कर लेता है।" नागरिक लोग घबड़ा कर इधर-उधर भागने लगे। डर के मारे उनके केश खुल गये पर उन्हें कोई बाँधता नहीं है ॥ १०३ ॥१०४॥ जो भी काजी के हाथ आ गया, उसे उसने मारा-पीटा, मृदंग फोड़ डाला और भी अनाचार द्वार पर किया ॥ १०५ ॥ काजी बोला, "ओह! नदिया में तो हिन्दुओं का राज्य हो गया! मेरे हाथ तो आ जायँ, अच्छी तरह दण्ड दूँगा। आज तो क्षमा किये जाता हूँ। संयोग से रात भी हो आयी है, लेकिन दूसरे दिन ऐसी कुछ खबर मिली तो जाति ले लूँगा" ॥ १०६ ॥ इस प्रकार प्रति दिन काजी दुष्ट लोगों को लेकर, कहीं कीर्तन तो नहीं हो रहा है, यह देखते हुये नगर में घूमने लगा ॥ १०७ ॥ दुःख के मारे नागरिक लोग सब छिप २ कर रहते हैं। उस पर हिन्दु काजी (पंडित नाम धारी) लोग भी उलटा-सीधा कहकर इनको डराते हैं ॥ १०८ ॥ कोई कहता है-"हरि नाम तो मन-ही-मन में लेना चाहिये। यह हो-हल्ला मचाना किस पुराण में कहा है ॥ १०९ ॥ वेद का वचन न मानने से यही सजा मिलती है। इनको अपनी जाति चले जाने का भी तो कोई भय नहीं है ॥ ११० ॥ वह निमाई पंडित तो बड़ा ही अहंकार करता है। वह सब अब काजी के आगे चूर हो जायगा ॥ १११ ॥ और वह नित्यानन्द

नगरे नगरे जे बुलेन नित्यानन्द। देख तार कोन दिन वाहि राय रङ्ग ॥११२॥
उचित बलिते हइ आमरा पाषण्ड। धन्य नदियाय एत उपजिल भण्ड ॥११३॥
भये केहो किछु नाहि करे प्रत्युत्तर। प्रभु स्थाने गिया सभे करिला गोचर ॥ ११४ ॥
"काजिर भयेते आर ना करि कीर्त्तन। प्रतिदिन बुलेलइ सहस्रेक जन ॥ ११५ ॥
नवद्वीप छाड़िया जाइव अन्य स्थाने। गोचरिल एइ दुइ तोमार चरणे ॥११६॥
कीर्त्तनेर वाध शुनि प्रभु विश्वम्भर। क्रोधे हइलेन प्रभु रुद्र-मूर्त्तिधर ॥११७॥
हुँकार करये प्रभु शचीरनन्दन। कर्णधरि 'हरि' बोले नगरिया गण ॥११८॥
प्रभु बोले "नित्यानन्द ! हओ सावधान। एइ क्षणे चल सर्व-वैष्णवेर स्थान ॥११९॥
सर्व नवद्वीपे आजि करिमु कीर्त्तन। देखों मोरे कौन कर्म करे कौन जन ॥१२०॥
देखि आजि काजिर पोड़ाइ घर द्वार। कौन कर्म करे देखों राजा वाताहार ॥१२१॥
प्रेमभक्ति वृष्टि आजि करिव विशाल। पाषण्डीर गणेर हइव आजि काल ॥१२२॥
चल चल भाइ सब नगरियागण। सर्वत्र आमार आज्ञा करह कथन ॥१२३॥
कृष्णेर रहस्य आजि देखिवेक जेइ। एको महाद्वीप लइ आसिबेक सेइ ॥१२४॥
भाङ्गिया काजिर घर काजिर दुयारे। कीर्त्तन करमु, देखों कौन कर्म करे ॥१२५॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर सेवकेर दास। मुञि विद्यमानेओ कि भयेर प्रकाश ॥१२६॥
तिलार्द्धेको भय केहोना करिह मने। विकाले आसिवे झाट करिया भोजने। १२७॥
ततक्षणे चलिलेन नगरियागण। आनन्दे डूबिला सभे किसेर भोजन ॥१२८॥
"निमाञि पण्डित आजि नगरे नगरे। नाचिवेन" ध्वनि हैल प्रति घरे घरे ॥१२९॥

तो मोहल्ले २ में घूमता फिरता है। देख लेना उसका भी कोई दिन रंग (नशा) उतर जायगा ॥ ११२ ॥ देखो तो सही हम उचित बात कहते हैं तो निन्दक कहलाते हैं ! धन्य इस नदिया को इतने ढोंगी उपजे हैं यहाँ" ॥ ११३ ॥ डर के मारे कोई इनको उत्तर नहीं देते हैं पर (एक दिन) उन्होंने जाकर प्रभु के निकट सब बातें निवेदन कर दीं ॥ ११४ ॥ "हम काजी के भय से अब और कीर्तन नहीं करते हैं। वह प्रति दिन हजारों सिपाहियों को लेकर घूमता फिरता है ॥ ११५ ॥ हम तो अब नवद्वीप छोड़ कर अन्यत्र चले जायँगे– यह हमने आपके चरण युगल में निवेदन कर दिया" ॥ ११६ ॥ कीर्तन पर यह प्रतिबन्ध (रोक-थाम) सुनकर प्रभु विश्वम्भर क्रोध के कारण रुद्र स्वरूप हो गये ॥ ११७ ॥ प्रभु शचीनन्दन हुँकार करने लगे और नगरवासी जन 'हरि' ध्वनि करने लगे ॥ ११८ ॥ प्रभु बोले–"नित्यानन्द ! सावधान हो जाओ ! इसी समय हम सब वैष्णवों के निकट चलें ॥ ११९ ॥ मैं आज सारे नवद्वीप में कीर्त्तन करूँगा। देखूँ कौन मेरा क्या कर लेता है ॥ १२० ॥ देख लेना आज काजी का घर-द्वार सब जला दूँगा। देखूँ उसका राजा मेरा क्या बिगाड़ लेता है ॥१२१ ॥ 'आज मैं प्रेम भक्ति की बड़ी भारी वर्षा करूँगा और निन्दकों के लिये काल स्वरूप बन जाऊँगा ॥ १२२ ॥ जाओ सब नागरिक भाइयो जाओ, और सर्वत्र मेरी आज्ञा को सुनादो कि जो कोई आज श्रीकृष्ण के रहस्य को देखना चाहे वह एक बड़ा सा दीपक लेकर आवे ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ 'मैं काजी का घर तोड़ फोड़ दूँगा और उसके द्वार पर ही कीर्त्तन करूँगा देखूँ वह क्या करता है। अनन्त ब्रह्माण्ड मेरे सेवक का दास है। मेरे विद्यमान रहते भय किस बात का ? आधा तिल बराबर भी कोई अपने मन में भय न करे, बस शीघ्र ही भोजन करके सायंकाल को सब यहाँ आ जावें ॥ १२५ । १२७ ॥ नागरिक गण तुरन्त ही चल पड़े। वे आनन्द में डूब रहे हैं, उन्हें भोजन कैसा ? (कौन करे) ॥ १२८ ॥

जार नृत्यना देखिया नदियार लोक। कत कोटि सहस्र करिया आछे शोक ।।१३०।।
हेन जन नाचिवेन नगरे नगरे। आनन्दे देउटि वान्धे प्रति घरे घरे ।।१३१।।
बापे वान्धिलेओ पुत्र वान्धे आपनार। केहो कारे हरिषे ना पारे राखिवार ।।१३२।।
ता'-बड़ता'-बड़ करि सभेइ वान्धेन। बड़ बड़ भाण्डे तैल करिया लयेन ।।१३३।।
अनन्त अर्बुदलक्ष लोक नदियार। देउटिर संख्या करिवारे शक्ति कार ।।१३४।।
इथि मध्ये जे जे व्यवहारे बड़ हय। सहस्रेको साजाइया कौन जन लय ।।१३५।।
हइल देउटिमय नवद्वीपपुर। स्त्री-बाल वृद्धेरो रङ्ग वाढ़िल प्रचुर ।।१३६।।
एहो शक्ति आनेर किहय कृष्ण-विने। तभु पापी लोक ना जानिल एतदिने ।।१३७।।
ईषत् आज्ञाय मात्र सर्व नवद्वीप। चलिला देउटि लइ प्रभुर समीप ।।१३८।।
शुनि सर्व वैष्णव आइला ततक्षण। सभारे करेन आज्ञा शचीरनन्दन ।।१३९।।
"आगे नृत्य करिवेन आचार्य गोसाञि। एक सम्प्रदाय गाइवेन तान ठाजि ।।१४०।।
मध्ये नृत्य करि जाइवेन हरिदास। एक सम्प्रदाय गाइवेन तान पाश ।।१४१।।
तवे नृत्य करिवेन श्रीवास पण्डित। एक सम्प्रदाय गाइवेन तानभित ।।१४२।।
नित्यानन्ददिगे मात्र चाहिलेन प्रभु। नित्यानन्द वोले "तोमाना छाड़ि वकभु ।।१४३।।
धरिया बुलिव प्रभु! एइ कार्य मोर। तिलेको हृदये पद ना छाड़िव तोर ।।१४४।।
स्वतंत्र नाचिते प्रभु! मोर कौन् शक्ति। यथातुमि, तथाआमि, एइ मोर भक्ति" ।।१४५।।
प्रेमानन्द धारा देखि नित्यानन्द-अङ्गे। आलिंगन करि राखिलेन निज-सङ्गे ।।१४६।।

'निमाइ पण्डित आज नगर २ (मोहल्ला २) में संकीर्तन करेंगे' यह ध्वनि घर २ में होने लगी ।। १२९ ।। जिनके नृत्य को देखने न पाकर कितने करोड़ नदियावासी दुखित थे, आज वही व्यक्ति नगर २ में नृत्य करेगा इस आनन्द में घर २ में लोग मसाल बनाने लगे ।। १३० ।। १३१ ।। बाप के मसाल बना लेने पर भी बेटा अपनी मसाल अलग बनाता है। हर्ष के मारे कोई किसी को नहीं रोकता है ।। १३२ ।। वह उस से बड़ा तो वह उससे बड़ा इस तरह सब लोग मसाल बनाते हैं और बड़े २ पात्रों में तेल ले लेते हैं ।। १३३ ।। नदिया में अनन्त अरब मनुष्य थे किसकी सामर्थ्य जो उनकी मसालों की गिनती कर सके ।। १३४ ।। इनमें भी जो व्यवहार में बड़ी थीं ऐसे २ हजारों मसालों को कोई सजा गुजा लेता है ।। १३५ ।। नवद्वीप पुरी द्वीप शिखामयी हो गयी। स्त्री बाल, वृद्धों का आनन्द रङ्ग भी खूब बढ़ चला ।। १३६ ।। यह शक्ति क्या श्री-कृष्ण के अतिरिक्त किसी दूसरे की हो सकती है तब भी पापी लोगों को इतने दिनों तक इसका ज्ञान न हुआ ।। १३७ ।। एक छोटी सी आज्ञा होते ही समस्त नवद्वीप मसालों को लिये प्रभु के समीप चल पड़ा ।। १३८ ।। सुनते हो वैष्णव जन भी तुरन्त वहां आ पहुँचे। उन सब के प्रति शचीनन्दन प्रभु ने यह आदेश किया ।। १३९ ।। (कि) 'गोसाई अद्वैताचार्य तो आगे २ नृत्य करेंगे एक दल उनके पास रहकर कीर्त्तन करेगा मध्य में हरिदास नृत्य करते हुए जायँगे एक दल उनके पास कीर्त्तन करेगा। उसके पश्चात् श्रीवास पण्डित नृत्य करेंगे एक दल उनके पास कीर्त्तन करेगा'। १४० ।। १४२ ।। नित्यानन्द जी की ओर प्रभु ने केवल दृष्टि ही डाली तो वे बोल उठे 'मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा। (तुम जब नृत्य करोगे तो) मैं तुमको सम्हाले पीछे २ घूमूँगा प्रभो! यह कार्य मेरा मैं तो तिल भर समय के लिये भी अपने हृदय पर से तुम्हारे चरण को हटने नहीं दूँगा। मेरी क्या शक्ति कि मैं तुम्हें छोड़ कर स्वतंत्र नाच सकूँ, जहाँ तुम वहीं मैं यही मेरी भक्ति है' ।। १४३ ।। १४५ ।। श्री नित्यानन्द के अङ्ग में प्रेमानन्द की धारा (प्रवाहित होते) देख प्रभु ने उनको आलिंगन करके अपने साथ ही रक्खा ।। १४६ ।। इस प्रकार जिसके चित्त में जैसा उमङ्ग उठा वैसा

एइ मत जार जेन चित्तेर उल्लास। केहोवा स्वतंत्रनाचे, केहो प्रभु पाश ॥१४७॥
मनदिया शुन भाइ! नगर कीर्त्तन। जे कथा शुनिले कर्म बन्धेर खण्डन ॥१४८॥
गदाधर, वक्रेश्वर, मुरारि, श्रीवास। गोपीनाथ, जगदीश, विप्र-गङ्गादास ॥१४९॥
रामाइ, गोविन्दानन्द, श्रीचन्द्र शेखर। वासुदेव, श्रीगर्भ, श्रीमुकुन्द, श्रीधर ॥१५०॥
गोविन्द, जगदानन्द, नन्दन- आचार्य। शुक्लाम्बर-आदि जे जे जाने रह कार्य ॥१५१॥
अनन्त चैतन्यभृत्य कत जानि नाम। वेदव्यास द्वारे व्यक्त हइब पुराण ॥१५२॥
साङ्गोपाङ्ग-अस्त्र पारिषदे प्रभु नाचे। इहा वर्णिवारे कि नरेर शक्ति आछे। १५३।
अवतारो एमत कि आछे अद्भुत। जाहा प्रकाशिलेन हइया शचीसुत ॥१५४॥
तिले तिले बाढ़े विश्वम्भरेर उल्लास। अपराह्न आसिया हइल परकाश ॥१५५॥
भकतगणेर चित्ते हइल आनन्द। सुख सिन्धु माझे भासे सब भक्तवृन्द ॥१५६॥
नगरे नाचिब प्रभु कमलार कान्त। देखिया जीवेर दुःख घूचिब नितान्त ॥१५७॥
स्त्री बालक वृद्ध किवा स्थावर जङ्गम। से नृत्य देखिले सर्व बन्धेर मोचन ॥१५८॥
काहारो नाहिक वाह्य आनन्द आवेशे। गोधूलि समय आसि हइल प्रवेशे ॥१५९॥
कोटि कोटि लोक आसि आछये दुयारे। परशिया ब्रह्माण्ड श्रीहरि ध्वनि करे ॥ ६०।
हुँकार करिला प्रभु शचीरनन्दन। सुखे परिपूर्ण हैल सभार श्रवण। १६१॥
हुँकारेर सुखे सभे हइला विह्वल। 'हरि' बलि सभे दीप ज्वालिल सकल ॥१६२॥
लक्ष कोटि दीप सब चारिदिगे ज्वले। लक्ष कोटि लोक चारिदिगे 'हरि' बोले ॥१६३।

ही कोई स्वतंत्र नाचते हैं तो कोई प्रभु के समीप नाचते हैं ॥ १४७ ॥ भाइयो! नदिया नगर कीर्त्तन का वृत्तान्त एकाग्र मन से सुनो जिस कथा के सुनने से कर्म बन्धन टूट जाते हैं ॥ १४८ ॥ गदाधर, वक्रेश्वर, मुरारि, श्रीवास, गोपीनाथ, जगदीश, गङ्गादास ब्राह्मण, रामाई, गोविन्दानन्द, श्री चन्द्रशेखर, वासुदेव, श्रीगर्भ, श्रीधर, श्रीमुकुन्द, गोविन्द, जगदानन्द, नन्दनाचार्य, शुक्लाम्बर, आदि प्रभु के रहस्य कार्य के ज्ञाता जो अनन्त श्री चैतन्य दास हैं उनके नाम तो वेद व्यास द्वारा पुराण में व्यक्त होंगे मैं भला कितने नामों को जानता हूँ ॥ १४९ ॥ १५२ ॥ प्रभु अङ्ग उपङ्ग अस्त्र और पार्षदों के सहित नृत्य कर रहे हैं इसे वर्णन करने को मनुष्य में भला क्या शक्ति (यहाँ अङ्ग तुल्य नित्यानन्द एवं अद्वैताचार्य हैं। उपाङ्ग अर्थात् अङ्ग के अङ्ग तुल्य श्रीवास पण्डित आदि हैं। अस्त्र तुल्य भगवन्नाम है और पार्षद हैं गदाधर गोविन्द आदि) ॥ १५३ ॥ अन्य अवतारों में ऐसी अद्भुत बात क्या है जैसी शचीनन्दन बन करके प्रभु ने प्रकाशित की है ॥ १५४ ॥ पल २ में विश्वम्भर प्रभु का आनन्द बढ़ता जाता है इतने ही में तीसरे पहर का समय हो गया ॥ १५५। भक्त लोगों के चित्त में आनन्द उमड़ आया और वे सुख के सागर में बह चले ॥१५६। (सुख यह कि) प्रभु कमलाकान्त आज नगर में नृत्य करेंगे जिसके दर्शन कर जीवों के दुःख का निपट नाश हो जायगा ॥ १५७ ॥ स्त्री बालक वृद्ध ही नहीं स्थावर जंगम जिस किसी ने वह नृत्य देखा, उसी के समस्त बन्धन कट गये ॥ १५८ ॥ आनन्द के आवेश में किसी को वाह्य सुधि नहीं है कि इतने ही में गोधूलि बेला हो आयी ॥ १५९ ॥ करोड़ों लोग द्वार पर आ पहुँचे और ब्रह्माण्ड स्पर्शी हरिध्वनि करने लगे ॥ १६० ॥ प्रभु शचीनन्दन ने भी हुँकार किया जिससे सब के कर्ण सुख से भरपूर हो गया ॥ १६१ ॥ हुँकार के सुख से सब विह्वल हो गये और 'हरि' ध्वनि करते हुए सबने मसालें जला लीं ॥ १६२ ॥ लाखों करोड़ों मसालें चारों ओर जल उठीं लाखों करोड़ों लोग चारों ओर 'हरि' ध्वनि करने लगे ॥ १६३ ॥ अहा क्या शोभा उस

किशोभा हइल से वलिते शक्ति कार। किसुखेर नाजानि हइल अवतार ॥ १६४ ॥
किवा चन्द्रशोभा करे,किवादिन मणि। किवा तारागण ज्वले, किछुइ काजानि ॥१६५॥
सवे ज्योतिर्मय देखि सकल आकाश। ज्योतिरूपे कृष्ण किवा करिला प्रकाश ॥ १६६ ॥
'हरि' वलि डाकिलेन गौराङ्गसुन्दर। सकल-वैष्णवगण हइला सत्वर ॥ १६७ ॥
करिते लागिला प्रभु वेढ़िया कीर्तन। सभार अङ्गे ते माला श्री फागु चन्दन ॥ १६८ ॥
करताल मन्दिरा सभार शोभे करे। कोटि सिंह जिनिजा सभेइ शक्ति धरे ॥ १६९ ॥
चतुर्दिगे आपक-विग्रह भक्त गण। वाहिर हइला प्रभु श्री शचीनन्दन ॥ १७० ॥
प्रभु मात्र बाहिर हइला नृत्य रसे। 'हरि' वलि सर्व लोक महानन्दे भासे ॥ १७१ ॥
संसारेर ताप हरे' श्रीमुख देखिया। सर्व्व लोक 'हरि' बोले आलग हइया ॥ १७२ ॥
जिनिजा कन्दर्प-कोटि. लावण्येर सीमा। हेन नाहि,जाहा दिया करिव उपमा ॥ १७३ ॥
तथा पिह वलि तान कृपा-अनुसारे। अन्यथा से रूप कहिबारे के वा पारे ॥ १७४ ॥
ज्योतिर्मय कनक-विग्रह वेद-सार। चन्दने भूषित जेन चन्द्रे र आकार ॥ १७५ ॥
चाँचर-चिकुरे शोभे मालतीर माला। मधुर मधुर हासे' जिनि सर्व कला ॥ १७६ ॥
ललाटे चन्दन शोभे फागुविन्दु-सने। बाहु तुलि 'हरिहरि' बोले श्रीवदने ॥ १७७ ॥
आजानु लम्बित माला सर्व-अङ्गे होले। सर्व अंग तिते पद्मन पनेर जले ॥ १७८ ॥
दुइ महा भुज जेन कनकेर स्तम्भ। पुलकेर शोभा जेन कनक-कदम्ब ॥ १७९ ॥

समय हुई-कौन उसे बखान सकता है ! न जाने कौन–से सुख का अवतार उस समय हो गया ॥ १६४ ॥ वह क्या चन्द्रमा की चाँदनी छा रही थी, अथवा सूर्य का प्रकाश हो रहा था अथवा तारागणों ही जल रहे थे-कुछ कहा नहीं जाता ॥ १६५ ॥ बस, गगन मण्डल ज्योतिर्मय दिखायी दे रहा था। अथवा तो ज्योति रूप से क्या श्री कृष्ण ही प्रकाशमान हो रहे थे ! १६६ ॥ 'हरि' नाम के घोस द्वारा गौरांग सुन्दर ने आह्वान किया जिससे समस्त वैष्णव मंडली में त्वरा मच गयो ॥ १६७ ॥ ये सब प्रभु को घेर कर कीर्तन करने लगे। सब के शरीरों में माला, कुंकुम और चन्दन और हाथों में करताल ओ मजीरा शोभा दे रहे हैं तथा सब करोजें सिहों को विजय करने वाली शक्ति धारण किये हुये हैं ॥ १६८-१६९ ॥ प्रभु शचीनन्दन चारों ओर अपने विग्रह स्वरूप भक्तजनों से घिरे हुये बाहर निकले ॥ १७० ॥ प्रभु के नृत्य-रस-विभोर हो बाहर निकलते ही 'हरि' घोष करती हुई सारी जनता महा आनन्द की धारा में बह चली ॥ १७१॥ श्री मुख के दर्शन कर करके सब लोग अपने संसार के ताप को शान्त करते थे और उच्च स्वर से 'हरि हरि' बोलते थे ॥ १७२ ॥ प्रभु का रूप कोटि-कन्दर्प-विजयी था उसमें लावण्यता की सीमा थी। उसकी उपमा देने योग्य कोई वस्तु नहीं है ॥ १७३ ॥ तथापि उनको कृपा के अनुसार कुछ बखानता हूं, नहीं तो कृपा के बिना उस रूप को कोई क्या बखान सकता है ॥ १७४ ॥ गौर चन्द्र की देह ज्योतिर्मय सुवर्ण विग्रह हैं, वेदों का सार-स्वरूप हैं। उनके अंग चन्दन से चर्चित हैं, घुँघराले केशों पर मालती की माला शोभा दे रही है। वे अपने मधुर २ हास्य से कलाओं के सौन्दय-माधुर्य को पराजित कर रहे हैं ॥ १७५-१७६ ॥ उनके ललाट पर चन्दन के मध्य में कुंकुम-विन्दु शोभा दे रहा है। वे दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर श्री मुख से 'हरि हरि' बोल रहे हैं। घुटने तक की लम्बी माला सब अंगों के ऊपर झूल रही है और कमल नयनों के जल से सब अंग भीज रहे हैं ॥१७७-१७८॥ उनकी दोनों बड़ी २ भुजाएँ मानों तो सुवर्ण के स्तम्भ हैं तथा अंगों में पुलक की शोभा सुवर्ण-कदम्ब के सुमनों के समान हैं ॥ १७९ ॥ अधर लाल लाल सुरंग हैं, दन्त-पंक्ति अति

सुरङ्ग अधर अति सुन्दर दर्शन । श्रुति मूले शोभा करे भ्रूभङ्ग-पत्तन ॥ १८० ॥
गजेन्द्र जिनिजा स्कन्ध,हृदय सुपीन । ताहिं शोभे शुक्ल यज्ञसूत्र अति क्षीण ॥ १८१ ॥
चरणारविन्दु-रमा तुलसीर स्थान । परम-निर्मल-सूक्ष्म-वास परिधान ॥ १८२ ॥
उन्नत नासिका, सिंह-ग्रीव मनोहर । सभा' हैते सुपीत सुदीर्घ कलेवर ॥ १८३ ॥
जे-से खाने थाकिया सकल लोक बोले । "अइ ठाकुरेर केश शोभे नाना फूले ॥ १८४ ॥
एतेक लेकिर से हइल समुच्चय । सरिषाओ पड़िलेओ तल नाहि हय ॥ १८५ ॥
तथापिह हेन कृपा हइल तखन । सभेइ देखेन सुखे प्रभुर वदन ॥ १८६ ॥
प्रभुर श्रीमुख देखि सब नारीगण । हुला हुलि दिया 'हरि' बोले अनुक्षण ॥ १८७ ॥
कान्दिर सहित कला सकल दुयारे । पूर्ण-घट शोभे नारिकेल आम्रसारे ॥ १८८ ॥
घ्टतेर प्रदीप ज्वले परम-सुन्दर । दधि दूर्वा धान्य दिव्य-वाटार उपर ॥ १८९ ॥
एइमत नदियार प्रति द्वारे द्वारे । हेन नाहि जानि इहा कौन जन करे ॥ १९० ॥
व ले स्त्री-पुरुष सर्व लोक प्रभु-सङ्गे । केहो काहो ना जाने परमानन्द-रङ्गे ॥ १९१ ॥
चोरेर आछिल चित्त-एइ अवसरे । आजि चुरि करिवाड़ प्रति घरे घरे ॥ १९२ ॥
सेह चोर पासरिल आयन वेभार । 'हरि' वइ मुखे कारो ना आइसे आर ॥ १९३ ॥
हइल सकल पथ खइ-कड़ि-मय । के वा करे, केवा फेले, हेन रङ्ग हय ॥ १९४ ॥
स्तुति-हेन ना मानिहए-सकल कथा । एइ मत हये-कृष्ण विहरये यथा ॥ १९५ ॥
नव-लक्ष प्रासाद द्वार का रत्न मय । निमेषे हइल, एइ भागवते कय ॥ १९६ ॥

सुन्दर है तथा भ्रकुटि का विस्तार कर्ण पर्यन्त शोभा दे रहा है ॥ १८० ॥ उनका स्कन्ध देश गजेन्द्र को परास्त करता है, उन्नत, पुष्ट वक्षस्थल है उस पर अति सूक्ष्म शुल्क यज्ञोपवीत शोभित है ॥ १८१ ॥ श्री चरणाविंद लक्ष्मी एवं तुलसी के निवास स्थान हैं । वे परम स्वच्छ औ सूक्ष्म वस्त्र धारण किये हुये हैं ।१८२॥ नासिका उन्नत है, सिंह की ग्रीवा सदृश बाँको ग्रीवा मनोहर है । वर्ण (उपास्थित) सब लोगों से अधिक गौर है और कलेवर सब से दीर्घ (ऊँचा) है ॥ १८३ ॥ (इस कारण) जो जो जहाँ पर हैं वह वहीं से वे सब कहते हैं" वह देखो प्रभु के केश नाना प्रकार के पुष्पों से सशोभित हो रहे हैं" ॥ १८४ ॥ वहाँ लोगों का इतना विशाल समुदाय (भीड़) हो गया कि सरसों का दाना गिरे तो नीचे भूमि पर न पहुँच सके ॥ १८५ ॥ तथापि उस समय ऐसी कृपा हुई कि सभी बड़े सुख से प्रभु का दर्शन कर पा रहे थे ॥ १८६ ॥ प्रभुके मुख का दर्शन कर स्त्रियां हुलु ध्वनि करती हुई क्षण २ में 'हरि बोलती हैं ॥ १८७ ॥ वहाँ द्वार २ पर फल सहित कदली-वृक्ष, तथा श्री फल औ आम्रपल्लव सहित जल पूर्ण घट शोभित थे ॥ १८८ ॥ घृत के प्रदीप बड़े सुन्दर जल रहे थे तथा दिव्य पात्रों में दही, दूब, धान आदि सजाये हुये रक्खे थे ॥ १८९ ॥ इस प्रकार की सजावट नदिया के द्वार २ पर थी-न मालूम कौन यह सब कर रहा था ॥ १९० ॥ स्त्री-पुरुष सभी प्रभु के साथ २ लगे फिरते थे, परमानन्द में रंगे कोई किसी को जानता-पहिचानता भी न था ॥ १९१ ॥ चोर के मन में था कि आज इस अवसर पर घर २ में चोरी करे परन्तु वह चोर भी अपना कार्य भूल गया । 'हरि' नाम को छोड़ और कुछ किसी के मुख में आता ही न था ॥ १९२-१९३ ॥ मार्ग सारा खील और कौड़ियों से बिछ गया-कौन कर रहा है, कौन बरसा रहा है, किसी का ध्यान नहीं, सब आनन्द में ऐसे मस्त हो रहे हैं ॥१९४॥ इन सब बातों को कोई कोरी स्तुति न समझे। वास्तव में जहाँ श्रीकृष्ण विहार मरते हैं वहाँ ऐसी ही अद्भुत बातें सब होती हैं ॥१९५॥ देखो, द्वारिका

जे-काले यादव-सङ्गे सेइ द्वार काय। जल केलि करि लेन एइ द्विज राय ॥ १९७ ॥
जगते विदित हय लवण सागर। इच्छा मात्र हइल अमृत-जल-घर ॥ १९८ ॥
हरि वंशे कहेन ए सब गोप्य-कथा। एतेके सन्देह किछु ना करिह एथा ॥ १९९ ॥
से-इ प्रभु नाचे निज कीर्त्तने बिह्वल। आपनेइ उपसन्न सकल मंगल ॥ २०० ॥
भागी रथी तीरे प्रभु नृत्य करि जाय। आगे पाछे 'हरि' बलि सर्व लोक धाय ॥ २०१ ॥
आचार्य गोसाजि आगे जब कथो लैया। नृत्य करि चलिलेन परानन्द हैया ॥ २०२ ॥
तवे हरि दास कृष्ण सुखेर सागर। आज्ञाय चलिला नृत्य करिया सुन्दर ॥ २०३ ॥
तवे नृत्य करिया चलिला श्री निवास। कृष्ण सुखे परि पूर्ण जाहार विलास ॥ २०४ ॥
एइ मत भक्तगण आगे नाचि जाय। सभारे वेढ़िया एक सम्प्रदाय गाय ॥ २०५ ॥
सकल-पश्चाते प्रभु गौरांग सुन्दर। जायेन करिया नृत्य अति मनोहर ॥ २०६ ॥
मधु-कण्ठ हइलेन सर्व भक्तगण। कभु नाहि गाये—सेहो हइल गायन ॥ २०७ ॥
मुरारी, गोविन्द-दत्त, रामजि, मुकुन्द। वक्रेश्वर वासुदेव आदि जत वृन्द ॥ २०८ ॥
सभेइ नाचेन प्रभु बेढ़िया गायेन। आनन्दे पूर्णित प्रभु-संहति जायेन ॥ २०९ ॥
नित्यानन्द गदा धर जाय दुइ-पाशे। प्रेम-सुधा सिन्धु-माझे दुइ जन भासे ॥ २१० ॥
चलिलेन महा प्रभु नाचिते नाचिते। लक्ष कोटि लोक धाय प्रभुर देखिते ॥ २११ ॥
कोटि कोटि महा ताप ज्वलिते लागिल। चन्द्रेर किरण सर्व शरीरे हइल ॥ २१२ ॥
चतुर्दिगे कोटि कोटि महा दीप ज्वले। कोटि कोटि लोक चतुर्दिगे 'हरि' बोले' ॥ २१३ ॥

में नौ लाख रत्नमय महल पलक मारते प्रकट हो गये थे—यह बात तो भागवत ही कहती है ॥ १९६ ॥ जिस समय यादवों को लेकर इसी द्विजराज (गौर सुन्दर) ने जल विहार किया था, तो संसार में लवण सागर के नाम से विख्यात समुद्र भी प्रभु की इच्छा मात्र से अमृत जलमय हो गया था ॥ १९७-१९८ ॥ हरिवंश में यह सब गुप्त चरित वर्णित हैं। इससे यहाँ भी कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ १९९ ॥ वही प्रभु आज निज (नाम के) कीर्तन में विह्वल होकर नृत्य कर रहे हैं। अतएव उनकी सेवा में समस्त मङ्गल स्वयं ही उपस्थित हो रहे हैं ॥ २०० ॥ प्रभु भागीरथी गङ्गा के तीर पर नृत्य करते हुये जा रहे हैं और उनके आगे पीछे सब लोग 'हरि' ध्वनि करते हुए भागे जा रहे हैं ॥ २०१ ॥ सबके आगे २ अद्वैताचार्य गुसाँई कुछ भक्तों को लेकर परा-आनन्द में विभोर, नृत्य करते हुये चले जा रहे हैं ॥ २०२ ॥ उनके पीछे कृष्ण सुख के सागर हरिदास प्रभु की आज्ञा से नृत्य करते हुये चले हैं ॥ २०३ ॥ फिर चले हैं नृत्य करते हुये श्रीनिवास, जिनकी गति विलास से परिपूर्ण सुख छलक रहा है ॥ २०४ ॥ इस प्रकार आगे २ भक्तजन नृत्य करते २ चले हैं और उन सबको घेर कर एक २ मण्डली गाती हुई चली है ॥ २०४ ॥ सबके पीछे प्रभु गौर सुन्दर अति मनोहर नृत्य करते हुये चले हैं ॥ २०६ ॥ समस्त भक्त जनों के कण्ठ सुमधुर होगये हैं। जो कभी गाते नहीं थे, वे भी मधुर गान करने लगे हैं ॥ २०७ ॥ मुरारि, गोविन्ददत्त, रामाई, मुकुन्द, वक्रेश्वर, वासुदेव आदि भक्तगण सब प्रभु को घेर कर नाचते और गाते हैं ॥ २०८-२०९ ॥ प्रभु के दोनों पार्श्व में नित्यानन्द और गदाधर चल रहे हैं, दोनों प्रेम सुधासागर में बहे जा रहे हैं ॥ २१० ॥ प्रभु चले नाचते २ और लाखों करोड़ों लोग दौड़ चले प्रभु को देखने ॥ २११ ॥ करोड़ों बड़ी २ मसालें जलने लगीं परन्तु उनसे सब के शरीरों पर (उष्ण नहीं) चन्द्र की-सी शीतल किरणें पड़ने लगीं ॥ २१२ ॥ चारों ओर करोड़ों दीपक जल रहे हैं और करोड़ों लोग चारों ओर हरि २ बोल रहे हैं ॥ २१३ ॥ नृत्य के

देखिया प्रभुर नृत्य अपूर्व विकार। आनन्दे विह्वल लोक सब नदियार ॥ २१४ ॥
क्षणे हय प्रभु-अङ्ग सब धूला मय। नयनेर जले क्षणे सब पारवालय ॥ २१५ ॥
से कम्प से धर्म से वा पुलक देखिते। पाषण्डीर चित्त वृत्ति करये नाचिते ॥ २१६ ॥
नगरे उठिल महा-कृष्ण-कोलाहल। 'हरि' बलि ठाजि ठाजि नाचये सकल ॥ २१७ ॥
'हरि ओ राम राम हरि ओ रामराम।' 'हरि'वलि नाचये सकल भाग्यवान् ॥ २१८ ॥
ठाजि ठाजि एइ मत मेलि दश-पाँचे। केहो गाय, केहोवा'य, केहो माझे नाचे ॥२१९॥
लक्ष लक्ष कोटि कोटि हइल सम्प्रदाय। आनन्दे नाचिया सर्व नव द्वीपे जाय ॥ २२० ॥
'हरये नमः कृष्ण जादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्री मधु सूदन'॥ २२१ ॥
केहो केहो नाचये हइया एक मेलि। दशे–पाँचे-नाचे केहो दिया कर तालि ॥ २२२ ॥
दुइ हाथ जोड़ा दीप तेलेर भाजने। ए वड अद्भुत तालि दिलेक केमने ॥ २२३ ॥
हेन वुझि–वैकुण्ठ आइला नव द्वीपे। वैकुण्ठ-स्वभाव-धर्म पाइलेक लोके ॥ २२४ ॥
जीव मात्र चतुर्भुज हइल सकल। ना जानिल केहो, कृष्ण आनन्दे विह्वल ॥ २२५ ॥
हस्त जे हइल चारि, ताहो नाहि जाने। आपनार स्मृतिगेल तवे तालि केने ॥ २२६ ॥
हेनमते वैकुण्ठेर सुख नव द्वीपे। नाचिया जायेन सभे गङ्गार समीपे ॥ २२७ ॥
विजय करिला जेन नन्द घोषेर बाला। वाम हाथे, वांशी गले कदम्वेर माला ॥२२८ ॥
एइ मत कीर्त्तन करिया सर्व लोक। पास रिल देह-धर्म–जत दुःख शोक ॥ २२९ ॥

समय प्रभु के श्री अङ्ग में अपूर्व विकारों के दर्शन कर नदिया के सब लोग आनन्द में विह्वल हो गये ॥ २१४ ॥ क्षण में तो प्रभु का सर्वाङ्ग धूल में सन जाता है और दूसरे क्षण में नयनों के जल से सब धुल जाता है ॥ २१५ ॥ प्रभु के श्री अङ्ग के वे कम्प, वे प्रस्वेद, वे पुलक सब अपूर्व थे—उन्हें देख निन्दकों की चित्त वृत्ति भी नाचने को करती थी ॥ २१६ ॥ (उस समय) नगर भर में कृष्ण नाम का महा कोलाहल छा गया। सब लोग जहाँ तहाँ हरि कीर्तन करते हुये नाचने लगे ॥ २१७ ॥ ''हरि ओ राम राम, हरि ओ राम'' कीर्तन करते हुये और "हरि" नाम का घोष करते हुये सब भाग्यवान नाच रहे हैं ॥ २१८ ॥ इस प्रकार ठौर ठौर पर दस-पाँच जने मिलकर कोई गाते हैं कोई बजाते हैं और कोई मध्य में नाचते हैं ॥२१९॥ ऐसे २ लाखों करोड़ों दल बन गये। वे आनन्द में नाचते हुये सारे नवद्वीप में घूमने लगे ॥ २२० ॥ (हरि) "हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूदन।" (कहीं यह कीर्तन हो रहा है) ॥ २२१ ॥ कोई कोई एक साथ मिलकर नाचते हैं दस पाँच गाते हैं और कोई ताली बजाते हैं ॥ २२२ ॥ (परन्तु) यह बड़े आश्चर्य की बात है कि उनके दो हाथों में से एक में तो मसाल और दूसरे में तेल का पात्र है—फिर ताली कैसे बजाते हैं? ॥ २२३ ॥ ऐसा प्रतीत होता है कि वैकुण्ठ ही नवद्वीप में उतर आया है, इसी से नवद्वीप वासियों को भी वैकुण्ठ का स्वभाव और धर्म प्राप्त हो गया है ॥ २२४ ॥ इसी कारण जीव सब चतुर्भुज हो गये, पर इसका ज्ञान किसी को न हुआ, क्योंकि सभी श्रीकृष्ण के आनन्द में विह्वल थे ॥ २२५ ॥ (पुनः यह शंका भी उचित नहीं कि) जब उनको यह ज्ञान ही नहीं है कि हमारे चार हाथ हो गये हैं, जब ऐसे वे अपनी सुध-बुध भूल बैठे हैं, तो फिर ताली कैसे बजाई? (यह प्रभु की अविचिन्त्य लीला-शक्ति का वैभव है) ॥ २२६ ॥ इस प्रकार वैकुण्ठ का सुख नवद्वीप में प्रकट हो रहा है। सब लोग गङ्गा के किनारे किनारे नाचते जा रहे हैं ॥ २२७ ॥ प्रभु ऐसे लगते हैं कि नन्दराय के लाला ही बायें हाथ में वंशी लिये और गले में कदम्ब की माला पहने चले जा रहे हों ॥ २२८ ॥ इस प्रकार कीर्तन करते हुये

गड़ा गड़ि जाय केहो माल शाट्ट पूरे। काहारो जिह्वाय नाना मन वाक्य स्फुरे ।। २३० ।।
केहो बोले'एवेकाजि बेटा गेल कोथा। लागि पाङ एखने छिड़िया फेलों माथा'।।२३१।।
रड़ दिया आय केहो पाषण्डी धरिते। केहो पापण्डीर नामे किलाय माटिते ।।२३२।।
ना जानि वा कत जने मृदङ्ग वाजाय। ना जानि वा महानन्दे कत जने गाय ।।२३३।।
हेन प्रेम वृष्टि हैल सर्व-नदियाय। वैकुण्ठ सेवको जाहा चाहे सर्वथाय ।।२३४।।
जे सुखे विह्वल अज अनन्त शङ्कर। हेन रसे भासे सर्व-नदिया नगर ।।२३५।।
गङ्गा तीरे तीरे प्रभु वैकुण्ठेर राय। साङ्गोपाङ्ग-अस्त्र-पारिषदे नाचि आय ।।२३६।।
पृथिवीर आनन्दे नाहिक समुच्चय। आनन्दे हइला सर्व दिग पथमय ।।२३७।।
तिल-मात्र अनाचार हेन भूमि नाञि। परम उद्यान हैल सर्व ठाञि ठाञि ।।२३८।।
नाचिया आयेन प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। वेढ़िया गायेन चतुर्दिशे अनुचर ।।२३९।।
"तुया चरणे मन लागहुँ रे। सारङ्गधर। तुया चरणे मन लागहुँ रे" ।।२४०।।
चैतन्यचन्द्रेर एइ आदि सङ्कीर्तन। भक्तगण गाय नाचे श्रीशचीनन्दन ।।२४१।।
कीर्तन करेन सभे ठाकुरेर सने। कोन् दिके आइ' इहा केहो नाहि जाने ।।२४२।।
लक्ष कोटि लोके जे करये हरि ध्वनि। ब्रह्माण्ड भेदये जेन हेन मत शुनि ।।२४३।।
ब्रह्मलोक शिवलोक वैकुण्ठ पर्यन्त। कृष्ण सुखे पूर्ण हैल, नाहि तार अन्त ।।२४४।।
स पार्षदे सर्व देव आइला देखिते। देखिया मूर्च्छित हैला सभार सहिते ।।२४५।।

सब लोग दुःख शोक आदि सब देह के धर्मों को भूल गये ।। २२९ ।। कोई भूमि पर लोट पोट होते हैं तो कोई जोर से उछलते हैं और किसी के मुख से नाना प्रकार के वचन निकलते हैं ।। २३० ।। कोई कहता है "अब वह काजी बेटा कहाँ गया ? हाय आ जाय तो सिर उड़ा दूँ" ।। २३१ ।। कोई निन्दकों को पकड़ने के लिये दौड़ता है तो कोई निन्दकों का नाम ले लेकर मिट्टी पर ही लात चलाता है ।। २३२ ।। न जाने कितने लोग मृदङ्ग बजा रहे थे और न जाने कितने महा आनन्द में गा रहे थे (अर्थात् उनकी संख्या अपार थी) ।। २३३ ।। समस्त नदिया में ऐसी प्रेम की वर्षा हुई कि वैकुण्ठ वासी भी इस सुख की निपट चाहना करने लगे ।। २३४ ।। ब्रह्मा, शेष और शङ्कर जिस सुख में रहते हैं, उसी रस में समस्त नदिया नगर बहा जा रहा हैं ।। २३५ ।। वैकुण्ठनाथ प्रभु गङ्गा के किनारे २ अपने अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र और पार्षदों के सहित नाचते २ जा रहे हैं ।। २३६ ।। पृथ्वी में अपार आनन्द छाया हुआ है, आनन्द के कारण सब दिशायें मार्ग बन गयी हैं अर्थात् सब ओर से आनन्द पूर्ण जनता आ रही है। तिल मात्र भी अन्य भाव वहाँ नहीं रहा। सर्वत्र फुलवाड़ी के समान परम आनन्द व्याप्त हो गया ।। २३७-२३८ ।। प्रभु गौर सुन्दर नाचते हुये जा रहे हैं और अनुचर जन चारों ओर से घेर कर गा रहे हैं ।। २३९ ।। "हे सारङ्गधर ! तुम्हारे चरणों में मन लगे, तुम्हारे चरणों में मन लगे" यह है आदि (नजर) संकीर्तन श्रीचैतन्यचन्द्र का। इसे भक्त लोग गाते हैं और शचीनन्दन नाचते हैं (सारङ्ग-पद्म, शंख या धनुष। अथवा सारङ्गधर-भक्त प्रतिपालक) ।। २४०-२४१ ।। सब प्रभु के साथ कीर्तन कर रहे हैं। कोई नहीं जानता है कि वह किस तरफ जा रहा है ।। २४२ ।। लाखों करोड़ों लोग जो 'हरि' ध्वनि कर रहे है वह मानो तो ब्रह्माण्ड को भेदन कर रही हो—ऐसी घनघोर ध्वनि सुनायी पड़ रही है ।। २४३ ।। ब्रह्म लोक, शिव लोक, वैकुण्ठ लोक पर्यंत जो कृष्ण-सुख से परिपूर्ण हो गया उस सुख का अन्त नहीं है ।। २४४ ।। समस्त देवतागण पार्षदों के सहित (संकीर्तन) दर्शन करने को आये और दर्शन कर करके सब मूर्छित हो गये ।। २४५ ।। कुछ देर में सचेत

चैतन्य पाइया क्षणें सर्व देवगण। नर-रूपे विशाइया करये कीर्तन ॥२४६॥
अज, भव, वरुण, कुवेर, देवराज। यम-सोम आदि जत देवेर समाज ॥२४७॥
ब्रह्मसुख-स्वरूप अपूर्व देखि रङ्ग। सभे हैला नर रूपे चैतन्येर सङ्ग ॥२४८॥
देवे नरे एकत्र हइया 'हरि' बोले। आकाश पूरिया सब महा-दीप ज्वले ॥२४९॥
कदलक-वृक्ष प्रति दुयारे दुयारे। पूर्ण-घट, धान्य, दूर्वा, दीप, आम्र सारे ॥२५०॥
नदियार सम्पत्ति वर्णिते शक्ति कार। असंख्य नगर घर चत्वर जाहार ॥२५१॥
एको जाति लोक जाथे अर्बुद अर्बुद। इहा संख्या करिवेक केमन अबुध ॥२५२॥
अवतरिवेन प्रभु जानिञा विधाता। सकल एकत्र करि थुइलेन तथा ॥२५३॥
स्त्री ये जत जयकार दिया बोले हरि। ताहि लक्षं वत्सरे ओ वर्णितेना पारि ॥२५४॥
जे-सब देखये प्रभु नाचिया जाइते। तारा आर चित्त वृत्ति ना पारे धरिते ॥२५५॥
से कारुण्य देखिते. से क्रन्दन शुनिते। परम-लम्पट पड़े कान्दिया भूमिते ॥२५६॥
'बोल बोल' वलि नाचे गौरांग सुन्दर। सर्व-अंगे शोभे माला अति मनोहर ॥२५७॥
यज्ञ सूत्र, त्रिकच्छ-वसन परिधान। धूलाय धूसर प्रभु कमल-नयान ॥२५८॥
मन्दाकिनी-हेन प्रेम-धारेर गमन। चान्देरे ना लय मन देखिसे वदन ॥२५९॥
सुन्दर नासाते बहे अविरत धार। अति क्षीण देखि जेन मुकुतार हार ॥२६०॥
सुन्दर चाँचर केश—विचित्र बन्धन। तहिं मालतीर माला अति-सुशोभन ॥२६१॥
'जनम जनम प्रभु! देह' एइ दान। हृदये रहुक एइ केलि अविराम ॥२६२॥

होने पर सब देवता लोग मनुष्य रूप में कीर्तन में सम्मिलित हो गये ॥ २४६ ॥ ब्रह्मा, शिव, कुवेर वरुण, इन्द्र, यम, सोम आदि समस्त देव समाज, ब्रह्मानन्द सुख के समान अपूर्व लोला के दर्शन करके मनुष्य रूप से सब श्रीचैतन्य देव के साथ हो लिये ॥ २४७-२४८ ॥ अब तो देवता और मनुष्य एकत्र मिलकर 'हरि' कीर्तन कर रहे हैं, बड़े २ मसालों का प्रकाश आकाश में व्याप्त हो रहा है ॥ २४९ । द्वार द्वार पर कदली-वृक्ष, जल पूर्ण घट, दूब, दीप, आम्र-पल्लवादि शोभा दे रहे हैं ॥ २५० ॥ नदिया का वैभव वर्णन करने की सामर्थ्य भला किसमें है। असंख्य नगर, घर, चौराह, बाजार हैं।।२५१॥ एक ही जाति के लोग जहाँ अरबों में हों, वहाँ इन सब नगर, घर आदि की यदि कोई गिनती करना चाहे तो वह मूर्ख ही बन जायगा ॥२५२॥ प्रभु यहाँ अवतार लेंगे जानकर विधाता ने इसे (नदिया को) सब प्रकार से परिपूर्ण कर रक्खा है ॥२५३॥ (समग्र वर्णन तो दूर रहे) केवल जय जयकार करती हुई 'हरि' ध्वनि करने वाली स्त्रियों का ही वर्णन मैं लाख वर्षों में भी नहीं कर सकता ॥ २५४ ॥ जो सब लोग प्रभु को नाचते हुये जाते देख लेते हैं उनकी फिर दूसरी चित्त वृत्ति बनती ही नहीं ॥ २५५ ॥ प्रभु की इस करुण दशा को देख और उनके क्रन्दन को सुनकर बड़ा से बड़ा लम्पट भी रोते हुये भूमि पर गिर जाता है ॥ २५६ ॥ 'हरि बोलो हरि' कहते हुये गौराङ्ग सुन्दर नाच रहे हैं, सर्वाङ्ग में अत्यन्त मनोहर मालाएँ शोभा दे रही हैं ॥ २५७ ॥ स्कन्ध देश पर यज्ञोपवीत पड़ा हुआ है, कटि देश में नटवर की भाँति त्रिकच्छ बसन है। प्रभु कमल नयन धूल से धूसर बने हुये हैं ॥२५८॥ मन्दाकिनी गङ्गा की भाँति नयनों से प्रेमाश्रु की धाराएँ बह रही हैं। श्री मुख के दर्शन कर चन्द्रमा भो तुच्छ लगता है ॥२५९॥ सुन्दर नासिका से भी निरन्तर पतली-सी धार बह रही है जो हृदय पर मोती के हार के समान शोभा दे रही है ॥२६०॥ सुन्दर घुँघराले केश हैं, विचित्र रूप से बँधे हुये हैं। उन पर मालती की माला अत्यन्त शोभायमान हैं ॥२६१॥ "अहा प्रभो! मुझे तो जन्म २ के लिये

एइ मत वर माँगे' सकल भुवन। नाचिया आयेन प्रभु श्रीशचीनन्दन ।।२६३।।
प्रियतम सब्र आगे नाचि नाचि जाय। आपने नाचये पाछे वैकुण्ठेर राय ।।२६४।।
चैतन्य प्रभु से भक्त बाढ़ाइते जाने। जेन करे भक्त तेन करये आपने ।।२६५।।
एइ मत महाप्रभु नाचिते नाचिते। सभार सहित आइसेन गङ्गा पथे ।।२६६।।
वैकुण्ठ नायक नाचे सर्व नदियाय। चतुर्दिगे भक्तगण पुण्य-कीर्ति गाय ।।२६७।
"हरि बोल मुगधा। हरि बोलरे। जाहे नाहि हय शमन-भयरे" ।।२६८।।
एइ सब कीर्त्तने नाचेन गौरचन्द्र। ब्रह्मादि सेवये जाँर पादपद्म द्वन्द्व ।।२६९।।

पाहिड़ा (राग)

नाचे विश्वम्भर, सभार ईश्वर, भागीरथी--तीरे--तीरे।
जार पद धूलि, हइ कुतूहली, सभेइ धरये शिरे ।।२७०।।
शिव शिव नाचे विश्वम्भर ।। ध्रु ।।
अपूर्व विकार, नयने सु-धार, हुँकार गर्जन शुनि।
हासिया हासिया, श्रीभुज तुलिया, बोले 'हरि हरि' वाणी ।।२७१।।
मदन-सुन्दर, गौर कलेवर, दिव्य वास परिधान।
चाँचर चिकुरे, माला मनोहरे, जेन देखि पाँच बाण ।।२७२।।
चन्दन-चर्चित, श्री अङ्ग शोभित, गले दोले वनमाला।
दूलिया पड़ये प्रेमे थिर नहे, आनन्दे शचीर बाला ।।२७३।।
काम शरासन, भ्रू युगपत्तन, भाले मलयज-विन्दु।
मुकुता-दशन, श्रीयुत वदन, प्रकृति करुणासिन्धु ।।२७४।।

यही वरदान दो कि आपकी यह लीला मेरे हृदय में अविच्छिन्न रूप मे विजयी रहे"–ऐसा वरदान सब-के-सब जन माँगते हैं और प्रभु श्री शचीनन्दन नाचते हुये चले जाते हैं ।।२६२–२६३।। अपने प्रियतम जन आगे २ नाचते हुये चले जाते हैं और आप वैकुण्ठनाथ प्रभु पीछे २ नाचते जाते हैं ।।२६४।। वे चैतन्य प्रभु अपने भक्तों का मान बढ़ाना जानते हैं। इसी कारण जैसा भक्त लोग करते हैं, वैसा ही आप भी करते हैं ।।२६५।। इस प्रकार प्रभु नाचते २ सबों के साथ, गङ्गा के मार्ग पर आ गये ।।२६६।। सारी नदिया में वैकुण्ठनायक प्रभु नाचते हैं और उनके चारों ओर भक्तगण उनकी पुण्य कीर्ति का गान करते हैं ।।२६७।। "हे मुग्ध जनो ! हरि बोलो, गोविन्द बोलो, जिससे काल का भय न रहे," इस प्रकार के सब्र कीर्तन में वे प्रभु गौर चन्द्र नृत्य कर रहे हैं कि ब्रह्मादि देवगण जिनके चरण कमलों की सेवा करते हैं ।।२६८–२६९।। पहाड़ी राग ।। अर्थ ।। वैकुण्ठ के ईश्वर विश्वम्भर देव गङ्गा के किनारे २ नाचते हुये जा रहे हैं। सब लोग बड़ा ही आश्चर्य मनाते हुये उनकी चरण-धूली को अपने शीश पर चढ़ाते हैं (शिव ! शिव ! विश्वम्भर नाच रहे हैं) ।। ध्रु० ।।२७०।। उनके अङ्गों में अपूर्व भाव-विकार प्रकट हो रहे हैं, नयनों से अश्रु-धाराएँ बह रही हैं, उनका हुँकार और गर्जन भी सुनायी पड़ रहा है। वे हँस २ कर अपनी भुजाओं को उठाकर 'हरि हरि उच्चारण कर रहे हैं ।।२७१।। वे कामदेव के समान सुन्दर हैं, गौर शरीर है दिव्य वस्त्र धारण किये हुये हैं। घुंघराले केशों पर मनोहर माला कामदेव के पाँच वाण जैसे प्रतीत होते हैं ।।२७२।। चन्दन-चर्चित श्री अंग बड़ा शोभायमान है गले में वनमाला लटक रही है। शचि के लाला प्रेमवश स्थिर नहीं रह पाते हैं, झूमते हुये ढुलक पड़ते हैं ।।२७३।। भ्रकुटी क्या कामदेव के धनुष तना हुये हैं। भाल पर

क्षणे शत शत, विकार अद्भुत, कत करिब निश्चय ।
अश्रु कम्प घर्म, पुलक वैवर्ण्य, ना जानि कतेक हय ।।२७५।।
त्रिभङ्ग हइया, कबहुँ रहिया, अंगुली मुरली वा'य ।
जिनि मत्तगज, चलइ सहज, देखि नयन जुड़ाय ।।२७६।।
अति मनोहर, यज्ञ सूत्र धर, सदय हृदये शोभे ।
ए बुझि अनन्त, हइ गुणवन्त, रहिला परश-लोभे ।।२७७।
नित्यानन्दचान्द, माधव--नन्दन, शोभा दुइ-पाशे ।
जत प्रियगण,करये कीर्त्तन,सभा' चा'हि चा'हि हासे' ।।२७८।।
जाहार कीर्त्तन,करि अनुक्षण, शिव दिगम्बर भेला ।
से प्रभु विहरे, नगरे नगरे, करिया कीर्त्तन-खेला ।।२७६।।
जे करे जे केश, जे अंगे जे वेश, कमला लालन करे ।
से प्रभु धूलाय, गड़ागड़ि जाय, प्रति–नगरे नगरे ।।२८०।।
लाख कोटि दीपे,चान्देर आलोके, ना जानि कि भेल सुखे ।
सकल संसार, हरि बइ आर, ना बोलइ कारो मुखे:।।२८१।।
अपूर्व कौतुक, देखि सर्व लोक, आनन्दे हइल भोर ।
सभेइ सभार, चा'हिया वदन,बोले "भाइ हरि बोल" ।।२८२।।
प्रभुर आनन्द, जाने नित्यानन्द, जखन जे रूप हय ।
पड़िबार बेले, दुइ बाहु मेले, जेन अंगे प्रभु रय ।२८३।।

चन्दन का विन्दु शोभित है, मोती-तुल्य दर्शन हैं, मुख मण्डल श्रीसम्पन्न है, स्वभाव से वे करुणा सिन्धु हैं अथवा यथार्थ करुणा सिन्धु तो वे ही हैं ।।२७४।। उनमें क्षण २ में शत शत अद्भुत भाव विकार प्रकाशित हैं–अश्रुकम्प, प्रस्वेद, पुलक, वैवर्ण्य (रंग–बदय) न जाने कितने होते रहते हैं, मैं कितना निश्चय करके बताऊँ ।।२७५।। कभी (श्यामसुन्दर के भाव में) त्रिभङ्ग खड़े होकर अपने श्रीमुख के समीप इस प्रकार उँगलियों को चलाते हैं जैसे तो मुरली वजा रहे हों । उनकी सहज चाल भी मत्त गजराज की चाल को परास्त कर देती है—देखकर नेत्र शीतल हो जाते हैं ।।२७६ ।। उनके करुणापूर्ण हृदय के ऊपर अति मनोहर यज्ञोपवीत शोभा पा रहा है । लगता है मानो तो स्वयं शेषनाग ही, स्पर्श-सुख के लोभ से, गुणवन्त अर्थात् गुण (सूत्र) का रूप धारण कर हृदय पर विराज रहे हों । २७७।। आपके दोनों ओर नित्यानन्द चन्द्र और माधव नन्दन (गदाधर) शोभा दे रहे हैं । जितने प्रियजन हैं, वे सब कीर्तन कर रहे हैं और निहार २ कर हँस रहे हैं ।।२७८।। जिनका कीर्तन क्षण २ में करते हुये शिवजी (देह-सुधि भूल) दिगम्बर हो गये (हो जाते हैं), वही प्रभु आज नगर २ अपना कीर्तन रूपी खेल खेल रहे हैं ।।२७९।। जिन हस्तों की, जिन केशों की, जिन अंगों की, जिस वेश-भूषा की स्वयं कमलादेवी बड़े आदर-यत्न से सेवा करती हैं, वे ही प्रभु नगर २ में धूल में लोट-पोट हो रहे हैं ।।२८०।। लाखों करोड़ों दीपक (मसाल) जल रहे हैं, चाँदनी भी छिटक रही है । इनके प्रकाश में न जाने कैसा अपूर्व सुख उमड़ रहा है कि समस्त संसार 'हरि' नाम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बोल रहा है ।।२८१।। समस्त लोग इस अपूर्व कौतुक (लीला) को देख आनन्द में विभोर हो गये और एक दूसरे का मुख देखते हुये सभी यही कहते हैं, "भाई ! हरि बोल" ।।२८२।। जिस समय जिस प्रकार का जो भी आनन्द प्रभु को होता है, उसे सब नित्यानन्द जानते हैं । इसी कारण प्रभु के (आनन्द-विह्वल हो) गिरते समय अपनी दोनों भुजाओं को बढ़ाकर अपने अङ्क में सम्हाल

नित्यानन्द धरि, वीरासन करि, क्षणे महाप्रभु वैसे ।
वाम कक्षे तालि,दिया कुतूहली, हरि हरि' बलि हासे' ॥२८४॥

अकपटे क्षणे, कहये आपने, "मुञि देव नारायण ।
कंसासुर मारि,मुञि से कंसारि, बलि छलिया वामन ॥२८५॥

सेतु-बन्ध करि,रावण संहारि,मुञि से राघव-राय ।'
करिया हुँकार, तत्त्व आपनार,कहि चारि दिगे चा'य ॥२८६॥

केबुझे से तत्त्व,अचिन्त्य महत्त्व, सेइ क्षणे कहे आन ।
दन्ते तृण धरि, 'प्रभु प्रभु' वलि, मागये भकति-दान ॥२८७॥

जखने जे करे, गौराङ्ग सुन्दरे, सब मनोहर लीला ।
आपन वदने, आपन चरणे, अंगुलि धरिया खेला ॥२८८॥

वैकुण्ठ-ईश्वर, प्रभु विश्वम्भर, सब नवद्वीपे नाचे ।
श्वेत द्वीप नाम, नव द्वीप ग्राम, वेदे प्रकाशिव पाछे ॥२८९॥

मन्दिरा मृदङ्ग, करताल शंख ना जानि कतेक बाजे ।
महा-हरिध्वनि, चतुर्दिगे शुनि, माझे शोभे द्विजराजे ॥२९०॥

जय जय जय, नगर कीर्तन, जय विश्वम्भर–नृत्य ।
विंश-पद गीत, चैतन्य चरित, जय चैतन्येर भृत्य ॥२९१॥

जेइ-दिगे चा'य,विश्वम्भर राय, सेइ दिगे प्रेमे भासे ।
श्रीकृष्णचैतन्य, नित्यानन्द चान्द,गाय वृन्दावन दासे ॥२९२॥

शिव शिव वलि नाचे बाहु तुलि जानि ज्ञा से तत्त्व कारण––
शिव शिव नाचे विश्वम्भर ॥ अति सुमङ्गलं शिव शिवोच्चारणम् ॥२९३॥

लेते हैं ॥२८३॥ क्षण भर में महाप्रभु नित्यानन्द को पकड़े हुये वीरासन से बैठ जाते हैं और अपने बाँये बगल को बजाते हुये 'हरि हरि' कहते हुये हँसते हैं ।।२८४। फिर तुरन्त ही कपट (आत्म-गोपन) को त्याग कर आप ही आप कहने लगते हैं "मैं नारायण देव हूँ । कंसासुर मारने वाला मैं कंसारि हूँ । बलि को छलने वाला मैं वामनदेव हूँ ।।२८५।। सेतु-बन्धन करके रावण को मारने वाला मैं ही राघव राजा राम हूँ।" इस प्रकार हुँकार करते हुये अपना तत्त्व बखानते हैं और चारों ओर निहारते हैं ।।२८६।। (परन्तु) कौन समझता है उनके उस तत्त्व और अचिन्त्य महत्त्व को। फिर वे उसी समय दूसरी प्रकार की बातें कहने लगते हैं । दाँतों में तिनका दबाकर "प्रभो ! प्रभो" पुकारते हुये उनसे भक्ति-दान की याचना करने लगते हैं ।।२८७।। (परन्तु) जिस समय जो भी गौर सुन्दर करते हैं वे सब मनोहर लीला ही होते हैं–– (वैसा ही सहज) जैसा (बालक का) अपने मुँह में अपना पाँव दे उँगलियों को पकड़ कर खेलना होता है।।२८८। वैकुण्ठ के ईश्वर प्रभु विश्वम्भर समस्त नवद्वीप में नाचते हैं। इस नवद्वीप ग्राम का श्वेतद्वीप नाम वेद में पीछे प्रकाशित होगा ।।२८९।। न जाने कितने मजीरा, मृदङ्ग, करताल, शङ्ख बज रहे हैं । महान् 'हरि' ध्वनि चारों ओर सुनायी दे रही है और मध्य में द्विजराज प्रभु शोभा दे रहे हैं ।।२९०।। इस नगर कीर्तन की जय हो, जय हो, जय हो । श्री विश्वम्भर देव के नृत्य की जय हो । श्री चैतन्य देव के भृत्यों की जय हो । इस बीस पद वाले गीत में श्री चैतन्य चरित (नगर-कीर्तन) वर्णित हुआ ।।२९१।। जिस ओर विश्वम्भर देव दृष्टि करते हैं उसी ओर लोग प्रेम में बहने लगते हैं । यह वृन्दावनदास श्रीकृष्ण-

हेन–महारङ्गे प्रति–नगरे नगर। कीर्त्तन करेन सर्व लोकेर ईश्वर ॥२९४॥
अविच्छिन्न हरिध्वनि सर्वलोके करे। ब्रह्माण्ड भेदिया ध्वनि जाय वैकुण्ठेरे ॥२९५॥
शुनिञा वैकुण्ठनाथ प्रभु विश्वम्भर। सन्तोषे पूर्णित सब हय कलेवर ॥२९६॥
पुनः पुन 'बोल बोल' बोले विश्वम्भर। उल्लासे उठये प्रभु आकाश-उपर ॥२९७॥
मत्तसिंह जिनि कत तरङ्ग प्रभुर। देखिते सभार हर्ष बाढ़ये प्रचुर ॥२९८॥
गङ्गा तीरे तीरे पथ आछे नदीयाय। आगे सेइ पथे नाचि जाय गौरराय ॥२९९॥
आपनार घाटे आगे बहु नृत्य करि। तबे माधाइर घाटे गेला गौरहरि ॥३००॥
बारकोना-घाटे नगरिया–घाटे गिया। गङ्गार नगर दिया गेला सिमुलिया ॥३०१॥
लक्ष कोटि महा-दीप चतुर्दिगे ज्वले। लक्ष कोटि लोक चतुर्दिगे 'हरि' बोले ॥३०२॥
चन्द्रेर आलोक अति अपूर्व देखिते। दिवा निशि एको केहो नारें निश्चयिते ॥३०३॥
सकल दुयार शोभा करे सुमङ्गले। रम्भा, पूर्ण-घट, आम्रसार, दीप ज्वले ॥३०४॥
अन्तरिक्षे थाकि जत स्वर्ग देवगण। चम्पक मल्लिका पुष्प करे वरिषण ॥३०५॥
पुष्प वृष्टि हैल नवद्वीप-वसुमती। पुष्परूपे जिह्वार से करिल उन्नति ॥३०६॥
सुकुमार–पदाम्बुज प्रभुर जानिञा। जिह्वा प्रकाशिला देवी पुष्परूप हञा ॥३०७॥
आगे नाचे अद्वैत श्रीवास हरिदास। पाछे नाचे गौरचन्द्र सकल-प्रकाश ॥३०८॥
जे नगरे प्रवेश करये गौरराय। गृह वित्त परिहरि शुनि लोक धाय ॥३०९॥

चैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र का गान करता है ॥२९२॥ शिव ! शिव ! विश्वम्भर देव नाच रहे हैं। 'शिव' 'शिव' उच्चारण अत्यन्त ही सुमङ्गलमय है ॥२९३॥ इस प्रकार परम आनन्द विनोद के साथ सब लोकों के ईश्वर प्रति नगर २ में कीर्तन कर रहे हैं ॥२९४॥ सब लोग निरन्तर अखण्डित 'हरि' ध्वनि कर रहे हैं, जो ध्वनि ब्रह्माण्ड को भेदन करके वैकुण्ठ को जा रही है ॥२९५॥ उसे सुन सुनकर वैकुण्ठनाथ प्रभु विश्वम्भर का श्री अङ्ग सन्तोष से पूर्ण हो जाता है ॥२९६॥ वे बार बार 'बोलो, बोलो' कह उठते हैं तथा हर्षोल्लास से बहुत ऊँचे आकाश में उछल जाते हैं ॥२९७॥ प्रभु के आनन्द की अनेक तरंगें हैं (यथा नृत्य, गर्जन, हुँकार) ये तरंगें मत्त सिंह को भी मात कर देती हैं। देखकर सबको अतिशय हर्ष होता है ॥२९८॥ नदिया में गङ्गा के किनारे २ मार्ग है। गौराराय पहले उसी मार्ग से नाचते २चले हैं ॥२९९॥ गौर हरि पहले अपने घाट पर खूब नृत्य करके फिर माधाइ घाट पर गये ॥३००॥ फिर बारा कोना घाट और नगरिया घाट जाकर गङ्गा नगर होते हुये सिमुलिया (सीमन्त द्वीप नौ द्वीपों में से एक) पहुँचे। ३०१॥ लाखों करोड़ों बड़े २ दीपक चारों ओर जल रहे हैं और लाखों करोड़ों लोग चारों ओर 'हरि हरि' बोल रहे हैं ॥३०२॥ चन्द्रमा की चाँदनी कुछ अपूर्व ही दिखायी पड़ती है। दिन है या रात—कोई निश्चय नहीं कर सकता है–दोनों एक हो गये से लगते हैं ॥३०३। सब द्वारों पर माँगलिक पदार्थ शोभा दे रहे हैं—केला है, जल पूर्ण घट हैं, आम्र-पल्लवादि हैं, दीपक जल रहे हैं ॥३०४॥ स्वर्ग के देवगण सब अन्तरिक्ष में स्थित होकर चम्पक, मल्लिका आदि पुष्पों की वर्षा करते हैं ॥३०५॥ पुष्पों की वर्षा होने पर नव द्वीप को भूमि ने पुष्प रूप से (मानो तो) अपनी जिह्वा प्रकट कर दी। प्रभु के चरण कमल सुकुमार समझ कर पृथ्वी देवी ने पुष्प रूप से अपनी जिह्वा प्रकाशित करदी ॥३०६॥ आगे २ क्रम से श्री अद्वैत, श्री वास और हरिदास नाच रहे हैं और पीछे गौरचन्द्र नाच रहे है सबके हृदय में बड़ा उल्लास है ॥३०८। जिस नगर में गौराराय प्रवेश करते हैं, वहाँ के लोग सुनते ही गृह-सम्पत्ति छोड़कर दौड़ जाते हैं ॥३०९॥ जगत के जीवन

देखिया से चन्द्रमुख जगत् जीवन। दण्डवत् हइया पड़ये सर्वजन ॥३१०॥
नारी गण हुलाहुली दिया बोले हरि। स्वामी, पुत्र, गृह, वित्त सकल पासरि ॥३११॥
अर्बुद अर्बुद नगरिया नदियार। कृष्ण-रस—उन्माद हैल सभा कार॥३१२॥
केहो नाचे गाय केहो बोले 'हरि हरि'। केहो गड़ागड़ि जाय आपना' पासरि ॥३१३॥
केहो केहो नानामत वाद्य वा'य मुखे। केहो कारो कान्धे उठे परानन्द सुखे ॥३१४॥
केहो कारो चरण धरिया पड़ि कान्दे। केहो कारो चरण आपन केशे वान्धे ॥३१५॥
केहो दण्डवत्-हय काहारो चरणे। केहो कोला कोलि वा करये कारो सने ॥३१६॥
केहो बोले "मुञि एइ निमाञि पण्डित। जगत-उद्धार लागि हइलुँ विदित" ॥३१७॥
केहो बोले "आमि श्वेत द्वीपेर वैष्णव।" केहो वोले"आमि वैकुण्ठेर पारिषद ॥३१८॥
केहो बोले"एबेका जि बेटा गेल कोथा। नागालि पाइले आजि चूर्ण करों माथा"॥३१९॥
पाषण्डी धरिते केहो रड़ दिया जाय। "धर धर एइ पाप पाषण्डी पलाय" ॥३२०॥
वृक्षेर उपरे गिया केहो केहो चढ़े। यूथे यूथे केहो केहो लाफ दिया पड़े ॥३२१॥
पाषण्डीरे क्रोध करि केहो भाङ्गे डाल। केहो बोले"एइ मुञि पाषण्डीर काल"॥३२२॥
अलौकिक शब्द केहो उच्च करि बोले। यमराजा वान्धिया आनिते केहो चले ॥३२३॥
सेइ खाने थाकि बोले "आरे यमदूत। बोल गिया जथा तोर आछे सूर्य सुत ॥३२४॥
वैकुण्ठनायक अवतरि शची–घरे। आपनि कीर्त्तन करे नगरे नगरे ॥३२५॥
जे–नाम–प्रभावे तोर धर्मराज यम। जे–नामे तरिल अजामिल विप्राधम ॥३२६।

स्वरूप प्रभु के मुखचन्द्र के दर्शन कर सब लोग दण्डवत् प्रणाम करते हैं ॥३१०॥ स्त्रियाँ हुलु ध्वनि करती हुई 'हरि' बोलती हैं। वे पति, पुत्र, गृह-सम्पत्ति सब भूल जाती हैं ॥३११॥ नदिया में अरवों नगर वासी हैं। वे सब कृष्ण-रस में उन्मत्त हो गये ॥३१२॥ कोई नाचते गाते हैं, कोई 'हरि हरि' कहते हैं, कोई अपने को भूल भूमि पर लोट पोट हो जाते हैं ॥३१३॥ कोई मुख से नाना प्रकार के वाजों का स्वर निकालते हैं, कोई परमानन्द सुख में किसी के कन्धे पर चढ़ बैठते हैं ॥३१४॥ कोई किसी के चरण पकड़ रोते हैं, तो कोई किसी के चरणों को अपने केशों से बाँध लेते हैं ॥३१५॥ कोई किसी के चरणों पर दण्डवत् पड़ जाता है तो कोई किसी को हृदय से सटा लेता हैं ॥३१६॥ कोई कहता है 'मैं ही निमाइ पण्डित हूँ। मैं जगत् के उद्धार के लिये प्रकट हुआ हूँ ॥३१७॥ कोई कहता है "मैं श्वेत द्वीप का वैष्णव हूँ", कोई कहता है, 'मैं वैकुण्ठ का पार्षद हूँ', ॥३१८॥ कोई कहता है 'अब वह काजी बेटा गया कहाँ? हाथ तो आजाय खोपड़ी चूर चूर न करदूँ तो' ॥३१९॥ कोई निन्दक दुष्ट को पकड़ने के लिये दौड़ता है और चिल्ला-चिल्ला कर कहता है 'पकड़ो, पकड़ो' यह पापी दुष्ट बच कर भागा जा रहा है ॥३२०॥ कोई २ वृक्षों पर चढ़ जाते हैं और वहाँ से फिर झुण्ड के झुण्ड नीचे कूद पड़ते हैं ॥३२१॥ कोई दुष्टों के ऊपर क्रोध करते हुये वृक्ष की डाल तोड़ लेता है तो कोई कहता है 'यह देखो, मैं ही दुष्टों का काल हूँ' ॥३२२। कोई बड़े ऊँचे स्वर से अलौकिक शब्द करता है कोई तो यमराज को बाँध लाने के लिये चल देता है ॥३२३॥ वहीं से पुकार कर वह कहता है 'अरे यमदूत! जाकर अपने मालिक सूर्य पुत्र यम से कह दे कि वैकुण्ठनायक प्रभु शची के गृह में अवतीर्ण होकर अपने आप नगर २ में कीर्तन कर रहे हैं ॥३२४–३२५॥ जिस नाम के प्रभाव से तेरा यम धर्मराज (कहलाता) है, जिस नाम से अधम विप्र अजामिल तर गया, उसी नाम को प्रभु ने सबके मुख से बुलवाया है और जो बोल नहीं सकते उन्होंने वह नाम सुना है। इस कारण यदि तुम प्राणी-मात्र

हेन नाम सर्व मुखे प्रभु बोलाइल। उच्चारणे शक्ति नाहि, से ताहा शुनिल ॥३२७॥
प्राणि-मात्र केहो यदि कर अधिकार। मोर दोष नाहि तबे करिमु संहार ॥३२८॥
झाट कह गिया जथा आछे चित्रगुप्त। पापीर लिखन सब झाट करु लुप्त ॥३२९॥
जे-नाम-प्रभावे तीर्थ-राज वाराणसी। जाहा गाय शुद्ध सत्व श्वेतद्वीप वासी ॥३३०॥
सर्व–वन्द्य महेश्वर जे–नाम–प्रभावे। हेननाम सर्व लोके शुने बोले एवे ॥३३१॥
हेन नाम लओ, छाड़, पर–अपकार। भज विश्वम्भर, नहे करिमु संहार ॥३३२॥
आर जन-दश-विशे रड़ दिया जाय। "धर-धर कोथा काजि भाण्डिया पलाय। ३३३॥
कृष्णेर कीर्त्तन जे जे पापी नाहि माने। कोथा गेले से-सकल पाषण्डी एखने ॥३३४॥
माटि ते किलाय केहो 'पाषण्डी' बलिया। 'हरि वलि बुले पुन हुङ्कार करिया ॥३३५॥
एइ मत कृष्णेर उन्मादे सर्वक्षण। किवा बोले किवा करे नाहिक स्मरण ॥३३६॥
नगरिया–सकलेर उन्माद देखिया। मरये पाषण्डो सब जलिया-पूड़िया ॥३३७॥
सकल पाषण्डी मेलि गणे' मने मने। "गोसाञ्चि करेन काजि आइसे एखने ॥३३८॥
कोथा जाय रंग ढंग,कोथा जाय डाक। कोथा जाय नाट गीत,कोथा जाय जांक ॥३३९॥
कोथा जाय कला-पोंता घट आम्रसार। ए सकल वचनेर शुधि तवे धार ॥३४०॥
जत देख महाताप दिउटि सकल। जत देख हेर सब भावक-मण्डल ॥३४१॥
गण्ड गोल शुनिञा आइसे काजि जवे। सभार गङ्गाय झाँप देखिवाङ तवे ॥३४२॥
केहो बोले "मुञि तवे खलिते थाकिया। नगरिया-सब देङ गलाय वान्धिवा ॥३४३॥

में किसी पर अपना अधिकार दिखाओगे तो, मेरा दोष नहीं, मैं तुम्हें मार डालूँगा' ॥३२६॥ 'अतएव फौरन दौड़कर जाओ जहाँ चित्रगुप्त हैं और कह दो उससे कि वह पापियों का लेखा-जोखा सब रद्द करदे' ॥३२८॥ अरे ! जिस नाम के प्रभाव से वाराणसी तीर्थराज बना हुआ है, जिस नाम को शुद्ध सत्त्व देह धारी श्वेत द्वीप वासी गाते है' ॥३२९॥ जिस नाम के प्रभाव से महेश्वर शिव सबके वन्दनीय बने हुये हैं, ऐसे नाम को अब सब लोग कहते और सुनते हैं॥३३०॥ तुम भी ऐसे नाम का गान करो,छोड़ो पर-अपकार करना और विश्वम्भर का भजन करो, नहीं तो मैं तुमको मार डालुँगा' ॥३३१–३३२॥ और कोई दस-बीस जने दौड़ कर जाते हैं और कहते हैं 'पकड़ो, पकड़ो, इस काजो को' यह हमसे बच कर कहाँ भागा जा रहा है। श्रीकृष्ण के कीर्तन को न मानने वाले वे पापी निन्दक लोग अब सब कहाँ छिप गये ?' ॥३३३–३३४॥ कोई 'पाखण्डो, पाखण्डी' कहते हुये जमीन पर ही लात चलाते हैं और 'हरि' कहते, हुँकार करते हुये चक्कर लगाते हैं ॥३३५॥ इस प्रकार लोग कृष्ण-प्रेम में उन्मत्त होकर क्या क्या कहते हैं, क्या क्या करते हैं- इनको उनको कुछ सुध ही नहीं है ॥३३६॥ सब नगर वासियों के इस उन्माद को देखकर दुष्ट निन्दक लोग सब मिलकर मन-ही मन मनाते हैं कि 'भगवान करे, अभी काजी आजावे' ॥३३७–३३८॥ बस, फिर यह रङ्ग ढङ्ग, यह पुकार-हुँकार, यह नृत्य-गीत, यह ऐंठ-अकड़ सब न जाने कहाँ उड़ जायँगे ॥३३९॥ 'और ये गढ़े हुये केले के वृक्ष, घड़े, आम के पत्ते भी सब न जाने कहाँ चले जायँगे। ये जो हमारे लिये ऐसी २ आवाजें कस रहे हैं,इन सब का बदला हम तभी उतारेंगे ॥३४०॥ इनके इस हो-हल्ला को सुनकर जब काजी आयगा तो जितनी तुम ये बड़ी २ मसालें देखते हो और ये जो सब भावुक मण्डलियाँ दिखायी पड़ती हैं, ये सब गङ्गा में कूदते हुये नजर आयँगे' ॥३४१–३४२॥ और कोई कहता है-'मैं तब किनारे पर खड़ा रह कर इन सब नगर वासियों के गले में रस्सी बाँध बाँध कर देता जाऊँगा' ॥३४ ॥ कोई कहता है,

केहो बोले "चल जाइ कीजिरे कहिते।" केहो बोले "युक्तनहे एमत करिते" ॥३४४॥
केहो बोले "भाइ सब ! एक युक्ति आछे। सभे रड़ दिया जाइ भावकेर काछे ॥३४५॥
आइसे करिया काजि वचन तोलाइ। तवे एक जना ओना रहिब तार ठाँइ ॥३४६॥
एइ मत पाषण्डी आपना' खाय मने। चैतन्येर गण मत्त श्रीहरि कीर्त्तने ॥३४७॥
सभार अङ्गे ते शोभे श्रीचन्दनमाला। आनन्दे गायेन 'कृष्ण' सभे हइ भोला ॥३४८॥
नदियार एकान्त नगर सिमुलिया। नाचिते नाचिते प्रभु उत्तरि लासिया ॥३४९॥
अनन्त अर्बुद हरि हरि ध्वनि शुनि। हुँकार करिया नाचे द्विज-कुल-मणि ॥३५०॥
से कमल-नयने वाकत आछे जल। कतेक वा धारा बहे परम—निर्मल ॥३५१॥
कम्प भावे उठे पड़े अन्तरिक्ष हैते। कान्दे नित्यानन्द प्रभु ना पारे धरिते ॥३५२॥
शेषे वा जे हय मूर्च्छा आनन्द-सहित। प्रहरेक धातु नाहि, सभे चमकित ॥३५३।
एइ मत अपूर्व देखिया सर्व जन। सभेइ बोलेन "ए पुरुष नारायण" ॥३५४॥
केहो बोले "नारद प्रह्लाद शुक जेन।" केहो बोले "जे-तेहउ-मनुष्य नहेन" ॥३५५॥
एइ मत बोले जेन जार अनुभव। अत्यन्त तार्किक बोले "परम वैष्णव" ॥३५५॥
वाह्य नाहि प्रभुर "परम-भक्ति-रसे। बाहु तुलि हरि-बोल हरि-बोल घोषे" ॥३५७॥
श्रीमुखेर वचन शुनिञा एक बारे। सर्व लोके हरि ध्वनि बोले उच्च स्वरे ॥३५८॥
गौर सुन्दर जाये जे--दिगे नाचिया। सेइ दिगे सर्व लोक चलये धाइया ॥३५९॥
काजिर वाड़ीर पथ धरिला ठाकुर। वाद्य कोलाहल काजि शुनये प्रचुर ॥३६०॥

'चलो, चलें काजी से कहने' तो कोई कहता है 'ऐसा करना ठीक नहीं होगा' ॥३४४॥ कोई कहता है, "भाइयो ! एक युक्ति तो यह है कि हम सब दौड़ते हुये इन भावुकों के पास जायँ और झूठ मूठ में ही 'काजी आ गया' कहके हल्ला उड़ा दें परन्तु हममें से कोई एक जगह न रहे' ॥३४५–४६॥ इस प्रकार दुष्ट निन्दक लोग मन के लड्डू खाते हैं और श्रीचैतन्यदेव के गण श्रीहरि-संकीर्तन में मस्त हैं ॥३४७॥ सबके अङ्गों पर चन्दन और मालाएँ सुशोभित हैं और सब आनन्द में सब कुछ भूल श्रीकृष्ण-कीर्तन कर रहे हैं ॥३४८॥ नदिया के एक कौने में सिमुलिया नगर है,प्रभु नाचते २ वहाँ पहुँचे ॥३४९॥ अनन्त अरब हरि नाम की ध्वनि सुनकर द्विज कुल शिरोमणि विश्वम्भर देव हुँकार करते हुये नाचते हैं ॥३५०॥ न जाने प्रभु के उन कमलनयनों में कितना जल भरा हुआ है कि उनमें से कितनी २ परम निर्मल धाराएँ बही चली जा रही हैं ॥३५१॥ प्रभु काँपते हुये कभी ऊपर शून्य में उठ जाते हैं और फिर गिर पड़ते हैं । नित्यानन्द प्रभु उनको पकड़ कर रख नहीं सकते,इसलिये रोने लग जाते हैं ॥३५२॥ प्रभु की वह आनन्दमयी मूर्च्छा सहसा भङ्ग नहीं होती—एक पहर तक अचेत रहते हैं, सभी चमक उठते हैं ॥३५३॥ ऐसा अपूर्व भाव देख सभी कहते हैं, 'यह पुरुष तो नारायण है', कोई कहता है 'यह जो हो सो हो पर मनुष्य नहीं है' ॥३५४–५५॥ इस प्रकार जिसका जैसा अनुभव, वह वैसा ही कहता है । अत्यन्त तार्किक कहता है 'यह परम वैष्णव है' ॥३५६॥ प्रभु को (सचेत होने पर भी) वाह्य-सुधि नहीं है और वे परम भक्ति रस में भरे भुजाओं को उठा 'हरि बोल, हरि बोल' का घोष करते हैं ॥३५७॥ श्रीमुख के वचन एक बार सुनते ही सब लोग ऊँचे स्वर से हरि-ध्वनि करते हैं ॥३५८॥ गौराङ्ग सुन्दर जिधर भी नाचते चले जाते हैं, उधर ही सब लोग दौड़ पड़ते हैं ॥३५९॥ (अब) प्रभु ने काजी के घर का रास्ता पकड़ा । काजी ने भी गाने बजाने का घोर कोलाहल सुना ॥३६०॥ काजी बोला-'जानते हो भाइयो ! यह कैसा गाना-बजाना है ? क्या किसी का ब्याह

काजी बोले'जान'भाइ ! कि गीत वाजन । किवा कारो विभा,'किवा भूतेर कीर्त्तन ।३६१।
मोर बोल लंघिया के करे हिन्दुयानि । झाट जानि आय तवे चलिव आपनि ॥३६२॥
काजिर आदेशे तार अनुचर धाय । समृद्ध देखिया आपनार शास्त्र गाय ॥३६३॥
अनन्त अर्बुद लोक बोले "काजि मार ।" डगरे फेलाइल तवे वेष्टन माथार ॥३६४॥
रड़ दिया काजिरे कहिल झाट गिया । 'किकर' चलह झाट जाइ पलाइया ॥३६५॥
कोटि कोटि लोक संगे निमाञि आचार्य । साजिया आइसे आजि किवा करे कार्य ।३६६।
लाख लाख महाताप देउटी सब ज्वले । लाख कोटि लोक मेलि हिन्दुयानि बोले ॥३६७॥
दुयारे दुयारे कला घट आम्रसार । पुष्पमय पथ सब देखि नदियार ॥३६८॥
ना जानि कतेक खइ कड़ि फूल पड़े । वाजन शुनिते दुइ श्रवण उफड़े ॥३६९॥
हेनमत नदियार नगरे नगरे । राजा आसिते ओ केहो एमत ना करे ॥३७०॥
सब भावकेर बड़ निमाञि पण्डित । सभे चले से नाचिया जाये जेइ भित ॥३७१॥
जे सकल नगरिया मारिल आमरा । आजि 'काजि मार' वलि आइसे ताहारा ॥३७२॥
एको जे हुँकार करे निमाञि आचार्य । सेइ से हिन्दुर भूत, ए ताहार कार्य" । ३७३॥
केहो बोले "वामना एतेक कान्दे केने । वामनार दुइ चक्षे नदी वहे जेने" ॥३७४॥
केहो बोले "वामन आछाड़ जत खाय । सेइ दुःखे कान्दे हेन बुझिये सदाय" ॥३७५॥
केहो बोले "वामन देखिते लागे भय । गिलिते आइसे जेन, देखि कम्प हय" ।३७६॥
काजि बोले "हेन बुझि निमाञि पण्डित । विहा करिवारे वा चलिला कोन भित ।।३७७॥

है या भूतों (हिन्दुओं) का कीर्तन है ? मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके कौन हिन्दुपना दिखा रहे हैं ? जल्दी से पता लगा लाओ, फिर मैं खुद जाऊँगा' ॥३६१–६२॥ काजी के आदेश पर उसके अनुचर दौड़ पड़ते हैं और संकीर्तन-सेना का विशाल वैभव देखकर (भय वश) अपने शास्त्र (कुरान) का पाठ करने लगते हैं ॥३६३॥ अनन्त अरब लोग चिल्ला २ कर कह रहे हैं 'काजी को मारो', यह सुनकर वे डर के मारे अपने सिर की पगड़ी उतार फेंकते हैं और फौरन भाग कर काजी से जा कहते हैं 'क्या करते हो ? चलो झट भाग चलें' ।।३६४–३६५।। 'करोड़ों लोगों के साथ आज निमाइ आचार्य सज-बज के आ रहा है, न जाने क्या कर डाले ।।३६६।। लाखों बड़ी २ मसालें जल रही हैं और लाखों करोड़ों लोग हिन्दु देवताओं का नाम ले रहे हैं ।।३६७।। द्वार द्वार पर केला, घड़ा और आम के पत्तों की सजावट है नदिया का सारा मार्ग पुष्पमय बन गया है ।।३६८।। 'न जाने कितनी खीलें, कौड़ियाँ, फूलें बरस रहे हैं' बाजों के घोर से तो कानों के पर्दे ही फटे जाते हैं ।।३६९।। 'नदिया के घर घर की ऐसी सजावट है जैसा राजा आने पर भी कोई नहीं करता है ।।३७०।। 'सब भाव धारियों में बड़ा है निभाइ पण्डित' वह जिधर नाचता हुआ चलता है, उधर ही सब उसके पीछे २ जाते हैं ।।३७१।। 'जिन सब नागरिकों को हमने मारा-पीटा था, वे ही आज 'मारो काजी को' कहते हुये चले आ रहे हैं । ३७२।। ओह ! अकेला वह निमाई आचार्य ही कैसा हुँकार मारता है । वही हिन्दुओं का भूत है । यह सब उसी का धाम है' ।।३७३।' कोई कहता है 'वह वामन इतना रोता क्यों है ? वामन के दोनों आँखों से जैसी नदी बह रही हो !' ।।३७४।। (इस पर) कोई कहता है, 'बामन पछाड़ जो खाता है, उसी के दर्द से ही रोता है–मैं तो यही समझता हूँ' ।।३७५।। कोई कहता है, 'बामन को देखने से डर लगता है । ऐसा लगता है हमें निकालने आ रहा हो, देखने से कँपकपी छूटती है' ।।३७६।। काजी बोला, 'अच्छा ! अब समझा । निमाइ पण्डित कहीं व्याह करने नहीं जा रहा है वह मेरी

एवा नहे—मोरे लंघि हिन्दुयानि करे। तवे जाति निमुँ आजि सभार नगरे ॥३७८॥
(एइमत युक्ति काजि करे सर्व-गणे। महावाद्य कोलाहल शुनि ततक्षणे) ॥३७७॥
सर्व लोक चूड़ामणि प्रभु विश्वम्भर। आइला नाचिते यथा काजिर नगर ॥३८०॥
कोटि कोटि हरिध्वनि महा कोलाहल। स्वर्ग-मर्त्य-पातालादि पूरिल सकल ॥३८१॥
शुनिञा कम्पित काजिगण-सहेधाय। सर्व-भये जेन भेक इन्दुर पलाय ॥३८२॥
पूरिल सकल स्थान विश्वम्भर-गणे। भये पलाइने के होदिग नाहि जाने ॥३८३॥
माथार फेलिया पाग केहो सेइ मेले। अलक्षिते नाचये, अन्तरे प्राण हाले ॥३८४॥
आर दाड़ि आछे से हइया अधोमुख। नाचे माथा नाहि तोले, तार हाले बुक ॥३८५॥
अनन्त अर्वुद लोक केवा कारे चिने। आपनार देहमात्र केहो नाहि जाने ॥३८६॥
सभेइ नाचेन सभे दायेन कौतुके। ब्रह्माण्ड पूरिया 'हरि' बोले सर्व लोके ॥३८७॥
आसिया काजिर द्वारे प्रभु विश्वम्भर। क्रोधावेशे हुंकार करये बहुतर ॥३८८॥
क्रोधे बोले प्रभु 'आरे काजि वेटा कोथा। झाट आन' धरिया काटिया फेलों माथा ॥३८९॥
निर्यवन करों आजि सकल भुवन। पूर्वे जेन वध कैलुँ से काल यवन ॥३९०॥
प्राण लजा कोथा काजि गेल दिया द्वार। घर भाङ्ग भाङ्ग" प्रभु बोले वारे वार ॥३९१॥
सर्वभूत—अन्तर्यामी श्री शचीनन्दन। आज्ञा लंघिवेक हेन आछे कोन जन ॥३९२॥
महामत्त सर्व लोक चैतन्येर रसे। घरे उठिलेन सभे प्रभुर आदेशे ॥३९३॥

आज्ञा को भङ्ग करके हिन्दुपना दिखा रहा है। तो आज मैं नगर में सबों को जाति ले लूँगा' ॥३७७–३७८॥ (इस प्रकार काजी अपने लोगों के साथ परामर्श करता है और उसे कीर्तन-वाद्य का महा कोलाहल सुनायी पड़ता है) ॥३७९॥ सर्व लोक चूड़ामणि नाचते २ काजी के मोहल्ला में आ पहुँचे। करोड़ों हरि नामों की ध्वनि के महान् कोलाहल ने स्वर्ग, मृत्यु, पाताल आदि सब लोकों को परिपूर्ण कर दिया ॥३८०–३८१॥ जिसे सुनकर काँपता हुआ काजी अपने गणों के साथ भागा मानो तो सर्प के भय से चूहा भाग रहा हो ॥३८२॥ परन्तु चारों ओर सब स्थानों में विश्वम्भर देव के गण छा गये हैं इससे डर कर भागते हुओं को यह सूझ नहीं पड़ता कि किस ओर जायँ' ॥३८३॥ कोई (सिपाही) तो अपने सिर को पगड़ी फेंक भीड़ में शामिल होकर नाचने लगता है, पर लोगों की दृष्टि से बचता हुआ। फिर भी उसके प्राणों में हलचल मची हुई है ॥३८४॥ जिसकी दाड़ी है वह मुँह नीचा करके नाचता है, सिर ऊपर को नहीं उठाता है और डर के मारे उसकी छाती धुक्-धुक् करती है ॥३८५॥ अनन्त अरब लोगों के समुदाय में कौन किसको पहचानता है, जब उन्हें अपनी ही देह की सुध-बुध नहीं है ॥३८६॥ सब ही आनन्द में रँगे हुये नाच रहे, गा रहे हैं और ब्रह्माण्ड-व्यापिनी 'हरि' ध्वनि उद्घोषित कर रहे हैं ॥३८७॥ इतने में ही प्रभु विश्वम्भर काजी के द्वार पर आ पहुँचे और क्रोधावेश में बारम्बार हुँकार करने लगे ॥३८८॥ प्रभु क्रोधित होकर बोले, 'अरे ! काजी बेटा कहाँ है ? ले आओ झट् ! मैं उसका सिर उड़ा डालूँगा ॥३८९॥ आज मैं समस्त लोकों को यवनों से शून्य कर दूँगा जैसे पहले काल यवन का बध किया था ॥३९०॥ वह काजी द्वार बन्द कर अपने प्राणों को लेकर कहाँ गया ? तोड़ो-फोड़ो घर को प्रभु बार २ कहने लगे ॥३९१॥ श्रीशचीनन्दन तो सब प्राणियों के अन्तर्यामी ईश्वर हैं, फिर उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर सके, ऐसा भला कौन है ? ॥३९२॥ अतएव प्रभु का आदेश होते हो सब लोगों ने धावा बोल दिया। श्रीचैतन्य देव के ही आवेश में सब लोग बड़े ही मतवाले हो गये ॥३९३॥ कोई घर फोड़ने लगे, कोई किवाड़ तोड़ने

केहो घर भाङ्गे केहो भाङ्गये दुयार । केहो लाथि मारे केहो करये हुंकार ।।३९४।।
आम्र-पनसेर डाल भाङ्गि केहो फेले । केहो कदलक-बन भङ्गि हरि' बोले ।।३९५।।
पुष्पेर उद्याने लक्ष लक्ष लोक गिया । उपाड़िया फेले सब हुंकार करिया ।।३९६।।
पुष्पेर सहित डाल छिण्ड़िया छिण्डिया । 'हरि' वलि श्रुति मूलेदिया ।।३९७।।
एकटि करिया पत्र सर्वलोके निते । किछु ना रहिल आर काजिर वाड़ीते ।।३९८।।
भङ्गिलेन सब जत वाहिरेर घर । प्रभु बोले "अग्नि देह' वाड़ीर भितर ।।३९९।।
पुड़िया मरुक सर्वगरोर सहिते । सर्व वाड़ी वेढ़ि अग्नि देह' चारिभिते ।।४००।।
देखों मोरे कि केर उहार नर-पति । देखों आजि कोन् जने केर अव्याहति ।।४०१।।
यम काल मृत्यु-मोर सेबकेर दास । मोर दृष्टिपाते हय सभार प्रकाश ।।४०२।।
सङ्कीर्तन-आरम्भे मोहोर अवतार । कीर्त्तनविरोधि-पापी करिमु संहार ।।४०३।।
सर्व पात कीओ यदि करये कीर्त्तन । अवश्य ताहार मुञि करिमु स्मरण ।।४०४।।
तपस्वी संन्यासी ज्ञानी योगी जेजेजन । संहारिमु सब यदि ना करे कीर्त्तन ।।४०५।।
अग्नि देह' घरे तोरा ना करिह भय । आजि सब यवनेर करिमु प्रलय" ।।४०६।।
देखिया प्रभुर क्रोध सर्व भक्तगण । गलाय वान्धिया वस्त्र पड़िला तखन ।।४०७।।
उर्द्धबाहु करिया सकल भक्तगण । प्रभुर चरणारविन्दे करे निवेदन ।।४०८।।
"तोमार प्रधान अंश प्रभु संकर्षण । ताँहार अकाले क्रोधना हय करवन ।।४०९।।
जे-काले हइल सर्व सृष्टिर संहार । संकर्षण क्रोधे हन रुद्र-अवतार ।।४१०।।
जे रुद्र सकल सृष्टि क्षणेके संहरे । शेषे तिँहो आसि मिले तोमार शरीरे ।।४११।।

लगे । कोई लात चलाते हैं, कोई हुँकार करते हैं ।।३९४।। किसी ने आम की तो किसी ने कठहल की डालें तोड़-मरोड़ डालीं, किसी ने केला का बन तहस-नहस कर दिया और लगे 'हरि हरि' ध्वनि करने ।।३९५।। लाखों लोग फुलवाड़ी में घुस गये और हुँकार करते हुये लगे पौधाओं को उखाड़ने ।।३९६।। उन्होंने फूल-पत्तियों के सहित डालों को छिन्न-भिन्न कर दिया और कर्ण मूल पर हाथ रख कर हरि बोल कहते हुये नाचने लगे ।।३९७।। एक एक पत्ता लेने पर भी काजी के घर में कुछ न बचा । तब फिर बाहर के सब घरों को भी तोड़ फोड़ दिया ।।३९८।। तब प्रभु बोले—'लगा दो घर में आग' घर को घेर कर चारों ओर से आग लगा दो । काजी अपने सब गणों के सहित जल मरे ।।३९९-४००।। 'देखूँ तो सही, उसका राजा मेरा क्या कर लेता है । देखूँ आज कौन इन्हें बचाता है ।।४०१।। यम, काल, मृत्यु ये सब मेरे सेवक के दास हैं । मेरे दृष्टि देने पर ही ये सब अपने कार्य का प्रकाश करते हैं ।।४०२।। 'संकीर्तन आरम्भ करने के लिये ही मेरा अवतार है, अतः इस कीर्तन के विरोध करने वाले पापियों का मैं संहार करूँगा ।।४०३।। परन्तु यदि सब प्रकार का पाप करने वाला पातकी भी मेरा कीर्तन करेगा तो मैं उसे अवश्य स्मरण करूँगा ।।४०४।। 'यदि तपस्वी, संन्यासी, ज्ञानी, योगी जो जो लोग मेरा कीर्तन नहीं करेंगे तो मैं उन सबका संहार कर डालूँगा ।।४०५।। तुम लोग इसके घर में आग लगा दो—डरो मत । मैं आज सब यवनों का प्रलय कर दूँगा ।।४०६।। प्रभु के क्रोध को देखकर भक्त लोग सब गले पर वस्त्र लपेट भूमि पर पड़ गये और भुजाओं को उठाकर प्रभु के श्री चरणकमलों के समीप निवेदन करने लगे ।।४०७-४०८।। प्रभु ! आपके प्रधान अंश संकर्षण देव हैं । उनको असमय पर कभी क्रोध नहीं होता है ।।४०९।। जब समस्त सृष्टि के विनाश का काल आ पहुँचता है, तब उन संकर्षण के कोप से रुद्र का अवतार होता है ।।४१०।। जो रुद्र समस्त सृष्टि

अंशांशेर क्रोधे जार सकल संहरे। से तुमि करिले क्रोध कोन् जन तरे ।।४१२।।
'अक्रोध परमानन्द तुमि' वेदे गाय। वेदवाक्य प्रभु घुचाइते ना जुपाय ।।४१३।।
ब्रह्मादि ओ तोमार क्रोधेर नहे पात्र। सृष्टि-स्थिति-प्रलय तोमार लीला-मात्र ।।४१४।।
करिलात काजिर अनेक अपमान। आर यदि घटे तवे संहारिह प्राण ।।४१५।।
"जय विश्वम्भर महाराज राजेश्वर। जय सर्वलोक नाथ श्रीगौर सुन्दर ।।४१६।।
जय जय अनन्त शयन रमाकान्त।" बाहु तुलि स्तुति करे सकल महान्त ।।४१७।।
हासे महाप्रभु सर्वदासेर वचने। 'हरि' बलि नृत्य रसे चलिला तखने ।।४१८।।
काजिरे करिया दण्ड सर्व-लोक-राय। संकीर्त्तन रसे सर्व गणे नाचि जाय ।।४१९।।
मृदङ्ग मन्दिरा वाजे शंख करताल। 'राम कृष्ण जय ध्वनि गोविन्द गोपाल' ।।४२०।।
काजिर भाङ्गिया घर सर्व-नगरिया। महानन्दे 'हरि' बलि जायेन नाचिया ।।४२१।।
पाषण्डीर हइल परम चित्तभङ्ग। पाषण्डी विषाद भावे, वैष्णवेर रङ्ग ।।४२२।।
"जय कृष्ण मुकुन्द मुरारि वनमाली।" गाय सब नगरिया दिया हाथे तालो ।।४२३।।
जय-कोलाहल प्रति नगरे नगरे। भासये सकल लोक आनन्द सागरे ।।४२४।।
केवा कोन् दिगे नाचे, केवा गाय वा'य। हेन नाहि जानि कोन् दिगे केवा धाय ।।४२५।।
आगे नृत्य करिया चलये भक्तगण। शेषे चले महाप्रभु श्रीशचीनन्दन ।।४२६।।
कीर्त्तनीया—ब्रह्मा शिव अनन्त आपनि। नृत्यकरे सर्व-वैकुण्ठेर चूड़ामणि ।।४२७।।

का क्षण भर में विनाश कर देते हैं वे भी अन्त में आकर आपके शरीर में लीन हो जाते हैं ।।४११।। इस प्रकार जिनके अंश (संकर्षण) के अंश (रुद्र) के ही क्रोध से सारी सृष्टि का संहार हो जाता है. वे आप (सर्वांशी) यदि कोप करें तो फिर भला कौन बचा सकता है ।।४१२।। आपको तो वेद में 'अक्रोध परमानन्द' स्वरूप कहकर गान किया गया है सो यह वेद-वाक्य, प्रभो ! मिटाने के योग्य नहीं है ।।४१३।। ब्रह्मा आदि भी आपके क्रोध के पात्र नहीं हैं। यह सृष्टि, स्थिति, प्रलय तो आपकी एक लीला मात्र है ।।४१४।। 'खूब अपमान काजी का कर डाला। यदि आगे फिर ऐसा घटे (अर्थात् संकीर्तन का विरोध करे) तो आप उसका प्राण लेवें ।।४१५।। सब महन्त लोग भुजाओं को उठाकर स्तुति करते हैं। (इतना निवेदन कर) 'महाराज राजेश्वर विश्वम्भर की जय हो ! सर्व लोक नाथ श्री गौर सुन्दर की जय हो ! शेषशायी रमाकान्त की जय हो' ।।४१६-४१७।। महाप्रभो अपने दासों के बचनों को सुनकर हँसते हैं और 'हरि' कह कर अपने नृत्य के आनन्द में चल देते हैं ।।४१८।। इस प्रकार काजी को दण्ड देकर सब लोकों के नाथ, संकीर्तन-रस में निमग्न, अपने गणों के साथ नाचते हुये चले जा रहे हैं ।।४१९।। मृदङ्ग, मजीरा, शंख, करताल बज रहे हैं, 'राम कृष्ण गोविन्द गोपाल' की जय-ध्वनि हो रही है ।।४२०।। सब नागरिक लोग काजी के घर को तोड़-फोड़ कर, बड़े आनन्द में भरे, 'हरि' ध्वनि करते हुये नाचते २ जा रहे हैं ।।४२१।। दुष्ट निन्दकों के चित्त को भारी चोट पहुँची है, उनमें उदासी छा गयी है और वैष्णवों को आनन्द हो रहा है ।।४२२।। 'जय कृष्ण मुकुन्द मुरारि बनमाली'—इसे सब नागरिक जन ताली दे दे कर गाते हैं ।।४२३।। नगर २ में जय जयकार का कोलाहल मच रहा है। सब लोग आनन्द-सागर में वहे जा रहे हैं ।।४२४।। उन्हें यह ज्ञान नहीं कि कौन किधर नाच रहा है, कौन गा रहा, बजा रहा और कौन किधर चला जा रहा है ।।४२५।। आगे २ भक्त लोग नाचते हुये चले जा रहे हैं और सबसे पीछे कमलनयन प्रभु चले जा रहे हैं ।।४२६।। आज स्वयं ब्रह्मा, शिव, शेष कीर्तनियाँ हैं और सब वैकुण्ठों के चूड़ामणि प्रभु नृत्यकारी हैं

इहाते सन्देह किछु ना करिह मने। सेइ प्रभु कहियाछे कृपाय आपने ॥४२८॥
अनन्त अर्बुद लोक सङ्गे विश्वम्भर। प्रवेश करिला शंख वणिक्-नगर ॥४२६॥
शंखवणिकेर पुरे उठिल आनन्द। 'हरि' वलि बाजाय मृदङ्ग घन्टाशंख ॥४३०॥
पुष्पमय पथे नाचि चले विश्वम्भर। चर्तुदिगे ज्वले दीप परम-सुन्दर ॥४३१॥
से चन्द्रेर शोभाओ कि कहिवारे पारि। जाहाते कीर्त्तन करे गौराङ्ग श्रीहरि ॥४३२॥
प्रतिद्वारे पूर्णकुम्भ रम्भा आम्रसार। नारीगणे 'हरि' वलि देइ जयकार ॥४३३॥
एइमत सकल नगरे शोभा करे। आइला ठाकुर तंतु वायेर नगरे ॥४३४॥
उठिल मंगल ध्वनि जय कोलाहल। तन्तुवाय-सब हैला आनन्दे विह्वल ॥४३५॥
नाचे सब नगरिया दिया करताली। "हरि बोलि मुकुन्द गोपाल बनमाली ॥४३६॥
सर्व मुखे हरिनाम शुनि प्रभु हासे'। नाचिया चलिला प्रभु श्री धरेर वासे ॥४३७॥
भाङ्गा एक घर मात्र श्रीधरेर सार। उत्तरिला गिया प्रभु ताहार दुयार ॥४३८॥
सबे एक लौह पात्र आछये दुयारे। कत ठाञि तालि ताहा चोरे ओ ना हरे ॥४३६॥
नृत्य करे महा प्रभु श्रीधर-अङ्गने। जल पूर्ण पात्र प्रभु देखिला आपने ॥४४०॥
भक्त प्रेम वुझाइते श्रीशचीनन्दन। लौह पात्र तुलि लइलेन ततक्षण ॥४४१॥
जल पिये महाप्रभु सुखे आपनार। कार शक्ति आछे ताहा 'नय' करिवार ॥४४२॥
'मइलुँ मइलुँ' बलि डाकये श्रीधर। "मोरे संहारिते से आइला मोर घर ॥४४३॥
वलिया मूर्च्छित हैला सुकृति श्रीधर। प्रभु बोले "शुद्ध मोर आजि कलेवर ॥४४॥

॥४२७॥ मेरे इस कथन में कोई सन्देह न करे- यह (मुझे) स्वयं प्रभु ने ही कृपा करके कहा है ॥४२८॥ (इस प्रकार नाचते-गाते हुये) अनन्त अरब लोगों के साथ विश्वम्भर देव ने शंख बनिकों के नगर में प्रवेश किया ॥४२६। शंख वनिकों के नगर में आनन्द का कोलाहल मच गया। लोग 'हरि' ध्वनि करते हुये मृदङ्ग, घण्टा, शंख बजाने लगे ॥४३०॥ प्रभु विश्वम्भर पुष्पमय पथ पर नाचते चले जा रहे हैं। चारों ओर बड़े सुन्दर दीपक जल रहे हैं ॥४३१॥ उस चन्द्रमा की शोभा भी क्या कुछ कही जा सकती है कि जिसके प्रकाश में गौराङ्ग श्री हरि नृत्य कर रहे हों ? ॥४३२॥ द्वार द्वार प्रति जल पूर्ण घट, कदली, आम्र-पल्लव शोभा दे रहे हैं और नारीगण 'हरि' ध्वनि करती हुई जय जयकार करती हैं ॥४३३॥ इस प्रकार सारा नगर शोभायमान था। प्रभु चलते २ बुनकरों के नगर में आये ॥४३४॥ (उनके आते ही) मङ्गल ध्वनि होने लगी,जय जयकार का कोलाहल छा गया। बुनकर लोग सब आनन्द में विह्वल होगये ॥४३५॥ सब नगरवासी लोग ताली बजाते हुये नाचने लगे और 'हरि बोल मुकुन्द गोपाल बनमाली' गाने लगे ॥४३६॥ सबों के मुख से हरिनाम सुनकर प्रभु हँसे और फिर श्रीधर के घर की ओर नाचते हुये चल दिये ॥४३७॥ एक टूटी-फूटी झोंपड़ी ही श्रीधर का सर्वस्व था। प्रभु उसके द्वार जा लगे ॥४३८॥ उसके द्वार पर केवल मात्र एक लोहा का पात्र रक्खा हुआ है, उसमें भी कई जगह टाँके लगे हुये हैं। ऐसा वह पात्र है कि चोर भी न चुरावे। ४३६॥ महाप्रभु श्रीधर के आँगन पर नृत्य कर रहे हैं। प्रभु ने जल पूर्ण उस लोहे के पात्र को देखा ॥४४०॥ भक्ति-प्रेम की महिमा प्रकट करने के लिये श्रीशचीनन्दन प्रभु ने उस लोहे के पात्र को तुरन्त उठा लिया ॥४४१॥ अपने सुख में मगन प्रभु उस जल को पीने लगे। भला किसकी शक्ति है जो उनको मना कर सके ॥४४२॥ श्रीधर चिल्ला कर कहने लगा-'मर गया ! मैं तो मर गया ! मुझे मारने के लिये ही यह मेरे घर आया है' ॥४४३॥ इतना कह कर पुण्यशाली श्रीधर मूर्च्छित होगया।

आजि मोर भक्ति हैल कृष्णेर चरणे। श्रीधरेर जलपान करिलों जखने ॥४४५॥
एखने से विष्णु भक्ति हइल आमार।" कहिते कहिते पड़े नयने सु-धार ॥४४६॥
'वैष्णवेर जल-पाने विष्णु भक्ति हय।' सभारे वुझाय प्रभु गौराङ्ग सदय ॥४४७॥
"प्रार्थयेद्वैष्णावस्यान्नं प्रयत्नेन विचक्षणः। सर्वपाप विशुद्धयर्थं तदभावे जलं पिवेत् ॥४४८॥
भक्त वात्यल्य देखि सर्व भक्तगण। सभार उठिल महा-आनन्द-क्रन्दन ॥४४९॥
नित्यानन्द गदाधर पड़िला कान्दिया। अद्वैत श्रीवास कान्दे भूमिते पड़िया ॥४५०॥
कान्दे हरिदास गङ्गादास वक्रेश्वर। मुरारि मुकुन्द कान्दे श्री चन्द्रशेखर ॥४५१॥
गोविन्द गोविन्दानन्द श्री गर्भ श्रीमान्। कान्दे काशीश्वर श्रीजगदानन्द राम ॥४५२॥
जगदीश गोपीनाथ कान्देन नन्दन। शुक्लाम्वर गरुड़ कान्दये सर्वजन ॥४५३॥
लक्ष कोटि लोक कान्दे शिरे दिया हाथ। "कृष्णरे ठाकुर मोरि अनाथेर नाथ ॥४४५॥
कि हैल वलिते नारि श्रीधरेर वासे। सर्वभावे प्रेम भक्ति हइल प्रकाशे ॥४५५॥
'कृष्ण' वलि कान्दे सर्व जगत् हरिषे। संकल्प हइल सिद्ध, गौरचन्द्र हासे' ॥४५६॥
श्रीदेख सब भाइ ! एइ भक्तेर महिमा। भक्त बात्सल्येर प्रभु करिलेन सीमा ॥४५७॥
लौहमय जल पात्र वाहिरेर जल। परम-आदरे पान कैलेन सकल ॥४५८॥
परमार्थे पान-इच्छा हइल जखने। शुद्धामृत भक्त-जल हइल तखने ॥४५९॥
भक्ति वुझाइते से एमत पात्रे जल। परमार्थे वैष्णवेर सकल निर्मल ॥४६०॥

प्रभु कहने लगे 'आज मेरी काया शुद्ध होगयी ॥४४४॥ जैसे ही मैंने श्रीधर का जल पिया वैसे ही श्रीकृष्ण के चरण में आज मेरी भक्ति होगई ॥४४५॥ 'अब वह विष्णु-भक्ति मेरी हो गयी।' ऐसा कहते २ प्रभु के नयनों से अश्रुओं की धाराएँ बह चलीं ॥४४६॥ गौराङ्ग प्रभु इस लीला के द्वारा सबको यही जतला रहे हैं कि वैष्णव के जल पीने से विष्णु भक्ति प्राप्त होती है ॥४४७॥ तथाहि पद्म पुराणे—आदि खण्डे (३१—११२) श्लोकः—(अर्थ)—चतुर व्यक्ति समस्त पापों से विशुद्ध होने के लिये प्रयत्न पूर्वक वैष्णव के अन्न के निमित्त प्रार्थना करे। अन्न के अभाव में उनका जल ही पान करे ॥४४८॥ प्रभु की भक्त वत्सलता का प्रत्यक्ष दर्शन करके भक्तजनों की सभा में अतिशय आनन्दोद्रेक के कारण क्रन्दन का कोलाहल मच गया ॥४४९॥ नित्यानन्द और गदाधर रोते हुये गिर पड़े। अद्वैताचार्य, श्रीदास भी भूमि पर लोट कर रोने लगे ॥४५०॥ हरिदास, गङ्गादास, वक्रेश्वर, मुरारि, मुकुन्द, श्री चन्द्रशेखर, गोविन्द, गोविन्दानन्द, श्रीगर्भ, श्रीमान्, काशीश्वर, जगदानन्द, राम, जगदीश, गोपीनाथ, नन्दनाचार्य, शुक्लाम्बर, गरुड़ आदि सब भक्त लोग रोने लगे ॥४५१—५२—५३॥ लाखों-करोड़ों लोग सिर पर हाथ दिये रो रहे हैं और 'हे कृष्ण ! हे मेरे प्रभो ! हे अनाथों के नाथ !' कह के पुकार रहे हैं ॥४५४॥ श्रीनिवास के निवास-स्थान में क्या कहूँ क्या हो गया कि सहसा सर्व भावों के सहित प्रेम का प्रकाश हो गया ॥४५५॥ (वह ऐसे कि) सब जगत् "कृष्ण-कृष्ण' कहकर रो रहा है और गौरचन्द्र हँस रहे हैं कारण कि उनका संकल्प (सबके मुख से नाम लिवाने का) सिद्ध जो हो गया ॥४५६॥ देखो भाइयो ! इस श्रीधर भक्त की महिमा जिसके निकट प्रभु ने भक्त-वत्सलता की सीमा प्रकट कर दिखायी ॥४५७॥ एक तो पात्र लोहे का, उस पर जल भी बाहर का अशुद्ध, पर ऐसा जल भी प्रभु ने परम आदर के सहित सब पान कर लिया ॥४५८॥ जिस समय परमार्थ-दृष्टि से उस जल को पीने की इच्छा हुई, उसी समय भक्त का वह जल शुद्ध अमृत जैसा हो गया ॥४५९॥ भक्त को समझाने के लिये ही वह ऐसे एक पात्र का जल था—परन्तु वस्तुतः परमार्थ दृष्टि से वैष्णवों की तो सब ही वस्तुएँ

दाम्भिकेर रत्नपात्र दिव्य-जल-सने। आछूक पिवार कार्य, ना देखे नयने ॥४६१॥
जे-से द्रव्य सेवकेर सर्व भावे खाय। नैवेद्यादि–विधिरो अपेक्षा नाहि चाय ॥४६२॥
अल्प देखि दासे ना दिल ओवले खाय। तार साक्षी ब्राह्मणेर खुद द्वारकाय ॥४६३॥
अवशेषो सेवकेर करे आत्मसाथ। तार साक्षी वनवासे युधिष्ठिर–शाक ॥४६४॥
सेवक कृष्णेर पिता माता पत्नी भाइ। दास वइ कृष्णेर द्वितीय आर नाइ ॥४६५॥
जे रूप चिन्तये, दासे, से-इ रूप हय। दासे कृष्ण करिवारे पायरे विक्रय ॥४६६॥
'सेवक वत्सल प्रभु' चारि वेदे गाय। सेवकेर स्थाने प्रभु प्रकाश सदाय ॥४६७॥
नयन भरिया देख दासेर प्रभाव। हेन दास्य भावे कृष्णे कर' अनुराग ॥४६८॥
अल्प हेन ना मानिह 'कृष्णदास' नाम। अल्प–भाग्येदास नाहि करे भगवान् ॥४६९॥
बहुकोटि जन्म जे करिल निज धर्म। अहिंसाय अमायाय करे सर्व कर्म्म ॥४७०॥
अहर्निश दास्य भावे जे करे प्रार्थन। गंगा लभ्य हय काले वलि 'नारायण'॥४७१॥
तवे हय मुक्त–सर्ववन्धेर विनास। मुक्त हैले सेइ हय गोविन्देर दास ॥४७२॥
एइ व्याख्या करे भाष्य कारेर समाजे। मुक्त–सवो लीलातनु करि कृष्ण भजे ॥४७३॥
अतएव भक्त हय ईश्वर समान। भक्त स्थाने पराभव मागे' भगवान् ॥४७४॥
अनन्त–ब्रह्माण्डे अत आछे स्तुति माला। 'भक्त' हेन स्तुतिर ना धरे केहो कला ॥४७५॥

निर्मल हैं ॥४६०॥ परन्तु दाम्भिक लोगों के रत्न-पात्र के सुन्दर जल का पीना तो दूर रहा, प्रभु उसके प्रति दृष्टि तक नहीं देते ॥४६१॥ (और) सेवक की तो जैसी–कैसी वस्तु भी सर्व भाव सहित प्रभु ग्रहण कर लेते हैं–नैवेद्यादि समर्पण की कोई विधि की अपेक्षा नहीं रखते ॥४६२॥ अपनी वस्तु को अल्प अथवा तुच्छ समझ कर यदि दास स्वयं नहीं भी देता है तो प्रभु उसे वल पूर्वक छीन कर खा लेते हैं–इसका प्रमाण है द्वारिका में ब्राह्मण के चाँवल ॥४६३॥ (और तो और) सेवक का तो शेष उच्छिष्ट भी उदरस्थ कर लेते हैं–इसका प्रमाण है वनवास काल में युधिष्ठिर का साग ॥४६४॥ सेवक जन तो श्रीकृष्ण का पिता, माता, पत्नी, भाई सब ही है। दास के बिना श्रीकृष्ण का अपना दूसरा कोई नहीं है ॥४६५॥ जो भी रूप का चिन्तन दास करता है प्रभु वही रूप धारण कर लेते हैं। दास तो कृष्ण को बेच तक सकता है। ४६६॥ चारों वेद प्रभु को 'सेवक वत्सल' कह कर गाते हैं। सेवकजन के निकट ही प्रभु का सदा प्रकाश होता है ॥४६७॥ दास के प्रभाव को आज नेत्र भर कर देख लो और श्रीकृष्ण के इस दास्य भाव मे प्रेम करो ॥४६८॥ 'कृष्णदास' नाम को कोई छोटा न समझना, (कारण कि) छोटे भाग्य वालों को भगवान् अपना दास नहीं बनाते ॥४६९॥ जो करोड़ों जन्मों तक स्वधर्म का पालन करता है,हिंसा और कपट रहित हो सब धर्मों को करता है तथा अहर्निश दास्य भाव से जो प्रार्थना किया करता है उसको अन्त काल में गङ्गा की प्राप्ति होती है और उसके मुख से 'नारायण' नाम निकलता है ॥४७०–७१॥ तब उसके सब वन्धन नष्ट हो जाते हैं और वह मुक्त हो जाता है। मुक्त हो जाने पर वही तब गोविन्द का दास होता है। ४७२॥ यह व्याख्या ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार (श्रीशङ्कराचार्य) अपनी समाज में करते हैं कि मुक्त गण भी लीला-देह धारण करके श्रीकृष्ण का भजन करते हैं ॥४७३॥ तथा चोक्तं सर्वज्ञ भाष्य कृद्भिः–'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते' ॥२। (अर्थः–मुक्त पुरुष गण भी स्वेच्छा पूर्वक शरीर ग्रहण करके भगवान् का भजन करते हैं।) अतएव भक्त ईश्वर के समान होता है। 'भक्त के निकट भगवान् पराजय चाहते हैं' ॥४७४॥ अनन्त ब्रह्माण्ड में जितनी भी स्तुतियों का समूह है, 'भक्त' नाम मात्र में जो स्तुति है, उसका

'दास'-नामे ब्रह्मा शिव हरिष सभार। धरणीधरेन्द्रो चाहे "दास-अधिकार ॥४७६॥
ए सब ईश्वर-तुल्य स्वभावेइ भक्त। तथापिह भक्त हइवारे अनुरक्त ॥४७७॥
हेन भक्त अद्वैतेरे वलिते हरिषे। पापी सब दुख पाय निज-कर्म-दोषे ॥४७८॥
कृष्णेर सन्तोष वड 'भक्त' हेन नामे। कृष्णचन्द्र वइ भक्त आर के वा जाने ॥४७६॥
उदर-भरण लागि एवे पापी सब। लओलाय ईश्वर आमि'-मूले जरद्‌ग ॥४८०॥
गर्दभ-शृगाल-तुल्य शिष्यगण लैया। केहो बोले "आमि रघुनाथ, भाव' गिया" ॥४८१॥
कुक्कुरेर भक्ष्य देहु—इहारे लइया। बोलाय 'ईश्वर' विष्णु माया मुग्ध हैया ॥४८२॥
सर्व-प्रभु गौरचन्द्र श्रीशचीनन्दन। देख तार शक्ति एइ भरिया नयन ॥४८३॥
इच्छा मात्र कोटि कोटि समृद्ध हइल। कत कोटि महादीप ज्वलिते लागिल ॥४८४॥
केवा रुइलेक कला प्रति घरे घरे। केवा गाय वा'य केवा पुष्प वृष्टि करे ॥४८५॥
करिलेन मात्र श्री धरेर जल-पान। कि हइल ना जानि प्रेमेर अधिष्ठान ॥४८६॥
भक्त वात्सल्य देखि त्रिभुवन कान्दे। भूमिते लोटाय केहो केश नाहि वान्धे ॥४८७॥
श्रीधर कान्दये तृण धरिया दशने। उच्चकरि 'हरि' बोले सजल-नयने ॥४८८॥
"कि जल करिल पान त्रिदेशर राय।" नाचये श्रीधर कान्दे करे "हाय हाय ॥४८९॥
भक्त जल पान करि प्रभु विश्वम्भर। श्रीधर-अङ्गने नाचे वैकुण्ठ ईश्वर ॥४९०॥
प्रियगणे चतुर्दिगे गाय महारसे। नित्यानन्द गदाधर शोभे दुइ पाशे ॥४९१॥

कला (अंश) भी कोई नहीं है अर्थात् 'भक्त' सम्बोधन से उत्तम कोई स्तुति नहीं है ॥४७५॥ 'दास' नाम से तो ब्रह्मा, शिव सबको हर्ष होता है। धरणी धर शेष भी 'दास' पदवी की आकांक्षा करते हैं ॥४७६॥ यद्यपि ये सब (ब्रह्मा, शिव, शेष) ईश्वर के ही तुल्य हैं तथा स्वभाव से भक्त ही हैं तथापि भक्त बनने में इनकी बड़ी प्रीती है ॥४७७॥ ऐसा है दास-भक्त का स्वरूप इसे वर्णन करते हुये अद्वैताचार्य हर्ष को प्राप्त हो रहे हैं ॥४७८॥ (इसी कारण) श्रीकृष्ण को 'भक्त' इस पदवी से बड़ा सन्तोष होता है और श्रीकृष्ण-चन्द्र बिना और कौन भक्ति (की महिमा) को जानता है ॥४७९॥ परन्तु इस समय तो पापी लोग सब अपना पेट भरने के लिये 'मैं ईश्वर हूँ' ऐसा कहते हैं पर हैं.वे महा मूर्ख ॥४८०॥ कोई तो गधा और गीदड़ जैसे शिष्यों को लेकर कहता है 'मैं ही रघुनाथ हूँ, ऐसी भावना करो' (कुत्तों का भोजन) इस देह को लेकर वे विष्णु माया से मोहित हो ईश्वर बनते हैं ॥४८१-८२॥ गौरचन्द्र श्रीशचीनन्दन (ही) सबके प्रभु हैं—नेत्र भर कर उनकी शक्ति को देख लो ॥४८३॥ उनकी इच्छा मात्र से कोटि २ वैभव का प्रकाश हो गया—न जाने कितनी कोटि महाद्वीप जलने लगे ॥४८४॥ किसने घर घर में केले के वृक्ष लगा दिये? किसने गाया, किसने बजाया, किसने ये फूल बरसाये ॥४८५॥ (यह सब कार्य प्रभु की लीला-शक्ति से ही हुये) प्रभु ने श्रीधर का जल केवल पिया ही तो था, परन्तु न जाने यह क्या हुआ कि सर्वत्र प्रेम का विस्तार हो गया। त्रिभुवन रोने लगा प्रभु का भक्तवात्सल्य देख। लोग भूमि पर लोट पोट हो गये, उनके केश खुल गये हैं पर कोई नहीं बाँधता है ॥४८६-८७॥ श्रीधर दाँतों में तृण दबा कर रोता है और अश्रु पूर्ण नेत्रों से उच्च स्वर से 'हरि' ध्वनि करता है ॥४८८॥ 'देवताओं के नाथ ने यह कैसा जल पी लिया' कहता हुआ श्रीधर 'हाय हाय' करता है, रोता है और नाचता है ॥४८९॥ प्रभु विश्वम्भर भक्त के जल को पीकर भक्त के आँगन में वैकुण्ठ के ईश्वर आप नाचते हैं ॥४९०॥ प्रिय परिकर सब चारों ओर प्रेम रस के आनन्द में गाते हैं। नित्यानन्द और गदाधर प्रभु के दोनों ओर शोभा देते हैं ॥४९१॥ केले का खोला (गुदा)

खोला वेचा–सेवकेर देख भाग्य-सीमा। ब्रह्मा शिव कान्दे जार देखिया महिमा ॥४९२॥
धने जने पाण्डित्ये कृष्णेरे नाहि पाइ। केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञि ॥४९३॥
जलपाने श्रीधरेर अनुग्रह करि। नगरे आइला पुन गौराङ्ग श्रीहरि ॥४९४॥
नाचे गौरचन्द्र भक्ति रसेर ठाकुर। चतुर्दिगे हरिध्वनि शुनिञा प्रचुर ॥४९५॥
सर्व लोक जिने नवद्वीपेर शोभाय। हरि–बोल शुनिमात्र सभार जिह्वाय ॥४९६॥
जे सुखे विह्वल शुक नारद शंकर। से सुखे विह्वल सब नदीया नगर ॥४९७॥
सर्व नदियाय नाचे त्रिभुवन–राय। गादिगाछा–पारड़ाङ्गा आदि दिया जाय ॥४९८॥
'एक निशा' हेन ज्ञान ना करिह मने। कत कल्प गेल सेइ निशिर कीर्त्तने ॥४९९॥
चैतन्य चन्द्रेर किछु असम्भव नय। भूमङ्गे जाहार हय ब्रह्मार प्रलय ॥५००॥
महा भाग्यवाने से सबत्तत्त्वजाने। सूक्ष्म तर्क वादी पापी किछुइ ना माने ॥५०१॥
जे नगरे नाचे वैकुण्ठेर अधिराज। ताहारा भासये परानन्द–सिन्धु–माझ ॥५०२॥
से हुँकार से गर्जन से प्रेमेर जल। देखिया कान्दये स्त्री पुरुष सकल ।५०३॥
केहो बोले "शचीर चरणे नमस्कार। हेन महा पुरुष जन्मिला गर्भे जाँर ॥५०४॥
केहो बोले "जगन्नाथ मिश्र पुण्यवन्त।" केहो बोले "नदियार भाग्येर नाहि अन्त ॥५०५॥
"एइ मत लीला प्रभु कत कल्प कैला। सभेवोले आजि रात्रि प्रभात ना हइला ॥५०६॥
एइ मत वलि सभे देइ जयकार। सर्व लोक 'हरि' वइ ना वोलये जार ॥५०७॥
प्रभु: देखि सर्व लोक दण्डवत् हैया। पड़ये पुरुष–स्त्रीये बालक लइया ॥५०८॥

बेचने वाले सेवक के भाग्य की सीमा को देखो। जिसकी महिमा को देखकर ब्रह्मा शिव भी प्रेम के अश्रु बहाते हैं ॥४९२॥ धन से, जन से, पण्डिताई से कृष्ण नहीं मिलते हैं। श्रीचैतन्य गुसाँई तो केवल भक्ति के वश में होते हैं ॥४९३॥ जलपान के द्वारा श्रीधर पर अनुग्रह करके गौराङ्ग श्रीहरि फिर नगर में आये ॥४९४॥ भक्ति-रस के ठाकुर गौरचन्द्र नाचते हैं और चारों ओर प्रचुर हरि ध्वनि सुनायी देती है ॥४९५॥ नवद्वीप अपनी शोभा से सब लोकों को पराजित कर रहा है सबकी जिह्वाओं से केवल 'हरि बोल' सुनायी दे रहा है ॥४९६॥ जिस सुख में शुक, नारद, शंकर विह्वल रहते हैं, उसी सुख में सब नदिया नगर विह्वल हो रहा है ॥४९७। 'त्रिभुवनराय प्रभु समस्त नदिया में नृत्य करते हैं, 'गादिगाछा' 'पारडांगा' आदि सब स्थानों में होकर जाते हैं ।४९८॥ यह नगर-संकीर्तन केवल एक रात्रि भर का ही कोई न समझे। न जाने कितने कल्प उस एक रात्रि के कीर्तन में बीत गये ॥४९९॥ श्रीचैतन्यचन्द्र के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है–उनके तो एक भ्रू-भङ्गी से ब्रह्मा (सौ कल्प की आयु वाला) का प्रलय हो जाता है ॥५००॥ इन सब तत्त्वों को कोई भाग्यवान ही जानता है। सूक्ष्म तर्क वादी पापी तो कुछ भी नहीं मानता है ॥५०१॥ जिस २ नगर में वैकुण्ठ के अधीश्वर गौरचन्द्र नाचते हैं वे नगर परानन्द के सागर में बहने लगते हैं ॥५०२॥ प्रभु का वह हुँकार, वह गर्जन' वह प्रेमाश्रु-जल ये सब देखकर सब स्त्री पुरुष रोने लगते हैं ॥५०३॥ कोई कहता है 'शची माता के चरणों में नमस्कार है जिनके गर्भ से ऐसे महापुरुष प्रकट हुये हैं' ।५०४। कोई कहता है 'जगन्नाथ मिश्र पुण्यवान हैं'। कोई कहता है 'नदिया के भाग्य की सीमा नहीं है' ॥५०५॥ इस प्रकार प्रभु ने कितने ही कल्प लीला कीन्ही है सब कहते हैं कि आज रात्रि का प्रभात नहीं हुआ है ।५०६॥ इस प्रकार कहते हुये सब जय जयकार करते हैं। सब लोग 'हरि' नाम को छोड़ मुख से और कुछ नहीं बोलते हैं ॥५०७॥ प्रभु को देख सब लोग पुरुष और स्त्री बालक को लेकर दण्डवत् पड़ कर प्रणाम करते

शुभदृष्टि गौरचन्द्र करि सभा कारे। स्वानुभावानन्दे प्रभु कीर्त्तने विहरे ॥५०९॥
ए सब लीलार कभु नाहि परिच्छेद। 'अविर्भाव' 'तिरोभाव' एइ कहे वेद ॥५१०॥
जे खाने जे रूपे भक्तगणे करे ध्यान। सेइ खाने से-इ रूपे प्रभु विद्यमान ॥५११॥
"यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति। तत्तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय" ॥५१२॥
अद्यापिह चैतन्य ए सब लीला करे। जार भाग्ये थाके से देखये निरन्तरे ॥५१३॥
मध्यखण्ड-कथा वड़ अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले घुचे अन्तर पाषण्ड ॥५१४॥
भक्त लागि प्रभुर सकल अवतार। भक्त वइ कृष्ण-मर्म ना जानये आर ॥५१५॥
कोटि जन्म यदि योग तप करि मरे। भक्ति विने कौन कर्म फल नाहि धरे ॥५१६॥
हेन 'भक्ति' विने-भक्त-सेविले ना हय। अतएव भक्त-सेवा सर्वशास्त्रे कय ॥५१७॥
आदिदेव जय जय नित्यानन्दराय। चैतन्य कीर्त्तन स्फुरे जाहार कृपाय ॥५१८॥
केहो बोले "नित्यानन्द बलराम-सम"। केहो बोले "चैतन्येर वड़ प्रियतम" ॥५१९॥
केहो बोले,'महातेजी अंशअधिकारी। केहो बोले "कौन रूप वुझिते ना पारि" ॥५२०॥
किवा योगी नित्यानन्द किवा भक्त ज्ञानी। जार जेन मत इच्छा ना वोलये केनि ॥५२१॥
जे से केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे। तभु से चरणधन रहुक हृदये ॥५२२॥
एत परि हारे ओ जे पापी निन्दा करे। तवे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥५२३॥
चैतन्य प्रियेर पा'ये मोर नमस्कार। अवधूतचन्द्र प्रभु हउक आमार ॥५२४॥

॥५०८॥ गौरचन्द्र प्रभु सबों के प्रति शुभ दृष्टि से अवलोकन करते हुये स्वानुभव के आनन्द में कीर्तन विहार करते हैं ॥५०९॥ इन सब लीलाओं का कभी लोप नहीं होता। वेद इनका 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' होना ही बतलाता है ॥५१०॥ जहाँ कहीं भी भक्त जिस रूप का ध्यान करता है, वहीं उस रूप में प्रभु विद्यमान रहते हैं ॥५११॥ तथाहि (भा० ३।९।११) (अर्थ—"हे प्रभो ! वेदों ने तुम्हारे नाना प्रकार के रूपों का गान किया है अतएव तुम 'उरुगाय' हो। तुम्हारे भक्त लोग तुम्हारे उन उन रूपों में से जिस २ रूप का स्वेच्छा पूर्वक ध्यान करते हैं तुम उनके निकट उन उन रूपों से प्रकट होते हो ॥५१२॥) आज भी श्री चैतन्य देव ये सब लीला कर रहे हैं, जिसका भाग्य होता है वह उन लीलाओं को निरन्तर देखता है ॥५१३॥ मध्य खण्ड की कथा अमृत की डली है। इस कथा के सुनने से अन्तः करण का दम्भ-कपट दूर हो जाता है ॥५१४॥ भक्त के लिये ही प्रभु के सब अवतार होते हैं, भक्त के अतिरिक्त श्रीकृष्ण के मम को और कोई नहीं जानता है। ५१५॥ योग और तप कर करके कोटि जन्म क्यों न बिता देवे पर भक्ति बिना कोई कर्म फलीभूत नहीं होता है ॥५१६॥ ऐसो 'भक्ति' भक्त की सेवा किये बिना प्राप्त नहीं होती। इसीसे भक्त-सेवा के लिये सब शास्त्र कहते हैं ॥५१७॥ आदि देव नित्यानन्दराय की जय हो, जय हो। इनकी कृपा से ही श्री चैतन्यदेव की लीला को गाने की स्फुरणा होती है ॥५१८॥ कोई कहता है नित्यानन्द बलराम के समान हैं।" कोई कहता है "चैतन्यदेव के बड़े प्रियतम हैं" ॥५१९॥ कोई कहता है, "वे महान् तेजस्वी अधिकारी अर्थात् श्रेष्ठ पात्र हैं" कोई कहता है "हम तो समझ नहीं पाते उनका क्या स्वरूप है ॥५२०॥ नित्यानन्द जीव हैं, भक्त हैं, ज्ञानी हैं, अथवा श्री चैतन्यदेव के नित्यानन्द कुछ नहीं हैं—इस प्रकार जैसा जिसके मन में आवे, वैसा वह कहा करे, किन्तु फिर भी मेरे हृदय में तो उनके ही चरण निधि के रूप में विराजे रहें ॥५२१-५२२। इस प्रकार दोष का परिहार करने पर भी जो पापी नित्यानन्द की निन्दा करता है, मैं उसके सिर पर लात मारता हूँ। ५२३॥ श्रीचैतन्यदेव के प्रियजनों के चरणों में मेरा

चैतन्येर कृपाय से नित्यानन्द चिनि । नित्यानन्द जानाइले गौरचन्द्र जानि ।।५२५।।
नित्यानन्द गौरचन्द्र-श्रीराम लक्ष्मण । नित्यानन्द गौरचन्द्र—कृष्ण संकर्षण ।।५२६।।
नित्यानन्द स्वरूपे से चैतन्येर भक्ति । सर्व भावे करिते धरये प्रभु शक्ति ।।५२७।।
चैतन्येर जत प्रिय सेवक-प्रधान । ताहाना से ज्ञाता नित्यानन्देर आख्यान ।।५२८।।
तबे जे देखह हेर आन्योऽन्ये वाजे । रङ्ग करे कृष्णचन्द्र केहो नाहि वुझे ।।५२९।।
इहाते जे एक वैष्णवेर पक्ष लय । अन्य वैष्णवेरे निन्दे' से-इ आय क्षय ।।५३०।।
सर्व भावे भजे कृष्ण जे कारे ना निन्दे । सेइ से गणना पाय वैष्णवेर वृन्दे ।।५३१।।
अद्वैतरे चरणे मोर एइ नमस्कार । तान प्रिय ताहे मति रहुक आमार ।।५३२।।
सर्व गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनि लेइ मध्य खण्ड भक्ति लभ्य हय ।।५३३।।
अद्वैतरे पक्ष हैया निन्दे' गदाधर । से अधम कभो नहे अद्वैत किंकर ।।५३४।।
चैतन्य चन्द्रेर कथा अमृत मधुर । सकल जीवेर मने वाढ़ुक प्रचुर ।।५३५।।
शुनिले चैतन्य कथा जार हय सुख । से अवश्य देखिवेक चैतन्य श्री मुख ।।५३६।।
श्री कृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ।।५३७।।

नमस्कार है। (वे यही आशीर्वाद करें कि) अवधूत चन्द्र (श्री नित्यानन्द) ही (सदा) मेरे प्रभु होवें ।।५२४।। श्री चैतन्य की कृपा से मैं नित्यानन्द को जानता हूँ और नित्यानन्द के बतलाने से गौरचन्द्र को जानता हूँ ।।५२५।। नित्यानन्द और गौरचन्द्र,लक्ष्मण और राम हैं, वे ही बलराम और कृष्ण हैं ।।५२६।। नित्यानन्द के स्वरूप में श्रीचैतन्यदेव की भक्ति सर्वभाव से सम्पादन करने के लिये उनमें ईश्वर-शक्ति विराजमान है ।।५२७।। श्रीचैतन्य के जितने प्रिय प्रधान सेवक है, वे सब नित्यानन्द की कथा के ज्ञाता हैं ।।५२८।। फिर भी उन सेवकों में जो कहीं परस्पर विरोध दिखायी देता है, वह केवल श्रीकृष्णचन्द्र का एक कौतुक-रङ्ग है—इसे कोई नहीं समझ पाता है ।।५२९।। इस कारण जो एक वैष्णव का पक्ष लेता है और दूसरे वैष्णव की निन्दा करता है, वह नाश को प्राप्त होता है ।।५३०।। वैष्णवों में उसी की गिनती होती है अथवा वैष्णव लोग उसे ही वैष्णव मानते हैं जो किसी की निन्दा न करता हुआ सर्व भाव से श्रीकृष्ण को भजता है ।।५३१।। श्री अद्वैत प्रभु के चरणों में यह मेरा नमस्कार है। (और यही प्रार्थना है कि) जो उनको प्रिय हैं उनमें मेरी भी मति रहे ।।५३२।। समस्त परिकरों के सहित श्री गौराङ्गदेव की जय हो, जय हो। श्रीचैतन्यदेव की कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ।।५३३।। श्री अद्वैत का पक्ष लेकर जो गदाधर की निन्दा करता है, वह अधम कभी अद्वैत का किङ्कर नहीं कहा जा सकता है ।।५३४।। श्री चैतन्यचन्द्र की कथा अमृत से भी अति मधुर है। यह कथा समस्त जीवों के हृदय में खूब बढ़े फले-फूले ।।५३५।। जिसे श्रीचैतन्यदेव की कथा सुनकर सुख होता है, वह अवश्य ही श्रीचैतन्य प्रभु के श्री मुख का दर्शन करेगा ।।५३६।। श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीनित्यानन्दचन्द्र मेरे जीवन स्वरूप हैं। वृन्दावनदास उनके युगल पदों का ही गुणगान करता है ।।५३७।।

श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे श्रीधर जलपानादि दर्शनं
नाम त्रयोविंशतितमो अध्यायः ।।२३।।

———

अथ चौबीसवाँ अध्याय

जय जय जय गौर–सिंह महा धीर। जय जय शिष्ट-पाल जय-दुष्ट-वीर ॥ १ ॥
जय जगन्नाथ पुत्र श्रीशचीनन्दन। जय जय जय पुण्य–श्रवण–कीर्त्तन ॥ २ ॥
जय जय श्रीजगदानन्देर जीवन। जय हरिदास–काशीश्वर–प्राण–धन ॥ ३ ॥
जय कृपासिन्धु दीनबन्धु सर्व-तात। जे बोले 'तोमार' प्रभु ! तारहस्रो नाथ ॥ ४ ॥
हेन मते नवद्वीपे विश्वम्भर-राय। विदित-कीर्त्तन प्रभु हइला सदाय ॥ ५ ॥
हेन से हइला प्रभु हरि संकीर्त्तने। नाम शुनि मात्र प्रभु पड़े जे-ते स्थाने ॥ ६ ॥
कि नगरे कि चत्वरे किवा जले बने। निरन्तर अश्रु धारा बहे श्रीनयने ॥ ७ ॥
आप्तगणे रक्षिया बुलेन निरन्तर। भक्ति रस मय हइलेन विश्वम्भर ॥ ८ ॥
केहो मात्र कोन रूपे यदि बोले हरि। शुनि लेइ पड़े प्रभु आपना' पासरि ॥ ९ ॥
महा कम्प अश्रु हय पुलक सर्वाङ्गे। गड़ागड़ि जायेन नगरे महारङ्गे ॥ १० ॥
जे आवेश देखिले ब्रह्मादि धन्य हय। ताहा देखे नदियार लोक-समुच्चय ॥ ११ ॥
शेषे अति मूर्च्छा देखि मिलि सर्व दासे। आलग करिया निञा चलि लेन वासे ॥ १२ ॥
तवे द्वार दिया जे करेन संकीर्त्तन। से सुखे पूर्णित हय अनन्त भुवन ॥ १३ ॥
जत सब भाव हय–अकथ्य सकल। हेन नाहि बुझि प्रभु किरसे विह्वल ॥ १४ ॥
क्षणे बोले 'मुञि सेइ मदनगोपाल।' क्षणे बोले 'मुञि कृष्णदास सर्वकाल' ॥ १५ ॥

महाधीर गौरसिंह की जय हो जय हो जय हो। सज्जन बालक और दुष्ट संहारक वीर की जय हो जय हो ॥ १ ॥ श्री जगन्नाथ पुत्र श्री शचीनन्दन की जय हो जिनकी कथा का श्रवण कीर्तन पुण्यप्रद है उनकी जय हो, जय हो, जय हो ॥ २ ॥ श्री जगदानन्द के जीवन स्वरूप की जय हो। हरिदास और काशीश्वर के प्राणधन स्वरुप की जय हो ॥ ३ ॥ दीनबन्धु कृपा सिन्धु सर्व पिता की जय हो। हे प्रभो ! आप से यही प्रार्थना है कि जो "मैं तुह्मारा" ऐसा कहे उसके आप नाथ बनो ॥ ४ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में प्रभु विश्वम्भर राय के कीर्तन की कथा सब को विदित हो गयी और उसकी आलोचना सर्वत्र होने लगी ॥ ५ ॥ उस हरि–संकीर्तन के समय से प्रभु की ऐसी अवस्था हो गयी कि हरि नाम सुनते ही प्रभु जहाँ तहाँ गिर पड़ते ॥ ६ ॥ क्या नगर में (विचरते समय) क्या चबूतरे में (बैठे समय) क्या जल में (न्हाते समय), क्या वन में, सर्वत्र निरन्तर श्री नेत्रों से अश्रु धाराएँ बहती रहती हैं ॥७॥ आप्तजनों के द्वारा रक्षित होकर प्रभु निरन्तर विचरण किया करते हैं। विश्वम्भर प्रभु भक्तिरसमय होगये ॥७॥ कोई यदि किसी रूप से 'हरि' मात्र कह देता तो उसे सुनते ही प्रभु अपने को भूल पृथ्वी पर गिर पड़ते ॥९॥ उनके सर्वाङ्ग में महान् कम्प और पुलक हो जाते, अश्रु बहने लगे, और वे नगर में महाआनन्द में लोट-पोट होने लगते ॥१०॥ जिस (प्रेम के) आवेश को देख पाने पर ब्रह्मादि अपने को धन्य मानें, वह आवेश आज नदिया के समस्त लोग देख रहे हैं ॥११॥ अन्त में उनकी अति मूर्च्छा (जो भङ्ग नहीं हो रही थी) को देखकर सब भक्त लोग उनको (जन-समुदाय के मध्य से) अलग करके घर ले जाते ॥१२॥ फिर वहाँ द्वार बन्द करके जो संकीर्तन करते, उस सुख से अनन्त भुवन पूरित हो जाता ॥१३॥ जितने भी सब भाव हैं, और जो वाणी से कहे नहीं जा सकते, वे सब भाव प्रभु में प्रकट होते। यह ज्ञात नहीं होता कि प्रभु कौन से (अपूर्व) रस में विह्वल हैं ॥१४॥ अभी एक क्षण में तो कहते हैं 'मैं ही वह मदनगोपाल हूँ' और

'गोपी गोपी गोपी,मात्र कोन दिन जपे' । शुनिले कृष्णेर नाम ज्वले महा कोपे ॥१६॥
'कोथाकार कृष्ण तोर महा दस्यु से । शठ धृष्ट कितव–भजे वा तारे के ॥१७॥
स्त्री जित हइया स्त्रीर काटे नाक काण । लुब्धकेर प्राय लैल वालिर पराण ॥१८॥
कि कार्य आमार सेवा चोरेर कथाय ।' जे कृष्ण बोलये तारे खेदाड़िया जाय ॥१९॥
'गोकुल गोकुल' मात्र बोले क्षणे क्षणे । 'वृन्दावन वृन्दावन' बोले कोन दिने ॥२०॥
'मथुरा मथुरा' कोन दिन बोले मुखे । कोन दिन पृथिवी ते नखे अङ्क लेखे ॥२१॥
क्षणे पृथिवीते लेखे त्रिभङ्ग आकृति । चा'हिया रोदन करे, भासे सब क्षिति ॥२२॥
क्षणे बोले 'भाइ सब ! बड़ देखि बन । पाले पाले सिंह व्याघ्र भल्लु केर गण' ॥२३॥
दिवसेरे बोले रात्रि, रात्रिरे दिवस । एइ मत प्रभु हइलेन भक्ति रस ॥२४॥
प्रभुर आवेश देखि सर्व भक्त गण । अन्योन्ये गला धरि करेन क्रन्दन ॥२५॥
जे आवेश देखिते ब्रह्मार अभिलाप । सुखे देख ताहा सर्व-वैष्णवेर दास ॥२६॥
छाड़िया आपन वास प्रभु विश्वम्भर । वैष्णवेर घरे प्रभु थाके निरन्तर ॥२७॥
वाह्य-चेष्टा ठाकुर करेन कोन क्षणे । से केवल जननीर सन्तोष कारणे ॥२८॥
सुखमय हइलेन सर्व भक्तगण । विनि-ठाकुरेओ सभे करेन कीर्त्तन ॥२९॥
नित्यानन्द मत्तसिंह सर्व नदियाय । घरे घरे बुले प्रभु अनन्त लीलाय ॥३०॥
प्रभु-सङ्गे गदाधर थाकेन सर्वथा । अद्वैत लइया सर्व-वैष्णवेर कथा ॥३१॥
एक दिन अद्वैत नाचेन गोपी भावे । कीर्त्तन करेन सभे महा अनुरागे ॥३२॥

फिर दूसरी क्षण में कहते हैं––'मैं सब समय के लिये कृष्णदास हूँ' ॥१५॥ किसी दिन केवल "गोपी, गोपी, गोपी" जपते रहते हैं, उस समय जो कहीं कृष्ण का नाम सुन लेते हैं तो अत्यन्त क्रोध से लाल हो जाते हैं ॥१६॥ (और कहने लगते हैं) "कहाँ का वह तेरा कृष्ण महा डाकू, शठ, धृष्ट, कपटी ! उसे कौन भजे ॥१७॥ स्त्री के वश में होकर वह स्त्री के नाक-कान काटता है । उसने व्याध की भाँति बालि के प्राण ले लिये ॥१८॥ "उस चोर की वार्ता से मेरा क्या प्रयोजन ।" (ऐसा कह) जो 'कृष्ण' कहता उसको खदेड़ने दौड़ते हैं ॥१९॥ कभी क्षण २ में 'गोकुल, गोकुल' कहते हैं तो किसी दिन 'वृन्दावन, वृन्दावन' ही कहते रहते हैं ॥२०॥ किसी दिन 'मथुरा, मथुरा' कहते हैं और किसी दिन नख से पृथ्वी पर अंक लिखते हैं ॥२१॥ कभी पृथ्वी पर त्रिभङ्ग-मूर्त्ति अङ्कित करते हैं और उसे देख २ कर रोते हैं । अश्रु जल से भूमि जलमय हो जाती है ।२२॥ कभी कहते हैं—"भाइयो ! एक बड़ा भारी वन दिखायी देता है–उसमें झुण्ड के झुण्ड सिंह, बाघ और भालुओं के दल हैं ॥२३॥ कभी दिन को रात और रात को दिन कहते हैं । यह दशा भक्ति रस में डूब कर प्रभु की हो गई । २४॥ प्रभु के इस तन्मय आवेश को देख सब भक्त लोग एक दूसरे का कण्ठ पकड़ कर रोते हैं ॥२५॥ जिस प्रेमावेश को देखने की ब्रह्मा को अभिलाषा बनी ही रहती है, उसको वैष्णवों के दास सब सुखपूर्वक देखते हैं ॥२६॥ अब प्रभु विश्वम्भर अपने निवास-गृह को त्याग कर वैष्णवों के गृह में ही निरन्तर निवास करते हैं ॥२७॥ कभी कभी प्रभु व्यवहार की बातें भी करते हैं परन्तु वह केवल माता के सन्तोष के लिये ॥२८॥ सब भक्त लोग महान् सुख से पूर्ण हो गये और प्रभु के पास न होने पर भी सब कीर्तन करते हैं ॥२९॥ प्रभु अनन्तदेव नित्यानन्द, मतवाले सिंह की भाँति, सारी नदिया में घर घर में घूमते फिरते हैं ॥३०॥ प्रभु (विश्वम्भर) के साथ सदा गदाधर रहते हैं तथा अद्वैताचार्य के साथ सब वैष्णवों की कथा-वार्ता चलती है ॥३१॥ एक दिन श्री अद्वैत गोपी भाव में नाच रहे हैं और सब

आर्त्ति करि नाचये अद्वैत महाशय। पुनः पुन दन्ते तृण करिया पड़य ॥३३॥
गड़ागड़ि जायेन अद्वैत प्रेम रसे। चतुर्दिगे भक्तगण गायेन उल्लासे ॥३४॥
दुइ प्रहरेओ नृत्य नहे सम्वरण। श्रान्त हइलेन सब भागवत गण ॥३५॥
सभे मेलि आचार्येर स्थिर कराइया। वसिलेन चतुर्दिगे आचार्य वेड़िया ॥३६॥
किछु स्थिर हइ यदि आचार्य वसिला। श्रीवास-रामाइ आदि तवे स्नाने गेला ॥३७॥
आर्त्ति योग आचार्येर पुनः पुन वाढ़े। एकेश्वर श्रीवास-अङ्गने गड़ि पाड़े ॥३८॥
कार्यान्तरे निज गृहे छिला विश्वम्भर। अद्वैतेर आर्त्ति चित्ते हइल गोचर ॥३९॥
भक्त-आर्त्ति-पूर्णकारी सदानन्द राय। आइला अद्वैत यथा गड़ागड़ि जाय ॥४०॥
अद्वैतेर आर्त्ति देखि धरि ताँर करे। द्वार दिया वसिलेन गिया विष्णु घरे ॥४१॥
हासिया ठाकुर बोले 'शुनह आचार्य। कि तोमार इच्छा बोलु किवा चाह कार्य ॥४२॥
अद्वैत बोलये 'तुमि सर्व वेद सार। तोमारेइ चाहो प्रभु! कि चाहिव आर' ॥४३॥
हासि बोले प्रभु 'आमि एइत साक्षात्। आर कि आमारे चाह बोलह आमा'त' ॥४४॥
अद्वैत बोलये 'प्रभु! कहिला सुत्य। एइ तुमि प्रभु! सर्व वेदान्तेर तत्त्व ॥४५॥
तथापिह विभव देखिते किछु चाइ।' प्रभु बोले 'कि इच्छा बोलह मोर ठाँइ' ॥४६॥
अद्वैत बोलये 'प्रभु! पूर्वे अर्जुनेरे। जाहा देखाइला तथि इच्छा वड़ घरे' ॥४७॥
बलिते अद्वैत मात्र देखे एक रथ। चतुर्दिगे सैन्य देखे महा-युद्ध-पथ ॥४८॥

रथेर उपरे देखे श्यामल-सुन्दर। चतुर्भुज शंख–चक्र–गदा–पद्मधर ॥४९॥

वैष्णव लोग बड़े प्रेम से कीर्तन कर रहे हैं ॥३२॥ अद्वैत महाशय आर्त्तभाव को प्रकट करते हुये नाच रहे हैं, बारम्बार दाँतों में तिनका लेकर भूमि पर गिर पड़ते हैं ॥३३॥ अद्वैत प्रेम रस में भरे हुये भूमि पर लोट पोट होने हैं और चारों ओर भक्त लोग उल्लास सहित गान करते हैं ॥३४॥ दो पहर तक भी अद्वैत का नृत्य शान्त नहीं हुआ, परन्तु सब भागवत जन श्रान्त हो (थक) गये ॥३५॥ तब सबों ने मिल कर आचार्य को स्थिर किया और वे उनको चारों ओर से घेर कर बैठ गये ॥३६॥ जब आचार्य कुछ स्थिर होकर बैठ गये, तब श्रीनिवास, रामाई आदि भक्त लोग स्नान करने को गये ॥३७॥ (परन्तु) आचार्य अद्वैत की आर्त्तता (व्याकुलता) पुनः उमड़ उठी और वे अकेले वहाँ श्रीवास के आँगन में आतुर भाव से लोट-पोट होने लगे ॥३८॥ विश्वम्भरदेव किसी कार्य वश अपने गृह में थे, अद्वैत की आतुरता उनके मन को विदित हो गयी ॥३९॥ भक्त की आर्त्त पुकार को सुन उसकी वाञ्छा पूर्ण करने वाले सदानन्द स्वरूप प्रभु वहाँ आ गये जहाँ अद्वैत धरती पर लोट पोट हो रहे थे ॥४०॥ अद्वैत की व्याकुल अवस्था देखकर उन्हें पकड़ प्रभु विष्णु मन्दिर के द्वार पर जा बैठे ॥४१॥ प्रभु हँसकर बोले "सुनो आचार्य" तुह्मारी क्या इच्छा है, क्या कार्य है, बोलो" ॥४२॥ अद्वैत बोले—"तुम सब वेदों के सार तत्त्व हो। मैं तुमको ही चाहता हूँ प्रभो! तुम्हें छोड़ और भला क्या चाहूँगा" ॥४३॥ प्रभु हँस कर बोले, "तो मैं तो तुह्मारे सन्मुख प्रत्यक्ष हूँ ही। और मुझे क्या चाहते हो, कहो मुझसे" ॥४४॥ अद्वैत बोले– 'प्रभो यह तो सत्य है कि यह तुम ही वह सर्व वेदान्त के तत्त्व हो। तथापि तुह्मारी कुछ विभूति देखने की इच्छा है" ॥४६॥ अद्वैत बोले, "प्रभो! पूर्व काल में अर्जुन को जो दिखाया था वही देखने की मेरी भी बड़ी इच्छा है" ॥४७॥ ऐसा कहते ही अद्वैत क्या देखते हैं कि एक रथ है, चारों ओर सेनाएँ हैं, महायुद्ध का क्षेत्र है ॥४८॥ और देखते हैं:— रथ के ऊपर श्यामसुन्दर, चतुर्भुज स्वरूप हैं, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये हैं ॥४९॥ उसी क्षण

अनन्त-ब्रह्माण्ड—रूप देखे सेइ क्षणे। चन्द्र सूर्य सिन्धु गिरि नदी उपवने ॥५०॥
कोटि चक्षु बाहु मुख देखे पुनः पुन। सम्मुखे देखये स्तुति करये अर्जुन ॥५१॥
महा अग्नि जेन ज्वले सकल वदन। पोड़े जत पतङ्ग-पाषण्ड-दुष्टगण ॥५२॥
जे पापिष्ठ परनिन्दे' परद्रोह करे। चैतन्येर मुखाग्निते से-इ पूड़ि मरे ॥५३॥
ए रूप देखिते अन्य कारो शक्ति नाञि। प्रभुर कृपाय देखे आचार्य गोसाञि ॥५४॥
प्रेम सुखे अद्वैत कान्देन अनुरागे। दन्ते तृण करि पुनः पुन दास्य मागे' ॥५५॥
परम—आनन्द प्रभु नित्यानन्दराय। पर्यटन सुखे भ्रमे' सर्व नदीयाय ॥५६॥
प्रभुर प्रकाश सब जाने नित्यानन्द। जानि लेन प्रभु हइयाछे विश्व-अङ्ग ॥५७॥
सत्वरे आइला जथा आछेन ठाकुर। विष्णु गृहे द्वार दिया गर्जेन प्रचुर ॥५८॥
नित्यानन्द आगमन जानि विश्वम्भर। द्वार घुचाइला, प्रभु हइला भितर ॥५९॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड-रूप नित्यानन्द देखि। दण्डवत् हइया पड़िला वूजि आँखि ॥६०॥
प्रभु बोले 'उठ नित्यानन्द मोर प्राण। तुमि से जानह मोर सकल आख्यान ॥६१॥
जे तोमारे प्रीत करे मुञि सत्य तार। तोमा' वइ प्रियतम नाहिक आमार ॥६२॥
तुमि आर अद्वैते जे करे भेद बुद्धि। भालमते ना जाने से अवतार-शुद्धि" ॥६३॥
नित्यानन्द अद्वैत देखिया विश्वराय। आनन्दे कान्दिया विष्णु गृहे गड़ि जाय ॥६४॥
हुँकार गर्जन करे श्रीशचीनन्दन। देख देख करि प्रभु डाके घने घन ॥६५॥
'प्रभु प्रभु' वलि स्तुति करे दुइजन। विश्वमूर्त्ति देखिया आनन्दमय मन ॥६६॥

फिर अनन्त ब्रह्माण्डों वाला विराट रूप दिखायी देता है। जिसमें-चन्द्र-सूर्य सिन्धु-पर्वत, नदी-वन उपवन हैं। कोटि २ नेत्र हैं, बाहु हैं, मुख हैं। अर्जुन उस रूप को पुनः २ देखते हैं। उसके सामने अर्जुन की स्तुति करते हुये देखते हैं ॥५०—५१॥ उस विराट रूप के मुख समूह महा अग्नि की भाँति प्रज्वलित हो रहे थे। उसमें जितने दुष्ट निन्दक जन थे वे पतङ्ग की भाँति जल रहे थे। ५२॥ जो पापी हैं, परनिन्दक हैं, परद्रोही हैं, वे चैतन्य देव की मुखाग्नि में भस्म हो रहे हैं ॥५३॥ ऐसा रूप दर्शन करने की किसी में शक्ति नहीं है। यह तो प्रभु की कृपा से ही आचार्य गुसाँई देख रहे हैं ॥५४॥ अद्वैत प्रेम सुख के आवेश में रोने लगे और दाँतों में तृण ले पुनः पुनः प्रभु की दासता की याचना करने लगे ॥५५॥ परमानन्द स्वरूप प्रभु नित्यानन्द-राय समस्त नदिया में भ्रमण करने के सुख में मगन रहते हैं ॥५६॥ वे विश्वम्भर प्रभु के ऐश्वर्य प्रकाश को जानते हैं। वे यह जान गये कि प्रभु ने अपने विश्व रूप को प्रकट किया है ॥५७॥ वे शीघ्रता पूर्वक वहाँ आये जहाँ विष्णु-मन्दिर के द्वार पर बैठे प्रभु विश्वम्भर प्रचुर गर्जना कर रहे थे ॥५८॥ नित्यानन्द का आगमन जानकर प्रभु ने द्वार खोल दिया और प्रभु नित्यानन्द भीतर गये ॥५९॥ नित्यानन्द ने उनका अनन्त ब्रह्माण्डमय विश्व रूप का दर्शन किया तथा नेत्र मूँद कर दण्डवत् भूमि पर पड़ गये ॥६०॥ प्रभु बोले—'मेरे प्राण नित्यानन्द' उठो! तुम तो मेरी समस्त कथा जानते हो ॥६१॥ जो तुमसे प्रीति करता है मैं सचमुच में उसी का हूँ। तुह्मारे अतिरिक्त अन्य मेरा प्रियतम नहीं हैं ॥५२॥ तुम में और अद्वैत में जो भेद-बुद्धि करता है, वह अवतार-तत्त्व को भली भाँति नहीं जानता है' ॥६३॥ नित्यानन्द और अद्वैत को देख विश्व के महाराजा (विश्वम्भर) आनन्द से क्रन्दन करते हुये विष्णु-मन्दिर में लोट पोट होने लगे ॥६४॥ श्रीशचीनन्दन हुँकार व गर्जन करते हैं और 'देखो देखो' कहकर बार २ पुकारते हैं ॥६५॥ दोनों जने नित्यानन्द और अद्वैत 'प्रभो! प्रभो!' कहकर स्तुति करते हैं। विश्वरूप के दर्शन से उनके मन आनन्दमय

ए सब कौतुक हय श्रीवास मन्दिरे। तथापि देखिते शक्ति अन्य नाहि धरे ।।६७।।
अद्वैतेर श्रीमुखेर। ए सकल कथा। इहा जे ना मानये से दुष्कृति सर्वथा ।।६८।।
'सर्व महेश्वर गौरचन्द्र' जे ना बोले। वैष्णवेर अदृश्य से पापी सर्व काले ।।६९।।
आभार प्रभुर प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। एइ से भरसा आमि धरि जे अन्तर ।।७०।।
नवद्वीपे हेन सब प्रकाशेर स्थान। तथापिह भक्त वइ ना जानये आन ।।७१।।
भक्तियोग भक्तियोग भक्तियोग धन। 'भक्ति' एइ—कृष्णनाम-स्मरण-क्रन्दन ।।७२।।
'कृष्ण'वलि कान्दिले से कृष्ण नाथ मिले। धने कुले किछु नहे'कृष्ण'ना भजिले ।।७३।।
मध्य खण्ड-कथा बड़ अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले खण्डे अन्तर-पाखण्ड ।।७३।।
दुइ-ठाकुरेर विश्वरूप—दरशन। इहा जे शुनये तारे मिले कृष्ण धन ।।७५।।
क्षणे के सकल सम्वरिया गौरचन्द्र। चलिलेन निज गृहे लइ भक्त वृन्द ।।७६।।
विश्वरूप देखिया अद्वैत नित्यानन्द। काहारो नाहिक वाह्य,—परम आनन्द ।।७७।।
विभव-दर्शन-सुखे मत्त दुइ जन। धूलाय जायेन गड़ि सकल अङ्गन ।।७८।।
केहो नाचे केहो गाय दिया करतालो। ढुलिया ढुलिया बुले दुइ महाबली ।।७९।।
एइ मते दुइ जन महा कुतूहली। शेषे दुइ जनेइ वाजिल गालागाली ।।८०।।
अद्वैत बोलये "अवधूत मातालिया। एथा कोन् जन तोके आनिल डाकिया। ८१।।
दुयार भाङ्गिया आसि साम्भाइलि केने। 'संन्यासी' वलिया तोरे बोले कोन् जने ।।८२।।
हेन जाति नाहि ना खाइला जार घरे। जाति आछे' हेन कोन् जने बोले तोरे ।।८३।।

हो रहे ह ।।६६।। यह सब कौतुक श्रीवास के गृह मन्दिर में हो रहा है तथापि अन्य किसी में इसके दर्शन करने को शक्ति नहीं है ।।६७।। यह सब बातें अद्वैताचार्य के अपने श्रीमुख की कही हुई हैं। इनको जो नहीं मानता है वह सर्वथा दुष्कृति (पापी) है ।।६८।। "सर्व महेश्वर गौरचन्द्र" को जो नहीं मानता है, वह वैष्णव के देखने योग्य नहीं है, और सबके निकट वह पापी है ।।६९।। मेरे हृदय में केवल यही एक भरोसा है कि मेरे प्रभु (नित्यानन्द) के प्रभु गौराङ्ग सुन्दर हैं ।।७०।। नवद्वीप प्रभु के ऐसो २ सब लीलाओं के प्रकाश का स्थान है, तथापि भक्त बिना इसे और कोई नहीं जानता है ।।७१।। भक्ति योग (ही) भक्ति योग (ही) भक्ति योग (ही परम) धन है। और भक्ति है—कृष्ण नाम का स्मरण क्रन्दन ।।७२।। "कृष्ण" कह कर रोने से वह नाथ कृष्ण मिलता है। 'कृष्ण' को न भजने से धन व कुल से कुछ नहीं प्राप्त होता है। ।।७३। मध्य खण्ड की कथा अमृत की बड़ी मीठी डली है जिस कथा को सुनने से अन्तकःरण को मलिनता नष्ट हो जाती है ।।७४।। दोनों प्रभुओं के विश्वरूप—दर्शन की कथा जो सुनता है, उसे कृष्ण धन प्राप्त होता है ।।७५।। थोड़ी देर में गौर चन्द्र ने अपना विश्वरूप गोपन कर लिया और भक्तों को लेकर अपने घर को चले ।।७६।। विश्वरूप के दर्शन करके अद्वैत और नित्यानन्द को वाह्य-ज्ञान नहीं है वे परमानन्द में निमग्न हैं ।।७७।। वैभव दर्शन के सुख से दोनों मतवाले बने हुये सारे आँगन के धूल में लोटते फिरते हैं। ७८।। कभी कोई नाचता है तो कोई हाथ से ताली बजाता हुआ गाता है, दोनों महाबली झूमते झामते हुए फिरते हैं ।।७९। इस प्रकार दोनों जने महा कौतुहल पूर्ण हैं—होते होते अन्त में दोनों में प्रणय—कलह मच गया। वे एक दुसरे को प्रेम भरी गालिगां देने लगे। (इन गलियों में श्लेष है जो उनके तत्त्व स्वरूप का बोधक है) ।।७८।। अद्वैत बोले—"अरे मतवाले अवधूत ! यहाँ तुझे कौन बुला लाया है ? तू दरवाजा तोड़ कर भीतर क्यों घुसा ? तुझे कौन संन्यासी कहता है ? ।।८१-८२।। "ऐसी जाति नहीं जिसके घर में तूने म

वैष्णव सभाय केने महा मातोयाल । झाट नाहि पलाइले नहिवेक भाल" ॥८४॥
नित्यानन्द बोले "आरे नाढ़ा ! वसि थाक । किलाइया पाड़ों पाछे देखाड प्रताप ॥८५॥
आरे वूढ़ा वामना ! तोमार भय नाइ । अमि अवधूत-मत्त ठाकुरेर भाइ ॥८६॥
स्त्रीये पुत्रे गृहे तुमि परम संसारी । परम हंसेर पथे आमि अधिकारी ॥८७॥
आमि मारिले ओ तुमि वलिते ना पार । आमा'सने अकारणे तुमि गर्व कर ॥८८॥
शुनिञा अद्वैत क्रोधे अग्नि-हेन ज्वले । दिगम्बर हइया अशेष मन्द बोले ॥८९॥
'मत्स्य खाय माँस खाय केमत संन्यासी । वस्त्र एडिलाम एइ आमि दिग्वासी ॥९०॥
कोथा माता पिता कोन् देशे वा वसति । के जानये इहा से वलूक देखि आसि ॥९१॥
एक चोरा आसिया एतेक करे पाक । खाइमु शुषिमु संहारिमु सब थाक ॥९२॥
तारे वलि 'संन्यासी' जे किछु नाहि चाय । बोलाय 'संन्यासी', दिने तिन बार खाय ॥९३॥
श्रीनिवास पण्डितेर मूले जाति नाञि । कोथाकार अवधूते आनि दिला ठाञि ॥९४॥
अवधूत करिव सकल जाति नाश । कोथा हैते मद्यपेर हइल प्रकाश" ॥९५॥
कृष्ण-प्रेम सुधारसे मत्त दुइ जन । अन्योन्ये कलह करेन अनुक्षण ॥९६॥
इथि एक जनेर हइया पक्ष जेइ । अन्य जने निन्दा करे, क्षय जाय सेइ ॥९७॥
हेन प्रेम कलहेर मर्म ना जानिया । एक निन्दे' आर वन्दे से मरे पूड़िया ॥९८॥
अद्वैतेर पक्ष हइ 'निन्दे' गदाधर । से अधम कभू नहे अद्वैत किङ्कर ॥९९॥

खाया हो । तेरी कोई जाति है, ऐसा कौन तुझे कहता है ॥८३॥ अरे महा मतवाले ! तू वैष्णवों की सभा में क्यों ? झट् भाग जा, नहीं तो अच्छा नहीं होगा' ॥ ८४ ॥ नित्यानन्द बोले, "अरे नाढा ! चुप बैठा रह ! नहीं तो अभी मरम्मत करके जमीन पर पटक दूँगा—फिर अपना प्रताप दिखाऊँगा ॥८५॥ अरे बूढ़े बामन ! तुम्हें भय नहीं है, मैं मतवाला अवधत प्रभु का भाई हूँ ॥८६॥ "तुम स्त्री-पुत्र-गृह सहित परम संसारी हो । मैं परम हंस (सन्यास) के पथ का अधिकारी हूँ ॥८७॥ मेरे मारने पर भी तुम्हें कुछ कहने का अधिकार नहीं है, तुम अकारण ही मेरे सामने गर्व (शेखी) दिखाते हो" ॥८८॥ यह सुनकर अद्वैत क्रोध से आग-बबूला होगये और दिगम्बर (शिव स्वरूप जो ठहरे) होकर खुब ही खरी खोटी कहने लगे ॥८९॥ "यह मछली खाता है, माँस खाता है (यौगिक क्रियाएँ) यह कैसा संन्यासी है । (परम हंस तो मैं हूँ) मैंने वस्त्र उतार फेंके हैं-यह देखो मैं दिगम्बर हूँ ॥९०॥ "न जाने कहाँ इसके माता-पिता हैं, किस देश का यह निवासी है—कोई जानता हो तो आकर यहाँ बतावे तो सही ॥९१॥ एक चोर यह (कहाँ से आकर) यहाँ इतना ढोंग मचा रहा है । यह सब बन्द करो । नहीं तो खा जाऊँगा, सोख जाऊँगा, संहार कर डालुँगा ॥९२॥ "अरे ! संन्यासी तो उसे कहते हैं जो कुछ नहीं चाहता है, पर यह दिन में तीन बार खाता है, फिर भी अपने को 'संन्यासी' कहता है ॥९३॥ इस श्रीनिवास पंडित की भी अपनी कोई जाति नहीं है, तभी तो वहाँ के एक अवधत को लाकर अपने घर में घुसा रक्खा है ॥९४॥ यह अवधूत सब की जाति का नाश करेगा (भक्त बना) न जाने कहाँ से यह मद्यप (प्रेम-मद का) आ प्रकट हुआ है" ॥९५॥ कृष्ण प्रेम रूप सुधा के रस से दोनों जने मतवाले हो रहे हैं और परस्पर से क्षण २ में कलह करते हैं ॥९६॥ इसमें एक जने का पक्ष लेकर जो दूसरे की निन्दा करता है, वह नाश को प्राप्त होता है ॥९७॥ ऐसे प्रेम-कलह का मर्म न समझ कर, जो एक की निन्दा करता है और दूसरे की वन्दना, वह (अपराध-अग्नि से) जल कर भस्म हो जाता है । ९८॥ (इसी प्रकार) अद्वैत का पक्ष लेकर जो गदाधर की निन्दा

ईश्वरे से ईश्वर कलहेर पात्र । के वुझये विष्णु-वैष्णवेर लीला मात्र ॥१००॥
सकल वैष्णव प्रति अभेद देखिया । जे कृष्ण-चरण भजे से जाय तरिया ॥१०१॥
भक्त गोष्ठी सहिते गौराङ्ग जय जय । विष्णु आर वैष्णव समान दुइ हय ॥१०२॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥१०३॥

इति श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे विश्वरूप दर्शनादि वर्णनं
नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

जय जय सर्व लोक नाथ गौरचन्द्र । जय धर्म-वेद-विप्र-संन्यासि महेन्द्र ॥ १ ॥
जय शची-गर्भ-रत्न-करुणासागर । जय नित्यानन्द-प्रभु जय विश्वम्भर ॥ २ ॥
भक्त गोष्ठी सहिते गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥ ३ ॥
मध्य खण्ड कथा भक्ति रसेर निधान । नव द्वीपे जे क्रीड़ा करिला सर्व प्राण ॥ ४ ॥
निरवधि करे प्रभु हरि सङ्कीर्त्तन । आपन ऐश्वर्य प्रकाशये अनुक्षण ॥ ५ ॥
नृत्य करे महाप्रभु निज नामावेशे । हुँकार करिया क्षणे महा अट्ट हासे ॥ ६ ॥
प्रेम रसे निरवधि गड़ागड़ि जाय । ब्रह्मार वन्दित अङ्ग पूर्णित धूलाय ॥ ७ ॥
प्रभुर आनन्द-आवेशेर नाहि अन्त । नयन भरिया देखे सव भाग्यवन्त ॥ ८ ॥
वाह्य हैले वैसेन सकल गण लैया । कोन् दिन गङ्गा जले विहरये गिया ॥ ९ ॥
कोन दिन नृत्य करि वसेन अङ्गने । घरे स्नान करायेन सर्व भक्त गणे ॥ १० ॥

करता है, वह अधम कभी भी अद्वैत का दास नहीं है ॥९९॥ जहाँ ईश्वर ही ईश्वर के कलह का पात्र हो—विष्णु तथा वैष्णवों की ऐसी लीला को कौन समझेगा—वह लीला एक लीला मात्र ही है—(कारण शून्य) ॥१००॥ अतएव सब वैष्णवों में अभेद-दृष्टि रखके जो श्रीकृष्ण चरण को भजता है, वह तर जाता है ॥१०१॥ भक्त वृन्दों के सहित गौराङ्ग प्रभु की जय हो, जय हो, विष्णु और वैष्णव दोनों समान ही होते हैं ॥१०२॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्रीनित्यानन्दचन्द्र मेरे प्राण हैं। वृन्दावनदास उनके युगल चरणों का गुणगान करता है ॥१०३॥

सब लोकों के नाथ गौरचन्द्र की जय हो, जय हो । धर्म, वेद, ब्राह्मण एवं संन्यासियों के अधीश्वर की जय हो ॥१॥ शची माता के गर्भ से प्रकट रत्न स्वरूप करुणा के सागर की जय हो ॥२॥ भक्त मंडली सहित गौरांगदेव की जय हो जय हो । श्री चैतन्यदेव की कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥३॥ नवद्वीप में सबके प्राण स्वरूप गौरचन्द्र ने जो लीलाएँ की हैं वही मध्य खण्ड की कथा है और यह भक्ति-रस का भण्डार है ॥४॥ प्रभु निरन्तर हरि संकीर्त्तन करते रहते हैं तथा अपने ऐश्वर्य को क्षण क्षण में प्रकाशित करते हैं । ५॥ अपने ही नाम के आवेश में महाप्रभु नृत्य करते हैं, क्षण में हुँकार करते हैं और क्षण में अट्टहास करते हैं ॥६॥ प्रेम रस में विह्वल हो भूमि पर निरन्तर लोट-पोट होते रहते हैं । ब्रह्मा के द्वारा वन्दित उनका श्रीअङ्ग धूल से भर जाता है ॥७॥ प्रभु के आनन्द-आवेश का अन्त नहीं है । भाग्यवान् सब लोग नेत्र भर कर दर्शन करते हैं ॥८॥ वाह्य-चेतना प्राप्त होने पर प्रभु सब भक्त जनों को लेकर बैठ जाते हैं । किसी दिन जाकर गङ्गा के जल में विहार करते हैं ॥९॥ किसी दिन नृत्य करके आँगन में ही बैठ जाते हैं और भक्त लोग घर में ही उनको स्नान करा देते हैं ॥१०॥ जब तक प्रभु का आनन्दमय

जत क्षण प्रभुर आनन्द नृत्य हये। तत क्षण 'दुःखी' पुण्यवती जल बहे ॥११॥
क्षणेके देखिया नृत्य सजल-नयने। पुनः पुन गङ्गा जल वहि' वहि' आने' ॥१२॥
सारि करि चतुर्दिगे एडे कुम्भ गण। देखिया सन्तोष बड़ श्रीशचीनन्दन ॥१३॥
श्रीवासेर स्थाने प्रभु जिज्ञासे' आपने। 'प्रतिदिन गङ्गा जल कोन् जने आने'?' ॥१४॥
श्रीवास बोलये'प्रभु ! 'दुःखी'वहि'आने'। प्रभु बोले 'सुखी' करि बोल सर्व जने ॥१५॥
ए जनेर 'दुःखी' नाम कभू योग्य नहे। सर्व काल 'सुखी' हेन मोर चित्ते लये' ॥१६॥
एतेक कारुण्य शुनि प्रभुर श्रीमुखे। कान्दिते लागिला भक्तगण प्रेम सुखे ॥१७॥
सभे 'सुखी' वलिलेन प्रभुर आज्ञाय। दासी-बुद्धि श्रीवास ना करे सर्वथाय ॥१८॥
प्रेम जोगे सेवा करिले से कृष्ण पाइ। माथा मुड़ाइले यमदण्ड ना एड़ाइ ॥१९॥
कुले रूपे धने वा विद्याय किछु नहे। प्रेमयोगे भजिले से कृष्ण तुष्ट हये ॥२०॥
जतेक कहेन तत्त्व वेदे भागवते। सव देखायेन गौरसुन्दर साक्षाते ॥२१॥
दासी हइ जे प्रसाद दुःखीरे हइल। वृथा-अभिमानी सव ताहा ना देखिल ॥२२॥
कि कहिव श्रीवासेर भाग्येर महिमा। जार दास-दासीर प्रसादे नाहि सीमा ॥२३॥
एक दिन नाचे प्रभु श्रीवास मन्दिरे। सुखे श्रीनिवास आदि सङ्कीर्त्तन करे ॥२४॥
दैवे व्याधि योगे गृहे श्रीवास नन्दन। परलोक हइलेन देखे नारीगण ॥२५॥
आनन्दे करेन नृत्य श्रीशचीनन्दन। श्रीवासेर गृहे महा उठिल क्रन्दन ॥२६॥

नृत्य होता रहता है, तब तक पुण्यवती "दुःखी" (श्रीवास की एक दासी) जल ढोती है ॥११॥ वह क्षण भर के लिये सजल नेत्रों से प्रभु का नृत्य देख लेती है और फिर गङ्गा जल ढो ढो कर लाती है। ऐसा वह बार बार करती है ॥१२॥ वह गङ्गा जल पूर्ण घटों को पंक्ति में सजा कर चारों ओर रख देती है। इन्हें देखकर श्रीशचीनन्दन को बड़ा ही सन्तोष होता है ॥१३॥ (एक दिन) स्वयं प्रभु ने श्रीवास से पूछा "यह गङ्गा जल नित्य प्रति कौन लाता है ?" ॥१४॥ श्रीवास बोला—"प्रभो ! 'दुःखी' ढोकर लाती है।" प्रभु बोले—"उसको सब लोग 'सुखी' कहा करें। इस जन के लिये 'दुःखी' नाम कभी योग्य नहीं है। मेरा चित्त तो यही कहता है कि वह सब काल में सुखी है" ॥१५–१६॥ प्रभु के श्रीमुख से इतनी करुणापूर्ण वचन सुनकर भक्त लोग प्रेम के सुख में विह्वल हो रोने लगे ॥१७॥ प्रभु की आज्ञा से अब सब 'दुःखी' को 'सुखी' कहने लगे। श्रीवास ने तो उसको दासी समझना सर्वथा ही त्याग दिया ॥१८॥ प्रेम योग के द्वारा सेवा करने से ही वह कृष्ण प्राप्त होता है, केवल सिर मुड़ाने से (संन्यासी बनने से) ही यम के दण्ड से नहीं बच सकता है ॥१९॥ कुल, रूप, धन अथवा विद्या द्वारा कोई (परमार्थ) लाभ नहीं होता है। प्रेम पूर्वक भजने से ही वह कृष्ण प्रसन्न होते हैं ॥२०॥ जो कुछ तत्त्व (भगवद्-रहस्य) वेद और भागवत कहते हैं, वह सब गौर सुन्दर साक्षात् दर्शाते हैं ॥२१॥ दासी होकर (भी) जो भगवत्प्रसाद (कृपा) दुःखी को प्राप्त हुआ, उसे (पूर्वोक्त कुल, रूप, धनादि के कारण) वृथा अभिमान करने वालों ने आँखों से देखा तक नहीं ॥२२॥ श्रीवास के भाग्य की महिमा का क्या वर्णन करूँ, जिसके दास दासी तक के ऊपर प्रभु-प्रसाद की सीमा नहीं है ॥२३॥ एक दिन प्रभु श्रीवास-गृह में नृत्य कर रहे थे और श्रीवासादि भक्त जन सुख से संकीर्त्तन कर रहे थे ॥२४॥ दैवयोग से श्रीवास के पुत्र का रोग के कारण परलोक वास हो गया, यह घर में स्त्रियों ने देखा (और रोने लगीं) ॥२५॥ श्री शचीनन्दन अपने आनन्द में नृत्य कर रहे थे कि श्रीवास के गृह में महा क्रन्दन ध्वनि होने लगी ॥२६॥

सत्वरे आइला गृहे पण्डित श्रीवास। देखे पुत्र हइयाछे परलोक वास ॥२७॥
परम गम्भीर भक्त महा'-तत्त्व-ज्ञानी। स्त्री गणेरे प्रवोधिते लागिला आपनि ॥२८॥
"तोमराम सव जान' कृष्णेर महिमा। सम्वर' क्रन्दन सभे चित्त देह' क्षमा ॥२९॥
अन्त काले सकृत शुनिले जाँर नाम। अति महा पातकि ओ जाय कृष्ण धाम ॥३०॥
हेन प्रभु आपने साक्षाते करे नृत्य। गुण गाय जत ताँर ब्रह्मा-आदि भृत्य ॥३१॥
ए समये जाहार हइल परलोक। इहाते कि जुयाय करिते आर शोक ॥३२॥
कोन काले ए शिशुर भाग्य पाइ जवे। 'कृतार्थ' करिया आपनारे मानि तवे ॥३३॥
यदि वा संसार धर्मे नार' सम्वरिते। विलम्बे कान्दिह जार येन लय चित्ते ॥३४॥
अन्य जेन केहो ए आख्यान ना शुनये। पाछे ठाकुरेर नृत्य सुख भङ्ग हये ॥३५॥
कल रव शुनि यदि प्रभु वाह्य पाय। तवे आजि गङ्गा प्रवेशिमु सर्वथाय" ॥३६॥
सभे स्थिर हइलेन श्रीवास वचने। चलिलेन श्रीवास प्रभुर सङ्कीर्त्तने ॥३७॥
परानन्दे संकीर्त्तन करये श्रीवास। पुनः पुन बाढ़े आरो विशेष उल्लास ॥३८॥
श्रीनिवास पण्डितेर एमन महिमा। चैतन्येर पार्षदेर एइ गुण-सीमा ॥३९॥
स्वानुभावानन्दे नृत्य करे गौरचन्द्र। कथोक्षणे रहिलेन लइ भक्त वृन्द ॥४०॥
परम्परा शुनि लेन सर्व भक्त गण। पण्डितेर पुत्र हैला वैकुण्ठ गमन ॥४१॥
तथापिह केहो किछु व्यक्त नाहि करे। दुःख बड़ पाइलेन समेइ अन्तरे ॥४२॥
सर्वज्ञेर चूड़ामणि श्रीगौर सुन्दर। जिज्ञासेन प्रभु सर्व जनेर अन्तर ॥४३॥

श्रीवास पण्डित शीघ्रता से गृह में आये तो देखा कि पुत्र की मृत्यु हो गई है ॥२७॥ वे बड़े गम्भीर भक्त और बड़े तत्त्व ज्ञानी हैं। वे आप ही स्त्रियों को प्रबोध देने लगे ॥२८॥ वे बोले "तुम लोग तो सब श्रीकृष्ण की महिमा को जानती हो, अतएव रोना बन्द कर चित्त को स्थिर करो। २९॥ देखो, अन्त समय पर एक बार भी जिनके नाम को सुन कर अत्यन्त महा पातकी भी श्रीकृष्ण के धाम को चला जाता है, ऐसे प्रभु आपः स्वयं यहाँ नृत्य कर रहे हैं और ब्रह्मा आदि सब दास उनका गुणगान कर रहे हैं ॥३०॥३१॥ ऐसे समय पर जिसकी मृत्यु हुई हो, उसके लिये क्या शोक करना उचित है ॥३२॥ यदि किसी समय इस बालक का जैसा भाग्य मुझे प्राप्त हो जावे तो मैं अपने को तभी कृतार्थ मानूँगा ॥३३॥ जो यदि संसार के इस धर्म को (रोने को) नहीं छोड़ सकती हो, तो वह धीरे २ रोवे, जिसके मन में आवे ॥३४॥ और कोई उनके इस रोने को न सुन पावे नहीं तो प्रभु के नृत्य सुख में बाधा पहुँचेगी ॥३५॥ तुम्हारे क्रन्दन के कोलाहल को सुनकर यदि प्रभु को वाह्य-ज्ञान हो आया (अर्थात् प्रेमावेश भङ्ग हो गया) तो मैं आज अवश्य मेव गङ्गा में प्रवेश कर जाऊँगा ॥३६॥ 'श्रीवास के इन वचनों से सब स्त्रियाँ शान्त, स्थिर हो गयीं, और श्रीवास प्रभु के संकीर्तन में चले गये ॥३७॥ श्रीवास परानन्द में संकीर्तन कर रहे हैं, पुनः पुनः उनके हृदय का उल्लास अधिकाधिक विशेष होता जा रहा है ॥३८॥ श्रीनिवास पण्डित की ऐसी ही महिमा है। श्री चैतन्यदेव के पार्षद के गुणों की यही सीमा है (कि प्रभु के सुख-दुःख के अतिरिक्त उनका अपना कोई दूसरा सुख-दुःख ही नहीं है) ॥३९॥ गौरचन्द्र स्वानुभव के आनन्द में नृत्य कर रहे हैं। भक्त वृन्दों के साथ कुछ समय इस प्रकार बीत गया ॥४०॥ धीरे २ एक से दूसरे को खबर होते होते समस्त भक्तों ने यह सुन लिया कि श्रीवास पण्डित के पुत्र का स्वर्गवास हो गया ॥४१॥ सभी के हृदय में बड़ा भारी दुःख हुआ, तथापि किसी ने कुछ भी बाहर प्रकट नहीं किया ॥४२॥ (परन्तु) श्री गौरसुन्दर

प्रभु बोले "आजि मोर चित्तकेन करे। कोन दुःख हइयाछे पण्डितेर घरे ॥४४॥
पण्डित बोलये "प्रभु ! मोर कोन् दुःख। जार घरे सुप्रसन्न तोमार श्री मुख" ॥४५॥
शेषे आछिलेन जत सकल महान्त। कहिलेन पण्डितेर पुत्रेर वृत्तान्त ॥४६॥
सम्भ्रमे बोलये प्रभु 'कह कत क्षण ?' शुनिलेन 'चारि दण्ड रजनी जखन ॥४७॥
तोमार आनन्द भङ्ग-भये श्रीनिवास। काहारे ओ इहा नाहि करेन प्रकाश ॥४८॥
परलोक हइयाछे आढाइ प्रहर। एवे आज्ञादेह' कार्य करिते सत्त्वर' ॥४९॥
शुनि श्रीवासेर अति अद्भुत कथन। 'गोविन्द गोविन्द' प्रभु करेन स्मरण ॥५०॥
प्रभु बोले "हेन सङ्ग छाड़िव केमते ?" एतवलि महाप्रभु लागिला कान्दिते ॥५१॥
'पुत्र शोक ना जानिल जे मोहोर प्रेमे। हेन सब सङ्ग मुञि छाड़ि मुँ केमने' ॥५२॥
एतबलि महाप्रभु कान्दये निर्भर। त्याग-वाक्य शुनि सभे चिन्तेन अन्तर ।५३॥
ना जानि कि परमाद पड़ये कखन। अन्योन्ये चिन्तये सकल भक्तगण ।.५४॥
गारस्थ छाड़िया प्रभु करिव संन्यास। तार ध्वनि करि कान्दे छाडि दीर्घ श्वास ॥५५॥
स्थिर हइलेन यदि ठाकुर देखिया। सत्कार करिते शिशु जायेन लइया ।५५॥
मृत-शिशु-प्रति प्रभु जिज्ञासे' आपने। 'श्रीवासेर घर छाड़ि जाह कि कारणे ॥५७॥
शिशु बोले 'प्रभु ! जेन निर्वन्ध तोमार। अन्यथा करिते शक्ति आछये काहार' ।.५८॥
मृत-पुत्र उत्तर करये प्रभु-सने। परम अद्भुत शुने सर्व भक्त गणे। ५९॥
शिशु बोले 'ए देहेते जतेक दिवस'। निर्वन्ध आछिल भुञ्जिलाङ सेइ रस ॥६०॥

तो सर्वज्ञों के शिरोमणि हैं, वे प्रभु स्वयं ही सबसे पूछने लगे ॥४३॥ प्रभु बोले—"आज मेरा चित्त न जाने कैसा २ हो रहा है। क्या श्रीवास के घर से कोई दुःख तो नहीं आ पड़ा ?" ॥४४। श्रीवास पण्डित बोले-"प्रभो ! मेरे कौन-सा दुःख ? जिसके घर में आपका यह सुप्रसन्न मुख है" ॥४५॥ (परन्तु) वहाँ जो अन्य महापुरुष गण थे उन्होंने पण्डित के पुत्र के स्वर्गवास होने का वृत्तान्त कह सुनाया ॥४६॥ प्रभु ने सम्भ्रम सहित पूछा "कितनी देर हुई ?" तो भक्त लोगों ने सुनाया कि यह चार पल रात्रि की बात हैं। परन्तु आपके आनन्द के भङ्ग हो जाने के भय से श्रीवास ने इसे किसी के निकट प्रकाश नहीं किया ॥४७-४८॥ "उसे परलोक बास हुये अब ढाई पहर हो चुके हैं। अब आप आज्ञा देवें तो उसका अन्तिम का शीघ्र किया जाय" ॥४९॥ श्रीवास की इस अद्भुत वार्ता को सुनकर प्रभु "गोविन्द, गोविन्द" स्मरण करने लगे ॥५०॥ फिर प्रभु बोले—"ऐसा सङ्ग कैसे छोड़ूँगा ?" इतना कह कर महाप्रभु रोने लगे ॥५१॥ "जिन्होंने मेरे प्रेमवश पुत्र-शोक को न जाना, ऐसों का सङ्ग मैं कैसे छोड़ूँगा" ॥५२॥ इतना कह कर प्रभु और अधिक रोने लगे। (उनके श्रीमुख से) त्याग की बात सुनकर सब भक्त लोग मन में सोचने लगे कि न जाने क्या विपत्ति कब आ पड़े। सब भक्त लोग परस्पर में यही चिन्ता चर्चा करने लगे। उन्हें लगा कि प्रभु गृहस्थ का त्याग करके संन्यास लेंगे। इस दुःख से वे उच्च स्वर से रुदन करने लगे और दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे ॥५३-५४-५५॥ जब उन्होंने देखा कि प्रभु स्थिर हो गये हैं तो वे अन्तिम संस्कार के लिये बालक को ले जाने लगे ॥५६॥ उस समय प्रभु ने मृत शिशु से आप ही प्रश्न किया "तुम क्यों श्रीवास का घर छोड़ कर जा रहे हो ?" ॥५७॥ वह मृत बालक चेतन होकर बोल उठा "प्रभो ! आपके विधि-विधान से भला उसे उलटने की शक्ति किसमें है ?" इस प्रकार मृत पुत्र प्रभु को उत्तर देने लगा। यह परम अद्भुत वार्ता सब भक्त लोग सुनने लगे ॥५८-५९॥ बालक फिर कहने लगा—"इस देह मे जितने दिन का संयोग था,

निर्वन्ध घुचिल आर रहिते ना पारि । एवे चलिलाङ अन्य निर्वन्धित पुरी ॥६१॥
केवा कार बाप प्रभु ! के कार नन्दन । सभे आपनार कर्म करये भुञ्जन ॥६२॥
जत दिन भाग्य छिल पण्डितेर घरे । आछिलाङ, एवे चलिलाङ अन्य-पुरे ॥६३॥
सपार्षदे तोमार चरणे नमस्कार । अपराध ना लइह, विदाय आमार ॥६४॥
एत वलि नीरव हइला शिशु-काय । एमत कौतुक करे श्रीगौराङ्ग-राय ॥६५॥
मृत-पुत्र-मुखे शुनि अपूर्व कथन । आनन्द सागरे भासे सर्व भक्त गण ॥६६॥
पुत्र शोक दूरे गेल श्रीवास गोष्ठीर । कृष्ण प्रेमानन्दे सभे हइला अस्थिर ॥६७॥
कृष्ण प्रेमे श्रीनिवास गोष्ठीर सहिते । प्रभुर चरण धरि लागिला कान्दिते ॥६८॥
'जन्म जन्म तुमि पिता माता पुत्र प्रभु । तोमार चरण जेन ना पासरि कभु ॥६९॥
जे खाने से खाने प्रभु ! केने जन्म नहे । तोमार चरणे जेन प्रेम भक्ति रहे ॥७०॥
चारि भाइ प्रभुर चरणे काकु करे । चतुर्दिगे भक्तगण कान्दे उच्च स्वरे ॥७१॥
कृष्ण प्रेमे चतुर्दिगे उठिल क्रन्दन । कृष्ण प्रेममय हैल श्रीवास भवन ॥७२।
प्रभु बोले 'शुन शुन श्रीवास पण्डित । तुमि त सकल जान' संसार चरित । ७३॥
ए सब संसार दुःख तोमार कि दाय । जे तोमारे देखे, सेहो कभु नाहि पाय ॥७४॥
आमि नित्यानन्द-दुइ नन्दन तोमार । चित्ते किछु तुमि व्यथा ना भाविह आर' ॥७५॥
श्री मुखेर परम कारुण्य वाक्य शुनि । चतुर्दिगे भक्तगण करे जय ध्वनि ॥७६॥
सर्व-गण-सह प्रभु बालक लइया । चलिलेन गङ्गा तीरे कीर्त्तन करिया ॥७७॥

उसका सुख भोग लिया । वह संयोग पूरा हो गया सो अब और टिक नहीं सकता हूँ । अब मैं कर्म-बन्धन से शून्य अन्य लोक के लिये चला ॥६०–६१॥ "प्रभो ! कौन किसका बाप हैं और कौन किसका पुत्र ? सभी अपने २ कर्मों का भोग भोगते हैं ॥६२॥ जितने दिन के लिये पण्डित के घर में रहने का भाग्य था, उतने दिन रहा, अब अन्य लोक को जा रहा हूँ ॥६३॥ पार्षदों के सहित आपके श्री चरणों में नमस्कार है । आप लोग मेरा अपराध न मानें, मुझे बिदा दें' । ६४॥ इतना कहकर बालक का शरीर मौन हो गया । ऐसा कौतुक श्री गौराङ्गराय करते हैं ॥६५॥ मृत पुत्र के मुख से अपूर्व वार्ता सुन कर सब भक्तजन आनन्द सागर में बहने लगे ॥६६॥ श्रीवास के परिवार का पुत्र-शोक दूर होगया और कृष्ण प्रेम के आनन्द से सब विह्वल होगये ॥६७॥ कृष्ण प्रेम में श्रीवास अपने परिवार सहित प्रभु के श्री चरणों को पकड़ कर रोने लगा ॥६८॥ (वह बोला) "जन्म जन्म में तुम्हीं हमारे पिता, माता, पुत्र, प्रभु हो ! तुम्हारे चरण हम कभी न भूलें ॥६९॥ हे प्रभो ! जहाँ कहीं भी हमारा जन्म क्यों न हो, तुम्हारे श्री चरणों में यह प्रेम भक्ति बनी रहे" ॥७०॥ इस प्रकार चारों भाई प्रभु के चरणों में काकुति-मिनति करने लगे । चारों ओर भक्त लोग उच्च स्वर से रुदन करने लगे ॥७१॥ कृष्ण-प्रेम में चारों ओर क्रन्दन-कोलाहल छा गया और श्रीवास का भवन कृष्ण प्रेममय हो गया ॥७२॥ प्रभु बोले—"सुनो-सुनो श्रीवास पण्डित ! तुम तो संसार के चरित (स्वभाव) सब जानते हो ॥७३॥ संसार के इन सब दुःखों से तुम्हारी भला क्या हानि ? हानि तो उसकी भी नहीं होतो तो तुम्हारा दर्शन ही कर लेता है ॥७४॥ देखो मैं और नित्यानन्द–ये दो तुम्हारे पुत्र हैं, तुम अपने चित्त में कुछ शोक दुःख मत करना" ॥ ७४-७५ ॥ श्री मुख से ऐसे परम करुणापूर्ण वाक्यों को सुनकर चारों ओर भक्त लोग जय जयकार करने लगे ॥ ७६ ॥ प्रभु सब भक्तों के सहित बालक को लेकर कीर्तन करते हुये गङ्गा के किनारे गये ॥ ७७ ॥ वहाँ बालक का यथोचित अन्तिम संस्कार करके

यथोचित क्रिया करि,करि गङ्गा स्नान। 'कृष्ण'वलि सभे गृहे करिला पयान।। ७८।।
प्रभु भक्तगणे सभे गेला निज घर। श्रीवासेर गोष्ठी सब हइला विह्वल।। ७९।।
ए सब निगूढ़ कथा जे करे श्रवण। अवश्य मिलये तारे कृष्ण प्रेमधन।। ८०।।
श्रीनिवास चरणे रहुक नमस्कार। गौरचन्द्र नित्यानन्द नन्दन जाहार।। ८१।।
ए सब अद्‌भुत सेइ नवद्वीपे हय। तथापिह भक्त–बिने अन्ये ना जानय।। ८२।।
मध्य खण्डे परम अद्‌भुत सब कथा। मृत देहे तत्त्वज्ञान कहाइ लेन' यथा।। ८३।।
हेन मते नवद्वीपे श्रीगौर सुन्दर। विहरये सङ्कीर्तन सुखे निरन्तर।। ८४।।
प्रेमरसे प्रभुर संसार नाहि स्फुरे। अन्येर कि दाय विष्णु पूजिते ना पारे।। ८५।।
स्नान करि वैसे प्रभु श्रीविष्णु पूजिते। प्रेम जले सकल श्री अङ्ग वस्त्र तिते।। ८६।।
बाहिर हइया प्रभु से वस्त्र छाड़िया। पुन अन्य वस्त्र परि विष्णु पूजे गिया।। ८७।।
पुन प्रेमानन्द जले तिते से वसन। पुन वाहिराइ अङ्ग करे प्रक्षालन।। ८८।।
एइ मत वस्त्र-परिवर्त करे मात्र। प्रेमे विष्णु पूजिवारे नारे तिल मात्र।। ८९।।
शेषे गदाधर-प्रति वलिलेन वाक्य। "तुम विष्णु पूज, मोर नाहिक ये भाग्य"।। ९०।।
एइ मत वैकुण्ठ नायक भक्ति रसे। विहरये नवद्वीपे रात्रिये दिवसे।।९१।।
एक दिन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारि-स्थाने। कृपाय ताहाने अन्न मागिला आपने।। ९२।।
"तोर अन्न खाइते आमार इच्छा बड। किछु भय ना करिह वलिलाङ दृढ़।। ९३।।
एइ मत महाप्रभु बोले बार बार। शुनि शुक्लाम्बर काकु करने अपार।। ९४।।

गङ्गा में स्नान किया और'कृष्ण कृष्ण' कहते हुये सब घर के लिये चल दिये।।७७।। प्रभु भी भक्तों के साथ अपने घर को गये। श्री वास का परिवार सब विह्वल हो गया।।७९।। यह सब निगूढ़ कथा जो श्रवण करता है उसे अवश्य कृष्ण प्रेम धन प्राप्त होता है।।८०।। श्री बास के चरणों में मेरा कोटि २ नमस्कार है जिनके गौरचन्द्र और नित्यानन्द जैसे आनन्द दाता पुत्र हैं।।८१।। यह सब अद्‌भुत चरित नवद्वीप में हो रहे हैं, तथापि भक्त बिना और कोई नहीं जानता है।।८२।। मध्य खण्ड की सब कथाएँ बड़ी अद्‌भुत हैं- यथा यह कथा जिसमें मृतात्मा के मुख से तत्त्व ज्ञान कहलाया गया है।।८३।। इस प्रकार श्री गौर सुन्दर नवद्वीप में निरन्तर संकीर्तन के सुख में विहार कर रहे हैं।।८४।। प्रेम रस के आवेश में प्रभु को संसार का स्फुरण नहीं होता। अन्य सांसारिक वार्ता तो दूर रही विष्णु-पूजन तक प्रभु से नहीं बनता है।।८५।। जैसे ही प्रभु स्नान करके विष्णु-पूजन के लिये बैठते हैं वैसे ही नेत्रों से प्रेमाश्रुधाराऐं बहने लगती हैं जिनसे कि वस्त्र भीग जाता है।।८६।। प्रभु मन्दिर से बाहर होकर उस गीले वस्त्र को उतार दूसरा वस्त्र पहन कर विष्णु-पूजन करने लगते हैं।।८७। तो पुन: प्रेमानन्द के जल से वह वस्त्र भीग जाता है और प्रभु पुन: बाहर निकल कर अपने अङ्गों को धोते हैं।।८८।। इस प्रकार प्रभु वस्त्र ही केवल बदलते रह जाते हैं किन्तु प्रेम विवश होकर तिलभर भी विष्णु-पूजन नहीं कर पाते हैं।।८९।। अन्त में हार कर गदाधर से कहते हैं "तुम्हीं विष्णु की पूजा करो-मेरा यह भाग्य नहीं है"।।९०।। इस प्रकार वैकुण्ठनाथ भक्ति रस में विभोर नवद्वीप में रात्रि–दिवस विहार करते हैं।।९१।। एक दिन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के निकट प्रभु ने उस पर कृपा करने के लिये उनसे भोजन माँगा।।९१।। वे बोले तुह्मारा अन्न (भात) खाने की मेरी बड़ी इच्छा है। तुम (अन्न देने में) कुछ भय मत करो-मैं ठीक कह रहा हूँ"।।९३।। इस प्रकार महाप्रभु जब बारम्बार कहने लगे तो सुन कर शुक्लाम्बर अनेक काकुति मिनति करने लगा।।९४।। वह बोला"मैं

"भिक्षुक अधम मुञि पापिष्ठ गर्हित । तुमि धर्म सनातन, मुञि से पतित ।। ९५ ।।
मोरे कोथा दिवे प्रभु ! चरणे छाया । कीट तुल्य नहीं मोरे एत बड़ माया ।। ९६ ।।
प्रभु बोले"माया" हेन ना वासिह मने । बड़ इच्छा बसे मोर तोमार रन्धने ।। ९७ ।।
साचरे नैवेद्य गिया करह वासाय । आजि आमि मध्याह्ने आइव सर्वथाय ।। ९८ ।।
तथापिह शुक्लाम्बर भय पाइ मने । युक्ति जिज्ञासिलेन सकल भक्त स्थाने ।। ९९ ।।
सभे वलिलेन "तुमि केने कर" भय । परमार्थे ईश्वरेर केहो भिन्न नय ।। १०० ।।
विशेषे जे जन ताने सर्वभावे भजे । सर्वकाल तान अन्न आपनेइ खोजे ।। १०१ ।।
आपने शूद्रार पुत्र विदुरेर स्थाने । अन्न मागि खाइलेन स्वभाव-कारणे ।। १०२ ।।
भक्त स्थाने मागि खाय प्रभुर स्वभाव । देह' गिया तुम बड़ करि अनुराग ।। १०३ ।।
तथापिह तुमि यदि भय वास मने । आलग करिया तुमि करिह रन्धने ।। १०४ ।।
बड़ भाग्य तोमार, एमत कृपा जारे । शुनि विप्र हरिषे आइला निज घरे ।। १०५ ।।
स्नान करि शुक्लाम्वर अति सावधाने । सुवासित जल तप्त करिला आपने ।। १०६ ।।
तण्डुल सहित तवे दिव्य गर्भ थोड़ । आलगोछे दिया विप्र करेन कर जोड़ ।। १०७ ।।
"जय कृष्ण गोविन्द गोपाल वन माली । वलिते लागिला शुक्लाम्वर कुतूहली ।। १०८ ।।
सेइ क्षणे भक्त-अन्ने रमा जगन्माता । दृष्टिपात करिलेन महापतिव्रता ।। १०९ ।।
सेइ ततक्षणे सर्वामृत हैल सेइ अन्न । स्नान करि प्रभु आसि हैला उपसन्न ।। ११० ।।
सङ्गे नित्यानन्द आदि आप्त कथो जन । तिता-वस्त्र एडिलेन श्रीशचीनन्दन ।। १११ ।।

तो अधम भिक्षुक हूँ, बडा ही निन्दित पापी हूँ । आप स्वयं सनातन धर्म स्वरूप हो, मैं तो पतित हूँ ।।९५।। मैं तो एक कीट समान भी नहीं हूँ । कहाँ तो प्रभो ! आप को मुझपर अपने श्री चरणों की छाया करनी चाहिये थी, और कहाँ मेरे प्रति आप इतनी बड़ी माया फैला रहे हो ! " ।९६। प्रभु बोले, "इसे तुम 'माया' (छल) मत समझो सचमुच मे तुम्हारे हाथ की रसोई पाने के लिये मेरी बड़ी इच्छा हो रही है ।।९७।। तुम शीघ्र ही घर जाकर नैवेद्य प्रस्तुत करो । आज मैं मध्यान्ह में अवश्य ही तुम्हारे घर आऊँगा ।।९८।। तथापि शुक्लाम्बर के मन में भय हो आया और उसने सकल भक्तों के निकट उपाय पूछा ।।९९।। सभी बोले-"तुम क्यों भय करते हो ? परमार्थ दृष्टि से ईश्वर के लिये तो कोई दूसरा है ही नहीं । विशेष करके, जो जन उनको सर्वभाव से भजता है, उसका अन्न तो सदाकाल से वे आप ही खोजते आये हैं ।।१००-१०१।। "अपने इस स्वभाव के कारण उन्होंने आपही सुदामा और विदुर के निकट भोजन माँग कर खाया ।।१०२।। भक्त के निकट माँग खाना तो प्रभु का स्वभाव ही है,इसलिये तुम उन्हें भोजन पाक करके खिलाओ ।।१०३।। "तथापि यदि तुम्हारे मन में भय ही होता है तो तुम उनके लिये अस्पर्श में रसोई बनाओ ।।१०४।। यह तुम्हारा बड़ा भाग्य है जो प्रभु तुम पर ऐसो कृपा कर रहे हैं" । यह सुन विप्र हर्षित होकर अपने घर आया ।।१०५।। शुक्लाम्बर ने बड़ी सावधानी से स्नान किया । फिर सुगन्धित जल गर्म किया और उसमें चाँवल के साथ केला के नवीन मृदुल फूल मिला कर पात्र को स्पर्श किये बिना अलग से डाल दिया" और फिर शुक्लाम्बर आनन्द में "जय कृष्ण गोविन्द गोपाल वनमाली" की धुन बोलने लगा ।।१०६-१०७-१०८।। उसी क्षण महापतिव्रता जगत्माता लक्ष्मी देवी ने भक्त के अन्न के प्रति दृष्टि-पात किया ।।१०९।। और तत्क्षण वह अन्न सब अमृतमय होगया । प्रभु भी स्नान करके आ उपस्थित हुये ।।११०।। प्रभु के साथ नित्यानन्द आदि कुछ आप्तजन हैं । श्रीशचीनन्दन ने गीले वस्त्र बदले ।।१११।। भक्त की इच्छा को पूर्ण करने वाले

आपने लइया अन्न तान इच्छा पालि'। शुक्लाम्वर देखिया हासेन कुतूहली ॥११२॥
गंगार अग्रेते घर गङ्गार सम्मुखे। विष्णु–निवेदन करिलेन बड़ सुखे ॥११३॥
हासि वसिलेन प्रभु आनन्द भोजने। नयन भरिया देखे सर्व भृत्य गणे ॥११४॥
ब्रह्मादिर यज्ञ भोक्ता जे गौर सुन्दर। सेहो ध्याने, एमत साक्षाते सुदुष्कर ॥११५॥
हेन प्रभु बोले "जन्म आवत आमार। एमन अन्नेर स्वादु नाहिं पाइ आर ॥११६॥
किवा गर्भ थोड़ स्वादुना पारि वलिते। आलगोछे एमत वा रान्धिला के मते ॥११७॥
तुम हेन जन से आमार वन्धु-कुल। तुम सव लागि से आमार आदि मूल ॥११८॥
शुक्लाम्वर-प्रति देखि कृपार वैभव। कान्दिते लागिला अन्योन्ये भक्त सब ॥११९॥
एइ मत प्रभु पुन: पुन आस्वादिया। करिलेन भोजन आनन्द युक्त हैया ॥१२०॥
जे प्रसाद पायेन भिक्षुक शुक्लाम्वर। देखुक अभक्त सब पापी कोटीश्वर।१२१।
धने जने पाण्डित्ये चैतन्य नाहि पाइ। 'भक्ति रसे वश प्रभु' चारि वेदे गाइ ॥१२२॥
वसिलेन प्रभु प्रेम-भोजन करिया। ताम्बूल खायेन प्रभु हासिया हासिया ॥१२३।
पत्र लइ भृत्यगण भूलिला आनन्दे। ब्रह्मा शिव अनन्त जे पत्र शिरे वन्दे ॥१२४॥
कि आनन्द हइल से भिक्षुकेर घरे। एमत कौतुक करे श्रीगौर सुन्दरे ॥१२५॥
कृष्ण कथा प्रसंग करिया कथो क्षण। सेइखाने महाप्रभु करिला शयन ॥१२६॥
भक्त गण करि लेन तथाइ शयन। तथि मध्ये अद्भुत देखये एक जन ॥१२७॥
ठाकुरेर एकशिष्य श्रीविजय दास। से महापुरुष किछु देखिला प्रकाश ॥१२८॥

प्रभु ने अपने आप ही पाकान्न लिया और शुक्लाम्बर को देखकर कौतुकी प्रभु हँसने लगे ।११२॥ शुक्लाम्बर की कुटिया गङ्गा के सन्मुख थी। प्रभु ने बड़े आनन्द से नैवेद्य को विष्णु भगवान को निवेदन किया ॥११३॥ प्रभु हँसते हुए आनन्द से भोजन के लिये बैठ गये। सब भृत्यगण नेत्र भर कर दर्शन करने लगे ॥११४॥ जो गौर सुन्दर ब्रह्मादिकों के यज्ञ के भोक्ता हैं—परन्तु ध्यान में ही, इस प्रकार साक्षात् भोक्ता के दर्शन उनको भी दुर्लभ हैं। ११५। ऐसे वे प्रभु बोले "अपने जन्म से लेकर आज तक मैंने पहले कभी ऐसा स्वादिष्ट भोजन नहीं किया ॥ ११६ ॥ इसमें केला के 'गर्भ थोड़' (नवीन मृदुल फूल) का स्वाद तो कुछ कहा नहीं जासकता। विना स्पर्श किये अलग से ही ऐसी सुन्दर रसोई तुमने कैसे बनाली ॥११७॥ तुम जैसे जन ही मेरे वन्धु-परिवार हो। तुम सब लोग ही मेरे अवतार के मूल कारण हो ॥११८॥ शुक्लाम्बर प्रति प्रभु की ऐसी विशेष कृपा को देखकर अन्य सब भक्त आनन्द के आँसू बहाने लगे ॥११९॥ इस प्रकार प्रभु ने पुनः पुनः आस्वादन करते हुये बड़े आनन्दित होकर भोजन किया ॥१२०॥ जो प्रसाद (कृपा) एक भिक्षुक शुक्लाम्बर को प्राप्त हुआ उसे करोड़पति परन्तु पापी अभक्त लोग देख तो लें कि धन, जन, पण्डित्य से श्री चैतन्यदेव नहीं प्राप्त होते हैं। भक्ति रस के ही वशीभूत प्रभु हैं" यही चारों वेद गाते हैं।१२१॥ प्रभु प्रेम का भोजन करके बैठे और हँस हँस कर पान खाने लगे ॥१२२॥ पत्तल (जिसमें प्रभु ने भोजन किया था) को लेकर भृत्य लोग आनन्द में आत्महारा हो गये। क्यों न हों–वह पत्तल ही ऐसा है जिसको ब्रह्मा, शिव, शेष भी शीश झुकाते हैं ॥१२४॥ उस भिक्षुक के घर में कैसा अपूर्व आनन्द हुआ! ऐसा कौतुक करते हैं श्रीगौरसुन्दर ॥१२५॥ कुछ समय तक श्रीकृष्ण–कथा की चर्चा करके महाप्रभु ने वहीं विश्राम किया ॥१२६॥ भक्त लोगों ने भी वहीं शयन किया। उनमें से एक जने को एक कुछ अद्भुत बात दिखायी दी ॥१२७॥ महाप्रभु का एक शिष्य था श्रीविजयदास। उस महापुरुष को प्रभु के ऐश्वर्य के कुछ प्रकाश का

नवद्विपे तेनमत नाहि आँखरिया । प्रभुरे अनेक पूंथि दियाछे लिखिया ॥१२९॥
'आंखरिया-विजय' करिया सभे घोषे । मर्म नाहि जाने लोक भक्ति-हीन-दोषे ॥१३०॥
शयने ठाकुर तान अङ्गे दिला हस्त । विजय देखेन अति अपूर्व समस्त ॥१३१॥
हेम-स्तम्भ-प्राय हस्त दीर्घ सुवलन । परिपूर्ण देखे तहिं रत्न-अभरण ॥१३२॥
श्रीरत्न मुद्रिका जत अंगुलीर मूले । ना जानि कि कोटि सूर्य चन्द्र मणिज्वले ॥१३३॥
आब्रह्म पर्यन्त सब देखे ज्योतिर्मय । हस्त देखि परानन्द हइला विजय ॥१३४॥
विजय उद्योग मात्र करिला डाकिते । श्री हस्त दिलेन प्रभु ताँहार मुखेते ॥१३५॥
प्रभु बोले "जत दिन मुञि थाको एथा । तावत काहारे पाछे कह एइ कथा ॥१३६॥
एतवलि हासे' प्रभु विजय चा'हिया । विजय उठिला महा हुङ्कार करिया ॥१३७॥
विजयेर हुङ्कारे जागिला भक्त गण । धरेन विजय तभु न पाय धरण ॥१३८॥
कथोक्षण उन्माद करिया महाशय । शेषे हैला परानन्द-मूर्च्छित तन्मय ॥१३९॥
भक्त सब बुझिलेन—विभव—दर्शन । सर्व-गण लागिलेन करिते क्रन्दन ॥१४०॥
सभारे जिज्ञासे' प्रभु "कि बोल इहार । आचम्विते विजयेर बड़ त हुङ्कार ॥१४१॥
प्रभु बोले "जानिलाङ गङ्गार प्रभाव । विजयेर विशेष गङ्गाय अनुराग ॥१४२॥
नहे शुक्लाम्बर गृहे देव-अधिष्ठान । किवा देखिलेन इहा कृष्ण से प्रमाण' ॥१४३॥
एत वलि विजयेर अङ्गे दिया हस्त । चेतन करिल, हासे' वैष्णव समस्त ॥१४४॥
उठियाओ विजय हइला जड़-प्राय । सप्त दिन भ्रमिलेन सर्व नदियाय ॥१४५॥

दर्शन किया ॥१२८॥ नवद्वीप में उसके समान सुन्दर लेखक कोई नहीं था। उसने प्रभु को अनेक पुस्तकें लिखकर दी थीं ॥१२९॥ आखरिया विजय (लेखक विजय) के नाम से सब पुकारते थे। उसके हृदय के भाव को न जान कर लोग उसे भक्तिहीन कहकर दोष देते थे ॥१३०। निद्रा में प्रभु ने अपना एक हस्त उसके शरीर पर रख दिया तब तो विजय को सब कुछ अत्यन्त अपूर्व दिखायी देने लगा ॥१३१॥ वह श्री हस्त सुवर्ण के स्तम्भ के सदृश है, दीर्घ है, सुडौल है, और रत्न के अलङ्कारों से परिपूर्ण ॥१३२॥ सब उँगलियों के मूल में रत्नमयी दिव्य मुद्रिका है। न जाने कितने कोटि सूर्य चन्द्र का तेज उन मणियों में है ॥१३३॥ उसे समस्त ब्रह्माण्ड ज्योतिर्मय दिखायी देने लगा। श्रीहस्त के दर्शन कर विजय परमानन्द में डूब गया ॥१३४॥ विजय ने आवाज देना चाहा ही था कि प्रभ ने अपना श्रीहस्त उसके मुख पर रख दिया ॥१३५॥ प्रभु बोले-',जब तक मैं यहाँ हूँ तब तक किसी को यह वृत्त नहीं सुनाना ॥१३६॥ इतना कह प्रभु विजय की ओर देखते हुये हँसने लगे। विजय एक वड़ा भारी हुँकार कर उठा ॥१३७॥ विजय के हुँकार से भक्त लोग जाग उठे। वे विजय को पकड़ते हैं पर वह पकड़ में नहीं आता है। १३८॥ कुछ समय महाशय विजय उन्मत्त रहे, फिर परानन्द में तन्मय होकर मूछित हो गये ॥१३९॥ भक्त लोग समझ गये कि कुछ वैभव का दर्शन हुआ है और सब रोने लगे ॥१४०॥ प्रभ सबसे पूछते हैं "बताओ तो यह क्या बात है ? अचानक विजय ने बड़ा हुँकार किया ॥१४१॥ फिर आप ही प्रभु बोले "समझ गया यह गङ्गा का प्रभाव है, विजय का गङ्गा के प्रति विशेष अनुराग जो है ॥१४२॥ अथवा तो शुक्लाम्बर के गृह में कोई देवता का निवास है। अथवा तो श्रीकृष्ण के कोई चमत्कार का दर्शन हुआ है" ॥१४३॥ इतना कहकर विजय के शरीर पर श्रीहस्त फेर कर उसे सचेत किया। प्रभु का यह कौतुक देख वैष्णव लोग सब हँसने लगे ॥१४४॥ विजय सचेत होकर उठता तो सही पर प्रायः जड़ (ज्ञान रहित) हो गया और सात दिन सारी नदिया में

आहार पानी निद्रा रहित देह धर्म । भ्रमये विजय, केहो नाहि जाने मर्म ।।१४६।।
कथोदिने वाह्य–चेष्टा जानिला विजय । शुक्लाम्बर गृहे हेन सब रङ्ग हय ।।१४७।।
शुक्लाम्बर–भाग्य वलिवारे शक्तिकार । गौरचन्द्र अन्न–परिग्रह कैला जार ।।१४८।।
एइ मत भाग्यवन्त–शुक्लाम्बर–घरे । गोष्ठीर सहित गौर सुन्दर विहरे ।।१४९।।
विजयेर कृपा,—शुक्लाम्बरान्न–भोजन । इहार श्रवणे मात्र मिले भक्ति धन ।।१५०।।
हेन मते नवद्वीपे श्रीगौर सुन्दर । सर्व वेदवन्द्य लीला करे निरन्तर ।।१५१।।
एइमत प्रति वैष्णवेर घरे घरे । प्रतिदिन नित्यानन्द–संहति विहरे ।।१५२।।
निरवधि प्रेम रसे शरीर विह्वल । 'भाव' नामे जत ताहा प्रकाशे' सकल ।।१५३।।
मत्स्य कूर्म नरसिंह वराह वामन । रघुसिंह बौद्ध कल्कि श्रीनन्दनन्दन ।।१५४।।
एइ मत जत अवतार से सकल । सेइ रूप हय प्रभु स्वभाव वत्सल ।।१५५।।
ए सकल भाव हइ, लुकाय तखने । सबेना घूचिल राम भाव चिर दिने ।।१५६।।
महामत्त हैला प्रभु हलधर—भावे । 'मद आन' 'मद आन' महा उच्च डाके ।।१५७।।
नित्यानन्द जानेन प्रभुर समीहित । घट भरि गङ्गा जल दिला सावहित ।।१५८।।
हेन से हुङ्कार शुनि हेन से गर्जन । नवद्वीप-आदि करि काँपे त्रिभुवन ।।१५९।।
हेन से करेन महा ताण्डव प्रचण्ड । पृथिवी ते पड़िले पृथिवी हय खण्ड ।।१६०।।
टलमल करे भूमि ब्रह्माण्ड सहिते । भय पाय भृत्य सब से नृत्य देखिते ।।१६१।।
बलराम–वर्णना गायेन सभे गीत । शुनिञा हयेन प्रभु आनन्दे मूर्च्छित ।।१६२।।

घूमता फिरा ।।१४५।। खाना पीना-सोना आदि देह के धर्म सब छूट गये । केवल घूमता रहता है विजय, कोई इसके रहस्य को नहीं जानता है । १४६।। कुछ दिन पश्चात् विजय को वाह्यज्ञान हुआ । शुक्लाम्बर के गृह में ऐसे सब कौतुक होते हैं ।।१४७।। शक्लाम्बर के भाग्य को वर्णन करने की शक्ति भला किसमें है,गौर-चन्द्र ने जिसका अन्न ग्रहण किया ।।१४८।। इस प्रकार भाग्यवान् शक्लाम्बर के घर में गौरसुन्दर अपनी गोष्ठी सहित विहार करते हैं ।।१४९।। शुक्लाम्वर का भोजन और विजय पर कृपा-इनकी कथा सुनने मात्र से भक्ति धन प्राप्त होता है ।।१५०।। इस प्रकार गौरचन्द्र नवद्वीप में सर्व वेदों द्वारा बन्दित लीलाओं को निरन्तर करते रहते हैं ।।१५१।। इसी प्रकार प्रत्येक वैष्णव के घर घर प्रभु अपनी कृपा का प्रकाश करते हैं ।।१५२।। निरन्तर प्रेम रसास्वादन में प्रभु का शरीर विह्वल रहता है, 'भाव' के जितने प्रकार हैं वे सब प्रभु में प्रकाशित होते हैं ।१५३।। मत्स्य, कूर्म. नरसिंह, बाराह, बामन, रघुनाथ, बुद्ध, कल्कि, श्रीकृष्ण आदि जितने भी अवतार हैं, उन सबों का रूप भक्त वत्सल प्रभु (अपने भिन्न २ भावों के भक्तों के लिये) धारण करते हैं ।।१५४-१५५।। इस सब अवतारों का भाव प्रकाश होता और तुरन्त ही लोप हो जाता परन्तु एक समय बलराम का भाव बहुत दिन तक नहीं गया ।।१५६।। प्रभु हलधर बलराम के भाव में महामत्त हो गये, और 'मद लाओ' 'मद लाओ' कहकर जोर २ से पुकारने लगे ।।१५७।। नित्यानन्द प्रभु का मन्तव्य (अभिप्राय) समझ ते हैं । अतएव उन्होंने घड़ा में गङ्गाजल भरकर सावधानी से प्रभु को दिया ।।१५८।। प्रभु उस समय ऐसा हुँकार ऐसी गर्जना करने थे कि उसे सुन नवद्वीप आदि से लेकर त्रिभुवन काँपने लगता ।।१५९।। और प्रभु ऐसा प्रचण्ड ताण्डव नृत्य करते और पृथ्वी पर ऐसे आ पड़ते कि भय होता कि पृथ्वी के टुकड़े २ न हो जायँ ।।१६०।। भूमि ब्रह्माण्ड सहित डगमगाने लगती और उस ताण्डव नृत्य को देखकर सब दास भक्त भयभीत हो जाते ।।१६१।। बलराम का वर्णन करते वाला गीत सब गाते जिसे सुनकर प्रभु

आर्य्यातर्जी पढ़ेन परम-मत्त-प्राय । दुलिया दुलिया सब-अङ्गने बेडाय ॥१६३॥
कि सौन्दर्य प्रकाश हइल राम-भावे । देखिते देखिते कारो आर्त्ति नाहि भागे ॥१६४॥
'बलराम' बलि प्रभु डाके घनेघन । व्रज-बालक सङ्गे-देह' दरशन ॥१६५॥
सेइ क्षणे नित्यानन्द प्रकाश करिया । आइला प्रभुर काछे सगेर सज्जिया ॥१६६॥
श्रीदाम—सुदाम—आदि व्रज-राखाल । सुबल लवङ्ग आर अर्जुन विशाल ॥१६७॥
सकलेर गला प्रभु धरिया आपने । कान्दिया पड़िला भूमे नाहिक चेतने" ॥१६८॥
अति-अनिर्वचनीय देखि मुखचन्द्र । घनघन डाके 'नित्यानन्द नित्यानन्द' ॥१६९॥
कदाचित् कखन प्रभुर वाह्य हय । 'प्राण जाय मोर' सबे एइ कथा कय ॥१७०॥
प्रभु बोले "बाप कृष्ण राखिलेन प्राण । मारिलेन हेन देखि जेठा बलराम" ॥१७१॥
एतेक बलिया प्रभु हेन मूर्च्छा जाय । देखि त्रासे भक्त गण कान्दे उभराय ॥१७२॥
जेइ क्रीड़ा करे प्रभु से महा अद्भुत । नाना भावे नृत्य करे जगन्नाथ सुत ॥१७३॥
कखनो वा विरह प्रकाश हेन हये । अवच्य अद्भुत प्रेम सिन्धु जेन बहे ॥१७४॥
हेन से डाकिया प्रभु करेन 'रोदन । शुनिले विदीर्ण हय अनन्त भुवन ॥१७५॥
आपनार रसे प्रभु आपने विह्वल । आपना' पासरि जेन कहेन सकल ॥१७६॥
पूर्वे जेन गोपी सब कृष्णेर विरहे । पायेन मरण भय चन्द्रेर उदये ॥१७७॥
सेइ सब भाव प्रभु करिया स्वीकार । कान्देन सभार गला धरिया अपार ॥१७८॥
भावावेशे प्रभुर देखिया विह्वलता । रोदन करेन गृहे शची जगन्माता ॥१७९॥

आनन्द में मूर्छित हो जाते ॥१६२॥ परम मतवाला के समान 'आर्य-तर्जा (बंगला भाषा के छन्दों बद्ध विशेष गीत) पढ़ते और सारे आँगन में झूम झूम कर विचरते ॥१६३॥ बलराम के भाव में प्रभु में कैसा अपूर्व सौन्दर्य का प्रकाश हुआ कि उसके दर्शन कर करके दर्शकों की तृप्ति नहीं होती, लालसा बढ़ती ही जाती ॥१६४॥ गौरचन्द्र वे बलराम ब्रज बालकों के साथ दर्शन देउ इस प्रकार बार-बार कहने लगे उसी क्षण में नित्यानन्द प्रभु साथी बालकों को श्री दाम सुदाम, सुवल लवंग, अर्जुन,विशाल आदि ब्रज बालक रूप से प्रकटकर प्रभु के पास आये हैं । प्रभु सब के गला पकड़कर रोदन करते हुए भूमि पर गिरे है ॥१६५-६८॥ उनका मुखचन्द्र अत्यान्त अनिर्वचनीय दिखाई देता और वे बार बार नित्यानन्द-नित्यानन्द पुकारते ॥१६९॥ कदाचित जब कभी प्रभु को वाह्य-चेतना हो आती तो "मेरे प्राण निकले जाते हैं" बस यही कहा करते ॥१७०॥ प्रभु (दास्य भाव में) कहते "बाप कृष्ण ने तो प्राणों की रक्षा की । ताऊ बलराम तो मारे ही डालते हैं ॥१७१॥ इतना कहकर प्रभु मूर्छित हो गये । देखकर भक्त लोग भयभीत हो उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगे॥१७२॥ जो भी क्रीड़ा प्रभु करते हैं, वही महा अद्भुत होती है, जगन्नाथ सुन गौरचन्द्र नाना भाव से नृत्य (क्रीड़ा) करते हैं ॥१७३॥ कभी प्रभु में विरह का ऐसा प्रकाश होता हैं मानो तो अकथनीय अद्भुत प्रेम का सिन्धु बह रहा हो ॥१७४॥ ऐसा डकराते हुये प्रभु रोते हैं जिसे सुनकर अनन्त भुवन विदीर्ण हो जायँ ॥१७५॥ अपने रस में प्रभु आप ही विह्वल हो जाते हैं और मानो अपने को भूल कर ही सब बातें कहने लगते हैं ॥१७६॥ पूर्वकाल में जैसे गोपियाँ श्रीकृष्ण के विरह में चन्द्रोदय को देख कर मृत्यु के समान प्राप्त होती थीं ॥१७७॥ उन्हीं सब भावों को प्रभु भी स्वीकार करके सब का गला पकड़ कर अत्यधिक रुदन करते थे ॥१७८॥ भावावेश में प्रभु की विह्वलता देख कर घर भीतर जगन्माता शची रुदन करती थीं ॥१७९॥ इस प्रकार प्रभु अपूर्व प्रेम भक्ति का प्रकाश करते थे, मनुष्य में उसे वर्णन करने की भला क्या

एइ मत प्रभुर अपूर्व प्रेम भक्ति। मनुष्य कि ताहा वर्णिवारे धरे शक्ति ।।१८०।।
नाना रूपे नाट्य प्रभु करे दिने दिने। जे भाव प्रकाश प्रभु करेन जखने ।।१८१।।
एक दिन गोपी-भावे जगत्–ईश्वर। 'वृन्दावन गोपी गोपी' बोले निरन्तर ।।१८२।।
कोनो योगे तहिं एक पढ़ुया आछिल। भाव-मर्म ना जानिञा से उत्तर दिल ।।१८३।।
'गोपी गोपी'केने बोल निमाञि पंडित।'गोपी गोपी'छाड़ि'कृष्ण'बोलह त्वरित ।।१८४।।
कि पुण्य जन्मिव'गोपी गोपी'नाम लैले। 'कृष्ण'नाम लइले से पुण्य वेदे बोले' ।।१८५।।
भिन्न भाव प्रभुर से, अज्ञे नाहि बुझे। प्रभु बोले 'दस्यु कृष्ण', कौनजने भजे ।।१८६।
कृतघ्न हइया 'वालि' मारे दोष बिने। स्त्रीजित हइया काटे स्त्रीर नाक-काणे ।।१८७।।
सर्वस्व लइया 'वलि' पाठाय पाताले। कि हइव आमार ताहार नाम लैले' ।।१८८।
एत वलि महाप्रभु स्तम्भ हाथे लैया। पढ़ुया मारिते जाय भावाविष्ट हैया ।।१८९।।
आथे व्यथे पढ़ुया उठिया दिल रड़। पाछे धाय महाप्रभु बोले 'धर धर' ।।१९०।।
देखिया प्रभुर क्रोध ठेङ्गा हाथ धाय। सत्त्वरे संशय मानि पढ़ुया पलाय ।।१९१।।
भिन्न-भावे धाय प्रभु, ना जाने पढ़ुया। प्राण लैया महा-त्रासे जाय पलाइया ।।१९२।।
आथे व्यथे धाइया प्रभुर भक्तगण। आनिलेन धरिया प्रभुरे ततक्षण ।।१९३।।
सभे मिलि स्थिर कराइलेन प्रभुरे। महाभये पढ़ुया पलाञा गेल दूरे। १९४।।
सत्त्वरे चलिला जथा पढ़ुयार गण। सर्व-अङ्गे घर्म, श्वास वहे घने घन ।।१९५।।

शक्ति है ।।१८०।। जब जिस भाव का प्रकाश प्रभु करते थे तब उसी प्रकार का नाट्य-अभिनय करते थे। इस प्रकार दिन प्रति दिन नाना प्रकार का नाट्य प्रदर्शन करते थे ।।१८१।। एक दिन जगत् के ईश्वर गौर सुन्दर गोपी भाव के आवेश में 'वृन्दावन, गोपी गोपी' शब्द निरन्तर कहने लगे ।।१८२।। संयोग वश वहाँ पर एक विद्यार्थी बैठा था, वह प्रभु के भाव का रहस्य न समझ कर बोल उठा ।।१८३।। 'निमाइ पण्डित ! तुम 'गोपी गोपी' क्यों कह पहे हो ? 'गोपी गोपी' कहना छोड़ 'कृष्ण' कहो शीघ्रता से ।।१८४।। 'गोपी गोपी' नाम लेने से भला क्या पुण्य होगा। पुण्य तो कृष्ण नाम लेने से होता है, यही वेद कहता है' ।।१८५।। वह अज्ञ विद्यार्थी प्रभु के उस निम्न भाव (गोपी भाव) को नहीं समझा। प्रभु बोले–'कृष्ण तो दस्यु (डाकू) है, ऐसे को कौन मनुष्य भजेगा' ।।१८६।। वह कृतघ्न है, उसने बिना किसी अपराध के बालि को मार डाला। 'उसने स्त्री के बश में होकर शूर्पणखा के नाक-कान काट डाले ।।१८७।। उसने बालि का सर्वस्व हरण करके उसे पाताल को भेज दिया। उसका नाम लेने से भला मुझे क्या पुण्य मिलेगा' ।।१८८।। इतना कह कर प्रभु एक डण्डा उठा कर भाव के आवेश में उस विद्यार्थी को मारने चले। १८९।। विद्यार्थी हड़बड़ा कर उठ भागा और पीछे २ महाप्रभु दौड़े 'पकड़ो २ कहते हुए' ।।१९०।। प्रभु को क्रोधित हो हाथ में डंडा ले दौड़ते हुये देख विपत्ति की शंका से विद्यार्थी शीघ्रता से भाग चला ।।१९१।। प्रभु तो किसी दूसरे भाव से दौड़े आ रहे हैं इस रहस्य को न जान कर बेचारा विद्यार्थी अपनी जान लेकर अत्यन्त भयभीत होकर भागा जा रहा है ।१९२।। प्रभु के भक्त लोग हड़बड़ा कर भागे और प्रभु को पकड़ कर लाये सब ने मिल-मिला कर प्रभु को शान्त किया ।।१९३।। विद्यार्थी तो मारे डर के दूर भाग गया और भाग कर वह शीघ्रता पूर्वक विद्यार्थी वृन्द में जा पहुँचा ।।१९४।। उसका सारा शरीर पसीने से लथपथ होगया और लम्बी लम्बी साँसें चलने लगी। विद्यार्थी गण सम्भ्रम के साथ उसके साथ उसके भय का कारण पूछने लगे ।।१९५।। वह बोला "पूछते क्या हो ! भाग्य से जान बच गयी। लोग

सम्भ्रमे जिज्ञासे' सभे भयेर कारण। 'कि जिज्ञास आजि भाग्ये रहिल जीवन ॥१९६॥
सभे बोले'बड़ साधु निमाञि पण्डित'। देखिते गेलाङ आजि ताहार वाड़ी त ॥१९७॥
देखिलाङ वसि मात्र जपे' एइ नाम। अहर्निश 'गोपी गोपी' ना बोलये आन ॥१९८॥
ताहे आमि वलिलाङ'किकर' पण्डित। 'कृष्ण कृष्ण'बोल-जेन शास्त्रेर विहित ॥१९९॥
एइ वाक्य शुनि महा क्रोधे अग्नि हैया। ठेङ्गा हाथे आमारे आनिल खेदाड़िया ॥२००॥
कृष्णेरेह हइल जतेक गालागालि। ताहा आर मुखे आमि आनिते ना पारि ॥२०१॥
रक्षा पाइलाङ आजि परमायु गुणे। कहिलाङ एइ आजिकार विवरणे' ॥२०२॥
शुनिञा हासये सब महा-मूर्ख गणे। वालिगते लागिल जार जेन लय मने ॥२०३॥
केहो बोले 'भाल त 'वैष्णव' बोले लोके। ब्राह्मण लंघिते आइसेन महाकोपे' ॥२०४॥
केहो बोले 'वैष्णव' वा वलिव के मने। 'कृष्ण' हेन नाम त ना बोलये 'वदने' ॥२०५॥
केहो बोले'शुनिलाङ अद्भुत आख्यान। वैष्णवे जपिव मात्र 'गोपी गोपी'नाम' ॥२०६॥
केहो बोले 'एत वा सम्भ्रम केने करि। आमरा कि ब्राह्मणेर तेज नाहि धरि ॥२०७॥
तेंहो से ब्राह्मण,आमरा कि विप्र नहि। तेंहो मारिते वा आमरा केने वा सहि ॥२०८॥
राजा त नहेन तेंहो मारिवेन केने। आमराओ समवाय हओ सर्व जने ॥२०९॥
यदित तेंहो मारिते धायेन पुनर्वार। आमरा–सकल तवे ना सहिव आर ॥२१०॥
तिंहो नव द्वीपे जगन्नाथमिश्र–पुत्र। आमराह नहि अल्प–मानुषेर सूत्र ॥२११॥
हेर सभे पढ़िलाङ कालि तान सने। आजि तिंहो 'गोसाञि' वा हइला के मने ॥२१२॥
एइ मत युक्ति करिलेन पापिगण। जानिलेन अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन ॥२१३॥

सब निभाइ पण्डित को बड़ा साधु (सज्जन) कहते हैं, इसलिये मैं आज उसे देखने उसके घर गया था ॥१९६-९७॥ "जाकर देखा कि वह बैठकर के 'गोपी-गोपी' नाम का जप कर रहा है। वह अहर्निश गोपी गोपी नाम का छोड़ और कुछ नहीं करता है ॥१९८॥ मैं उससे बोला "यह क्या करते हो पण्डित ? कृष्ण कृष्ण' बोलो जो शास्त्र का विधान है ॥१९९॥ "इस वचन को सुनकर वह तो क्रोध से लाल हो हाथ में लाठी लेकर मेरे पीछे दौड़ा और मुझे खदेड़ता हुआ यहाँ पहुँचा दिया ॥२००॥ कृष्ण को उसने जैसी जैसी गालियाँ दी वह मैं मुँह तक ला भी नहीं सकता ॥२०१॥ "वह तो मेरी आयु शेष थी, इसी से बच आया। यह मैंने आज का वृत्तान्त सुनादिया ॥२०२॥ यह सुनकर वे सब महामूर्ख हँसे और जिसके मन में आया वैसा ही कहने लगे ॥२०३॥ कोई बोला, "अच्छा वैष्णव उसे लोग कहते हैं ! ब्राह्मण पर अत्यंत कोप करके उसे मारने दौड़ता है ॥२०४॥ "कोई कहता है,, उसे वैष्णव ही कैसे कहें। 'कृष्ण जैसा नाम भी जो मुख से नहीं कहता ॥२०५॥ एक कोई और बोला, 'यह तो बड़ी अद्भुत बात सुनी कि वैष्णवी होकर वह केवल 'गोपी गोपी, नाम लेता है" ॥२०६॥ एक और बोला-' अरे ! उससे हम इतना डरें ही क्यों ? हम लोगों में क्या ब्रह्मतेज नहीं ? ॥२०७॥ "यह ब्राह्मण है तो क्या हम ब्राह्मण नहीं हैं ! हम उसकी मार को सहें क्यों ॥२०८॥ वह राजा तो नहीं है फिर क्यों हमें मारेगा ? हम भी सब जने मिल जायँ ॥२०९॥ "वह यदि फिर दूसरी बार मारने को आवे तो हम सब, और अधिक नहीं सहन करेंगे ॥२१०॥ वह नवद्वीप में यदि जगन्नाथ मिश्र का पुत्र है तो हम भी किसी छोटे आदमी के पूत नहीं हैं" देखो तो सही ! कल तक हम सब साथ २ पढ़े, फिर आज वह "गुसांई" कैसे हो गया ॥२११-२१२॥ इस प्रकार की युक्ति पापी लोगों ने की। अन्तर्यामी श्री शचीनन्दन जान गये ॥२१३॥ एक दिन महाप्रभु बैठे हुये हैं।

एक दिन महाप्रभु आछेन वसिया। चतुर्दिगे सकल पार्षदगण लैया ॥२१४॥
एक वाक्य अद्भुत वलिला आचम्बित। केहो ना बुझिल अर्थ, सभे चमकित ॥२१५॥
"करिल पिप्पलि खण्ड कफ निवारिते। उलटिया आरो कफ वाढ़िल देहेते ॥२१६॥
बलि अट्ट अट्ट हासे' सर्वलोक नाथ। कारण ना बुझि भय जन्मिल सभा' त ॥२१७॥
नित्यानन्द बुझिलेन प्रभुर अन्तर। जानिलेन—'प्रभु शीघ्र छाड़ि वेन घर ॥२१८॥
विषादे हइला मग्न नित्यानन्द-राय। 'हइव संन्यासि-रूप प्रभु सर्वथाय ॥२१९॥
ए सुन्दर केशेर हइव अन्तर्द्धान। दुःखे नित्यानन्देर विकल हैल प्राण ॥२२०॥
क्षणेके ठाकुर नित्यानन्द-हाथे धरि। निभृते वसिला गिया गौराङ्ग श्रीहरि ॥२२१॥
प्रभु बोले "शुन नित्यानन्द महाशय। तोमारे कहिये निज हृदय-निश्चय ॥२२२॥
भाल से आइलाङ आमि जगत् तारिते। तरण नाहिल अइलाङ संहारिते ॥२२३॥
आमारे देखिया कोथा पाइव वन्ध-नाश। एक गुण वन्ध आरो हैल कोटि-पाश ॥२२४॥
आमारे मारिते जवे करिलेक मने। तथ नेइ पडिगेल अशेष-बन्धने ॥२२५॥
भाल लोक राखिते करलुँ अवतार। आपने करिलुँ सर्व जीवेर संहार ॥२२६॥
देख कालि शिखा-सूत्र सब मुड़ाइया। भिक्षा करि वेड़ाइमु संन्यास करिया ॥२२७॥
जे जे जने चाहियाछे मोरे मारि बारे। भिक्षुक हइमुँ कालि ताहार दुयारे ॥२२८॥
तवे मोरे देखि से-इ धरिव चरण। एइ मते उद्धारिव सकल भुवन ॥२२९॥
संन्यासीरे सर्व लोके करे नमस्कार। संन्यासीरे केहो आर ना करे प्रहार ॥२३०॥

उनके चारों ओर पार्षदगण बंठे हुये है" ॥२१४॥ उस समय प्रभु ने एक बात बड़ी विचित्र कही, उसका अर्थ कोई नहीं समझ सका और सब चौंक पड़े ॥२१५॥ वह बात यह थी! "पिपला के एक टुकड़े का सेवन किया तो कफ दूर करने के लिये, पर होगया उल्टा शरीर में कफ और बढ़ गया ॥२१६॥ (भावार्थः- संसार दोष निवारण करने के लिये नाम संकीर्तन रूपी भक्ति धर्म का प्रचार किया गया परन्तु यह न समझ कर जीव भगवान और भक्त की निन्दा करके उस अपराध से संसार में और भी अधिक बँधता जा रहा है) ऐसा कह कर सब लोगों के नाथ गौर सुन्दर खिल खिला कर हँसने लगे। लोग इसका कारण न समझ भयभीत हो गये ॥२१७॥ नित्यानन्द प्रभुके अभिप्राय को समझ गये वे जान गये कि' प्रभु शीघ्र ही गृह त्याग करेंगे ॥२१८॥ नित्यानन्द राय विसाद में डूब गये। "प्रभु निश्चय ही संन्यासी बनेंगे" ये सुन्दर केश अन्तर्द्धान हो जायँगे" इस दुःख से श्रीनित्यानन्द के प्राण व्याकुल हो गये ॥२१९-२०॥ थोड़ी देर में प्रभु गौरांग श्रीहरि, श्रीनित्यानन्द का हस्त पकड़ एकान्त में जा बंठे और बोले-"नित्यानन्द महाशय! सुनो। तुमसे अपने हृदय का निश्चय कहता हूँ" २२०-२१॥ "मैं अच्छा आया जगत को तारने! तार तो सका नहीं, संहार होने लगा ॥२२२॥ (कारण) कहाँ तो मुझे देख लोगों का संसार-बन्धन नष्ट होना चाहिये था। परन्तु हुआ यह कि एकलड़ बन्धन की जगह करोड़ों पाश होगये ॥२२३॥ क्योंकि जब (लोगोंने) मुझे मारने का संकल्प किया तभी उनके बन्धन अशेष हो गये ॥२२४-२२५॥ "अच्छा अवतार लिया मैंने लोक रक्षा के लिये कि अपने आप ही सब जीवों का संहार कर दिया ॥२२६॥ "अब देखो कल ही मैं शिखा-सूत्र सब त्याग संन्यास ले कर भिक्षा माँगता हुआ घूमूँगा ॥२२७॥ जिन जिन लोगों ने मुझे मारने का विचार किया है, मैं कल उनके द्वार पर भिक्षुक बन कर खड़ा हूँगा ॥२२८॥ "तब मुझे देखकर वे ही मेरा चरण पकड़ेंगे। इस प्रकार मैं सब लोगों का उद्धार करूँगा ॥२२९॥ संन्यासी को सभी लोग नमस्कार करते हैं, उस पर

संन्यासी हइया कालि प्रति घरे-घरे। भिक्षा करि बुलों–देखों के मोहरे मारे ॥२३१॥
तोमारे कहिलुँ एइ आपन हृदय। गारि हस्त वास आमि छाड़िव निश्चय ॥२३२॥
इथे तुमि किछु दुःख ना भविह मने। विधि देह' तुमि मोरे संन्यास करने ॥२३३॥
जे रूप कराह तुमि, सेइ हइ आमि। एतेके विधान देह, अवतार जानि ॥२३४॥
जगत् उद्धार यदि चाह करि वारे। इहाते निपेध नाहि करिवे आमारे ॥२३५॥
इथे मने दुःख ना भाविह कोन क्षण। तुमि त जानह अवतारेर कारण" ॥२३६॥
शुनि नित्यानन्द श्रीशिखार अन्तर्द्धान। अन्तरे विदीर्ण हैल मन देह प्राण ॥२३७॥
कोन् विधि दिव किछुना आइसे वदने। 'अवश्य करिव प्रभु, जानि लेन मने ॥२३८॥
नित्यानन्द बोले'प्रभु ! तुमि इच्छामय। जे तोमार इच्छा प्रभु ! सेइ से निश्चय ॥२३९॥
विधि वा निषेध के तोमारे दिते पारे। सेइ सत्य जे तोमार आछये अन्तरे ॥२४०॥
सर्व लोकपाल तुमि सर्व लोकनाथ। भाख हय जे मते से विदित तोमा' त ॥२४१॥
जे रूपे करिवे तुमि जगत्-उद्धार। तुमि से जानह ताहा के जानये आर ॥२४२॥
स्वतंत्र परमानन्द तोमार चरित्र। तुमि जे करिव से-इ हइव निश्चित ॥२४३॥
तथापि कह सर्व सेवकेर स्थाने। के वा कि बोलेन ताहा शुनह आपने ॥२४४॥
तवे जे तोमार इच्छा करवि ताहारे। के तोमार इच्छा प्रभु ! विरोधिते पारे ॥२४५॥
नित्यानन्द-वाक्ये प्रभु सन्तोष हइला। पुनः पुन आलिङ्गन करिते लागिला। २४६॥
एइ मत नित्यानन्द सङ्गे युक्ति करि। चलिलेन वैष्णव समाजे गौर हरि ॥२४७॥

कोई प्रहार नहीं करता है ॥२३०॥ "संन्यासी होकर कल मैं घर घर में भिक्षा माँगता डोलूँगा, देखूँ कौन मुझे मारता है ॥२३१॥ तुमको मैंने अपने हृदय की बात कहदी कि गृह का बास मैं निश्चय ही छोड़ूँगा ॥२३२॥ "इसमें तुम मन में कुछ दुःख नहीं मानना। अब तुम मुझे संन्यास ग्रहण के लिये आज्ञा दो ॥२३३॥ जैसा तुम मुझसे कराते हो, वैसा ही मैं होता हूँ। मेरे इस अवतार के रहस्य को तुम जानते हो, इसलिये संन्यास के लिये आज्ञा दो ॥२३४॥ "यदि जगत काउद्धार करना चाहते हो तो इस कार्य के लिये तुम मुझे निषेध न करना ॥२३५॥ इससे तुम मन में किसी समय भी दुःख न मानना। तुम तो मेरे अवतार का कारण जानने ही हो ॥२३६॥ प्रभु अपनी शिखा का मुँडन करदेंगे-इस बात को सुन कर श्रीनित्यानन्द के मन, देह, प्राण भीतर से फट गये ॥२३७॥ क्या आज्ञा दें–मुख में कुछ भी न आया। मन में समझ गये कि प्रभु अवश्य गृह-त्याग करेंगे ॥२३८॥ नित्यानन्द बोले "प्रभो ! तुम इच्छामय हो। तुम्हारी जो इच्छा है वही मेरा निश्चय है ॥२३९॥ तुम्हारे लिये विधि-निषेध की व्यवस्था कौन दे सकता है। जो तुम्हारे हृदय का संकल्प है वही सत्य (विधि) है ॥२४०॥ तुम सर्व लोक पालक, सर्व लोकनाथ हो। जैसा श्रेय होता है वह आपको विदित है ॥२४१॥ जिस प्रकार से तुम जगत का उद्धार करोगे, वह तुम्हीं जानते हो, और कौन जानता है ॥२४२॥ "तुम्हारा चरित स्वतन्त्र है परमानन्दमय है। तुम जो करना चाहोगे वह निश्चय ही होगा ॥२४३॥ तथापि आप एक वार अपने सब सेवकों के सन्मुख अपना विचार प्रकट करें, और कौन क्या कहता है, उसे आप सुनें ॥२४४॥ "फिर जो आपकी इच्छा हो वही करें, कौन इच्छा का विरोध कर सकता है" ॥२४५॥ श्रीनित्यानन्द के वचनों से प्रभु को संतोष हुआ। वे उनको पुनः पुनः आलिंगन करने लगे। २४६॥ इस प्रकार नित्यानन्द के साथ परामर्श करके गौर हरि वैष्णव समाज (भक्त लोगों) के समीप चले ॥२४७॥ नित्यानन्द जानते हैं कि प्रभु गृह-त्याग करेंगे" इसलिये उनकी देह

'गृह छाड़िवेन प्रभु' जानि नित्यानन्द । वाक्य नाहि स्फुरे देहे हइल निष्पन्द ॥२४८।
स्थिर हइ नित्यानन्द मने मने गणे' । ''प्रभु गेले आइ प्राण धरिव के मते । २४६।
के मते वंचिव आइ काल-दिन राति । एतेके चिन्तिते मूर्च्छा पाय महामति ॥२५०॥
भाविया आइर दुःख नित्यानन्दराय । निभृते वसिया प्रभु कान्दये सदाय ॥२५१॥
मुकुन्देर वासाय आइला गौरचन्द्र । देखिया मुकुन्द हैला परम-आनन्द ॥२५२॥
प्रभु बोले 'गाओ किछु कृष्णेर मङ्गल । मुकुन्द गायेन, प्रभु शुनिञा विह्वल ॥२५३॥
'बोल बोल' हुङ्कार करये द्विजमणि । पुण्यवन्त-मुकुन्देर शुनि दिव्य-ध्वनि ॥२५४॥
क्षणेके करिला प्रभु भाव-सम्वरण । मुकुन्देर सङ्गे तवे कहेन कथन ॥२५५॥
प्रभु बोले 'मुकुन्द ! शुनह किछु कथा । बाहिर हइव आमि, ना रहिव एथा ॥२५६॥
गारि हस्त आमि छाड़िवाङ सुनिश्चित । शिखा सूत्र छाड़िया चलिव जे-ते भित'॥२५७॥
श्रीशिखार अन्तर्धान शुनिञा मुकुन्द । पड़िला विरहे, सब घुचिल आनन्द ॥२५८॥
काकु करि बोलये मुकुन्द महाशय । यदि प्रभु ! एमत से करिवा निश्चय ॥२५९॥
दिन-कथो एइ रूपे करह कीर्त्तने । तवे प्रभु ! करिह 'से जे तोमार मने' ॥२६०॥
मुकुन्देर काकु शुनि गौराङ्ग सुन्दर । चलिलेन जथाय आछेन गदाधर ॥२६१॥
सम्भ्रमे चरण वन्दिलेन गदाधर । प्रभु बोले 'शुन किछु आमार उत्तर ॥२६२॥
ना रहिव गदाधर ! आमि गृहवासे । जे-ते-दिगे चलिवाङ कृष्णेर उद्देशे ॥२६३॥
शिखा-सूत्र सर्वथाय आमिना राखिव । माथा मुण्डाइया जे-ते दिगे चलियाव' ॥२६४॥
श्रीशिखार अन्तर्द्धान शुनि गदाधर । वज्रपात जेन हैल शिरेर ऊपर ॥२६५॥

निश्चल हो गयी, वाणी से वचन नहीं निकलता ॥२४८॥ वे स्थिर होकर मन ही मन सोचने लगे, "प्रभु चले जायँगे तो माता शची कैसे प्राण बचा सकेंगी । कैसे वह समय-दिन रात बितायेंगी ।' यह सोचते ही महाधीर नित्यानन्द को मूर्च्छा आने लगी ॥२४९-२५०॥ नित्यानन्दराय माता के दुःख की चिन्ता में एकान्त में बैठ निरन्तर रोने लगे ॥२५१॥ गौरचन्द्र मुकुन्द के घर गये । प्रभु के दर्शन कर मुकुन्द को बड़ा आनन्द हुआ । २५२॥ प्रभु बोले 'कृष्ण का कोई मङ्गल गीत गाओ ।' मुकुन्द गाता है और प्रभु सुन सुन कर विह्वल होते हैं ॥२५३॥ पुण्यशाली मुकुन्द के दिव्य-सङ्गीत को सुनकर द्विज मणि गौर बोलो बोलो 'कहते हुए हुँकार करते हैं' ॥२५४॥ कुछ समय पश्चात् प्रभु ने अपना भाव समेट लिया और मुकुन्द के साथ बात करने लगे ॥२५५॥ प्रभु बोले 'मुकुन्द ! एक बात सुनो ! मैं चला जाऊँगा, यहाँ नहीं रहूँगा मैं निश्चय ही गृहस्थ त्याग करूँगा और शिखा सूत्र को त्याग जिधर इच्छा उधर चला जाऊँगा ॥२५६-२५७॥ श्री शिखा सूत्र त्याग की बात सुनकर मुकुन्द विरह में डूब गया, सारा आनन्द उड़ गया ॥२५८॥ मुकुन्द महाशय गिड़गिड़ा कर विनती करने लगा,—'प्रभो ! यदि आपने ऐसा ही निश्चय किया है है तो कुछ दिन इसी प्रकार यहाँ कीर्तन करें फिर प्रभो ! वही करें जो आपके मन में है' ॥२५९-६०॥ मुकुन्द की विनती सुनकर गौराङ्ग सुन्दर गदाधर के निकट चले ॥२६१॥ गदाधर ने आदर पूर्वक प्रभु की चरण वन्दना की । प्रभु बोले—'सुनो कुछ मेरा उत्तर' ॥२६२॥ 'गदाधर ! मैं अब घर में नहीं रहूँगा । श्रीकृष्ण के उद्देश्य से जिधर मन करेगा उधर जाऊँगा ॥२६३॥ मैं शिखा सूत्र बिल्कुल नहीं रक्खूँगा, सिर मुँड़ा कर जिधर इच्छा उधर चला जाऊँगा ॥२६४॥ श्री शिखा लोप की बात सुनकर गदाधर के मस्तक पर मानो वज्रपात होगया ॥२६५॥ व्यथित हृदय से गदाधर बोला-'तुम्हारी बातें सब अद्भुत होती हैं

अन्तरे दुःखित हइ बोले गदाधर। "जतेक अद्भुत सेइ तोमार उत्तर ।।२६६।।
शिखा-सूत्र घुचाइलेइ से कृष्ण पाइ। गृहस्थ तोमार मते वैष्णव कि नाइ ।।२६७।।
माथा मुडाइले से सकल देखि हये। तोमार से मत, ए वेदेर मत नहे ।।२६८।।
अनाथिनी-मा'येरे वा के मते छाड़िबे। प्रथमे त जननी-वधेर भागी हवे ।।२६९।।
तुमि गेले सर्वथा जीवन नाहि तान। सबे अवशिष्ट आछ तुमि ताँर प्राण ।।२७०।।
घरे थाकिले कि ईश्वरेर प्रीत नहे। गृहस्थ मे सभार प्रीतिर स्थलि हये ।।२७१।।
तथापिह माथा मुडाइया स्वास्थ्य पाओ। जे तोमार इच्छा ताइ कर' चल जाओ ।।२७२।।
एइ मत आप्त-वैष्णवेर स्थाने स्थाने। 'शिखा-सूत्र घुचाइमु" बलिला आपने ।।२७३।।
सभेइ शुनिञा श्रीशिखार अन्तर्द्धान। मूर्च्छित पड़िला कारो देहे नाहि ज्ञान ।।२७४।।
करिवेन महाप्रभु शिखार मुण्डन। श्रीशिखा स्मङरि कान्दे सर्व भक्तगण ।।(ध्रु)१।।२७५।।
केहो बोले 'से सुन्दर चाँचर चिकुरे। आर माला गाँथिया कि ना दिव उपरे ।।२७६।।
केहो बोले 'ना देखिया से केश बन्धन। के मते रहिव एइ पापिष्ठ जीवन ।।२७७।।
'से केशेर दिव्य गन्ध ना लइव आर। एत वलि शिरे कर हनि आपनार ।।२७८।।
केहो बोले 'से सुन्दर केशे आरबार। आमलक दिया कि ना करिव संस्कार' ।।२७९।।
'हरि हरि' वलि केहो कान्दे उच्च स्वरे। डूबिलेन भक्तगण दुःखेर सागरे ।।२८०।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावनदास तनु पदयुगे गान ।।२८१।।

।।२६६।। श्री शिखा सूत्र त्याग देने से ही यदि कृष्ण मिलते हों, तो फिर तुम्हारे मत से गृहस्थ वैष्णव ही नहीं है ।।२६७।। 'सिर मुँड़ाने पर ही वह सब होता है (अर्थात् श्रीकृष्ण मिलते हैं, आत्मोद्धार होता है इत्यादि)' यही तुम्हारा मत है न ? परन्तु यह वेद का मत नहीं है ।।२६८।। बताओ तो अनाथिनी माँ को कैसे छोड़ोगे ? प्रथम आरम्भ में ही जननी-बध का भागी बनना पड़ेगा ।।२६९।। "तुम चले जाओगे तो उनका जीवन सर्वथा नहीं रहेगा। एक मात्र तुम ही उनके प्राण शेष रह गये हो ।।२७०।। घर में रहने से क्या ईश्वर प्रसन्न नहीं होते हैं ? गृहस्थ तो सब आश्रमों का ही प्रीति का पात्र है ।।२७१।। तथापि सिर मुँड़ा कर ही आपको शान्ति मिलती है तो तुम्हारी इच्छा, वही करो, चले जाओ" ।।२७२।। इस प्रकार आत्मीय वैष्णव जनों के घर-घर में जाकर प्रभु ने कहा कि 'मैं शिखा-सूत्र को दूर करूँगा' ।।२७३।। श्री शिखा-लोप की बात सुनकर सब मूर्च्छित हो पड़े—किसी को देह का भान न रहा ।।२७४।। (रामकली राग) महाप्रभु शिखा का मुंडन करेंगे। श्री शिखा का स्मरण कर सब भक्त गण क्रन्दन करते हैं ।।(ध्रु०) कोई कहता है 'उक सुन्दर घुँघराले केशों पर क्या माला गूँथ कर नहीं पहनायँगे ।।२७५-२७६।। कोई बोला 'उनके शीश पर वे केश-बन्धन न देखकर यह पापी जीवन कैसे भी नहीं रह सकेगा ।।२७७।। उन केशों का दिव्य गन्ध नहीं प्राप्त हो सकेंगे' ऐसा कहकर हाथों से अपना सिर पीटता है ।।२७८।। कोई कहता है "उन सुन्दर केशों को आँवलों से क्या फिर संस्कार नहीं कर सकूँगा ?" ।।२७९।। कोई 'हरि हरि' कहता हुआ ऊँचे स्वर से रोता है। इस प्रकार भक्तगण दुःख-सागर में डूब गये ।।२८०।। श्रीकृष्ण चैतन्य और श्रीनित्यानन्द चन्द्र मेरे जीवन हैं। वृन्दावनदास उनके पद युगल का गुण गान करता है ।।२८१।।

इति श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे भक्त दुःख वर्णनं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

———

अथ षड्विंशोऽध्याय

जय जय महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य। नित्यानन्द अद्वैतादि जत भक्त धन्य ॥१॥
जय जय विश्वम्भर श्रीशचीनन्दन। जय जय गौरसिंह पतित पावन ॥२॥
एइ मत अन्योन्ये सर्व भक्त गण। प्रभुर विरहे सभे करेन क्रन्दन ॥३॥
"कोथा जाइवेन प्रभु संन्यास करिया। कोथा वा आमरा सब देखिवाङ गिया ॥४॥
संन्यास करिले ग्रामे ना आसिवे आर। कोन दिगे जायेन वा करिया विचार ॥५॥
एइ मत भक्तगण भावे' निरन्तरे। अन्न पानी कारो आर रोचये शरीरे ॥६॥
सेवकेर दुःख प्रभु सहिते ना पारे। प्रसन्न हइया प्रभु प्रवोधे' सभारे ॥७॥
प्रभु बोले "तोमरा चिन्तह कि कारण। तुमि सब जथा, तथा आमि सर्व क्षण ॥८॥
तोमा'सभार ज्ञान'अमि संन्यास करिया। चलिवाङ आमि तोमा'सभारे छाड़िया ॥९॥
सर्वथा तोमरा इहा ना भाविह मने। तोमा' सभा' आमि ना छाड़िव कोन क्षणे ॥१०॥
सर्व काल तोमरा—सकल मोर सङ्ग। एइ जन्म हेन ना जानिवा—जन्म जन्म ॥११॥
एइ जन्मे जेन तुमि सब आमा सङ्गे। निरवधि आछ सङ्कीर्त्तन-सुख-रङ्गे ॥१२॥
एइ मत आछे आर दुइ अवतार। कीर्त्तन—आनन्द रूप हइब आमार ॥१३॥
ताहाते ओ तुमि सब एइ मत रङ्गे। कीर्तन करिवा महासुखे आम सङ्गे ॥१४॥
लोक रक्षा—निमित्त से आमार संन्यास। एते के तोमरा सब चिन्ता कर' नाश ॥१५॥
एतेक बलिया प्रभु धरिया सभारे। प्रेम—आलिङ्गन प्रभु पुनः पुन करे ॥१६॥
प्रभु वाक्ये भक्त-सब किछु स्थिर हैला। सभा प्रवोधिया प्रभु निज वासे गेला ॥१७॥

हे महाप्रभु ! हे कृष्ण चैतन्य ! आपकी जय हो, जय हो, नित्यानन्द, अद्वैतादि भक्त वृन्द की जय हो ॥१॥ हे श्री शचीनन्दन विश्वम्भर ! आपकी जय हो, जय हो। हे पतित पावन श्री गौरसिंह आप की जय हो, जय हो ॥२॥ इस प्रकार प्रभु के विरह में सब भक्त गण परस्पर में (कहते-सुनते हुये) क्रन्दन करते हैं ॥३॥ "हाय ! प्रभु संन्यास लेकर कहाँ तो जायँगे और हम भी सब कहाँ जाकर उनको देख पायँगे ॥४॥ संन्यास लेने पर तो वह गाँव में नहीं जायँगे। क्या वे सोच—विचार कर किसी निश्चित स्थान को जायँगे ॥५॥ इस प्रकार भक्तगण निरन्तर सोचते रहते हैं, अन्न-जल किसी को सुहाता नहीं है ।६॥ सेवक जनों का दुःख प्रभु सहन नहीं कर सकते, अतः एक प्रसन्न होकर सबों को समझाते-बुझाते हैं ।७॥ प्रभु कहते हैं "तुम सब किस लिये चिन्ता करते हो ? जहाँ तुम सब हो, वहीं मैं सब समय हूँ ॥८॥ तुम लोग सोचते हो कि मैं संन्यास लेकर तुम लोगों को छोड़ कर जा रहा हूँ ॥९॥ 'ऐसा तुम लोग अपने मन में बिल्कुल मत सोचो। तुम सब को मैं किसी समय भी नहीं छोड़ूँगा ॥१०॥ तुम लोग केवल इसी जन्म में ही मेरे संग नहीं हो, जन्म जन्म से, सब समय, तुम मेरे संग ही हो ॥११॥ "जिस प्रकार इस जन्म में तुम सब मेरे साथ निरन्तर संकीर्तन-सुख का आनन्द ले रहे हो, उसी प्रकार मेरे दो और अवतार "कीर्तन-आनन्द-रूप" होंगे ॥१२-१३॥ उनमें भी तुम सब इसी प्रकार आनन्द से मेरे साथ महा सुख पूर्वक कीर्तन करोगे ॥१४॥ लोक-रक्षा के निमित्त ही यह मेरा संन्यास है, इसलिये तुम सब चिन्ता छोड़ दो" ॥१५॥ इतना कह कर प्रभु एक-एक भक्त को पकड़ २ कर बार २ प्रेमालिंगन करने लगे ॥१६॥ प्रभु के वचन से भक्त लोग कुछ स्थिर हुये। प्रभु भी सब को प्रबोध करके अपने गृह को गये ॥१७॥ एक दूसरे के मुँह से

परम्परा ए सकल यतेक आख्यान। शुनिआ शचीर देहे नाहि रहे प्राण ॥१८॥
प्रभुर संन्यास शुनि शची जगन्माता। हेन दुःख जन्मिल–ना जाने आछे कोथा ॥१९॥
मूर्च्छित हइया क्षणे पड़े पृथिवीते। निरवधि धारा वहे ना पारे राखिते ॥२०॥
वसिया आछेन प्रभु कमल लोचन। कहिते लागिला शची करिया क्रन्दन ॥२१॥
ना जाइय ना जाइय बाप ! आमारे छाड़िया। पाप जीउ आछे तोर श्रीमुख देखिया ॥२२॥
कमल–नयन तोर श्रीचन्द्र–वदन। अधर सुरङ्ग, कुन्द-मुकता-दशन ॥२३॥
अमिया वरिखे येन सुन्दर वचन। केमने वञ्चिव ना देखि गजेन्द्र–गमन ॥२४॥
अद्वैत–श्रीवास–आदि तोर अनुचर। नित्यानन्द आछे तोर प्राणेर दोसर ॥२५॥
परम वान्धव गदाधर–आदि सङ्गे। गृहे रहि कीर्त्तन करह तुमि रङ्गे ॥२६॥
धर्म बुझाइते वाप ! तोर अवतार। जननी छाड़िवा कोन् धर्म वा विचार ॥२७॥
तुमि धर्ममय जदि जननी छाड़िवा। के मते जगते तुमि धर्म बुझाइवा'' ॥२८॥
प्रेम शोके कहे शची, शुने विश्वम्भर। प्रेमे ते रोधित कण्ठ ना करे उत्तर ॥२९॥
''तोमार अग्रज आमा' छाड़िया चलिला। वैकुण्ठे तोमार वाप गमन करिला ॥३०॥
तोमा' देखि सकल सन्ताप पासरिलुँ। तुमि गेले प्राण मुञि सर्वथा छाड़िमु ॥३१॥
प्राणेर गौराङ्ग हेर बाप, अनाथिनी छाड़िते न जुयाय।
सभा' लआकर' निज अङ्गने कीर्त्तन, नित्यानन्द आछेन सहाय ॥धु॥३२॥
(तोमार) प्रेममय दुइ आँखि, दीर्घभुज दुइ देखि, वचने ते अमिया वरिषेहे।

होती हुई ये सब बातें शची माता के कानों में पहुँचीं–सुन कर सची माता के देह में प्राण नहीं रहे। १८॥ प्रभु संन्यास लेंगे–यह सुन कर शची माता को इतना दुःख हुआ कि उन्हें यह ज्ञान न रहा कि वह कहाँ है ॥१९॥ वे क्षण क्षण में मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती और नेत्रों से निरन्तर अश्रु बहा करते-जो रोके न रुकते ॥२०॥ कमल लोचन प्रभु समीप ही बैठे हुये हैं। शची माना रोती हुई उन से कहने लगीं ॥२१॥ भाटियारी राग—"बेटा ! मुझे छोड़ कर न जाना, न जाना ! यह पापी जीव तेरे श्रीमुख को देख कर ही बचा हुआ है ॥२२॥ गौराङ्ग, न जाना'' तेरा मुख चन्द्रमा के समान हैं, नेत्र कमल–तुल्य हैं सुन्दर सुलाल अधर हैं, दशन कुन्द और मुक्ता सदृश हैं ॥२३॥ ''तेरे सुन्दर वचन से अमृत-वर्षा सी होती है। तेरी चाल गजेन्द्र समान है। ऐसा तुझे न देख कर मैं कैसे बच रहूँगी ॥२४॥ अद्वैत-श्रीवासादि तेरे अनुचर हैं। नित्यानन्द तो तेरा दूसरा प्राण है ॥२५॥ गदाधर तेरा परम वन्धु है। इन सब के साथ घर में ही रहकर आनन्द से कीर्तन करो ॥२६॥ बेटा ! धर्म का मर्म समझाने के लिये तेरा अवतार है। परन्तु जन्म दायिनी माता को त्यागने में कौन सा धर्म का विचार है ॥२७॥ तुम धर्म स्वरूप होकर के भी यदि जननी को छोड़ जाओगे तो फिर जगत् में धर्म का उपदेश करोगे' ॥२८॥ प्रेम के कारण शोकातुर हो कर शची कह रही है और विश्वम्भर सुन रहे हैं प्रभु का कण्ठ प्रेम के कारण रुक गया है और वे अन्तर नहीं दे रहे हैं ॥२९॥ शची फिर कहने लगीं- ''तुह्मारा बड़ा भाई (विश्वरूप) मुझे छोड़ संन्यासी हो गया। तुह्मारे पिता भी वैकुण्ठ को चले गये ॥३०॥ पर तुमको देख कर ही मैं यह सब संताप भूली हुई हूँ। तुम भी यदि चले गये तो में प्राण अवश्य ही छोड़ दूँगी ॥३१॥ करुण भाटियारी राग ॥ –– ''देखो बेटा। मेरे प्राणों के गौराँग ! अनाथिनी (माँ) को छोड़ना उचित नहीं है। सब भक्तों को लेकर अपने आँगन में कीर्तन करो। नित्यानन्द तुह्मारे सहायक हैं ॥ (ध्रु०) ॥३२॥ ये तुह्मारी दो प्रेममयी आँखें, ये तुह्मारी दीर्घ दो भुजाएं–इन्हें मैं

बिनि-दीपे घर मोर, तोमार अङ्गे ते उजारे, राङ्गा पाये कत मधु वैसे हे" ।।३३।।
प्रेम शोके कहे शची, विश्वम्भर शुने वसि, (येन) रघुनाथे कौशल्या बुझाय।
श्रीचैतन्य नित्यानन्द, सुखदाता सदानन्द, वृन्दावनदास रस गाय ।।३४।।
एइ मत विलाप करये शचीमाता। मुख तुलि ठाकुर ना कहे एको कथा ।।३५।।
विवर्ण हइला शची-अस्थि-चर्म-सार। शोकाकुली देवी किछुना करे आहार ।।३६।।
प्रभु देखे जननीर जीवन ना रहे। निभृते वसिया ताने गोप्य-कथा कहे ।।३७।।
प्रभु बोले "माता! तुमि स्थिर कर' मन। शुन जत जन्म आमि तोमार नन्दन ।।३८।।
चित्त दिया शुनह आपन गुण ग्राम। कोनो काले आछिल तोमार पृश्नि-नाम ।।३९।।
तथाय आछिला तुमि आमार जननी। तवे तुमि स्वर्गे हैला अदिति आपनि ।।४०।।
तवे आमि हइलु वामन-अवतार। तथाओ आछिला तुमि जननी आमार ।।४१।।
तवे तुमि देवहूति हैला आर वार। तथाओ कपिल आमि नन्दन तोमार ।।४२।।
तवे त कौशल्या हैला आर ,बार तुमि। तथाओ तोमार पुत्र रामचन्द्र आमि ।।४३।।
तवे तुमि मथुराय देवकी हइला। कंसासुर अन्तःपुरे वन्धने आछिला ।।४४।।
तथाओ आमार तुमि आछिला जननी। तुमि सेइ देवकी-पुत्र आमि ।।४५।।
आरो दुइ जन्म एइ सङ्कीर्तनारम्भे। हइव तोमार पुत्र आनि अविलम्बे ।।४६।।
एइमत तुमि मोर माता जन्मे जन्मे। तोमार आमार कभु त्याग नाहि मर्मे ।।४७।।
अमायाय एइ सब कहिलाङ कथा। आर तुमि मने दुख ना भाव सर्वथा ।।४८।।

देखा करती हूँ। तुह्मारे वचनों से अमृत वरसा करता है (उसे मैं पिया करती हूँ) तुह्मारे इस कंचन काया से मेरे घर में बिना दीपक के उजाला रहता है। और तुह्मारे लाल लाल चरण कमलों में कितना मधु- भरा रहता है ।।३३।। प्रेम और शोक में भरी हुई शची कहती जाती है। और विश्वम्भर सुनते जाते हैं। लगता है, कौशल्या रघुनाथजी को समझा रही हो सुखदाता तथा सदानन्द स्वरूप श्रीचैतन्य एवं नित्यानन्द का लीला-रस वृन्दावन दास गाता है ।।३४।। इस प्रकार शची माता विलाप करती हैं, परन्तु प्रभु मुख उठा कर एक भी बात नहीं कहते हैं ।।३५।। रोते रोते शची माता का रंग बदल गया। शरीर अस्थि-चर्म मात्र रह गया। शोकाकुल देवी (माता) कुछ भी भोजन नही करती हैं ।।३६।। प्रभु ने देखा कि अब जननी का जीवन नहीं रहेगा। इस लिये एक दिन एकांत में बैठकर उनसे गुप्त-कथा कहने लगे ।।३७।। प्रभु बोले "माता! तुम चित को स्थिर करो। सुनो, मैं अपने सब अवतार-जन्म में तुह्मारा ही पुत्र हूँ। ।।३८।। मन लगाकर अपने गुणों को सुनो किसी समय में तुह्मारा पृश्नि नाम था ।।३९।। "तब तुम मेरी जननी थी। फिर स्वयं तुम हो स्वर्ग में अदिति हुई, तब मैं तुमसे बामन रूप में प्रकट हुआ ।।४०।। फिर एक बार तुम देवहुति हुई। वहाँ मैं कपिल नाम से तह्मारा पुत्र हुआ ।।४१-४२।। "फिर एक दूसरे बार तुम कौशलआ हुई, वहाँ मैं तुम्हारा पुत्र रामचन्द्र हुआ ।।४३।। फिर तुम मथुरा में देवकी हुई। तुम वहाँ कंस के अन्तःपुर में बन्धन में थीं। वहाँ भी तुम मेरी जननी हुई थीं। तुम वही देवकी हो और मैं वही देवकी-पुत्र हूँ ।।४४-४५।। "इस संकीर्तन कार्य के लिये मेरे और दो जन्म शीघ्र ही होंगे-उनमें भी मैं तुम्हारा पुत्र हूँगा ।।४६।। इस प्रकार तुम जन्म-जन्मान्तर से मेरी माता हो। इस कारण वस्तुतः तुम्हारा मेरा कभी बिछोह नहीं है ।।४७।। "मैंने निष्कपट भाव से सब रहस्य कथा तुमको कह दी अब तुम चित्त से दुःख को सर्बथा निकाल दो ।।४८। "प्रभु ने जब यह रहस्य कथा कही तो सुन कर शची माता का मन कुछ

कहिलेन प्रभु अति रहस्य कथन। शुनिञा शचीर किछु स्थिर हैल मन ॥४९॥
एइ मत आछेन ठाकुर विश्वम्भर। सङ्कीर्तन-आनन्द करेन निरन्तर ॥५०॥
स्वेच्छामय महेश्वर कखने कि करें। ईश्वरेर मर्म केहो बुझिते ना पारे ॥५१॥
निरवधि परानन्द सङ्कीर्तन-रङ्गे। हरिषे थाकेन सर्व-वैष्णवेर सङ्गे ॥५२॥
परानन्दे विह्वल सकल भक्तगण। पासरि रहिला सभे प्रभुर गमन ॥५३॥
सर्व वेदे मने भावे' जाहारे देखिते। क्रीड़ा करे भक्तगण से-प्रभु-सहिते ॥५४॥
जे-दिन चलिव प्रभु संन्यास करिते। नित्यानन्द स्थाने ताहा कहिला निभृते ॥५५॥
"शुन शुन नित्यानन्द स्वरूप गोसाञि। ए कथा भाङ्गिवे सवे पञ्च-जन-ठाञि ॥५६॥
एइ सङ्क्रमण-उत्तरायण-दिवसे। निश्चय चलिव आमि करिते संन्यासे ॥५७॥
इन्द्राणि निकटे काटोया-नामे ग्राम। तथा आछे केशव भारती शुद्ध नाम ॥५८॥
तान स्थाने आमार संन्यास सुनिश्चित। ए-पञ्च-जनारे कथा कहिवा विदित ॥५९॥
आमार जननी, गदाधर, ब्रह्मानन्द। श्री चन्द्रशेखराचार्य, अपर मुकुन्द ॥६०॥
एइ कथा नित्यानन्द स्वरूपेर स्थाने। कहिलेन प्रभु इहा केहो नाहि जाने ॥६१॥
पञ्च-जन-स्थाने मात्र ए सब कथन। कहिलेन नित्यानन्द प्रभुर गमन ॥६२॥
सेइ दिन प्रभु सर्व-वैष्णवेर सङ्गे। सर्व दिन गोङाइला सङ्कीर्तनरंगे ॥६३॥
परम-आनन्दे प्रभु करिया भोजन। सन्ध्याय करिला गङ्गा देखिते गमन ॥६४॥
गङ्गा नमस्करिया वसिला गङ्गातीरे। क्षणेक थाकिया पुन आइलेन घरे ॥६५॥
आसिया वसिला गृहे गौराङ्ग सुन्दर। चतुर्दिगे वसिलेन सर्व अनुचर ॥६६॥
से-दिने चलिव प्रभु केहो नाहि जाने। कौतुके आछेन सभे ठाकुरेर सने ॥६७॥

स्थिर हुआ ॥४९॥ इस प्रकार विश्वम्भर प्रभु (गृह में) निवास कर रहे हैं, वे निरन्तर संकीर्तन के आनन्द में लीन रहते हैं ॥५०॥ आप स्वेच्छामय महेश्वर हैं, कब क्या कर डालें, ईश्वर का अभिप्राय कोई समझ नहीं सकता हैं ॥५१॥ प्रभु सब वैष्णवों के साथ निरन्तर संकीर्तन के रङ्ग में परमानन्द में प्रफुल्लित रहते हैं ॥५२॥ भक्तगण भी परानन्द में विह्वल हुये प्रभु के गृह-त्यागने की बात सब भूल गये। ५३॥ समस्त देवता लोग जिनके दर्शन करने का मनोरथ करते रहते हैं, उस प्रभु के साथ भक्तगण क्रीड़ा किया करते हैं ॥५४॥ जिस दिन प्रभु संन्यास ग्रहण के लिये घर से निकलेंगे वह आपने श्रीनित्यानन्द को एकान्त में बतला दिया ॥५५॥ "सुनो सुनो नित्यानन्द स्वरूप गुसांई! यह भेद केवल पाँच जनों को ही बताना कि मैं इस संकान्त को उत्तरायण के पवित्र काल में, सन्यास लेने को निश्चय ही चला जाऊँगा ॥५६-५७॥ "इन्द्राणि के निकट काटोया नामक ग्राम में सुन्दर नाम वाले केशव भारती रहते हैं ॥५८॥ उनके निकट मेरा सन्यास ग्रहण सुनिश्चित है। यह बात इन पाँच जनों को सूचित कर देना—मेरी जननी, गदाधर, ब्रह्मानन्द, श्री चन्द्रशेखर आचार्य और मुकुन्द" ॥५९-६०॥ इतनी बात प्रभु ने नित्यानन्द स्वरूप के निकट कहा—इस का पता किसी को न लगा ॥६१॥ नित्यानन्द ने भी प्रभु के जाने की सूचना केवल वे ही पाँच जनों को दी ॥६२॥ वह दिन (अर्थात् संक्रान्ति का दिन) सारा प्रभु ने समस्त वैष्णवों के संग सङ्कीर्तन के आनन्द में व्यतीत किया ॥६३॥ फिर बड़े आनन्द से भोजन करके संध्या समय गङ्गाजी के दर्शन करने को गये ॥६४॥ प्रभु गङ्गा को नमस्कार करके गङ्गा के तीर पर बैठ गये। कुछ समय वहाँ बैठ कर फिर घर को आये ॥६५॥ घर में आकर गौरांग सुन्दर बैठ गये, चारों ओर सब अनुचर गण बैठे ॥६६॥ कोई नहीं जानते हैं

वसिया आछेन प्रभु कमल लोचन। सर्वाङ्गे शोभित माला सुगन्धि चन्दन ॥६८॥
जतेक वैष्णव आइसेन देखि बारे। सभेइ चन्दन माला लइ दुइ करे ॥६६॥
हेन आकर्षण प्रभु करिला आपनि। के वा कोन दिग हैते आइसे नाहि जानि ॥७०॥
कतेक वा नगरिया आइसे देखिते। ब्रह्मादिरो शक्ति इहा नाहिक लिखिते। ७१॥
दण्ड परणाम हञा पड़े सर्वजन। एक दृष्टये 'सभेइ चा' हेन श्रीवदन ॥७२॥
आपन गलार माला सभाकारे दिया। आज्ञा करे प्रभु सभे "कृष्ण गाओ गिया ॥७३॥
बोल कृष्ण, भजकृष्ण, गाओ कृष्ण नाम। कृष्ण बिनु केहो किछु ना भाविह आन। ७४॥
आदि आमा'प्रति स्नेह थाके सभाकार। तवे कृष्ण–'व्यतिरिक्त ना गाइव'आर ॥७५॥
कि शयने कि भोजने कि वा जागरणे। अहर्निश चिन्त कृष्ण बोलह वदने। ७६॥
एइ मत शुभ दृष्टि प्रभु सभाकारे। उपदेश कहिया कहेन "जाओ घरे ॥७७॥
एइ मत कत जाय कत वा आइसे। केहो कारे नाहि चिने, आनन्देते भासे ॥७८॥
पूर्ण हैल श्रीविग्रह चन्दन—मालाय। चन्द्रेर किरण शोभा कहन ना जाय ७६॥
प्रसाद पाइया सभे हरषित हैया। उच्च हरि ध्वनि सभे जायेन करिया ॥८०॥
एक लाउ हाथे करि सुकृति श्रीधर। हेनइ समये आसि हइला गोचर ॥८१॥
लाउ भेट देखि हासे' वैकुण्ठेर राय। "कोथाय पाइला" प्रभु जिज्ञासे' सदाय ॥८२॥
निज–मने जाने प्रभु "कालि चलिवाङ। एइ लाउ भोजन करिते नारिलाङ ॥८३॥

कि आज के दिन प्रभु हमें छोड़ कर चले जायेंगे। इसलिये सब प्रभु के साथ आनन्द में बैठे हैं ॥६७॥ कमल लोचन प्रभु बिराजमान हैं। सर्वांग में माला सुगन्धित द्रव्य (इतर फुलेल आदि) चन्दन सुशोभित है ॥६८॥ जो भी वैष्णव दर्शन को आते हैं, वे अपने दोनों हाथों में माला और चन्दन लिये आते हैं ॥६६॥ प्रभु ने उस समय अपना आकर्षण का प्रभाव ऐसा प्रकट किया कि जिधर देखो उधर ही लोग आ रहे हैं–पता नहीं लगता कौन किधर से आ रहा है ॥७०॥ उस समय प्रभु के दर्शन के लिये कितने नगरवासी आये इसकी गणना करके लिखने की शक्ति ब्रह्मादिकों की भी नहीं है ॥५१॥ सभी लोग दण्डवत् प्रणाम करते हैं और सभी इकटक प्रभु का श्रीमुख देखने लगते हैं ॥७२॥ प्रभु अपने गले की मालाएँ सबों को देकर आज्ञा करते हैं कि "सब जाकर श्रीकृष्ण का कीर्तन किया करें ॥७३॥ तुम लोग बोलो तो कृष्ण भजो तो कृष्ण और गाओ तो कृष्ण नाम। कृष्ण बिना कोई भी कुछ न सोचे–विचारे ॥७४॥ "यदि तुम लोगों का मेरे प्रति स्नेह हो तो कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ न कीर्तन करें ॥७५॥ क्या सोते, क्या खाते, क्या जागते, दिन रात कृष्ण का ही चिन्तवन करें और मुख से भी कृष्ण ही कहें" ॥७६॥ इस प्रकार प्रभु सब लोगों के प्रति शुभ दृष्टि पूर्वक उपदेश करके उनसे कहा "जाओ घर" ॥७७॥ इस प्रकार कितने ही आते हैं और कितने ही जाते हैं, कोई किसी को नहीं पहचानता है, सब आनन्द में बहे जाते हैं ॥७८॥ प्रभु का श्री विग्रह (भक्तों के अर्पित) माला और चन्दक से पूर्ण हो गया। चन्द्रमा के किरणों के द्वारा उनके श्रीविग्रह की जो मनोहर शोभा हो रही थी, वह कहा नहीं जा सकता ॥७६॥ प्रसादी माला प्राप्त कर सब लोग हर्षित हो उच्चस्वर से हरि ध्वनि करते हुये बिदा होते हैं ॥८०॥ ऐसे ही समय पुण्यवान् श्रीधर भी हाथ में एक लौकी (घीया) लेकर आ पहुँचा। उसके घीया की भेंट को देख वैकुण्ठनाथ गौर सुन्दर हँस कर पूछते हैं "कहाँ मिला यह" ! ॥८१–८२॥ प्रभु मन में सोचते है "कल तो मैं चला जाऊँगा–यहाँ हूँगा ही नहीं फिर इस लौकी का साग कैसे भोजन कर सकूंगा तो क्या श्रीधर की वस्तु ऐसे ही व्यर्थ जायगी। इसलिये

श्रीधरेर पदार्थ कि हइब अन्यथा। ए लाउ भोजन आजि करिब सर्वथा ॥८४॥
एतेक चिन्तिया भक्त वात्सल्य राखिते। जननीरे बलिलेन रन्धन करिते ॥८५॥
हेनइ समये आर कोन पुण्यवान्। दुग्ध भेट आनिञा दिलेन विद्यमान ॥८६॥
हासिया ठाकुर बोले "बड़ भाल भाल। दुग्ध-लाउ पाक गिया करह सकाल" ॥८७॥
सन्तोषे चलिला शची करिते रन्धन। हेन भक्तवत्सल श्रीशचीर नन्दन ॥८८॥
एइ मते महानन्दे वैकुण्ठ-ईश्वर। कौतुके आछेन रात्रि द्वितीय प्रहर ॥८९॥
सभारे विदाय दिला प्रभु विश्वम्भर। भोजने बसिला आसि त्रिदश-ईश्वर ॥९०॥
भोजन करिया प्रभु मुख शुद्धि करि। चलिला शयन गृहे गौराङ्ग श्रीहरि ॥९१॥
जोगनिद्रा प्रति दृष्टि करिला ईश्वर। निकटे शुइला हरिदास गदाधर ॥९२॥
आइ जाने-आजि प्रभु करिब गमन। आइर-नाहिक निद्रा, कान्दे अनुक्षण ॥९३॥
दण्ड चीर रात्रि आछे' ठाकुर जानिया। उठिलेन चलिवारे सामग्री लइया ॥९४॥
गदाधर हरिदास उठिलेन जानि। गदाधर बोलेन "चलिब सङ्गे आमि ॥९५॥
प्रभु बोले "आमार नाहिक कारो सङ्ग। एक अद्वितीय से आमार सर्व रङ्ग ॥९६॥
आइ जानि लेन मात्र प्रभुर गमन। दुआरे वसिया रहिलेन ततक्षण ॥९७॥
जननीरे देखि प्रभु धरि तान कर। बसिया कहेन ताने प्रवोध-उत्तर ॥९८॥
"विस्तर करिला तुमि आमार पालन। पढ़िलाङ शुनिलाङ तोमार कारण ॥९९॥
आपनार तिलार्द्धेको ना लाइला सुख। आजन्म आमार तुमि वाढ़ाइला भोग ॥१००॥
दण्डे दण्डे जत तुमि करिला आमार। आमि कोटि कल्पेओ नारिब शुधिवार ॥१०१॥

इस लौकी का भोजन आज ही करूँगा" ॥८३-८४॥ इस प्रकार मन में निश्चय करके भक्त वत्सलता की रक्षा के लिये प्रभु ने जननी से उसका साग बना देने के लिये कहा ॥८५॥ इतने में किसी पुण्यवान् व्यक्ति ने दूध लाकर आगे भेंट कर दिया तो प्रभु हँस कर बोले—"वाह ! वाह बड़ा अच्छा हुआ ! माँ ! तुम जाकर शीघ्रता से दूध और लौकी का खीर बनालो" ॥८६-८७॥ सुन कर प्रसन्न हो शचीमाता भोजन बनाने को चली गयीं ऐसे भक्त वत्सल हैं श्री शचीनन्दन ॥८८॥ इस प्रकार महा-आनन्द में वैकुण्ठेश्वरे गौर दो पहर रात्रि तक कौतुक करते रहे ॥८९॥ फिर सब को बिदा करके, देवों के देव प्रभु विश्वम्भर भोजन करने बैठे ॥९०॥ भोजन कर प्रभु ने मुख-शुद्धि किया और फिर गौरांग हरि शयन-गृह को चले ॥९१॥ ईश्वर (गौर) ने योग माया के प्रति दृष्टि किया । (अर्थात् योग निद्रा को स्वीकार कर सो गये) पास में सो रहे हैं हरिदास और गदाधर ॥९२॥ शची माता जानती है कि आज प्रभु चले जायँगे, अतः माता को नींद नहीं है, क्षण क्षण में रोती हैं ॥९३॥ प्रभु ने जाना कि अब चार दंड रात्रि शेष है । वे उठे और साथ चलने का सामान लिया ॥९४॥ यह जान कर गदाधर और हरिदास भी उठ खड़े हुये, गदाधर बोला "मैं तो सङ्ग चलूँगा" ॥९५॥ प्रभु बोले "मेरा सङ्ग किसी से नहीं है । मेरा सङ्ग तो सदा से एक अद्वितीय है ॥९६॥ माता शची ने भी प्रभु का चलना जान लिया । वह तत्क्षण द्वार पर आ बैठी रही ॥९७॥ माता को देखकर प्रभु ने उनका हाथ पकड़ लिया और बैठ कर उनको प्रवोध-वचन कहने लगे ॥९८॥ "माँ ! तुमने मेरा पर्याप्त पालन किया तुह्मारे कारण ही मैं पढ़ा लिखा ॥९९॥ "तुमने अपने दुःख की ओर आधा तिल भर भी ध्यान नहीं दिया और मेरे जन्म से ही मुझे सुख देने में लगी रही ॥१००॥ तुमने पल पल में मेरी जो जो सेवा की है उसका ऋण मैं कोटि २ कल्पों में भी नहीं चुका सकूँगा ॥१०१॥ "उसके लिये मैं

तोमार साद्गुण्य से ताहार प्रतिकार । आमि पुन जन्म जन्म ऋणी से तोमार ।।१०२।।
शुन माता ! ईश्वरेर ग्राधीन संसार । स्वतन्त्र हइते शक्ति नाहिक काहार ।।१०३।।
सयोग वियोग अत करे सेइ नाथ । तान इच्छा बुझिवारे शक्ति ग्राछे कात ।।१०४।।
दश दिन अन्तरे कि एखने वा आमि । चलिलेओ कोन् चिन्ता ना करिह तुमि ।।१०५।।
व्यवहार परमार्थ जतेक तोमार । सकल आमाते लागे, सब मोर भार ।।१०६।।
बुके हाथ दिया प्रभु बोले बार बार । "तोमार सकल भार आमार आमार ।।१०७।।
जत किछु बोले प्रभु, शची सब शुने । उत्तर ना स्फुरे कान्दे ग्रझर-नयने ।।१०८।।
पृथिवी-स्वरूपा हैला शची जगन्माता । के बुझये कृष्णेर अचिन्त्य सर्वकथा ।।१०९।।
जननीर पद-धूली लइ प्रभु शिरे । प्रदक्षिण करि ताने चलिला सत्वरे ।।११०।।
चलिलेन वैकुण्ठ नायक गृह हैते । संन्यास करिया सर्वजीव उद्धारिते ।।१११।।
शुन शुन ग्रारेभाइ ! प्रभुर संन्यास । जे कथा शुनिले कर्मबन्ध जाय नाश ।।११२।।
प्रभु चलिलेन मात्र शची जगन्माता । जड़ हइलेन, किछु नाहि स्फुरे कथा ।।११३।।
भक्त गण ना जानेन ए सब वृत्तान्त । ऊषःकाले स्नान करि जनेक महान्त ।।११४।।
प्रभु नमस्करिते ग्राइला प्रभुघरे । आसिया देखेन ग्राइ वाहिर-दुयारे ।।११५।।
ग्रथ मेइ बलिलेन श्रीवास उदार । "आइ केने रहियाछे बाहिर-दुयार ।।११६।।
जड़ आय आइ, किछु ना स्फुरे उत्तर । नयनेर धारा मात्र वहे निरन्तर ।।११७।।
क्षणेके बलिया आइ "शुन बाप-सब । विष्णुर द्रव्येर भागी सकल वैष्णव ।।११८।।

जन्म जन्म में तुम्हारा ऋणी ही रहूँगा । उसका प्रतिकार तो एक मात्र तुम्हारी उदारता ही है ।।१०२।। सुनो माता ! यह संसार ईश्वर के ग्राधीन है । स्वतन्त्र होने की शक्ति किसी में नहीं है ।।१०३।। "जो कुछ भी संयोग-वियोग होता है, वह सब उसी प्रभु की इच्छा से होता है । उस की इच्छा को समझने की शक्ति भला किसमें है ।।१०४।। ग्रतएव दस दिन पीछे अथवा अभी मैं चला भी जाऊँ तो तुम कोई चिन्ता न करना ।।१०५।। "(ग्रौर एक बात सुनो) तुम्हारा इस लोक का व्यवहार और परमार्थ-जो कुछ भी हो, वह तुम्हारी ओर से मैं ही पूरा करूँगा-मेरे उपर उनका सारा भार रहा ।।१०६।। ग्रपने वक्षस्थल पर हाथ रखकर प्रभु बारम्बार कहते हैं "तुम्हारा सारा भार मेरा मेरा है" ।।१०७।। इस प्रकार जो कुछ प्रभु कहते हैं, शचीमाता सब सुनती जाती हैं । उत्तर कुछ सूझता नहीं, केवल रोती झरझर ग्राँसू बहाती हैं ।।१०८।। पृथ्वी के समान सर्वंसहा हो गयीं जगन्माता शची । श्रीकृष्ण के सभी चरित ग्रचिन्त्य हैं, कौन समझ सकता है ।।१०९।। प्रभु ने जन्मदायिनी माता की चरण धूलि शीश पर धारण की ग्रौर उनकी प्रदक्षिणा करके शीघ्रता पूर्वक चल दिये ।।११०।। बैकुण्ठनाथ गृह से चल दिये, सर्वस्व त्याग कर सब जीवों का उद्धार करने चल दिये ।।१११।। अरे भाइयो ! सुनो, सुनो, प्रभु की संन्यास-कथा सुनो । जिस कथा को सुनने से कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं ।।११२।। प्रभु के चले जाते ही जगन्माता शची जड़ सदृश हो गयीं-वाणी बन्द हो गई ।।११३।। भक्त लोगों को यह सब वृत्तान्त मालूम नहीं । उषा काल में स्नान कर कुछ विशिष्ट भक्त लोग प्रभु-को नमस्कार करने प्रभु के गृह आये तो देखा कि शची माता बाहर द्वार पर बैठी हैं ।।११४-११५।। उदारमना श्री वास पहले ही बोल उठे-"माता क्यों बाहर के द्वार पर बैठी हैं" ।।११६।। माता तो जड़-प्राय हो रही हैं, मुख से बात नहीं निकलती नेत्रों से केवल धारा ही बही जा रही है ।।११७।। कुछ समय पश्चात् माता बोली-"सुनो बेटाओ विष्णु की वस्तु के भागीदार सकल वैष्णव हैं ।।११८।। अतः

एतेके जे किछु द्रव्य आछये ताहान। तो मस सभरे हय शास्त्रेर प्रमाण ॥११६॥
एतेके तोमरा-सभे आपने मिलिया। जेन इच्छा तेन कर' "मोजङ चलिया ॥१२०॥
शुनि मात्र भक्तगण प्रभुर गमन। भूमिते पड़िला सभे हइ अचेतन ॥१२१॥
कि हइल से वैष्णव गणेर विषाद। कान्दिते लागिला सभे करि आर्त्तनाद ॥१२२॥
अन्योन्ये सभेइ सभार धरि गला। विविध विलाप सभे करिते लागिला ॥१२३॥
"कि दारुण निशि पोहाइल गोपीनाथ"। वलिया कान्देन सभे शिरे दिया हाथ ॥१२४॥
"ना देखिया से श्रीमुख वञ्चिव के मने। किवा कार्य ए ना आर पापिष्ठ जीवने ॥१२५॥
आचम्बिते केने हेन हैल वज्रपात"। गड़ा गड़ि जाय केहो करे आत्मघात ॥१२६॥
सम्वरण नहे भक्तगणेर क्रन्दन। हइल क्रन्दनमय प्रभुर भवन ॥१२७॥
जे भक्त आइसे प्रभु देखिवार तरे। से-इ आसि डूवे महा विरह-सागरे ॥१२८ ॥
कान्दे सब भक्तगण भूमि ते पाड़िया। "संन्यास करिते प्रभु गेलेन चलिया ॥१२६ ॥
कथोक्षणे भक्तगण हइ किछु शान्त। शची देवी वेढ़ि सब वसिला महान्त ॥१३०॥
"अनाथेर नाथ प्रभु गेलेन चलिया। आमा सवे विरह समुद्रे फेलाइया ॥१३१॥
कान्दे सब भक्तगण हइया अचेतन, हरि हरि वलि उच्च स्वरे।
किवा मोर धन जन, किवा मोर जीवन, प्रभु छाड़ि गेला सवाकारे ॥१३२॥
माथाय दिया हात, बुके मारे निर्घात, हरि हरि प्रभु विश्वम्भर।
संन्यास करिते गेला, आमा सभा ना वलिया, कान्दे भक्त धूलाय धूसर ॥१३३॥
प्रभुर अङ्गने पड़ि, कान्दे मुकुन्द मुरारि, श्रीधर गदाधर गङ्गादास।

यहाँ जो कुछ भी द्रव्य उस का है, वह शास्त्र प्रमाण के अनुसार तुम लोगों का ही है ॥११६॥ अतएव तुम लोग सव मिलकर जैसी इच्छा वैसी करो। मैं तो चली जाती हूँ ॥१२०॥ भक्त लोग प्रभु का चले जाना सुनते ही अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥१२१॥ ऐसा घोर विषाद वैष्णव जनों में उत्पन्न हुआ कि सब आर्त्तनाद करते हुए क्रन्दन करने लगे ॥१२२॥ एक दूसरे का गला पकड़ पकड़ सब लोग नाना प्रकार के विलाप करने लगे ॥१२३॥ "हे गोपीनाथ प्रभो! आज की रात का शेष कैसा दारुण (दुःखदायी) हुआ" कह कर सब रोते और अपने शरीर पर आघात करते हैं ॥१२४॥ "वह श्रीमुख न देख कैसे जीयेंगे? अब इस पापी जीवन से क्या प्रयोजन? अचानक क्यों यह बज्रपात हुआ ॥१२५॥ ऐसा विलाप करते हुये भूमि पर लोट पोट हो जाते हैं और आर्त्तनाद करते हैं ॥१२६॥ भक्त लोगों का क्रन्दन रुकता नहीं है। प्रभु का भवन उनके क्रन्दन-पुकार से व्याप्त हो गया ॥१२७॥ जो भक्त प्रभु के दर्शन के लिये आता है वही महा विरह सागर में डूब जाता है ॥१२८॥ सब भक्त गण भूमि पर पड़े पड़े रोते हैं और यही कहते हैं कि "हाय! प्रभु संन्यास लेने के लिये चले गये ॥१२६॥ कुछ समय में भक्तगण कुछ शान्त हुए और वे सब महानुभाव शची देवी को घेर कर बैठ गये ॥१३०॥ अनाथ के नाथ श्री प्रभु हम सबको विरह रूपी सागर में फेंक कर चले गये हैं। भक्त गण ऊँचे स्वर से हरि, हरि बोलते हुये क्रन्दन करते हुये अचेतन हो गये ॥१३१॥ हम सबके धन, जन व जीवन में प्रयोजन क्या है। प्रभू सबको छोड़ कर चले गये हैं। इस प्रकार कहने लगे ॥१३२॥ हाय २ प्रभू विश्वम्भर हम सबको न कह कर संन्यास लेने चले गये ऐसा कहते हुये भक्त लोग माथा पर हाथ देकर छाती पर कराघात कर धूलि में लोट पोट होगये ॥१३३॥ मुकुन्द, मुरारी, श्रीधर, गदाधर, गङ्गादास, श्रीवास के जितने गण हैं और श्री आचार्य, श्री हरीदासजी प्रभु के आँगन में पड़े २

श्रीवासेर गण जत, तारा कान्दे अविरत, श्रीआचार्य कान्दे हरिदास ॥१३४॥
शुनिया क्रन्दन रव, नदियार लोक सब, देखिते आइसे सब धाञा।
ना देखि प्रभुर मुख, सबे पाय महाशोक, कान्दे सबे माथे हात दिया ॥१३५॥
नागरिया जत भक्त, तारा कान्दे अविरत, बाल वृद्ध नाहिक विचार।
कान्दे सब स्त्री पुरुषे, पाषण्डीर गण हासे, निमाइरे ना देखिमुँ आर' ॥१३६॥
कथोक्षणे सर्व नवद्वीपे हैल ध्वनि। 'संन्यास करिते प्रभु गेला द्विजमणि' ॥१३७॥
शुनि सर्व लोकेर लागिल चमत्कार। धाइया आइला सर्वलोक नदीयार ॥१३८॥
आसि सर्व लोक देखे प्रभुर वाड़ीते। शून्य वाड़ी सभे लागिया छेन कान्दिते ॥१३९॥
तखने से 'हाय हाय' करे सर्वलोक। परम निन्दक पाषण्डि ओ पाय शोक ॥१४०॥
'पापिष्ठ आमरा ना चिनिल हेन जन।' अनुताप भावि सभे करेन क्रन्दन ॥१४१॥
भूमिते पड़िया कान्दे नगरिया गण। 'आर ना देखिव बाप। से चन्द्रवदन' ॥१४२॥
केहो बोले 'चल घर-द्वारे अग्नि दिया। काणे परि कुण्डल चलिव जोगी हैया ॥१४३।
हेन प्रभु नवद्वीप छाड़िल जखन। आर केने आछे आमा' सभार जीवन' ॥१४४॥
कि स्त्री पुरुष जे शुनिल नदीयार। सभेइ विषाद वइ ना भावये आर ॥१४५॥
प्रभु से जानये जारे ताखि जेमते। सर्व जीव उद्धार पाइव हेनमते ॥१४६॥
निन्दा द्वेष जाहार मनेते जे आछिल। प्रभुर लिषये सर्व जीवेर खण्डिल ॥१४७॥
सर्व जीवनाथ गौरचन्द्र जय जय। भाल रङ्गे सभा' उद्धारिला दयामय। १४८॥
शुन शुन आरे भाइ ! प्रभुर संन्यास। जे कथा शुनिले कर्म बन्धन जाय नाश ॥१४९॥

रोने लगे ॥१३४॥ क्रन्दन का शब्द सुनकर नदिया के सब लोग दौड़कर देखने को आये ! वे सब वहाँ गौरचन्द्र के मुख कमल को न देखकर मस्तक पर हाथ देकर बड़े शोक के साथ रोने लगे ॥ १३५॥ नगर वासी जितने भक्त गण वे सब निरन्तर रोने लगे बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब रुदन करने लगे केवल पाखण्डी लोग हँसे ॥१३६॥ अल्प समय में समस्त नवद्वीप में यह हल्ला हो गया कि 'द्विजमणि प्रभु सन्यास लेने के लिये चले गये'। १३७॥ सुनकर सब लोग चौंक पड़े और नदिया के सब लोग दौड़े आये ॥१३८॥ सब लोग प्रभु के घर पर आकर देखते हैं कि गृह शून्य है और सब लोग रो रहे हैं ॥१३९॥ तब तो सब लोग 'हाय हाय' करने लगे। परम निन्दक दुष्ट जनों को भी बड़ा शोक हुआ ॥१४०॥ 'हम पापियों ने ऐसे पुरुष को नहीं पहचाना' कहते हुए अनुतप्त हृदय से सब रोने लगे ॥१४१। नगर वासी भूमि पर पड़े रोते हैं—'हाय बेटा ! अब वह चन्द्रमुख नहीं देख पायँगे' ॥१४२। कोई कहता है 'चलो घर-द्वार में आग देकर, कान में कुण्डल पहन (कन फटा) योगी बन कर चलेंगे ॥१४३॥ जब ऐसे प्रभु नवद्वीप छोड़ कर चले गये तो फिर हम सब लोगों का जीवन ही अब क्यों रहे ॥१४४॥ नदिया के स्त्री या पुरुष जिसने भी सुना, वही दुःखी और अन्य सब कुछ भूल गया ॥१४५॥ प्रभु यह जानते हैं कि किसका उद्धार कैसे होगा। (वस्तुतः) सब जीवों का उद्धार इसी प्रकार से (संन्यास-ग्रहण-जनित करुण रस से) होगा। १४६॥ (इसी संन्यास-वार्ता ने) प्रभु के सम्बन्ध में जिसके मन में जो निन्दा, द्वेष, प्रभृति पाप था, उसे शोक-सन्ताप की ज्वाला से भस्म करके, सब लोगों का मानस निर्मल कर दिया ॥१४७॥ (अतः) सब जीवों के नाथ गौर चन्द्र की जय हो, जय हो। अच्छी लीला (संन्यास) कौतुक के द्वारा दयामय ! तुमने सबका उद्धार किया। १४८॥ अरे भाइयो ! सुनो २ प्रभु की संन्यास-कथा को ॥१४९॥ इस कथा को सुनने से कर्म के बन्धन नष्ट होजाते

गङ्गार हइया पार श्रीगौर सुन्दर। सेइ दिने आइलेन कन्टक–नगर ॥१५०॥
जारे जारे आज्ञा प्रभु करिया आछिला। ताँहाराओ अल्पे अल्पे आसिया मिलिला ॥१५१॥
अवधूत चन्द्र, गदाधर, श्रीमुकुन्द। श्रीचन्द्रशेखराचार्य, आर ब्रह्मानन्द ॥१५२॥
आइलेन प्रभु जथा केशव भारती। मत्त-सिंह-प्राय प्रिय वर्गेर संहति ॥१५३॥
अद्‌भुत देहेर ज्योति देखिया ताहान। उठिलेन केशव भारती पुण्यवान् ॥१५४॥
दण्डवत्-प्रणाम करिया प्रभु ताने। कर जोड़ करि स्तुति करेन आपने ॥१५५॥
'अनुग्रह तुमि मोरे कर' महाशय। पतितपावन तुमि महा कृपामय ॥१५६॥
तुमि से दिवारे पार' कृष्ण प्राणनाथ। निरवधि कृष्णचन्द्र वसये तोमा'त ॥१५७॥
कृष्ण दास्य वइ जेन मोर नहे आन। हेन उपदेश तुमि मोरे देह' दान' ॥१५८॥
प्रेम जले अङ्ग भासे प्रभर कहिते। हुङ्कार करिया शेषे लागिला नाचिते ॥१५९॥
गाइते लागिला मुकुन्दादि भक्तगण। निजावेशे मत्त नाचे श्रीशचीनन्दन ॥१६०॥
अर्बुद अर्बुद लोक शुनि सेइ क्षणे। आसिया मिलिला नाहि जानि कोथा-हवे ॥१६१॥
देखिया प्रभुर रूप मदन सुन्दर। एक दृष्ट्य पान सभे करेन निर्भर ॥१६२॥
अकथ्य अद्‌भत धारा प्रभुर नयने। ताहो कि कहिल हय अनन्त-वदने ॥१६३॥
पाकदिया नृत्य करिते जे छुटे जल। ताहा तेइ लोक स्नान करिल सकल ॥१६४॥
सर्व लोक तितिल प्रभुर प्रेम-जले। स्त्री-पुरुषे वाल-वृद्ध 'हरि हरि' वोले ॥१६५॥
क्षणे कम्प क्षणे श्वेद क्षणे मूर्च्छा हय। आछाड़ देखिते सर्वलोके पाय भय ॥१६६॥

हैं॥१४९। गङ्गा पार करके श्री गौर सुन्दर उसी दिन कन्टक नगर में आ पहुँचे ॥१५०॥ जिन जिनके लिये प्रभु ने आज्ञा किया था, वे भी एक-एक करके वहाँ प्रभु से आ मिले ॥१५१॥ अवधूत चन्द्र नित्यानन्द गदाधर, श्रीमुकुन्द, श्रीचन्द्रशेखराचार्य और ब्रह्मानन्द प्रभु से आ मिले ॥१५२॥ प्रभु प्रिय परिकरों के सहित मतवाले सिंह को भाँति केशव भारती के समीप आ पहुँचे ॥१५३॥ उनकी देह की अद्‌भुत कान्ति को देखकर पुण्यवान् केशव भारती उठ खड़े हुए ॥१५४॥ प्रभु ने उनको दण्डवत् प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर आप ही उनकी स्तुति करने लगे ॥१५५॥ 'महाशय! आप मुझ पर कृपा करें। आप पतित पावन हैं, कृपामय हैं ॥१५६॥ आप प्राणनाथ श्रीकृष्ण को दे सकते हैं (क्योंकि) आपके हृदय में श्रीकृष्ण अविच्छिन्न निवास करते हैं ॥१५७॥ 'कृष्ण-दास बिना मेरी अन्य गति-मति न हो—ऐसा उपदेश आप मुझे दान करें ॥१५८॥ कहते २ प्रभु का श्रीअङ्ग प्रेम-जल (अश्रु-स्वेद) से पूरित हो गया और अन्त में वे हुँकार करते हुये नृत्य करने लगे ॥१५९॥ मुकुन्दादि भक्तगण गाने लगे और श्रीशचीनन्दन अपने आवेश में नाचने लगे ॥१६०॥ सुनकर उसी क्षण अरब-अरब लोग न जाने कहाँ से आ सम्मिलित हुये ॥१६१॥ प्रभु का कामदेव के समान सुन्दर रूप को देख सब लोग इकटक दृष्टि से उसका अतिशय पान करने लगे ॥१६२॥ प्रभु के नेत्रों से अद्‌भुत अवर्णनीय धाराएँ बह रही हैं, उसका वर्णन करने के लिये तो अनन्त वदन अथवा शेषजी की आवश्यकता होगी ॥१६३॥ चक्कर देकर नृत्य करते समय जो जल धाराएँ नेत्रों की चारों ओर छुटती हैं उनसे ही लोगों का स्नान हो जाता है ॥१६४॥ प्रभु के नेत्रों के प्रेम जल से सब लोग तर-बतर होगये। स्त्री-पुरुष, बाल, वृद्ध सब 'हरि हरि' ध्वनि करने लगे ॥१६५॥ प्रभु के शरीर में क्षण में कम्पन होता है, क्षण में स्वेद बहने लगता है और क्षण में मूर्च्छा आ जाती है और जब पछाड़ खाकर गिरते हैं तो देख कर सब लोग भयभीत हो जाते हैं। ॥१६६॥ अनन्त ब्रह्माडों के नाथ अपने ही दास्यभाव

अनन्त-ब्रह्माण्ड-नाथ निज-दास्य भावे । दन्ते तृण करि सभा'स्थाने भक्ति मागे' ।।१६७।।
से कारुण्य देखिया कान्दये सर्वलोक । संन्यास शुनिजा सभे भावे' महाशोक ।।१६८।।
से कारुण्य देखिया कान्दये सर्वलोक । संन्यास शुनिजा सभे भावे' महाशोक ।।१६८।।
केमने धरिव प्राण इहार जननी । आजि तान पोहाइल कि काल-रजनी ।।१६९।।
कौन् पुण्यवती हेन पाइलेक निधि । कोन् वा दारुण दोषे हरिलेक विधि ।।१७०।।
आमरा-सभेर प्राण विदरे देखिते । भार्या वा जननी प्राण राखिव केमते ।।१७१।।
एइ मत नारीगण दुःख भावि कान्दे । सर्वलोक पड़िलेन चैतन्येर फान्दे ।।१७२।
क्षणेक सम्बरि नृत्य वैसे विश्वम्भर । वसिलेन चतुर्दिगे सर्व अनुचर ।।१७३।।
देखिया प्रभुर भक्ति केशव भारती । आनन्द सागरे पूर्ण हइ करे स्तुति ।१७४।।
"जे भक्ति तोमार आमि देखिल नयने । ए शक्ति अन्येर नहे ईश्वरेर विने ।।१७५।।
तुमिसे जगत गुरु जानिल निश्चय । तोमार गुरुर जोग्य केहो कभु नय ।।१७६।।
तभु तुमि लोक शिक्षा निमित्त कारणे । करिवा आमारे गुरु, हेन लय मने ।।१७७।।
प्रभु बोले "माया मोरे ना कर' प्रकाश । हेन दीक्षा देह'जेन हङ कृष्ण दास । १७८।।
एइ मत कृष्ण कथा–आनन्द–प्रसङ्गे ।वञ्चिलेन से निशा ठाकुर सभा सङ्गे ।।१७९।।
पोहाइले निशि सर्व भुवनेर पति । आज्ञा करिलेन चन्द्र शेखरेर प्रति ।।१८०।।
"विधि जोग्य जत कर्म सब कर' तुमि । तोमारेइ प्रतिनिधि करिलाङ आमि ।।१८१ ।
प्रभुर आज्ञाय चन्द्रशेखर–आचार्य । करिते लागिला सर्व विधि जोग्य कार्य ।।१८२।।
नाना ग्राम हइते से नाना उपायन । आसिते लागिल अति अकथ्य–कथन ।।१८३।।

के आवेश में दाँतों में तिनका लेकर सब से हरि-भक्ति की याचना करते हैं ।।१६७।। प्रभु के उस करुण-कातर भाव को देख कर सब लोग रोते हैं और संन्यास की चर्चा सुन कर तो सब महाशोक में डूब जाते हैं ।।१६८।। "इनकी माता कैसे प्राण रखेगी ! आज तो उसके लिये काल रात्रि ही भोर हुआ है ।।१६९।। किस पुण्यवती ने ऐसी निधि पायी और फिर किस भयंकर दोष के कारण उसकी निधि विधाता ने हरण कर ली ।।१७०।। हम सब लोगों के प्राण ही जब यह देख फट रहे हैं तो फिर उनकी माता व पत्नी कैसे प्राण रख सकेंगे" ।।१७१।। इस प्रकार स्त्रियाँ शोक करती हुई रोती है । सब लोग श्रीचैतन्य के प्रेम में फँस गये ।।१७२।। कुछ समय में विश्वम्भर प्रभु अपना नृत्य समाप्त कर बैठ गये और चारों ओर सब अनुचर बैठ गये ।।१७३।। प्रभु की भक्ति देखकर केशव भारती आनन्द सागर से पूर्ण होकर स्तुति करने लगे ।।१७४।। "जो भक्ति तुममें मैंने आँखों से देखी, वह भक्ति ईश्वर के अतिरिक्त और किसी में नहीं हो सकती ।।१७५।। मैं निश्चय जान गया कि तुम वही जगद्गुरु हो । तुम्हारा गुरु बनने योग्य कोई कभी नहीं हो सकता है । १७६।। फिर भी लगता है मुझे कि तुम लोक शिक्षा के निमित्त ही मुझे गुरु करना चाहते हो ।।१७७।। प्रभु बोले "मेरे प्रति माया का प्रकाश न करें अर्थात् मुझे कृपा से वंचित न करें । मुझे तो ऐसी दीक्षा देवें जिससे कृष्ण का प्रकाश हो अर्थात् वे मिलें ।।१७८।। इस प्रकार कृष्ण कथा करते हुए आनन्द पूर्वक वह रात्रि प्रभु ने सब के साथ बितायी ।।१७९।। रात्रि बीतने पर सब लोकों के पति ने चन्द्रशेखर को आज्ञा दी कि 'संन्यासी–विधि के उपयुक्त जो सब कर्म हैं उसे आप करें । आप को ही मैंने अपना प्रतिनिधि नियत किया" ।।१८०-८१।। प्रभु की आज्ञा से चन्द्रशेखर आचार्य संन्यास विधि के समुचित कार्य सब करने लगे ।।१८२।। तब एक अति अद्भुत बात हुई कि समीप के गाँव 'शालग्राम' से नाना सामग्री अपने आप

दधि, दुग्ध, घृत,मुद्ग, ाम्बूल, चन्दन । पुष्प, यज्ञसूत्र, वस्त्र, आने सर्व जन ॥१८४॥
नाना विध भक्ष्य द्रव्य लागिल आसिते । हेन नाहि जानि केआनये कोन् मिते ॥१८५॥
परम-आनन्दे सभे करे हरि ध्वनि । त्रिविध लोकेर मुखे अन्य नाहि शुनि ॥१८६॥
तवे महाप्रभु सर्व जगतेर प्राण । वसिला करिते श्रीशिखार अन्तर्द्धान ॥१८७॥
नापित वसिला आसि सम्मुखे जखने । क्रन्दनेर कलरव उठिल तखने ॥१८८॥
क्षुर दिते से सुन्दर चाँचर चिकुरे । हाथ नाहि देय नापित क्रन्दन मात्र करे ॥१८९॥
नित्यानन्द-आदि करि जत भक्तगण । भूमिते पड़िया सभे करेन क्रन्दन ॥१९०॥
भक्तेर कि दाय, जत व्यवहारि-लोक । ताहाराओ कान्दिते लागिला करि शोक ॥१९१॥
केहो बोले"कौन् विधि सृजिल संन्यास" । एत वलि नारी गण छाड़े महाश्वास ॥१९२॥
अगोचरे थाकि सब कान्दे देवगण । अनन्त ब्रह्माण्डमय हइल क्रन्दन ॥१९३॥
हेन से कारुण्य रस गौरचन्द्र करे । शुष्क-काष्ठ-पाषाणादि द्रवये अन्तरे ॥१९४॥
ए सकल लीला जीव-उद्धार-कारण । एइ तार साक्षी देख कान्दे सर्वजन ॥१९५॥
प्रेम रसे परम चञ्चल गौरचन्द्र । स्थिर नहे निरवधि भाव अश्रु कम्प ॥१९६॥
'बोल बोल' करि प्रभु उठे विश्वम्भर । गायेन मुकुन्द, प्रभु नाचे मनोहर ॥१९७॥
वसिलेओ प्रभु स्थिर हइते ना पारे । प्रेमरसे महाकम्प' वहे अश्रु धारे ॥१९८॥
'बोल बोल' करि प्रभु करये हुङ्कार । क्षौर कर्म नापित ना पारे करिवार ॥१९९॥
कथं-कथमपि सर्वदिन-अवशेषे । क्षौर कर्म निर्वाह हइल प्रेमरसे ॥२००॥

आने लगी ॥१८३॥ दही,दूध, घी, मूँग, पान, चन्दन, पुष्प,यज्ञोपवीत, वस्त्र आदि सब लोग लाते हैं । और नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ भी आने लगे । कोई नहीं जानता कि कौन किधर से ला रहा है ॥१८४-८५॥ बड़े आनन्द के साथ सब हरिध्वनि कर रहे हैं,बालक, युवा व वृद्ध-तीनों प्रकार के लोगों के मुख से हरि नाम को छोड़ और कुछ नहीं सुनाजाता है ॥१८६॥ तब सर्व जगत के प्राण महाप्रभु श्रीशिखा का मुण्डन कराने के लिये बैठे ॥१८७॥ जब नाई आकर सामने बैठा तो क्रन्दन की करुण ध्वनि छा गई ॥१८८। नाई उन सुन्दर घुँघराले केशों पर उस्तरा चलाने के लिये हाथ नहीं उठाता है, बस बैठा रोता ही रोता है ॥१८९॥ नित्यानन्द आदि जितने भक्तगण थे वे भी सब भूमि पर लोटते हुये क्रन्दन करते हैं ॥१९०॥ भक्तों की क्या चले, संसारी लोग भी सब शोक करते हुये रोने लगे ॥१९१॥ कोई स्त्री कहती है 'किस विधाता ने इस संन्यास का सर्जन किया" । ऐसा कह स्त्रियाँ लम्बी २ साँस लेती हैं ॥१९२॥ देवता लोग अदृश्य रह कर रुदन करते हैं, अनन्त ब्रह्माण्ड क्रन्दनमय होगया ॥१९३॥ गौर चन्द्र ने ऐसा करुणा-रस का विस्तार किया कि शुष्क काष्ठ पाषाण भी अन्तर में द्रवित हो गये ॥१९४॥ ये सकल लीलाएँ जगत् के उद्धार के लिये हैं, इसकी साक्षी देख लो यह कि सब लोग रो रहे हैं ॥१९५॥ गौरचन्द्र भी श्रीकृष्ण के प्रेम रस में परम चंचल हुये स्थिर नहीं रहते हैं, उनमें अश्रु, कम्प आदि भाव निरन्तर प्रकट हो रहे हैं ॥१९६॥ और वे प्रभु विश्वम्भर 'बोलो बोलो' कहते हुये बारम्बार उठ'पड़ते हैं । मुकुन्द गाने लगता है और प्रभु मनोहर नृत्य करने लगते हैं । १९७॥ बैठने पर भी प्रभु स्थिर नहीं हो पाते हैं, प्रेम रस से भरे अत्यन्त कम्पायमान होते हैं और उनके नेत्रों से अश्रुओं की धाराएं वह चलती हैं ॥१९८॥ प्रभु "बोलो बोलो" कहते हुये हुँकार करते हैं और बेचारा नापित क्षौर कर्म कर नहीं सकता है ॥१९९॥ समस्त दिन उस कीर्तन के प्रेम रस के प्रवाह में व्यतीत होने पर अन्त में जैसे,-तैसे क्षौर-कर्म पूर्ण हुआ ॥२००॥ तब सब लोकों के नाथ ने गंगा स्नान

तवे सर्व लोक नाथ करि गङ्गा स्नान । आसिया वसिला जथा संन्यासेर स्थान ।।२०१।।
सर्व शिक्षा गुरु गौरचन्द्र वेदे बोले । वेशत्र भारती-स्थाने ताहा कहे छले ।।२०२।।
प्रभु बोले "स्वप्ने मोरे कोन महाजन । कर्णे संन्यासेर मंत्र करिल कथन ।।२०३।।
वुझ देखि ताहा तुमि किवा हय नहे । एत वलि प्रभु ताँरकर्णे मंत्र कहे ।।२०४।।
छले प्रभु कृपा करि ताँरे शिष्य कैल । भारतीर चित्ते महाविस्मय जन्मिल ।।२०५।।
भारती बोलेन "एइ महा मन्त्रवर । कृष्णेर प्रसादे कि तोमार अगोचर ।।२०६।।
प्रभुर आसाज्ञाय तवे केशव भारती । सेइ मंत्र प्रभुरे कहिला महामति ।।२०७।।
चतुर्दिगे हरिनाम सुमङ्गल शुनि । संन्यास करिला वैकुण्ठेर चूड़ामणि ।।२०८।।
परिलेन अरुण–वसन मनोहर । ताहाते हइला कोटि–कन्दर्प–सुन्दर ।।२०९।
सर्व अङ्ग श्रीमस्तक चन्दने लेपित । मालाय पूर्णित श्रीविग्रह सुशोभित ।।२१०।।
दण्ड कमण्डलु दुइ श्री हस्ते उज्वल । निरवधि निज प्रेमे आनन्दे विह्वल ।।२११।।
कोटि कोटि चन्द्र जिनि शोभे श्रीवदन । प्रेम धारे पूर्ण दुइ कमल—लोचन ।.२१२।।
कि संन्यासि–रूपेर हइल परकाश । पूर्ण करि ताहा कहिवेन वेदव्यास ।।२१३।।
सहस्र नामेते जे कहिला वेदव्यास । कोनो अवतारे प्रभु करेन संन्यास । २१४।।
एइ ताहा सत्य करिलेन द्विजराज । ए मर्म जानये सर्व–वैष्णव–समाज ।२१५।।
तथाहि (महाभारते दान धर्मे) सहस्रनाम स्तोत्रे ।
"संन्यासकृत् शमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम्" ।.२१६।।

किया और फिर सन्यास ग्रहण के लिये आ बैठे ।।२०१।। वेद कहता है कि सब शिक्षा गुरु गौरचन्द्र हैं। वे ही केशव भारती से भेद छिपा कर बोले"किसी महापुरुष ने स्वप्न में मेरे कान में संन्यास-मंत्र कहा था। आप देखें तो सही कि वह वैसा ही है या नहीं" ।।२०२-२०३।। ऐसा कह कर प्रभु ने उनके कर्ण में मंत्र सुनाया । इस व्याज (बहाना) से प्रभु ने कृपा करके उनको शिष्य बनाया ।.२०४।। केशव भारती के चित्त में बड़ा विस्मय हुआ । वे बोले–"यह महामन्त्रवर श्रीकृष्ण की कृपासे तुम्हारे अगोचर नहीं है" ।।२०५-६।। तब प्रभु की आज्ञा से महामतिवान केशव भारती ने वही मंत्र प्रभु को श्रवण कराया ।।२०७।। चारों ओर परम मंगलमय हरि नाम ध्वनि होने लगी । इस प्रकार वैकुण्ठनाथ ने संन्यास ग्रहण किया ।।२०८।। प्रभु ने मनोहर अरुण वस्त्र धारण किया जिससे वे कोटि-कन्दर्प–सुन्दर हो गये ।।२०९।। उनके समस्त अंग और श्रीमस्तक चन्दन से चर्चित हैं और श्रीविग्रह मालाओं से सुशोभित है ।।२१०।। दोनों उज्ज्वल श्रीहस्त में दण्ड-कमण्डलु हैं । अपने प्रेम में आप निरन्तर विह्वल हो रहे हैं ।।२११।। श्रीमुख कोटि २ चन्द्रमाओं की शोभा को पराजय कर रहा है तथा दोनों कमल लोचन प्रेमाश्रु धाराओं से पूर्ण हैं ।।२१२।। कैसा यह उनका संन्यासी रूप का प्रकाश हुआ इसे पूर्ण रूप से वेदव्यास ही कहेंगे ।।२१३।। वेदव्यास ने जो (विष्णु) सहस्रनाम में कहा है कि "कोई अवतार में प्रभु संन्यास ग्रहण करते हैं"—उसे ही यहाँ द्विजराज (गौर सुन्दर) ने सत्य किया । इस रहस्य को सर्व-वैष्णव-समाज जानती है ।।२१४–१५ । तथाहि (महाभारत दानधर्म) सहस्रनाम स्तोत्रे:–-"संन्यास कृत्, शमः, शान्तो, निष्ठा, शान्तिः, परायणम्" अर्थः–(वे भगवान् श्रीविष्णु) संन्यासकारी हैं, 'शम' अर्थात् श्रीहरि के रहस्य के आलोचनाकारी हैं,' शान्त' अर्थात् श्रीकृष्ण से भिन्न अन्य विषय प्रति उदासीन हैं, 'निष्ठा' अर्थात् हरि कीर्तन प्रधान भक्ति में ही सम्यक् अवस्थित हैं, 'शान्ति' अर्थात् अपने प्रभाव से भक्ति विरोधी दल का शमन करने वाले है, तथा परायण'

तबे नाम थुइवारे केशव भारती। मने मने लागिला चिन्तते महामति ॥२१७॥
"चतुर्दश भुवने ते एमत वैष्णव। आमार नयने नाहि हय अनुभव ॥२१८॥
एतेके कोथाओ जेना थाके हेन नाम। थुइले से इहान, आमार पूर्ण काम ॥२१९॥
मूले भारतीर शिष्य 'भारती' से हये। इहाने त ताहा थुइवारे जोग्य नहे' ॥२२०॥
भाग्यवान् न्यासिवर एतेक चिन्तिते। शुद्धा सरस्वती तान आइला जिह्वाते ॥२२१॥
पाइया उचित नाम केशव भारती। प्रभु-वक्षे हस्त दिया बोले शुद्ध मति ॥२२२॥
"जत जगतेरे तुमि कृष्ण' बोलाइया। कराइला चैतन्य-कीर्त्तन प्रकाशिया ॥२२३॥
एतेके तोमार नाम 'श्रीकृष्ण चैतन्य। सर्व लोक तोमा' हैते जाते हैल धन्य" ॥२२४॥
एइ जदि न्यासिवर वलिला वचन। जय ध्वनि पुष्प वृष्टि हइल तखन ॥२२५॥
चतुर्दिगे महा हरि ध्वनि-कोलाहल। करिया आनन्दे भासे वैष्णव-सकल ॥२२६॥
भारतीरे सर्व भक्त करिला प्रणाम। प्रभुओ हइला तुष्ट लभिया स्व-नाम ॥२२७॥
'श्रीकृष्ण चैतन्य नाम हइल प्रकाश। दण्डवत् हइया पड़िला सर्व दास। २२८॥
हेन मते संन्यास करिया प्रभु धन्य। प्रकाशिला आत्म नाम श्रीकृष्ण चैतन्य ॥२२९॥
ए सकल कथार अवधि नाहि हय। 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र वेदेकय ॥२३०॥
सर्व काल चैतन्य सकल लीला करे। कृपाय जखन जे देखायेन जाहारे ॥२३१॥
आरकत लीला रस हैल सेइ स्थाने। नित्यानन्द स्वरूपे से सर्व तत्त्व जाने ॥२३२॥
ताँहार आज्ञाय आमि कृपा-अनुरूपे। किछु मात्र सूत्र आमि लिखिल पुस्तके ॥२३३॥

अर्थात् समस्त भावों के आश्रय हैं ॥२१६॥ तदनन्तर, महामतिमान केशव भारती मन ही मन सोचने लगे कि इनका नाम करण क्या किया जाय ॥२१७॥ चौदहों भुवन में इनके जैसा कोई वैष्णव हो—यह तो मेरे नेत्रों को अनुभव नहीं होता है। अर्थात् ऐसा मुझे दिखायी नहीं देता) ॥२१८॥ इसलिये इनका नाम भी कोइ ऐसा रक्खा जाय जैसा नाम कहीं न हो, तभी मेरी इच्छा पूर्ण होगी। वैसे मूल परम्परा की दृष्टि से तो 'भारती' का शिष्य 'भारती' ही होता है परन्तु वह नाम इनके योग्य नहीं हैं' ॥२१९–२२०॥ भाग्यवान संन्यासी श्रेष्ठ भारती के इस प्रकार चिन्ता करने पर विशुद्ध ज्ञान रूपिणी सरस्वती देवी उनकी जिह्वा पर उदित हुई और केशव भारती को उपयुक्त नाम की प्राप्ति होगयी। तब निर्मल मति भारती प्रभु के वक्षस्थल पर हस्त रख कर बोले। २२१–२२२। "जिस हेतु तुमने कृष्ण कीर्तन का प्रकाश करके जगत् से 'कृष्ण' नाम बुलवाया तथा (सोये हुए) जीवों को चेतन किया, इसलिये तुम्हारा नाम 'श्रीकृष्ण चैतन्य' है। सब लोक तुमसे धन्य हुआ'। २२३–२२४॥ संन्यासी श्रेष्ठ के ऐसे वचन कहने पर जय जयकार होने लगी और पुष्प बरसने लगे। चारों ओर हरि ध्वनि का महाकोलाहल हो उठा और वैष्णव लोग सब आनन्द में बह चले ॥२२५–२६॥ केशव भारती को सब भक्तों ने प्रणाम किया। प्रभु भी अपना नाम प्राप्त करके सन्तुष्ट हुये ॥२२७। प्रभु का श्रीकृष्ण चतन्य नाम प्रकाशित हुआ। सब दास भक्तों ने दण्डवत् पड़कर प्रभु को प्रणाम किया ॥२२८॥ इस प्रकार प्रभु ने संन्यास ग्रहण करके अपने धन्य नाम 'श्रीकृष्ण चतन्य' को प्रकाशित किया ॥२२९॥ इन सब लीला चरितों की समाप्ति नहीं है। वेद इनका केवल 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' मात्र कहते हैं ॥२३०॥ श्रीकृष्ण चैतन्य सब काल में सब ही लीलाएँ करते रहते हैं। उनको उतनी ही कोई देख पाता है जिन पर वे कृपा करके जितनी दिखा दें ॥२३१॥ उस स्थान में और भी कितनी २ लीलाओं का आनन्द हुआ, उन सबके रहस्य को नित्यानन्द स्वरूप ही जानते हैं ॥२३२॥ उनकी

सर्व वैष्णवेर पाये मोर नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ।।२३४।।
देवे इहा कोटि कोटि मुनि वेदव्यासे। वर्णिवेन नाना मते अशेष विशेषे। २३५।।
एइ मते मध्य खण्डे प्रभुर संन्यास। जे कथा शुनिले हय चैतन्येर दास ।।२३६।।
मध्य खण्डे ईश्वरेर संन्यास-ग्रहण। इहार श्रवणे मिले कृष्ण प्रेम धन ।।२३७।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द दुइ प्रभु। एइ वाँछा इहा जेन ना पासरि कभु ।।२३८।।
हेन दिन इइव कि चैतन्य नित्यानन्द। देखिव वेष्टित चतुर्दिगे भक्त वृन्द ।।२३९।।
आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौर सुन्दर। ए वड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर ।।२४०।।
मुखेह जे जन बोले 'नित्यानन्ददास'। से अवश्य देखिवेक चैतन्य-प्रकाश ।२४१।।
चैतन्येर प्रियतम नित्यानन्द-राय। प्रभु भृत्य सङ्गे जेन ना छोड़ आमाय ।।२४२।।
जगतेर प्रेम दाता हेन नित्यानन्द। तान हञा जेन भजों प्रभु गौरचन्द्र ।।२४३।।
संसारेर पार हइ भक्तिर सागरे। जे डूविव से भजुक निताइ चाँदेरे ।।२४४।।
काष्ठेर पुतली जेन कुहके नाचाय। एइमत गौरचन्द्र मोरे जे बोलाय ।।२४५।।
पक्षी जेन आकाशेर अन्त नाहि पाय। जत शक्ति थाके तत दूर उड़ि जाय ।।२४६।।
एइ मत चैतन्य कथार अन्त नाइ। जार जत दूर शक्ति सभे तत गाइ ।।२४७।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान। वृन्दावनदास तछु पदजुगे गान ।।२४८।।

इति श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे श्रीचैतन्य संन्यास वर्णनं नाम
षड्विंशोऽध्यायः ।२६।।

आज्ञा से, उनकी कृपा से जितना जाना वह कुछ मैंने सूत्र रूप से पुस्तक में लिख दिया ।।२३३।। समस्त वैष्णवों के चरणों में मेरा नमस्कार है। इसमें वे मेरे कोई अपराध को ग्रहण न करें ।।२३४।। वेद में यह (चरित) कोटि २ वेदव्यास मुनि नाना प्रकार से अशेष-विशेष रूप से वर्णन करेंगे ।।२३५।। इस प्रकार मध्य खण्ड में प्रभु का संन्यास वर्णित है। इसकी कथा श्रवण करने से श्रीचैतन्य का दास होता है।२३६।। मध्यखण्ड में ईश्वर के संन्यास का वर्णन है। इसके श्रवण से कृष्ण-प्रेम-धन प्राप्त होता है ।।२३७।। श्री कृष्ण चैतन्य एवं नित्यानन्द इन दोनों प्रभु को मैं कभी न भूलूँ-यही मेरी एक मात्र वाञ्छा है ।२३८।। क्या ऐसा दिन होगा जब श्री चैतन्य एवं नित्यानन्द प्रभु को चारों ओर भक्त वृन्दों से वेष्टित दर्शन करूँगा ।।२३९।। मेरे प्रभु (नित्यानन्द) के प्रभु श्री गौरसुन्दर हैं इसका मेरे चित्त में निरन्तर बड़ा भारी भरोसा है ।।२४०।। मुख से भी जो अपने को 'नित्यानन्द दास' कहता है, वह अवश्य श्री चैतन्यदेव का दर्शन करेगा ।।२४१।। श्रीचतन्य के प्रियतम नित्यानन्दराय हैं। प्रभु अपने भृत्य नित्यानन्द राय के सहित कभी मेरा त्याग न करें ।२४२।। जगत् के प्रेमदाता जो नित्यानन्द हैं, उनका होकर मैं गौरचन्द्र को भज सकूँ, (यही प्रार्थना:है) ।।२४३।। भवसागर से पार होकर भक्ति–सागर में जो डूबना चाहता हो वह नित्यानन्दराय का भजन करे ।।२४४।। नट जैसे कठपुतली को नचाता है, उसी प्रकार गौरचन्द्र ही मेरे मुँह से बुलवाते हैं ।।२४५।। पक्षी की जितनी शक्ति होती है उतनी दूर तक वह उड़ता है पर आकाश का अन्त नहीं पाता है ।।२४६।। इसी प्रकार श्रीचैतन्य-कथा का भी अन्त नहीं है। जिसकी जितनी शक्ति होती है, उतना वह गाता है ।।२४७।। श्रीकृष्ण चैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र मेरे प्राण स्वरूप हैं। वृन्दावनदास उनके पद युगल का गुण-गान करता है ।।२४८।।

।। मध्यखण्ड समाप्त ।।

मुद्रक–जा०डा०भरतिया,श्रीकृष्ण पब्लिशिङ्ग हाउस प्रेस, मथुरा।